अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1

प्रवचन-क्रम

1. भक्ति जीवन का परम स्वीकार है...2
2. प्रीति को कामना से मुक्त करो...20
3. भक्ति परमात्मा की किरण है..35
4. प्रीति-स्नेह-प्रेम-श्रद्धा-भक्ति..50
5. भक्ति यानी जीने का प्रारंभ..69
6. भक्त के मिटने में भगवान का उदय..89
7. स्वानुभव ही श्रद्धा है..109
8. प्रीति की पराकाष्ठा भक्ति है..127
9. अनुराग है तुम्हारा अस्तित्व...148 10...संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है
.... 166
11...भक्ति आत्यंतिक क्रांति है
.... 190
12..भक्ति एकमात्र धर्म
.... 207
13..स्वभाव यानी परमात्मा
.... 227
14..परमात्मा परमनिर्धारणा का नाम
.... 247
15...भक्ति अंतिम सिद्धि है
.... 268
16...धर्म आमूल बगावत है
.... 283
17...भक्ति अति स्वाभाविक है
.... 304
18...विरह की परिपूर्णता ही परमात्मा से मिलन
.... 323
19..सब हो रहा है
.... 346
20..अद्वैत प्रीति की परमदशा है
.... 367

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 पहला प्रवचन

भक्ति जीवन का परम स्वीकार है

सूत्र

ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा।। 1।।
सापरानुरक्तिरीश्वरे।। 2।।
तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्।। 3।।
ज्ञानमितिचेन्नद्विषतोऽपिज्ञानस्यतदसंस्थितेः।। 4।।
तयोपक्षयाच्च।। 5।।
अथातोभक्तिजिज्ञासा!
यह सुबह, यह वृक्षों में शांति, पक्षियों की चहचहाहट... या कि हवाओं का वृक्षों से गुजरना, पहाड़ों का सन्नाटा... या कि नदियों का पहाड़ों से उतरना... या सागरों में लहरों की हलचल, नाद... या आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट--यह सभी ओंकार है।
ओंकार का अर्थ हैः सार-ध्वनि; समस्त ध्वनियों का सार। ओंकार कोई मंत्र नहीं, सभी छंदों में छिपी हुई आत्मा का नाम है। जहां भी गीत है, वहां ओंकार है। जहां भी वाणी है, वहां ओंकार है। जहां भी ध्वनि है, वहां ओंकार है।
और यह सारा जगत ध्वनियों से भरा है। इस जगत की उत्पत्ति ध्वनि में है।
इस जगत का जीवन ध्वनि में है; और इस जगत का विसर्जन भी ध्वनि में है।
ओम से सब पैदा हुआ, ओम में सब जीता, ओम में सब एक दिन लीन हो जाता है। जो प्रारंभ है, वही अंत है। और जो प्रारंभ है और अंत है, वही मध्य भी है। मध्य अन्यथा कैसे होगा!
इंजील कहती हैः प्रारंभ में ईश्वर था, और ईश्वर शब्द के साथ था, और ईश्वर शब्द था, और फिर उसी शब्द से सब निष्पन्न हुआ।
वह ओंकार की ही चर्चा है। मैं बोलूं तो ओंकार है। तुम सुनो तो ओंकार है। हम मौन बैठें तो ओंकार है। जहां लयबद्धता है, वहीं ओंकार है। सन्नाटे में भी--स्मरण रखना--जहां कोई नाद नहीं पैदा होता, वहां भी छुपा हुआ नाद है--मौन का संगीत! शून्य का संगीत! जब तुम चुप हो, तब भी तो एक गीत झर-झर बहता है। जब वाणी निर्मित नहीं होती, तब भी तो सूक्ष्म में छंद बंधता है। अप्रकट है, अव्यक्त है; पर है तो सही। तो शून्य में भी और शब्द में भी ओंकार निमज्जित है।
ओंकार ऐसा है जैसे सागर। हम ऐसे हैं जैसे सागर की मछली।
इस ओंकार को समझना। इस ओंकार को ठीक से समझा नहीं गया है। लोग तो समझे
कि एक मंत्र है, दोहरा लिया। यह दोहराने की बात नहीं है। यह तो तुम्हारे भीतर जब छंदोबद्धता पैदा हो, तभी तुम समझोगे ओंकार क्या है। हिंदू होने से नहीं समझोगे। वेदपाठी होने से नहीं समझोगे। पूजा का थाल सजा कर ओंकार की रटन करने से नहीं समझोगे। जब तुम्हारे जीवन में उत्सव होगा, तब समझोगे। जब तुम्हारे जीवन में गान फूटेगा, तब समझोगे। जब तुम्हारे भीतर झरने बहेंगे, तब समझोगे।
ओम से शुरुआत अदभुत है।
ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा!
उस ओम में सब आ गया; अब आगे विस्तार होगा। जो जानते हैं, उनके लिए ओम में सब कह दिया गया। जो नहीं जानते, उनके लिए बात फैला कर कहनी होगी। अन्यथा शास्त्र पूरा हो गया ओंकार पर।
ओंकार बनता है तीन ध्वनियों सेः अ उ म। ये तीन मूल ध्वनियां हैं; शेष सभी ध्वनियां इन्हीं ध्वनियों के प्रकारांतर से भेद हैं। यही असली त्रिवेणी है--अ उ म। यही त्रिमूर्ति है। यही शब्द-ब्रह्म के तीन चेहरे हैं।
सब शास्त्र अ उ म में समाहित हो गए। हिंदुओं के हों कि मुसलमानों के,
कि ईसाइयों के, कि बौद्धों के, कि जैनों के--भेद नहीं पड़ता। जो भी कहा गया 2

है अब तक, और जो नहीं कहा गया, सब इन तीन ध्वनियों में समाहित हो गया है। ओम कहा, तो सब कहा। ओम जाना, तो सब जाना। इसलिए वेद घोषणा करते हैं कि जिसने ओंकार को जान लिया, उसे जानने को कुछ और शेष नहीं रहा।
निश्चित ही यह उस ओंकार की बात नहीं है, जो तुम अपने पूजागृह में बैठ
कर दोहरा लेते हो। यह ओंकार तो तुम्हारे पूरे जीवन की सुगंध की तरह प्रकट होगा, तो समझोगे।
तुम्हारे जीवन में बड़ी छंदहीनता है। तुम्हारा जीवन टूटा-फूटा हुआ सितार है, जिसके तार या तो बहुत ढीले हैं या बहुत कसे हैं; और जिस सितार पर कैसे अंगुलियां रखें, उसका शास्त्र ही तुम भूल गए हो; और जिस सितार को कैसे बजाएं, कैसे निनादित करें, उसकी भाषा ही तुम्हें नहीं आती। तुम सितार लिए बैठे हो, सितार में छिपा संगीत तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, और जीवन बड़ी पीड़ा से भरा है। यह सारी पीड़ा रूपांतरित हो सकती हैः तुम गाओ, तुम गुनगुनाओ; तुम्हारे भीतर की सरिता बहे; तुम नाचो।
भक्ति जीवन का परम स्वीकार है। इसलिए शुभ ही है कि शांडिल्य अपने इस अपूर्व सूत्र-ग्रंथ का उदघाटन ओम से करते हैं। ठीक ही है, क्योंकि भक्ति जीवन में संगीत पैदा करने की विधि है। जिस दिन तुम संगीतपूर्ण हो जाओगे, जिस दिन तुम्हारे भीतर एक भी स्वर ऐसा न रहेगा जो व्याघात उत्पन्न करता है, जिस दिन तुम बेसुरे न रहोगे, उसी दिन प्रभु-मिलन हो गया। प्रभु कहीं और थोड़े ही है--छंदबद्धता में है, लयबद्धता में है। जिस दिन नृत्य पूरा हो उठेगा, गान मुखरित होगा, तुम्हारे भीतर का छंद जिस क्षण स्वच्छंद होगा, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो गया।
इसलिए तो कहते हैं वेद कि ओम को जिन्होंने जान लिया, उन्हें जानने को कुछ शेष न रहा। यह शास्त्र में लिखे हुए ओम की बात नहीं है, यह जीवन में अनुभव किए गए, अनुभूत छंद की बात है।
गायत्री तुम्हारे भीतर छिपी है, भगवद्गीता भी। कुरान की आयतें तुम्हारे भीतर मचल रही हैं, तड़प रही हैं--मुक्त करो! तुम्हारे भीतर बड़ा रुदन है--जैसे किसी वृक्ष में हो, जिसके फूल नहीं खिले; जैसे किसी नदी में हो, चट्टानों के कारण जो बह न सकी और सागर से मिल न सकी। जिस वृक्ष में फूल नहीं आते, उसकी पीड़ा जानते हो? है और नहीं जैसा। जब तक फूल न आएं और जब तक सुगंध छिपी है जो पड़ी प्राणों में, जड़ों से जो मुक्त होना चाहती है, जो पक्षी बन कर उड़ जाना चाहती है आकाश में, जो पंख फैलाना चाहती है, जो चांद-तारों से बात करना चाहती है--बहुत दिन हो गए कारागृह में जड़ों की पड़े-पड़े-- जो छूट जाना चाहती है सब जंजीरों से, जब तक वह सुगंध फूलों से मुक्त न हो जाए, तब तक वृक्ष तृप्त कैसे हो! तब तक कैसी तृप्ति! कैसा संतोष! कैसी शांति! कैसा आनंद! तब तक वृक्ष उदास है। ऐसे ही वृक्ष तुम हो।
तुम्हारे भीतर ओंकार पड़ा है--बंधन में, जंजीरों में। मुक्त करो उसे! गाओ! नाचो! ऐसे नाचो कि नाचने वाला मिट जाए और नाच ही रह जाए--उस क्षण पहचान होगी ओंकार से। ऐसे गाओ कि गायक न बचे, गीत ही रह जाए--उस क्षण तुम भगवद्गीता हो गए। जिस क्षण गाने वाला भीतर न हो और गान अपनी सहज स्फुरणा से बहे, उस क्षण तुम कुरान हो गए। उस दिन तुम्हारे भीतर परम काव्य का जन्म हुआ। उस दिन जीवन साधारण न रहा, असाधारण हुआ। उस दिन जीवन में दीप्ति आई, आभा उपजी।
इसलिए ओम से प्रारंभ है। इस ओम में इशारा है कि तुम अभी ऐसे वृक्ष हो जिसके फूल नहीं खिले हैं। और बिना फूल खिले कोई संतुष्टि नहीं है, कोई परितोष नहीं है।
ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा।
और यह तुम्हें ख्याल में आ जाए कि मेरे फूल अभी खिले नहीं, कि मेरे फल अभी लगे नहीं, कि मेरा वसंत आया नहीं, कि मैं जो गीत लेकर आया था, मैंने अभी गाया नहीं; कि जो नाच मेरे पैरों में पड़ा है, मैंने घूंघर भी नहीं बांधे, वह नाच अभी उन्मुक्त भी नहीं हुआ--यह तुम्हें समझ में आ जाए तो "अथातो भक्ति जिज्ञासा", फिर भक्ति की जिज्ञासा। उसके पहले भक्ति की कोई जिज्ञासा नहीं हो सकती।

भक्ति की जिज्ञासा का अर्थ ही यह है कि मैं टूटा-फूटा हूं अभी, मुझे जुड़ना है; मैं अधूरा-अधूरा हूं अभी, मुझे पूरा होना है; कमियां हैं, सीमाएं हैं हजार मुझ पर, सब सीमाओं को तोड़ कर बहना है; बूंद हूं अभी और सागर होना है। अथातो भक्ति जिज्ञासा! तभी तो तुम जिज्ञासा में लगोगे।
समझें, भक्ति अर्थात क्या?
एक तत्व हमारे भीतर है, जिसको प्रीति कहें। यह जो तत्व हमारे भीतर है-- प्रीति, इसी के आधार पर हम जीते हैं। चाहे हम गलत ही जीएं, तो भी हमारा आधार प्रीति ही होता है। कोई आदमी धन कमाने में लगा है; धन तो ऊपर की बात है, भीतर तो प्रीति से ही जी रहा है--धन से उसकी प्रीति है। कोई आदमी पद के पीछे पागल है; पद तो गौण है, प्रतिष्ठा की प्रीति है। जहां भी खोजोगे, तो तुम प्रीति को ही पाओगे। कोई वेश्यालय चला गया है, और किसी ने किसी की हत्या कर दी है--पापी में और पुण्यात्मा में, तुम एक ही तत्व को एक साथ पाओगे, वह तत्व प्रीति है। फिर प्रीति किससे लग गई, उससे भेद पड़ता है। धन से लग गई तो तुम धन ही होकर रह जाते हो। ठीकरे हो जाते हो। कागज के सड़े-गले नोट होकर मरते हो। जिससे प्रीति लगी, वही हो जाओगे।
यह बड़ा बुनियादी सत्य है; इसे हृदय में सम्हाल कर रखना। प्रीति महंगा सौदा है, हर किसी से मत लगा लेना। जिससे लगाई वैसे ही हो जाओगे। वैसा होना हो तो ही लगाना। प्रीति का अर्थ ही यही होता है कि मैं यह होना चाहता हूं। राजनेता गांव में आया और तुम भीड़ करके पहुंच गए, फूलमालाएं सजा कर--किस बात की खबर है? तुम गहरे में चाहते हो कि मेरे पास भी पद हो, प्रतिष्ठा हो; इसलिए पद और प्रतिष्ठा की पूजा है। कोई फकीर गांव में आया और तुम पहुंच गए; उससे भी तुम्हारी प्रीति की खबर मिलती है कि तड़फ रहे हो फकीर होने को--कि कब होगा वह मुक्ति का क्षण, जब सब छोड़-छाड़... जब किसी चीज पर मेरी कोई पकड़ न रह जाएगी। कोई संगीत सुनता है तो धीरे-धीरे उसकी चेतना में संगीत की छाया पड़ने लगती है। तुम जिससे प्रीति करोगे वैसे हो जाओगे; जिनसे प्रीति करोगे वैसे हो जाओगे।
तो प्रीति का तत्व रूपांतरकारी है। प्रीति का तत्व भीतरी रसायन है।
और बिना प्रीति के कोई भी नहीं रह सकता। प्रीति ऐसी अनिवार्य है जैसे श्वास। जैसे शरीर श्वास से जीता, आत्मा प्रीति से जीती। इसलिए अगर तुम्हारे जीवन में कोई प्रीति न हो, तो तुम आत्महत्या करने को उतारू हो जाओगे। या कभी तुम्हारी प्रीति का सेतु टूट जाए, तो आत्महत्या करने को उतारू हो जाओगे। घर में आग लग गई और सारा धन जल गया, और तुमने आत्महत्या कर ली; क्या तुम कह रहे हो? तुम यह कहते होः यह घर ही मैं था, यह मेरी प्रीति थी। अब यही न रहा तो मेरे रहने का क्या अर्थ! तुम्हारी पत्नी मर गई और तुमने आत्महत्या कर ली; तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे होः यह मेरी प्रीति का आधार था। जब मेरी प्रीति उजड़ गई, मेरा संसार उजड़ गया। अब मेरे रहने में कोई सार नहीं।
हम प्रीति के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। बिना प्रीति के कोई भी नहीं जी सकता। जीना संभव ही प्रीति के सहारे है। जैसे बिना श्वास लिए शरीर नहीं रहेगा, वैसे ही बिना प्रीति के आत्मा नहीं टिकेगी। प्रीति है तो आत्मा टिकी रहती है। फिर प्रीति गलत से भी हो तो भी आत्मा टिकी रहती है। मगर चाहिए, प्रीति तो चाहिए--गलत हो कि सही।
फिर प्रीति के बहुत ढंग हैं, वे समझ लेने चाहिए। एक प्रीति है जो तुम्हारी पत्नी में होती है, मित्रों में होती है, पति में होती है, भाई-बहन में होती है। उस प्रीति को हम प्रेम कहते हैं। प्रेम का अर्थ होता हैः उसके साथ जो समतल है। तुमसे ऊपर भी नहीं, तुमसे नीचे भी नहीं; तुम्हारे जैसा है; जिससे आलिंगन हो सकता है; उसको प्रेम कहते हैं। समतुल व्यक्तियों में प्रीति होती है तो प्रेम कहते हैं।
फिर एक प्रीति होती है माता, पिता या गुरु में; उसे श्रद्धा कहते हैं। कोई तुमसे ऊपर है; प्रीति को पहाड़ चढ़ना पड़ता है। इसलिए श्रद्धा कठिन होती है। श्रद्धा में दांव लगाना पड़ता है। श्रद्धा में चढ़ाई है। इसलिए बहुत कम लोगों में वैसी प्रीति मिलेगी जिसको श्रद्धा कहें। माता-पिता से कौन प्रीति करता है! कर्तव्य निभाते हैं लोग। दिखाते हैं। उपचार। दिखाना पड़ता

है। प्रीति कहां! अपने से ऊपर प्रीति करने में पहाड़ चढ़ने की हिम्मत होनी चाहिए। और ध्यान रखना, तुम अपने से ऊपर, जितने ऊपर प्रीति करोगे, उतने ही तुम ऊपर जाने लगोगे, तुम्हारी चेतना ऊर्ध्वगामी होगी। इसलिए तो हमने श्रद्धा को बड़ा मूल्य दिया है सदियों से, क्योंकि श्रद्धा आदमी को बदलती है, अपने से पार ले जाती है। तुम्हारे हाथ तुमसे ऊपर की तरफ उठने लगते हैं और तुम्हारे पैर किसी ऊर्ध्वगमन पर गतिमान होते हैं। तुम्हारी आंखें ऊंचे शिखरों से टकराती और चुनौती लेती हैं।
जिसके जीवन में श्रद्धा नहीं है, उसके जीवन में विकास नहीं है। विकास
हो ही नहीं सकता। किसी को महावीर में श्रद्धा है, तो विकास होगा; किसी को बुद्ध में, तो; कृष्ण में, तो; क्राइस्ट में, तो। श्रद्धा से विकास होता है, कृष्ण-क्राइस्ट तो सब खूंटियां हैं। कहां तुमने अपनी श्रद्धा टांगी, यह बात गौण है। मगर श्रद्धा कहीं न कहीं टांगना जरूर। यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि तुमने महावीर चुने कि मोहम्मद, कि कृष्ण चुने कि क्राइस्ट, इसमें बहुत मूल्य नहीं है। मूल्य इस बात में है कि तुमने श्रद्धा का कोई पात्र चुना। तुमने कोई चुना जो तुमसे पार है। तुमने कोई चुना जो आकाश में है--धवल शिखरों की भांति। उस चुनाव में ही यात्रा शुरू हो गई--तुम्हारी आंखें ऊपर उठने लगीं। तुमने जमीन पर गड़े-गड़े चलना बंद कर दिया। तुमने जमीन पर सरकना बंद कर दिया। तुम्हारे पंख फड़फड़ाने लगे। आज नहीं कल तुम उड़ोगे। क्योंकि जिससे श्रद्धा लग गई है, उस तक जाना होगा। यात्रा कठिन होगी तो भी जाना होगा। लाख कठिनाइयां होंगी तो भी जाना होगा। प्रीति लग जाए तो कठिनाइयों का पता नहीं चलता।
तो एक प्रीति है--श्रद्धा। अपने से ऊपर। वह ऊर्ध्वगामी है। एक प्रीति है--प्रेम। अपने से समतुल। उससे तुम कहीं जाते-आते नहीं; कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते हो। पत्नी भी तुम जैसी, पति भी तुम जैसा, मित्र भी तुम जैसे। लोग अपने जैसे ही तो चुनते हैं, लोग अपने जैसों में ही तो आकर्षित होते हैं। अपने से बड़े में आकर्षित होने में ही खतरा मालूम होता है। क्यों? क्योंकि पहले तो किसी को अपने से बड़ा मानना अहंकार के प्रतिकूल है। किसी को गुरु मानना अहंकार के प्रतिकूल है। अहंकारी किसी को गुरु नहीं मान सकता। वह हजार बहाने खोजता है सिद्ध करने के कि कोई गुरु है ही नहीं। अब कहां गुरु! सतयुग में होते थे, यह कलियुग है! अब कहां गुरु! यह पंचम काल है, अब कहां गुरु! सब कहानियां हैं, कपोल-कल्पनाएं हैं। बचाता है अपने को। क्योंकि गुरु चुनने में ही तुमने एक बात जाहिर कर दी कि अब तुम्हें चुनौती स्वीकार करनी पड़ेगी। तुम जहां हो, वहीं समाप्त नहीं हो सकते हो, ऊपर जाना है।
इसलिए लोग अपने ही समान व्यक्तियों को चुनते हैं। उनके साथ कहीं जाना नहीं; यहीं झगड़ना है। पति-पत्नी यहीं लड़ते रहेंगे; कोल्हू के बैल की तरह रोज वही दोहराते रहेंगे--जो कल भी किया था, परसों भी किया था; कल भी करेंगे, परसों भी करेंगे; पूरा जन्म निकल जाएगा और वही पुनरुक्ति, पुनरुक्ति। नहीं कोई गति होती। हो नहीं सकती।
तीसरा प्रेम है--प्रीति है, जिसे हम स्नेह कहते हैं; वह अपने से छोटों
के प्रति। पुत्र, कन्यादिक या शिष्य। जो अपने से छोटे के प्रति होती है। अपने से छोटे के प्रति भी हम आसानी से राजी हो जाते हैं। सच तो यह है,
हम बड़े आह्लादित होते हैं। इसलिए तो तुम आह्लादित होते हो जब तुम्हारे घर में बेटा पैदा होता है। तुम्हारा आह्लाद क्या है? तुम्हारा आह्लाद यही है कि इसकी तुलना में तुम बड़े हो गए।
तुमने कहानी सुनी न, अकबर ने एक लकीर खींच दी राजदरबार में आकर और कहा, इसे बिना छुए छोटी कर दो। कोई न कर सका। लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी; उसे छुआ नहीं, छोटी हो गई। छोटी लकीर खींच देता तो बड़ी हो जाती--उसे छुए बिना।
तुम अपने पुत्र में, पुत्रियों में इतना जो रस लेते हो उसका कारण क्या है? चलो, कोई तो है जो तुम्हारी तरफ देखता है और तुम्हें बड़ा मानता है! तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। इसलिए शिष्य होना कठिन है, गुरु होना आसान मालूम पड़ता है।

एक शिष्य गुरु के पास पहुंचा। उसने पूछा कि मुझे स्वीकार करेंगे? मैं दीक्षित होने आया हूं।
गुरु ने कहा, कठिन होगा मामला। यात्रा दुर्गम है। सम्हाल सकोगे? पात्रता है?
पूछा उस युवा ने, क्या करना होगा? ऐसी कौन सी कठिनाई है?
गुरु ने कहा, जो मैं कहूंगा, वही करना पड़ेगा। वर्षों तक तो जंगल से लकड़ी काटना, आश्रम के जानवरों को चरा आना, बुहारी लगाना, भोजन पकाना--इसमें ही लगना होगा। फिर जब पाऊंगा कि अब तुम्हारा समर्पण ठीक-ठीक हुआ, तार ठीक-ठीक बंधे, तब तुम्हारे ऊपर सत्य के प्रयोग शुरू होंगे, तब ध्यान और तप।
उस युवक ने पूछा, यह तो बड़ी झंझट की बात है। कितने वर्ष लगेंगे--यह जंगल जाना, लकड़ी काटना, भोजन बनाना, सफाई करना, जानवर चराना?
गुरु ने कहा, कुछ कहा नहीं जा सकता। निर्भर करता है कि कब तुम तैयार होओगे। जब तैयार हो जाओगे, तभी। वर्ष भी लग सकते हैं, कभी-कभी जन्म भी लग जाते हैं।
उस युवक ने कहा, चलिए, यह तो जाने दीजिए, यह मुझे जंचता नहीं। गुरु होने में क्या करना पड़ता है?
तो उस गुरु ने कहा, गुरु होने में कुछ नहीं। जैसे मैं यहां बैठा हूं ऐसे बैठ जाओ और आज्ञा देते रहो।
तो उसने कहा, फिर ऐसा करिए, मुझे गुरु ही बना लीजिए। यह जंचता है।
गुरु कौन नहीं बन जाना चाहता! तुम भी कोई मौका नहीं खोते जब गुरु बनने
का मौका मिले। किसी को अगर तुम पा लो किसी हालत में कि सलाह की जरूरत है, तो तुम्हें चाहे सलाह देने योग्य पात्रता हो या न हो, तुम जरूर देते हो। तुम चूकते नहीं मौका। कोई मिल भर जाए मुसीबत में, तुम उसकी गर्दन पकड़ लेते हो। तुम उसको सलाह पिलाने लगते हो। और ऐसी सलाहें, जो तुमने जीवन में खुद भी कभी स्वीकार नहीं कीं; जिन पर तुम कभी नहीं चले; जिन पर तुम कभी चलोगे भी नहीं। लेकिन किसी और ने तुम्हारी गर्दन पकड़ कर तुम्हें पिला दी थीं, अब तुम किसी और के साथ बदला ले रहे हो।
दुनिया में सलाहें इतनी दी जाती हैं, मगर लेता कौन? कोई किसी की सलाह लेता है? तुमने कभी किसी की ली? और ख्याल रखना, जिसने भी तुम्हारी असहाय अवस्था का मौका उठा कर सलाह दी है, उससे तुम नाराज हो, अभी भी नाराज हो, तुम उसे क्षमा नहीं कर पाए हो। क्योंकि तुम असमय में थे और दूसरे ने फायदा उठा लिया। तुम्हारे घर में आग लग गई थी और कोई ज्ञानी तुमसे कहने लगाः क्या रखा है! यह संसार तो सब जल ही रहा है! सब जल ही जाएगा! सब पड़ा रह जाएगा--सब ठाट पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा! अरे, यहां रखा क्या है! ये बातें तो तुम्हें भी मालूम हैं, लेकिन तुम्हारा घर जल रहा है और इन सज्जन को सलाह देने की सूझी है! तुम्हारी पत्नी मर गई और कोई कह रहा है कि आत्मा तो अमर है! तुम्हारी तबीयत होती है कि इसको यहीं दुरुस्त कर दो इस आदमी को। मेरी पत्नी मर गई है, इसे ज्ञान सूझ रहा है! और तुम भलीभांति जानते हो कि इसकी पत्नी जब मरी थी तब यह भी रो रहा था; और कल जब इसका बेटा मरेगा तो फिर यह .जार-.जार रोएगा। तब तुम्हारे हाथ में एक मौका होगा कि तुम भी बदला ले लोगे, तुम भी सलाह दे दोगे।
सलाहें एक-दूसरे का अपमान हैं। सलाह का मतलब यह होता है, तुम सिद्ध कर रहे होः मैं जानता हूं, तुम नहीं जानते; मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। तुम मौका पाकर गुरु बन रहे हो। जांचना। अपने जीवन को जरा परखना। हर किसी को सलाह देने को तैयार हो! कोई सिगरेट पी रहा है और तुम्हारे भीतर एकदम खुजलाहट होती है कि इसको सलाह दो कि सिगरेट पीना बुरा है। और तुम पान चबा रहे हो! मगर पान चबाना बात और! लेकिन तुम सलाह देने का मौका नहीं छोड़ोगे। तुम्हारे बाप ने तुम्हें सलाह दी थी और तुमने एक न मानी। और वे ही सलाहें तुम अपने बेटों को पिला रहे हो। वे भी नहीं मानेंगे। तुमने नहीं मानी थी। कौन मानता है सलाह! क्यों सलाहें नहीं मानी जाती हैं? कारण है। देने वाला अहंकार का मजा लेता है, लेने वाले के अहंकार को चोट लगती है।

तुम्हारे घर बेटे-बेटियां पैदा हो जाते हैं, तुम बड़े खुश होते हो। तुमको ये असहाय प्राणी मिल गए, जिनको अब तुम जैसा चाहो बनाओ; जहां चाहो भेजो; जो आज्ञा दो, इन्हें मानना ही पड़े।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के साथ सदियों में जो अत्याचार हुआ है, वैसा अत्याचार किसी के साथ कभी नहीं हुआ। गुलाम से गुलाम भी इतना गुलाम नहीं होता जितने बच्चे तुम्हारे गुलाम हो जाते हैं; क्योंकि असहाय हैं, तुम पर निर्भर हैं, जी नहीं सकते तुम्हारे बिना। एक छोटा सा बच्चा है, दूध नहीं मिले, सेवा नहीं मिले, सुरक्षा नहीं मिले--मर ही जाएगा, जी ही नहीं सकता। उसका जीवन दांव पर लगा है। तुम इस मौके को नहीं चूकते। तुम इस मौके का पूरा फायदा उठा लेते हो--पूरे से ज्यादा फायदा उठा लेते हो। हालांकि तुम कहते यही हो कि मुझे तुमसे प्रेम है, इसीलिए ऐसा कर रहा हूं। लेकिन अगर बहुत छान-बीन करोगे, थोड़े सजग होओगे, तो पाओगे, अहंकार का रस ले रहे हो। और तो कोई तुम्हारी सुनता नहीं, तुम्हारे बेटे को तो सुननी ही पड़ती है। इसलिए कौन बेटा अपने बाप को माफ कर पाता है? कोई बेटा अपने बाप को माफ नहीं कर पाता। और अगर मौका मिलेगा बुढ़ापे में, जब तुम बूढ़े हो जाओगे और कमजोर हो जाओगे, असहाय हो जाओगे, बच्चे जैसे हो जाओगे, तब तुम्हारा बेटा तुमसे बदला लेगा। तब छोटी-छोटी बातों में तुम दुतकारे जाओगे। और तब तुम तड़फोगे और तुम कहोगे, मैंने ऐसा क्या पाप किया? मैंने तुझे बड़ा किया, मैंने अपना जीवन तेरे ऊपर लगाया, निछावर किया और तू मुझसे बदला ले रहा है? यह कैसी अकृतज्ञता!
नहीं, लेकिन तुम जांच करना, गौर करना। तुमने अपने अहंकार को खूब उछाला होगा। इस बेटे में पड़े घाव अब तक हरे हैं। बच्चों के साथ हम बड़ा अमानवीय व्यवहार करते हैं। और यह कहते हम चले जाते हैं कि हमारा बड़ा स्नेह है। अपने से छोटे के प्रति जो प्रीति होती है उसका नाम स्नेह है। मेरे देखे, अपने से छोटे के प्रति सच्ची प्रीति और ठीक प्रीति तभी होती है जब अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा हो; अन्यथा नहीं होती; अन्यथा झूठी होती है। जिस व्यक्ति के जीवन में अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा है, सम्यक श्रद्धा है, उस व्यक्ति के जीवन में अपने से छोटे के प्रति सम्यक स्नेह होता है। और उस व्यक्ति के जीवन में एक और क्रांति घटती है--अपने से सम के प्रति सम्यक प्रेम होता है। उसके जीवन में प्रेम का छंद बंध जाता है। छोटे के प्रति सम्यक स्नेह होता है, धारा की तरह बहता है उसका प्रेम। बेशर्त। वह कोई शर्तबंदी नहीं करता कि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा, कि तुम ऐसे होओगे तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा। वह यह भी नहीं कहता कि बड़े होकर तुम इस तरह के व्यक्ति बनना; कि मैं हिंदू हूं तो तुम भी हिंदू होना; कि मैं कम्युनिस्ट हूं तो तुम भी कम्युनिस्ट होना; कि मैं ईसाई हूं तो तुम भी ईसाई रहना; कि मैं चाहता हूं कि तुम डाक्टर बनो, कि इंजीनियर बनो, तो इंजीनियर ही बनना। नहीं, वह कोई आग्रह नहीं रखता। वह कहता हैः मैंने तुम्हें प्रेम दिया, मैं प्रेम देकर आनंदित हुआ; तुमने मुझे हलका किया। जैसे बादल हलके हो जाते हैं भूमि पर बरस कर, ऐसा तुम पर बरस कर मैं हलका हुआ। मैं अनुगृहीत हूं। तुम्हें जो होना हो तुम होना; मैं तुम्हें सहारा दूंगा--तुम जो होना चाहो उसमें--लेकिन तुम्हें कुछ खास बनाने की चेष्टा नहीं करूंगा। मैं कौन हूं? तुम स्वतंत्र हो। तुम आत्मवान हो।
मगर यह प्रेम, यह स्नेह उसी में हो सकता है, जिसके जीवन में श्रद्धा हुई हो और जिसने किसी गुरु का सत्संग किया हो। गुरु वही है जो तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दे कि तुम जो होना चाहो, तुम्हें साथ दे, सहारा दे; तुम्हें अपनी सारी संपदा को खोल कर रख दे कि चुन लो; और इतनी भी अपेक्षा न रखे कि तुम धन्यवाद देना। जब तुम किसी गुरु से मिल गए हो, तभी तुम इस योग्य हो सकोगे कि अपने से छोटे के प्रति स्नेह कर सको--सम्यक स्नेह। अन्यथा तुम्हारा स्नेह भी फांसी का फंदा होगा। और जब तुम अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा कर सको और अपने से छोटे के प्रति स्नेह कर सको, तो दोनों के मध्य में प्रेम की घटना घटती है, अन्यथा नहीं घटती। तभी तुम अपनी पत्नी को प्रेम कर सकोगे, अपने पति को प्रेम कर सकोगे। और उस प्रेम में बड़े फूल खिलेंगे, बड़ी सुगंध होगी। उस प्रेम में बड़े संगीत का जन्म होगा।

ये प्रीति की तीन साधारण स्थितियां हैं। और जब ये तीनों सम्यक हो जाती हैं, जब इन तीनों के तार मिल जाते हैं, जब ये तीनों छंदोबद्ध हो जाती हैं, तब चौथी अवस्था, परम अवस्था पैदा होती है, उसका नाम--भक्ति। अथातो भक्ति जिज्ञासा! जिसने स्नेह किया हो, जिसने प्रेम किया हो, जिसने श्रद्धा की हो--और जिसके तीनों के तार मिल गए हों और तीनों के माध्यम से जिसके भीतर एक अपूर्व आनंद की आभा जगी हो--वही व्यक्ति भक्ति करने में कुशल हो सकता है। भक्ति प्रीति की पराकाष्ठा है।
भक्ति का अर्थ हैः सर्वात्मा से प्रीति। छोटे से कर ली, समान से कर ली, बड़े से कर ली--अब सर्वात्मा से, अब परमेश्वर से।
परमेश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, ख्याल रखना बार-बार। अगर परमेश्वर व्यक्ति है तुम्हारी धारणा में, तो तुम जो करोगे वह श्रद्धा होगी। फिर श्रद्धा में और भक्ति में कोई फर्क न रह जाएगा। फिर तो परमेश्वर भी एक व्यक्ति हो गया, जैसे गुरु है--और ऊपर सही, बहुत ऊपर सही, मगर श्रद्धा ही रहेगी। श्रद्धा और भक्ति में भेद है।
परमात्मा यानी सर्व। जिस दिन तुम्हारी प्रीति सब दिशाओं में अकारण बहने लगे, अहैतुक--वृक्षों को, पहाड़ों को, पत्थरों को, चांद-तारों को, दृश्य को, अदृश्य को, यह समस्त को तुम्हारी प्रीति मिलने लगे; तुम इस सारे के प्रेम में पड़ जाओ; तुम्हारे प्रेम पर कोई सीमाएं न रह जाएं, उस दिन भक्ति। ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा!
"अब भक्ति की जिज्ञासा करें।"
सापरानुरक्तिः ईश्वरे।
"ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।"
ऐसा हिंदी में जगह-जगह अनुवाद किया जाता है। मूल ज्यादा साफ है। अनुवाद कहता हैः ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है। मूल कहता हैः सापरानुरक्तिः। परा। वे जो तीन प्रीतियां थीं, उनका नाम है अपरा--श्रद्धा, प्रेम, स्नेह। वे सांसारिक हैं।
ध्यान रहे, श्रद्धा भी सांसारिक है। नास्तिक भी श्रद्धा कर सकता है। आखिर कम्युनिस्ट श्रद्धा करता ही है कार्ल मार्क्स में और दास कैपिटल में। नास्तिक भी श्रद्धा कर सकता है, उसके भी गुरु होते हैं। चार्वाक को मानने वाला चार्वाक में श्रद्धा करता है। एपीकुरस को मानने वाला एपीकुरस में श्रद्धा करता है। उसके भी गुरु हैं, उसके भी शास्त्र हैं, उसके भी सिद्धांत हैं, उसके भी तीर्थ हैं। अगर मुसलमानों के लिए मक्का है तो कम्युनिस्टों के लिए मास्को है, पर तीर्थ तो हैं ही। अगर किसी के लिए काबा है तो किसी के लिए क्रेमलिन है, तीर्थ तो हैं ही। उसी भक्ति, उसी पूजा, उसी श्रद्धा से लोग मास्को जाते, जिस भक्ति, श्रद्धा और पूजा से लोग काशी जाते, काबा जाते, गिरनार जाते।
श्रद्धा सांसारिक है। जिससे हमने कुछ सीखा है, उसके प्रति श्रद्धा हो जाएगी। अगर तुमने किसी से चोरी सीखी है तो वह तुम्हारा गुरु हो गया और उससे श्रद्धा हो जाएगी। पापी भी श्रद्धा करता है, बुरा आदमी भी श्रद्धा करता है--आखिर जिससे कुछ सीखा है, वही गुरु हो जाता है।
भक्ति श्रद्धा से भिन्न बात है।
सूत्र कहता हैः सापरानुरक्तिः!
ये तो अपरा हुईं। ये तो इस जगत की बातें हुईं--प्रेम, स्नेह, श्रद्धा। इनके पार भी एक शुद्ध रूप है प्रीति का। उस रूप को परा अनुरक्ति, ऐसा शांडिल्य कहते हैं। उस परा अनुरक्ति का जो पात्र है, वही ईश्वर है।
अब तुम यह मत समझना कि कोई ईश्वर है, जिस पर तुम अपनी अनुरक्ति को ढालोगे, जिस पर तुम अपनी अनुरक्ति को केंद्रित करोगे। नहीं, अगर तुमने कोई ईश्वर मान लिया और फिर उस पर अपनी अनुरक्ति को केंद्रित किया तो श्रद्धा हो गई। जिस दिन तुम्हारी अनुरक्ति सभी पात्रों से मुक्त हो जाएगी--न स्नेह रही, न प्रेम रही, न श्रद्धा रही; जिस दिन तुम्हारी प्रीति शुद्ध प्रीति हो गई; मात्र प्रीति हो गई; तुम्हारे चित्त की सहज दशा हो गई, उस दिन जिस तरफ तुम बहोगे, वही ईश्वर है। सब तरफ ईश्वर है।
सापरानुरक्तिः ईश्वरे।

परा अनुरक्ति संपूर्ण होती है। बच्चे से प्रेम होता है, लेकिन इतना नहीं होता कि अगर मरने का वक्त आ जाए और चुनाव करना पड़े कि दो में से कोई एक ही जी सकता है--तुम या तुम्हारा बेटा--तो बहुत संभावना यह है कि तुम अपने को बचाओगे। तुम कहोगेः बेटे तो और भी पैदा हो सकते हैं। प्रेम था, लेकिन इतना नहीं था कि अपने को गंवा दो।

पत्नी से प्रेम है; तुम कहते हो कि तेरे बिना मर जाऊंगा। मगर अगर आज ऐसा मौका आ जाए कि एक हत्यारा आ जाए और कहे कि दो में से कोई भी एक मरने को तैयार हो जाओ, तो तुम अपनी पत्नी को कहोगे, क्या बैठी देख रही है, तैयार हो! मैं तेरा स्वामी हूं! पति तो परमात्मा है! तू बैठी क्या देख रही है? तब तुम मरने को राजी न होओगे। ये कहने की बातें हैं!

फिर संपूर्ण अनुरक्ति का क्या अर्थ होता है?

संपूर्ण अनुरक्ति का अर्थ होता हैः अब तुम अपने को छोड़ने को राजी हो। अपरा अनुरक्ति में तुम रहते हो। तुम्हारे रहते सब ठीक; लेकिन अगर तुम्हें स्वयं को दांव लगाना पड़े तो फिर तुम हट जाते हो। परा अनुरक्ति में तुम अपने को दांव पर लगा देते हो। तुम कहते होः मैं तो बूंद हूं जो सागर में खो जाना चाहती है। मैं तो बीज हूं जो भूमि में खो जाना चाहता है। तुम परमात्मा और अपने बीच परमात्मा को चुनते हो, सर्व को चुनते हो; तुम अपनी सारी सीमाएं छोड़ कर छलांग लगा जाना चाहते हो।

जब तक यह शीशे का घर है
तब तक ही पत्थर का डर है
हर आंगन जलता जंगल है
दरवाजे सांपों का पहरा
झरती रोशनियों में अब भी
लगता कहीं अंधेरा ठहरा
जब तक यह बालू का घर है
तब तक ही लहरों का डर है
हर खूंटी पर टंगा हुआ है
जख्म भरे मौसम का चेहरा
शोर सड़क पर थमा हुआ है
गलियों में सन्नाटा गहरा
जब तक यह काजल का घर है
तब तक ही दर्पण का डर है
हर क्षण धरती टूट रही है
जर्रा-जर्रा पिघल रहा है
चांद-सूर्य को कोई अजगर
धीरे-धीरे निगल रहा है
जब तक यह बारूदी घर है
तब तक चिनगारी का डर है

जब तक हमने शरीर के साथ अपने को एक समझा है, तभी तक सब भय हैं--बीमारी के, बुढ़ापे के, मृत्यु के। जिसकी आंखें सब जगह छिपे हुए परमात्मा को खोजने लगीं, जिसमें भक्ति की जिज्ञासा उठी, जिसने जानना चाहा है कि जीवन का परम सार क्या है? जीवन की परम बुनियाद क्या है? जो जानना चाहता है कि अब मैं तरंगों से नहीं, सागर से मिलना चाहता हूं। अब मैं अभिव्यक्ति से नहीं, अभिव्यक्तियों के भीतर जो छिपा है, अदृश्य, उसको जानना चाहता हूं। जिसने अपने भीतर देखा कि एक तो देह है जो दिखाई पड़ती है और एक मैं हूं जो दिखाई नहीं पड़ता...

तुम आज तक किसी को दिखाई नहीं पड़े हो, इस पर तुमने कभी विचार किया? न तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें देखा, न तुम्हारे बेटे ने, न तुम्हारे मित्रों ने। न तुमने अपनी पत्नी को देखा है। जो देखा है वह देह है--तुम अनदेखे रह गए हो। तुम जरा कभी बैठ कर सोचना। तुम्हें आज तक किसी ने भी नहीं देखा। तुम्हारी आंखों में भी कोई आंखें डाल दे, तो भी तुम्हें नहीं देख सकता।

फिर भी तुम हो--आंखों से अलग, कानों से अलग, हाथ-पैरों से अलग तुम हो; इस देह से अलग तुम हो। तुम भलीभांति जानते हो, वह तुम्हारा सहज अनुभव है कि मैं इससे पृथक हूं। तुम्हारा हाथ कट जाए तो भी तुम नहीं कट जाते। तुम आंखें बंद कर लो तो भी भीतर तुम देखते हो--बिना आंख के देखते हो। तुम भीतर हो। तुम चैतन्य हो। तुम अदृश्य हो। जैसे तुम्हारे भीतर यह छोटा सा अदृश्य छिपा है, ऐसा ही इस सारे जगत के भीतर भी अदृश्य छिपा है। दृश्य दिखाई पड़ रहा है, अदृश्य से पहचान नहीं हो रही है।
उस अदृश्य की प्रीति में पड़ जाने का नाम भक्ति है।
फिर भय क्या? दृश्य छिन जाएगा तो छिन जाए। अगर दृश्य की कीमत पर विराट अदृश्य मिलता हो, यह क्षुद्र देह जाती हो तो जाए। यह सस्ता सौदा है। अगर इस देह के जाने पर विराट से मिलन होता हो, प्रभु-मिलन होता हो, तो कौन होगा पागल जो इस देह के लिए रुकेगा? मगर यह प्रतीति भीतर गहरी हो गई हो, तब; नहीं तो भक्ति की जिज्ञासा का क्षण नहीं आया अभी।

दोपहरी तक पहुंचते-पहुंचते
मुरझा जाता है जो
वह कैसा भोर है
क्या
कुल मिला कर
जीवन का मुंह
मृत्यु की ओर है

ऐसा ही है। हम सब मरने की तरफ चल रहे हैं। जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ता है कि देर-अबेर, आज नहीं कल, यह देह छूट ही जाएगी; यहां हम सब मरने को ही सन्नद्ध खड़े हैं, पंक्तिबद्ध खड़े हैं; कोई आज मर गया, कोई कल मरेगा; देर-अबेर मैं भी मरूंगा; यहां मृत्यु घटने ही वाली है--इसके पहले अमृत से कुछ पहचान कर लें! अथातो भक्ति जिज्ञासा! इसके पहले कि देह छिन जाए, देह में जो बसा है, उससे पहचान कर लें! इसके पहले कि पिंजड़ा टूट जाए, पिंजड़े में जो पक्षी है, उससे पहचान कर लें। तो फिर पिंजड़ा रहे कि टूटे, कोई भेद नहीं पड़ता। अंतर की जिसे पहचान हो गई, उसे सब तरफ भगवान की झलक मिलने लगती है। मगर पहली पहचान अपने भीतर है। जिसने स्वयं को नहीं जाना, वह उस परमात्मा को कभी भी नहीं जान सकेगा।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा को जानना है।
मैं उनसे पूछता हूं, तुम स्वयं को जानते हो? स्वयं को बिना जाने कैसे परमात्मा को जानोगे? कण से तो पहचान करो, फिर विराट से करना। तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्।
"ऐसा कहा है कि उनमें चित्त लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।"
उपदेशात का अर्थ होता हैः जिन्होंने जाना, उन्होंने कहा है। उपदेश शब्द का अर्थ इतना ही नहीं होता कि ऐसा कहा है। हर किसी की कही बात उपदेश नहीं होती। उपदेश किसकी बात को कहते हैं? जिसने जाना हो। और उपदेश क्यों कहते हैं? उपदेश शब्द का शाब्दिक अर्थ होता हैः जिसके पास बैठने से तुम भी जान लो--उप, देश--जिसके पास बैठने से तुम्हें भी जानना घटित हो जाए, जिसकी सन्निधि में तुम्हारे भीतर भी तरंगें उठने लगें, जिसके स्पर्श से तुम भी स्फुरित हो उठो, जिसके निकट आने से तुम्हारा दीया भी जल जाए, उसके वचन को उपदेश कहते हैं।
तत संस्थस्य अमृतत्व उपदेशात्।
जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है कि उसमें चित्त लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। अनुवाद में थोड़े शब्द ज्यादा हो गए हैं। संस्कृत के सूत्र शब्दों के संबंध में बड़े वैज्ञानिक हैं; एक शब्द का भी ज्यादा उपयोग नहीं करेंगे। अनुवादक ने जीव शब्द को बीच में डाल दिया। अनुवाद इतना ही होना चाहिए--जिन्होंने जाना, उन्होंने कहाः जो उसे पा लेते हैं वे अमृत हो जाते हैं। उनकी मृत्यु मिट जाती है। उनके लिए मृत्यु मिट

जाती है। उनका मृत्यु से संबंध विच्छिन्न हो जाता है। क्यों? क्योंकि ईश्वर का अर्थ होता हैः जीवन। वृक्ष आते हैं और जाते हैं, लेकिन वृक्षों के भीतर जो छिपा जीवन है वह सदा है। पात्र बदलते हैं, नाटक चलता है। हम नहीं थे, सब था; हम नहीं होंगे, फिर भी सब होगा। हमारे होने न होने से कुछ भेद नहीं पड़ता। जो है, है। हम तरंगें हैं। हम हो भी जाते हैं, नहीं भी हो जाते हैं। फिर भी इस अस्तित्व में न तो हमारे होने से कुछ जुड़ता है और न हमारे न होने से कुछ घटता है। यह अस्तित्व उतना का उतना, जितना का जितना, जस का तस, वैसा का वैसा बना रहता है।
सागर में लहर उठी, फिर लहर सो गई। क्या तुम सोचते हो लहर के उठने से सागर में कुछ नया जुड़ गया था? अब लहर के चले जाने से क्या सागर में कुछ कमी हो गई? न तो सागर में कुछ जुड़ा, न कुछ कमी हुई। सब वैसा का वैसा है।
सत्य न तो घटता, न बढ़ता। बढ़े तो कहां से बढ़े? घटे तो कहां घटे? कैसे घटे? सत्य तो जितना है उतना है। जिस दिन व्यक्ति अपने को लहर की तरह देखता है और परमात्मा को सागर की तरह, अपने को तरंग की तरह, इससे ज्यादा नहीं; एक रूप, एक नाम, इससे ज्यादा नहीं; एक भावभंगिमा, एक मुख-मुद्रा, इससे ज्यादा नहीं; उसके भीतर उठा हुआ एक स्वप्न, इससे ज्यादा नहीं--अमृत से संबंध हो गया। तत्संस्थस्य! उसके साथ जो जुड़ गया!
तत शब्द विचारणीय है। तत का अर्थ होता हैः वह; दैट। ईश्वर को हम कोई व्यक्तिवाची नाम नहीं देते, क्योंकि व्यक्तिवाची नाम देने से भ्रांतियां होती हैं। राम कहो, कृष्ण कहो--भ्रांति खड़ी होती है। क्योंकि ये भी तरंगें हैं; बड़ी तरंगें सही, मगर तरंगें हैं। उसकी तरंगें हैं। अवतार सही, मगर आज हैं और कल नहीं हो जाएंगे। छोटी तरंग हो सागर में कि बड़ी तरंग हो, इससे क्या फर्क पड़ता है--तरंग तरंग है। उसकी! तत्! उसमें जो ठहर गया; उससे भिन्न अपने को जो नहीं मानता--उसका संबंध अमृत से हो जाता है, क्योंकि परमात्मा अमृत है।
ऐसा कहना कि परमात्मा अमृत है, शायद ठीक नहीं। ऐसा ही कहना ठीक है कि
इस जगत में जो अमृत है, उसका नाम परमात्मा है। इस जगत में जो नहीं मरता, उसका नाम परमात्मा है। जो इस जगत में मर जाता है, वह संसार। जो नहीं मरता, वह परमात्मा।
तुमने एक बीज बोया। बीज मर गया। लेकिन अंकुर हो गया। जो बीज में छिपा
था अमृत, अब अंकुर में आ गया। बीज मर गया, उसने बीज को छोड़ दिया, वह देह छोड़ दी, अब उसने नई देह ले ली, नया रूप ले लिया। अब तुम बैठ कर रोओ मत बीज की मृत्यु पर। क्योंकि बीज में तो कुछ और था ही नहीं; जो था, अब अंकुर में है। फिर एक दिन वृक्ष बड़ा हो गया, फिर एक दिन वृक्ष मर गया। अब तुम रोओ मत वृक्ष की मृत्यु पर। क्योंकि जो वृक्ष में मर गया, वह अब फिर बीजों में छिप गया है। बीज में वृक्ष छिप गया। अब फिर कहीं, फिर किसी मौसम में, फिर किसी अवसर में, फिर किसी क्षण में बीज अंकुरित होंगे। फिर पौधा होगा, फिर वृक्ष होगा।
जीवन शाश्वत है। रूप बदलते, ढंग बदलते, मगर जीवन शाश्वत है। उसे देखो-- अविच्छिन्न जीवन की धारा को।
एक दिन तुम मां के पेट में सिर्फ मांस-पिंड थे। आज वह मांस-पिंड कहीं
भी नहीं है। आज तुम्हारे सामने उस मांस-पिंड का कोई चित्र रख दे तो तुम पहचान ही न सकोगे कि कभी मैं यह था। या कि तुम सोचते हो पहचान सकोगे? फिर एक दिन तुम छोटे बच्चे थे, फिर वह भी खो गया। फिर तुम जवान थे, वह भी खो गया। अब तुम बूढ़े हो, वह भी खो रहा है। मौत भी आएगी, यह देह भी खो जाएगी। फिर किसी और क्षण में, फिर किसी और मौसम में, तुम कहीं फिर उमगोगे, फिर जन्मोगे। जो इस तरह से रूपों से गुजरता है, उसकी याद करो, उसका स्मरण करो। उसका नाम तत्, वह। वह अमृत है। और उससे जो जुड़ गया, वह भी अमृत हो गया।
अब यहां यह भ्रांति मत कर लेना, जैसी कि हिंदी अनुवाद में हो सकती हैः ऐसा कहा है कि उनमें चित्त लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। इससे भ्रांति पैदा हो सकती है, तुमको यह लग सकता हैः तो चलो परमात्मा
से जुड़ जाएं, इससे मृत्यु से बच जाएंगे! अमृत हो जाएंगे! तो मैं बचूंगा! तो रहूंगा बैकुंठ में, कि स्वर्ग में, कि मोक्ष में--मगर मैं बचूंगा--जीव

बचेगा! अब यह जीव नाहक बीच में ले आया गया; इसकी कोई जरूरत न थी। यह तो ऐसा ही हुआ कि बीज सोचे कि मैं बचूंगा; चलो कोई हर्जा नहीं, पौधे में बचूंगा। बीज कहां बचेगा? बीज तो जाएगा। तुम तो जाओगे, तुम नहीं बचोगे। तुम जैसे हो ऐसे तो तुम जाओगे ही, जा ही रहे हो, प्रतिपल जा रहे हो। तुमने जैसा अपने को जाना है, यह बचने वाली बात नहीं है। लेकिन तुम्हारे भीतर कोई ऐसा तत्व भी छिपा पड़ा है, जैसा तुमने अपने को अभी तक जाना ही नहीं है, वह बचेगा। उसका तुमसे कुछ संबंध नहीं। वह यानी वह, तत्। तुम्हारे भीतर भी तत बैठा है--साक्षी की तरह बैठा है। जब तुम भोजन कर रहे हो, तब वह भोजन नहीं कर रहा है, देख रहा है कि तुम भोजन कर रहे हो। जब तुम स्नान कर रहे हो, तब वह स्नान नहीं कर रहा है, देख रहा है कि तुम स्नान कर रहे हो। जब तुम बीमार पड़ते हो, तब वह बीमार नहीं होता, देखता है कि तुम बीमार हो गए हो। और जब तुम स्वस्थ होते हो, तब वह स्वस्थ नहीं होता, देखता है कि तुम स्वस्थ हो गए हो।
समझ लेना भेद। जिसने भोजन किया, जो भूखा था; जो बीमार पड़ा, जो स्वस्थ हुआ--इसको ही तुमने अब तक माना है कि मैं हूं। यह तो जाएगा। और तुम्हारे भीतर एक तत छिपा है, एक साक्षी खड़ा है, एक चैतन्य--जिससे तुमने अपना संबंध ही नहीं जोड़ा है अभी तक, जिससे तुम्हारी कोई पहचान ही नहीं है! तुम्हारी अपने से पहचान ही कहां है!
तुम्हारी हालत ऐसी ही है जैसे किसी ने अपने को अपने वस्त्रों के साथ
एक कर लिया और सोचता हैः यही मैं हूं। यह कमीज, यह कोट, यह टोपी, यह अंगरखा, यह मैं हूं। ये तो जाएंगे, ये तुम हो ही नहीं। तुम तो बिल्कुल न बचोगे। लेकिन फिर भी कुछ बचेगा। और वह कुछ तुम्हारे मैं से बिल्कुल मुक्त है। वहां मैं का भाव ही नहीं उठता है। वहां मैं की तरंग ही नहीं बनती है। इसलिए बुद्ध ने तो कह दियाः अनात्मा; कोई आत्मा नहीं है। क्योंकि आत्मा अर्थात मैं। उस साक्षी में कहां आत्मा है! उस साक्षी में यह भाव ही नहीं बनता कि मैं। जहां मैं का भाव बना, संसार शुरू हुआ। जहां मैं का भाव मिटा, संसार मिटा। उसमें ठहर गए, तो अमरत्व--ऐसा जानने वालों ने कहा है। ज्ञानमितिचेन्नद्विषतोऽपिज्ञानस्यतदसंस्थितेः।
"ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। द्वेषी पुरुष को भी ज्ञान होता है, परंतु उसमें प्रीति नहीं होती।"
यह सूत्र बहुमूल्य है। खूब ध्यानपूर्वक समझना।
"ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है।"
ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। ईश्वर के संबंध में जानना तो बहुत सस्ता है; बिना कुछ दांव पर लगाए हो जाता है--शास्त्र पढ़ लिए और जान लिया। सदगुरुओं के वचन कंठस्थ कर लिए--तोते की भांति! तो ज्ञान तो सस्ता है। पंडित हो जाना तो बहुत सस्ता है। ज्ञानी होना बहुत कठिन है। ज्ञानी कोई ज्ञान से नहीं होता, ज्ञानी तो प्रेम से होता है।
यह बात जरा उलझी हुई लगेगी। जानने के लिए ज्ञान का संग्रह पर्याप्त नहीं है। जानने के लिए तो प्रीति जगनी चाहिए--विराट के प्रति, अनंत के प्रति, अमृत के प्रति।
"ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है।"
इसलिए इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि खूब जान लिया--उपनिषद पढ़े, वेद पढ़े, गीता पढ़ी, खूब जान लिया, कंठस्थ कर लिया, शास्त्र याद हो गए। सोचने लगे कि ईश्वर है, क्योंकि शास्त्रों के तर्क ने समझा दिया कि ईश्वर है। मानने भी लगे कि ईश्वर है। लेकिन यह मानना, यह जानना, सब थोथा है, सब ऊपर-ऊपर है। यह तुम्हारे हृदय में नहीं अंकुरित हुआ है। यह जानना तुम्हारा नहीं है। और जब तक तुम्हारा न हो तब तक झूठ है।
"ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है।"
तो असली भक्ति क्या है?
असली भक्ति वैयक्तिक रूप से ईश्वर से संबंधित होना है। असली भक्ति व्यक्ति का परम से विवाह है। शास्त्र पढ़ने से नहीं होगा। सत्य में उतरना होगा। उतरना महंगा सौदा है। खतरा है। बड़ा खतरा तो है अपने को खोने का। अपने को जो मिटाने को तैयार है, वही वहां जाएगा।

कबीर ने कहा हैः जो घर बारै आपना, चलै हमारे संग। यह अपना, यह मैं, यह
घर तो जला डालना होगा। यह अपने ही हाथ से फूंक देना होगा।
पंडित कुछ भी नहीं फूंकता, उलटे उसका मैं और मजबूत हो जाता है। वह तो अपने मैं के घर को और बड़ा कर लेता है। ज्ञान से खूब सजा लेता है। ज्ञान आभूषण है अहंकार का। इसलिए ज्ञानी परमात्मा को नहीं जान पाता, प्रेमी जानता है। प्रेमी का अर्थ हैः जो अपने को कुर्बान करने को तत्पर है। प्रेमी का अर्थ हैः जो झुकने को, समर्पित होने को राजी है।

मैं रुका रहा

किसी बांस की डाली की तरह
हवा के सामने झुका रहा
और आवाज सुनता रहा एक
कि नति ठीक है
मगर मना नहीं है तुम्हारे लिए गति हमने तो तुमसे उन्नत होने को कहा है विरति की बात कहां कही है हमने
रत रहने के लिए
कहा है हमने तो तुमसे

सुनने को सुनता रहा मैं यह आवाज मगर समझ लिया मैंने
कि यह एक सलाह है

अपनी एक राह है मेरी
रुकने की और झुकने की
किसी न किसी जगह
पूरी तरह चुकने की!

वही जान पाएगा परमात्मा को, जिसने यह राह पकड़ी--
अपनी एक राह है मेरी
रुकने की और झुकने की
किसी न किसी जगह
पूरी तरह चुकने की!
जो अपने को पूरा उंडेल देगा। कुछ और चढ़ाने से काम नहीं होगा। किसको धोखा देते हो? फूल चढ़ाने से काम नहीं होगा, जब तक तुम अपने प्राणों के फूल न चढ़ाओ। यह धूप-दीप जलाने से कुछ भी न होगा, जब तक तुम अपने प्राणों की धूप-दीप न जलाओ। ये तुम्हारे पूजा के थाल झूठे हैं। इसलिए तो परमात्मा से कभी कोई संबंध नहीं हुआ। ये पूजा के थाल ही अड़ंगा बने हैं। ये तुम्हारे मंदिरों में बजते हुए घंटनाद और उठता हुआ धूप का धुआं--यह सब झूठा है। यह धुआं तुमसे उठे! यह नाद तुम्हारे भीतर हो! यह तुम्हारा ओंकार हो! तुम जलो! तुम गलो! तुम झुको! तुम अपने को उंडेलो, तो कुछ हो!
"ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। द्वेषी पुरुष को भी ज्ञान होता है, परंतु उसमें प्रीति नहीं होती।"
ज्ञान तो सरल बात है। ज्ञान तो कैसे भी आदमी को हो सकता है। द्वेषी को
भी हो सकता है। अत्यंत घृणा से भरे हुए व्यक्ति को भी हो सकता है। क्रोध से भरे हुए व्यक्ति को भी हो सकता है।
तुमने दुर्वासा जैसे ऋषियों की कहानियां तो पढ़ी ही हैं। ऋषि तो थे ही, मगर गजब के ऋषि रहे होंगे! ज्ञान तो था ही, शास्त्रों के ज्ञाता तो थे ही, लेकिन प्रीति नहीं उमगी, प्रेम का वसंत नहीं आया, प्रेम के फूल नहीं खिले, प्रेम की सरिता नहीं बही--क्रोध ही जलता रहा।
फिर कभी-कभी उनको भी हो गया है, जिनके पास पांडित्य बिल्कुल नहीं था-- जैसे कबीर को, या कि जैसे मीरा को। पंडित तो जरा भी नहीं थे। शास्त्र का तो

कुछ बोध ही नहीं था। कबीर ने तो कहा हैः मसि कागद छूयो नहीं। स्याही और कागज तो कभी छुआ ही नहीं। लेकिन कबीर ने कहा हैः ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय। वे जो ढाई अक्षर प्रेम के हैं, वे जरूर पढ़े। बस उन्हीं को पढ़ लिया तो सब पढ़ लिया। उन ढाई अक्षरों में सब अक्षर आ गए। "अक्षर" आ गया। प्रेम द्वार है परमात्मा का, ज्ञान नहीं।
तो तीन बातें ख्याल में लेना। पहली बातः कर्म। दूसरी बातः ज्ञान। और तीसरी बातः भक्ति।
कर्म बड़ा स्थूल अहंकार है--कुछ करके दिखा दूं, कुछ पाकर दिखा दूं। धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, दौड़-धाप--कर्ता का अहंकार है। जब आदमी कर्म से हार जाता है, गिर पड़ता है, चलते-चलते- चलते थक जाता है, अनुभव में आता है कि मेरे ही किए कुछ भी नहीं होगा, मेरे बस में नहीं है, मैं एक छोटी बूंद हूं और यह अस्तित्व बड़ा है, मेरी सामर्थ्य में नहीं है--तब आदमी ज्ञान से संयुक्त होता है। कर्म से थका तो ज्ञान से संयुक्त होता है।
ज्ञान का अर्थ होता हैः जीत तो न सका, जान कर रहूंगा। जीत तो नहीं हो सकी, लेकिन जानना तो हो सकता है! यह सूक्ष्म अहंकार है।
फिर एक दिन आदमी इससे भी थक जाता है, कि जानना भी नहीं हो सकता; मैं इतना छोटा हूं और यह इतना विराट है--इसको जानूंगा कैसे? मैं इससे अलग कहां हूं? अलग-थलग होता तो जान लेता; मैं तो इसी में जुड़ा हूं, इसी का हिस्सा हूं। अब कोई पत्ता किसी वृक्ष का, वृक्ष को जानना चाहे, कैसे जानेगा? वह वृक्ष का ही हिस्सा है। वृक्ष उससे पूर्व है। वृक्ष चाहे तो पत्ते को जान ले, पत्ता वृक्ष को नहीं जान सकता।
एक दिन कर्म थक जाता है तो ज्ञान पैदा होता है। कर्म यानी स्थूल अहंकार। ज्ञान यानी सूक्ष्म अहंकार। एक दिन ज्ञान भी थक जाता है, तब क्षण आता हैः ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा! तब आदमी कहता हैः न मैं जीत सका, न मैं जान सका, प्रेम तो कर सकता हूं! यह हो सकता है। पत्ता वृक्ष को जीत नहीं सकता, न वृक्ष को जान सकता है; लेकिन पत्ता वृक्ष के प्रेम में लीन हो सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। कर्मः स्थूल अहंकार। ज्ञानः सूक्ष्म अहंकार।
भक्तिः निर-अहंकार।
तयोपक्षयाच्च।
"क्योंकि पूर्णरूप से भक्ति का उदय होते ही ज्ञान का नाश हो जाता है।"
यह सूत्र बड़ा अदभुत है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। तयोपक्षयाच्च। उसके जानने से क्षय हो जाता है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ तो यह हो सकता है कि ज्ञान के जानने से भक्ति का क्षय हो जाता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि भक्ति के जानने से ज्ञान का क्षय हो जाता है। दोनों अर्थ प्यारे हैं। और दोनों अर्थ एक साथ मैं करना चाहता हूं। अब तक किसी ने दोनों अर्थ एक साथ किए नहीं हैं।
पहलाः ज्ञान से भक्ति का क्षय हो जाता है।
जितना आदमी जानकार होगा, उतना ही कम प्रेम हो जाएगा। जानना प्रेम की हत्या करता है। जानना जहर है प्रेम के लिए। क्योंकि प्रेम के लिए रहस्य चाहिए, प्रेम के लिए विस्मय-विमुग्धता चाहिए। और ज्ञान तो रहस्य को छीन लेता है। ज्ञान तो कहता हैः हम जानते हैं, रहस्य क्या है?
छोटे बच्चे प्रेम कर सकते हैं, क्योंकि आश्चर्यचकित! विस्मय-विमुग्ध! अवाक! छोटा बच्चा छोटी-छोटी चीजों के प्रेम में पड़ जाता है--समुद्र के किनारे रंगीन पत्थर बीनने लगता है, शंख-सीप बीनने लगता है। तुम ज्ञानी हो, तुम कहते हो, फेंको इनको! कचरा कहां ले जा रहे हो? बच्चे की समझ में नहीं आता कि इतना प्यार पत्थर, सूरज की रोशनी में ऐसे दमक रहा है हीरे जैसा! ऐसा प्यार शंख! वह बाप की नजर बचा कर खीसे में छिपा लेता है। उसे प्रेम उपजता है। उसे हर चीज से प्रेम उपजता है। वह हर चीज के पास ठिठक कर खड़ा हो जाता है। घास में फूल खिला है और वह ठिठक कर खड़ा हो जाता है। वह भरोसा नहीं कर पाता--ऐसा प्यारा फूल! ऐसा अदभुत रंग! एक तितली उड़ी जा रही है, वह भरोसा नहीं कर पाता; वह भागने लगता है तितली के पीछे--ऐसा चमत्कार, जैसे फूल को पंख लग गए हों! हर चीज चमत्कृत करती है उसे, क्योंकि वह कुछ भी नहीं जानता, अज्ञानी है, विस्मय से भरा है। आश्चर्य अभी उसका जीवित है।

फिर तुम धीरे-धीरे ज्ञान ठूंसोगे, तुम हर चीज समझा दोगे। फिर एक दिन धीरे-धीरे जब वह विश्वविद्यालय से वापस लौटेगा ज्ञानी होकर--सब गंवा कर और कोरे कागज साथ लेकर, सर्टिफिकेट लेकर--तब उसे कोई चीज विस्मय-विमुग्ध न करेगी। हर चीज का उत्तर उसके पास होगा। तुम पूछो, वृक्ष हरे क्यों हैं? वह कहेगा, क्लोरोफिल। बात खतम हो गई। स्त्री सुंदर क्यों लगती है? हारमोन। बात खतम हो गई। प्रेम क्या है? रसायनशास्त्र। वह समझा सकेगा सब। वह सब समझ कर आ गया है। वह हर चीज को जानता है। अब अनजाना कुछ छूटा नहीं है, प्रीति कैसे उमगे? आश्चर्य ही मर गया। आश्चर्य की हवा में प्रीति उमगती है। इसलिए तुम जान कर आश्चर्यचकित मत होना कि जैसे-जैसे आदमी का ज्ञान बढ़ा है, वैसे-वैसे दुनिया में प्रेम कम हो गया। यह स्वाभाविक परिणाम है। यह शांडिल्य के सूत्र में छिपा हैः तयोपक्षयाच्च।
देखते नहीं, तुम रोज देखते नहीं--दुनिया में जितनी शिक्षा बढ़ती जाती है, उतना प्रेम कम होता जाता है। शिक्षित आदमी और प्रेमी, जरा मुश्किल जोड़ है! जितना शिक्षित, उतना ही कम प्रेमी। थोड़ा अशिक्षित होना चाहिए प्रेम के लिए। ग्रामीण के पास प्रेम है, शहरी के पास विदा हो गया। असभ्य के पास प्रेम है, सभ्य के पास नहीं। जो जितना सुसंस्कृत हो गया है, उसके पास औपचारिकता है, लेकिन औपचारिकता में कहीं कोई प्राण नहीं है, कहीं कोई जीवन नहीं है। वह जब तुमसे पूछता है, कहिए कैसे हैं? कुछ नहीं पूछ रहा है। वह यह कह रहा है कि चलो, आगे बढ़ो। यह तो पूछना पड़ता है। हमें मतलब? तुम्हें मतलब? किसी को क्या लेना-देना है।
वर्षों बीत जाते हैं और पड़ोसी से पहचान नहीं होती। सुसंस्कृत आदमी का कोई पड़ोसी ही नहीं है। पड़ोस तो प्रेम से बनता है। जीसस ने कहा हैः कौन है पड़ोसी? क्योंकि जीसस बहुत जोर देते थे इस बात पर कि पड़ोसी से प्रेम करो, तो ही तुम परमात्मा से प्रेम कर पाओगे। अपने प्रेम को थोड़ा बढ़ाओ, फैलाओ सब तरफ; आस-पड़ोस प्रेम को फैलाओ। कौन है पड़ोसी?
एक दिन उनके शिष्य ने पूछा कि आप किसको पड़ोसी कहते हैं?
तो जीसस ने कहा, एक आदमी निकलता था एक सुनसान रास्ते से। डाकुओं ने हमला किया, उसे लूट लिया, उसको छुरे मारे। उसको कई घावों से भर कर पास के गड्ढे में फेंक दिया। फिर उसके गांव का ही पादरी वहां से गुजरा, रबाई। उसने देखा इस आदमी को, यह इसके गांव का ही आदमी था, इसके ही मंदिर में प्रार्थना करने आता था--यह मंदिर में ही प्रार्थना करने जा रहा था--इसने देखा, घाव से भरे, कराहते। उस आदमी ने कहा कि मुझे बचाओ; मैं मर रहा हूं, मुझे उठाओ।
लेकिन उसने कहा कि अगर मैं तुम्हें उठाऊं तो मैं झंझट में पडूंगा; पुलिस पीछे पड़ेगी--क्या हुआ? कैसे हुआ? किसने मारा? तुम वहां क्या कर रहे थे? तुम्हारा कुछ हाथ तो नहीं है? फिर अभी मुझे मंदिर जाना है, मैं प्रार्थना करने जा रहा हूं। यह बेवक्त की झंझट कौन सिर ले! मंदिर की जगह पुलिसथाने जाना पड़े! फिर इसको अस्पताल ले जाओ, फिर मर-मरा जाए, फिर न मालूम कौन झंझट खड़ी हो।
उसने तो पीठ फेर ली और चल पड़ा। फिर दूसरे गांव का एक आदमी पास से गुजर रहा था, जिसने इस आदमी को कभी देखा भी नहीं। वह पास आया, उसने इसे अपने गधे पर बिठाया, इसके घाव धोए, इसको पास की धर्मशाला में ले गया, वहां भोजन कराया, वहां इसे लिटाया, चिकित्सक को बुलाया--और यह इस आदमी को जानता भी नहीं था!
तो जीसस ने पूछा अपने शिष्यों से, तुम किसको पड़ोसी कहते हो? वह पुरोहित पड़ोसी था, जो पड़ोस में ही रहता था, या यह अजनबी आदमी पड़ोसी है, जिसने इसे कभी देखा नहीं था?
शिष्यों ने कहा, स्वभावतः यह अजनबी आदमी पड़ोसी है।
तो जीसस ने कहा, जहां प्रेम है, वहां पड़ोस है। जितना बड़ा प्रेम है, उतना बड़ा पड़ोस है। अगर प्रेम बड़ा हो तो सारी पृथ्वी पड़ोस है। और प्रेम बड़ा हो तो सारा ब्रह्मांड पड़ोस है। प्रेम की सीमा पड़ोस की सीमा है। प्रेम यानी पड़ोस।

जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ती है, ज्ञान बढ़ता है, प्रेम संकुचित होता जाता है। तयोपक्षयाच्च। इसलिए ज्ञान भक्ति में सहयोगी तो होता ही नहीं, बाधा होता है।
और दूसरा अर्थ भी बहुमूल्य हैः भक्ति से ज्ञान का क्षय हो जाता है। और
जब भक्ति का जन्म होता है तो आदमी पुनः अज्ञानी हो जाता है; वह सब ज्ञान-व्यान को जला कर फेंक देता है, राख कर देता है। क्योंकि जब वह परमात्मा से थोड़ा सा जुड़ता है, तब उसे पता चलता है कि जो जाना सब कचरा था। वह तो सब झूठ था। वह तो सब व्यर्थ था। अब असली हीरे मिले। तो वे जो उसने कंकड़-पत्थर बीन रखे थे, फेंक देता है। जो उसने शास्त्रों का उच्छिष्ट इकट्ठा कर लिया था, अब क्यों करे? अब तो अपने ही शास्त्र का जन्म हो गया है। अब तो उपनिषद अपने भीतर ही उतर रहा है। अब क्यों किसी उपनिषद को बांधे फिरे? अब क्यों किसी कुरान की आयत को दोहराए? अपनी ही आयत गर्भ में आ गई है, पक रही है। अपने ही फल पकने लगे, अपने ही फूल खिलने लगे। तो जैसे ही भक्ति का जन्म होता है, ज्ञान का क्षय हो जाता है। भक्ति और ज्ञान ऐसे हैं जैसे रोशनी और अंधेरा। रोशनी है तो अंधेरा नहीं। अंधेरा है तो रोशनी नहीं। दोनों साथ नहीं होते हैं।
ज्ञानी भक्त नहीं होता--ज्ञानी यानी पंडित, ख्याल रखना--और भक्त ज्ञानी नहीं होता। भक्त तो निर्दोष हो जाता है, समस्त ज्ञान से मुक्त हो जाता है। भक्त तो पुनः अज्ञानी हो जाता है। क्योंकि परमात्मा अज्ञेय है; उसके सामने हम अज्ञानी की तरह ही खड़े हो सकते हैं, ज्ञानी की तरह नहीं।
ज्ञान का दावा अहंकार का दावा है।
इस सूत्र को खूब हृदय में सम्हाल कर रखना। यह कुंजी है।
तयोपक्षयाच्च।
"क्योंकि पूर्णरूप से भक्ति का उदय होते ही ज्ञान का नाश हो जाता है।"

तीर-तीर
थका शरीर लेकर चलता हूं
रुक जाता हूं शाम को

नाम का सहारा
काट देता है रातें
और फिर पौ फटते ही
उतर पड़ता हूं पानी में
वाणी में घोल कर विश्वास कि पहुंच रहा हूं ठांव पर

टेक पाऊंगा
किसी-किसी संध्या में
अपना माथा
अशरण-शरण तुम्हारे पांव पर नाम से रूप तक
रूप से नाम तक की यात्रा
चल रही है

ऐसा नहीं लगता
किसी दिन बंद होगी यह

लगता है रोज-रोज
अधिकाधिक छंद होगी यह!

बड़ा जीवन पड़ा है शेष अभी। जो तुमने जाना, वह तो कुछ भी नहीं है। बड़ा जीवन शेष पड़ा है अभी। जो तुमने जाना, वह तो मृत्यु है। अमृत तो अपरिचित पड़ा है अभी! बड़ी यात्रा करनी है। यह कुछ ऐसी यात्रा नहीं कि समाप्त होगी।

ऐसा नहीं लगता
किसी दिन बंद होगी यह
लगता है रोज-रोज
अधिकाधिक छंद होगी यह!
रोज-रोज नये छंद, नये गीत उमगेंगे। रोज-रोज ओंकार नये रूपों में प्रकट होगा। बढ़ो! ज्ञान से नहीं, कर्म से नहीं--प्रेम से!
ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा!
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 दूसरा प्रवचन

प्रीति को कामना से मुक्त करो

पहला प्रश्नः जीवन क्या है?
ऐसे प्रश्न सरल लगते हैं, सभी के मन में उठते हैं। पर ऐसे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। ऐसे प्रश्न वस्तुतः प्रश्न ही नहीं हैं, इसलिए उनका उत्तर नहीं है।
जीवन क्या है, इसका उत्तर तभी हो सकता है जब जीवन के अतिरिक्त कुछ और
भी हो। जीवन ही है, उसके अतिरिक्त कुछ और नहीं है। हम उत्तर किसी और के संदर्भ में दे सकते थे। लेकिन कोई और है नहीं, जीवन ही जीवन है। तो न तो कुछ लक्ष्य हो सकता है जीवन का, न कोई कारण हो सकता है जीवन का। कारण भी जीवन है और लक्ष्य भी जीवन है।
ऐसा समझो, तुमसे कोई पूछे, किस चीज पर ठहरे हो? तुम कहो, छत पर। और छत किस पर ठहरी है? तो तुम कहो, दीवालों पर। और दीवालें किस पर ठहरी हैं? तो तुम कहो, पृथ्वी पर। और पृथ्वी किस पर ठहरी है? तो तुम कहो, गुरुत्वाकर्षण पर। और ऐसा कोई पूछता चले, गुरुत्वाकर्षण किस पर ठहरा है? तो चांद-सूरज पर। और चांद-सूरज? तारों पर। और अंततः पूछे कि यह सब किस पर ठहरा है? तो प्रश्न तो ठीक लगता है, भाषा में ठीक जंचता है, लेकिन सब किसी पर कैसे ठहर सकेगा! सबमें तो वह भी आ गया है जिस पर ठहरा है। सबमें तो सब आ गया, बाहर कुछ बचा नहीं।
इसको ज्ञानियों ने अति प्रश्न कहा है। सब किसी पर नहीं ठहर सकता। इसलिए परमात्मा को स्वयंभू कहा है। अपने पर ही ठहरा है। अपने पर ही ठहरा है, इसका अर्थ होता है, किसी पर नहीं ठहरा है।
"जीवन क्या है?" तुम पूछते।
जीवन जीवन है। क्योंकि जीवन ही सब कुछ है। मेरे लिए जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है।
लेकिन प्रश्न पूछा है, जिज्ञासा उठी है, तो थोड़ी खोजबीन करें। अगर उत्तर देना ही हो, अगर उत्तर के बिना बेचैनी मालूम पड़ती हो, तो फिर जीवन को दो हिस्सों में तोड़ना पड़ेगा। जिन्होंने उत्तर दिए, उन्होंने जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लिया। एक को कहा यह जीवन और एक को कहा वह जीवन। यह जीवन माया, वह जीवन सत्य। इस जीवन का अर्थ फिर खोजा जा सकता है। इस जीवन का अर्थ हैः उस जीवन को खोजना। इस जीवन का प्रयोजन हैः उस जीवन को पाना। यह अवसर है। मगर तब जीवन को बांटना पड़ा। बांटो तो उत्तर मिल जाएगा।
मगर उत्तर थोड़ी दूर तक ही काम आएगा। फिर अगर कोई पूछे कि वह जीवन क्यों है--सत्य का, मोक्ष का, ब्रह्म का? फिर बात वहीं अटक जाएगी। वह जीवन बस है।
लेकिन यह विभाजन काम का है। कृत्रिम है, फिर भी काम का है। अपने भीतर
भी तुम इन दो धाराओं को थोड़ा पृथक-पृथक करके देख सकते हो। थोड़ी दूर तक सहारा मिलेगा। एक तो वह है जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, और एक वह है जो देखता है। दृश्य और द्रष्टा। ज्ञाता और ज्ञेय। जानने वाला और जाना जाने वाला। उसमें ही जीवन को खोजना जो जानने वाला है। अधिक लोग उसमें खोजते हैं जो दृश्य है--धन में खोजते, पद में खोजते। पद और धन दृश्य हैं। बाहर खोजते। बाहर जो भी है सब दृश्य है। उसमें खोजना जो द्रष्टा है, साक्षी है, तो तुम्हें परम जीवन की स्फुरणा मिलेगी।
उसी स्फुरणा में उत्तर है--मैं उत्तर नहीं दे सकूंगा। कोई उत्तर कभी नहीं दिया है। उत्तर है नहीं, मजबूरी है। देना चाहा है बहुतों ने, कभी किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया है। और जिन्होंने उत्तर सच में देने की चेष्टा की है, उन्होंने सिर्फ इशारे बताए हैं कि तुम अपना उत्तर कैसे खोज लो। उत्तर नहीं दिया, संकेत किए हैं--ऐसे चलो, तो उत्तर मिल जाएगा।
और उत्तर बाहर नहीं है, उत्तर तुम्हारे भीतर है। उत्तर है इस रूपांतरण में कि मेरी आंखें बाहर न देखें, भीतर देखें। मेरी आंखें दृश्य को न देखें, द्रष्टा को देखें। मैं अपने अंतरतम में खड़ा हो जाऊं, जहां कोई

तरंग नहीं उठती। वहीं उत्तर है, क्योंकि वहीं जीवन अपनी पूरी विभा में प्रकट होता है। वहीं जीवन के सारे फूल खिलते हैं। वहीं जीवन का नाद है-- ओंकार है।
इस छोटी सी कविता को समझो।

"आगे?"
ऊंघते-ऊंघते बस यूं ही किसी एक ने पूछा

"आगे भी पुल था, वही पुल था, वही पुल--
नीलिमी रात दहकती थी जहां नीचे, बहुत नीचे, जमीं पर
इस कदर नीचे कि झुक कर अगर आवाज भी दो
चूर हो जाए वह आवाज भी गिर कर जमीं पर
नीलिमी रात दहकती थी वहां नीचे, बहुत नीचे, जमीं पर और दोपहर का पारा था, बरसता था फलक से
मैं कई सदियां चला, चलता रहा, चलता रहा पुल पे मगर दूसरा कोई सिरा पुल का नजर आया न मुझको
आखिरशः बैठ गया थक कर, बस एक सांस की खातिर

पल को सुस्ता कर उठा
बस कि सोचा था उठूं
पांव को पुल से हटाया तो हटा पाया न पांव
हाथ से पांव छुड़ाया तो मेरा हाथ न छूटा
वह तिलिस्मी था कोई पुल कि मेरा जिस्म चिपकने सा लगा था और पुल के, उसी पुल के कई दांत से अब उगने लगे थे"

"ऊं" एक ने लंबी जम्हाई ली और कहा "झूठ"
"दूसरी, अच्छी सी, कोई कहानी हो तो सुनाओ"

मैंने कुछ सोच कर फिर एक कहानी थी शुरू कीः
"और शहजादा कई कांच के दरवाजों से गुजरा
पहले दरवाजे से दो पांव नजर आए परी के
नीलिमी हौज में डूबे हुए, दो गोरे कंवल से दूजे दरवाजे से एक हाथ नजर आया परी का संगेमरमर पे महकता हुआ इक फूल पड़ा था
तीजे दरवाजे से भी पीठ ही नजर आई परी की
चौथे दरवाजे से भी चेहरा नजर न आया उसका
और शहजादा कई कांच के दरवाजों से गुजरा
कोई दरवाजा मगर हौज की जानिब न खुला--"

"बाप रे, फिर?"--ऊंघने वालों ने अब जाग कर पूछा "सिर्फ इतना ही नजर आया कि वह सोनपरी
कितनी सदियों से उसी हौज पर यूं बैठी हुई है और शहजादा कई सदियों से उस शीशमहल में
हौज तक जाने का दरवाजा है जो ढूंढ रहा है
एक दरवाजा उसी हौज पे खुलता था--"
"मिला?"
बीच में चौंक कर यूं पूछा किसी ने
"हां मिला--"
"और शहजादा परी तक पहुंचा?"
अब के आवाज में उम्मीद थी, ताकीद भी थी "हां, वह पहुंचा तो मगर--"
"हां, मगर--"
"सब अंग थे उस हूर के बस चेहरा नहीं था"

"धत्!"--तिलमिला कर कहा एक ने, "सब झूठ"

जिंदगी, सच है कि, झूठ ही लगती अगर अफसाना न होती

जिंदगी, सच है कि, झूठ ही लगती अगर अफसाना न होती! वह जो दृश्य का जगत है, एक कहानी है, जो तुमने रची और जो तुमने तुमसे ही कही। एक नाटक है, जिसमें निर्देशक भी तुम, कथा-लेखक भी तुम, अभिनेता भी तुम, मंच भी तुम, मंच पर टंगे पर्दे भी तुम और दर्शक भी तुम। एक सपना है, जो तुम्हारी वासनाओं में उठा और धुएं की तरह जिसने तुम्हें घेर लिया। एक तो जिंदगी यह रही-- दुकान की, बाजार की, पत्नी-बेटे की, आकांक्षाओं की। संसार जिसे कहा है। और एक जिंदगी और भी है--वह जो भीतर बैठा देख रहा है। देखता है कि जवान था, अब बूढ़ा हुआ; देखता था कि तमन्नाएं थीं, अब तमन्नाएं न रहीं; देखता था कि बहुत दौड़ा और कहीं न पहुंचा; देखता था, देखता रहा है, सब आया, सब गया, जीवन की धारा बहती रही, बहती रही, लेकिन एक है कुछ भीतर जो नहीं बहता, जो ठहरा है, जो थिर है, जो अडिग है, वह साक्षी। एक जीवन वह है।
बाहर का जीवन भटकाएगा, भरमाएगा। उत्तर के आश्वासन देगा और उत्तर कभी आएगा नहीं। भीतर का जीवन ही उत्तर है।
तुम पूछते होः "जीवन क्या है?"
तुम्हें जानना होगा। तुम्हें अपने भीतर चलना होगा। मैं कोई उत्तर दूं, वह मेरा उत्तर होगा। शांडिल्य कोई उत्तर दें, वह शांडिल्य का उत्तर होगा। वह उन्होंने जाना, तुम्हारे लिए जानकारी होगी। और जानकारी ज्ञान में बाधा बन जाती है। जानकारी से कभी जानना नहीं निकलता। उधारी से कहीं जीवन निकला है!
बजाय तुम बाहर उत्तर खोजो, तुम अपने को भीतर समेटो। शास्त्र कहते हैं, जैसे कछुआ अपने को समेट लेता है भीतर, ऐसे तुम अपने को भीतर समेटो। तुम्हारी आंख भीतर खुले, और तुम्हारे कान भीतर सुनें, और तुम्हारे नासापुट भीतर सूंघें, और तुम्हारी जीभ भीतर स्वाद ले, और तुम्हारे हाथ भीतर टटोलें, और तुम्हारी पांचों इंद्रियां अंतर्मुखी हो जाएं। जब तुम्हारी पांचों इंद्रियां भीतर की तरफ चलती हैं, केंद्र की तरफ चलती हैं, तो एक दिन वह अहोभाग्य का क्षण निश्चित आता है जब तुम रोशन हो जाते हो। जब तुम्हारे भीतर रोशनी ही रोशनी होती है। और ऐसी रोशनी जो फिर कभी बुझती नहीं। ऐसी रोशनी जो बुझ ही नहीं सकती। क्योंकि वह रोशनी किसी तेल पर निर्भर नहीं--बिन बाती बिन तेल। अकारण है। वही जीवन का सार है। वही जीवन का "क्या" है।
उत्तरों में नहीं मिलेगा समाधान। समाधि में समाधान है।

दूसरा प्रश्नः शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ कहें।

जिनके भीतर से ऐसे अपूर्व सूत्रों का जन्म हुआ, उनके संबंध में कुछ जानने का मन स्वाभाविक है।
शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। किस ऋषि के संबंध में कुछ भी ज्ञात है? कोई लकीर नहीं छोड़ी, पदचिह्न नहीं छोड़े। अच्छा ही किया है। नहीं तो तुम्हारी आदतें व्यर्थ में उलझ जाने की हैं। शांडिल्य ऋषि कहां पैदा हुए, इससे क्या सार होगा? पूरब में पैदा हुए कि पश्चिम में, उत्तर में पैदा हुए कि दक्षिण में, क्या फर्क पड़ेगा? इस गांव में पैदा हुए कि उस गांव में, क्या फर्क पड़ेगा? शांडिल्य ऋषि के पिता कौन थे, उनका नाम क्या था, क्या फर्क पड़ेगा? अ ब स द, कोई भी पिता रहे हों। कितने दिन जीए-- साठ, कि सत्तर, कि अस्सी, कि सौ, कि डेढ़ सौ साल--क्या भेद पड़ता है? इतने लोग जी रहे हैं, सत्तर साल जीओ तो पानी में चला जाता है, सात सौ साल जीओ तो पानी में चला जाता है। सपना ही है, कितना लंबा देखा, इससे क्या भेद पड़ेगा? जागने पर पाओगे कि सपना लंबा था कि छोटा था, सब बराबर था, क्योंकि सपना सपना था। शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ भी पता नहीं है। बस यही सूत्र, भक्ति- सूत्र, इतनी ही सुगंध छोड़ गए हैं। मगर इतनी सुगंध काफी है। क्योंकि इन

सूत्रों के अनुसार अगर तुम अपनी आंखें खोलोगे तो तुम्हारे भीतर का ऋषि जो सोया है, जाग जाएगा। वही असली बात है। शांडिल्य के संबंध में जानने से क्या होगा? शांडिल्य को ही जान लो। और वह जानने का मार्ग तुम्हारे भीतर है।
इसलिए पूरब के किसी मनीषी के संबंध में कुछ भी पता नहीं। पश्चिम के लोग बहुत हैरान होते हैं। और उनका कहना ठीक ही है कि पूरब के लोगों को इतिहास लिखना नहीं आता। उनकी बात सच है। लेकिन पूरब की मनीषा को भी समझना चाहिए। पूरब के लोग इतना लिखने के आदी रहे हैं--सबसे पहले भाषाएं पूरब में जन्मीं, सबसे पहले किताबें पूरब में जन्मीं, सबसे पहले पूरब में लिखावट पैदा हुई, सबसे पुरानी किताबें पूरब के पास हैं--तो जिन्होंने वेद लिखे, उपनिषद लिखे, गीता लिखी, वे चाहते तो इतिहास न लिख सकते थे?
चाह कर नहीं लिखा। उनकी बात भी समझनी चाहिए। जान कर नहीं लिखा। जिन्होंने कहा संसार माया है, वे इतिहास लिखें तो कैसे लिखें? किस बात का इतिहास? बबूलों का इतिहास? इंद्रधनुषों का इतिहास? मृग-मरीचिकाओं का इतिहास? जो है ही नहीं, उसका इतिहास?
पश्चिम ने इतिहास लिखा, क्योंकि पश्चिम ने बाहर के जगत को सत्य माना है। इतिहास लिखने के पीछे बाहर के जगत को सत्य मानने की दृष्टि है। सत्य है, तो महत्वपूर्ण है। तुम सुबह उठ कर अपने सपने तो नहीं लिखते! मिनट दो मिनट भी याद नहीं रखते। जाग गए, बात खतम हो गई। सपना भी कोई लिखने की बात है! तुम डायरी में अपने सपने नहीं लिखते।
हालांकि पश्चिम में लोग सपने भी डायरी में लिखते हैं। जब बड़े सपने को मान लिया, तो छोटे सपने को भी मानना पड़ता है। और जिन्होंने बड़ा सपना ही इनकार कर दिया, वे छोटे सपने की क्या फिकर करें? सपने के भीतर सपना है! पूरब ने इतिहास नहीं लिखा, क्योंकि पूरब की दृष्टि यह है कि इन सब व्यर्थ की बातों को लिखने से क्या होगा? सार क्या है? प्रयोजन क्या है? सिर्फ बच्चों को सताओगे स्कूल में, कि तिथि-तारीख याद करते रहें, जिनका कोई मूल्य नहीं है। अब सिकंदर कब पैदा हुआ, इससे क्या लेना-देना? न भी हुआ हो तो अच्छा--न ही हुआ हो तो अच्छा। इस कूड़ा-कर्कट को क्यूं याद रखो? यह किस काम पड़ता है?
नहीं, पूरब ने पुराण लिखा, इतिहास नहीं लिखा। पुराण बड़ी और बात है। पश्चिम में पुराण जैसी कोई चीज है ही नहीं।
पुराण क्या है?
एक सिकंदर हुआ, दूसरा सिकंदर हुआ, तीसरा सिकंदर हुआ, सिकंदरों पर सिकंदर हुए। अब सबकी कहानी लिखने से क्या सार है? हमने सिकंदर की जो वृत्ति है, उसकी एक कहानी लिख ली। उस वृत्ति की प्रतीक-कहानी। एक आदमी धन के पीछे पागल हुआ, दूसरा आदमी धन के पीछे पागल हुआ, तीसरा आदमी धन के पीछे पागल हुआ, करोड़ों लोग धन के पीछे पागल हुए। अब सबका इतिहास लिखने की क्या जरूरत है? धन के पागलपन की बात हमने एक कहानी में निचोड़ कर ली। उसको हम पुराण कहते हैं। पुराण का मतलब हैः ऐसा कभी हुआ नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है चारों तरफ। उसमें से सार निचोड़ लिया है, संक्षिप्त निकाल लिया है, सूत्र बना लिया है। उस सूत्र को हमने लिखा है। अगर कोई खोजने जाए तो शायद वैसा ठीक-ठीक कभी न हुआ हो।
जैसे समझो, बुद्ध की प्रतिमा है; यह पुराण है, इतिहास नहीं। क्यों पुराण है? क्योंकि इसमें इस बात की फिकर नहीं की गई कि बुद्ध की नाक जैसी थी वैसी ही इस प्रतिमा में है या नहीं। इसकी भी फिकर नहीं की गई कि बुद्ध के बाल जैसे थे वैसे ही प्रतिमा में आए कि नहीं। इस बात की फिकर नहीं की गई कि बुद्ध का सीना जैसा था वैसा ही आया या नहीं। यह कोई फोटोग्राफ नहीं है। यह इतिहास नहीं है। फिर यह क्या है? यह समस्त बुद्धों की प्रतिमा है। जो भी जागा, वह किस तरह बैठता है, उसका सारसूत्र इसमें है। जो भी जागा, किस तरह चलता है, उसका सारसूत्र इसमें है। जो भी जागा, उसकी आंखें कैसी होती हैं; जो भी जागा, उसकी दृष्टि कैसी निर्मल होती है, उसके बैठने में भी कैसी मग्नता और शांति होती है, उसकी मौजूदगी में कैसा प्रसाद बरसता है--यह सारे बुद्धों की प्रतिमा है।

तुमने देखा जैन मंदिर में जाकर चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं, तुम भेद न कर सकोगे कि कौन किसकी है। सब एक जैसी हैं। भेद करने के लिए हर प्रतिमा के नीचे चिह्न बनाना पड़ा है। किसी का प्रतीक सिंह और किसी का कुछ, किसी का कुछ, वह प्रतीक बनाना पड़ा है, सिर्फ भेद करने के लिए, ताकि पता चले कि कौन किसकी है। नहीं तो मूर्तियां सब एक जैसी हैं।
क्या तुम सोचते हो चौबीस तीर्थंकर एक जैसे थे? उन सबकी ऊंचाई एक जैसी थी? नाक एक जैसी थी? बाल एक जैसे थे? कान एक जैसे थे? इस भूल में मत पड़ना। यहां दुनिया में दो आदमी एक जैसे होते कब हैं? कभी नहीं होते। तुम्हारे अंगूठे का चिह्न बस तुम्हारा ही है, दुनिया में किसी दूसरे के अंगूठे का चिह्न वैसा नहीं होता। न पहले कभी हुआ है, न आगे कभी होगा। हर आदमी यहां अनूठा है। तो चौबीस तीर्थंकर एक जैसे तुम पाओगे कहां? सबके कान इतने लंबे कि कंधा छू रहे हैं। इतने-इतने लंबे कान वाले चौबीस आदमी एक साथ पाओगे कहां?
और फिर मूढ़ हैं, जो इन मूर्तियों को इतिहास समझ लेते हैं। वे कहते हैं,
जब तक कान इतना लंबा न हो तब तक कोई आदमी तीर्थंकर है ही नहीं। अब कान महत्वपूर्ण हो गया। और प्रतीक किसी और ही बात का है। वह लंबा कान सिर्फ सूचक है, संकेत है। वह लंबा कान इस बात का सूचक है कि ये लोग श्रवण में कुशल थे। वही सुनते थे जो था, जैसा था। इन्होंने ओंकार का नाद सुना था, इस बात की खबर देने के लिए लंबा कान बनाया। यह जो नाद से भरा हुआ जगत है, इनको सुनाई पड़ गया था। इनकी बड़ी-बड़ी आंखें सिर्फ इस बात की खबर हैं कि इनकी दृष्टि बड़ी थी, गहरी थी, पारदर्शी थी। इनकी अडिग प्रतिमा, थिर-भाव, शून्य-भाव इस बात का प्रतीक है कि भीतर इनके सब डांवाडोलपन विदा हो गया था; थिर हो गए थे; कोई कंपन नहीं उठता था, निष्कंप हो गए थे।
एक बुद्ध की प्रतिमा में सारे बुद्धों की प्रतिमाएं हैं। और एक बुद्ध
की कहानी में सारे बुद्धों की कहानी है। और एक बुद्ध के वचनों में सारे बुद्धों के वचन हैं।
पश्चिम के पास ऐसी दृष्टि नहीं है। वे पूछते हैं इतिहास, हम लिखते हैं पुराण। शांडिल्य की हमने फिकर नहीं की। क्या सार है? असार में क्या सार है?
तुम पत्र लिखते हो अपनी प्रेयसी को, तो तुम पत्र के नीचे यह थोड़े ही लिखते हो कि पार्कर फाउंटेनपेन से लिखा गया। कि लिखते हो? लिखते हो तो पागल हो। तुमने पार्कर फाउंटेनपेन से लिखा, कि शेफर से लिखा, इससे क्या फर्क पड़ता है? लिखने वाला न तो पार्कर फाउंटेनपेन है, न शेफर फाउंटेनपेन है। फाउंटेनपेन ने तो केवल उपकरण का काम किया है।
शांडिल्य ऋषि तो उपकरण हैं, परमात्मा बोला। फाउंटेनपेन के संबंध में लिखो तो इतिहास होगा, भ्रांति होगी, भूल हो जाएगी। इसलिए हमने अच्छा ही किया कि ऋषियों के संबंध में कुछ भी नहीं बचाया; ताकि तुम क्षुद्र में न उलझ जाओ। नहीं तो तुम्हारा इस क्षुद्र में उलझ जाने का इतना गहरा भाव रहता है कि क्षुद्र में ही तुम उलझ जाते हो।
अब जैनों में श्वेतांबर हैं, दिगंबर हैं। वे लड़ते रहते हैं क्षुद्र बातों पर। ऐसी क्षुद्र बातों पर कि भरोसा ही न हो कि इन बातों पर भी कोई लड़ सकता है! कि महावीर की प्रतिमा आंख बंद किए हो कि खुली हुई हो। अब यह बात सच है कि प्रतिमा दोनों काम नहीं कर सकती। प्रतिमा है, अब आंख खोलना और बंद करना तो नहीं कर सकती। महावीर दोनों काम करते रहे होंगे; आंख खोलना और आंख बंद करना, दोनों ही करते रहे होंगे। आखिर जिंदा आदमी थे, तो आंख कभी खोलते भी होंगे, कभी बंद भी करते होंगे। ऐसा थोड़े ही कि आंख बंद किए सो बंद किए, या खोल ली तो खोले ही रहे। कोई पागल तो नहीं थे। प्रतिमा में मुश्किल है, क्योंकि प्रतिमा पत्थर है। अब प्रतिमा पलक नहीं झप सकती, तो प्रतिमा में या तो आंख खुली होगी या बंद होगी। मगर झंझट खड़ी हो जाती है इसी बात पर कि प्रतिमा आंख खुली बनाएं कि बंद बनाएं। लोग हैं जो कहते हैं, हम तो खुली आंख की ही पूजा करेंगे। और लोग हैं जो कहते हैं, हम तो बंद आंख की ही पूजा करेंगे। इस पर सिर फूट जाते हैं, अदालतों में मुकदमे चलते हैं, मंदिर तोड़ दिए जाते हैं। और ऐसा किसी एक धर्म में होता हो, ऐसा नहीं, सभी धर्मों में

होता है। क्षुद्र में उलझ जाते हैं हम। हम क्षुद्र के लिए बड़े उत्सुक हैं। हमें क्षुद्र चाहिए ही, ताकि हम जल्दी से मुट्ठी बांध लें। विराट तो हमारी पकड़ में नहीं आता। और विराट हमें डराता भी है।
अब शांडिल्य-सूत्रों को समझने से ज्यादा तुम्हारी चिंता इस बात की है
कि शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ पता चलना चाहिए। क्या फायदा? क्या करोगे? उससे कहीं भी तो कोई लाभ नहीं होगा तुम्हारी समाधि में, तुम्हारी भक्ति में। व्यर्थ को क्यों पूछना चाहते हो? कैसे कपड़े पहनते थे? पहनते थे कि नहीं पहनते थे? किस मकान में रहते थे? कैसा भोजन करते थे?
लेकिन हम क्यों पूछना चाहते हैं? हमारे भीतर यह प्रश्न क्यों उठता है? प्रश्न से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है--गीता ने पूछा है यह प्रश्न-- प्रश्न से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि गीता के मन में यह प्रश्न क्यों उठता है? सूत्र काफी नहीं हैं? सूत्र पर्याप्त नहीं हैं? सूत्रों में ही ऋषि को खोजो, सूत्रों से बाहर नहीं। सूत्रों में ही पकड़ो ऋषि को। सूत्रों में ही उनकी उपस्थिति है, क्योंकि ये उनके प्राण और उनकी प्रज्ञा हैं। यह उनका अनुभव है। यह उनकी जीवंत प्रतीति है। ये सूत्र ऐसे ही नहीं हैं कि किसी लेखक ने लिखे हैं। जिसने जीए हैं! यही तो भेद है ऋषि और कवि का।
कवि हम उसको कहते हैं जिसने जीया नहीं और गाया। ऋषि हम उसको कहते हैं जिसने जीया और गाया; जो जीया, वही गाया; जैसा जीया, वैसा ही गाया; जाना तो कहा; उसको ऋषि कहते हैं। बिना जाने कहा, उसको कवि कहते हैं। इसलिए कवि की कविता पढ़ो, तो बहुत सुंदर मालूम होगी। और अगर कभी भूल-चूक कवि से मिलना हो जाए, तो बड़ा चित्त में विषाद होगा। भरोसा ही न आएगा कि यही सज्जन! इतनी ऊंची कविता! इन पर प्रकट कैसे हुई इतनी ऊंची कविता! आकाश की बात है कविता में। और ये हो सकता है मिल जाएं तुम्हें कहीं चौरस्ते पर बैठे बीड़ी पीते, मक्खियां भिनभिना रही हों, कई दिन से नहाए न हों। तुम्हें भरोसा ही न आए कि कविता इन पर उतरती क्यों है? कविता को उतरने के लिए और कोई नहीं मिलता? इनको चुना है! इस गरीब आदमी को क्यों परेशान कर रही है कविता? तुम्हें भरोसा न आए। तुम शायद सोचो कि कहीं से नकल कर ली होगी, किसी की उधार चुरा ली होगी। इनकी शकल-सूरत ऐसी नहीं मालूम पड़ती कि कविता ने इन्हें वरा होगा। मगर अक्सर ऐसा होगा। कवि और कविता में कोई तालमेल नहीं होता। किसी क्षण में कवि पकड़ लेता है, जैसे बिजली कौंध गई।
ऋषि ऐसा है जैसे दिन का सूरज निकला--बिजली कौंध गई, ऐसा नहीं, किसी क्षण में नहीं--उसका अनुभव है, उसकी प्रतीति है, उसका साक्षात्कार है। शांडिल्य ऋषि हैं, और उन्हें अगर तुम्हें पकड़ना हो तो उनके सूत्रों में ही डुबकी लगा लेना। वे जैसा कहते हैं, उसको ही अगर तुम समझ गए, तो तुम पाओगे कि तुम शांडिल्य ऋषि को समझ गए। ऋषि का अनुभव तुम्हारे भीतर छिपे हुए प्रेम के प्रवाह में होगा। क्षुद्र को मत पकड़ो। और क्षुद्र की चिंता भी मत करो। क्षुद्र की चिंता तुम्हारे मन में उठी कि तुम विराट से वंचित होने लगे।
मगर हमारी ऐसी ही उत्सुकताएं हैं। हम मूल तो प्रश्न पूछते नहीं, हम गौण प्रश्न पूछते हैं। और कभी-कभी गौण के विवाद में उलझ जाते हैं। सारी दुनिया में तथाकथित धार्मिक लोग गौण के विवाद में उलझ गए हैं। मुसलमान सोचता है कि काबा की तरफ हाथ जोड़ कर प्रार्थना करूं तो ही पहुंचेगी। कोई सोचता है, काशी में स्नान करूं तो ही पहुंचूंगा। गौण में उलझ गए। प्रार्थना महत्वपूर्ण है, किस तरफ हाथ किए, क्या फर्क पड़ता है? परमात्मा सब ओर है। काबा ही काबा है। सब पत्थर काबा के पत्थर हैं। और सब जल गंगा है। मन चंगा तो कठौती में गंगा। वह नल की टोंटी से जो आती है, वह भी गंगा है, मन चंगा हो। रोग से भरे हुए मन को लेकर चले जाओगे, गंगा में भी स्नान कर आओगे, तो क्या होगा?
लेकिन हम क्षुद्र को पकड़ लेते हैं। प्रार्थना तो भूल जाती है, प्रार्थना की औपचारिकता याद रह जाती है। मंदिर तो हो आते हैं, लेकिन मंदिर का भाव भीतर है ही नहीं। और भाव हो तो मंदिर जाओ क्यों? जरूरत क्या है? जहां बैठे, वहां मंदिर है। जहां बैठ कर उसकी स्तुति उठी, वहां मंदिर है। जहां बैठ कर आंखें बंद कर लीं, उसके भाव में रसविभोर हुए, वहां मंदिर है।

यहां रोज ऐसा होता है। मैं जीसस पर बोलता हूं तो कोई ईसाई मुझसे आकर कहता है कि जो बातें आपने कहीं, ये गजब की हैं। मैं कृष्ण पर बोलता हूं तो हिंदू आकर कहता है कि ये बातें आपने बड़े गजब की कहीं। और उन दोनों मूढ़ों को इस बात का ख्याल ही नहीं कि जीसस हों कि कृष्ण, मैं वही बोलता हूं जो मुझे बोलना है। मैं बोलने वाला हूं, जीसस और कृष्ण तो खूंटियां हैं, जिन पर मुझे जो टांगना है वही टांगता हूं। मगर जीसस का नाम और ईसाई का हृदय गदगद हो जाता है--बस नाम से। मुझे जो कहना है वही कहना है। वही मैंने कृष्ण के नाम से भी कहा है--ठीक वही, शब्दशः वही। मैंने कबीर के नाम से भी कहा है--ठीक वही, अक्षरशः वही। वही मैंने बुद्ध के नाम से भी कहा है। लेकिन यह ईसाई तब बैठा सुनता रहा है, इसको कुछ खास भाव नहीं हुआ था। लेकिन जब जीसस का नाम लिया, बस तब गदगद हो गया। जीसस से इसके अहंकार का जोड़ है। किसी का जोड़ कबीर से है, और किसी का जोड़ महावीर से है। मगर तुम सब गौण से उलझ गए हो। नहीं तो तुम पाओगे, जो महावीर ने कहा है, वही बुद्ध ने कहा है, वही कृष्ण ने कहा है, वही मोहम्मद ने कहा है।
अगर तुम मूल को देखोगे तो तुम ये व्यर्थ की बातें भूल जाओगे। तुम न हिंदू रह जाओगे, न मुसलमान, न ईसाई। तुम सिर्फ आदमी हो जाओगे। और वही बात मूल्य की है। आदमी पाने बड़े कठिन हैं। हिंदू मिल जाते, ईसाई मिल जाते, बौद्ध मिल जाते, जैन मिल जाते--आदमी नहीं मिलता।
यूनान में एक बहुत बड़ा फकीर हुआ है, डायोजनीज। वह भरी दोपहरी में लालटेन लेकर घूमता था, जलती लालटेन, एथेंस की सड़कों पर। लोग उससे पूछते, तुम पागल तो नहीं हो गए? तुम क्या खोज रहे हो लालटेन लेकर? वह लोगों के चेहरे में लालटेन से देखता, वह कहता, मैं आदमी खोज रहा हूं। जिंदगी के अंत में जब डायोजनीज मर रहा था तो किसी ने उससे पूछा... वह अपनी लालटेन रखे पड़ा था... किसी ने उससे पूछा कि तुम जिंदगी भर दिन की भरी दोपहरी में लालटेन जला कर आदमी खोजते रहे, मिला? डायोजनीज ने आंखें खोलीं और कहा, आदमी तो नहीं मिला, लेकिन यही क्या कम है कि किसी ने मेरी लालटेन नहीं चुराई। धन्यवाद इसी का कि लालटेन बच गई। नहीं तो कई की नजर लालटेन पर लगी थी। आदमी तो मिलता ही नहीं था।
आदमी मिलना कठिन है, क्योंकि हर आदमी गौण में उलझ गया है।
तुम फिकर न करो, शांडिल्य हुए हों कि न हुए हों, ये सूत्र हो गए, यही बहुत है। ये किसने लिखे, क्या फर्क पड़ता है? किस कलम से उतरे, क्या फर्क पड़ता है? किस वाणी से बोले गए, क्या फर्क पड़ता है? बोलने वाला गोरा था कि काला था, जवान था कि बूढ़ा था, क्या फर्क पड़ता है? ये सूत्र इस बात की खबर देते हैं कि जिसने भी कहे, पहुंच गया था। जिसने कहे, जान कर कहे। ऋषि था। इन सूत्रों में तुम डुबकी लगाओ।

तीसरा प्रश्नः आपने कल श्रद्धा का महत्व कहा। लेकिन बुद्धि श्रद्धा करने में बाधा बनती है। वह आशंका करती है, प्रश्न उठाती है!

आशंका और प्रश्नों में अश्रद्धा है ही नहीं। आशंका और प्रश्न श्रद्धा
की तलाश हैं। बुद्धि बाधा नहीं बनती। बुद्धि तुम्हें साथ दे रही है। बुद्धि कहती है, जल्दी श्रद्धा मत कर लेना, नहीं तो कच्ची होगी। बुद्धि कहती है, पहले ठीक जांच-परख तो कर लो।
तुम बाजार मिट्टी का घड़ा खरीदने जाते हो--दो पैसे का घड़ा--तो सब तरफ से ठोंक-पीट कर लेते हो या नहीं? तुम यह तो नहीं कहते कि यह बुद्धि जो कह रही है जरा घड़े को ठोंक-पीट लो, यह दुश्मन है घड़े की। नहीं, घड़े की दुश्मन नहीं है। यह कह रही है, जब घड़ा लेने ही निकले हो, तो घड़ा जैसा घड़ा लेना; पानी भर सको, ऐसा घड़ा लेना; श्रद्धा करने निकले हो तो ऐसी श्रद्धा लेना कि परमात्मा को भर सको। ऐसा टूटा-फूटा घड़ा मत ले आना। कच्चा घड़ा मत ले आना कि पहली बरसात हो और घड़ा बह जाए। पानी आए और रुके न। छिद्र वाला घड़ा मत ले लेना।
वे तुम्हारे सारे प्रश्न घड़े को ठोंकने-पीटने के हैं। बुद्धि के दुश्मन मत बन जाओ। ऐसा मत सोच लो कि बुद्धि अनिवार्य रूप से श्रद्धा के

विरोध में है। नहीं, जरा भी नहीं। सिर्फ बुद्धिमान ही श्रद्धालु हो सकता है। बुद्धिहीन श्रद्धालु नहीं होता, सिर्फ विश्वासी होता है। और विश्वास और श्रद्धा में बड़ा भेद है।
विश्वास तो इस बात का संकेत है केवल कि इस आदमी को सोच-विचार की क्षमता नहीं है। विश्वास तो अज्ञान का प्रतीक है। जो मिला, सो मान लिया। जिसने जो कह दिया, सो मान लिया। न मानने के लिए, प्रश्न उठाने के लिए तो थोड़ी बुद्धि चाहिए, प्रखर बुद्धि चाहिए। बुद्धि सिर्फ तुमसे यह कह रही है--उठाओ प्रश्न, जिज्ञासाएं खड़ी करो, सोचो। और जब सारे प्रश्नों के उत्तर आ जाएं, और सारी शंकाएं-कुशंकाएं गिर जाएं, तब जो श्रद्धा का आविर्भाव होगा, वही सच है।
मैं तुम्हारे पक्ष में हूं। मैं तुमसे यह कहता ही नहीं कि तुम विश्वास कर लो। विश्वास ने ही तो मारा! विश्वास ही तो डुबाया है तुम्हें! विश्वास ने ही तो तुम्हें हिंदू-मुसलमान-ईसाई बना दिया है। मैं तुम्हें धार्मिक बनाना चाहता हूं। धार्मिक आदमी का अर्थ होता हैः खोजेगा; खोजी होगा; बेरहम खोजेगा। जरा भी अपने को बचाएगा नहीं, चाहे कितने ही कष्ट में पड़ना पड़े और चाहे कितनी ही पीड़ा से गुजरना पड़े और चाहे कितनी ही बेचैनी सहनी पड़े।
निश्चित ही, जब प्रश्न उठते हैं तो बेचैनी होती है, क्योंकि हर प्रश्न कांटा बन कर चुभ जाता है। और जब शंकाएं उठती हैं तो निश्चित ही सब समाधान खो जाते हैं, संताप पैदा होता है, भय पैदा होता है, पैर थरथराने लगते हैं, जमीन पैर के नीचे से खिसक जाती है। कोई फिकर न करो, यही सम्यक श्रद्धा को पाने का मार्ग है। पूछो, दिल खोल कर पूछो! समग्रता से पूछो! कंजूसी मत करना। अगर जरा भी एकाध प्रश्न तुमने बचा लिया, पूछा नहीं, तो वही प्रश्न तुम्हें डुबाएगा। वही तुम्हारी नाव में छेद रह जाएगा। और एक दफा सागर में उतर गए नाव लेकर--छेद वाली नाव--फिर बहुत पछताओगे। किनारे पर ही सारी तलाश कर लो, सब छेद खोज डालो, सारे छेद भर डालो। और जब तुम पाओ कि सब तरफ से बुद्धि निश्चिंत हो गई--बुद्धि कहती है कि हां, अब ठीक; बुद्धि बताती है झंडा कि अब चल पड़ो--जब बुद्धि आज्ञा दे दे, तभी श्रद्धा में जाना।
बुद्धि के मार्ग से जो श्रद्धा आती है, वही परिपक्व है। उसी से बुद्धों का जन्म होता है। जो श्रद्धा बुद्धि के विपरीत आती है, वह सिर्फ तुम्हें बुद्धू बनाती है, बुद्ध कभी भी नहीं बनाएगी। तो जल्दी क्या है? इतनी घबड़ाहट क्या है? खोजो! खोज में पीड़ा है। खोज आग है जो जलाती है, मगर निखारती भी है। हर प्रश्न जो उठता है, वह सम्यक है। उसका हल खोजो। दो ही होंगी संभावनाएं--या तो हल मिल जाएगा, प्रश्न शांत हो जाएगा। या खोजते- खोजते पता चलेगा कि यह प्रश्न प्रश्न ही नहीं है, इसमें बुनियादी भूल है, इसका उत्तर नहीं हो सकता।
जैसे कोई आदमी पूछे कि हरे रंग की सुगंध क्या है? प्रश्न जैसा लगता है, मगर है नहीं। अब रंग का सुगंध से क्या लेना-देना? हरे रंग में कोई भी सुगंध हो सकती है, और निर्गंध भी हो सकता है। हरा रंग और सुगंध का कोई संयोग नहीं है। अब कोई पूछे, हरे रंग की सुगंध क्या है? तो भाषा में तो प्रश्न बिल्कुल ही ठीक मालूम पड़ता है, लेकिन अस्तित्व में गलत है।
मगर यह भी मैं कहूंगा--किसी पर भरोसा करके मत मान लेना। क्योंकि पता नहीं वह आदमी तुम्हें धोखा देना चाहता हो। यहां बहुत धोखेबाज हैं। या हो सकता है वह आदमी तुम्हें धोखा न देना चाहता हो, खुद धोखे में पड़ गया हो। क्योंकि यहां स्वयं को धोखा देने वाले लोग भी हैं।

खोजो! जिन प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे, वे प्रश्न गिर गए, उतने तुम निर्भार हुए। और जिन प्रश्नों के उत्तर अंत तक न मिलेंगे, उनमें भी खोजते- खोजते तुम्हें यह अनुभव समझ में आ जाएगा कि ये प्रश्न प्रश्न ही नहीं हैं। जो प्रश्न प्रश्न है, उसका उत्तर निश्चित मिलेगा। और जो प्रश्न प्रश्न नहीं है, उसके संबंध में दृष्टि जागेगी कि यह प्रश्न ही नहीं है, यह व्यर्थ का प्रश्न है, इसका उत्तर हो ही नहीं सकता, मैं नाहक खोज रहा हूं। दोनों

हालतों में प्रश्न से तुम निर्भार होते जाओगे। एक ऐसी घड़ी आती चेतना की, जब कोई प्रश्न नहीं रह जाता। उस निष्प्रश्न दशा में श्रद्धा का जन्म है। तुम पूछतेः "आपने कल श्रद्धा का महत्व कहा, लेकिन बुद्धि श्रद्धा करने में बाधा बनती है।"
नहीं, बुद्धि कभी बाधा नहीं बनती। तुम जल्दी श्रद्धा करना चाहते हो, तुम कच्ची श्रद्धा करना चाहते हो, इसलिए तुम बुद्धि का विरोध कर रहे हो। तुम गलत हो, बुद्धि गलत नहीं है। तुम उधार श्रद्धा करना चाहते हो। तुम कीमत नहीं चुकाना चाहते श्रद्धा की। तुम कष्ट नहीं झेलना चाहते श्रद्धा को पाने में। और हर चीज के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। और श्रद्धा तो इतनी बड़ी संपदा है, उसके लिए कीमत न चुकाओगे तो कैसे मिलेगी? तुम चाहते हो--कोई कह दे और हम मान लें। कोई कह दे और हम मान लें। हमें कुछ खोज-बीन न करनी पड़े। हमें ये लंबे रास्ते तय न करने पड़ें। हमें ये पहाड़ी चढ़ाइयां पूरी न करनी पड़ें। हमें ये सागर न लांघने पड़ें। हम यहीं के यहीं बैठे रहें। कोई कह दे, हम मान लें। बुद्धि इसमें बाधा डालती है। बुद्धि श्रद्धा में बाधा नहीं डालती, बुद्धि तुम्हारी इस बेईमानी में बाधा डालती है। यह तो तुम सस्ती और जो मुफ्त श्रद्धा चाहते हो, उसमें बाधा डालती है। और अच्छा है कि बाधा डालती है। बुद्धि तुम्हें चैन न लेने देगी। ऐसी मुफ्त ओढ़ ली गई श्रद्धाएं बुद्धि उखाड़ कर फेंक देगी। बुद्धि परमात्मा की सेवा में संलग्न है। तुम्हारी सेवा में संलग्न नहीं है। नहीं तो तुम तो किसी भी घूरे पर बैठ जाना चाहते हो आंख बंद करके और सोचना चाहते हो, यही महल है, आ गया महल--क्योंकि चलने से बचना है। अगर कहो कि महल नहीं आया, तो चलना पड़ता है। अगर कहो कि यह सत्य नहीं है, तो फिर सत्य खोजना पड़ता है। तुम तो किसी भी चीज को पकड़ लेना चाहते हो। तुम तो ऐसे हो, जैसे डूबते को तिनके का सहारा-- तिनका ही पकड़ लेता है। कागज की नाव में ही बैठ जाते हो--नाव नाम मिल गया, बस पर्याप्त है! बुद्धि कहती है, जरा सम्हलो! जरा होश सम्हालो! यह कागज की नाव है, डुबकी खा जाओगे। अभी कम से कम किनारे पर हो--इस किनारे पर ही सही, कम से कम किनारे पर हो। उस किनारे पर पहुंचना हो तो कोई ठीक, सम्यक नाव खोजो। ये कागज की नावों से नहीं पहुंच पाओगे।
तुम्हारे पिता ने कह दिया कि मान लो और तुमने मान लिया--यह कागज की नाव है। न तुम्हारे पिता को पता है, उनके पिता ने उनसे कह दिया था। उनको भी पता नहीं था। ऐसी उधारी चल रही है। तुम जिंदगी को इस तरह जी सकते हो? तुम्हारे पिता ने कह दिया कि बेटा, मैंने भोजन कर लिया, अब तुझे क्या जरूरत है, तू मान ले कि पेट भर गया। तो तुम मानते नहीं, तुम कहते, पिताजी, आपका भर गया होगा, मेरा तो भरना चाहिए। मैं भोजन करूंगा तब मेरा भरेगा, आपके भरने से मेरा नहीं भरता। मैं अपनी तृप्ति चाहता हूं। मैं भी हूं।
लेकिन पिता ने कहा कि ईश्वर है, मैं मानता हूं, तू भी मान ले। और तुमने मान लिया। असल में तुम ईश्वर को खोजने से बचना चाहते हो। तुम चालबाजी कर रहे हो। तुम कहते हो, कौन झंझट में पड़े? तुम नास्तिक हो। तुम कहते हो कि मैंने ईश्वर को मान लिया, मगर तुम नास्तिक हो। क्योंकि तुम ईश्वर को पाने की झंझट में नहीं पड़ना चाहते--यही तो नास्तिकता है। तुम से तो वह नास्तिक बेहतर है जो कहता है--मैं ईश्वर इस तरह नहीं मानूंगा, जब तक देख नहीं लूंगा। वह कम से कम तुमसे ज्यादा झंझट ले रहा है; परेशानी ले रहा है, चिंता ले रहा है। उसकी रातों में बेचैनी होगी, कई बार जाग आएगा, डरेगा, घबड़ाएगा; बुढ़ापा पास आएगा तो सोचेगा--अब मान लेना चाहिए, अब मौत करीब आती है, कहीं हो ही न! कहीं ऐसा न हो कि मर कर और उसके सामने खड़ा होना पड़े और वह पूछे कि कहो जनाब, मानते नहीं थे, अब बोलो? कभी पूजा नहीं की, अब जाओ नरक!
बुढ़ापा करीब आता है तो नास्तिक भी सोचने लगता हैः अब मान ही लो, हर्ज क्या है? बिगड़ेगा क्या? यही समझो कि कुछ समय पूजा-पत्री में खराब हुआ, और क्या बिगड़ने वाला है? हुआ तो काम आ जाएगा और नहीं हुआ तो अपना खोया क्या? वह सम्हाल रहा है। वह व्यवसाय कर रहा है। उससे तो नास्तिक कहीं ज्यादा ईमानदार है! वह कहता है, ठीक है, जो होगा होगा, मगर जब तक मैं अनुभव न कर लूं, कैसे मानूं?

मैं नास्तिक का विरोधी नहीं हूं। मेरी तो दृष्टि यही है कि परम आस्तिकता नास्तिकता के मार्ग से ही आती है। मैं तो नास्तिकता को आस्तिकता का विरोध नहीं मानता, सीढ़ी मानता हूं। झूठा आस्तिक कभी आस्तिक नहीं हो पाता, सच्चा नास्तिक निश्चित ही आस्तिक हो जाता है।
अब तुम कहते हो कि बुद्धि बाधा डाल रही है!
बुद्धि बाधा डाल रही है, तुम जल्दी से पकड़ लेना चाहते हो। बुद्धि की बड़ी कृपा है तुम पर! उसके प्रश्नों को सुनो, उसकी शंकाओं पर विचार करो। वह जो तुम्हारे भीतर बवंडर उठाती है, उन बवंडरों से गुजरो। वह जो तूफान उठाती है, उनसे गुजरना होगा। वे तुम्हारी परीक्षाएं हैं, उनसे कसौटी है। उनसे गुजर कर ही तुम निखरोगे, उनसे गुजर कर ही तुम किसी दिन सम्यक श्रद्धा को उपलब्ध होओगे। विश्वास तो झूठे हैं। विश्वास पर विश्वास मत कर लेना। बहुत लोगों ने अपनी बुद्धि को मौका नहीं दिया है। बुद्धि का तत्व परमात्म-तत्व है। जो तुम्हारे भीतर प्रश्न पूछ रहा है, वह भी परमात्मा है। बहुत लोग बुद्धि को अवसर ही नहीं देते। उसको दबा कर रखते हैं, उसको उभरने नहीं देते। इसीलिए तो अधिक लोग पंगु रह जाते हैं--पक्षाघात, अप्रौढ़ रह जाते हैं, बचकाने रह जाते हैं। उनके जीवन में परिपक्वता नहीं आती।
मैं सभी प्रश्नों के पक्ष में हूं। या तो प्रश्न सच्चे होंगे तो उत्तर मिल जाएंगे, या प्रश्न झूठे होंगे तो उनका झूठ दिखाई पड़ जाएगा। दोनों हालत में लाभ है। मगर चलो बुद्धि के साथ। श्रद्धा बुद्धि का अंतिम शिखर है--बुद्धि ही लाती है। बुद्धिमान ही श्रद्धा तक पहुंचते हैं।
एक जगह नाटक हो रहा था। उस नाटक का एक पात्र एक गधा भी था। गधे को अभिनय करता देखने के लिए सैकड़ों लोग आए। नाटक निहायत घटिया और बोर था। अंत में निर्देशक ने गधे को मंच पर बुलाया। गधे ने आकर निर्देशक को एक दुलत्ती मारी और चला गया।
एक प्रसिद्ध आलोचक ने बगल में बैठे एक मित्र से कहा, यार, गधा न केवल
एक अच्छा कलाकार ही था, एक सुलझा हुआ समीक्षक भी था।
बुद्धि की आलोचना को समझो। बुद्धि की समीक्षा को समझो। बुद्धि बहुत बार दुलत्तियां मारती है। और उनसे चोट भी होती है और पीड़ा भी होती है। मगर बिना पीड़ा के कौन पका है? बिना चोट के कौन निखरा है? आग से गुजरे बिना सोना कुंदन नहीं बनता है। तुम भी नहीं बनोगे। सस्ती श्रद्धा नहीं, कठिनाइयों से गुजर कर पाई गई श्रद्धा ही शरण है।

चौथा प्रश्नः प्रीति और कामना के बीच क्या कुछ संबंध है?

प्रीति तो शुद्ध भाव-दशा है। प्रीति यानी परमात्मा। वही जीसस ने कहा हैः प्रीति अर्थात परमात्मा। प्रीति तो शुद्ध दशा है। जैसे प्रकाश जले-- शुद्ध--किसी चीज पर न पड़े, ऐसी प्रीति है। फिर प्रीति जब किसी पर पड़ती है, किसी विषय पर पड़ती है, तो उसके रूप बनने शुरू हो जाते हैं। जैसे जल को हम किसी बर्तन में रख देते हैं तो बर्तन का आकार ले लेता है। ऐसी ही शुद्ध प्रीति जब किसी पात्र में गिरती है, तो पात्र का आकार ले लेती है। अगर पत्नी से हो तो प्रेम; अगर बेटे से हो तो स्नेह; अगर गुरु से हो तो श्रद्धा। मगर ये सब हैं प्रीति के ही रूप। और सभी के भीतर एक ही ऊर्जा आंदोलित हो रही है। लेकिन जिस विषय पर पड़ती है, उस विषय की छाया भी पड़ने लगती है।
तो समझना, तुमने पूछा हैः प्रीति और कामना के बीच क्या कुछ संबंध है? प्रेम में कामना बहुत ज्यादा है। पति-पत्नी का प्रेम है, उसमें कामना बड़ी मात्रा में है। स्नेह में उतनी बड़ी मात्रा में नहीं है, लेकिन थोड़ी है। अपने बेटे से, अपनी बेटी से जो प्रेम है, जो लगाव है, उसमें भी आकांक्षा छिपी है--कल बेटा बड़ा होगा, जो महत्वाकांक्षाएं मैं पूरी नहीं कर पाया, यह पूरी करेगा। बेटे के कंधे पर बंदूक रख कर चलाने की इच्छा किस बाप की नहीं है? मैं धन नहीं कमा पाया, कमाना चाहता था, बेटा कमाएगा। मैं मर जाऊंगा, लेकिन बेटा मेरे नाम को बचा रखेगा।
इसीलिए तो लोग सदियों से बेटे के लिए दीवाने रहे हैं। बेटी पैदा होती
है तो इतने प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि उससे नाम नहीं चलेगा। बेटा पैदा

होता है, उससे नाम चलेगा। और नाम चलाने की आकांक्षा कामना है, अहंकार की यात्रा है--मेरा नाम रहना चाहिए! जैसे तुम्हारा नाम न रहने से दुनिया का कुछ बिगड़ जाएगा। तुम रहो कि न रहो, दुनिया का कुछ बिगड़ता नहीं। तुम्हारे नाम का मूल्य क्या है? लेकिन लोग कहते हैं--नहीं, चला आया, चलता रहे! एक तरह की परोक्ष अमरता की आकांक्षा है कि पता नहीं हम तो बचे, न बचे, लेकिन कुछ तो बचेगा--हमारा अंश सही, हमारा बेटा सही, है तो हमारा खून। फिर इसके बेटे होंगे, इसी बहाने जीएंगे। मगर जीएंगे। ऐसी जीवेषणा है।
तो कामना तो है ही। पति-पत्नी जैसी प्रगाढ़ वासना जैसी नहीं है, मगर फिर भी महत्वाकांक्षा है। उससे भी कम रह जाती है गुरु के साथ जो श्रद्धा का संबंध है, उसमें। और भी कम हो गई। पर फिर भी है, क्योंकि गुरु से भी कुछ पाने की आकांक्षा है--मोक्ष, ध्यान, समाधि--कुछ पाने की आकांक्षा है। मगर शुद्ध होती जा रही है, कम होती जा रही है। पति-पत्नी के प्रेम में सर्वाधिक, पुत्र-पुत्रियों के प्रेम में उससे कम, श्रद्धा में बहुत न्यून, एक प्रतिशत रही जैसे। पति-पत्नी के प्रेम में निन्यानबे प्रतिशत थी। फिर जब एक प्रतिशत भी शून्य हो जाता है, तो श्रद्धा का भी अतिक्रमण हो गया--तब भक्ति। भक्ति में कामना जरा भी नहीं रहती।
अगर भक्ति में कामना रहे, तो भक्ति नहीं है। अगर तुमने परमात्मा से कुछ मांगा, तो चूक गए--कुछ भी मांगा तो चूक गए। तुमने कहा कि मेरी पत्नी बीमार है, ठीक हो जाए; कि मेरे बेटे को नौकरी नहीं लगती, नौकरी लग जाए; कि तुम चूक गए--यह प्रार्थना न रही, यह वासना हो गई। प्रार्थना तो तभी है जब कोई भी मांग न हो, कोई अपेक्षा न हो। प्रार्थना शुद्ध धन्यवाद है, मांग का सवाल ही नहीं है। जो दिया, वह इतना ज्यादा है कि हम अनुगृहीत हैं। जो दिया, वह मेरी पात्रता से ज्यादा है--ऐसी कृतज्ञता का नाम भक्ति है। भक्ति सौ प्रतिशत प्रीति है। जरा भी धुआं नहीं रहा।
आग तुम जलाते हो, लकड़ी तुम जलाते हो। तो तुमने देखा, अलग-अलग लकड़ियों
से अलग-अलग धुआं उठता है। मगर तुमने कारण देखा? कारण होता हैः जो लकड़ी जितनी गीली होती है, उतना धुआं उठता है। अगर लकड़ी बिल्कुल गीली न हो, आर्द्रता हो ही न लकड़ी में, तो धुआं बिल्कुल नहीं उठेगा। धुआं लकड़ी से नहीं उठता, लकड़ी में छिपे पानी से उठता है। तो गीली लकड़ी जलाओ तो बहुत धुआं उठता है।
पति-पत्नी के बीच गीली लकड़ी जलती है। पिता-बेटे के बीच लकड़ी थोड़ी सूखी है, मगर अभी भी धुआं उठता है। गुरु-शिष्य के बीच करीब-करीब लकड़ी सूखी है, जिनके पास देखने को आंखें हैं उनको ही धुआं दिखाई पड़ेगा, नहीं तो दिखाई भी नहीं पड़ेगा, अगर आंख थोड़ी कमजोर है और चश्मा लगा है तो दिखाई नहीं पड़ेगा-- एक प्रतिशत बचा है, निन्यानबे प्रतिशत सूखापन है। और जब परमात्मा और तुम्हारे बीच प्रीति जलती है तो धुआं उठता ही नहीं--निर्धूम अग्नि होती है।
इस परम स्थिति के दो रूप हो सकते हैं। एक का नाम ध्यान, एक का नाम भक्ति। अगर यह परम प्रीति की दशा, निर्धूम दशा परमात्मा की तरफ उन्मुख हो, समग्र के प्रति उन्मुख हो, तो भक्ति इसका नाम है। और अगर यह किसी के प्रति उन्मुख न हो, अंतर्मुखी हो, अपने में ही गिर रही हो--यह प्रीति का झरना स्वयं में ही गिर रहा हो, कहीं न जा रहा हो; इसकी कोई दिशा न हो, तो ध्यान। इन दो ही मार्गों से आदमी ने पाया है। बुद्ध ने ध्यान से, मीरा ने भक्ति से। दोनों की शुद्ध दशाएं हैं। बुद्ध की प्रीति अपने ही भीतर उमगती है-- लबालब--झील बन गई है; मीरा की भक्ति नाचती है और सागर की तरफ चलती है--सरिता बन गई है। पर दोनों ही हालत में प्रीति शुद्ध हो गई है।

क्या तुम पूर्व हो
मुझे
सूरज दोगे?

क्या तुम अपूर्व हो
मुझे

शरण में लोगे?

क्या तुम उत्तर हो
मुझे तुममें से
समाधान मिलेगा?

क्या दक्षिण-पवन हो तुम
तुममें से मुझे
मलय-गान मिलेगा?

भक्त परमात्मा को सब तरफ देखता--पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण; ऊपर, नीचे; सब दिशाओं में, सब आयामों में। भक्त भगवान से घिरा होता है। भक्त स्वयं तो मिट गया होता है, भगवान ही बचता है। यह प्रीति की एक दशा।
ध्यानी के लिए भगवान होता ही नहीं। प्रीति की समग्रता इतनी गहरी हो
गई होती है कि कोई पर नहीं बचता, परमात्मा कैसे बचेगा? कोई पर नहीं बचता, स्व ही होता है। उस स्व की परम स्थिति में भी मुक्ति है। दोनों हालत में एक घटना घट जाती है। भक्त शून्य हो जाता है--अपने तरफ--और परमात्मा पूर्ण हो जाता है; और ध्यानी अपने में पूर्ण हो जाता है, परमात्मा शून्य हो जाता है। पूर्ण और शून्य का मिलन हो जाता है--दो ढंग से। और जहां पूर्ण और शून्य का मिलन है, वहीं मुक्ति है, वहीं मोक्ष है। सब तुम पर निर्भर है कि तुम्हारा प्रेम कहां उलझा है, किससे लगा है।
मैंने सुना, एक सज्जन ने एक बार कव्वाली आयोजित करवाई। जो कव्वाल था,
एक सूफी मस्त फकीर था। स्त्रियों के बैठने के लिए पर्दे के पीछे अलग प्रबंध था। उक्त महाशय की पत्नी और अन्य महिलाएं पर्दे के पीछे बैठी कव्वाली सुन रही थीं। कव्वाल तो फकीर था, मस्त फकीर था, वह अपनी मस्ती में आकर बार-बार एक ही मिसरे की रट लगाने लगा--पर्दे के पीछे कौन है? अरे, पर्दे के पीछे कौन है? इस नीले पर्दे के पीछे कौन है?
अब वह तो आकाश की बात कर रहा है--नीला पर्दा--इस पर्दे के पीछे कौन है?
और जो उसको परमात्मा की याद आ गई तो धुन बंध गई, वह कहने लगा--अरे, इस पर्दे के पीछे कौन है? नीले पर्दे के पीछे कौन है? संयोगवश वह पर्दा भी नीला था, जिसके पीछे स्त्रियां बैठी थीं। जब कव्वाल ने दस-बारह बार यही मिसरा दोहराया, तो वे महाशय बिगड़ पड़े जिन्होंने कव्वाली आयोजित करवाई थी, गरज कर बोलेः अरे कमबख्त, तेरा ध्यान बस पर्दे के ही पीछे लगा हुआ है! तेरी मां- बहनें हैं पर्दे के पीछे, और कौन है!
अपनी-अपनी दृष्टि है।
सूफी फकीर उस विराट पर्दे की बात कर रहा है जो आकाश है, और उसके पीछे कौन है उसकी बात कर रहा है। सूफी फकीर मस्ती की बात कर रहा है, भक्ति की बात कर रहा है। मगर इस आदमी को बेचैनी हो रही है। इसको न तो परमात्मा का कोई बोध है, न आकाश की कोई स्मृति है; न इस सूफी की मस्ती का कुछ अनुभव है। और जब यह ज्यादा मस्त होने लगा और जब ज्यादा दोहराने लगा तो उसकी बेचैनी बढ़ने लगी, उसने कहा, यह तो हद हो गई, यह तो बदतमीज मालूम होता है! यह भी कोई बात उठाने की है कि पर्दे के पीछे कौन है! तेरी मां-बहनें हैं!
तुम्हारा प्रीति का विषय क्या है, बस उतना ही तुम समझ पाओगे। तुम्हारी जो प्रीति की धारा है, जिस तरफ जा रही है, उतना ही तुम समझ पाओगे। इसलिए अक्सर ऐसा हो गया है कि भक्तों के वचनों को बहुत गलत समझा गया है। फ्रायड और उसके अनुयायी तो समझते हैं कि यह भक्तों की वाणी सब कामवासना का ही विक्षिप्त रूप है--पर्दे के पीछे कौन है? अरे! नीले पर्दे के पीछे कौन है? फ्रायड समझता है कि यह सब स्त्रियों की ही बातें हो रही हैं। तुम्हारी मां-बहनें हैं, और कौन है!
तुम उतना ही समझ सकते हो जितनी तुम्हारी प्रीति है, जहां तुम्हारी प्रीति है। प्रीति को मुक्त करो। अगर पति-पत्नी वाली प्रीति है, तो थोड़ा वात्सल्य को जगाओ, थोड़ा स्नेह को जगाओ। अगर स्नेह जग गया है, तो थोड़ी श्रद्धा जगाओ। अगर श्रद्धा जग गई है, तो भक्ति में छलांग लगाओ।

बंद शीशों के परे देख दरीचों के उधर
सब्ज पेड़ों पे घनी शाखों पे फूलों पे वहां कैसे चुपचाप बरसता है मुसलसल पानी

कितनी आवाजें हैं, ये लोग हैं, बातें हैं मगर
जेहन के पीछे किसी और ही सतह पे कहीं
जैसे चुपचाप बरसता है तसव्वुर तेरा

सब तरफ वही बरस रहा है।
जैसे चुपचाप बरसता है तसव्वुर तेरा
देखने की आंख चाहिए। प्रीति को कामना से मुक्त करो! कामना के कारण ही देखने की आंख नहीं मिलती; कामना अंधा बनाती है; कामना अंधी है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
तीसरा प्रवचन

भक्ति परमात्मा की किरण है

सूत्र

द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः।। 6।।
नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्।। 7।।
अत एव फलानन्त्यम्।। 8।।
तद्वतःप्रपत्तिशब्दाच्च नज्ञानमितरप्रपत्तिवत्।। 9।।
सा मुख्येतरापेक्षितत्वात्।। 10।।

मनुष्य है एक द्वंद्व--प्रकाश और अंधकार का, प्रेम और घृणा का। यह द्वंद्व अनेक सतहों पर प्रकट होता है। यह द्वंद्व मनुष्य के कण-कण में छिपा है। राम और रावण प्रतिपल संघर्ष में रत हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुरुक्षेत्र में ही खड़ा है। महाभारत कभी हुआ और समाप्त हो गया, ऐसा नहीं, जारी है। हर नये बच्चे के साथ फिर पैदा होता है। इसलिए कुरुक्षेत्र को गीता में धर्मक्षेत्र कहा है, क्योंकि वहां निर्णय होना है धर्म और अधर्म का। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निर्णय होना है धर्म और अधर्म का। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निर्णायक घटना घटने को है। इसीलिए तो इतनी चिंता है। इसीलिए तो आदमी बेचैन है। इसलिए आदमी को कहीं राहत नहीं। कुछ भी करे, राहत नहीं। क्योंकि भीतर कुछ उबल रहा है। भीतर सेनाएं बंटी खड़ी हैं। क्या होगा परिणाम, क्या होगी निष्पत्ति, इससे चिंता होती है।
और चिंता के बड़े कारण हैं। क्योंकि घृणा के पक्ष में बड़ी फौजें हैं। घृणा के पक्ष में बड़ी शक्तियां हैं। महाभारत में भी कृष्ण की सारी फौजें कौरवों के साथ थीं। केवल कृष्ण, निहत्थे कृष्ण पांडवों के साथ थे। वह बात बड़ी सूचक है। ऐसी ही हालत है। संसार की सारी शक्तियां अंधेरे के पक्ष में हैं। संसार की शक्तियां यानी परमात्मा की फौजें। परमात्मा भर तुम्हारे पक्ष में है, निहत्था। भरोसा नहीं आता कि जीत अपनी हो सकेगी। विश्वास नहीं बैठता कि निहत्थे परमात्मा के साथ विजय हो सकेगी।
कृष्ण ही अर्जुन के सारथी थे, ऐसा नहीं, तुम्हारे रथ पर भी जो सारथी बन
कर बैठा है वह कृष्ण ही है। प्रत्येक के भीतर परमात्मा ही रथ को सम्हाल रहा है। लेकिन सामने विरोध में दिखाई पड़ती हैं बड़ी सेनाएं, बड़ा विराट आयोजन। अर्जुन घबड़ा गया था। हाथ-पैर थरथरा गए थे। गांडीव छूट गया था। पसीना-पसीना हो गया था। अगर तुम भी जीवन के युद्ध में पसीना-पसीना हो जाते हो, तो आश्चर्य नहीं। हार निश्चित मालूम पड़ती है, जीत असंभव आशा।
इस द्वंद्व में ठीक-ठीक पहचान लेना जरूरी है--कौन तुम्हारा मित्र है
और कौन तुम्हारा शत्रु है। यही महाभारत की प्रथम घड़ी में अर्जुन ने कृष्ण से कहा थाः मेरे रथ को युद्ध के बीच में ले चलो; ताकि मैं देख लूं--कौन मेरे साथ लड़ने आया है, कौन मेरे विपरीत लड़ने को खड़ा है? किससे मुझे लड़ना है? साफ-साफ समझ लूं कि कौन साथी-संगी है, कौन शत्रु है?
और युद्ध के मैदान पर जितनी आसान बात थी यह जान लेना, जीवन के मैदान पर इतनी आसान नहीं। वहां शत्रु-मित्र सम्मिलित खड़े हैं। वहां जहां प्रेम है, वहीं घृणा भी दबी हुई पड़ी है। जहां करुणा है, उसी के साथ क्रोध भी खड़ा है। सब मिश्रित है। कुरुक्षेत्र के उस युद्ध में तो चीजें साफ थीं, सेनाएं बंट गई थीं, बीच में रेखा थी--एक तरफ अपने लोग थे, दूसरी तरफ विरोधी लोग थे, बात साफ थी कि किसको मारना है, किसको बचाना है। लेकिन जीवन के युद्ध में बात इतनी साफ नहीं है, ज्यादा उलझन की है। तुम जिसको प्रेम करते हो, उसी को घृणा भी करते हो। जिसको चाहते हो और सोचते हो कि जरूरत पड़े तो जान दे दूं, किसी दिन उसी की जान लेने का मन भी होने लगता है। जिस पर करुणा बरसाते हो, कभी उसी पर क्रोध भी उबल पड़ता है। सब उलझा है। धागे एक-दूसरे में गुंथ गए हैं। जन्मों-जन्मों की गुत्थियां हैं। इस बात को ठीक से समझ कर आज के सूत्र समझे जा सकेंगे।

तुम्हारे भीतर अंधकार को अलग छांटना होगा, प्रकाश को अलग। वह जो उपनिषद के ऋषि ने परमात्मा से प्रार्थना की हैः हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल! तमसो मा ज्योतिर्गमय! उसी से शुरुआत होती है साधना की, कि मैं ठीक-ठीक जान लूं--कौन अपना, कौन अपना नहीं। किसकी जड़ों में पानी देना है और किसकी जड़ें उखाड़ कर फेंक देनी हैं।
बहुत बार भूल हो जाती है। तुम शत्रु को पोषण देते रहते हो। मित्र को जहर दे देते हो। कई बार मित्र शत्रु जैसा मालूम पड़ता है, क्योंकि कई बार मित्र सच और कठोर बातें कह देता है; और कई बार शत्रु चालबाजी कर जाता है, मीठी खुशामद करता है और मित्र जैसा लगता है।
ठीक स्पष्ट विभाजन हो जाए, तो यात्रा का बहुत काम सुगम हो जाता है। इस तरह विभाजन करो! प्रेम परमात्मा है, यही भक्ति का सार है। तो अगर परमात्मा को खोजना है, तो जो-जो तुम्हारे भीतर प्रेमपूर्ण है, उससे मैत्री करो। और जो-जो तुम्हारे भीतर द्वेषपूर्ण है, उससे अ-मैत्री करो।
ख्याल रखना, मैं कह रहा हूंः अ-मैत्री। जान कर, सोच कर। अ-मैत्री का अर्थ शत्रुता मत समझ लेना। इसीलिए अ-मैत्री कह रहा हूं, नहीं तो शत्रुता ही कहता। क्योंकि जिससे तुमने शत्रुता बनाई, उससे भी एक तरह की मैत्री बन जाती है, संबंध बन जाता है। शत्रुता संबंध है। उससे नाता-रिश्ता हो जाता है। उसके और तुम्हारे बीच धागे जुड़ जाते हैं। इसलिए जान कर अ-मैत्री शब्द का उपयोग कर रहा हूं। अ-मैत्री का अर्थ इतना ही है--उसकी उपेक्षा करो। उस पर ध्यान मत दो। पड़ा रहने दो एक कोने में रहे तो, उसमें रस न लो।
रस लो प्रेम में। उंडेलो अपनी सारी जीवन-ऊर्जा प्रेम के पौधे पर। प्रेम का बिरवा ही तुम्हारी तुलसी हो। उसी पर चढ़ाओ दीप। उसी पर समर्पित करो अपना जीवन। उसी की जड़ों को पुष्ट करो। इतना सा भी ध्यान मत दो घृणा पर, द्वेष पर, क्रोध पर--देखो भी मत, क्योंकि देखने में भी ऊर्जा प्रवाहित होती है।
तुमने ख्याल किया, ध्यान ऊर्जा है। तुम जिस पर ध्यान देते हो, उसी को ऊर्जा मिलने लगती है। इसलिए तो छोटे बच्चे तुम्हारे ध्यान के लिए इतनी आकांक्षा करते हैं। तुमने कह रखा है बच्चों को कि घर में मेहमान आ रहे हैं, शोरगुल मत करना, शांत बैठना, एक कोने में बैठ कर खेलते रहना। मेहमान नहीं आए थे तो बच्चे एक कोने में खेल ही रहे थे, तुमने क्या कह दिया कि मेहमान आ गए हैं, अब बच्चे कोने में नहीं खेल सकते! बीच-बीच में खड़े हो जाते हैं आकर बताने कि मां, यह देखो! कि पिता, यह देखो! क्या कारण होगा? शोरगुल मचाने लगते हैं। ध्यान चाहते हैं। तुम्हारा सारा ध्यान मेहमान पर जा रहा है। स्वभावतः बच्चों को इसमें ईर्ष्या होती है। ध्यान भोजन है।
अब तो मनोवैज्ञानिक इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि मां अगर बच्चे को दूध दे दे और ध्यान न दे--सिर्फ दूध दे दे उपेक्षा से--सुला दे, उठा दे, निपटा दे काम, जैसे नर्स निपटा देती है, तो बच्चे की आत्मा पंगु रह जाती है, सिकुड़ जाती है। ध्यान चाहिए। इसलिए जब तुम्हें कोई ध्यान देता है, तुम पर ध्यान देता है, तुम प्रफुल्लित होते हो, आनंदित होते हो। इसीलिए तो तुम लोगों के मंतव्यों का इतना विचार करते हो कि लोग मेरे संबंध में क्या सोचते हैं। और क्या कारण होगा? क्या पड़ी है तुम्हें कि लोग क्या सोचते हैं? सोचते रहें! लेकिन डर है कि कहीं ऐसा न हो कि ध्यान देना बंद कर दें। मैं राह से निकलूं और कोई जयरामजी भी न करे! तो मर जाऊंगा। तो भूखा रह जाऊंगा। कहीं किसी तल पर कोई कमी रह जाएगी। राह से निकलूं तो कम से कम लोग जयरामजी करें; लोग पहचानें कि मैं कौन हूं। कितनी पीड़ा होती है तुम्हें जब तुम्हें कोई भी नहीं पहचानता कि तुम कौन हो! तब कितना तुम बता देना चाहते हो बैंडबाजा बजा कर कि मुझे पहचानो कि मैं कौन हूं! कि मैं भी यहां हूं! उपेक्षा बड़ा कष्ट देती है। तुम चकित होओगे--यद्यपि चकित होना नहीं चाहिए--अगर जीवन का निरीक्षण करोगे तो तुम उस आदमी को माफ कर सकते हो जिसने तुम्हें घृणा की, लेकिन उस आदमी को माफ नहीं कर सकते जिसने तुम्हारी उपेक्षा की। दुश्मन माफ किया जा सकता है, क्योंकि दुश्मन ने चाहे घृणा भला की हो लेकिन ध्यान तो दिया ही, तुम्हारा चिंतन तो किया ही, तुम्हारे बाबत

विचार की तरंगें तो उठीं ही। लेकिन उपेक्षा! तुम गुजरे और किसी ने इस तरह देखा जैसे कोई गुजरा ही नहीं, तुम कभी माफ न कर पाओगे।
ध्यान भोजन है। ध्यान से चीजें परिपुष्ट होती हैं। इसलिए मैं कह रहा हूंः शत्रुता नहीं, अ-मैत्री। सिर्फ मित्रता तोड़ लो, बस इतना काफी है।
मित्रता तोड़ कर शत्रुता न बना लेना, नहीं तो यह फिर नये ढंग से मित्रता हो गई--शीर्षासन करती हुई मित्रता--मगर यह मित्रता ही है।
और अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम शत्रु के संबंध में ज्यादा सोचते हो। मित्र के संबंध में कौन सोचता है? मित्र तो मित्र है ही, सोचना क्या है? शत्रु के संबंध में सोचते हो।
प्रेम से मैत्री, द्वेष से अ-मैत्री। सारी ऊर्जा को प्रेम के बिरवे पर डाल दो। बढ़ने दो उसे, खिलने दो उसे, फूल आने दो। वही बिरवा भक्ति का प्रारंभ है। उसमें ही तुमने पूरी जीवन ऊर्जा डाली, तो एक दिन भक्ति बनेगी। और जहां भक्ति है, वहां भगवान है।
सत्य की खोज में निकले व्यक्ति को अक्सर द्वेष पकड़ लेता है। तुमने अक्सर लोग देखे होंगे--तुम देख सकते हो मंदिरों में, गुफाओं में, आश्रमों में बैठे हुए--उनके जीवन का मूल आधार परमात्मा का प्रेम नहीं है, संसार की घृणा है। परमात्मा को पाने के लिए ऐसी आतुरता नहीं है, जितनी आतुरता संसार छोड़ने की है।
गलती हो गई। शुरू से ही गलत कदम उठ गया, गलत दिशा में उठ गया। प्रभु को पाने से संसार छूट जाता है। संसार छोड़ना भी नहीं पड़ता, बीच बाजार में खड़े- खड़े छूट जाता है। आदमी कमलवत हो जाता है। जल में होता है और जल छूता नहीं। वह और बात।
लेकिन एक आदमी इसी चिंता में पड़ा रहता है कि धन से कैसे छुटकारा हो, पद
से कैसे छुटकारा हो, पत्नी-बच्चों से कैसे छुटकारा हो, माया-मोह से कैसे हटूं। इस आदमी ने अनजाने द्वेष का ही पोषण किया। यह संसार का द्वेष है। हालांकि यह कहेगा कि मैं परमात्मा का खोजी हूं, लेकिन इसकी जीवन गति की आधारशिला द्वेष पर रखी है। यह संसार का द्वेषी है। संसार के द्वेष को ही यह परमात्मा का प्रेम कह रहा है; यह बात गलत है, यह बात सच नहीं है।
ऐसा समझो कि तुम एक कमरे में बैठे हो। उस कमरे से तुम्हें द्वेष है; तुम उस कमरे से मुक्त होना चाहते हो, तुम ऊब गए हो, तुम परेशान हो गए हो; तुमने बड़ा विषाद झेला उस कमरे में, बड़े उदास क्षण देखे, बड़े नरक अनुभव किए; उस कमरे ने तुम्हें सिवाय दुःस्वप्नों के और कुछ भी नहीं दिया है, वहां की एक-एक चीज रत्ती-रत्ती तुम्हारे अतीत की दुर्घटनाओं की स्मृति से भरी है; जिस तरफ आंख उठाते हो, वहीं पीड़ा छूती है; जो चीज छूते हो, उसी के साथ कुछ पुरानी ग्रंथियां बंधी हैं; वहां का सब विषाक्त हो गया है; तुम उस कमरे के प्रति घृणा से भरे हो। तुम कहते हो, मुझे बाहर जाना है। लेकिन तुम्हें बाहर जो धूप है, उससे कोई प्रेम नहीं है; और बाहर जो फूल खिले हैं सतरंगे, उनमें तुम्हें कुछ रस नहीं है; और बाहर वृक्षों पर जो पक्षियों ने गीत गाए, उनसे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं है। न तुम्हारे जीवन में धूप के काव्य का कोई अर्थ है, और न फूलों का, और न पक्षियों का। तुम इस घर से मुक्त होना चाहते हो।
क्या इसको तुम धूप का प्रेम कहोगे? खुले आकाश का प्रेम कहोगे? हरे वृक्षों का लगाव कहोगे? इसको सौंदर्य की कोई अनुभूति कहोगे? यह आदमी अगर किसी क्षण, किसी तरह--जो कि बहुत असंभव है--इस कमरे से छूट जाए...
असंभव इसलिए कहता हूं कि जिसका इतना घृणा का संबंध जुड़ा है इस कमरे से, वह छूट न पाएगा। घृणा जंजीर है, बुरी तरह बांधती है, छूट न पाएगा। जो कमरे से इतना डरा है, वह छूट कैसे पाएगा? भयभीत कभी नहीं छूट पाता। और समझ लो, संयोगवशात, छूट जाए, निकल भागे, तो भी यह कमरा इसका पीछा करेगा। यह जहां बैठेगा, आंख बंद करेगा, कमरे की ही याद आएगी। क्योंकि उस कमरे के साथ इतना न्यस्त-भाव जुड़ गया है। यह तो कमरे से निकल जा सकता है, लेकिन कमरा इससे नहीं निकलेगा। जहां बैठेगा, किसी और कमरे में बैठेगा, उसकी दीवाल भी इसी कमरे की दीवाल की याद दिलाएगी। न तो इसे धूप दिखाई पड़ेगी, न धूप में उड़ते

हुए बादल दिखाई पड़ेंगे। यह उनके लिए आया ही नहीं। इसकी आने की प्रेरणा ही गलत है।
फिर एक दूसरा आदमी है, जिसको इस कमरे से न कुछ विरोध है, न कोई लगाव है; उपेक्षा है। लगाव हो, तब तो छोड़ ही नहीं सकता इस कमरे को। द्वेष हो, तब भी नहीं छोड़ सकता। क्योंकि द्वेष भी लगाव ही है--विकृत हो गया लगाव, फट गया लगाव। जैसे दूध फट जाता है। है तो दूध ही, लेकिन स्वाद खट्टा हो गया, पीने योग्य न रहा। है तो दूध ही, फट गया। लगाव फट जाता है तो उसे हम द्वेष कहते हैं। जिस आदमी का न तो लगाव है इस कमरे से, न द्वेष है इस कमरे से, अ-लगाव है, अ-मैत्री है। रहे तो कोई हर्जा नहीं, इसी कमरे में सोया रहे तो कोई हर्जा नहीं, इस कमरे का विचार नहीं उठता; चला जाए तो कोई खास... इस कमरे से चले जाने में ही कोई मोक्ष नहीं मिल जाने वाला है।
यह आदमी धूप के प्रेम से भरा है। यह फूलों की गंध इसे पुकार रही है। इसे खुला आकाश निमंत्रण दे रहा है। इसकी प्रीति है खुले से, स्वतंत्र से, मुक्त से, जहां बाधा नहीं दीवालों की, जहां असीम है। यह विराट में उत्सुक है।
ये दोनों आदमी इस कमरे से बाहर निकलेंगे, और अगर तुम इन दोनों को निकलते देखो तो तुम्हें कुछ भेद दिखाई न पड़ेगा। लेकिन बड़ा भेद है, महा भेद है। पहला, कमरे से निकल रहा है, लेकिन कमरा उसके भीतर रहेगा। दूसरा, कमरे में कभी था ही नहीं, अ-मैत्री थी। शत्रुता भी नहीं थी, मित्रता भी नहीं थी। मित्रता-शत्रुता दोनों का अभाव था। विरक्ति थी, वैराग्य था। यह आदमी निकल रहा है। ये दोनों आकर धूप में खड़े हो जाएंगे। पहला आदमी जो कमरे से द्वेष के कारण निकल आया है, अब भी कमरे की ही याद से भरा होगा, उसकी आंखों पर एक पर्दा पड़ा होगा, धूप उसे दिखाई न पड़ेगी। उसकी आंखों में अभी भी अंधेरा होगा। कमरा उसे घेरे है। कमरा एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह जो आदमी कमरे के प्रति कोई लगाव नहीं रखता, विरोध भी नहीं रखता, इसकी आंखें खुली हैं, कोई पर्दा नहीं है; इसे सूरज मोह लेगा, यह नाचेगा धूप में। यह आनंदमग्न होगा। इसके जीवन में रसधार बहेगी।
तो पहली बात साफ-साफ समझ लेना जरूरी है कि जो भी तुम्हारे भीतर प्रेम
का तत्व है, वही परमात्मा की पहली किरण है। तुम्हारे भीतर जो भी द्वेष का तत्व है, वही बाधा है। द्वेष से अ-मैत्री साधो, प्रेम से मैत्री साधो। द्वेष का अर्थ होता हैः घृणा, क्रोध--नकारात्मक वृत्तियां--विरोध, निषेध, नकार, विध्वंस, विनाश। द्वेष मिटाना चाहता है। और मिटाने वाली किसी भी प्रवृत्ति से बहुत ज्यादा आंदोलित हो जाना खतरनाक है। क्योंकि जब तुम मिटाते हो, तो तुम भी मिटते हो। बिना मिटे मिटा नहीं सकते हो। जो हत्या करता है, वह आत्महत्या भी कर रहा है। जो दूसरे को दुख पहुंचाता है, वह अपने दुख के बीज बो रहा है। जो दूसरों को नरक में ढकेल रहा है, वह स्वयं भी नरक की सीढ़ियां उतर रहा है। उसे पता हो, पता न हो, यह और बात। लेकिन दुनिया में विध्वंस करके कोई सृजन को उपलब्ध नहीं होता। मिटाने वाला खुद मिट जाता है। जो दूसरों के लिए गड्ढे खोदता है, एक दिन अचानक पाता है, उन्हीं गड्ढों में खुद गिर गया है।
सृजन सृजनात्मक है। दोहरे अर्थों में। जब तुम एक गीत रचते हो, तो एक तरफ तो गीत रचा जाता है, दूसरी तरफ गीतकार रचा जाता है। गीत के रचने में ही तो गीतकार का जन्म है। जब एक मां से एक बच्चा पैदा होता है, तो तुम यह सोचते हो--बच्चा पैदा हुआ, बस इतना ही सोचते हो? मां पैदा हुई, ऐसा नहीं सोचते? तो तुम भूल गए। तुमने बात पूरी नहीं देखी। यह बच्चा पैदा होना एक पहलू है, दूसरी तरफ यह स्त्री कल तक मां नहीं थी, आज से मां है, यह दूसरा पहलू है। और ध्यान रखना, एक स्त्री में और एक मां में बड़ा फर्क है। स्त्री स्त्री है, सिर्फ संभावना है, बीज है। बीज और वृक्ष में फर्क करोगे या नहीं करोगे? ऐसे ही स्त्री और मां का फर्क है।
मां है--स्त्री में फूल आ गए, फल आ गए। स्त्री फलवती हुई। जब तक स्त्री मां नहीं, तब तक कुछ खाली-खाली होता है। तब तक कुछ भराव हुआ नहीं। तब तक पात्र रिक्त है। उसका गर्भ रिक्त है, तो पात्र रिक्त है। जब स्त्री गर्भवती होती है तो उसमें एक अनूठा सौंदर्य और प्रसाद झलकने लगता है।

गर्भवती स्त्री को चलते देखा? गर्भवती स्त्री के चेहरे पर गरिमा देखी? गर्भवती स्त्री के चेहरे से झलकती आभा देखी? वही आभा, जो वृक्ष फलवान होकर प्रकट करता है।
ऐसे ही जब कोई गीत लिखता है, एक तरफ गीत रचा जाता है, दूसरी तरफ गीतकार रचा जाता है। जब कोई मूर्ति रचता है, इधर मूर्ति बनती है, उधर मूर्तिकार बनता है। जब कोई वीणा पर संगीत को जन्म देता है, इधर संगीत का जन्म होता है, उधर वीणावादक का जन्म होता है। सृजन दोहरा है, जैसा विध्वंस दोहरा है। प्रेम सृजनात्मक ऊर्जा है। द्वेष विध्वंसक ऊर्जा है। द्वेष की प्रतीक प्रतिमाएं, जैसे अडोल्फ हिटलर। प्रेम की प्रतीक प्रतिमाएं, जैसे कृष्ण, जैसे बुद्ध, जिनके जीवन में करुणा और प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं; वे अपने परम फल को उपलब्ध हो गए हैं। उन्होंने परम संपदा पा ली। हिटलर का जीवन रिक्त है। हिटलर एक खंडहर है। मिटाने में कोई और हो भी नहीं सकता, खंडहर ही होगा। कुछ और हो भी नहीं सकता।
तो ख्याल रखो, द्वेष सूत्र है तुम्हारे भीतर नकारात्मकता का। नरक का द्वार है द्वेष। फिर तुम किससे द्वेष करते हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम संसार से द्वेष करो तो भी वह द्वेष है। और जो संसार से द्वेष करता है, वह परमात्मा को कभी पा न सकेगा, क्योंकि परमात्मा परम विधायकता का नाम है। नकार से तुम कैसे विधायक पर पहुंचोगे? नहीं कह कर तुम कैसे हां को पाओगे? यह असंभव है। नहीं की ईंटों को रखते-रखते तुम हां का मंदिर न बना पाओगे। न की ईंटों को रख-रख कर तुम नरक ही निर्मित करोगे।
इसलिए द्वेष से आंदोलित मत होना। आंदोलित प्रेम से होना। और फिर मैं तुमसे कह दूं--संसार के प्रेम में पड़ा हुआ आदमी भी बेहतर है उस आदमी से जो संसार के द्वेष में पड़ गया। माना कि संसार का प्रेम क्षुद्र का प्रेम है, क्षणभंगुर का प्रेम है, बहुत दुख लगाएगा, लेकिन कम से कम प्रेम तो है। क्षणभंगुर ही सही, लेकिन विधायक तो है। और जो आदमी संसार के द्वेष में पड़ गया है, यह आदमी और भी उपद्रव में पड़ गया है। द्वेष इसे घेर लेगा। धीरे- धीरे द्वेष का अंधकार इसे पकड़ लेगा। यह कितनी ही प्रार्थनाएं करे और पूजाएं करे, इसकी सब प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं, और इसकी सब पूजाएं व्यर्थ हैं। क्योंकि द्वेष से प्रार्थना उठती ही नहीं। द्वेष में प्रार्थना का अंकुर आता ही नहीं।
भक्त कहता हैः संसार से द्वेष नहीं, परमात्मा से राग। यह भक्ति की आधारशिला है। तथाकथित ज्ञानी और तपस्वी कहता हैः संसार से द्वेष। फर्क दोनों की भाषा का है। ज्ञानी और तपस्वी कहता हैः विराग, संसार से विराग। भक्त कहता हैः प्रभु से राग। भक्त विधायक है।
भक्ति ने मनुष्य के मनोविज्ञान को बहुत गहराई से पकड़ा है। द्वेष करने वाले बहुत मिल जाएंगे, क्योंकि द्वेष सस्ता है। भगोड़े बहुत मिल जाएंगे, संसार को घृणा करने वाले बहुत मिल जाएंगे, क्योंकि घृणा ही करना लोग जानते हैं। लेकिन संसार की घृणा से परमात्मा के प्रेम की सुगंध नहीं उठी कभी, नहीं उठेगी कभी। संसार के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उस प्रेम को परमात्मा की तरफ मोड़ो जरूर, मगर संसार के प्रति घृणा का संबंध मत बना लेना, नहीं तो चूक गए--चले भी और चले भी नहीं। एक पैर उठाया और दूसरे पैर में जंजीर बांध ली।
दूसरा शब्द राग समझ लेना चाहिए, फिर सूत्र में उतरना आसान हो जाएगा। राग का अर्थ होता हैः प्रीति। शुद्ध प्रीति। प्रेम। राग शब्द बड़ा अनूठा है। चाहत, अभीप्सा। राग का अर्थ होता हैः जिसके बिना रहने में कोई अर्थ नहीं। जिसके साथ मरना भी हो जाए, तो भी सार्थकता है। और जिसके बिना जीना पड़े, तो जीना भी व्यर्थ है। जिसके बिना तुम अपने जीवन को व्यर्थ पाते हो, अर्थहीन पाते हो, उससे तुम्हारा राग है। किसी का धन से राग है। वह सोचता है, धन के बिना सब व्यर्थ है। हालांकि उसका राग गलत विषय से लगा है। क्योंकि जिस दिन धन कमा लेगा, उस दिन पाएगा कि कुछ कमाया नहीं, जीवन गंवाया। धन तो हाथ आ गया, निर्धनता नहीं मिटी। धन के तो ढेर लग गए और भीतर निर्धनता के गड्ढे और बड़े हो गए।

किसी का पद से राग है, तो सोचता है, जब तक प्रधानमंत्री न हो जाऊं, कि राष्ट्रपति न हो जाऊं, तब तक, तब तक जीवन असार है; प्रधानमंत्री होकर ही मरना है। प्रधानमंत्री होकर पता चलेगा कि जीवन व्यर्थ गया। बड़ी कुर्सी पर बैठ कर तुम बड़े न हो जाओगे। सच तो यह है कि जितनी बड़ी कुर्सी हो, उतना ही तुम्हारे छोटेपन को प्रकट करेगी। बड़ी कुर्सी पृष्ठभूमि बन जाएगी, बड़ी लकीर बन जाएगी। उसके सामने तुम छोटी लकीर हो जाओगे।
इसलिए पद पर पहुंच कर लोग जितने छोटे सिद्ध होते हैं, उतने और किसी तरह से सिद्ध नहीं होते। जहां शक्ति होती है, वहां पता चलता है। शक्ति निश्चित रूप से, लोगों के भीतर जो भी भ्रष्ट था, उसे प्रकट करने का कारण बन जाती है। क्योंकि मौका मिल गया। इच्छाएं तो सदा से थीं, लेकिन पूरा करने की सुविधा नहीं थी। सुविधा नहीं थी, तो दुनिया को हम यही दिखाते थे कि इच्छाएं ही नहीं हैं। क्योंकि सुविधा नहीं है, यह कहने में तो पीड़ा होती है। इच्छाएं ही नहीं हैं। जब सुविधा मिलती है, तब असलियत प्रकट होती है, सब इच्छाएं दबी पड़ी थीं, प्रकट होने लगती हैं। जैसे वर्षा आ गई, और सब बीज जो जमीन में पड़े थे, अंकुरित हो गए। सब तरफ घास-पात ऊगने लगा। ऐसे ही जब शक्ति की वर्षा होती है, तो तुम्हारे भीतर सारी इच्छाएं, दमित इच्छाओं का अंकुरण शुरू हो जाता है। तब आदमी बड़ा क्षुद्र मालूम होता है। और बड़े से बड़े पद पर पहुंच कर भी यह पक्का पता चल जाता है--पक्का पता तभी चलता है--कि हाथ तो कुछ लगा नहीं! और जिंदगी पूरी गंवा बैठे! जिंदगी हाथ से निकल गई और यह कचरा कमाया! इसका कोई मूल्य नहीं है।
लेकिन राग का अर्थ हैः जिससे जीवन में अर्थ आएगा, उस संबंध का नाम राग है। गलत राग होते हैं, सही राग होते हैं। द्वेष सदा गलत होता है, राग सही भी होते हैं, गलत भी होते हैं। धन से राग है तो गलत है। ध्यान से जुड़ जाए तो सही है। पद से राग है तो गलत है, प्रभु से जुड़ जाए तो सही है।
मैं इसे फिर दोहरा दूं--द्वेष सदा गलत होते हैं, क्योंकि द्वेष ही गलत है; राग सदा सही नहीं होते, और न सदा गलत होते हैं। इसलिए मैंने तुमसे कहा कि राग के बहुत रूप हैं। स्नेह--अपने से छोटे के प्रति हो; समान के प्रति हो तो प्रेम; अपने से बड़े के प्रति हो तो श्रद्धा; और सब सीमाओं से मुक्त हो जाए, किसी विशेष के प्रति न हो, इस समस्त अस्तित्व के प्रति हो, तो भक्ति। राग प्यारा शब्द है, इसके बहुत अर्थ होते हैं। एक अर्थ रंग भी होता है। जहां राग है, वहां रंग भी है। इसलिए तो राग-रंग शब्द है। रंग यानी उत्सव। जहां राग है, वहां फूल भी खिलेंगे। जहां राग है, वहां इंद्रधनुष भी उठेंगे। जहां राग है, वहां गीत भी होगा, गान भी होगा, नृत्य भी होगा। जहां राग है, वहां मरुस्थल नहीं होंगे, मरूद्यान होंगे। जहां राग है, वहां हरियाली होगी।
इसलिए भक्त के जीवन में हरियाली होती है, ज्ञानी के जीवन में रूखा- सूखापन होता है। ज्ञानी का जीवन मरुस्थल जैसा होता है। कहीं कोई हरियाली नहीं, कोई फूल नहीं, कोई सरिता नहीं, कोई झील नहीं। भटक जाओ तो जल के कण को तड़प जाओ। सब सूखा-सूखा। ज्ञानी के जीवन में काव्य नहीं होता। रंग ही नहीं उठते। ज्ञान बेरौनक है, बेरंग। भक्ति में बड़े रंग उठते हैं, बड़ी तरंगें उठती हैं। इसीलिए तो मीरा के शब्दों में जो रस है, वह कुंदकुंद के शब्दों में नहीं हो सकता। और कुंदकुंद भी पहुंच गए। लेकिन पहुंचे हैं मरुस्थल से। उन्हें फूलों का पता ही नहीं--फूल उनके मार्ग में आए ही नहीं।
भक्त की वाणी में तो कभी-कभी इतना रस होता है कि लोग समझने की भूल कर देते हैं। उमर खय्याम के साथ ऐसा हुआ। उमर खय्याम भक्त है; सूफी-भक्त, पहुंचा हुआ फकीर। लेकिन बड़ी भूल हो गई उसके संबंध में, सारी दुनिया को भूल हो गई। क्योंकि वह स्त्रियों के गीत गाता है, और मधुशाला के, और मधुबाला के। लोगों ने समझा कि यह तो शराब का ही गुणगान कर रहा है। वह समाधि की बात कर रहा है--समाधि को उसने नाम दिया शराब। क्योंकि समाधि में शराब है! और ऐसी शराब कि एक दफा पी तो पी, फिर कभी नशा उतरता नहीं, टूटता नहीं; चढ़ा सो चढ़ा, उतरना नहीं जानता। और जब वह प्रेयसी की आंखों की बात कर रहा है, तो भूल मत करना। सूफी फकीर परमात्मा को प्रेयसी की तरह देखते हैं। वह परमात्मा की चर्चा है। वे आंखें किसी स्त्री की नहीं हैं, वे परम परमात्मा की हैं।

लेकिन सूफियों की धारणा परमात्मा के संबंध में स्त्री की है। जैसे हिंदुओं की धारणा परमात्मा के संबंध में पुरुष की है। तो हिंदू कहते हैं-- परमात्मा पुरुष, और हम सब तो उसकी गोपियां हैं।
मीरा गई वृंदावन। कृष्ण के मंदिर में जाना चाहती थी, दरवाजे पर रोकने
का आयोजन था, क्योंकि उस मंदिर में कोई स्त्री को प्रवेश नहीं दिया जाता था। अब यह भी हद्द हो गई! दुनिया में बड़ी मूढ़ताएं होती हैं! कृष्ण का मंदिर और स्त्री को प्रवेश नहीं! महावीर के मंदिर में न हो तो बात में कुछ तर्क भी हो सकता है, लेकिन कृष्ण के मंदिर में स्त्री को प्रवेश न हो!
मगर कारण यह था कि जो पुजारी था, उसने व्रत ले रखा था ब्रह्मचर्य का,
वह स्त्रियों को देखता नहीं था। कृष्ण के कारण नहीं था बंधन, बंधन पुजारी के कारण था। पुजारियों के कारण कृष्ण तक मुसीबत में पड़ जाते हैं! उसने वर्षों से स्त्री नहीं देखी थी। खबर आई कि मीरा आती है और कृष्ण के मंदिर में जरूर आएगी। तो वह डर गया होगा। द्वारपाल खड़े कर रखे थे।
लेकिन जब मीरा आई मस्ती में नाचती, तो उसकी मस्ती ऐसी थी कि द्वारपाल भूल गए। वह तो नाचती भीतर प्रवेश कर गई। उसकी मस्ती ऐसी थी कि रोकने की हिम्मत न पड़ी। उस मस्ती को रोकता भी तो कोई कैसे रोकता? द्वारपाल किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रह गए। मीरा तो आई हवा की तरह और चली भी गई भीतर। जब चली गई तब उन्हें होश आया कि यह तो मामला गड़बड़ हो गया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी, मीरा तो जाकर मंदिर में पहुंच गई थी। पुजारी का थाल हाथ से गिर पड़ा। कृष्ण की पूजा कर रहा था। सच तो यह है कि मीरा उसको दिखाई नहीं पड़नी चाहिए। जब पूजा में कोई जुड़ा हो तो कौन किसको देखता है? मगर वह पूजा सब उसकी थी जिसको संसार से द्वेष है। धूप से प्रेम नहीं, घर के भीतर रहने में क्रोध है। हाथ से थाल छूट गया, वह तो बहुत क्रुद्ध हो गया। द्वारपाल भी जिसकी मस्ती से छा गए थे, उसकी मस्ती से वह पुजारी अछूता ही रह गया। बिल्कुल सूख गया होगा।
एक सीमा होती है। वृक्ष की जड़ें जिंदा हों, पत्ते गिर गए हों, शाखाएं सूख गई हों और वर्षा आ जाए तो फिर अंकुर हो जाते हैं। लेकिन अगर जड़ें ही सूख गई हों, तो फिर वर्षा के आने पर भी कुछ नहीं होता, ठूंठ ठूंठ की तरह रह जाता है। वह पुजारी ठूंठ रहा होगा। वह तो बड़ा क्रुद्ध हो गया। उसने कहा कि यह कैसे तुमने प्रवेश किया? मैं स्त्रियों को देखता ही नहीं हूं।
मीरा हंसी और मीरा ने बड़ी अदभुत बात कही। मीरा ने कहा, मैंने तो सोचा
था कि इतने दिन तुम्हें कृष्ण की भक्ति करते हो गए, अब तक एक बात समझ में आ गई होगी कि पुरुष तो एक ही है, कृष्ण, और तो सब स्त्रियां ही हैं। तुम भी स्त्री हो और मैं भी स्त्री हूं, अगर कृष्ण को समझे हो तो। मुझे तो कोई दूसरा पुरुष दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हें दूसरा पुरुष भी दिखाई पड़ता है? परमात्मा को या तो पुरुष की तरह सोचो या स्त्री की तरह सोचो, इससे भेद नहीं पड़ता। लेकिन दोनों हालत में प्रेम का सेतु बने।
उमर खय्याम स्त्री की तरह सोचता है। इसलिए उमर खय्याम की वाणी में और
भी लालित्य है; और भी मदिरा है; और भी नशा है। मीरा से भी ज्यादा। मीरा में तो रस है, लेकिन मीरा का भगवान तो पुरुष है। तो पुरुष तो परुष होगा ही। कृष्ण भी हों और कितना ही मोरमुकुट बांध कर खड़े हों, तो भी होंगे तो कृष्ण ही! कब धनुषबाण ले लेंगे हाथ में, क्या पता! वचन भी दे दिया था युद्ध में कि शस्त्र हाथ में नहीं लेंगे, लेकिन ले लिया, भूल गए। पुरुष आखिर पुरुष है। आक्रमण उसकी भीतर छिपी हुई वृत्ति है।
तो जो लालित्य उमर खय्याम में है, क्योंकि उसका परमात्मा स्त्री है,
जो कमनीयता उमर खय्याम में है, वह मीरा में नहीं है। खूब रस है। थोड़ा सोचो, परमात्मा अगर स्त्री हो, तो फिर तुम जितना कमनीय चाहो, जितना सुंदर चाहो, फिर कोई सीमा नहीं है।
उमर खय्याम बहुत गलत समझा गया। गलत समझा गया है इसीलिए कि उसने ज्ञान
की भाषा नहीं बोली, राग की भाषा बोली। उसने द्वेष की भाषा नहीं बोली, उसने प्रेम की भाषा बोली। प्रेम इस जगत में मुश्किल से समझा जाता है। क्योंकि लोग इतने अ-प्रेम से भरे हैं, अ-प्रेम तो समझ लेते हैं। तुम्हारे लिए भी समझ में आ जाता है कि यह संसार व्यर्थ है, छोड़ो। तुम्हारे भीतर भी संसार के

प्रति घृणा पैदा करना आसान है। क्योंकि घृणा से तो तुम सुबग रहे हो, उबल रहे हो। लेकिन तुम्हारे भीतर प्रेम की एक किरण पैदा करनी बहुत कठिन है।
क्योंकि प्रेम से तो तुम्हारा परिचय ही नहीं हुआ।
राग का एक अर्थ हैः रंग। रंग यानी इंद्रधनुष। रंग यानी फूल। रंग यानी तितलियां। रंग यानी रूप। रंग यानी सौंदर्य। भक्त का मार्ग सौंदर्य का, रूप का, रस का मार्ग है।
राग का एक अर्थः गीत, गान, लय, लयबद्धता भी है। वह भी बड़ा प्यारा अर्थ है। क्योंकि जहां भक्ति है, जहां प्रेम है, वहां गान है, गीत है; वहां वीणा बजेगी, वहां कोई पैर में घूंघर बांध कर नाचेगा, पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! वहां कोई तार छेड़ेगा। वहां सन्नाटा नहीं होगा, वहां संगीत होगा। वहां चुप्पी नहीं होगी, वहां चुप्पी में भी राग होगा, अनाहत होगा, ओंकार होगा। इसीलिए तो शांडिल्य ने इन सूत्रों का प्रारंभ किया--ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा! नाद से शुरू किया।
राग यानी नाद। जहां राग है, वहां उत्सव है। जहां राग है, वहां स्वीकार है। जहां राग है, वहां धन्यवाद का भाव है, अनुग्रह का भाव है। जहां राग है, वहां रस है। रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है। रस का अर्थ होता हैः जैसे वृक्षों में हरा जीवन रस बहता। वही तो खिलता फूलों में। रस का अर्थ हैः जैसे तुम्हारे भीतर श्वास में प्राण बहता। वही तो जिलाता तुम्हें, जगाता तुम्हें। रस का अर्थ होता हैः जिसके बिना जीवन नहीं, जिसके बिना खिलावट नहीं; जो जीवन का पोषक है।
परमात्मा इस जीवन का रस है।
जो संसार से विरस हो गया, जरूरी नहीं कि परमात्मा के रस को पा ले। लेकिन जो परमात्मा के रस में डूब गया, संसार उसके लिए बचता ही नहीं। उसे यहां फिर संसार दिखाई ही नहीं पड़ता, परमात्मा ही दिखाई पड़ता है--उसके ही रस की विभिन्न भाव-भंगिमाएं, उसके ही रस के अलग-अलग रूप, उसके ही रस के अलग-अलग ढंग। वही स्त्री में, वही पुरुष में, वही वृक्ष में, वही पशु में, पक्षी में, वही चांद-तारों में।
पहला सूत्रः
द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः।
"द्वेष का प्रतिकूल और रस शब्द का प्रतिपादक होने के कारण ही भक्ति का नाम अनुराग है।"
द्वेष का प्रतिकूल! जरा सी भी द्वेष की गुंजाइश नहीं है भक्ति में। किसी तरह के द्वेष की गुंजाइश नहीं है।
द्वेषप्रतिपक्षभावात्।
शांडिल्य के सूत्र बड़े अदभुत हैं; छोटे-छोटे सूत्र, मगर सब कह दिया जो कहने योग्य है, या जो कहा जा सकता है, या जिसे कहने की जरूरत है। द्वेष का प्रतिकूल। हो गई परिभाषा भक्ति की! और रस शब्द का जो अनुकूल है। द्वेष के प्रतिकूल और रस के अनुकूल, वही भक्ति।
रसस्वी बनो। रसिक बनो। रसाल बनो। रस में डूबो और रस में डुबाओ। इसी रस
को उमर खय्याम ने मदिरा कहा है, शराब कहा है। और भक्त एक मद्यप है। भक्त एक पियक्कड़ है। खुद भी ढालता, औरों को भी ढालता। वहां रूखा-सूखापन नहीं है। वहां गणित और तर्क नहीं है। वहां जीवन को पकड़ने के लिए बुद्धि के ढांचों से काम नहीं लिया जाता, वहां हृदय खोला गया है। वहां हृदय की उन्मत्तता है।
द्वेष का जो प्रतिकूल है और रस शब्द का जो प्रतिपादक है, उसका नाम ही भक्ति है, इसीलिए भक्ति को अनुराग कहा है। नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्।
"वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।"
यह सूत्र आधारभूत सूत्रों में एक है। खूब गहराई से समझना।
"वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।"
ज्ञान तो तुम्हारे हाथ में है, जितना चाहो अर्जित कर लो। जाओ विश्वविद्यालय, रहो काशी में, पंडितों के पास बैठो, शास्त्रों का अध्ययन-मनन करो, तोता बन जाओ, खूब ज्ञान इकट्ठा हो जाएगा। ज्ञान इकट्ठा करना

तुम्हारे हाथ में है। इसलिए ज्ञान तुमसे बड़ा तो हो ही नहीं सकता। ज्ञान तुमसे सदा छोटा होगा। और जरूरत है कुछ तुमसे बड़े की। ज्ञान के ऊपर तुम्हारा हस्ताक्षर होगा। तो ज्ञान कूड़ा-कर्कट होगा। जिसको तुम इकट्ठा कर लिए, जिसको तुम इकट्ठा कर पाए, उसमें विराट की गंध नहीं हो सकती।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्।
भक्ति तुम्हारे हाथ के बाहर है। भक्ति परमात्मा का प्रसाद है, मनुष्य
का प्रयास नहीं।
इन दो शब्दों में सारा भेद है--प्रयास और प्रसाद। तुम भक्ति इकट्ठी नहीं कर सकते--कहां इकट्ठी करोगे? भक्ति सीख भी नहीं सकते--कहां सीखोगे? सीखी गई भक्ति झूठी होगी। ऐसे किसी को डोलते देख कर तुम डोलने लगोगे तो मीरा नहीं हो जाओगे। और किसी को नाचते देख कर तुम नाचने लगोगे तो चैतन्य नहीं हो जाओगे। और किसी को लड़खड़ाते चलते देख कर तुम लड़खड़ा कर चलने लगोगे तो उमर खय्याम नहीं हो जाओगे। भीतर तो तुम जानोगे कि मैं बन कर चल रहा हूं। रस तो बहेगा ही नहीं। डांवाडोल चलोगे तो भी सम्हले रहोगे। और सामने से कार आ जाएगी तो सब भूल जाओगे। उचक कर किनारे पर खड़े हो जाओगे। सब रसविमुग्धता चली जाएगी। या एक रुपयों की थैली पास में पड़ी दिखाई पड़ जाएगी, नाच रुक जाएगा। तुम्हारा नाच उधार होगा, बासा होगा, अनुकरण होगा, कार्बनकापी होगी।
ज्ञान तो आदमी इकट्ठा कर सकता है, क्योंकि ज्ञान है ही उधार। लेकिन भक्ति कोई इकट्ठी नहीं कर सकता, संगृहीत नहीं कर सकता। भक्ति आती है। तुम बुला सकते हो भक्ति को, निमंत्रण भेज सकते हो, पाती लिख सकते हो, द्वार खोल कर खड़े हो सकते हो, अपनी झोली फैला सकते हो, मगर जब आएगी तब आएगी, तुम्हारे वश में नहीं है। जैसे सूरज निकलता है, तुम अपना द्वार खोल कर रखो, जब सूरज निकलेगा तो उसकी रोशनी तुम्हारे घर को भर देगी। बस द्वार बंद न रहे, इतना ही कर सकते हो। तुम सूरज को गठरियों में बांध कर घर के भीतर नहीं ला सकते। तुम्हारे हाथ के बाहर है सूरज। तुम सूरज को आज्ञा नहीं दे सकते कि मुझे अभी रोशनी की जरूरत है, निकलो! अब सुबह होनी चाहिए! सूरज जब निकलेगा, तब निकलेगा। हां, तुम जब सूरज निकला हो तब अपना द्वार बंद रख कर सूरज को रोक सकते हो।
इस फर्क को समझ लेना। भक्ति को कोई चाहे तो रोक सकता है, लेकिन ला नहीं सकता। नकारात्मक दृष्टि से तुम क्षमताशाली हो। सूरज निकला रहे, तुम आंख बंद किए रहो, तो क्या करेगा सूरज? तुम अंधेरे में रहे आओगे। लेकिन सूरज न निकला हो, तो तुम कितनी ही आंखें फाड़-फाड़ कर देखो, तो भी कुछ न होगा।
भक्ति आती है, भक्ति भगवान से आती है। तुम सिर्फ पात्र बनो। तुम ग्राहक बनो। तुम स्त्रैण बनो। कर्तृत्व का भाव भक्ति में काम नहीं देगा, बाधा बन जाएगा। भक्ति संकल्प नहीं है, समर्पण है। तुम झुको, प्रतीक्षा करो; पुकारो, रोओ, और राह देखो; जब होगा, तब होगा। होता निश्चित है। जब भी तुम्हारा रुदन पूरा हो जाता है, और तुम्हारे आंसू हार्दिक हो जाते हैं, और जब तुम्हारी पुकार वास्तविक हो उठती है, जब तुम्हारा रोआं-रोआं आंदोलित हो उठता है, जब तुम्हारे प्राण के कोने-कोने में प्रतीक्षा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता, जब तुम सब द्वार खोल देते, सब खिड़कियां खोल देते, सब कपाट खोल देते और तुम कहते, आओ! पुकारते हो, प्रार्थना करते हो और प्रतीक्षा करते हो--अनंत धैर्य चाहिए भक्त को, क्योंकि कौन जाने कब परमात्मा द्वार पर आए! आधी रात आए, तो भक्त को जागा होना चाहिए। कब द्वार पर दस्तक दे दे, तो भक्त को प्रतीक्षारत होना चाहिए।
जैसे प्रेमी की तुम राह देखते--तुम्हारा प्रेमी आ रहा है, या तुम्हारी प्रेयसी आ रही है, या मित्र आ रहा है, तो तुम सो नहीं पाते। राह पर पत्ता भी खड़क जाता है, तुम उठ कर बिस्तर पर बैठ जाते हो, बिजली जला लेते, दरवाजा खोलते, शायद जिसकी राह थी, आ गया। जब तुम प्रतीक्षा में रत होते हो तो कोई दूसरा गुजरता है तो तुम बाहर दौड़ कर पहुंच जाते हो कि शायद... !
जीसस ने बार-बार अपने शिष्यों से कहा हैः चौबीस घंटे राह देखना! क्योंकि कब प्रभु आएगा, वह कौन सी घड़ी चुनेगा, कुछ हमें पता नहीं है। वह

किस क्षण पर तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ा हो जाएगा, किस रूप में, कुछ हमें पता नहीं है।
आता है जरूर, आता ही रहा है। जब तुम प्रतीक्षा नहीं कर रहे हो, तब भी आता है। और जब तुम गहरी नींद में सोते हो और घुर्राते हो, तब भी द्वार पर दस्तक देता है। जब तुम सपनों में दबे पड़े रहते हो, तब भी तुम्हारे पास आकर खड़ा होता है। जब तुम आंख बंद किए रहते हो, तब भी उसकी रोशनी तुम्हारी बंद पलकों पर गिरती रहती है। जब तुम्हारी आंखों में कोई आंसू और कोई प्रार्थना नहीं है, तब भी वह निकट खड़ा है। उसके बिना तुम जीओगे कैसे? एक क्षण न जी सकोगे। तुम उसे याद करो या न करो, वह तुम्हारी याद कर ही रहा है। एक क्षण को भी उसकी याद तुम्हारे संबंध में टूट जाए कि तुम्हारी श्वास टूट जाएगी। तुम्हारी श्वास उसकी याद की खबर है कि वह अभी तुम्हें भूल नहीं गया है।
तुम थोड़े ही श्वास ले रहे हो, वह तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है। तुम्हारे हाथ में थोड़े ही है श्वास लेना। जिस दिन श्वास बंद हो जाएगी, उस दिन तुम ले सकोगे? जिस दिन वह नहीं लेगा, उस दिन तुम न ले सकोगे। वही तुम्हारे भीतर श्वास फूंक रहा है, वही तुम्हारे हृदय की धुक-धुक है। वही तुम्हारे शरीर में खून का दौड़ना है। वही तुम्हारा होश है, तुम्हारा चैतन्य है। आया ही हुआ है, मगर तुम बेहोश पड़े हो।
शांडिल्य कहते हैंः नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्।
ज्ञान की भांति नहीं है भक्ति, कि क्रिया से पा ली, अनुष्ठान से पा ली, कुछ कृत्य कर लिया और पा लिया--सीख लिया, अभ्यास कर लिया। नहीं, आदमी के हाथ के बाहर है। यही तो भक्ति का अपूर्व रूप है। भक्ति पर आदमी के हाथ की कालिख नहीं है। भक्ति पर आदमी का हस्ताक्षर नहीं होता। भक्ति आदमी का कृत्य नहीं है। भक्ति उतरती पार से। अलोक से आती लोक में। समयातीत स्थिति से उतरती समय में। जैसे दूर से सूरज की किरण आती, ऐसी भक्ति आती है। भक्ति परमात्मा की किरण है। भगवान का आशीष है। तुम्हारा कृत्य नहीं, तुम्हारे कृत्य का फल नहीं। सिर्फ तुम्हारी ग्राहकता चाहिए। तुम तैयार होओ उसे अंगीकार करने को।
इसलिए भक्त को स्त्रैण हो जाना होता है, आक्रामक नहीं; खोज में नहीं, प्रार्थना में। यहूदी भक्तों ने ठीक बात कही है कि कभी कोई आदमी भगवान को थोड़े ही खोज पाता है। जब आदमी तैयार होता है, भगवान आदमी को खोजता है। यह बात प्रीतिकर है। यह बात बड़ी अर्थपूर्ण है। भगवान आदमी को खोजता है। मगर तुम पात्रता अर्जित करो; वह तुम्हें खोजे, इस योग्य अपने को निखारो; उसका अमृत तुम्हारे पात्र में गिरेगा, तुम पात्र को शुद्ध तो कर लो; तुम इसे विष से मुक्त तो कर लो।
"वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।"
इस छोटे से वचन में सारा रसायन भरा है भक्ति का।
अत एव फलानन्त्यम्।
"इस कारण भक्ति का फल आनंत्य है।"
जो तुम्हारे कृत्य से पैदा होगा, उसकी सीमा होगी, उसका अंत आ जाएगा। तुमने एक पत्थर फेंका आकाश में, थोड़ी दूर जाएगा--सौ फीट, दो सौ फीट, तीन सौ फीट--फिर गिरेगा। तुमने जितनी ऊर्जा उस पत्थर में रखी थी, उतनी दूर तक चला जाएगा। फिर गिरेगा, ऊर्जा खतम हो गई। अनंत तक नहीं चलता जा सकता। तुमने एक दीया जलाया, तेल भरा, जितनी देर तक तेल है उतनी देर तक चलेगा; तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। आदमी जो भी करेगा, उसकी सीमा होगी। इसलिए तुम जो कुछ अपने से पैदा कर लोगे, वह एक दिन मरेगा। तुम जो बनाओगे, वह मिटेगा। तुम्हारा बनाया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः अत एव फलानन्त्यम्।
इस कारण भक्ति का फल अनंत काल तक चलने वाला है। क्यों? क्योंकि तुम्हारी उस पर छाप ही नहीं है। उसमें परमात्मा का तेल है, तुम्हारा तेल नहीं। उसके पीछे अनंत का हाथ है, तो अनंत तक चलेगा। तुम्हारा स-अंत का हाथ होता, तो उसकी सीमा होती।

हमारी सीमा है। हम जो कहें, हम जो करें, उस सबकी सीमा है। हम कितने ही मजबूत किले बनाएं, वे भी धूल-धूसरित हो जाएंगे। चले जाएंगे हजारों साल तक, लेकिन क्या मूल्य है हजारों साल का इस अनंत में! क्षण भर भी तो नहीं। लेकिन जिस चीज के पीछे परमात्मा है, उसका फिर कोई अंत नहीं है।
शांडिल्य यह कह रहे हैंः ज्ञान की सीमा है, भक्ति की सीमा नहीं। भक्ति असीम है। सीमित को क्या खोजते हो? खोज में ही लगे हो तो असीम को खोजो। सीमित को क्या इकट्ठा करना? जो चुक जाएगा, उस दीये पर क्या भरोसा? जो न चुके, जो कुछ ऐसा हो--बिन बाती बिन तेल, जिसकी रोशनी सदा रहे।
ख्याल लेना। कुछ ऐसा खोजो जो तुम्हारा निर्मित न हो। तुम्हारे द्वारा निर्मित न हो।
तद्वतःप्रपत्तिशब्दाच्च नज्ञानमितरप्रपत्तिवत्।
"ज्ञानीगण भी शरणागत होते हैं, और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति
हो जाती है।"
शांडिल्य कहते हैंः और इस चिंता में भी मत पड़ना कि ज्ञानी को ही भक्ति
की उपलब्धि होती है। ज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं है। अज्ञानी को भी उपलब्धि हो जाती है, ज्ञानी को भी उपलब्धि हो जाती है, पुकार चाहिए। अज्ञानी भी पुकार सकता है। अज्ञानी भी रो तो सकता है न हृदय भर कर। सच तो यह है कि अज्ञानी ही रो सकता है। ज्ञानी को तो थोड़ी अकड़ रहती है, तो रो नहीं सकता। ज्ञानी को तो थोड़ा ख्याल रहता है कि मैं जानता हूं। जितना ख्याल होता है कि मैं जानता हूं, उतने ही आंसू रुक जाते हैं। ज्ञानी प्रार्थना नहीं कर सकता। ज्ञान ही बाधा बन जाता है। ज्ञानी झुक नहीं सकता। मैं जानता हूं, यह अकड़ अहंकार को मजबूत करती है। शांडिल्य कहते हैंः इस फिकर में मत पड़ना कि तुम अज्ञानी हो तो कैसे भगवान तुम्हारे पास आएगा? भगवान ने शर्त नहीं रखी है कि ज्ञानियों के पास आऊंगा, कि जिनके पास विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र होगा, उनके पास आऊंगा। कोई शर्त नहीं, भगवान बेशर्त आता है। बस तुम स्वीकार करने को राजी होओ।
सच तो यह है, अज्ञानी ज्यादा सरल होता है, ज्यादा निष्कपट होता है। गांव के ग्रामीण इसीलिए ज्यादा सरल, ज्यादा निष्कपट, ज्यादा निर्दोष हैं। शहर का पढ़ा-लिखा आदमी ज्यादा चालबाज है, ज्यादा चालाक है। अगर वह कभी-कभी भोला-भालापन भी दिखलाता है तो वह भी उसकी चाल होती है। उसके भोले-भालेपन में भी पूरा गणित होता है। और गांव का ग्रामीण आदमी अगर कभी भोला-भाला भी नहीं मालूम होता, तो भी उसके भोले-भालेपन के कारण ही। कभी बिल्कुल ही कठोर मालूम हो सकता है गांव का ग्रामीण, मगर वह भी उसके भोले-भालेपन का ही हिस्सा है। वह बच्चों की भांति है।
शांडिल्य कहते हैंः इस चिंता में पड़ना ही मत, ज्ञानीगण भी शरणागत होते और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। भक्ति का कोई लेना- देना नहीं है ज्ञानी या अज्ञानी से।
और इतना भी ख्याल रखना कि अंततः ज्ञानी को भी शरणागत होना ही पड़ता है।
जब शरणागत होना ही है, तो यह ज्ञान का बोझ इतने दिन तक और क्यों ढोना? यह गठरी क्यों सिर पर? ज्ञानी को भी अंततः समर्पण करना होता है, संकल्पवान को भी अंततः समर्पण करना होता है। कितने ही दूर तक तप तुम्हें ले जाए, ज्ञान तुम्हें ले जाए, एक अंतिम घड़ी आती है जब तुम्हें तप भी छोड़ना पड़ता है, क्योंकि तप का ही सूक्ष्म अहंकार बाधा बनने लगता है। एक घड़ी आती है, तब तुम्हें निष्कपट भाव से झुक जाना पड़ता है और तुम्हें कहना पड़ता हैः मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं ही नहीं हूं तो जानूंगा कैसे? मैं हूं कौन जो जान सकूंगा? तेरा रहस्य अपरंपार है! वही है ज्ञानी वस्तुतः जो एक दिन ज्ञान को भी छोड़ दे। क्योंकि ज्ञान को छोड़े बिना इस जगत के रहस्य से संबंध न हो पाएगा।
जानने को कहां संभव है? इतना अपरंपार है रहस्य! विस्मय इतना गहन है!
यह ज्ञान तो ऐसे ही है जैसे कोई चम्मच लेकर और सागरों को खाली करने में लगा है। यह हमारा ज्ञान तो ऐसे ही है जैसे कि हमने मुट्ठी में सागर की थोड़ी सी रेत भर ली है, और सोचते हैं सारी रेत हाथ में आ गई। थोड़े से शंख-सीप बीन लिए हैं सागर के तट पर, वही हमारे शास्त्र हैं। शंख-सीप! अनंत शेष है। जितना

जानो उतना ही पता चलता है कि कितना कम जानते हैं! जिस दिन आदमी वस्तुतः जानता है, उस दिन एकदम अज्ञानी हो जाता है।
सुकरात ने यही कहा है कि जब मैं जवान था, तो सोचता थाः सब मैं जानता हूं। जब मैं प्रौढ़ हुआ, तब मुझे यह अकल आई कि सब मैं नहीं जानता, थोड़ा सा जानता हूं, बहुत जानने को शेष है। और जब मैं बूढ़ा हुआ, तो मुझे यह अकल आई कि जानता ही क्या हूं! महाअज्ञानी हूं। मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन! इतना ही जानता हूं कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन! और जिस दिन सुकरात ने यह कहा कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन, उस दिन डेल्फी के देवता ने घोषणा की कि सुकरात महाज्ञानी हो गया।
जो लोग सुनने गए थे, उन्होंने सुकरात को लौट कर कहा कि डेल्फी के देवता ने घोषणा की है मंदिर में कि सुकरात महाज्ञानी हो गया है।
सुकरात ने कहा, यह भी हद्द हो गई। जिंदगी भर मैं चाहता था कि डेल्फी का देवता घोषणा करे कि सुकरात महाज्ञानी है, तब तो की नहीं, और अब जब मुझे पता चल गया कि मैं कुछ भी नहीं जानता, तब यह घोषणा! तब सुकरात को लगा कि शायद इसीलिए यह घोषणा की गई है, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। यह ज्ञानी का लक्षण है।
"ज्ञानीगण भी शरणागत होते और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति हो सकती है।"
सा मुख्येतरापेक्षितत्वात्।
"वह भक्ति ही मुख्य है, क्योंकि और-और साधनों में इसकी सहायता लेनी पड़ती है।"
शास्त्रों में एक वचन है। कहते हैं नारद ने विष्णु से पूछाः प्रभु, आप
तो सर्वव्यापक हैं, पर फिर भी विशेष करके कहीं रहते होंगे। विशेष करके कहां रहते हैं? किस जगह रहते हैं? विष्णु ने कहाः नाहं तिष्ठामि वैकुंठे योगिनां हृदयेपि च, मद्भक्ताः यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद! मैं जैसा भक्त के हृदय में प्रीति से रहता हूं, आनंदमग्न होकर, जैसा रसलीन होकर भक्त के हृदय में रहता हूं, वैसा मैं योगियों के हृदय में नहीं रहता, और वैकुंठ में भी नहीं। मेरा वैकुंठ भक्त का हृदय है। मद्भक्ताः यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद! जहां मेरे भक्त आनंदित हैं, आह्लाद से भरे हैं; जहां मेरे भक्त नाचते और गाते, जहां मेरे भक्त लीन होते, वहां रहता हूं। वहां विशेष कर रहता हूं। ऐसा मैं योगी के हृदय में नहीं भी रहता।
क्यों? क्योंकि योगी के हृदय में थोड़ा योगी भी रहता है। भक्त के हृदय में कोई भी नहीं, सन्नाटा है, शून्य है। वहां रहने की खूब जगह है। योगी के हृदय में तो भगवान को थोड़ी सी जगह है। योगी खुद भी तो रहेगा न! योगी की अकड़ कि मैंने इतने साधन किए, इतने अनुष्ठान किए, इतने विधि-विधान किए; इतना योग, इतना आसन, प्राणायाम, व्यायाम, न मालूम क्या-क्या कर रहा हूं, यह सब भी तो वहां रहेगा न! यह गोरखधंधा भी तो वहां चलेगा न! और अकड़ ज्ञान की, और अकड़ साधना की, यह अहंकार भी तो जगह रोकेगा न! एकाध कोने में कहीं भगवान को भी जगह देता होगा योगी, लेकिन ज्यादा जगह तो खुद ही घेर लेता है। उस सिंहासन पर भगवान को बैठने की जगह कहां है?
लेकिन भक्त के हृदय में? न कोई साधन है भक्ति में, न कोई विधि है भक्ति में, न कोई ज्ञान है भक्ति में, तो अकड़ पैदा होने का उपाय नहीं भक्ति में। भक्त तो विसर्जित हो गया। भक्त तो बचा नहीं। भक्त का हृदय तो कोरा आकाश है। वहां भगवान रहें, पूरी तरह से रहें। असल में उस कोरेपन का नाम ही भगवत्ता है। भगवान कुछ अलग नहीं है उस कोरेपन से। वह कोरापन ही भगवत्ता है। तुम्हारे हृदय में जितनी खाली जगह है, उतना ही भगवान का वास है। खाली जगह भगवान है। जो भरी जगह है, वह तुम हो। भरी जगह संसार है, खाली जगह भगवान है। जब तुम्हारा हृदय परिपूर्ण खाली है, इतना खाली कि यह भी कहने को कोई नहीं है कि मैं हूं, मैं का भाव गया, उसी क्षण--मद्भक्ताः यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद!
"वह भक्ति मुख्य है," शांडिल्य कहते हैं, "क्योंकि और-और साधनों में इसकी सहायता लेनी पड़ती है।"

ज्ञानी को भी एक दिन अंततः भक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो मिल सकता है, वही मिल सकता है। जो नहीं मिल सकता, नहीं मिल सकता। जो प्रयास की सीमा के बाहर है, वह प्रयास से नहीं मिलेगा। लाख उपाय करो, नहीं मिलेगा। लेकिन एक दिन जब थक जाओगे उपाय कर-कर के, टूट जाओगे उपाय कर-कर के, गिर पड़ोगे उपाय कर-कर के, तब तुम्हें यह बोध आएगा--कि हे प्रभु, अब तू सम्हाल! मैं जो कर सकता था, कर लिया। मुझसे जो हो सकता था, हो गया। अब तू सम्हाल! अब मेरे बस के बाहर है, इससे आगे मैं नहीं जा सकता। अब तू मेरा हाथ गह ले।
जिस दिन ज्ञानी, योगी, तपस्वी इस घड़ी में आता है--और यह घड़ी आती ही है, क्योंकि आदमी की बिसात कितनी? थोड़ी सी है। दस-पांच कदम चल ले सकता है, लेकिन फिर? अनंत की यात्रा पर आदमी चुक जाएगा। जहां आदमी चुक जाता है, वहीं समर्पण।
तो शांडिल्य कहते हैंः जब समर्पण ही करना है, तो पहले कदम पर ही क्यों नहीं? जब अंतिम कदम पर गिर ही जाना होगा, तो भक्त कहता है, हम पहले कदम पर ही गिरे जाते हैं! इतनी झंझट और क्यों लेनी? प्रयास करें ही क्यों? अगर प्रसाद से होता है, अगर झोली फैलाने से मिलता है भगवान, तो हम और अनुष्ठान-आयोजन करें ही क्यों? झोली फैला देंगे।
तुम कहोगे, अगर इतना सरल है तो फिर सभी लोग झोली क्यों नहीं फैलाते?
झोली फैलाना बहुत कठिन है। अहंकार कहता है--झोली, और तुम? फैलाने दो दूसरों को, मैं सिद्ध करके रहूंगा! मैं पाकर रहूंगा! मैं अपने से ही पाकर रहूंगा! अहंकार की यही तो भाव-दशा है। झोली नहीं फैला सकता। समर्पण नहीं कर सकता। मैं और भीख मांगूं? भगवान से ही सही, मगर मैं और भीख मांगूं? हम भगवान को भी विजय करने चले हैं। अहंकार सब जगह विजय की भाषा में सोचता है। ज्ञान भी एक दिन ज्ञान से थक जाता है; थक कर ज्ञान को छोड़ देता है और अज्ञान हो जाता है। और संकल्प भी एक दिन संकल्प से थक जाता है और समर्पण हो जाता है। कर्म भी एक दिन ऊब जाता कर्म से; थक कर बैठ जाता है; और वहीं, वहीं असली क्रांति घटती है।
बुद्ध ने छह वर्षों तक कठोर तपश्चर्या की--कठोर, जितनी आदमी कर सकता है! क्षत्रिय थे, जिद्दी थे, हठी थे, सम्राट थे, अहंकारी थे, सब दांव पर लगा दिया छह वर्षों में। लेकिन आदमी जहां तक प्रयास से जा सकता है, उससे आगे नहीं जा सके। सीमा आ गई। एक दिन सीमा आ गई। और चूंकि पूरी ताकत लगाई थी इसलिए छह साल में आ गई, अगर ऐसे ही धीरे-धीरे लगाई होती तो शायद छह जन्मों में नहीं आती। और भी पूरी लगाई होती तो शायद छह महीने में आ जाती। अगर कोई समग्ररूपेण शक्ति लगा दे तो एक क्षण में भी आ जाती है सीमा। कितनी त्वरा से तुम जाते हो, उतनी ही जल्दी सीमा आ जाती है। धीरे-धीरे जाओ तो देर लगती है आने में।
सीमा छह वर्षों में आ गई, बुद्ध थक कर गिर पड़े। और जिस रात थक कर गिर पड़े और सो गए बोधिवृक्ष के नीचे--साम्राज्य पहले छोड़ दिया था, उस दिन साधना भी छोड़ दी; उस दिन साधना को छोड़ कर सो रहे कि अब नहीं होता, अब अपने बस के बाहर है, बात खतम हो गई--उसी रात घट गई। सुबह आंखें खुलीं और वह जो आदमी खोजने निकला था, था ही नहीं अब भीतर; अब तो वह आदमी था जिसको मिल चुका। सुबह का आखिरी तारा डूबता था और बुद्ध ने उस आखिरी तारे को आकाश में डूबते देखा, उसी के साथ उनका भी आखिरी अहंकार डूब गया। उसी क्षण क्रांति घट गई, उसी क्षण रूपांतरण हो गया।
यही शांडिल्य कह रहे हैं। जिस दिन थक कर गिर जाओगे, जिस दिन थक कर पुकारोगे, जिस दिन छोटे बच्चे की तरह पुकारोगे, उस दिन वह आता है।

चार तिनके उठा के जंगल से
एक बाली अनाज की लेकर
चंद कतरे-से बासी अश्कों के
चंद फाके बुझे हुए लब पर
मुट्ठी भर अपनी कब्र की मिट्टी
मुट्ठी भर आरजूओं का गारा

एक तामीर की लिए हसरत
तेरा खानाबदोश बेचारा
शहर में दर-ब-दर भटकता है
तेरा कंधा मिले तो सर टेकूं

हर एक ऐसे ही भटक रहा है--
तेरा कंधा मिले तो सर टेकूं
और कंधा पास है। मगर सर तुम्हारा अकड़ा हुआ है। तुम जब चाहो टेकना, तब टेक लो। परमात्मा तकिया बनने को प्रतिक्षण मौजूद है। मगर तुम पहले अपने से थको और हारो। हारे को हरिनाम!
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 चौथा प्रवचन

प्रीति-स्नेह-प्रेम-श्रद्धा-भक्ति

पहला प्रश्नः क्या प्रीति स्नेह, प्रेम, श्रद्धा से गुजर कर स्वभावतः
ही भक्ति में रूपांतरित होती है?

स्वभावतः और अनिवार्यतः। जैसे बीज बोया, सम्यक ऋतु हो, ठीक भूमि हो,
जल मिले, सूर्य की किरण मिले, तो स्वभावतः और अनिवार्यतः अंकुरित होगा। बाधाएं हों तो कठिनाई होगी। भूमि ठीक न हो, पथरीली हो; सूरज उपलब्ध न हो, जल न मिले, तो बीज अंकुरित नहीं होगा। पूरी क्षमता थी, लेकिन मार्ग में चट्टानें पड़ गईं।
बीज अंकुरित हो, तो स्वभावतः और अनिवार्यतः वृक्ष बनेगा। लेकिन बाधाएं हो सकती हैं, दुर्घटनाएं हो सकती हैं। कोई पशु आए और चर जाए, कोई बागुड़ न लगाए, रक्षा न करे, कोई बच्चा खेल-खेल में तोड़ जाए। तो बागुड़ चाहिए होगी। थोड़े दिन रक्षा करनी होगी। जल्दी ही घड़ी आ जाएगी जब वृक्ष अपने ही बल पर खड़ा हो सकेगा; फिर कोई बागुड़ की जरूरत न होगी; किसी माली की भी जरूरत न होगी।
और जब वृक्ष हो और सम्यक पोषण मिले, तो एक न एक दिन फूल भी खिलेंगे और
फल भी लगेंगे। यह सब सहज ही होता है।
प्रीति की ऊर्जा बननी ही चाहिए भक्ति। प्रीति भक्ति बनने को ही पैदा हुई है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य भगवान होने को पैदा हुआ है। मनुष्यता भगवत्ता में रूपांतरित होनी ही चाहिए। वह उसका अंतर्निहित स्वभाव है।
ऐसा कौन आदमी है जो प्रभुता न पाना चाहता हो? भला गलत ढंग से पाना चाहता हो--धन पाकर प्रभुता पाना चाहता हो। नहीं मिलती धन पाकर, लेकिन आकांक्षा तो सच है। पद पाकर प्रभुता पाना चाहता हो। नहीं मिलती पद पाकर, दिशा गलत है, लेकिन प्रेरणा तो सच है।
प्रत्येक व्यक्ति प्रभु होना चाहता है। प्रभु हुए बिना चैन नहीं। इसलिए जहां-जहां तुम्हारी प्रभुता को चोट पड़ती है, वहीं संताप होता है। जहां तुम्हें कोई दीन-हीन कर देता है, वहीं पीड़ा होती है, वहीं कांटा चुभता है। तुम परम प्रभुता चाहते हो। तुम परम स्वातंष्य चाहते हो। तुम अपने ऊपर कोई बाधा नहीं चाहते। यही तो धर्म की खोज है।
तो इसे हम ऐसा कहें कि मनुष्य परमात्मा होना चाहता है, या हम ऐसा कहें
कि प्रीति की ऊर्जा भक्ति होना चाहती है, एक ही बात है। प्रीति जब भक्ति बनती है, तभी व्यक्ति समष्टि बनता है।
लेकिन मार्ग में बाधाएं बहुत हैं। असली सवाल बाधाओं का है। स्नेह, प्रेम और श्रद्धा से गुजर ही नहीं पाते तुम। तुम्हारा स्नेह भी दूषित होता है, इसलिए अटक जाता है। तुम्हारे स्नेह में शुद्धता नहीं होती कि उड़ जाए आकाश की तरफ। तुम्हारे स्नेह में पंख नहीं होते, पत्थर बंधे हैं। तुम स्नेह भी करते हो तो बड़ी कंजूसी से करते हो। वही कंजूसी खा जाती है, वही कृपणता खा जाती है। जितना कृपण स्नेह होगा, उतनी ही संभावना कम है कि वह प्रेम बन सके।
फिर प्रेम में भी तुम्हारे बड़ी ईर्ष्याएं हैं, बड़ी घृणाएं हैं। तुम्हारा प्रेम भी पवित्र नहीं। तुम्हारे प्रेम में भी पावनता नहीं। तुम्हारे प्रेम की अग्नि में बहुत धुआं है। ज्योति शुद्ध नहीं। इसलिए वहां अटक जाते हो। फिर वहीं उलझ जाते हो। फिर प्रेम की उस तथाकथित भंवर में ही डोलते रहते हो। वहीं नष्ट हो जाते हो। श्रद्धा का जन्म नहीं हो पाता। स्नेह शुद्ध हो तो प्रेम बने, प्रेम शुद्ध हो तो श्रद्धा बने और श्रद्धा शुद्ध हो तो भक्ति। शुद्धि के सूत्र को सम्हालना होगा।
तुम्हें अपने बेटे से प्रेम है। अपने के कारण प्रेम किया तो अशुद्ध
हो गया। फिर तो बेटे से न हुआ प्रेम, अपने अहंकार से ही हुआ--मेरा बेटा है। यह तो मैं को ही प्रेम किया प्रकारांतर से। बेटे के माध्यम से अपने अहंकार

की ही पूजा की। कल तुम्हें पता चल जाए, पुरानी किताबें उलटते-पलटते कोई पत्र मिल जाए और पत्र से पता चले कि तुम्हारी पत्नी किसी के प्रेम में थी जब यह बेटा पैदा हुआ, संदेह उमग आए, उसी क्षण स्नेह तिरोहित हो गया। यह कोई स्नेह था? इस बेटे से संबंध ही न था। अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती, बात खतम हो गई।
तुम्हें अपनी पत्नी से प्रेम है। यह मेरी है इसलिए?
जहां "मेरा" बहुत वजनी हो जाता है, वहीं बीज के मार्ग में चट्टान आ जाती है। अहंकार बड़ी से बड़ी चट्टान है, जब तक न टूटे, तब तक कोई बीज अंकुरित नहीं होगा। अंकुरित हो जाए तो भी वृक्ष न बनेगा। वृक्ष बन जाए तो फूल न आएंगे। फूल लग जाएं तो फल न आएंगे। हजार तलों पर अहंकार बाधा देता है। और उसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
जिस स्त्री को तुमने प्रेम किया है, इसको दो ढंग से प्रेम किया जा सकता है। एक ढंग तो कि मेरी है इसलिए। और एक ढंग कि परमात्मा का सौंदर्य प्रकट हुआ है, परमात्मा की है। वही झलका है। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ है, वह परमात्मा का ही आगमन हुआ है। परमात्मा मेहमान बना है तुम्हारे घर। स्वागत करो, सम्मान करो। मोह-ममता के बंधन मत डालो। बेटे को मुक्त रखो। और जब तक बाप बेटे का सम्मान न करे, तब तक यह आकांक्षा आज नहीं कल बड़ा दुख देगी कि बेटा मेरा सम्मान करे। सम्मान के उत्तर में सम्मान आता है।
इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारी उम्र ज्यादा है। बेटा अभी-अभी परमात्मा के घर से आया है, ताजा है। अभी-अभी परमात्मा का स्पर्श उस पर है। अभी-अभी परमात्मा की गंध भी उस पर है। इसीलिए तो सभी बच्चे सुंदर होते हैं--कुरूप बच्चा खोजना कठिन है। अभी डूबे हैं। अभी आ गए हैं लेकिन पूरे नहीं आ पाए हैं संसार में; समय लगेगा। संसार की भाषा सीखेंगे, गणित, चालबाजियां सीखेंगे, धोखाधड़ी सीखेंगे, समय लगेगा। अभी कोरे कागज हैं। सम्मान दो, सत्कार दो, स्नेह दो। लेकिन मेरे हैं, इसलिए नहीं। इसलिए कि परमात्मा ने फिर पृथ्वी पर अवतरण किया।
अगर तुम अपने बच्चे में परमात्मा को देख सको तो किसी कृष्ण की पूजा करने, किसी बालगोपाल की पूजा करने जाना पड़ेगा? बालगोपाल रोज तुम्हारे घर आते हैं और तुम्हें सूरदास की शरण लेनी पड़ती है बालगोपाल की भक्ति करने के लिए? थोथे हो तुम! सूरदास का भजन जब तुम पढ़ते हो कि पैर में पैजनिया बांध कर कृष्ण ठुमक-ठुमक कर चलते हैं, तब तुम आह्लादित होते हो, और तुम्हारे घर कृष्ण पैर में पैजनिया बांध कर ठुमक-ठुमक अभी चल रहे हैं--गीत नहीं, सचाई में! सपने में नहीं, किसी कवि की कविता में नहीं, यथार्थ में! मगर वहां तुम्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। वहां मेरे का पत्थर पड़ा है। वहां मेरे के कारण पांव में बंधी पैजनिया नहीं सुनाई पड़ती। तुम्हारे कान बहरे हो गए हैं। तुम दीवाल की तरह हो। तुम्हारा दर्पण कुछ भी प्रतिफलित नहीं करता। सूरदास के वचन सुन कर तुम आंदोलित होते हो, और कितने बालगोपाल चारों तरफ खेल रहे हैं, उन बालगोपाल को देख कर तुम सिर्फ नाराज होते हो--कि शोरगुल न करो! भाग जाओ यहां से! अभी मैं अखबार पढ़ता हूं, अभी यहां पास न आओ! अभी मैं गणित का हिसाब करता हूं, अभी मैं खाताबही लिखता हूं! अभी मैं पूजा- पाठ कर रहा हूं! अभी बच्चों का आगमन यहां निषिद्ध है।
तुम क्या पूजा-पाठ करोगे? तुम्हारे पास आंखें पत्थर की हैं। तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। हर बच्चे में कृष्ण उतना ही है जितना कृष्ण में था, देखने की आंख चाहिए। हर पत्थर में मूर्ति छिपी है, खोजने की आंख चाहिए। कण-कण में वह विराजमान है।
जिस क्षण तुम छोटे से बच्चे में कृष्ण को देख सकोगे, कि राम को, कि क्राइस्ट को, उसी क्षण स्नेह शुद्ध हुआ। स्नेह को पंख लगे। अब स्नेह को पृथ्वी पर नहीं रोका जा सकता, बीज फूटा, अंकुर बना, उठने लगा ऊपर। देखते हो रूपांतरण? जब तक बीज बीज था तो ऊपर नहीं उठ सकता था; नीचे गिर सकता था, ऊपर नहीं उठ सकता था, ऊर्ध्वगमन नहीं था। नीचे तो जा सकता था, कितने ही गहरे गड्ढे में उतर सकता था, लेकिन एक इंच भी ऊपर नहीं उठ सकता था। क्रांति देखते हो? बीज टूट कर अंकुरित हो गया, क्रांति घट गई, अब अंकुर ऊपर उठने लगा, चमत्कार हो गया।

तुमने कहानी सुनी है, जिस व्यक्ति ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत खोजा, न्यूटन ने, वह एक बगीचे में बैठा है और एक सेव का फल वृक्ष पर पक गया और गिरा। उस वृक्ष से गिरते फल को देख कर उसके मन में जिज्ञासा उठी कि हर चीज नीचे की तरफ ही क्यों गिरती है? पत्थर को ऊपर फेंकते हैं, वह भी नीचे लौट आता है। छलांग लगाओ, छलांग पूरी भी नहीं हो पाती कि वापस जमीन पर आ जाते हो। हर चीज जमीन पर लौट आती है। इससे उसने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत निकाला कि जमीन खींचती है चीजों को अपनी तरफ।
यह अधूरा सिद्धांत है। अगर मेरा कहीं न्यूटन से मिलना हो जाए तो उससे मैं कहूं कि तूने यह प्रश्न तो पूछा, लेकिन इससे भी गहरा प्रश्न यह था कि फल यह ऊपर पहुंचा कैसे? हमने तो बीज बोया था जमीन में; हमने तो गड्ढे में डाला था बीज, फल लगा आकाश में! यह फल चढ़ा कैसे? फल टूट कर गिरता है तो जमीन पर गिरता है, यह सच है। तो इससे एक सिद्धांत तय होता है कि जमीन खींचती है। मगर कोई ताकत होनी चाहिए जो ऊपर की तरफ भी खींचती है; नहीं तो वृक्ष उठेगा ही कैसे?
चमत्कार है वृक्ष का उठना! होना नहीं चाहिए, नियम के अनुकूल नहीं है।
और ऊपर की फुनगी तक भी पानी की धार पहुंचती है। कोई पंप भी नहीं लगा हुआ है। ऊपर की आखिरी फुनगी तक जलधार उठती है--उठना पड़ता है; गुरुत्वाकर्षण के नियम को तोड़ कर उठती है।
कोई नीचे की तरफ खींच रहा है, कोई ऊपर की तरफ भी खींच रहा है। तुम कहां खिंचोगे, तुम पर निर्भर है। बीज अगर टूटे न, तो नीचे की तरफ जाएगा; बीज अगर टूट जाए, तो ऊपर की तरफ जाएगा। अहंकार अगर टूटे न, तो नीचे की तरफ ले जाता है, नरक की यात्रा करवाएगा; अहंकार अगर टूट जाए, तो सारा स्वर्ग तुम्हारा है, तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा है--ऊपर की तरफ ले जाएगा। अहंकार टूटे न, तो पत्थर है, छाती में लटकी चट्टान है--उड़ोगे कैसे? अहंकार टूट जाए तो पंख। फिर खूब उड़ान हो सकती है।
तो स्नेह से अहंकार को हटा लो, ममत्व को विदा कर दो और तुमने जहर छांट दिया। फिर स्नेह प्रेम में बदलेगा। फिर ध्यान रखना कि प्रेम में कहीं छिपा हुआ पीछे से अहंकार न आ जाए। नहीं तो सारे प्रेम का आनंद विषाक्त हो जाता है।
तुम देखते हो प्रेमियों को, सुख तो कम, दुख ज्यादा पाते मालूम पड़ते हैं। प्रेम के नाम पर सुख तो कभी-कभार मिलता है, दुख रोज मिलता है। प्रेम में जितना दुख मिलता है, और कहीं भी नहीं मिलता। इसलिए बहुत समझदारों ने तो तय कर लिया है कि प्रेम की झंझट में ही न पड़ेंगे। कभी सौ में एक मौके पर तो सुख और निन्यानबे मौकों पर दुख। कभी एक फूल खिलता है, निन्यानबे तो कांटे ही चुभते हैं। छाती क्षार-क्षार हो जाती है। प्रेमियों को तुम रोते पाओगे। हंसते कभी प्रेमियों को पाते? द्वेष जगता, ईर्ष्या जगती, वैमनस्य पैदा होता--मालकियत अड़चन लाती। मेरी पत्नी! अब तुम्हें फिकर करनी पड़ती है कि मेरी पत्नी, इसके चारों तरफ एक दीवाल उठा दूं। इस पर किसी की नजर न लग जाए। इसके चारों तरफ ऐसी दीवाल उठा दूं कि कोई इसे देख न पाए--यह भी किसी और को न देख पाए! बड़ा भय तुम्हारे भीतर पैदा हो गया--कि आज है तुम्हारी, कल कहीं किसी और की न हो जाए!
कौन किसका है यहां? सब अजनबी हैं। राह पर दो घड़ी साथ हो लिए हैं, नदी- नाव संयोग है। कौन किसका हो सकता है? यह मालकियत का दावा! इसी दावे में अहंकार आ गया। जब तुमने कहा--मेरी पत्नी, मेरा पति, तभी अहंकार आ गया। और अहंकार आया कि पंख कटे। अहंकार आया कि नरक की तरफ यात्रा शुरू हुई। अब चिंता आएगी, अब फिकर लगेगी, भय पैदा होगा; दफ्तर में बैठे रहोगे, घर की सोचोगे--पत्नी न मालूम किसी के साथ हंसती-बोलती न हो! अब हजार दुश्चिंताएं तुम्हें घेरेंगी। और तुम चौबीस घंटे पहरेदार की तरह खड़े रहोगे। पति-पत्नी एक-दूसरे पर पहरा देते रहते हैं। काम ही उनका यह हो जाता है--मुफ्त के पहरेदार! उनका धंधा ही यह हो जाता है। पति को घड़ी देर हो गई आने में घर कि बस पत्नी आगबबूला है; तैयार बैठी है; टूट ही पड़ेगी पति पर। पति रास्ते में चला आ रहा है, हजार तरह की कहानियां गढ़ रहा है--क्या कहूंगा,

कैसे बचूंगा। दफ्तर में ज्यादा काम आ गया था, कि कहीं मजबूरी में रुक जाना पड़ा, कि किसी मित्र से मिलना हो गया--हजार बहाने खोज रहा है।
यह प्रेम है? इसमें भरोसा ही नहीं है, यह कैसा प्रेम? इसमें जरा सा भी, अंशमात्र भी एक-दूसरे के प्रति सम्मान नहीं है, अपमान है। इसमें दूसरे की बड़ी गहरी निंदा है। दूसरे की क्षुद्रता की तलाश है। तो फिर अटक गए। फिर भक्ति तक न पहुंच पाओगे। और भक्ति तक न पहुंचे तो भगवान कहां? फिर लाख तर्क करो, लाख सोच करो, लाख शास्त्र पढ़ो, सब व्यर्थ है।
प्रेम को शुद्ध होने दो। अहंकार से प्रेम को मुक्त होने दो। बीच में मेरे-तेरे का भाव न आए। मालकियत का प्रश्न न उठे।
देखते हैं, पति को हम स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब मालिक। हालांकि पत्नी अपने को दासी कहती है, मगर मानता कौन है! मानती कौन पत्नी अपने को दासी! कहने की बात है। दासी होने में भी उसका ढंग है मालिक होने का। वह स्त्रैण ढंग है मालिक होने का। पुरुष गर्दन पकड़ता है गर्दन पकड़नी हो, स्त्री पैर पकड़ती है अगर गर्दन पकड़नी हो। अलग-अलग ढंग हैं। उनके अलग मनोविज्ञान हैं। पुरुष क्रोध में आ जाए तो स्त्री को मारता है। स्त्री क्रोध में आ जाए तो खुद को मारती है। उनके अलग मनोविज्ञान हैं। मगर खुद को मार कर वह पुरुष को ही मार रही है।
तुमने देखा, जब कोई स्त्री अपने बच्चे को मारने लगती है, तो वह पड़ोसी
के बच्चे को मार रही है, अपने बच्चे को नहीं मार रही है। अगर पड़ोसी ने शिकायत की है, तो वह टूट पड़ती है अपने बच्चे पर। मगर, अगर गौर से देखो उसे तो वह पड़ोसी के बच्चे को मार रही है। मगर पड़ोसी के बच्चे को तो मारा नहीं जा सकता, इसलिए अपने को ही मार रही है।
पति पर तो हाथ उठाया नहीं जा सकता, इसलिए स्त्रियां अपने को पीट लेती हैं। अपने बाल नोच लेती हैं। पति जब भी सोचता है क्रोध में, तो सोचता है, इस पत्नी को मार ही डालूं। पत्नी जब भी सोचती है क्रोध में, सोचती है, आत्महत्या ही कर लूं। ये उनकी भाषाओं के भेद हैं। मगर हिंसा, क्रोध, वैमनस्य, सब पूरा का पूरा खड़ा है।
नहीं, प्रेम अगर ऐसे उलझ गया अहंकार में, तो उठ न पाएगा। मुक्त करो प्रेम को, मालकियत तजो। किसी तरह की काराएं मत खड़ी करो एक-दूसरे के ऊपर। पिंजड़े मत बनाओ। पक्षी सुंदर हैं जब वे आकाश में उड़ते हैं। और इसीलिए तो तुम मोहित हो गए थे उस आकाश में उड़ते पक्षी का सौंदर्य देख कर। फिर उस पक्षी को तुमने पिंजड़े में बंद कर लिया, और माना कि तुमने बड़ा प्रेम दिखलाया और पिंजड़ा सोने का बनवाया, और माना कि तुमने बड़ा प्रेम दिखलाया और पिंजड़े पर तुमने हीरे-जवाहरात जड़े, मगर पिंजड़ा पिंजड़ा है, आकाश नहीं।
फिर तुम पाओगे कि यह पक्षी जो पिंजड़े में बैठ गया उदास हो गया है, तो तुम बेचैन होते हो। और तुम बड़े सोचते हो अनेक बार कि क्या हुआ, अब वैसा सौंदर्य नहीं! यह स्त्री अब वैसी सुंदर नहीं मालूम होती जैसी तब मालूम होती थी!
लेकिन तब यह खुला हुआ पक्षी थी आकाश में, अब यह तुम्हारे पिंजड़े में बंद पत्नी है। तब यह स्त्री थी, अब यह पत्नी है। स्त्री में एक सौंदर्य है, पत्नी में सौंदर्य नहीं रह जाता। तब यह पुरुष था, पुरुष में एक सौंदर्य है क्योंकि स्वतंत्र था, अब यह पति है! पति में कहां सौंदर्य!
कहते हैं, कितना ही बड़ा हो पति और कितना ही महान हो पति, अपनी पत्नी के सामने बड़ा और महान नहीं होता। वहां तो सिकंदर भी दब्बू हो जाते हैं। अगर असलियत जाननी हो पति की तो पत्नी से पूछना। कोई पत्नी अपने पति को सम्मान नहीं करती। कर ही नहीं सकती।
और पति कितनी ही पत्नी के सौंदर्य की प्रशंसा करे, सब थोथी है, औपचारिक है, झूठी है। उसे सौंदर्य अब दिखाई नहीं पड़ता। कभी दिखा था। अब तो यही मन में ख्याल उठता है--यह स्त्री धोखा दे गई! क्या सिर्फ सौंदर्य सजावट का था? इसने सुंदर वस्त्र पहने थे, प्रसाधन किया था, इसलिए सुंदर लगी थी? क्योंकि अब यह सुंदर नहीं लगती। किस पति को अपनी पत्नी सुंदर लगती है? कई बार तो ऐसा हो जाता है कि राह चलती कोई साधारण स्त्री भी ज्यादा सुंदर लगती है, अपनी सुंदरतम पत्नी से भी। क्यों? स्वतंत्रता है वहां। तुम्हारी

पत्नी तुम्हारी मुट्ठी में है। जो तुम्हारी मुट्ठी में है, दो कौड़ी का हो गया। जो खुले आकाश में उड़ रहा है... । एक तोता तुम्हारे पिंजड़े में बंद है और एक तोता एक आम से दूसरे आम पर जा रहा है, इन दोनों में कुछ भेद है? कुछ फर्क दिखाई पड़ता है? यह जो स्वतंत्रता है, यही भेद है।
प्रेम स्वतंत्र करता है। और जब प्रेम स्वतंत्र करता है, तो प्रेम में पंख होते हैं। और जब प्रेम स्वतंत्र करता है, तो आज नहीं कल श्रद्धा में रूपांतरित होगा। और अगर प्रेम परतंत्रता बनता है, तो फिर श्रद्धा तक नहीं जा सकेगा।
तो प्रेम को स्वतंत्रता दो। जिसे तुमने चाहा है, उसे मुक्त करो, उसे मुक्ति दो। और तुम जितनी मुक्ति अपने प्रेमपात्र को दे सकोगे, उतनी ही मुक्ति तुम्हारा प्रेमपात्र भी तुम्हें दे सकेगा। तुम जितना परतंत्र अपने प्रेमपात्र को करोगे, उतने ही परतंत्र तुम भी हो जाओगे। ध्यान रखना, किसी को गुलाम बनाते वक्त हमेशा याद रखना, तुम भी गुलाम बन रहे हो। गुलामी इकतरफा नहीं होती है, दोहरी होती है। बनाओ किसी को गुलाम और तुम गुलाम के भी गुलाम बन गए। मुक्त करो किसी को, उसी मुक्ति में तुम्हारी मुक्ति भी है। तब श्रद्धा का तत्व जन्मता है।
श्रद्धा का अर्थ हैः इस संसार के भीतर प्रीति का बिरवा जितना ऊंचा आ सकता था, आ गया। पौधे ने अपनी पूरी ऊंचाई पा ली। अब इससे ऊपर जाने की कोई जगह नहीं है। जब पौधा अपनी पूरी ऊंचाई पा लेता है, तो उसके भीतर जो रस-स्रोत अब तक ऊंचाई पाने में लगे थे, वे ही रस-स्रोत अब फूल बनते हैं, फल बनते हैं। जब तक पौधा ऊंचाई पाने में लगा है, तब तक उसकी सारी ऊर्जा ऊंचाई पाने में लग जाती है। तब तक फूल और फल नहीं निर्मित हो सकते। फूल और फल निर्मित होते हैं अत्याधिक्य से, आधिक्य से। जब इतना ज्यादा है, अब और उसका कोई उपयोग भी नहीं रहा है, जितना बढ़ना था बढ़ लिए, जो होना था हो लिए, अब इस ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं, यही ऊर्जा भर-भर कर फलों में वापस पृथ्वी पर गिरने लगती है।
जब श्रद्धा आ गई, तो प्रीति का बिरवा अपनी पूरी ऊंचाई पर आ गया। अब इसी में भक्ति के फूल, भक्ति के फल लगेंगे। तुम मंदिर फूल ले जाते हो न, वे प्रतीक हैं सिर्फ; वे असली फूल नहीं हैं, असली फूल तो भक्ति है, वह श्रद्धा के वृक्ष में लगेगा। वृक्षों से तोड़ कर तुम जो फूल मंदिर में चढ़ा आते हो, वे तो प्रतीक हैं, संकेत हैं। अपने वृक्ष को बढ़ने दो और अपने फूल किसी दिन चढ़ाओ--ऐसी आशा रखो, ऐसा संकल्प जगाओः किसी दिन मैं अपने फूल चढ़ा सकूं--उसी दिन प्रार्थना पूरी होगी।
श्रद्धा के बाद भक्ति का जन्म है। और यह सब अनिवार्यतः स्वभावतः होता है। तुम्हारे किए नहीं होता, लेकिन तुम बाधा जरूर डाल सकते हो; तुम्हारे किए एक ही काम हो सकता है इस दुनिया में, वह है बाधा। तुम बाधा जरूर डाल सकते हो, और तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है, बाधा भर न डालो तो सब चीजें अपने से हो रही हैं। और जब तुम अपने को पाओ कि कोई बाधा डाल रहे हो, तब हट जाओ, बाधा को हटा लो।
तन-मन का मधु सब रीत चुका, अब मधु केवल मधुसूदन में।

सब दिन जी भर ममता बांटी, तन्मय होकर, मन्मय होकर
प्राणों का सार लुटा डाला, अंतस के जल में धो-धो कर
भीतर इतना रस उमड़ा था, कुछ ओर न था, कुछ छोर न था
लगता था भर दूं सबका घट, लगता था भर दूं सबका घर
अवशेष हुई रस की चर्चा, अब रस केवल रस-नंदन में।
मत मीत करो मधु की बातें, अब मधु केवल मधुसूदन में।

इस छवि को छूकर सिक्त हुई सपनों की चंचल दाहकता
इस रूप-जयी के जादू में जकड़ी है मेरी चेतनता निर्बाध निरंतर जब जिसने देखा है इस लीलाधन को
कुछ और न देखा फिर उसने, कैवल्य बनी उसकी जड़ता
साकार हुआ लालित्य स्वयं, इस ज्योतिरमण सम्मोहन में।

गीतों में मधु अवशिष्ट कहां, अब मधु केवल मधुसूदन में।

अब प्रीति उसी रसवर्षी में, जीवनधर्मी चिरनूतन में।
अवशेष नहीं मधु की गाथा, अब मधु केवल मधुसूदन में।

लेकिन लंबी यात्रा है। तीर्थयात्रा कहें। स्नेह से लेकर भक्ति तक। ये
सब बीच के पड़ाव हैं--प्रेम और श्रद्धा। इन पड़ावों को मंजिल मत समझ लेना, कहीं रुकना नहीं है, जब तक कि मधुसूदन तक पहुंचना न हो जाए।
तन-मन का मधु सब रीत चुका, अब मधु केवल मधुसूदन में।
लुटा दो सब--स्नेह में, प्रेम में, श्रद्धा में। बांट दो सब, बचाना मत।
बचाया तो सड़ जाएगा, बांटा तो बच जाएगा। उलीच दो, दोनों हाथों से उलीच दो।
अगर तुमने स्नेह पूरा उलीचा, तुम पाओगे प्रेम पका। तुमने अगर प्रेम पूरा उलीचा, तुम पाओगे श्रद्धा पकी। तुमने अगर श्रद्धा पूरी उलीची, तो तुम पाओगे भक्ति पक गई। जिसने स्नेह में कंजूसी की, वह स्नेह पर अटक गया। जिसने प्रेम में कंजूसी की, वह प्रेम पर अटक गया। जहां कंजूसी की, वहीं अटके। कंजूसी भर मत करना, मैं इसे ही संन्यास कहता हूं, कंजूसी भर मत करना, कृपणता भर मत करना। जैसा प्रभु ने तुम्हें दिया है, बेशर्त, वैसा ही तुम दे डालो। जो तुम्हें मिला है, उसे बांट दो। यहां से कुछ ले जाने का भाव न हो, यहां सब दे जाने का भाव हो। फिर तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा, आज नहीं कल तुम उस घड़ी में आ जाओगे जहां कह सकोगे--
अब प्रीति उसी रसवर्षी में, जीवनधर्मी चिरनूतन में।
अवशेष नहीं मधु की गाथा, अब मधु केवल मधुसूदन में।
एक दिन परमात्मा में ही एकमात्र रस रह जाता है। क्योंकि सब रसों में उसी की झलक मिलती है। स्नेह में भी उसी को देखा था सात पर्दों के पार से। प्रेम में भी उसी को देखा था, पर्दे कुछ और कम हो गए थे। श्रद्धा में भी उसे देखा था; एक ही पर्दा रह गया था। इसीलिए तो गुरु भगवान जैसा कहा शास्त्रों ने, गुरुर्ब्रह्मा। क्यों कहा? इसीलिए कहा कि श्रद्धा और भक्ति में एक ही पर्दा है। गुरु और ब्रह्मा में एक ही कदम का फासला है। झीना सा पर्दा है। इसलिए गुरु में थोड़ी-थोड़ी भगवान की झलक मिलने लगती है। पारदर्शी पर्दा है। जैसे स्वच्छ कांच हो।
लेकिन अशेष भाव से लुटा डालना प्रक्रिया है। इसे यज्ञ कहो, तप कहो, भक्ति कहो, नाम के भेद हैं। सब समर्पित कर देना, इतना सूत्र आ जाए तो तुम्हें कहीं कोई रुकावट न पड़ेगी। जहां तुम कृपण होते हो, वहीं रुक जाते हो। अकृपणता में प्रवाह है। और प्रवाह एक दिन निश्चित मधुसूदन तक पहुंच जाता है।

दूसरा प्रश्नः जो वर्णनातीत है, उसे कह कर क्यों कोई शांडिल्य मनुष्यता के सामने एक पत्थर धर देता है?

शांडिल्य ने न कहा हो कि वर्णनातीत है, तो तुम्हें यह भी पता न चलेगा
कि वर्णनातीत है। शांडिल्य ने न कहा हो कि शब्दों में नहीं कहा जा सकता, तो तुम्हें यह भी पता न चलेगा कि शब्दों में नहीं कहा जा सकता।
शब्दों में नहीं कहा जा सकता, यह सच है, लेकिन इशारे किए जा सकते हैं। शब्द में सत्य नहीं है। लेकिन शब्द में इशारे हैं। इशारे पकड़ो। अगर शब्द पकड़े तो पत्थर रास्ते में पड़ जाएंगे। फिर तुम हिंदू हो जाओगे, मुसलमान हो जाओगे, ईसाई हो जाओगे, जैन हो जाओगे, फिर तुम्हारे रास्ते में बहुत पत्थर आ गए। अगर शब्द न पकड़े, इशारा पकड़ा... भेद बड़ा है, मील के पत्थर लगे हैं न रास्ते पर, मील के पत्थरों को पकड़ कर तुम बैठ नहीं जाते। कोई मील का पत्थर पकड़ कर बैठने के लिए नहीं है, उस पर तीर लगा है कि आगे चलो।
झेन फकीर रिंझाई से किसी ने पूछा, इस जगत में सबसे महत्वपूर्ण बात सीखने योग्य क्या है?
रिंझाई ने कहा, वॉक ऑन! आगे बढ़ो।

वह थोड़ा चौंका--आगे बढ़ो! यह आदमी मुझ पर नाराज है, मुझसे आगे बढ़ो यह कह रहा है, या कि इसने--संसार में सीखने योग्य एक ही बात है--आगे बढ़ो!
उसको थोड़ा चिंतामग्न देख कर रिंझाई ने कहा कि देखो, तुमने यह भी पकड़ लिया। तुम इससे भी आगे न बढ़ सके।
संसार में कुछ पकड़ो मत, बढ़ते जाओ। एक दिन वह जगह आ जाती है जिसको परमात्मा कहें। यह संसार यात्रापथ है। इस पर बहुत मील के पत्थर हैं। लेकिन लोगों ने मील के पत्थर पकड़ लिए हैं। जब पहली दफा अंग्रेजों ने भारत में मील के पत्थर लगाए तो बड़ी अड़चन हुई। क्योंकि गांव-देहात के लोग लाल रंगा हुआ पत्थर देख कर समझें--हनुमानजी! फूल चढ़ा कर, टीका लगा कर उन्होंने पूजा शुरू कर दी। वे जो तीर-मीर बना जाएं, लिख जाएं इतने मील दूरी, फलां- ढिकां, वह सब बेकार कर दी उन्होंने, वे उस पर और सिंदूर वगैरह पोत कर हनुमानजी बना दें। कहते हैं कई वर्षों तक अंग्रेजों को यह झंझट करनी पड़ी कि भई यह मील का पत्थर है, हनुमानजी नहीं हैं! पूजा की ऐसी अंधी वृत्ति! शांडिल्य ने कुछ कहा है, उसे पकड़ोगे तो पत्थर हो जाएगा; उसे समझोगे तो मुक्ति। तुम पर निर्भर है, शांडिल्य ने तुम्हारे रास्ते में पत्थर नहीं रखे हैं। अगर रखे भी हों तो पत्थर इसलिए रखे हैं कि तुम सीढ़ियां बना लो। और जब तुम सीढ़ी बना लेते हो किसी पत्थर को तो वह पत्थर नहीं रह जाता, उस पत्थर के कारण तुम ऊंचे उठ जाते हो। तुम्हारी दृष्टि व्यापक हो जाती है। शास्त्रों पर चढ़ो, शास्त्रों को सिर पर मत ढोओ। शास्त्रों को सीढ़ियां बनाओ, ताकि तुम ऊंचे उठ सको, ताकि तुम्हारी दृष्टि बड़ी हो जाए, ताकि विराट तुम्हें दिखाई पड़ सके। शास्त्रों का उपयोग करो, पूजा नहीं। पूजा की तो पत्थर हो गए। लोग पत्थर की पूजा थोड़े ही करते हैं, मैं तुमसे कहता हूंः तुम जिसकी पूजा करोगे वही पत्थर हो जाता है। पूजा करने में ही पत्थर हो जाता है। पूजा करने के क्षण में ही तुमने सब नष्ट कर दिया। शांडिल्य ने जो कहा है, उसे समझ लो और भूल जाओ।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कहते हैं जब कुछ तो समझ में आता है, लेकिन फिर हम भूल जाते हैं। तो मैंने उनसे कहा कि फिर याद रखने की जरूरत ही नहीं; समझ में आ गया, बात खतम हो गई। याद रखने की जरूरत क्या है? कंजूस मन, कृपण मन, वह हर चीज को याद रख लेना चाहता है। समझने की उतनी चिंता नहीं है, जितनी याद रखने की चिंता है। समझ गए, आत्मसात हो गया, तुम्हारे खून में मिल गया, तुम्हारी मज्जा में सम्मिलित हो गया। तुम्हारा हिस्सा हो गया, जब जरूरत पड़ेगी, काम आएगा। कल जब कोई गाली देगा, तब उसी तरह क्रोध पैदा न होगा जैसे पहले हुआ था--यह काम आया। कल दुख आएगा और फिर भी तुम अनुद्विग्न रह सकोगे--यह काम आया। मैंने जो कहा उसको शब्दशः याद रख लिया, कोई परीक्षा थोड़े ही देनी है। कोई विश्वविद्यालय की परीक्षा में थोड़े ही बैठना है कि वहां जाकर वमन कर दिया, जो-जो शब्द कंठस्थ कर लिए थे उनकी उलटी कर दी, फैला दिया कागजों पर, सर्टिफिकेट ले लिया।
विश्वविद्यालय में जो परीक्षा है, वह वमन है, सिर्फ उलटी है। इसलिए विश्वविद्यालय से कोई समझदार होकर थोड़े ही लौटता है--लोग समझदार जाते हैं और नासमझ होकर लौट आते हैं। जब गए थे तब थोड़ी-बहुत बुद्धि भी थी, जब आते हैं तो बिल्कुल बुद्धू होते हैं। बहुत मुश्किल से कोई आदमी विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि बचा कर लौट पाता है।
यह कोई विश्वविद्यालय थोड़े ही है? यहां कोई शिक्षा थोड़े ही दी जा रही है? बोध दिया जा रहा है, ज्ञान नहीं। सुरति दी जा रही है, स्मृति नहीं। संकेत दिए जा रहे हैं, अलार्म बजाया जा रहा है कि जागो!
समझो फर्क को! तुम सुबह-सुबह पड़े हो--सर्दी की प्यारी सुबह, कंबल में दुबके हो--अलार्म बज रहा है। अब तुम गिनती कर रहे हो कितनी घंटी बज रही है-- एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस... सब घंटियां गिन लीं, याद रख लिया कि पचास घंटी बजी थीं और करवट ली और सो गए! यह याद तो रख लिया, लेकिन इशारा खो गया। वे घंटियां इसलिए नहीं बज रही थीं कि गिनो। वे घंटियां इसलिए बज रही थीं कि जगो।
मैं जो तुमसे कह रहा हूं, वह तुमने अगर शब्दशः याद रख लिया, नोट ले लिए मस्तिष्क में, और कोई पूछे तुमसे तो तुमने सब उत्तर दे डाले, वह किसी काम

का नहीं आया। जागो! तुम्हारी जीवन-प्रक्रिया में प्रवेश हो जाएगा। तुम पाओगे कि तुम और ढंग से संवेदना करने लगे। अब कोई गाली देता है, तो वैसी चोट नहीं लगती जैसे पहले लगती थी--यह बात समझ में आई। अब तुम स्नेह करते हो, मेरे का भाव क्षीण हो रहा है--यह बात समझ में आई। तुम्हें याद भी रहा कि नहीं कि मैंने कहा था कि मेरा-भाव क्षीण हो जाना चाहिए, वह बात कोई मूल्य की नहीं है। लेकिन मेरा-भाव क्षीण होने लगा। समझ तत्क्षण रूपांतरण करती है। स्मृति रूपांतरण नहीं करती। स्मृति तो रिकार्ड है, क्या सुना, तुम दोहरा सकते हो। समझ जीवन है, क्या सुना, तुम जीने लगते हो।
मैंने अंगुली बताई चांद की तरफ। तुमने अंगुली याद रखी, अंगुली के फोटो ले लिए सब तरफ से और चित्र बना लिए और उनकी पूजा शुरू कर दी और चांद की तरफ तुम्हारी आंख भी न उठी, यह स्मृति। और मैंने अंगुली उठाई और तुमने मेरी अंगुली का इशारा देखा और चांद देखा--और अंगुली को तो भूल ही गए। चांद देखोगे तो अंगुली को कैसे देखोगे? दोनों एक साथ तो देख नहीं सकते। चांद देखा तो अंगुली की क्या जरूरत रही? बात समाप्त हो गई, अंगुली ने काम कर दिया। अब अगर कल तुमसे कोई पूछे कि अंगुली गोरी थी कि काली थी? कि बूढ़ी थी कि जवान थी? तुम कहोगेः कुछ याद नहीं। चांद देखा था, चांद प्यारा था। चांद अदभुत था! खूब चांदनी में नहा लिए, चांदनी ही चांदनी भर गई प्राणों में, रोआं-रोआं आनंदित हुआ था, नाचे थे; अंगुली की तो याद नहीं! अंगुली की याद तो कोई मूढ़ रखेगा; ज्ञानी चांद को देखता है।
अब तुम कहते होः "जो वर्णनातीत है, उसे कह कर क्यों कोई शांडिल्य मनुष्यता के सामने एक पत्थर धर देता है?"
शांडिल्य ने तो सीढ़ियां बनाईं, इशारे किए, तुम पकड़ लो जोर से तो पत्थर
हो जाएंगे। तुम वहीं रुक जाओ तो पत्थर हो गए। ध्यान रखना लेकिन, दोष तुम्हारा है, शांडिल्य का नहीं।
मगर प्रश्न में एक और बात भी छिपी है--कि जब कहा नहीं जा सकता तो कहा क्यों?
इसीलिए कहा कि तुम्हें यह याद रहे कि ऐसा भी जीवन में कुछ है जो जाना
जा सकता है और कहा नहीं जा सकता। इसीलिए कहा कि तुम्हें भूल न जाए कि कहे हुए पर ही सब समाप्त नहीं है, अनकहे की खोज जारी रखना। जो शब्दों में बंध जाता है, उसे ही जीवन की इति मत समझ लेना। जो शब्दों में बंध जाता है, उसमें तो याद रखना--नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं। यह तो शब्द में बंध गया, तो यह नहीं हो सकता। यह भी शब्द में बंध गया, तो यह भी नहीं हो सकता। स्मरण रहे तुम्हें, तुम्हारे भीतर एक खोज जारी रहे, अन्वेषण बना रहे, एक जिज्ञासा जगती रहे, एक दीया जलता रहे कि एक दिन उसे जानना है जो शब्दों में नहीं बंधता। वही सत्य है।
और जब तुम जानोगे, तब तुम भी कहोगे--कहना ही पड़ेगा। और कह न सकोगे, तुतलाओगे। सभी ज्ञानी तुतलाए हैं--जितना बड़ा ज्ञानी, उतना ही ज्यादा तुतलाता है। अज्ञानी को तुतलाने की जरूरत नहीं, वह जो जानता है सब कहा जा सकता है। सिर्फ ज्ञानी अड़चन में पड़ता है। उसने ऐसा कुछ जाना है, जिसे भाषा में नहीं लाया जा सकता। इतना बड़ा है कि शब्दों में समाता नहीं। शब्द बड़े छोटे, संकरे हैं। इतना विराट है कि शब्द में कहो तो अन्याय हो जाता है। और इतना विरोधाभासी है कि जब भी शब्द में कहो तो आधा ही आता है। और आधा यानी अन्याय।
समझो! किसी ने कहा--ईश्वर प्रकाश है। यह आधी बात है। और किसी ने कहा-- ईश्वर अंधकार है। यह भी आधी बात है। ईश्वर दोनों है। जिसने जाना, उसने ईश्वर के दोनों अंग जाने, दोनों पहलू जाने। मगर अब भाषा में कहो तो यही उपाय हैं। या तो कहो प्रकाश है, तो तुमने आधे ईश्वर को इनकार कर दिया, अन्याय हुआ। या कहो कि अंधकार है, तब भी आधे को इनकार कर दिया, अन्याय हुआ। या कहो कि प्रकाश-अंधकार दोनों है, तब तुमने तर्कहीन बात कही, क्योंकि तुमने द्वंद्व एक साथ उपस्थित कर दिया, विरोधी बात कही। तो कोई भी पूछेगा कि प्रकाश और अंधकार दोनों कैसे हो सकता है? फिर तुम तर्क की झंझट में पड़ोगे। कोई कहेगा--तो फिर ऐसा करें, इस कमरे में प्रकाश और अंधकार दोनों एक साथ करके दिखला दें! यह तो हो ही नहीं सकता। या तो प्रकाश होगा, या अंधकार

होगा। अब तुम कैसे सिद्ध करोगे कि प्रकाश और अंधकार दोनों है? या चौथा रास्ता है कि तुम कहो--न प्रकाश है, न अंधकार। तो पूछने वाला पूछेगा--फिर क्या है? क्योंकि दो में से कोई एक होना ही चाहिए। दो का ही हमारा अनुभव है, दो में से एक होना ही चाहिए। अगर दोनों में से नहीं है, तो फिर कहने की कोशिश क्या कर रहे हो? न प्रेम है, न घृणा है; न पदार्थ है, न चेतना है; न प्रकाश है, न अंधकार है; न जीवन है, न मृत्यु है; तो फिर है क्या? फिर पहेलियां क्यों बूझ रहे हो? क्या ऐसी भी कोई चीज हो सकती है जो जीवन भी न हो और मृत्यु भी न हो? या तो जीवन होगी, या मृत्यु होगी।
जो कुछ भी कहो, ये चार ही उपाय हैं कहने के। ये चतुर्भंगियां हैं। ये चार ढंग हैं कहने के। पर जिस ढंग से भी कहो, वही ढंग गलत हो जाता है। और बेचैनी मालूम होती है। न कहो, चुप रह जाओ, तो मनुष्यता के साथ तुमने बड़ी कठोरता की, करुणा नहीं दिखाई।
बुद्ध चुप हो गए थे; जब उन्हें ज्ञान हुआ, सात दिन चुप रह गए। देवता विह्वल हो गए। देवता आए और उन्होंने कहा, आप बोलें। क्योंकि सदियों में कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, सदियों में कोई भगवत्ता पाता है, और करोड़ों-करोड़ों लोग जो अंधेरे में राह टटोल रहे हैं, आपके थोड़े से शब्द भी उनके लिए दिशासूचक होंगे। उन पर करुणा करें।
अब फर्क समझना। अगर बुद्ध सत्य की तरफ देखते हैं तो लगता है, जो भी कहूंगा वह अधूरा होगा, गलत होगा, अन्यायपूर्ण होगा। अगर मनुष्यता की तरफ देखते हैं, पीछे चले आने वाले लोगों की तरफ देखते हैं, जिनके बीच वे भी जीए हैं, तो लगता है इनके साथ कठोरता होगी अगर कुछ न कहूं। ये प्रतीक्षातुर हैं, ये राह देख रहे हैं कि कुछ कहो। अब तुम पहुंच गए मंजिल पर, हम अंधे हैं, हमें पुकारो, हमें जगाओ। हम भटके रहे हैं, हम खोज रहे हैं। और तुम पहुंच गए, अपना बोध थोड़ा ही सही, हम तक पहुंचाओ। एक धागा भी हमारे हाथ में आ जाएगा तो हम उसी के सहारे सरकते-सरकते मंजिल को पा लेंगे। एक किरण भी हमें मिल जाएगी, तो हम सूरज को खोज लेंगे। मगर किरण तो कम से कम दे दो। सूरज नहीं दिया जा सकता, छोड़ो, सूरज हम मांगते भी नहीं, सूरज के पाने की हमारी पात्रता भी नहीं। लेकिन एक किरण ही हम पर बरसाओ। सागर न सही, एक बूंद हमारे कंठ में आ जाने दो। स्वाद तो लग जाएगा। भरोसा तो आ जाएगा कि पानी होता है, कि अगर खोज जारी रखी तो मिलेगा। अगर बूंद मिल सकती है तो सागर भी मिल सकेगा। बूंद है तो सागर भी होता होगा। बूंद से आस्था आएगी, श्रद्धा आएगी; खोज में त्वरा आएगी; खोज में प्राण आ जाएंगे, बल आ जाएगा, आत्मविश्वास जगेगा। हम यूं ही नहीं भटक रहे हैं। हम किसी व्यर्थ सपने के पीछे नहीं पड़े हैं। लोग पहुंचते हैं, मंजिल है, देर-अबेर हम भी पहुंच जाएंगे। पैर जो थकने लगे थे, पैर जो डगमगाने लगे थे, पैर जो सोचने लगे थे अब रुक जाएं, फिर गतिमान हो जाएंगे। फिर चैतन्य का प्रवाह जगेगा।
तो देवताओं ने बुद्ध से कहा, आप कहते हैं ठीक कि सत्य कहा नहीं जा सकता, लेकिन आप सत्य की तरफ ही देख रहे हैं, जो अंधेरे में भटक रहे हैं उनकी तरफ नहीं देख रहे। इनकी तरफ भी देखें! और हो जाने दें सत्य के साथ थोड़ा अन्याय--सत्य को इससे कोई पीड़ा नहीं होगी। हो जाने दें परमात्मा के साथ थोड़ा अन्याय--इससे परमात्मा को कोई हानि नहीं हो जाएगी, यह अन्याय करने जैसा है।
और अगर परमात्मा और इन भटकते हुए लोगों के बीच चुनाव करना है, इनके साथ अन्याय न हो, इन भटकते लोगों के साथ अन्याय न हो, इसलिए शांडिल्य बोलते हैं। इसलिए बुद्ध को बोलना पड़ा। यह उनकी महाकरुणा है। तुम्हारे मार्ग में पत्थर नहीं रखे हैं, तुम्हारे मार्ग में जो पत्थर पड़े हैं, उनको कैसे तुम सीढ़ियां बना लो, इसके सूत्र दिए हैं। और कम से कम शांडिल्य के साथ तो तुम इस तरह की बात कह कर अन्याय मत करो। क्योंकि शांडिल्य तो तुमसे नहीं कह रहे हैं कि स्नेह छोड़ दो; कह रहे हैं, स्नेह को शुद्ध कर लो, पत्थर है, सीढ़ी बन जाएगा। शांडिल्य तो नहीं कह रहे हैं कि प्रेम छोड़ दो; शांडिल्य कह रहे हैं, प्रेम सीढ़ी बन सकता है, शुद्ध कर लो, श्रद्धा बन जाएगा, ऊपर चढ़ जाओगे। शांडिल्य तो नहीं कह रहे हैं संसार छोड़ दो; शांडिल्य तो कह रहे हैं, द्वेष करो ही मत संसार से, अन्यथा वही बाधा हो जाएगी। शांडिल्य तो विराग का,

वैराग्य का, तप का, तपश्चर्या का कोई उपदेश नहीं दे रहे हैं, शांडिल्य तो द्वार खोल रहे हैं प्रेम के मंदिर के, और तुम कहते हो मार्ग में पत्थर... ! नहीं, तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं, कुछ और है। शायद तुम्हें भी साफ नहीं। शांडिल्य के सूत्र तुम्हें बेचैन करते हैं। बेचैन करते इस कारण, क्योंकि उनके कारण तुम्हें याद आनी शुरू होती है कि तुम जो कर रहे हो, वह सब दो कौड़ी का है। असली करने योग्य बात तुमने अभी की नहीं। खोजने योग्य चीज खोजी नहीं। तुम्हारे भीतर नाराजगी पैदा होती है। इसलिए तो जीसस को लोगों ने सूली चढ़ा दिया, सुकरात को जहर दिया। जिन्होंने जाना है, उनके साथ हमने हमेशा बड़ी कठोरता बरती है। क्यों?
उनकी मौजूदगी हमें अड़चन देती है। उनकी मौजूदगी हमें पीड़ा देती है। जब क्राइस्ट तुम्हारे पास से गुजरते हैं तो तुमको लगता है--मेरा जीवन बेकार गया। इस आदमी ने पा लिया, मैं क्या कर रहा हूं? मैं दुकान पर ही बैठा हुआ हूं? ये चांदी के ठीकरे इकट्ठे कर रहा हूं? इन्हीं को जोड़ते-जोड़ते मर जाऊंगा? ऐसे ही मर जाऊंगा--बिना एक किरण पाए परमात्मा की? बिना एक दीया जलाए समाधि का? और इस आदमी के भीतर ज्योति ही ज्योति! यह बर्दाश्त नहीं होता। या तो अपने को बदलो, या इसको खतम करो, इसको हटाओ; यह न रहे तो बेचैनी मिट जाती है। इसलिए जीसस को सूली लगाई। उससे बेचैनी मिटती है। तुम्हें भरोसा आ जाता है।
तुमने कभी देखा, अखबार पढ़ कर तुम्हें कितना सुख मिलता है। वह सुख क्या है?
वह वही सुख है, उसका ही दूसरा पहलू। क्राइस्ट को, बुद्ध को, शांडिल्य
को देख कर तुम्हें दुख मिलता है। मिलना तो नहीं चाहिए, मगर मिलता है। अखबार पढ़ कर सुख मिलता है! सुबह से तुम अखबार न पढ़ लो तो बेचैनी बनी रहती है। क्यों? कितनी जगह डाका पड़ा, कितनी जगह हत्या हुई, कितनी जगह चोरियां हुईं, सब पढ़-पढ़ा कर तुम्हारे मन में एक भाव उठता है--इससे तो हमीं भले! तो हम कोई खास बुरे नहीं हैं! अखबार तुम्हें बड़ा आश्वासन देता है। अखबार कहता है कि तुम्हीं भले। तुम्हारी चिंता मिट जाती है। भीतर तुम्हारे जो अंतःकरण में कचोट होती है वह मिट जाती है। तुमने कल जरा चोरी की थी--कौन नहीं कर रहा? तुमने कल किसी से झूठ बोला था--कौन नहीं बोल रहा? तुमने कल किसी की जेब काटी थी--कौन नहीं काट रहा? तुमने जरा सी बेईमानी की थी--कौन नहीं कर रहा? तुमने रिश्वत खिलाई थी, तुमने किसी की खुशामद की थी, यह सब तुम्हारे ऊपर भारी है, अखबार पढ़ कर सब निर्भार हो जाता है। तुम कहते हो--हम कोई खास नहीं कर रहे हैं, यहां भारी उपद्रव चल रहे हैं! छोटे से लेकर बड़े तक, चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक सब बेईमान हैं! चित्त का भार उतर जाता है, छाती से पत्थर हट जाता है।
सुबह का अखबार बड़ी जरूरत है। पढ़ लिया, दिन भर के लिए निश्चिंत हो गए। करो चोरी खूब, करो बेईमानी खूब, अंतःकरण में चोट नहीं लगती। सारी दुनिया कर रही है, कोई तुम्हीं थोड़े ही कर रहे हो। आदमी मात्र कर रहा है, करना ही पड़ता है। यहां बिना किए चल ही नहीं सकता, करना ही एकमात्र उपाय है।
लेकिन बुद्ध जब पास से गुजरते हैं, या शांडिल्य की बात कानों में पड़ती है, तब बेचैनी होती है। तब यह लगता है, तो हम जो कर रहे हैं, वह करने योग्य नहीं है। करने योग्य कुछ और है, जो हम चूके जा रहे हैं। शांडिल्य ने कर लिया। इस आदमी पर नाराजगी आती है--कि हम चूक गए और तुमने कर लिया? यह नहीं होने देंगे! मानेंगे ही नहीं हम।
इसीलिए तो दुनिया में इतने लोग अश्रद्धा करते हैं। वे कहते हैं, ये कुछ बातें होतीं नहीं, बातें ही बातें हैं। यह समाधि, यह भक्ति, यह भाव, ये सब बातें ही बातें हैं। ये होतीं नहीं।
तुमने देखा, फ्रायड का दुनिया में इतना प्रभाव पड़ा। इस सदी में जिस आदमी का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है दुनिया पर, वह सिगमंड फ्रायड है। क्यों पड़ा उस आदमी का इतना प्रभाव? क्योंकि उसने आदमी की निम्नतम बातों को स्वीकृति दी, श्रेष्ठतम बातों को अस्वीकार कर दिया। उसने कह दिया, न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई समाधि है, यह सब बकवास है। असली बात तो कामवासना है।

करोड़ों लोगों ने राहत की सांस ली। थक गए थे सुनते-सुनते समाधि, निश्चिंत होकर अपने बिस्तरों पर लेट गए और उन्होंने कहा--यह सब बकवास है। हम जो कर रहे हैं, वही ठीक है। नाहक भटकाया बुद्धों ने, नाहक उलझाया। चैन ही नहीं लेने देते। धन कमाओ तो बीच में खड़े हो जाते हैं, स्त्री के पीछे दौड़ो तो बीच में खड़े हो जाते हैं, पद की यात्रा करो तो बीच में खड़े हो जाते हैं, जीना दुश्वार कर दिया बुद्धों ने। फ्रायड आया त्राता की तरह, तरण-तारण! उसने एकदम मन हलका कर दिया। उसने कहा, यही आदमी कर रहा है, सदा से कर रहा है। और जो नहीं कर रहा है वह या तो पागल है, या धोखेबाज है, या खुद धोखे में है। भारी बोझ उतर गया। पत्थर, जो तुम कह रहे हो न, शांडिल्य ने पत्थर रख दिए, वे फ्रायड ने हटा दिए। फ्रायड ने कहा, करो खूब जो तुम कर रहे हो। फ्रायड--त्राता, मसीहा!
लेकिन उसका परिणाम देखते हो क्या हुआ?
आदमी इतना नीचा कभी नहीं गिरा था जितना फ्रायड के बाद गिरा। ऊंचे उठने की बात ही झूठी हो गई। जब ऊंचे उठने की बात ही झूठी हो गई, कोई क्यों प्रयास करे? जब एवरेस्ट है ही नहीं, तो कोई क्यों पहाड़ चढ़े? हो, तो चुनौती है। जब है ही नहीं, चुनौती समाप्त हो गई। जब हीरे की खदानें होतीं ही नहीं, तो कोई क्यों गड्ढे खोदता फिरे? तो अपना-अपना कूड़ा-कर्कट जो भी है, वही सम्हालो। हीरे की खदानें तो होतीं नहीं। और हीरे की खदानें ही खदानें हैं।
फ्रायड के बाद मनुष्य-जाति के चैतन्य में एक अपूर्व पतन आया। ऐसा कभी नहीं हुआ था। दो आदमियों के ऊपर मनुष्य-जाति का पतन लाने का जिम्मा है-- फ्रायड और मार्क्स। एक ने कहाः कामवासना सब है; दूसरे ने कहाः अर्थवासना, धनवासना सब है। दोनों ने तुम्हें मुक्त कर दिया। दोनों ने तुम्हें धर्म से मुक्त कर दिया। दोनों ने तुम्हें शांडिल्य और नारद और बुद्ध और महावीर और कृष्ण से मुक्त कर दिया। दोनों ने कहाः बस दो चीजें करने योग्य हैं--काम की तृप्ति करो और धन, बस ये दो चीजें मूल्यवान हैं; इनके अतिरिक्त न कोई लक्ष्य है, न कोई सत्य है। स्वभावतः आदमी पागल होकर दोनों के पीछे पड़ गया। वैसे ही आदमी डूबा था गर्त में, अब कोई उपाय ही न रहा मुक्ति का।
शांडिल्य की बातों से इसलिए तुम्हें लगेगा कि क्यों ये पत्थर, क्यों अड़चन पैदा करते हो? क्यों चुनौती देते हो? कहां है पहाड़? क्यों व्यर्थ हमें पहाड़ों पर चढ़ाने के लिए बुलाते हो? हमें गड्ढों में उतरने में रस है। गड्ढे में उतरने में एक सुविधा है--कुछ करना नहीं पड़ता। उतार में कुछ करना ही नहीं पड़ता। पहाड़ से उतरे हो कभी? कुछ श्रम नहीं करना पड़ता, उतरते जाओ, भागे चले जाओ, लुढ़को तो भी लुढ़क सकते हो। चढ़ने में अड़चन है, चढ़ाव में अड़चन है।
तुमने जो पत्थर शब्द प्रयोग किया, वह यही बता रहा है कि शांडिल्य को समझो तो चढ़ाव दिखाई पड़ने लगता है, शिखर सामने खड़े हो जाते हैं। फिर उनको न चढ़ो तो बेचैनी होती है और चढ़ो तो कठिनाई। उलझन खड़ी कर दी।
मगर मैं तुमसे कहता हूंः महाकरुणा है शांडिल्य जैसे व्यक्तियों की।
तो ही तुम्हारे लिए थोड़ी आशा है। कभी शायद तुम्हारे कान में कोई बात पड़ जाए, कोई बीज तुम्हारे हृदय में उतर जाए और तुम उसकी खोज पर निकल पड़ो जिसे बुद्धि से पाया नहीं जा सकता, शब्दों में बांधा नहीं जा सकता; जो अनिर्वचनीय है, अव्याख्य है, वर्णन के अतीत है। उसकी खोज ही जीवन है।

तीसरा प्रश्नः क्या परमात्मा का अनुभव भी प्रत्येक का अलग-अलग होता है?

अनुभव तो अलग-अलग नहीं होता, अभिव्यक्ति अलग-अलग होती है। अनुभव तो अलग-अलग हो ही नहीं सकता! क्योंकि परमात्मा एक है, दो नहीं, तीन नहीं।
फिर, जब कोई व्यक्ति परमात्मा के अनुभव की घड़ी में आता है, तो व्यक्तित्व के जितने भेद हैं, सब विलीन हो जाते हैं, जिनके कारण भेद पड़ सकता था। समझो कि तुम सबने अलग-अलग रंग के चश्मे लगा रखे हैं, इस बगीचे में तुम आओ, तो तुम्हें अलग-अलग रंग के फूल दिखाई पड़ें, तुम्हारे चश्मों के

कारण। मन यानी चश्मा, मन यानी विचार, मन यानी पर्दे। परमात्मा का अनुभव तो तभी होता है जब मन समाप्त हो गया। सब चश्मे उतर गए, सब मंतव्य हट गए, सब शास्त्र विदा हो गए, सब शब्द तिरोहित हो गए, शून्य रह गया। शून्य दो तरह के नहीं होते। मन तो अलग-अलग तरह के होते हैं, मन तो तरह-तरह के होते हैं। दो मन एक जैसे नहीं होते।

तुमने रंग की बात की
मन को बांधते हैं रंग
और रूप भी

मगर ध्वनियां
ज्यादा पकड़ती हैं मुझको

जैसे लहरों पर टूटती हुई ध्वनि तट की
या हवा से पैदा हुई ध्वनि अकेले एक पीपल के
वट की

या बांस की

या उस दिन की
मेरी-तुम्हारी तेज सांस की

तुमने रंग की बात की
मन को बांधते हैं रंग
और रूप

मगर ज्यादा पकड़ती हैं
ध्वनियां मुझको!

भिन्न-भिन्न लोग हैं। किसी को ध्वनि पकड़ती है, किसी को रूप पकड़ता है, किसी को रंग पकड़ता है। जिसको ध्वनि पकड़ती है, वह संगीतज्ञ हो जाएगा। उसके पास कान अनूठे होते हैं। उसके पास कान ही होते हैं। उसके पास आंखें वैसी नहीं होतीं।
इसलिए तुमने देखा, अंधे आदमी संगीत में प्रवीण हो जाते हैं। अंधे आदमी की ध्वनि पर पकड़ गहरी हो जाती है। क्योंकि जो ऊर्जा आंख से बहती थी, वह आंख से नहीं बहती, उसको भी कान से बहना पड़ता है। कान बलशाली हो जाते हैं। अंधा आदमी जैसा सुनता है, तुमने कभी नहीं सुना।
और बहरा आदमी जैसा देखता है, वैसा तुमने कभी नहीं देखा। बहरा आदमी तुम्हारे ओंठ के कंपन को भी देखता है। तुम्हारे आंख के इशारे को भी देखता है। तुम्हारी भावभंगिमा को देखता है। क्योंकि वही उसको पकड़ में आता है, और तो उसकी पकड़ में कुछ आ नहीं सकता। उसके सारे कान आंख में उंडल जाते हैं। किसी को ध्वनि प्यारी लगती है तो संगीतज्ञ हो जाता है। अगर संगीतज्ञ परमात्मा को जानेगा, संगीतज्ञ की तरह, तो परमात्मा का अनुभव नाद का होगा-- ओंकार। चित्रकार रूप का प्रेमी होता, उसे रंग दिखाई पड़ते हैं। उसे रंग में बड़ी गहराइयां दिखाई पड़ती हैं, जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़तीं। अगर चित्रकार की तरह कोई परमात्मा तक पहुंचेगा, तो परमात्मा की मनमोहिनी सूरत पकड़ में आएगी। उसका प्यारा लावण्य पकड़ में आएगा।
लेकिन वहां तक पहुंचते-पहुंचते न तो तुम चित्रकार रह जाते हो, न तुम संगीतज्ञ रह जाते हो, न कवि रह जाते हो, न दुकानदार रह जाते हो, क्योंकि ये सब तो मन की ही भाव-दशाएं हैं। वहां पहुंचते-पहुंचते तो एक चीज बचती है,

तुम शून्य हो जाते हो। शून्य जो हो जाता है, वही वहां पहुंचता है। तो शून्य में कैसा भेद?
परमात्मा एक है, उसमें तो कोई भेद है नहीं। और जो पहुंचा है, वह शून्य होकर पहुंचा है। शून्य में और पूर्ण में जब मेल होता है, मिलन होता है--वही तो परमात्मा का मिलन है, वही तो परमात्म-साक्षात्कार है; तुम शून्य हो गए और वह पूर्ण है, पूर्ण शून्य में उतरा। अनुभव अलग-अलग नहीं हो सकते। सच तो यह है, यह कहना कि अनुभव होता है परमात्मा का, ठीक नहीं है। क्योंकि अनुभव होने के लिए तो अनुभोक्ता चाहिए। अनुभव होने के लिए तो मन चाहिए। अनुभव करने वाला ही नहीं बचता, तब अनुभव होता है, तो इसको अनुभव कैसे कहोगे? इसलिए हमारे पास दो शब्द हैं--अनुभव और अनुभूति। दूसरा शब्द इसीलिए बनाया। दुनिया की किसी भाषा में अनुभव के लिए दो शब्द नहीं हैं। जैसे अंग्रेजी में एक्सपीरिएंस एक शब्द है। काम एक से हो जाता है, अब दूसरे शब्द की क्या जरूरत है? कृष्णमूर्ति चूंकि अंग्रेजी में ही बोलते हैं, उन्हें एक शब्द गढ़ना पड़ा है अनुभूति के लिए। वे उसको कहते हैं-- एक्सपीरिएंसिंग। वह भाषा के लिहाज से ठीक नहीं है, मगर एक्सपीरिएंस से, अनुभव से अलग कुछ कहना पड़ेगा।
हमारे पास दो शब्द हैं--अनुभव और अनुभूति। अनुभव का अर्थ होता हैः तुम मौजूद हो और अनुभव हो रहा है। किसी ने वीणा बजाई और तुम आह्लादित हुए और तुमने कहा, बड़ी आनंदपूर्ण थी, बड़ी रसपूर्ण थी--यह अनुभव। लेकिन किसी ने वीणा बजाई और तुम डूब गए उसमें, तुम बचे ही नहीं, अनुभव करने वाला अनुभोक्ता बचा ही नहीं, शून्य हो गया। तुम लौट कर क्या कहोगे? तुम अवाक खड़े रह जाओगे, तुम कुछ न कह पाओगे, तुम्हारी वाणी अवरुद्ध हो जाएगी। शायद आंख से आंसू बहें, शायद ओंठों पर मुस्कुराहट हो, मगर कहोगे क्या? कहने वाला था ही नहीं वहां, पकड़ने वाला था ही नहीं वहां, तुम मिट गए थे--यह अनुभूति। अनुभव में तुम रहते हो, लेखा-जोखा करने वाला मौजूद रहता है। अनुभूति में तुम नहीं रहते, शून्य रहता है।
तो परमात्मा के अनुभव को अनुभव भी नहीं कहा जा सकता। शून्य को क्या अनुभव होगा? और शून्य को ही अनुभव होता है, इसलिए अनुभूति कहें। अलग-अलग तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि अलग-अलग तो करता था मन, मन तो गया।
ऐसा समझो, तुमने एक मकान बनाया है। पड़ोसी का एक और मकान है। कितने मकान हैं! मकान ही मकान हैं! हर मकान एक ही आकाश में बना है। लेकिन हर मकान का स्थापत्य अलग-अलग है। किसी ने गोल कमरे बनाए हैं, किसी ने चौकोर कमरे बनाए हैं, किसी ने कुछ और किया, किसी ने कुछ और किया। ऐसी दशा है मन की। शून्य सबके भीतर है; लेकिन किसी के भीतर चौकोन, किसी के भीतर तिकोन, किसी के भीतर अष्टकोन।
समाधि का अर्थ होता हैः मन हट गया। तुमने मकान गिरा दिया, तुमने दीवालें हटा दीं। तुम जब मकान गिरा देते हो तो तुम्हारे मकान के भीतर जो शून्य था, वह नहीं मिट जाता। सिर्फ दीवालें हट जाती हैं; बाहर के शून्य से भीतर के शून्य का मिलन हो जाता है। आकाश बाहर भी था, आकाश भीतर भी था, तुमने बीच में दीवालें खड़ी कर रखी थीं, दीवालें हट गईं, आकाश का आकाश से मिलन हो गया। मन हमारा स्थापत्य है। तुमने एक ढंग का मन बनाया है, पड़ोसी ने और ढंग का मन बनाया है, मन हमारा घर है, आवास है। किसी को गोल कमरे पसंद हैं, किसी को चौकोन कमरे पसंद हैं; किसी को ऊंचा छप्पर पसंद है, किसी को नीचा छप्पर पसंद है; ये पसंदगियां हैं। लेकिन तुम न तो ऊंचे छप्पर में रहते हो, न नीचे छप्पर में रहते हो, रहते तो तुम मकान के भीतर के खालीपन में हो। न तुम गोल दीवाल में रहते हो, न चौकोन दीवाल में रहते हो, रहते तो तुम दीवालों के बीच में जो आकाश है उसमें रहते हो। वह जो अवकाश है मकान के भीतर उसमें रहते हो। मगर फिर भी मकान अलग-अलग हैं, मन अलग-अलग हैं।
समाधि तो एक है। सब मकान गिर गए, स्थापत्य गया, दीवालें गईं। तुम ऐसा समझो कि तुम अपने कमरे में बैठे हो। जब तुम कमरे में बैठे थे तो चारों तरफ गोल कमरा था। तुम वहीं बैठे हो और गोल कमरे की दीवालें हटा ली गईं--कुछ और नहीं बदला गया, तुम जैसे बैठे हो वैसे ही बैठे हो, चारों तरफ से दीवालें हटा ली गईं; समझो तंबू था, खींच लिया, तुम जहां बैठे हो वैसे ही बैठे हो।

लेकिन तंबू के हटते ही सारा आकाश तुम्हारे छोटे से आकाश में मिल गया। सब चांद-तारे तुम्हारे भीतर आ गए। पहले बाहर थे तंबू के, अब तंबू के भीतर आ गए, अब सारा आकाश तुम्हारा तंबू हो गया। इस घड़ी में कोई भेद नहीं रह जाएंगे। परमात्मा का अनुभव तो एक है, लेकिन अभिव्यक्ति जरूर भिन्न-भिन्न हैं।
क्योंकि अभिव्यक्ति का मतलब हुआ तुम्हें फिर मन का उपयोग करना पड़ेगा। बुद्ध जान कर लौटे, शांडिल्य जान कर लौटे, जीसस जान कर लौटे, मोहम्मद जान कर लौटे। फिर आए तुम्हारे बीच बाजार में, तुमसे कहने आए। अब जब कहना है, तो फिर मन का उपयोग करना पड़ेगा। बोलना है, तो फिर भाषा को बीच में लाना पड़ेगा। यह भाषा अलग-अलग होगी। मोहम्मद की अपनी भाषा है; उस भाषा में और महावीर की भाषा में बड़ा भेद है। मगर अनुभव में जरा भी भेद नहीं है।
ऐसा ही समझो कि इस बगीचे से तुम गए घर, और किसी ने तुमसे कहा--तुम्हारे बच्चों ने कहा कि हमें भी तो कुछ बताओ कि बगीचा कैसा था? जो चित्रकार होगा, वह शायद चित्र बना कर बता देगा कि ऐसा था। जो कवि होगा, वह एक कविता लिखेगा--वृक्षों की, वृक्षों के बीच से गुजरती हवाओं की, वृक्षों के बीच-बीच से छनती सूरज की किरणों की, वह कविता लिखेगा। अब एक कविता में और एक चित्र में बड़ा फर्क है। या हो सकता है कोई संगीतज्ञ हो, वह कविता भी नहीं लिखेगा, वह अपनी वीणा उठा लेगा। क्यों लिखे कविता? हवाएं गुजरती थीं वृक्षों से और आवाज होती थी और नाद पैदा होता था, वह वीणा पर वही नाद पैदा कर देगा। रंग थे वृक्षों में, रंगों को वह ध्वनियों में बदल देगा। धूप-छांव थी, वह धूप-छांव को संगीत में उतार देगा। वह अपनी वीणा पर बजाएगा बगीचे को। कोई कविता में लिखेगा, कोई कागज पर उतारेगा।
तीनों की अभिव्यक्तियां अलग हो जाएंगी। और अगर तीनों की अभिव्यक्तियां तुम देखो, तो उन्हीं को देख कर तुम यह न कह सकोगे--ये एक ही जगह की बात कर रहे हैं। कैसे कहोगे? कोई वीणा बजा रहा है, किसी ने कविता लिखी है, किसी ने चित्र बनाया है।
और हो सकता है कोई गणितज्ञ हो, तो वह कुछ अनुपात बनाएगा, वह गणित में कुछ बात रखेगा। हो सकता है इस बगीचे में आकर उसको सिमिट्री, समतुलता दिखाई पड़ी हो, तो वह लिखे--दो बराबर दो, ऐसा था बगीचा। हर चीज समान थी, अनुपात में थी। या कोई ज्यामिति का जानकार हो, तो रेखाएं खींचेगा कागज पर, ज्यामिति से बताएगा। भेद हो जाएंगे। बड़े भेद हो जाएंगे। हजार तरह के लोग हो सकते हैं। कोई मिठाई वाला आ गया हो...
एक मित्र अभी यहां हैं, कल ही उन्होंने संन्यास लिया, वे मिठाई की दुकान करते हैं--स्वामी विष्णु भारती। अब अगर तुम उनसे पूछोगे कि क्या पाया वहां? तो वे एक मिश्री का टुकड़ा तुम्हारे मुंह में रख देंगे कि तुम्हीं स्वाद ले लो! मीठा था, खूब मीठा था।
सभी ठीक कह रहे हैं। सभी एक की बात कर रहे हैं। फिर भी अनेक हो गई बात। फिर भी भिन्न-भिन्न हो गई बात। अभिव्यक्तियां भिन्न-भिन्न हैं, अनुभव एक है।

आखिरी प्रश्नः क्या प्रार्थनाएं प्रभु तक पहुंचती हैं?

प्रार्थना का प्रयोजन ही प्रभु तक पहुंचने में नहीं है। प्रार्थना तुम्हारे हृदय का भाव है। फूल खिले, सुगंध किसी के नासापुटों तक पहुंचती है, यह बात प्रयोजन की नहीं है। पहुंचे तो ठीक, न पहुंचे तो ठीक। फूल को इससे भेद नहीं पड़ता है।
प्रार्थना तुम्हारी फूल की गंध की तरह होनी चाहिए। तुमने निवेदन कर दिया, तुम्हारा आनंद निवेदन करने में ही होना चाहिए। इससे ज्यादा का मतलब है कि कुछ मांग छिपी है भीतर। तुम कुछ मांग रहे हो। इसलिए पहुंचती है कि नहीं? पहुंचे तो ही मांग पूरी होगी। पहुंचे ही न तो क्या सार है सिर मारने से! और प्रार्थना प्रार्थना ही नहीं है, जब उसमें कुछ मांग हो। जब तुमने मांगा, प्रार्थना को मार डाला, गला घोंट दिया। प्रार्थना तो प्रार्थना ही तभी है, जब उसमें कोई वासना नहीं है। वासना से मुक्त होने के कारण ही प्रार्थना है। वही तो उसकी पावनता है। तुमने अगर प्रार्थना में कुछ भी

वासना रखी--कुछ भी, परमात्मा को पाने की ही सही, उतनी भी वासना रखी--तो तुम्हारा अहंकार बोल रहा है। और अहंकार की बोली प्रार्थना नहीं है।
अहंकार तो बोले ही नहीं, निर-अहंकार डांवाडोल हो।
प्रार्थना आनंद है।
कोयल ने कुहू-कुहू का गीत गाया, मोर नाचा, नदी का कलकल नाद है, फूलों की गंध है, सूरज की किरणें हैं, कहीं कोई प्रयोजन नहीं है, आनंद की अभिव्यक्ति है, ऐसी तुम्हारी प्रार्थना हो। तुम्हें इतना दिया है परमात्मा ने, प्रार्थना तुम्हारा धन्यवाद होनी चाहिए--तुम्हारी कृतज्ञता।
लेकिन प्रार्थना तुम्हारी मांग होती है। तुम यह नहीं कहने जाते मंदिर
कि हे प्रभु, इतना तूने दिया, धन्यवाद! कि मैं अपात्र, और मुझे इतना भर दिया! मेरी कोई योग्यता नहीं, और तू औघड़दानी, और तूने इतना दिया! मैंने कुछ भी अर्जित नहीं किया, और तू दिए चला जाता है, तेरे दान का अंत नहीं है। धन्यवाद देने जब तुम जाते हो मंदिर, तब प्रार्थना। पहुंची या नहीं पहुंची, यह सवाल नहीं है।
सूफी फकीर जलालुद्दीन रूमी ने कहा हैः लोग प्रार्थनाएं करते हैं ताकि परमात्मा को बदल दें। पत्नी बीमार है। अगर उसकी आज्ञा से ही पत्ता हिलता है, तो उसकी आज्ञा से ही पत्नी बीमार होगी। आप गए प्रार्थना करने, जरा सुझाव देने कि बदलो यह इरादा, मेरी पत्नी बीमार नहीं होनी चाहिए, यह भूल-चूक सुधार लो! अल्टीमेटम देने चले गए, कि नहीं तो फिर दुबारा मुझसे बुरा कोई नहीं! कि मेरी श्रद्धा डगमगाने लगी है अब। या तो मेरी पत्नी ठीक हो, या फिर कभी भरोसा न कर सकूंगा कि तुम हो। अगर हो तो प्रमाण दो! कि घर पहुंचूं कि पत्नी ठीक हो जाए। कि मैं गरीब हूं, धन चाहिए। कि चुनाव में खड़ा हुआ हूं, इस बार तो जिता ही दो।
तुमने कुछ मांगा, तो उसका अर्थ हुआ कि तुम परमात्मा को बदलने गए। उसका इरादा मेरे अनुसार चलना चाहिए। यह प्रार्थना हुई? तुम परमात्मा से अपने को ज्यादा समझदार समझ रहे हो? तुम सलाह दे रहे हो? यह अपमान हुआ। यह नास्तिकता है, आस्तिकता नहीं है। आस्तिक तो कहता है--तेरी मर्जी, ठीक। तेरी मर्जी ही ठीक। मेरी मर्जी सुनना ही मत। मैं कमजोर हूं और कभी-कभी बात उठ आती है, मगर मेरी सुनना ही मत। क्योंकि मेरी सुनी तो सब भूल हो जाएगी। मैं समझता ही क्या हूं? तू अपनी किए चले जाना। तू जो करे वही ठीक है। ठीक की और कोई परिभाषा नहीं है। तू जो करे वही ठीक है।
जलालुद्दीन रूमी ने कहा हैः लोग जाते हैं प्रार्थना करने ताकि परमात्मा को बदल दें। और उसने यह भी कहा कि असली प्रार्थना वह है जो तुम्हें बदलती है, परमात्मा को नहीं।
यह बात समझने की है। असली प्रार्थना वह है जो तुम्हें बदलती है। प्रार्थना करने में तुम बदलते हो। परमात्मा सुनता है कि नहीं, यह फिकर नहीं, तुमने सुनी या नहीं? तुम्हारी प्रार्थना ही अगर तुम्हारे हृदय तक पहुंच जाए, सुन लो तुम, तो रूपांतरण हो जाता है।

प्रार्थना का जवाब नहीं मिलता
हवा को हमारे शब्द
शायद आसमान में
हिला जाते हैं
मगर हमें उनका उत्तर नहीं मिलता

बंद नहीं करते
तो भी हम प्रार्थना
मंद नहीं करते हम
अपने प्रणिपातों की गति
धीरे-धीरे
सुबह-शाम ही नहीं
प्रतिपल
प्रार्थना का भाव

हममें जागता रहे
ऐसी एक कृपा हमें मिल जाती है
खिल जाती है
शरीर की कंटीली झाड़ी
प्राण बदल जाते हैं
तब वे शब्दों का उच्चारण नहीं करते
तल्लीन कर देने वाले स्वर गाते हैं
इसलिए मैं प्रार्थना छोड़ता नहीं हूं
उसे किसी उत्तर से जोड़ता नहीं हूं

प्रार्थना तुम्हारा सहज आनंदभाव। प्रार्थना साधन नहीं, साध्य। प्रार्थना अपने में पर्याप्त, अपने में पूरी, परिपूर्ण।
नाचो, गाओ, आह्लाद प्रकट करो, उत्सव मनाओ। बस वही आनंद है। वही आनंद तुम्हें रूपांतरित करेगा। वही आनंद रसायन है। उसी आनंद में लिप्त होते- होते तुम पाओगे--अरे, परमात्मा तक पहुंची या नहीं, इससे क्या प्रयोजन है? मैं बदल गया! मैं नया हो आया! प्रार्थना स्नान है आत्मा का। उससे तुम शुद्ध होओगे, तुम निखरोगे। और एक दिन तुम पाओगे कि प्रार्थना निखारती गई, निखारती गई, निखारती गई, एक दिन अचानक चौंक कर पाओगे कि तुम ही परमात्मा हो। इतना निखार जाती है प्रार्थना कि एक दिन तुम पाते हो, तुम ही परमात्मा हो।
और जब तक यह न जान लिया जाए कि मैं परमात्मा हूं, तब तक कुछ भी नहीं जाना--या जो जाना, सब असार है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
पांचवां प्रवचन

भक्ति यानी जीने का प्रारंभ

सूत्र

प्रकरणाच्च।। 11।।
दर्शनफलमितिचेन्न तेनव्यवधानात्।। 12।।
दृष्टत्वाच्च।। 13।।
अत एव तदभावाद्वल्लवीनाम्।। 14।।
भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात्।। 15।।

दम उसी मोड़ पर जमे हैं
नजर समेटे हुए खड़ा हूं
जुनूं यह मजबूर कर रहा है पलट के देखूं
खुदी यह कहती है मोड़ मुड़ जा
मगर मुहब्बत तकाजा करती है लौट जाऊं
अगर्चे एहसास कह रहा है
खुले दरीचे के पीछे दो आंखें झांकती हैं अभी मेरे इंतजार में वह भी जागती हैं कहीं तो उसके भी गोशा-ए-दिल में दर्द होगा
कसक भी होगी
उसे यह जिद है कि मैं पुकारूं
मुझे तकाजा है वह बुला ले
कदम उसी मोड़ पर जमे हैं
नजर समेटे हुए खड़ा हूं

स्नेह हो, या प्रेम, या श्रद्धा, या भक्ति--प्रीति का कोई भी रूप, प्रीति की कोई भी तरंग--बाधा एक है--अहंकार। क्षुद्रतम प्रेम से विराटतम प्रेम तक बाधाएं अलग-अलग नहीं हैं। एक ही बाधा है सदा--अस्मिता। मैं यदि बहुत मजबूत हो तो प्रेम नहीं फल सकेगा।
मैं का अर्थ हैः परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़े होना; प्रेमी की तरफ पीठ करके खड़े होना। मैं का अर्थ हैः अकड़।
परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, सिर्फ तुम पीठ किए खड़े हो। परमात्मा तुमसे दूर नहीं है। हाथ बढ़ाओ, तो मिल जाए। जरा गुनगुनाओ, तो आवाज उस तक पहुंच जाए। जरा मुड़ कर देखो, तो दिखाई पड़ जाए। मगर अहंकार कहता हैः मुड़ कर देखना मत। अहंकार कहता हैः पुकारना मत। अहंकार अटकाता है। और अहंकार के जाल बड़े सूक्ष्म हैं। मनुष्य और परमात्मा के बीच इसके अतिरिक्त और कोई व्यवधान नहीं है।
इसीलिए शांडिल्य ने बार-बार कहा कि ज्ञानी नहीं पहुंच पाता। क्यों नहीं पहुंच पाता? क्योंकि ज्ञान से अहंकार और भी मजबूत हो जाता है--मैं जानता हूं। जानना तो कुछ नहीं होता, मैं बहुत मजबूत हो जाता है। और जितना मैं मजबूत हो जाता है, उतनी ही जानने की संभावना कम हो जाती है। मैं के साथ कैसा जानना? मैं तो अंधापन है। मैं के साथ कैसी आंखें? मैं तो हृदय पर पड़ी चट्टान है। हृदय खिलेगा नहीं, कमल बनेगा नहीं। बीज फूटेगा नहीं, वृक्ष पनपेगा नहीं।
इसी चट्टान के नीचे दबे-दबे करोड़ों लोग मर जाते हैं। इस चट्टान को हटाते ही क्रांति हो जाती है। और मजा यह है कि इस चट्टान से कुछ भी नहीं मिलता। इससे ज्यादा व्यर्थ चीज संसार में दूसरी नहीं है। वायदे बहुत, हाथ कुछ भी नहीं आता। आश्वासन बहुत--अहंकार इतने आश्वासन देता है, इतने सब्जबाग दिखाता है, पर सब सपने। दौड़ाता बहुत है, पहुंचाता कभी नहीं। मगर बड़ा कुशल है फुसला लेने में। बड़ा कुशल है तुम्हें राजी कर लेने में। होगा ही, अन्यथा बार-बार धोखा खाकर भी भरोसा किए चले जाते हो!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम श्रद्धालु नहीं हैं। हमारे मन में बड़े संदेह की दशा है; बड़े शक हैं, बड़े प्रश्न उठते हैं।
मैं उनसे कहता हूं, बड़े प्रश्न उठते हैं, बड़े संदेह, अहंकार पर प्रश्न उठाया है? अहंकार पर संदेह किया है? परमात्मा पर संदेह किया होगा। परमात्मा से तुम्हारा लेना-देना क्या? जिससे पहचान नहीं है, उस पर संदेह भी क्या खाक करोगे? जिससे मिलन नहीं हुआ, उस पर प्रश्न भी क्या उठाओगे? जो द्वार तुम्हारे लिए खुला ही नहीं कभी, उस द्वार के पीछे क्या है, इसकी जिज्ञासा! पहले द्वार तो खोलो।
सच्चा संदेहशील व्यक्ति वही है जो अहंकार पर संदेह उठा ले। और जो अहंकार पर संदेह उठा ले, उसे श्रद्धा उपलब्ध हो जाएगी। श्रद्धा के लिए श्रद्धा नहीं करनी होती, सिर्फ अहंकार पर संदेह करना होता है। और संदेह से तो तुम भरे हो। दोनों चीजें मौजूद हैं--संदेह भी है, अहंकार भी है। संदेह और अहंकार को जोड़ दो और तुम्हारे भीतर श्रद्धा की क्रांति हो जाएगी। संदेह को अहंकार पर मोड़ दो, संदेह के तीर को अहंकार में चुभ जाने दो। पूछो तो जिस अहंकार के साथ इतने दिन तक चले हो, अब भी चल रहे हो, आगे भी चलने के इरादे हैं, इस अहंकार ने कभी कुछ दिया है? यह कहीं थोथा तो नहीं? इसके आश्वासन झूठे तो नहीं?
मैंने सुना है, एक आदमी ने ईश्वर की बहुत-बहुत प्रार्थना की। ईश्वर प्रसन्न हुआ और ईश्वर ने उसे एक शंख भेंट कर दिया, और कहा, इससे जो तू मांगेगा, मिल जाएगा; जो तू मांगेगा, मिल जाएगा। वह आदमी क्षण भर में धनी हो गया। जो मांगा, मिलने लगा। जब मांगा, तब मिलने लगा। लाख रुपये कहे तो तत्क्षण छप्पर खुला और बरस गए।
अचानक उसके भाग्य में परिवर्तन देख कर दूर-दूर तक खबरें पहुंच गईं कि कुछ चमत्कार हो रहा है। न वह घर से बाहर जाता है, न कोई श्रम करता है, न कोई व्यवसाय करता है और खजाने खुल गए हैं।
एक संन्यासी उसके घर में आकर मेहमान हुआ। संन्यासी सुबह पूजा कर रहा था। उस गृहस्थ ने संन्यासी को पूजा करते देखा। उस संन्यासी के पास एक बड़ा शंख था। और संन्यासी ने उस शंख से कहा कि मुझे लाख रुपये चाहिए। वह गृहस्थ पीछे खड़ा सुन रहा था। उसने सोचा, अरे, इसके पास भी वैसा ही शंख है! और मुझसे भी बड़ा है! शंख बोला, लाख से क्या होगा, दो लाख ले लो। गृहस्थ के मन में बड़ी लोभ की वृत्ति उठी कि शंख हो तो ऐसा हो! मेरे पास है, लाख मांगता हूं, लाख दे देता है। जितना मांगो उतना दे देता है। यह भी कोई बात हुई! यह है शंख! लाख कहो, दो लाख कह रहा है! मांगने वाला कहता है--लाख, शंख कहता है--दो लाख ले लो। पैरों पर गिर पड़ा संन्यासी के। कहा, आप संन्यासी हैं, आपके लिए ऐसे शंख की क्या जरूरत? मैं गृहस्थ हूं। फिर मेरे पास भी शंख है, वह आप ले लें; वह उतना ही देता है जितना मांगो। आपको वैसे ही जरूरत नहीं है।
संन्यासी राजी हो गया, शंख बदल लिए गए। संन्यासी उसी सुबह विदा भी हो गया।
सांझ पूजा के बाद गृहस्थ ने शंख को कहा, लाख रुपया। शंख ने कहा, लाख में क्या होगा, दो लाख ले लो! गृहस्थ बड़ा प्रसन्न हुआ, कहा, धन्यवाद, तो दो ही लाख सही। शंख ने कहा, दो में क्या होगा, चार ले लो! बस, शंख ऐसा ही कहता चला गया। चार कहा तो कहा आठ ले लो, और आठ कहा तो कहा सोलह ले लो। थोड़ी देर में गृहस्थ की तो छाती कंप गई। देने-लेने की तो कोई बात ही नहीं थी, सिर्फ संख्या दुगुनी हो जाती थी।
अहंकार महाशंख है। तुम मांगो, उससे कई गुना देने को तैयार है--देता कभी नहीं। हाथ कभी कुछ नहीं आता। अहंकार से बड़ा झूठ इस संसार में दूसरा नहीं है। सारी भ्रांतियों का स्रोत है। उससे ही उठती है सारी माया। उससे ही उठता है सारा संसार। संसार को छोड़ कर मत भागना। क्योंकि कहां भागोगे? अहंकार तुम्हारे साथ रहेगा। जहां अहंकार रहेगा, वहां संसार रहेगा। छोड़ना हो कुछ तो अहंकार छोड़ दो। और मजा यह है कि छोड़ना कुछ भी नहीं पड़ता, अहंकार कुछ है ही नहीं, सिर्फ भाव है। सिर्फ मन में पड़ गई एक गांठ है। धागे उलझ गए हैं और गांठ हो गई है। धागे सुलझा लो और गांठ खो जाएगी। ऐसा नहीं है कि

धागे सुलझाने पर गांठ भी बचेगी, कि जब धागे सुलझ जाएंगे तो गांठ भी हाथ आएगी। गांठ कुछ है ही नहीं।
इसलिए महावीर ने अहंकार को ग्रंथि कहा है, गांठ। और जो गांठ के पार हो गया, उसको निर्ग्रंथ कहा है। गांठ के पार हो गया। फिर गांठ नहीं बचती, सिर्फ सुलझाने हैं धागे। तुम्हारे विचार के धागे ही उलझ गए हैं। जितने ज्यादा उलझ गए हैं, उतनी बड़ी गांठ हो गई है। उलझते ही चले जा रहे हैं, सुलझाव का कोई उपाय नहीं दिखता है। यही गांठ बाधा है। धागे चित्त के सुलझ जाएं, परमात्मा को तुमने कभी खोया नहीं था।

तुम न आईं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर

छोड़ कर वनश्री हरित सौंदर्य की रेवातटी
शैलखंडों की सुनील, सुरम्य, मादक छविपटी
झील, निर्झर, बावली की फैलती छांहें घनी
छोड़ कर आकाश की फैली विभा की दर्पणी
छोड़ कर आकंठ उमड़ी स्नेह की अगणित डगर
छोड़ कर शारद पवन की रोशनी जादूगरी
छोड़ कर झंकृत प्रपातों की छलक सपनों भरी छोड़ कर जलपंखियों की पांत बादल से सटी दिग्दिगंतों तक बिछी सुषमा फसल जैसे कटी आ गया अपनत्व के आह्वान सारे छोड़ कर
था तुम्हारी प्रीति का उन्माद इन सबसे बड़ा छोड़ कर घर-द्वार ही मुझ को यहां आना पड़ा जीत ली बाजी तुम्हीं ने, आ गया मैं हार कर तुम न आईं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर

आज विजयिनि! भाव का प्रतिकंप मेरा है मुखर
है बड़ा मेरे अहं से यह तुम्हारापन प्रखर बेखुदी छाई अभी तक है तुम्हारे स्वाद की प्राण को दूरी असह थी प्राण के संवाद की सिंधु पूरा था उमड़ पड़ता तुम्हारी याद में
आ गया मैं गूंजता तुम तक इसी जयनाद में
मैं तुम्हारी टेक की निर्मम कड़ी का मुग्ध स्वर बीतने देना न मुझको तृप्ति के अवसाद में
तुम मुझे चुकने न देना पूर्ति के उल्लास में
अर्थ तुम बनने मुझे देना न बीती बात का
जागता तुमको रहूं हर नींद में मैं प्रात सा
तुम न आईं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर
तुम न आईं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर
जीत ली बाजी तुम्हीं ने, आ गया मैं हार कर

एक दिन, चाहे संसार का प्रेम हो, चाहे असांसारिक प्रेम हो, तुम्हें अपने मैं को छोड़ कर प्रेमी की तलाश करनी पड़ती है। एक दिन तुम्हें अपने अहंकार से बड़ा अपने प्रेमी का अस्तित्व अंगीकार करना होता है। ज्ञानी नहीं कर पाएगा, धनी नहीं कर पाएगा, प्रतिष्ठित नहीं कर पाएगा, यशस्वी नहीं कर पाएगा। इसलिए तो जीसस ने कहा--धन्यभागी हैं वे जो दरिद्र हैं। इन सब अर्थों में जो दरिद्र हैं। आत्मा से जो दरिद्र हैं--न जिनके पास ज्ञान है, न पद है, न प्रतिष्ठा है, न नाम है, न यश है। जिनके अहंकार को भरने के लिए कुछ भी नहीं है। धन्यभागी हैं वे जो निर्धन हैं आत्मा से, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है।
और तुम देखोगे तो तुम निर्धन हो। न देखो तो ही तुम मान सकते हो कि तुम धनी हो। धन के भला ढेर लगे हों तुम्हारे पास, लेकिन तुम धनी कहां हो? और नाम तुम्हारा बहुतों को पता हो, लेकिन तुम्हें अपना नाम अभी स्वयं ही पता

नहीं है। और यश चाहे दूसरों से तुम्हें मिला हो, तुमने अभी वैसी घड़ी नहीं पाई जहां तुम अपना सम्मान कर सको। तुम अपने भीतर निंदित पड़े हो। तुम अपमानित हो स्वयं से। तुम तो भलीभांति जानते हो। दूसरों को धोखा दे दिया होगा, अपने को तो कैसे धोखा दोगे? इस जगत में स्वयं को धोखा देना तो संभव नहीं है। तुम तो अपनी कुरूपता भलीभांति जानते हो--भुलाते हो, छिपाते हो, फिर भी उभर-उभर आती है।
जो व्यक्ति देखेगा ठीक से, वह पाएगा--जानता मैं क्या हूं? ज्ञान मेरे पास क्या है? हां, कंठ ने उपनिषद याद कर लिए हैं, और स्मृति में कुरान है, और बाइबिल है, मगर मेरा जानना क्या है? कृष्ण ने जाना होगा सो कृष्ण ने जाना होगा; उनका जानना मेरा जानना कैसे बनेगा? कृष्ण ने भोजन किया होगा, तो उनकी मांस-मज्जा निर्मित हुई होगी, उनके भोजन से मेरा पेट नहीं भरता। कृष्ण के भोजन से तुम्हारा पेट नहीं भरता, तो कृष्ण के अनुभव से तुम्हारी आत्मा कैसे भरेगी? क्राइस्ट ने श्वास ली होगी, तो प्राण का संचार हुआ होगा। क्राइस्ट की श्वास तुममें प्राण का संचार नहीं करती, तो क्राइस्ट का परमात्म-अनुभव तुम्हारी आत्मा को कैसे पुनरुज्जीवित करेगा?
नहीं, क्राइस्ट ने कहा हैः प्रत्येक व्यक्ति को अपना क्रास अपने ही कंधे पर ढोना पड़ेगा, उधारी नहीं चलेगी। और ज्ञान सब उधार है। इसलिए ज्ञान थोथा हो जाता है, ज्ञान कहीं ले जाता नहीं।
आज के सूत्रों में प्रवेश के पहले एक नजर पीछे की तरफ डाल कर देख लें। शांडिल्य ने अब तक जो सूत्र दिए, उनको याद कर लें।
ओम अथातोभक्तिजिज्ञासा!
नाद के स्वागत के साथ, संगीत के सत्कार के साथ, उत्सव की घोषणा के साथ भक्ति की जिज्ञासा पर निकलते हैं। बजती हुई जगत की ध्वनि में, लोक और परलोक के बीच उठ रहे नाद में भगवान को खोजने निकलते हैं। यह यात्रा संगीत से पटी है। यह यात्रा रूखी-सूखी नहीं है। यहां गीत के झरने बहते हैं, क्योंकि यह यात्रा हृदय की यात्रा है। मस्तिष्क तो रूखा-सूखा मरुस्थल है, हृदय हरी-भरी बगिया है। यहां पक्षियों का गुंजन है, यहां जलप्रपातों का मर्मर है। इसलिए ओम से यात्रा शुरू करते हैं। और ओम पर ही यात्रा पूरी होनी है। क्योंकि जहां से हम आए हैं, वही पहुंच जाना है। हमारा स्रोत ही हमारा अंतिम गंतव्य भी है। बीज की यात्रा बीज तक। वृक्ष होगा, फल लगेंगे, फिर बीज लगेंगे। स्रोत अंत में फिर आ जाता है। और जब तक स्रोत फिर न आ जाए, तब तक भटकाव है। इसलिए चाहे कहो अंतिम लक्ष्य खोजना है, चाहे कहो प्रथम स्रोत खोजना है, एक ही बात है। मूल को जिसने खोज लिया, उसने अंतिम को भी खोज लिया।
नाद से ही शुरू हुई है यात्रा। तुमने देखा, बच्चे का जन्म होता है, नाद
से यात्रा शुरू होती है। बच्चे के जन्म के साथ ही चिकित्सक, नर्सें, परिवार के लोग प्रतीक्षा करते हैं नाद की--बच्चा आवाज कर दे! चीख दे, रो दे, चिल्ला दे, जीवन का सबूत दे दे! अगर थोड़ी देर लग जाए और बच्चे के कंठ से आवाज न निकले, तो निराशा छा जाती है। नाद नहीं तो जीवन का प्रारंभ नहीं। रो भी दे तो भी चलेगा, क्योंकि रुदन भी नाद है। अभी गीत की तो आशा नहीं की जा सकती, रोने की ही संभावना है। अभी गीत तो सीखा नहीं, अभी जीवन के अनुभव से तो गुजरे नहीं, अभी साज तो सजाया नहीं, अभी साज तो बैठा नहीं। जैसे कि अभी पहले-पहले कारीगर ने वीणा बनाई हो और इस पर हाथ तुम रखो, तो ठीक-ठीक सुमधुर संगीत पैदा हो जाए, यह संभव नहीं, इसकी आशा भी नहीं की जाती--लेकिन ध्वनि तो पैदा हो! विसंगीत सही, विसंगीत में संगीत छिपा है। अगर विसंगीत पैदा हो गया तो संगीत भी जम जाएगा। फिर बिठाने पड़ेंगे तार, सजाने पड़ेंगे, कसने- ढीले करने पड़ेंगे, ठोंकना-पीटना पड़ेगा, लेकिन कम से कम आवाज, नाद तो पैदा हो जाए।
अगर तीन मिनट लग जाएं और बच्चे में नाद पैदा न हो, तो वह मुर्दा है।
तीन मिनट के भीतर नाद पैदा ही होना चाहिए। अगर तीन मिनट तक उसने सांस नहीं ली तो फिर वह कभी सांस नहीं लेगा।
रुदन से प्रारंभ है। और जो ठीक-ठीक पहुंच जाएंगे, हंसी पर अंत होगा।
वह भी नाद है। अब वीणा बैठ गई, साज जम गया।

"ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।"
संपूर्ण! थोड़े-बहुत से नहीं चलेगा। कंजूसी से नहीं चलेगा। कृपणता काम नहीं आएगी। जरा-जरा दिया और बचाए रखे, तो नहीं चलेगा। परमात्मा के साथ दोस्ती उन्हीं की होती है जो बेशर्त दे सकते हैं। जो कहते हैं--यह रहा पूरा का पूरा। जो ऐसा नहीं कहते कि थोड़ा-थोड़ा दूंगा, जो इंस्टालमेंट में नहीं देते, खंड-खंड नहीं देते। क्योंकि खंड-खंड देने का अर्थ है कि भरोसा नहीं है। सोचते हो--थोड़ा देकर देखें, जब उतने से लाभ मिलेगा तो फिर कुछ और देंगे, उतने से लाभ मिलेगा तो फिर कुछ और देंगे। जुआरियों का काम है भक्ति, व्यवसायियों का नहीं।
यह आकस्मिक नहीं है कि भारत में व्यवसायियों के वर्ग में कोई भी भक्ति का सूत्र पैदा नहीं हुआ। आकस्मिक नहीं है, इसके पीछे गणित है। व्यवसायी भक्त नहीं हो सकता। जैन हैं, भक्त नहीं हो सकते। उनका मार्ग ज्ञान का मार्ग है; तप का मार्ग है; वह समझ में आता है, उसका गणित है। भक्ति तो बिल्कुल जुआरी का काम है, व्यवसायी का नहीं है। दांव पर लगाना है, जोखम है। पता नहीं, कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। जुए का दांव है, इसमें कुछ पक्का नहीं हो सकता। तुम जुए का दांव लगा कर कोई सुरक्षित नहीं रह सकते, कौन जाने क्या होगा?
व्यवसायी हिसाब से चलता है। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि जैनों के संप्रदाय में भक्ति की कोई अवभावना नहीं पैदा हो सकी। शुद्ध गणित का काम है। इतना दो, इतना लो। इतना बुरा कर्म छोड़ दो, इतना लाभ मिले। इतना अच्छा कर्म करो, इतना मोक्ष पाओ। जितना करोगे, उतना मिलेगा। तर्क है, सुसंगति है।
भक्ति तर्क नहीं है, गणित नहीं है। इसलिए भक्ति के लिए तो जुआरी का हृदय चाहिए, जो सब दांव पर लगा कर खड़ा हो जाता है--इस पार या उस पार।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः "ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।"
संपूर्ण पर ध्यान रखना।
"उसमें चित्त का लग जाना अमृत की उपलब्धि है।"
कुछ और नहीं करना है, उसमें चित्त का लग जाना। और चित्त तब तक नहीं लगेगा जब तक तुम कुछ भी बचाओगे। तब तक चित्त शंकित रहेगा। तब तक चित्त सोचता रहेगा, विचारता रहेगा, जांचता रहेगा, आंख के कोने से हिसाब रखता रहेगा, पुण्य-पाप की राशि लगाता रहेगा। संपूर्ण तुम रख दो दांव पर। और कृपणता का कारण क्या है? है क्या तुम्हारे पास रखने को? वही खाली अहंकार है। खाली पात्र अहंकार का है, जो कभी भरा नहीं, भर ही नहीं सकता, क्योंकि उसमें तलहटी नहीं है; तुम भरते जाते हो, सब गिरता जाता है। खाली का खाली रहता है। खाली होना उसका स्वभाव है। इस खाली घड़े को ही परमात्मा के चरणों में रखना है, इसमें भी कंजूसी कर जाते हो! इसमें भी कहते हो--थोड़ा-थोड़ा! शांडिल्य कहते हैंः उसमें चित्त का संपूर्ण रूप से लग जाना ही अमृत
की उपलब्धि है।
क्यों?
अमृत कुछ अलग नहीं है। जिस दिन तुमने जाना कि मैं नहीं हूं, तुम अमृत
हो गए। अमृत का अर्थ हैः अब तुम कभी न मरोगे। मैं मरता है, मैं मरा ही हुआ है, तुम तो शाश्वत हो। यह मैं के साथ तुम्हारा जो गठबंधन हो गया है, इसकी वजह से तुम क्षणभंगुर से बंध गए हो। जैसे किसी आदमी ने मान लिया कि मैं मेरे कपड़े हूं। अब वह कपड़े नहीं उतारता। क्योंकि वह डरता है--कपड़े उतर गए तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक मेले में गया। बड़ी भीड़ थी। सब होटलें भरी थीं, सब धर्मशालाएं भरी थीं। बामुश्किल एक सराय में बहुत हाथ-पैर जोड़ने से जगह मिली। लेकिन सराय के मैनेजर ने कहा कि जगह तो दे देता हूं लेकिन अकेला कमरा नहीं मिल सकेगा। उस कमरे में एक आदमी पहले से सोया हुआ है, तुम भी चुपचाप जाओ और सो जाओ।
मुल्ला कमरे में गया। उसने आदमी को सोए देखा, वह किसी बड़ी अनजानी चिंता से भर गया। दार्शनिक चित्त का आदमी, बैठ कर सोचने लगा पलंग पर कि अब

करना क्या? फिर सोच कर उसने यही निर्णय किया कि जैसा हूं ऐसे ही सो जाना ठीक है। तो पगड़ी लगाए, जूते पहने, कोट पहने लेट रहा।
वह सामने पड़ा हुआ आदमी आंख खोल-खोल कर देख रहा है कि ये सज्जन क्या कर रहे हैं। जब उसने देखा कि जूते पहने और पगड़ी पहने ही सोने की कोशिश कर रहे हैं, तो वह भी जरा चौंका कि यह कोई आदमी पागल तो नहीं है! रात इस आदमी के साथ सोना इस कमरे में अकेले, पता नहीं यह क्या करे? फिर मुल्ला को भी नींद नहीं आती है, क्योंकि कहीं जूते पहने और पगड़ी लगाए हुए, कोट पहने नींद आ सकती है? करवटें बदलता है। उसकी वजह से वह आदमी भी करवटें बदलता है।
आखिर उस आदमी ने कहा कि भाई, न तुम सो सकोगे, न मैं सो सकूंगा। हालांकि पगड़ी तुमने पहनी है और जूते तुमने बांधे हैं, मगर मैं भी नहीं सो पा रहा हूं। तुम इनको उतार ही दो।
मुल्ला ने कहा, एक अड़चन है। अपने घर पर मैं उतार कर ही सोता हूं। लेकिन कमरे में मैं अकेला ही होता हूं, तो मैं जानता हूं कि मैं ही मुल्ला नसरुद्दीन हूं। अब यहां दो आदमी हैं, पगड़ी उतार कर रख दी, जूते उतार कर रख दिए, कोट उतार कर रख दिया और दिगंबर होकर सो रहा, सुबह झंझट खड़ी होगी कि नसरुद्दीन कौन है? यहां दो आदमी हैं। क्योंकि ये मेरी पहचान हैं--यह पगड़ी, ये जूते, यह कोट--इन्हीं को दर्पण में देख कर मैं जानता हूं कि यह मैं हूं। इस खतरे के कारण यह नहीं कर रहा हूं।
वह आदमी हंसा इस पागलपन पर, उसने कहा, तुम फिकर न करो, इसके लिए कोई रास्ता खोजा जा सकता है। यह देखते हो कोने में, पहले कोई ठहरे होंगे लोग, उनका बच्चा एक फुग्गा छोड़ गया है फूला हुआ, कोने में पड़ा है, इसको अपनी टांग में बांध लो। तो तुम्हें पक्का पता रहेगा कि तुम्हीं नसरुद्दीन हो। नसरुद्दीन ने कहा, यह बात जंचती है। टांग में फुग्गा बांध कर, कपड़े उतार कर वह सो रहा।
उस आदमी को रात मजाक सूझा, उसने फुग्गा निकाल कर अपने पैर में बांध लिया। सुबह जब नसरुद्दीन उठा, उसने छाती पीट ली; उसने कहा, मैंने पहले ही कहा था। अब यह तो पक्का है कि तुम नसरुद्दीन हो, मगर मैं कौन हूं? तुम्हारी पहचान क्या है? तुम हंसते हो इस बात पर, लेकिन तुम्हारी खुद
की पहचान भी ऐसी ही है। रात तुम सो जाओ और कोई प्लास्टिक सर्जन तुम्हारा चेहरा बदल दे और सुबह तुम दर्पण के सामने खड़े हो जाओ, तो तुम्हारी यही हालत नहीं होगी जो नसरुद्दीन की हो गई? तुम्हारी एक पहचान थी, नाक थी, नक्शा था, एक ढंग था, तुम्हारी पहचान थी; रात किसी ने जादू किया--प्लास्टिक सर्जन ने आकर तुम्हारा चेहरा बदल दिया--सुबह तुम दर्पण के सामने खड़े हुए, तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहोगे, एक बात तो पक्की है कि यह मैं नहीं हूं। फिर मैं कौन हूं?
तुम्हारी अपनी पहचान क्या है? वस्त्र की पहचान या शरीर की पहचान में कोई फर्क नहीं है, क्योंकि शरीर भी वस्त्र है। अगर तुम और थोड़े भीतर जाओगे तो मन की पहचान है कि मैं हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, फलां हूं, ढिकां हूं, वह भी मन की ही पहचान है, वह भी वस्त्र है।
दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ, एक आदमी गिरा युद्ध में। बड़ी भयंकर चोट लगी, तीन दिन बेहोश रहा, जब होश में आया तो उसकी स्मृति मिट गई। स्मृति तो ऐसे ही है जैसे कि कपड़े, छीने जा सकते हैं। वह आदमी स्मृति से नग्न हो गया। जब तीन दिन बाद उसकी आंख खुली और उससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना? क्योंकि उसका नंबर भी युद्ध के मैदान पर गिर गया था। लोग प्रतीक्षा कर रहे थे, वह होश में आ जाए तो पूछ लें--तुम्हारा नाम, तुम्हारा पता, तुम्हारा नंबर? वह तो सब भूल चुका था। उसकी स्मृति पुंछ गई। वह तो चौंक कर रह गया। उसे तो कुछ याद नहीं आया। अब बड़ी कठिनाई हो गई, यह आदमी है कौन? क्योंकि मिलिटरी में तो आदमी नंबर से जाने जाते हैं, इसका नंबर पता नहीं है। और इसको अपना नाम भी याद नहीं रहा, नहीं तो फाइलों में खोजबीन हो सकती थी।
मेरे एक मित्र हैं, डाक्टर हैं। भीड़ थी ट्रेन में, दरवाजे पर खड़े-खड़े जाते थे, हाथ छूट गया राह में, गिर पड़े, भयंकर चोट आई। बचपन से मेरे मित्र हैं, साथ-साथ हम पढ़े, उनको मैं देखने गया, वे मुझे पहचान नहीं सके। मुझे

पहचानना दूर, वे अपने मां-पिता को नहीं पहचानते। कोई सात साल फिर अ ब स से सब सीखना पड़ा। भाषा भी भूल गई।
तुम्हें पता है तुम कौन हो? हंसो मत नसरुद्दीन पर, वैसी ही हालत है। कपड़े हों, कि देह हो, कि मन हो, यही तो हमारी पहचान है। मगर यह सब छीनी जा सकती है।
चीन में जो कैदी पड़ जाते हैं कम्युनिस्टों के हाथ में, वे उनकी स्मृति पोंछ डालते हैं। रूस में भी वही किया गया है। अब रूस में किसी विरोधी व्यक्ति को, विद्रोही व्यक्ति को फांसी की सजा नहीं देते। वह पुराना ढंग हो गया। और फांसी की सजा में तो एक इज्जत भी थी। यह तो अच्छा था कि कोई फांसी की सजा लग जाए, कम से कम प्रतिष्ठा से तो मरता था। अब रूस में वह भी संभव नहीं, प्रतिष्ठा से फांसी भी संभव नहीं। पहले उसकी स्मृति पोंछ देते हैं। जैसे ही स्मृति पुंछ जाती है, न उसका विद्रोह बचता है, न उसके विचार बचते हैं, सब समाप्त हो गया। और अब विधियां खोज ली गई हैं उसके मन को फिर से संस्कारित करने की। जैसे कागज पर तुमने कुछ लिखा था, उसे पोंछ दिया गया, फिर से लिख दिया। तुमने पूरे आदमी को बदल दिया।
यही तो तुम्हारी पहचान है। कहते हो मैं हिंदू हूं, हिंदुस्तानी हूं; मुसलमान हूं, कि पाकिस्तानी हूं, कि चीनी हूं, तिब्बती हूं; कि इस पंथ को मानता, कि उस पंथ को मानता; कि बाइबिल, कि कुरान, कि गीता मेरी किताब है; कि यह मेरा गुरु है; कि यह मूर्ति मेरी श्रद्धा की पात्र है; कि यह मेरा मंदिर, यह मेरी मस्जिद; मगर यह सब छिन सकता है। तुम हो कौन? तुम्हारा घर, तुम्हारा परिवार, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे सर्टिफिकेट, सब कागजी हैं। तुम हो कौन? यह चैतन्य कौन है जिस पर ये सारी चीजें टंगी हैं? यह देह टंगी, यह मन टंगा, ये विचार टंगे, ये सर्टिफिकेट टंगे, यह प्रतिष्ठा, नाम-धाम टंगा, यह भीतर तुम्हारे चैतन्य की खूंटी क्या है? उस खूंटी को जानना ही स्वयं को जानना है।
उसको जानते ही अमृत की उपलब्धि हो जाती है। क्योंकि वह अमृत है। उपलब्धि हो जाती है, ऐसा कहना ठीक नहीं। मर्त्य के साथ तुमने संबंध जोड़ लिया है, बस वह दोस्ती टूट जाती है। इस मर्त्य के साथ संबंध का, पूरा का पूरा संबंध का समग्रीभूत नाम अहंकार है। "उसमें" चित्त का लग जाना अर्थात अपने से चित्त का उठ जाना, मैं से चित्त का छूट जाना और परमात्मा में चित्त का लग जाना अमृत की उपलब्धि है।
"ज्ञान भक्ति नहीं है।"
अनुभव, स्वानुभव ही भक्ति है।
"भक्ति के उदय पर ज्ञान का नाश हो जाता है।"
जरूरत ही नहीं रह जाती। भक्ति के उदय पर ज्ञान का नाश क्यों हो जाता है? क्योंकि ज्ञान तो उधार था। किसी ने तुमसे कहा था कि सूर्योदय कैसा होता है और तुमने वे याददाश्तें सम्हाल कर रखी थीं। क्योंकि तुम्हारी आंखें तो अंधी थीं और तुमने सूर्योदय देखा नहीं था। फिर तुम्हारी आंख की चिकित्सा हुई, मिल गया वैद्य तुम्हें, मिल गई औषधि, कटी व्याधि, पर्दा आंख का हटा। एक दिन तुमने आंख खोली, सुबह के सूरज को उगते देखा। अब क्या करोगे उन बातों का जो दूसरों ने तुमसे कही थीं? उनका अब कोई भी तो मूल्य नहीं रहा। अब साक्षात सूर्योदय सामने खड़ा है, यह उठता हुआ आग का प्रचंड गोला, ये बादलों पर रंग, यह सारे जगत में फैल गई जीवन की ताजगी, ये पक्षियों के गीत, ये हवाएं, यह सब तरफ बजता हुआ ओंकार का नाद, अब क्या याद करोगे उन बासी बातों को जो दूसरों ने तुमसे कही थीं कि सूर्योदय कैसा होता है?
जिस दिन व्यक्ति भक्ति को उपलब्ध होता है, सब ज्ञान से छुटकारा हो जाता है। ज्ञान की आवश्यकता नहीं रह जाती। अपना धन मिल गया, अपनी प्रतीति हो गई, अपना साक्षात्कार हुआ। भक्ति यानी रस, लय, राग, रंग, उत्सव; भक्ति यानी भगवान का भोग। भक्ति परम योग है और परम भोग भी।
"भक्ति ज्ञान की नाईं अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।"
शांडिल्य कहते हैं कि तुम्हारे हाथ में नहीं है भक्ति। तुम्हारे कारण
ही तो बाधा पड़ रही है भक्ति में। तुम जाओ तो भक्ति आए। इधर तुम गए, उधर

भक्ति आई। तुम रहे तो भक्ति कभी नहीं आ पाएगी। इसलिए तुम्हारे अनुपस्थित हो जाने में भगवान की उपस्थिति है।
तुम पूछते होः भगवान कहां है?
तुम्हारी उपस्थिति के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा है। तुम अनुपस्थित होना सीखो, तुम विसर्जित होना सीखो। उसमें चित्त को लग जाने दो संपूर्ण। और तत्क्षण तुम पाओगे--सब तरफ वही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। "इसलिए भक्ति का फल समयातीत है। वह अनंत है।"
क्योंकि तुम्हारे हाथ से पैदा नहीं होता, इसलिए छीना भी नहीं जा सकता। तुम जो भी पैदा करोगे, वह क्षणभंगुर होगा। तुम क्षणभंगुर हो। अहंकार के द्वारा जो भी निर्मित होगा, वह पानी पर खींची गई लकीर है--खिंच भी नहीं पाएगी और मिट जाएगी। जो परमात्मा से आता है, वही शाश्वत है। तुम भी शाश्वत हो, क्योंकि तुम परमात्मा से आए। और जो भी परमात्मा से आता है, सब शाश्वत है। उसका अंत नहीं है।
"ज्ञानी और अज्ञानी, दोनों को उसकी प्राप्ति हो सकती है।"
इसलिए ज्ञान कोई शर्त नहीं है। ज्ञानी को भी हो सकती है, अगर ज्ञान को हटा दे।
"भक्ति मुख्य है, अनिवार्य है, क्योंकि और-और मार्गों में भी अंततः उसकी शरण लेनी होती है।"
ऐसा कोई मार्ग ही नहीं है जिसमें भक्ति की शरण न लेनी पड़ती हो। देखो तुम, बुद्ध ने कहाः भगवान नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है, न कोई आत्मा है। लेकिन भक्ति का तत्व आया। पीछे के दरवाजे से आया--बुद्धं शरणं गच्छामि! संघं शरणं गच्छामि! धम्मं शरणं गच्छामि! शरण जाने की बात आ गई। कृष्ण ने कहा थाः मामेकं शरणं व्रज, सर्व धर्मान परित्यज्य। सब छोड़-छाड़ अर्जुन, मेरी शरण आ। बुद्ध ने कहाः कोई परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है। लेकिन फिर भी बुद्ध का धर्म बिना शरणागति के खड़ा नहीं हो सका। बिना शरणागति के, बिना समर्पित हुए कोई धर्म खड़ा नहीं होता।
जैन धर्म शुद्ध योग है, शुद्ध तपश्चर्या है, लेकिन शरणागति तो आ ही जाती है। और महावीर ने अशरण की बात कही। महावीर ने कहाः अशरण हुए बिना... सब शरण छोड़ देनी है--तो ही तुम पहुंचोगे। लेकिन पीछे के द्वार से बात आ गई-- अरिहंत शरणं पवज्झामि। मैं अरिहंत की शरण जाता हूं। जो जाग गए, जिन्होंने जीत लिया, उनकी शरण जाता हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम किसकी शरण जाते हो, शरण जाने से फर्क पड़ता है। तुम महावीर की शरण गए, कि तुम बुद्ध की शरण गए, कि तुम कृष्ण की शरण गए, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण, बुद्ध, महावीर, सब निमित्त हैं। शरण गए, इससे फर्क पड़ता है। वह शरण जाने की भाव-दशा ही भक्ति है।
इसलिए शांडिल्य बड़ी अपूर्व बात कह रहे हैं। शांडिल्य कहते हैंः सभी मार्गों में भक्ति अनिवार्य है। कुछ न कुछ भक्ति चाहिए ही, नहीं तो कोई धर्म निर्मित नहीं होता।
मुसलमानों ने मूर्ति हटा दी, काबा का पत्थर विराजमान हो गया। अब काबा
के पत्थर में और मूर्ति में क्या फर्क है? पत्थर पत्थर है। मस्जिद से मूर्ति हटा दी, लेकिन शरण की भावना तो नहीं हटा सकते। मुसलमान जाकर जिस तरह झुकता है, उस तरह हिंदू भी नहीं झुकता। झुकता है, बार-बार झुकता है नमाज में। वही झुकना भक्ति है। अपने सिर को झुकाना, अपने अहंकार को झुकाना भक्ति है।
फिर आज के सूत्र तुम्हें समझ में आ सकेंगे।
प्रकरणाच्च।
"और प्रकरण से ऐसा ही है।"
इसलिए मैंने ये पुराने सूत्र दोहराए, क्योंकि आज के सूत्र संबंधित हैं। शांडिल्य कहते हैंः यह जो मैंने अब तक कहा, इसके तुम्हें जीवन में जगह-जगह प्रमाण मिलेंगे।
"प्रकरण से ऐसा ही है।"
तुम जरा आंख खोल कर खोजना शुरू करो। महावीर के मार्ग पर कोई परमात्मा नहीं है, लेकिन शरण का भाव आया। बुद्ध के मार्ग पर तो परमात्मा भी नहीं है,

आत्मा भी नहीं है, फिर भी शरण का भाव आया। इस्लाम ने मूर्तियां हटा दीं, तो भी शरण का भाव है। दुनिया में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें शरण का भाव न हो। शरण तो जाना ही होगा।
प्रकरणाच्च।
प्रकरण से, सारे जगत के अलग-अलग अनुभवों से यही सिद्ध होता है कि भक्ति अनिवार्य है। भक्ति से छुटकारा नहीं है। भक्ति के तत्व के बिना कोई धर्म निर्मित नहीं होता। तुम ऐसा ही समझो कि इतनी मिठाइयां निर्मित होती हैं, लेकिन मिठास अनिवार्य है। अब मिठाइयों के तो बहुत रूप हैं--रसगुल्ला है और संदेश है और खीरमोहन है और हजार हैं, लेकिन मिठास, माधुर्य अनिवार्य है।
भक्ति माधुर्य है। भक्ति शक्कर है। उसके बिना कोई मिठाई न बनेगी। फिर तुम किस ढंग की मिठाई बनाओगे, यह तुम पर निर्भर है।
दुनिया के सारे धर्म अलग-अलग मिठाइयां हैं, भक्ति उनके भीतर सबमें छिपी हुई मिठास है। उनमें एक तत्व समान है, मिठास का। नमक डाल कर मिठाई नहीं बनती। उसको मिठाई नहीं कह सकोगे। तो और बातें गौण हैं, मिठास तो अनिवार्य होनी चाहिए। फिर चाहे मिठाई चीन में बने और चाहे भारत में और चाहे रूस में, कहीं भी बने मिठाई, उसमें मिठास अनिवार्य होनी चाहिए। शांडिल्य कहते हैं, हम मौलिक तत्व की बात कर रहे हैं। ऊपरी रूप, ऊपरी ढंग गौण हैं। प्रेम प्राण है। जैसे देहें तो अलग-अलग हैं, लेकिन प्राणतत्व एक है। कोई सुंदर है और कोई कुरूप है; और कोई ठिगना है और कोई लंबा है; कोई गोरा है, कोई काला है; कोई अंधा है, कोई आंख वाला है; कोई लंगड़ा है, कोई लूला है, कोई बहरा है, कोई स्वस्थ है; कोई दुबला, कोई मोटा; बहुत रूप हैं देह के, मगर प्राणतत्व एक है।
शांडिल्य कहते हैंः भक्ति प्राणतत्व है समस्त धर्मों का।
और जैसे प्राण के बिना देह मुर्दा है, वैसे ही भक्ति के बिना धर्म मुर्दा है। जिस धर्म से भक्ति खो जाती है, वह मुर्दा हो जाता है--उसी मात्रा में मुर्दा हो जाता है, जिस मात्रा में भक्ति खो जाती है। जिस मात्रा में भक्ति होती है, बाढ़ होती है भक्ति की, उसी मात्रा में धर्म जीवित होता है। जितनी नाचती हुई भक्ति होती है, उतना ही धर्म जीवित होता है। जितनी उमंग होती है भक्ति की, जितना उत्साह होता है भक्ति का, उतना ही धर्म जीवित होता है
जैसे आत्मा है सभी के भीतर एक, वैसे ही सभी धर्म विधियों में प्राण है प्रीति, भक्ति। जहां-जहां प्रेम है, वहां-वहां प्राण है। और जहां-जहां भक्ति है, वहां-वहां भगवान है। लोग उलटी तरफ से सोचना शुरू करते हैं। लोग कहते हैं--भगवान कहां है?
यह ऐसा ही है कि जैसे कोई युवक आए और तुमसे पूछे--मेरा प्रेमपात्र कहां है? क्या कहोगे तुम उससे? मेरी प्रेयसी कहां है? कोई आ जाए पूछने पुलिस दफ्तर में, कि मेरी प्रेयसी कहां है? तो वे कहेंगे--तुम्हारी प्रेयसी है कौन, तो हम पता लगाएं। वह कहे--मुझे अभी खुद ही पता नहीं है, मैं तो तलाश में निकला हूं, मेरी प्रेयसी कहां है? तो तुम कहोगे--पहले प्रेम करो, तो प्रेयसी होती है। अभी तुमने प्रेम किया नहीं, तुम प्रेयसी को खोजने निकल पड़े!
लोग भक्ति किए नहीं और भगवान को पूछते हैं--भगवान कहां है? ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बात पूछते हैं। लगती बात बड़ी तर्कयुक्त है जब कोई पूछता है कि भगवान कहां है? हो तो मैं मानूं, हो तो मैं पूजूं, हो तो मैं झुकने को तैयार हूं। मगर है कहां?
अब तुम ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बात पूछ रहे हो कि प्रेयसी मिल जाए तो सब निछावर कर दूं, लुटा दूं सब। पकड़ लूं उसके चरण सदा के लिए, उसे गले का हार बना लूं कि उसके गले का हार बन जाऊं। मगर है कहां, पहले पक्का हो जाए। होगी कैसे प्रेयसी? प्रेयसी कोई व्यक्ति थोड़े ही है। तुम्हारा प्रेम जिस व्यक्ति पर आरोपित हो जाता है, वही तुम्हारा प्रेमी या प्रेयसी हो जाता है। जिस व्यक्ति पर, जिस शक्ति पर तुम्हारी भक्ति आरोपित हो जाती है, वही शक्ति, वही व्यक्ति भगवान हो जाता है। तो एक के लिए जो भगवान है, दूसरे

के लिए भगवान नहीं होगा। तुम्हारी प्रेयसी मेरी प्रेयसी तो नहीं है। तुम यह तो नहीं कह सकते कि मेरी प्रेयसी को आप अपनी प्रेयसी क्यों नहीं मानते? सच तो यह है, कोई माने तो तुम झगड़ा खड़ा करोगे कि यह मेरी प्रेयसी है, आप इसको कैसे अपनी मानते हैं? लेकिन कोई कहे कि जब आपकी है, तो हमारी है! मैंने सुना है, एक गांव में एक आदमी के पिता मर गए। वह बहुत रोने लगा, बहुत चिल्लाने लगा। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हुए, लोगों ने कहा, क्यों रोते हो? गांव के बड़े-बूढ़ों ने कहा कि चलो, पिता चले गए, कोई बात नहीं, हम तो हैं, हम तुम्हारे पिता हैं। वह शांत हो गया।
फिर उसकी मां मर गई कुछ दिन के बाद। फिर गांव की बूढ़ियों ने कहा कि मत घबड़ाओ, हम तो मौजूद हैं, रोते क्यों हो? हम तुम्हारी मां हैं।
फिर उसकी पत्नी मर गई, फिर वह बैठ कर राह देखने लगा कि कोई आकर कहे। कोई न आए। फिर उसने बहुत शोरगुल मचाया, फिर वह छत पर चढ़ गया, उसने कहा, अब क्यों नहीं आते? अब कोई आकर क्यों नहीं कहता? पहले तो गांव भर के लोग आते थे कि हम तुम्हारे पिता, हम तुम्हारी माता, अब कोई नहीं आ रहा है! कोई नहीं कहता कि हम तुम्हारी पत्नी, क्यों रोते हो?
तुम्हारी प्रेयसी तुम्हारी प्रेयसी है। लेकिन इस पर झगड़े खड़े होते हैं, बड़े बेहूदे झगड़े। हिंदू कहते हैंः कृष्ण भगवान हैं। इसमें जैनों को एतराज है। एतराज तर्कयुक्त है कि इस आदमी ने महाभारत का युद्ध करवा दिया! अर्जुन तो संन्यासी होना चाहता था। भला आदमी था। जैन मुनि हो जाता अगर उसकी चलती। कृष्ण ने उसको कहां के उपद्रव में डाल दिया! भागने की उसने बहुत कोशिश की--तभी तो गीता पैदा हुई, वह बार-बार भागने की कोशिश कर रहा है और कृष्ण उसको फांस कर ला रहे हैं। आखिर उसको उलझवा दिया। उसको युद्ध करवा दिया। करोड़ों की हानि हुई, हजारों लोग मरे, इतनी हिंसा हुई, इस सबका जिम्मेवार कौन है? और हिंदू कहते हैं कृष्ण भगवान हैं! जैनियों ने नरक में डाल रखा है, उनके पुराणों में नरक में पड़े हैं, सातवें नरक में। और इस सृष्टि के समय में नहीं छूटेंगे, जब प्रलय होगी तभी छूटेंगे।
हिंदू के लिए कृष्ण भगवान हैं। उनसे बड़ा भगवान कोई भी नहीं। पूर्ण अवतार कहा उनको। राम भी अधूरे हैं, बुद्ध भी अधूरे हैं, कृष्ण पूरे हैं। इस बात में भी जान है, प्राण है। बुद्ध एकांगी तो लगते ही हैं--भाग गए संसार को छोड़-छाड़ कर। जीवन में संतुलन तो नहीं है। असंतुलित जीवन है। कृष्ण का जीवन बड़ा संतुलित है। बाजार में हैं और बाजार में नहीं हैं, यह संतुलन है। युद्ध में खड़े हैं और भीतर विराट शांति है, यह संतुलन है। भगोड़ापन नहीं है। जीवन में से यह चुनना, इसे छोड़ना, इसे पकड़ना, ऐसा नहीं, समग्र जीवन का स्वीकार है। इसी स्वीकार के कारण वे पूर्ण अवतार हैं। बुरा-भला, सब स्वीकार है। अस्वीकार करने वाला ही भीतर कोई नहीं है, तो अहंकार ही नहीं है जो चुनाव करे, इसलिए चुनावरहित हैं। जो घटे घटे। यही आस्तिकता की परमदशा है कि प्रभु जो चाहे घटवा रहा है, वही घटेगा।
तो हिंदुओं ने सारे अवतारों को पीछे कर दिया, कृष्ण को ऊपर कर लिया। अपनी-अपनी प्रीति! इसमें झगड़े की कोई गुंजाइश नहीं है।
ईसाई कहता है कि ये कृष्ण किस तरह के भगवान हैं? बांसुरी लेकर नाच रहे हैं और दुनिया में इतना दुख है! और ये भगवान हैं? और इतनी बीमारियां हैं! किसी अस्पताल में चले जाओ, अस्पताल खोलो, मरीजों की सेवा करो। कि इतनी बाढ़ आती हैं, तूफान आते हैं, तुम क्या बैठे बांसुरी बजा रहे हो! यह शोभा देती है! ईसाई सोचता है--यह बात ही अशोभन है, यह बात ही बड़ी बेहूदी है, कि जहां इतना दुख है संसार में, इतने लोग पीड़ित हैं, गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, वहां कोई आदमी बांसुरी बजाने की चेष्टा में लगा है। खुद बांसुरी बजा रहा है और स्त्रियों को नचा रहा है। यह खुद तो पागल है और दूसरों को पागल बना रहा है। क्राइस्ट ठीक मालूम पड़ते हैं। सूली पर लटके हैं, उदास। सारे लोग सूली पर हैं। उनके लिए सूली पर लटकना ही चाहिए जीसस को। इसलिए जीसस भगवान हैं।
लेकिन हिंदू से पूछो, तो हिंदू कहता है--भगवान और उदास? उदास तो अज्ञानी होता है। और ईसाई कहते हैं--जीसस कभी हंसे ही नहीं! यह तो महा तमस की अवस्था हो गई। उदास तो अज्ञानी होता है। और सूलियों पर तो पापी चढ़ते

हैं। किए होंगे पिछले जन्म में कुछ पाप, उसका फल भोग रहे हैं। और तुम्हारे सूली पर चढ़ने से किसकी सूली कम हो जाएगी? यह तो ऐसे ही हुआ कि एक आदमी को पैर में कांटा लग गया और तुम उसके दुख में अपने पैर में भी कांटा चुभा कर बैठ कर रोने लगे। इससे क्या सार है? भई, निकालना था, उसका कांटा निकालते। अपने पैर में कांटा चुभाने से क्या होगा? उसका कांटा नहीं निकलेगा। दुनिया में दुख दुगुना हो गया, तुमने और काटा चुभा लिया।
हिंदू को जीसस में भगवान दिखाई नहीं पड़ सकते। और मैं तुमसे कह देना चाहता हूं, यह ख्याल रखना, भगवान तो तुम्हारी प्रीति का संबंध है। किसी को महावीर में दिखाई पड़ते हैं, किसी को बुद्ध में, किसी को कृष्ण में, किसी को क्राइस्ट में। जहां तुम अपनी भक्ति को आरोपित कर देते हो, वहां भगवान प्रकट होता है। भगवान तो सब जगह छिपा है। इसलिए किसी को पीपल के वृक्ष में भी देवता प्रकट हो जाते हैं, और किसी को नदी की धार में भी, और किसी को अनगढ़ पत्थर में भी।
वह कल मैं तुमसे कह रहा था कि जब पहली दफे मील के पत्थर लगे लाल रंग पुते, तो गांव में लोग उनकी पूजा करने लगे। उन्होंने समझा हनुमानजी हैं। और बड़े खुश हुए कि सरकार भी अच्छी है कि इतने हनुमानजी! उन्होंने और उस पर जाकर सिंदूर इत्यादि पोत कर, फूल चढ़ा कर और पूजा शुरू कर दी। अंग्रेज परेशान थे कि यह क्या पागलपन है! लेकिन उसकी भी बात समझो। वह जो आदमी सिंदूर लगा दिया और जाकर पूजा करने लगा, उसकी भक्ति अगर वहां है, तो वहीं भगवान है। जहां भक्ति, वहां भगवान। पत्थर में पड़ जाए, तो पत्थर में भगवान का अवतरण होता है। और भगवान साक्षात तुम्हारे सामने खड़ा हो और तुम्हारी भक्ति न पड़े उसमें, तो पत्थर है। तुम्हारी भक्ति की ही सारी बात है। तुम्हारी भक्ति से भगवान का आविर्भाव होता है। तुम्हारी भक्ति पर्दा हटाती है।
तो मूल तत्व भगवान नहीं है, मूल तत्व भक्ति है।
कहते हैं शांडिल्यः प्रकरणात च।
अब तक सारे जगत में भक्तों के अनुभव से यही सिद्ध होता है कि भगवान दोयम, भक्ति प्रथम। भगवान पहले नहीं मिलता, भक्ति का आविर्भाव पहले होता है। उसी आविर्भाव में भगवान से मिलन होता है। भक्ति की आंख चाहिए भगवान को देखने को। प्रेम की आंख चाहिए प्रेयसी को, प्रेमी को खोज लेने को। दर्शनफलमितिचेन्न तेनव्यवधानात्।
"दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है।"
यह सूत्र अपूर्व है। शांडिल्य कहते हैंः भक्त की आकांक्षा भगवान का दर्शन कर लेने की नहीं है, क्योंकि दर्शन में तो दूरी रह जाती है। तुम इधर खड़े, भगवान उधर खड़े, दर्शन हो रहा! फासला है, व्यवधान है, दूरी है। दर्शन में दूरी है। तो भक्त क्या चाहता है? भक्त भगवान में एक होना चाहता है; दर्शन नहीं, एकात्म चाहता है। भक्त की तब तक तृप्ति नहीं है, जब तक भक्त भगवान न हो जाए, जब तक निमज्जित न हो जाए।
ज्ञानी सस्ते में राजी हो जाता है। वह कहता है, दर्शन हो गए, चले। देख लिया, जान लिया, पहचान लिया, प्रसन्न हो गए। यह तो ऐसे ही हुआ कि मिठाई के दर्शन कर लिए और प्रसन्न होकर चले गए। स्वाद तो लिया नहीं, माधुर्य तुम्हारे रक्त में तो बहा नहीं, तुम्हारी मांस-मज्जा में तो सम्मिलित नहीं हुआ, मिठाई के दर्शन से क्या होगा?
शांडिल्य ठीक कहते हैं कि भक्त उतने से राजी नहीं है। भक्त कहता हैः
यह भी कोई बात हुई! यह तो और बेचैनी बढ़ेगी। नहीं जाना था, वही अच्छा था। कम से कम इतना तो था कि तुम हो ही नहीं। हो ही नहीं तो कोई बेचैनी नहीं थी। जान कर तो अड़चन शुरू हुई। अब तो बिना एक हुए कोई मार्ग नहीं है, एक हो जाएं तभी तृप्ति है। अन्यथा अतृप्ति की आग जलेगी और जलाएगी, तड़फाएगी।
"दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है।"
भक्त आत्यंतिक चाहता है, अंतिम चाहता है, जिसमें कोई दूरी न रह जाए।
सभी प्रेमी यही चाहते हैं। और इसीलिए तो प्रेम में इतनी विफलता होती है।
समझना।

तुम किसी स्त्री को प्रेम किए, किसी पुरुष को प्रेम किए। इतना विषाद क्यों होता है प्रेम में? प्रेमी बहुत शीघ्र ही विषाद से भर जाता है। विषाद कहां से आता है? प्रसन्न होना चाहिए था, तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिल गई। जानने वाले कहते हैंः मजनू धन्यभागी है कि उसको लैला नहीं मिली। मिल जाती तो विषादग्रस्त हो जाता। जिनको मिल गई है, उनसे पूछो। मिल जाने के बाद विषाद हो जाता है। जिस स्त्री को तुमने चाहा, मिल गई, अब क्या करो? अब बैठे हैं पति-पत्नी होकर। अब कर रहे हैं एक-दूसरे का दर्शन और घबड़ा रहे हैं एक-दूसरे को, और घबड़ा रहे हैं एक-दूसरे से, और ऊब रहे हैं, अब करो क्या? यह विषाद इसलिए पैदा होता है कि कोई उपाय नहीं इस स्त्री के साथ एक हो जाने का, इस पुरुष के साथ एक हो जाने का। कितने ही करीब आओ, दूरी रह जाती है। उस दूरी में विषाद है। मजनू को कम से कम एक तो आश्वासन रहा होगा कि कभी लैला मिलेगी, कभी मिलन होगा। उसे यह पता नहीं है कि मिलन होता ही नहीं। यह तो पता तभी चलेगा जब लैला मिल जाए और मिलन न हो, तब पता चलेगा, उसके पहले पता नहीं चलेगा। हाथ में हाथ लेकर खड़े रहो अपनी प्रेयसी का तो भी मिलन कहां है? तुम्हारा हाथ अलग, प्रेयसी का हाथ अलग। दोनों के बीच में बहुत कम दूरी है, मगर कम दूरी भी काफी दूरी है। गले से गला लगा कर खड़े हो जाओ, हृदय से हृदय लगा कर खड़े हो जाओ, और दूरी है। संभोग के क्षण में भी एक क्षण को ऐसी भ्रांति होती है कि दूरी मिट गई, मगर दूरी तो बनी ही रहती है।
इस जगत में प्रेम का विषाद यही है कि प्रेम चाहता है प्रेमी के साथ एक
हो जाए और नहीं हो पाता। यह घटना भक्ति में ही घट सकती है। क्योंकि भक्ति में दो देहों का मिलन नहीं है, दो आत्माओं का मिलन है। आत्माएं एक-दूसरे में मिल सकती हैं।
ऐसा समझो कि तुमने एक कमरे में दो दीये जलाए। तो दो दीये तो अलग-अलग होंगे, लेकिन दोनों दीयों का प्रकाश मिल जाएगा। दीये नहीं मिल सकते--तुम दीयों को कितना ही खटखटाओ, एक-दूसरे के साथ लड़ाओ, मिलाओ-जुलाओ, दीये नहीं मिल सकते, दीये तो अलग ही रहेंगे। लेकिन दोनों की रोशनी मिल जाएगी। आत्मा रोशनी है--कोई व्यवधान नहीं आता। एक कमरे में दो दीये जलाओ, पचास दीये जलाओ, कोई अड़चन नहीं आती। कमरा एकदम चिल्लाने नहीं लगेगा कि यहां रोशनी ज्यादा हो गई, अब नहीं समाएगी। कितनी ही रोशनी लाओ, समा जाएगी। और ऐसा भी नहीं होगा कि दूसरे दीये यह कहने लगें कि और दीये मत लाओ, इससे हमारी रोशनी में बाधा पड़ती है, कि अतिक्रमण होता है हमारी रोशनी का, कि हमारी रोशनी का क्षेत्र कम होता है, दूसरे कब्जा कर लेते हैं। हां, ऐसा तो हो सकता है कि एक घड़ी आ जाए, कमरे में दीये न बन सकें; लेकिन रोशनी न बने, ऐसी घड़ी कभी न आएगी। रोशन तत्व एक-दूसरे से मिल जाते हैं। आत्मा तुम्हारी रोशनी है, शरीर तुम्हारा दीया है।
प्रेम का अर्थ हैः दो दीयों को मिलाने की कोशिश चल रही है, दो देहों को मिलाने की कोशिश चल रही है। विषाद सुनिश्चित है। विषाद अनिवार्य है। भक्ति का अर्थ हैः यह भ्रांति छोड़ दी कि दीये मिलाने हैं। ज्योति में ज्योति मिलानी है। और ज्योति से ज्योति जब मिल जाती है, तो दर्शन नहीं होता, साक्षात्कार नहीं होता, ज्ञान नहीं होता, भक्त भगवान हो जाता है। अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष उठता है। अनलहक का उदघोष उठता है। मैं और तू दो नहीं रह जाते। सच तो यह है, उस स्थिति में हमें यह भी नहीं कहना चाहिए कि भक्त बचता है, हमें यह भी नहीं कहना चाहिए कि भगवान बचता है। मैं शब्द सुझाना चाहता हूं--भगवत्ता बचती है। इधर भक्त खो जाता है, उधर भगवान खो जाता है। क्योंकि भगवान को होने के लिए भी भक्त का होना जरूरी है। भक्त के बिना भगवान नहीं हो सकता, भगवान के बिना भक्त नहीं हो सकता। वे तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक गया कि दूसरा गया। तो जो बचती है, वह है-- भगवत्ता, दिव्यता, असीम आलोक।
भक्ति का मार्ग आलोक का मार्ग है। आलोक पंथः।
"दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है।" दृष्टत्वाच्च।
"इस प्रकार देखने में भी आता है।"

शांडिल्य कहते हैंः जो-जो गए हैं, उनसे पूछो! वे सभी यही कहेंगे--इस प्रकार देखने में भी आता है--कि जैसे-जैसे भक्त भगवान के करीब पहुंचता है, वैसे ही वैसे दर्शन में रस नहीं रह जाता। योग में रस होता है, दर्शन में नहीं। मिलन हो जाए, सम्मिलन हो जाए। इस तरह मिलना हो जाए कि कहीं कोई रेखा विभाजन न करे। मेरे हृदय में भगवान धड़के, मैं भगवान के हृदय में धड़कूं। न कोई मैं बचे, न कोई तू बचे।
जलालुद्दीन रूमी की प्रसिद्ध कविता है कि प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी और पीछे से पूछा गया--कौन है? कौन है? और प्रेमी ने कहा, मैं हूं तेरा प्रेमी, तू मेरी पदचाप नहीं पहचानी? लेकिन भीतर सन्नाटा हो गया। उसने फिर दस्तक दी, उसने कहा, तूने मुझे पहचाना नहीं? मेरी आवाज नहीं पहचानी? और प्रेयसी ने कहा, यह घर छोटा है, यह प्रेम का घर है, यहां दो न समा सकेंगे।
प्रेमी लौट गया। दिन आए, रातें आईं; सूरज निकला, चांद निकला; वर्ष आए, वर्ष गए; उसने बड़ी कठोर साधना की। फिर वर्षों बाद वापस आया, द्वार पर दस्तक दी, फिर पूछा गया वही प्रश्न--वही प्रश्न सदा पूछा जाता है--कौन है? अब की बार उसने कहा कि मैं नहीं हूं, तू ही है।
जलालुद्दीन रूमी ने यहां कविता पूरी कर दी है, मैं पूरी नहीं कर सकता। रूमी से मेरा कहीं मिलना हो जाए तो उनसे कहूं--अधूरी है, इसको पूरा करो। क्योंकि प्रेमी कहता है कि मैं नहीं हूं, तू ही है। लेकिन जब तक तुम्हें तू का पता है, मैं का पता भी होगा। यह कहने के लिए भी मैं होना चाहिए कि मैं नहीं हूं। यह कौन कहता है? यह किसको स्मरण हो रहा है कि मैं नहीं हूं? और यह कौन कहता है कि तू ही है? यह भेद कौन कर रहा है मैं और तू का?
सब मौजूद है। सिर्फ जो धारा पृथ्वी के ऊपर बहती थी, वह अंतर्धारा हो गई, वह पृथ्वी के नीचे बहने लगी। मैं अंडरग्राउंड चला गया। और यह और खतरनाक हालत है। मैं ऊपर था तो पहचान में आता था, दुश्मन साफ-साफ था। अब मैं जो है भूमिगत हो गया, अब उसने अपने को नीचे छिपा लिया। अब वह कहता है-- मैं नहीं हूं। अहंकार बड़ा सूक्ष्म है, वह यह भी कह सकता है कि मैं नहीं हूं, और अपने को बचा ले सकता है।
अगर मैं उस कविता को आगे बढ़ाऊं, तो मैं उसे फिर वापस भेज दूंगा। हालांकि कठोरता लगेगी कि प्रेमी के साथ मैं ज्यादती कर रहा हूं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? मेरे वश में हो तो मैं यही कहूंगा कि प्रेयसी ने कहा कि अभी कुछ फर्क नहीं हुआ, यह घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे। प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समाएं।
प्रेमी फिर लौट गया। फिर तो और ज्यादा समय लगा होगा, और अनंत वर्ष, या कहना चाहिए अनंत जन्म। और एक दिन वह घड़ी आई, जब प्रेमी सच में ही मिट गया। न मैं ऊपर रहा, न भीतर रहा; न चेतन में, न अचेतन में; न भूमि पर, न भूमिगत। तब मेरे सामने एक अड़चन है--अब उसको कैसे लाएं वापस प्रेयसी के दरवाजे पर? मैं नहीं ला सकता। वह भी मैं नहीं कर सकता। शायद इसीलिए जलालुद्दीन रूमी ने कविता वहीं पूरी कर दी। नहीं तो कविता बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी, उसको पूरा कहां करोगे। कविता को आखिर कहीं शुरू और कहीं पूरा होना पड़ता है, जिंदगी तो कहीं शुरू नहीं होती और कहीं पूरी नहीं होती। मैं भी जानता हूं जलालुद्दीन की तकलीफ कि वहीं क्यों पूरी कर दी कविता को। क्योंकि जब मैं बिल्कुल ही मिट जाएगा, तो फिर प्रेमी लौट नहीं सकता।
पर क्या जरूरत है कि प्रेमी लौटे ही? मैं पसंद करूंगा कि फिर प्रेयसी उसे खोजने निकलती। क्योंकि जब मैं मिट गया प्रेमी का, तो प्रेयसी को खोजने निकलना ही पड़ेगा। जिस दिन व्यक्ति का मैं मिट जाता है, उस दिन परमात्मा खोजने निकलता है। तुम कहीं मत जाओ, सिर्फ नहीं हो जाओ, और परमात्मा भागा चला आएगा।
और तुम जाओगे भी तो कहां जाओगे? उसे खोजोगे भी तो कहां खोजोगे? वह सामने भी मिल जाएगा रास्ते पर कहीं बैठा हुआ, तो तुम पहचानोगे कैसे कि यही है? पहले कभी देखा नहीं, प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? जिन रूपों में तुम देख रहे हो, या सोचते हो कि होगा, उन रूपों में दुबारा नहीं होता। अगर तुम कृष्ण के भक्त हो और तुम सोचते हो कि मोरमुकुट बांधे और एम.जी. रोड पर कहीं

भीड़-भाड़ इकट्ठी किए बांसुरी बजा रहे होंगे, तो तुम्हारे पहुंचने के पहले पुलिस उनको ले जाएगी। कि यह आदमी यहां ट्रैफिक में गड़बड़ कर रहा है! और यह मोरमुकुट क्यों बांधा है? होश में हो कि पागल हो? और तुम्हें भी मिल जाएं यह मोरमुकुट बांधे, तो तुम भी कहोगे कि कोई कृष्णलीला होने वाली है बस्ती में? क्या बात है? या रामचंद्रजी मिल जाएं धनुषबाण इत्यादि लिए हुए जाते, तो तुम चौंक कर खड़े हो जाओगे कि भई, रामलीला होने वाली है? क्या बात है? तुम भी भरोसा नहीं करोगे। क्योंकि सत्य दुबारा नहीं दोहरता। कृष्ण एक बार हुए, दुबारा नहीं होंगे। बुद्ध एक बार हुए, दुबारा नहीं होंगे। परमात्मा हर बार नये रूपों में आता है, इसीलिए तो पहचान नहीं हो पाती। तुम पुराने के साथ नाता जोड़े बैठे रहते हो और परमात्मा नया होकर आता है। परमात्मा का अर्थ ही है, जो प्रतिपल नया है। अब हो सकता है इस बार वह फुलपैंट इत्यादि पहन कर आ गए हों, और मोरमुकुट न बांधा हो। फुलपैंट में देख कर ही तुम कहोगे कि खतम बात!
एक गांव में मैं मेहमान था। वहां के कालेज ने "आधुनिक रामलीला", ऐसा
एक नाटक खेला। झगड़ा हो गया वहां। गांव के पंडित बहुत नाराज हो गए। वे मजाक भी न समझ सके। प्यारा व्यंग्य था। मुझे उसी का उदघाटन करने बुलाया था। मैं उदघाटन करके मुसीबत में पड़ गया। पीछे मुकदमा चला। मुझे अदालत तक में जाना पड़ा। प्यारा व्यंग्य था। लेकिन गांव के लोगों को न जंचा, क्योंकि रामचंद्रजी सिगरेट पीते। गांव के लोगों ने कहा कि मार-पीट हो जाएगी, हत्या हो जाएगी--रामचंद्रजी और सिगरेट पीते हों! और सीताजी लंबी एड़ी का जूता पहन कर चलती हैं!
मैं तुमसे कहता हूं, जरा होश रखना, हो सकता है लंबी एड़ी का जूता पहन कर चलती हों। जमाना बदल गया, भगवान पुराना थोड़े ही रहता है, रोज नया हो जाता है। मगर हमारी आंखें पुरानी हैं। हम कहते हैं--ऐसा होना चाहिए। हमने एक ढांचा बांध रखा है। उस ढांचे में फिर कभी नहीं होगा। भगवान बासा नहीं है। तुमने कभी एक सुबह दूसरी सुबह जैसी देखी? और एक सांझ दूसरी सांझ जैसी देखी? जब सूरज सांझ को डूबता है तो जो रंग फैल जाते आकाश में, वैसे तुमने कभी पहले देखे थे? कभी दुबारा वैसा दोहरेगा फिर? कभी नहीं दोहरेगा, कुछ नहीं दोहरता। परमात्मा की सृष्टि अपूर्व है। वह पुनरुक्ति नहीं करता। उसकी सृजन-क्षमता असीम है, पुनरुक्ति करे क्यों? जो आदमी रोज नई कविता गा सकता हो, वह पुरानी क्यों गाए? और जो आदमी रोज नया गीत पैदा कर सकता हो, वह पुराना क्यों दोहराए? परमात्मा अपनी कापी नहीं करता, वह कार्बनकापियां नहीं भेजता। वह सिर्फ एक ही मूललिपि, ओरिजिनल, उसके बाद बात खतम। उसके दफ्तर में डुप्लीकेटर है ही नहीं।
मगर हमारी पकड़ पुराने की होती है। तुम्हें मिल भी जाए तो तुम पहचान न सकोगे।
फिर क्या उपाय है?
तुम मिटो, तुम शून्य हो जाओ, भागा आता है परमात्मा चारों तरफ से और तुम्हें भर देता है। तुमने जल को देखा? कभी जल में तुमने घड़ा भरा? तुम घड़ा भरते हो, खाली जगह छूटी, चारों तरफ से जल दौड़ कर उसे तत्क्षण भर देता है। शून्य बर्दाश्त नहीं किया जाता। हवा में शून्य पैदा हो जाए, चारों तरफ से हवा दौड़ कर उस शून्य को भर देती है। जहां शून्य पैदा हो जाता है, वहीं भरने के लिए ऊर्जा पहुंच जाती है। तुम जरा शून्य होकर देखो, और तुम पाओगे कि पूर्ण से भर दिए गए।
शांडिल्य कहते हैंः दृष्टत्वाच्च।
इस प्रकार ही देखने में आया है। जानने वालों ने इसी तरह जाना है कि जो उसके पास गया, खुद तो मिटा ही, परमात्मा भी उसके साथ ही मिट गया। भगवत्ता शेष रही।
अत एव तदभावाद्वल्लवीनाम्।
"ज्ञान-विज्ञान आदि के अभाव रहने पर भी ब्रज की गोपियां अनुराग के बल
से ही मुक्ति के लाभ करने में समर्थ हो गई थीं।"
अत एव तदभावाद्वल्लवीनाम्।

उस प्यारे को पाने का एक ही उपाय है--उसके भाव से आपूर हो जाओ, आकंठ भर जाओ।
अत एव तदभावाद्।
उसका भाव तुम्हें पूरा डुबा दे। तुम उसके भाव में ही पूरे लीन हो जाओ।
उस प्यारे को पाने का एक ही उपाय है--ज्ञान नहीं, तप नहीं--भाव।
शांडिल्य कहते हैंः गोपियां न तो ज्ञानी थीं, न तपस्वी थीं, न उन्होंने योग साधा, न कृच्छ साधनाएं कीं, न हिमालय की गुफाओं में गईं, न त्याग किया संसार का। सीधी-साधी स्त्रियां थीं, मगर भाव से भर गईं। उसके भाव में डूब गईं।
तुमने चित्र देखा होगा--गोपियां नाच रही हैं, कृष्ण नाच रहे हैं, और हर गोपी के साथ एक कृष्ण नाच रहा है--कृष्ण उतने ही हो गए जितनी गोपियां हैं। जितने शून्य होंगे इस जगत में, उतनी ही भगवत्ताएं हो जाती हैं। महावीर भी भगवान हैं, इससे कुछ बुद्ध के भगवान होने में कमी नहीं पड़ती।
मगर हम बड़े कंजूस हैं। हम सोचते हैं इसमें झंझट है। इसलिए ईसाई कहता हैः सिर्फ क्राइस्ट भगवान हैं, कृष्ण नहीं। और हिंदू कहता हैः कृष्ण भगवान हैं, महावीर नहीं। और जैन कहता हैः महावीर भगवान हैं और बुद्ध नहीं। क्योंकि सबको ऐसा लगता है कि बहुत भगवान हो गए तो अपने भगवान की भगवत्ता कुछ कम हो जाएगी। कंजूसों का हिसाब है। वे सोचते हैं--इतने भगवान हो गए तो स्वभावतः भगवत्ता डायल्यूट हो जाएगी। उसकी मात्रा कम-कम हो जाएगी। बूंद-बूंद रह गई। अपने ही भगवान सिर्फ भगवान होते, तो पूरा सागर होते। अब इतने हो गए, तो बस बह रहे हैं छोटे-मोटे झरने की भांति, फिर सागर कहां! इस डर के कारण सारे धर्म एक मूढ़तापूर्ण बात में उलझ गए हैं कि जो हमारा है, बस वही सच, बाकी सब झूठ।
तुमने कृष्ण को देखा, सब गोपियों के साथ नाचते? वह बड़ा प्रतीक चित्र है। वह यह कह रहा है कि जितनी चेतनाएं हैं इस जगत में, उतनी भगवत्ताएं हो सकती हैं। भगवान अनंत है, भगवत्ताएं अनंत हो सकती हैं। तुमने उपनिषद का वचन सुना? उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। बुद्ध के भगवान होने से भगवान कुछ कम नहीं हो गया, कि अब जो भगवान होगा उसको कुछ कम मात्रा में भगवत्ता मिलेगी। भगवान उतना का ही उतना है। सारी कला तुम्हारे शून्य होने की है। तुम शून्य हुए कि तुम पूर्ण से भरे। फिर जितने शून्य होंगे उतने पूर्ण से भर जाएंगे। यह सारा जगत भगवान से सराबोर है। इसमें कोई और जगह ही नहीं है। भगवान ही भगवान भरा हुआ है। और जब तुम्हें पता नहीं है, तब भी भगवान तुम्हारे भीतर मौजूद है, सिर्फ पता नहीं है। सारी बात इतनी है कि तुम्हें लौट कर दिखाई पड़ जाए। न तो तपश्चर्या की जरूरत है, न किसी गोरखधंधे में पड़ने की।
तदभावाद्वल्लवीनाम्।
उस प्यारे को पाना है, बस एक बात कर लो--अपने को मिटा दो, उसके भाव को निमंत्रण दे दो।
भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात्।
"यदि ऐसा कहो कि भक्ति से ही ज्ञान का उदय होता है, तो ऐसा नहीं है, क्योंकि ज्ञान भक्ति की सहायता किया करता है।"
कुछ लोग सोचते हैं, शांडिल्य कहते हैं, शंका उठाते हैं कि कुछ लोग सोचते हैं, कुछ लोगों ने कहा भी है--कि भक्त को ही असली ज्ञान होता है। शांडिल्य कहते हैंः ज्ञानी को तो भक्ति होती ही नहीं; अगर वह ज्ञान में ही उलझ गया तो भक्ति से वंचित रह जाता है। हां, ज्ञानी अगर समझदार हो--और ज्ञानी कम ही समझदार होते हैं--क्योंकि ज्ञानी अकड़ा होता है, समझ कहां? जानने की अकड़ निर्मल नहीं होने देती, विनम्र नहीं होने देती। अगर ज्ञानी समझदार हो, जो कि बहुत विरले ज्ञानियों में मिलेगा, अगर ज्ञानी समझदार हो, प्रज्ञावान हो, तो ज्ञान का उपयोग भी भक्ति को पाने के लिए करता है। ज्ञान की सहायता भक्त होने के लिए करता है, लेता है। अपने ज्ञान को समर्पित कर देता है भाव के लिए। अपने मस्तिष्क को हृदय की सेवा में लगा देता है। अपने तर्क को अपनी श्रद्धा का चाकर बना देता है। फिर तर्क भी बड़ा काम आता है।

क्योंकि वह श्रद्धा का सहयोगी हो जाता है। फिर ज्ञान भी काम में आ जाता है, वह सीढ़ी बन जाता है। भक्त उस पर चढ़ कर मंदिर तक पहुंच जाता है।
शांडिल्य कहते हैंः जो ऐसा कहता हो कि भक्त को ज्ञान उपलब्ध होता है अंत में, वह तो गलत कहता है, क्योंकि ज्ञान में तो भेद रह जाता है--ज्ञाता का, ज्ञेय का भेद रह जाता है, दूरी रह जाती है। जैसे दर्शन में दूरी रह जाती है, वैसे ज्ञान में दूरी रह जाती है। भक्त तो एक ही हो जाता है--वहां कौन जानने वाला, कौन जाना जाने वाला? वहां तो दोनों मिल गए और एक हो गए। वहां जीवन की शुरुआत है, जानने की नहीं। वहां अनुभूति का जन्म है, जानने का नहीं।
फिर इसलिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ज्ञान का जन्म भक्ति के अंत में होता है, क्योंकि ज्ञान का तो सहारा लिया सीढ़ियों की तरह। ज्ञान पर तो चढ़े और भक्ति तक पहुंचे। अज्ञानी से अज्ञानी के पास भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है। नहीं तो वह कभी का ज्ञानी हो गया होता। अज्ञानी के पास भी थोड़ा न बहुत ज्ञान है, वही अटका रहा है--अज्ञान नहीं अटका रहा है, ज्ञान अटका रहा है। तुमने ऐसा अज्ञानी देखा जो कहे कि मैं पूर्ण अज्ञानी हूं? अगर ऐसा अज्ञानी तुम्हें मिल जाए, उसके चरण पकड़ लेना। क्योंकि वह तो ज्ञान को उपलब्ध हो गया, जो कह दे मैं पूर्ण अज्ञानी। लाओत्सु ने कहा है कि मेरी हालत महामूढ़ जैसी है। जैसे मूढ़ों की खोपड़ी खाली होती है, ऐसी मेरी है। अज्ञानी भी दंभ करता है कि मैं जानता हूं। हो सकता है तुमसे कम जानता हूं, लेकिन जानता हूं। मात्रा का भेद होगा, गुण का भेद नहीं है। पंडित में और मूर्ख में मात्रा का भेद होता है, गुण का भेद नहीं होता। मूर्ख थोड़ा कम पंडित है, पंडित थोड़ा कम मूर्ख है, बस इतना ही फर्क होता है। एक ही सीढ़ी पर हैं--एक जरा आगे, एक जरा पीछे।
ज्ञान रोकता है--अज्ञानी को भी और ज्ञानी को भी। धन्यभागी हैं वे जो ज्ञान की सहायता ले लें, जो ज्ञान की सीढ़ियां बना लें।
भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात्।
भक्ति के अंत में ज्ञान नहीं है। भक्ति के शुरू में ही, जो ज्ञान है उसकी सीढ़ियां बना लेनी हैं, सहायता ले लेनी है। सीढ़ियों पर चढ़ कर जब तुम मंदिर में पहुंचोगे तो भगवान मिलेगा, और सीढ़ियां नहीं मिलेंगी। नहीं तो मंदिर में पहुंचे ही नहीं अगर और सीढ़ियां मिलें।
ज्ञान तो सहयोगी हो सकता है ज्यादा से ज्यादा, अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता। ज्ञान साधन हो सकता है, साध्य नहीं हो सकता। तुम कोई चीज जानना चाहते हो, क्योंकि तुम कुछ और पाना चाहते हो। ज्ञान अपने आप में साध्य नहीं है, उपकरण है। भक्ति साध्य है।
जैसे समझो, तुम धन कमाना चाहते हो। कोई पूछे कि धन किसलिए? तो तुम उत्तर दे सकते हो कि ताकि आराम से रह सकूं। कोई पूछे आराम से किसलिए रहना चाहते हो? तो तुम कहोगे, ताकि मैं प्रेम कर सकूं, अपने बच्चे, अपनी पत्नी... । लेकिन कोई तुमसे पूछे कि प्रेम किसलिए करना चाहते हो? तो तुम अटक जाओगे, तुम उत्तर न दे पाओगे। और जो उत्तर दे दे, वह प्रेम को जानता ही नहीं। तुम कहोगे--प्रेम तो प्रेम के लिए।
धन किसी चीज के लिए, पद किसी चीज के लिए, ज्ञान किसी चीज के लिए, लेकिन प्रेम? प्रेम गंतव्य है। प्रेम अपने आप में अपना साध्य है। भक्ति तो प्रेम की पराकाष्ठा है। इसलिए भक्ति के बाद और कोई फल नहीं है, भक्ति तो स्वयं फल है। और सब खाद बन जाए। खाद तुम बना सको तो बुद्धिमान हो।
इन अपूर्व सूत्रों पर खूब ध्यान करना। इनके रस में डूबना। एक-एक सूत्र ऐसा बहुमूल्य है कि तुम पूरे जीवन से भी चुकाना चाहो तो उसकी कीमत नहीं चुकाई जा सकती।
भक्त कुछ मांगने नहीं जाता। भक्ति में भिक्षा का भाव ही नहीं है। लेकिन फिर भी भक्त हाथ तो पसारता है। मांगना नहीं चाहता, मांगता भी नहीं; पर हाथ तो फैलाता है, झुकता तो है। और ऐसा भी नहीं कि भक्त पाता नहीं, भक्त खूब पाता है। जितना भक्त पाता है, कोई भी नहीं पाता।

मैंने

हाथ
इस भाव से
नहीं पसारा था

बस
पसार दिया था

तुमने
जाने क्या सोच कर
मेरे हाथ में
ब्रह्मांड रख दिया

अब
कहां घूमूं मैं
इसे
मुट्ठी में बांधे-बांधे!

जो बिना मांगे हाथ पसार दे, अहोभाग्य हैं उसके! क्योंकि मांग नहीं होगी, तो सारा ब्रह्मांड उपलब्ध हो जाएगा, सब उपलब्ध हो जाएगा। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। भिखारी को कुछ भी नहीं मिलता। भिखारी को तो कहा जाता है--आगे बढ़ो। सम्राटों को मिलता है।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जिनके पास है उन्हें और दिया जाएगा और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
प्रेम को उमगाओ। अगर तुम्हारे पास प्रेम है तो और मिलेगा तुम्हें।
मांगो मत, मांगने की जरूरत नहीं है, प्रेम के पीछे अपने आप साम्राज्य चले आते हैं। प्रेम के पीछे अपने आप सब चला आता है।
जीसस ने कहा हैः पहले तुम प्रभु के राज्य को खोज लो, और पीछे सब अपने
आप चला आता है। सब! किसी और चीज को अलग-अलग खोजने की जरूरत नहीं है।
भक्ति के पीछे आता प्रसाद।
किसी वासना से, किसी हेतु से, किसी कारण से प्रार्थना मत करना। नहीं
तो प्रार्थना पहले से ही तुमने गलत कर दी। प्रार्थना करना प्रार्थना के सहज आनंद के लिए। नाचना, डोलना, मस्त होना, मदमस्त होना, मगर सहज आनंद के लिए।
यहां हजारों लोग आते, ध्यान करते, नाचते, आनंदित होते; उनमें से वे ही पाते हैं जो अकारण नाचते हैं। यह रोज-रोज घटते देखता हूं।
प्रकरणाच्च।
इसके प्रकरण ही प्रकरण यहां फैले हुए हैं। मिलता उन्हीं को जो मांगते
ही नहीं, जिन्हें मांगने का भाव ही नहीं है। जो कहते हैं--गीत में तल्लीन हो जाना, संगीत में डूब जाना, और क्या चाहिए! नाच लिए क्षण भर को--सारा अस्तित्व नाच रहा है, चांद-तारे नाच रहे हैं, इनके साथ हम भी सम्मिलित हो गए, इस रासलीला में थोड़ी देर हम भी भागीदार हो गए, और क्या चाहिए! जो ऐसा कहेगा, उसके हाथ में सारा ब्रह्मांड आ जाता है।
तुम्हारे हाथ में भी आ सकता है, पसारो! मगर मांगने के लिए मत पसारना।
पसारने के आनंद के लिए पसारना।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 छठवां प्रवचन

भक्त के मिटने में भगवान का उदय

पहला प्रश्नः प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि। यह कैसे होती है?

प्रयास है मनुष्य के अहंकार की छाया। प्रसाद है निर-अहंकार दशा में उठी सुगंध।
प्रयास से मिलता है क्षुद्र। आदमी की मुट्ठी बड़ी छोटी है। कंकड़-पत्थर बांध सकते हो मुट्ठी में। हिमालय को बांधने चलोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। प्रयास से मिलता है क्षुद्र, आदमी की शक्ति अल्प है, इसलिए। प्रसाद से मिलता है विराट। प्रयास है बंद मुट्ठी, प्रसाद है खुला हाथ। मैं पाकर रहूंगा, इसमें ही भ्रांति है। क्योंकि मैं ही भ्रांत है। मैं नहीं हूं, ऐसा जिस दिन जानोगे, उस दिन मिल गया। मिला ही था, सदा से मिला था, सिर्फ मैं की अकड़ के कारण दिखाई नहीं पड़ता था।
प्रसाद से जो मिलता है, वह आज मिलता है, ऐसा नहीं; मिला ही हुआ है, सदा
से मिला हुआ है। लेकिन तुम अपनी अकड़ में मस्त हो, देखो तो कैसे देखो! सूरज निकला है, तुम अपनी अकड़ में आंख बंद किए खड़े हो। इतना ही नहीं, आंख बंद करके तुम सूरज की तलाश भी कर रहे हो।
आंख खोलो! और ख्याल रखना, तुम लाख तलाश करो, आंख अगर बंद रहे तो प्रकाश तुम्हें मिलेगा नहीं। और प्रकाश चारों तरफ है, सब तरफ से बरस रहा है, तुम उसमें नहाए हुए खड़े हो, आंख खोलते ही मिल जाएगा।
अहंकार है बंद आंख, निर-अहंकारिता है खुली आंख। वर्षा तो हो ही रही है, लेकिन अहंकार है उलटा घड़ा, निर-अहंकार है सीधा घड़ा। वर्षा दोनों पर हो रही है, अहंकारी पर भी और निर-अहंकारी पर भी। कुछ भेद परमात्मा की तरफ से नहीं है, पापी पर भी बरस रहा है, पुण्यात्मा पर भी। उसकी तरफ से भेद हो भी नहीं सकता--पहाड़ों पर भी बरस रहा है, खाई-खड्डों में भी। लेकिन खाई-खड्डे भर जाएंगे और पहाड़ खाली रह जाएंगे, क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरे हैं, खाई-खड्डे खाली हैं, उनमें रिक्त अवकाश है, स्थान है।
अहंकार से भरे हो तो चूक जाओगे। और सब प्रयास अहंकार की ही उधेड़बुन हैं। मैं कुछ करके दिखा दूं--फिर चाहे धन, चाहे पद, चाहे मोक्ष--मगर मैं कुछ करके दिखा दूं। मैं अपनी पताका फहरा दूं। मैं दिखा दूं दुनिया को दुंदुभी पीट कर कि मैं कुछ हूं। मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं, महात्मा हूं, संत हूं, मुक्त हूं। ये जो मैं की घोषणाएं हैं, यही तो तुम्हें बांधे हैं, यही तो तुम्हारे पैरों में पड़ी जंजीरें हैं। यही तो तुम्हारे गले में लगा फांसी का फंदा है।
और तुम जिसे पाने का दावा कर रहे हो, दावे के कारण ही चूक रहे हो। जो तुमसे कहे कि मैंने खोजा और पाया, जान लेना उसने अभी पाया नहीं। जो तुमसे कहे--मैंने खोजा नहीं और पाया, समझना कि उसने पाया। खोजने से नहीं मिलता है; खोजने से खो जाता है। खोजने में ही खो जाता है। जो खोजता नहीं--वही तो ध्यान की दशा है, या प्रेम की दशा है--जो खोजता नहीं, बैठा है शांत, प्रतीक्षा करता है, खोजता नहीं। खोजने में तुम चलते हो, प्रतीक्षा में परमात्मा चलता है। प्रतीक्षा में तुमने निमंत्रण भेज दिया, असहाय छोटे बच्चे की भांति तुम रो रहे हो--मां चलेगी। खोज में तुम चल पड़ते हो।
तुम चले कि चूक हो गई। तुम चले कि कभी न पहुंचोगे। तुम जितने चलोगे उतने ही दूर हो जाओगे। यात्रा तुम्हें सत्य से दूर ले जाएगी, पास नहीं लाएगी। सत्य की कोई यात्रा ही नहीं है। ठहरो, रुको; जैसे हो, जहां हो, वहीं समर्पित। छोड़ो यह भाव कि मैं कुछ करके दिखा दूं। तुम हो कहां? पहले इसे तो खोज लो कि मैं हूं भी? थोड़ा अपने भीतर टटोलो, जरा अपनी गांठ खोलो और टटोलो-- मैं हूं भी? मैं हूं कहां? यह मैं है क्या सिवाय एक कोरे शब्द के! आज तक किसी ने कभी इसे पाया नहीं। एक भी व्यक्ति नहीं पा सका है पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। निरपवाद रूप से, जो भी भीतर गया, उसने पाया कि मैं नहीं है, सन्नाटा है, शांति है। कभी कोई मैं के आमने-सामने नहीं आया। जितने

भीतर गया, उतना ही मैं गला। और जिस दिन केंद्र पर पहुंचा अपनी जीवन ऊर्जा के, वहां मैं था ही नहीं। उस ना-मैं की दशा में जो घटता है उसका नाम प्रसाद है।
प्रसाद का अर्थ हैः तुम्हारे कारण नहीं, प्रभु के कारण। भेंट है, उसकी तरफ से है। तुम्हारे लिए सौगात है।
तुम पूछते होः "प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि। यह कैसे होती है?"
प्रकरणात च।
प्रकरणों में देखो। जब भी किसी को हुई है, तब ऐसे ही हुई है। कभी तुमने देखा, एक पक्षी तुम्हारे कमरे में घुस आता है। जिस द्वार से आया है, वह खुला है--इसीलिए भीतर आ सका है; द्वार बंद होता तो भीतर न आ सकता। और फिर खिड़की से टकराता है, बंद खिड़की के कांच से टकराता है। चोंचें मारता है, पर फड़फड़ाता है। जितना फड़फड़ाता है, जितना घबड़ाता है, उतना बेचैन हुआ जाता है। और खिड़की बंद है, और टकराता है। लहूलुहान भी हो सकता है। पंख भी तोड़ ले सकता है। कभी तुमने बैठ कर सोचा, यह पक्षी कैसा मूढ़ है! अभी दरवाजे से आया है, और दरवाजा खुला है, अभी उसी दरवाजे से वापस भी जा सकता है, मगर बंद खिड़की से टकरा रहा है!
प्रकरणात च।
वहां खोजना प्रकरण। वहां तुम्हें शांडिल्य का सूत्र याद करना चाहिए। ऐसा ही आदमी है।
तुम इस जगत में आए हो, तुम अपने को जगत में लाए नहीं हो, आए हो--वहीं प्रसाद का सूत्र है। तुमने अपने को निर्मित नहीं किया है। यह जीवन तुम्हारा कर्तृत्व नहीं है, तुम्हारा कृत्य नहीं है, यह दान है, यह परमात्मा का प्रसाद है। यह द्वार खुला है, जहां से तुम आए। तुमसे किसी ने पूछा था जन्म के पहले कि महाराज, आप होना चाहते हैं? न किसी ने पूछा, न किसी ने तांछा। अचानक एक दिन तुमने पाया कि आंखें खुली हैं, श्वास चली है, जीवन की भेंट उतरी है। अचानक एक क्षण तुमने अपने को जीवित पाया। सारे जगत को रसविमुग्ध पाया। इसे तुमने चुपचाप स्वीकार कर लिया। तुमने कभी इस पर सोचा भी नहीं कि मुझसे किसी ने पूछा नहीं, मैंने निर्णय किया नहीं, यह जीवन सौगात है, प्रसाद है।
यहीं से दरवाजा खुला, जहां से तुम आए। और अब तुम प्रयास की बंद खिड़की
पर सिर मार रहे हो, पंख तोड़े डाल रहे हो। जहां से आए हो, जैसे आए हो, उसी में सूत्र खोजो।
और ऐसा नहीं है कि तुम जब आए थे तब प्रसाद मिला था, रोज प्रसाद मिल रहा है। यह श्वास तुम्हारे भीतर आती-जाती है, लेकिन तुम कहते हो--मैं श्वास ले रहा हूं। अहमन्यता की भी सीमा होती है! विक्षिप्त बातें मत कहो। तुम क्या श्वास लोगे? श्वास लेना तुम्हारे हाथ में होता, तो तुम मरोगे ही नहीं कभी फिर, तुम श्वास लेते ही चले जाओगे। मौत दरवाजे पर आकर खड़ी रहेगी, यमदूत बैठे रहेंगे और तुम श्वास लेते रहोगे।
श्वास तुम्हारे हाथ में नहीं है। तुमने एक भी श्वास नहीं ली है कभी। श्वास तुम्हें ले रही है। तुम श्वास को लेते हो? यह तुम्हारा कृत्य है? तो आधी घड़ी को बंद कर दो--क्योंकि जो कृत्य है, वह बंद भी किया जा सकता है--तो आधी घड़ी श्वास मत लो, देखें! क्षण भी नहीं बीतेंगे और तुम पाओगे कि बेचैनी इतनी भयंकर हुई जा रही है! श्वास भीतर आना चाहती है, द्वार पर दस्तक दे रही है और तुम न आने दोगे तो भी आएगी। और एक दिन तुम लाना चाहोगे और नहीं आना है तो नहीं आएगी।
न रोक सकते हो श्वास तुम, न ले सकते हो श्वास तुम। श्वास चल रही है। अपने से चल रही है। इसलिए तो रात नींद में भी चलती है, नहीं तो नींद में तुम्हें याद रखना पड़े बार-बार, आंख खोल-खोल कर देखना पड़े कि श्वास ले रहा हूं कि नहीं ले रहा हूं? कहीं नींद में भूल न जाऊं श्वास लेना, नहीं तो मारे गए। फिर तो कोई सो भी न सकेगा निश्चिंत। पति सोएगा तो पत्नी जाग कर देखेगी और पत्नी सोएगी तो पति जाग कर देखता रहेगा कि कहीं श्वास लेना न भूल जाए। फिर भी रोज भूल-चूकें होंगी, रोज दुर्घटनाएं होंगी, कि आज फलां मर गए, आज ढिकां मर गए, रात श्वास लेना भूल गए। नींद में याद भी कौन रखेगा?

लेकिन नींद में भी श्वास चलती है। जब तुम प्रगाढ़ निद्रा में डूबे हो,
जब तुम्हें अपना भी पता नहीं कि तुम हो या नहीं, स्वप्न भी नहीं चलता तुम्हारे चित्त पर, सब खो गया, अहंकार है ही नहीं--गहरी निद्रा में कहां अहंकार? इसलिए तो पतंजलि ने कहा कि सुषुप्ति और समाधि एक जैसे हैं। इस अर्थ में एक जैसे हैं कि दोनों में अहंकार नहीं होता। तुम हो कहां गहरी निद्रा में? सब सीमाएं समाप्त हो गईं, तुम शून्यवत हो। लेकिन फिर भी श्वास चल रही है। सब काम चल रहा है--पेट में पाचन चल रहा है, खून की धारा बह रही है, हड्डी-मांस-मज्जा बन रहा है--सब चल रहा है। पैर पर एक कीड़ा चढ़ने लगेगा, पैर उसे झटक देगा--और तुम हो ही नहीं! और सुबह तुम बता भी न सकोगे कि रात एक कीड़ा चढ़ा था और मैंने झटक दिया था--तुम्हें याद भी नहीं है। एक मच्छर भिनभिनाएगा, हाथ से तुम हटा दोगे। यह सब चल रहा है, और तुम नहीं हो। कर्म चल रहा है और कर्ता नहीं है, यहीं है सूत्र प्रसाद का--श्वास में है, सुषुप्ति में है।
तुम अगर अपने जीवन को थोड़ा परखो, पहचानो, जांचो, तो तुम्हें जगह-जगह प्रकरण मिल जाएगा। सब हो रहा है। जहां जीवन भी हो रहा है, प्रेम भी हो रहा है, श्वास भी चल रही है, वहां परमात्मा भी हो सकेगा। मेरे किए नहीं, मेरे किए कुछ भी नहीं हो रहा है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे किए क्षुद्र नहीं हो रहा है। विराट नहीं होता तुम्हारे किए, क्षुद्र होता है। धन कमाओगे, तो ही पाओगे। पद की चेष्टा करोगे अथक, तो ही पाओगे, शायद तो भी न पाओ। प्रतिस्पर्धा करोगे, गलाघोंट प्रतिस्पर्धा में उतरोगे, दूसरों की लाशों पर चढ़ोगे, तब कहीं किसी पद पर, किसी कुर्सी पर पहुंच पाओगे। यह तुम्हारे किए से होगा।
परमात्मा क्षुद्र की भेंट नहीं देता। परमात्मा की भेंट क्षुद्र हो भी नहीं सकती। जब तुम्हें धन मिलता है, वह तुम्हारा ही प्रयास है। जब तुम्हें पद मिलता है, वह तुम्हारा ही प्रयास है। क्षुद्र प्रयास है, विराट प्रसाद है। अगर तुम प्रयास में ही लगे रहे, तो तुम क्षुद्र को ही जोड़ कर मर जाओगे। हो सकता है बड़ा तुम्हारा साम्राज्य हो, सारी पृथ्वी पर तुम्हारा राज्य हो, मगर क्षुद्र ही होगा सब। तुम मरोगे दरिद्र। विराट को पाए बिना कोई समृद्ध नहीं होता।
और कौन पाता है विराट को? वही पाता है विराट को जिसे यह सत्य दिखाई पड़ता है कि मेरे किए क्या हो सकता है? मैं हूं कहां? मैं नहीं हूं, ऐसी प्रतीति जिसकी सघन हो जाती है, वहां प्रसाद बरसता है।

यह कैसे होता है
सो तो मैं भी नहीं जानता।

प्रयत्न के अभाव में होता है।
अनमने किसी भाव में होता है
गहरे किसी चाव में होता है

हां,
घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो
कोरा कोई सपना न हो!

प्रसाद अनिर्वचनीय तत्व है। इस जगत में अज्ञात की किरण है। मनुष्य के जीवन में वह द्वार है जहां से हम आए, और उसी द्वार से बाहर जाना हो सकता है। और वह द्वार सदा खुला है। लेकिन हम खिड़कियों पर, बंद खिड़कियों पर सिर मार रहे हैं। तुम्हें पक्षी को देख कर दया आती है, तुम सोचते हो, मूढ़, अरे मूढ़, दरवाजे से क्यों नहीं निकलता? तुम्हें अपने पर कब दया आएगी? क्योंकि आदमी भी ऐसा ही मूढ़ है।
यह कैसे होता है

सो तो मैं भी नहीं जानता।
क्योंकि तुम अगर जान लो कैसे होता है, तब तो तुम करने में सफल हो जाओगे। तुम अगर जान लो कि प्रसाद कैसे घटता है, "कैसे" पता चल जाए, तब तो तुम आयोजन करने लगोगे कि ऐसे घटता है। यही तो लोग कर रहे हैं आयोजन। कोई बैठा है मूर्ति के सामने थाल सजाए, दीप सजाए, धूप जलाए, प्रार्थना कर रहा है; सोचता है ऐसे प्रसाद होता है। मगर यह भी कृत्य है। इसमें भी प्रसाद नहीं होगा। तुम लाख पटको सिर, तुम कितने ही पूजा के फूल चढ़ाओ और तुम कितनी ही दीपमालाएं सजाओ और तुम कितनी ही आरतियां उतारो, नहीं होगा, क्योंकि तुम कर्ता की तरह वहां मौजूद हो। लेकिन तुम सोचते हो--शायद ऐसे होगा।
हो सकता है कि किसी को ऐसे हुआ हो। किसी को ऐसे हुआ हो, इसका अर्थ है--
यह प्रासंगिक बात थी कि वह आदमी हाथ से थाल उतार रहा था और उस समय घटा, निर-अहंकार घटा। मगर निर-अहंकार के घटने का कोई कार्य-कारण संबंध आरती उतारने से नहीं है। किसी दूसरे को जंगल में लकड़ी काटते घट गया था। किसी तीसरे को वृक्ष के नीचे बैठे घट गया था। किसी चौथे को नाचते घट गया था। किसी पांचवें ने वीणा के तार छेड़े थे, और घट गया था। मगर इनका किसी का भी कार्य-कारण से संबंध नहीं है। यह प्रासंगिक है, यह प्रसंगवशात है। इसमें से किसी को भी तुम ऐसा मत सोच लेना कि ऐसा ही मैं करूंगा।
समझो, मीरा को घटा नाचते। नाच से नहीं घटा, नाचते घटा। नाच से घटता, तब
तो फिर हमारे हाथ में सूत्र आ गया। फिर तो हम भी नाचेंगे और घट जाएगा। फिर कितने लोग तो नाच रहे हैं, और कितनी तो नर्तकियां हैं--मीरा से बेहतर नर्तकियां हैं दुनिया में--मगर उन्हें नहीं घट रहा है। नाच से घटता होता तो जो अच्छा नाचता है उसे पहले घट जाता। मीरा को घटा, उसके नाच में कुछ ज्यादा नाच जैसा था भी नहीं--अनगढ़ था, मगर घटा। कारण नहीं था। नाचते-नाचते खो गई, अहंकार गिर गया; नृत्य रहा, नर्तक विदा हो गया--और जहां मैं नहीं रहा, वहीं घटा।
बुद्ध को बिना नाचते घटा। अब बुद्ध के बाद ढाई हजार वर्षों से कितने लोग वृक्षों के नीचे बैठे हैं आंख बंद किए और नहीं घटता। वृक्ष के नीचे आंख बंद करके बैठने से नहीं घटता है। यह संयोग की बात थी। यह कहीं भी घट सकता है। यह तुलाधर वैश्य को दुकान पर बैठे-बैठे घटा था; तराजू तौलते- तौलते घटा था। यह जनक को सिंहासन पर बैठे-बैठे घटा था। यह कृष्ण को संसार के मध्य में घटा था। यह महावीर को संसार से हट जाने पर, पहाड़ की कंदराओं में नग्न खड़े-खड़े घटा था। मगर इनमें से कोई भी कारण नहीं है। ऐसा नहीं है कि जैसे हम पानी को गर्म करते हैं तो सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है, ऐसा कोई कारण नहीं है। नहीं तो फिर सभी को नग्न होकर गुफा-कंदराओं में खड़ा होना पड़े, तब घटे।
अध्यात्म विज्ञान नहीं है। अध्यात्म विज्ञान जैसी क्षुद्र सीमाओं में आबद्ध नहीं है। हां, एक सूत्र ख्याल में रखना, जब भी तुम नहीं हो, तब घटता है। इसलिए तुम्हारे कारण तो नहीं घटता है। तुम्हारे द्वारा नहीं घटता। तुम्हारे प्रयास से नहीं घटता। तुम्हारी अनुपस्थिति में घटता है। तुम कहो तो भी कैसे कहो?
यह कैसे होता है
सो तो मैं भी नहीं जानता
जिनको घट गया है, वे भी नहीं जानते कि कैसे होता है। उनसे भी तुम पूछो
तो वे कहेंगेः मुश्किल है बात; मत पूछो; इतना ही कह सकते हैं कि हमारे किए नहीं घटा। नकारात्मक परिभाषा दे सकते हैं। हमने नहीं पाया। हम तो थक गए थे, हार गए थे, गिर गए थे; हम तो विषाद में पड़े थे कि सब व्यर्थ गया, कुछ भी पाया नहीं जा सका, दौड़े बहुत, तड़पे बहुत, साधना की, साधन किए, सब करके देख लिया और एक क्षण गिर गए थे थक कर, तभी पाया कि घट गया। अव्याख्य है। प्रयत्न के अभाव में होता है
लेकिन कुछ बातें कही जा सकती हैं--नकारात्मक।
प्रयत्न के अभाव में होता है
जब तुम यत्न करते होते हो, तब तुम चिंता से भरे होते हो। यत्न यानी चिंता। होगा कि नहीं होगा; ऐसे करूं तो होगा कि वैसे करूं तो होगा; जिस

मार्ग पर चला हूं, ठीक है कि नहीं ठीक है; और भी बहुत मार्ग हैं; हजार विकल्प उठते हैं मन में, विचर उठते हैं मन में--किसके पीछे जाऊं? किस शास्त्र को मानूं? किस मंदिर को पूजूं? यह मंदिर ठीक है कि गलत? कोई उपाय भी तो नहीं, कोई कसौटी भी तो नहीं। यह शास्त्र सत्य है कि मिथ्या? सत्य कहने वाले लोग हैं और इसी शास्त्र को मिथ्या कहने वाले लोग हैं, किसकी मानूं? किसकी सुनूं? किसकी बूझूं?
यत्न तो चिंता लाता है। और यत्न में भ्रांति बनी ही रहती है कि मैं कोशिश कर रहा हूं, आज नहीं कल, कल नहीं परसों पाकर रहूंगा।
प्रयत्न के अभाव में होता है
अनमने किसी भाव में होता है
जब मन नहीं होता, ऐसे किसी भाव में होता है। जब कोई तरंग नहीं होती विचार की; कोई कल्पना, कोई वासना, कोई स्मृति मन को कंपाती नहीं, मन निष्कंप झील जैसा होता है।
अनमने किसी भाव में होता है
इतना ही कह सकते हैं कि जहां मन नहीं होता वहां होता है, जहां मैं नहीं होता वहां होता है।
गहरे किसी चाव में होता है
किसी गहरी प्रीति में, किसी गहरी श्रद्धा में, किसी गहरी भक्ति में होता है। लेकिन ध्यान रखना, भक्ति का अर्थ ही होता है कि भक्त मिटा। भक्त और भक्ति दोनों साथ नहीं होते। जब तक भक्त होता है तब तक भक्ति कहां? तब तक भक्त बाधा बना रहता है। जब भक्त चला जाता है, तो भक्ति।
गहरे किसी चाव में होता है
मगर ये बातें सांकेतिक हैं।
हां, घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो
कोरा कोई सपना न हो!
किसी दूसरे की पीड़ा में भी हो जाता है। किसी दूसरे के दुख को अनुभव करने में भी हो जाता है। क्यों? क्योंकि जब तुम दूसरे के दुख को गहरा अनुभव करते हो, तो मिट जाते हो। असल में दूसरे का दुख अनुभव करने के लिए तुम्हें मिटना ही होगा। वह फिर अहंकार का ही त्याग है। जब तक तुम हो, तब तक तुम दूसरे का दुख अनुभव न कर सकोगे। तुम मिटे, तो दूसरे का दुख अनुभव होता है।
जीसस भी ठीक ही कहते हैं कि सेवा से होता है। सेवा का अर्थ हैः दूसरे
के दुख की प्रतीति--ऐसी जैसे अपना हो। इतनी समानुभूति।
हां, घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो
क्योंकि अपना घाव हो तो वह अहंकार में ही अटका रहता है। अपना घाव अपना
ही घाव है। मैं की तड़प मैं की ही तड़प है।
मगर वह सिर्फ अपना न हो
कोरा कोई सपना न हो!
सत्य हो, वास्तविक हो; सहानुभूति झूठी न हो, कोरी न हो, बात-बात की न हो, हार्दिक हो, अस्तित्वगत हो, तो कभी-कभी तब भी हो जाता है। चाव में हो जाता है गहरे, घाव में हो जाता है गहरे, अनमने भाव में हो जाता है, प्रयत्न के अभाव में हो जाता है।
पूछते होः "प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि कैसे? यह कैसे होती है?"
इतना ही कहा जा सकता हैः प्रयत्न की व्यर्थता समझो। प्रयत्न की असारता समझो।
शांडिल्य कहते हैंः दृष्टत्वाच्च।
ऐसा ही देखने में आता है। कैसा देखने में आता है? कभी तुमने देखा, किसी आदमी को राह पर देखा, चेहरा पहचान में आ गया, जबान पर नाम रखा है, तुम कहते हो--जीभ पर नाम रखा है, और फिर भी याद नहीं आता। और चेहरा याद आ रहा है और नाम भी याद आ रहा है, और कहते हो जीभ पर रखा है--और फिर भी याद नहीं आ रहा है। बड़ी मजे की बात कह रहे हो! जीभ पर रखा है तो बोलते क्यों नहीं? फिर भी

मैं मानता हूं कि तुम ठीक ही कह रहे हो--जीभ पर रखा है, वह भी अनुभव है, और नहीं आता, यह भी साथ है; और आदमी पहचाना हुआ है, यह भी पक्का है। तुम बड़ी उधेड़बुन करते हो। तुम बड़ा सिर मारते हो। तुम पहेली बूझने की कोशिश करते हो--इधर से, उधर से; स्मृति में ताकते हो, झांकते हो, उधेड़बुन करते हो, पर्तें उलटते हो, गड्ढा खोदते हो स्मृति में कि कहीं से सूत्र मिल जाए, कहीं से कोई सहारा मिल जाए। और जितना तुम सहारा खोजते हो उतना ही मुश्किल होता जाता है। बात तो साफ होने लगती है कि याद है, याद है, जबान पर रखा है, बिल्कुल रखा है, अभी निकल पड़े ऐसा है, और फिर भी पकड़ में नहीं आता।
फिर तुम थक गए। फिर तुमने सोचा--छोड़ो भी! भाड़ में जाने दो! करना भी क्या है। तुम मुंह फेर कर अपने घर चल पड़े। और अचानक--जब तुम कोई प्रयास नहीं कर रहे थे, छोड़ ही चुके थे बात, भूल ही चुके थे बात, राह में लगे फिल्म का पोस्टर पढ़ रहे थे--अचानक नाम याद आ गया है। क्या हुआ? तुमने जब प्रयत्न किया तो तुम बहुत चिंतित हो गए। जब तुमने बहुत प्रयास किया याद करने का तो तुम्हारी चेतना बड़ी संकीर्ण हो गई, सिकुड़ गई, तन गई; चिंता ने तुम्हें घेर लिया, तुम मुक्त न रहे। तुम्हारे भीतर पड़ा था नाम, उठना भी चाहता था, लेकिन तुम इतने सिकुड़ गए, इतने तनाव से भर गए कि जगह न रही नाम को ऊपर आने की। फिर तुमने छोड़ दिया प्रयास, फिर तुम विश्राम को पा गए, फिर तनाव ढीला हो गया, संकीर्णता खो गई, सरलता से नाम ऊपर तिर आया, सतह पर आ गया। ऐसा अनुभव तुम्हें रोज होता है--प्रयास से नहीं हुआ, अप्रयास से हो गया।
परमात्मा पाना नहीं है, परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। सिर्फ उसकी स्मृति खो गई है, स्मृति लानी है। बुद्ध ने कहा हैः सम्मासति। उसकी सम्यक स्मृति लानी है। या नानक, कबीर कहते हैंः सुरति लानी है। विस्मरण हो गया है, भूल गए हैं; पहचान थी, जबान पर रखा है, मगर भूल गए हैं, बीच में कुछ धुंधले पर्दे आ गए हैं, धुआं आ गया है--सदियां हो गईं मुलाकात हुए। परमात्मा को तुम जानते तो हो ही, क्योंकि उससे ही आए हो। वह पक्षी जो खुले आकाश से आया है, खुले द्वार से आया है, खुले आकाश को जानता है। जानता है खुले आकाश को, इसीलिए तो भागने की कोशिश कर रहा है। चोट कर रहा है बंद खिड़की पर कि निकल जाऊं बाहर। तुम भी जन्मों से बंद दरवाजों पर चोटें कर रहे हो। और एक दरवाजा सदा खुला हुआ है। वह एक दरवाजा अप्रयास का है, सब दरवाजे प्रयास के हैं। वह एक दरवाजा विश्राम का है, सब दरवाजे श्रम के हैं। वह एक दरवाजा समर्पण का है, सब दरवाजे संकल्प के हैं।
तुम थोड़ा विश्राम करो, तुम खिड़की पर सिर मत मारो। यह पक्षी अगर थोड़ी देर रुक जाए, बैठ जाए, एक दफा पुनर्विचार कर ले--कि क्या हुआ? मैं आया कहां से? किस दिशा से आया? कैसे आया? उसी से क्यों न लौट चलूं? परमात्मा भविष्य में मिलने वाला लक्ष्य नहीं है, अतीत में खो गया स्रोत है। परमात्मा आगे नहीं है, पीछे है। तुम्हारे भीतर खड़ा है। तुम चारों दिशाओं में भागे जा रहे हो। जितना भागते हो उतना चूकते हो।
प्रसाद का अर्थ होता हैः अब नहीं भागूंगा, अब नहीं खोजूंगा, अब अपने
पर भरोसा और नहीं करूंगा।

मुझसे कहो उठो, मैं उठूंगा
कहो मुझसे चलो, मैं चलूंगा

गाओ कहोगे तो
वह मेरे लिए सहज है
शाम से भोर तक
धरती से आसमान के छोर तक
गाऊंगा, उठूंगा, चलूंगा
घुमाऊंगा जैसे धरती को
तुम्हारे इशारे पर

अपने को हटा लेता हूं। मुझसे कहो उठो, मैं उठूंगा; मुझसे कहो चलो, मैं चलूंगा; मैं अपने को बीच से हटा लेता हूं। तुम्हारी मर्जी अब से मेरा जीवन होगी। अब से न मैं हूं, न मेरी कोई मर्जी है।
ऐसे किसी भाव में, अनमने भाव में, ऐसे किसी चाव में, ऐसे किसी गहरे चाव में, प्रयत्न के अभाव में, ऐसे किसी घाव में प्रसाद घटता है।
तुम थोड़ी जगह खाली करो, तुम जरा बीच से हटो, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और उलझाव बढ़ता चला जाता है, क्योंकि तुम इसी बाधा को साधन बना रहे हो। उलझाव बढ़ता चला जाता है कि जो बीमारी है, उसी को तुम औषधि समझ रहे हो। व्याधि को जिसने औषधि समझ लिया, उसकी विडंबना भयंकर है। समझ कर तो तुम पीते हो औषधि, और पीते हो व्याधि; तो व्याधि बढ़ती चली जाती है। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई दुश्मन नहीं है। मगर तुम सोचते हो कि मैं मेरा मित्र, और सारी दुनिया मेरी दुश्मन। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे और परमात्मा के बीच और कोई दीवाल नहीं है। तुम और हजार तरह की दीवालें कल्पना करते हो, मगर यह एक दीवाल तुम नहीं देखते कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई दीवाल नहीं है। तुम न मालूम कहां-कहां की व्याख्याएं खोज लाते हो, बड़ी दूर की कौड़ियां तलाश लाते हो! कभी कहते हो कि पिछले जन्मों के कर्मों के कारण, बहुत पाप किए होंगे, इसलिए परमात्मा नहीं मिल रहा है। मगर एक बात तुम नहीं छोड़ते कि मेरे करने की ही बात है--पाप किए थे इसलिए नहीं मिलता, मगर कृत्य मेरा है। पुण्य करूंगा तो मिलेगा। मैं को नहीं छोड़ते। तुम्हारा साधु भी मैं को नहीं छोड़ता, तुम्हारा असाधु भी मैं को नहीं छोड़ता। इसीलिए तो मैं कहता हूं, तुम्हारे साधु-असाधु में बहुत फर्क नहीं है। तुम्हारे साधु-असाधु में इतना ही फर्क है कि एक आदमी पैर के बल खड़ा है और उसी के बगल में दूसरा आदमी--वैसा का वैसा आदमी--सिर के बल खड़ा हो गया है। बस इतना ही फर्क है। तुम्हारे पापी में और तुम्हारे पुण्यात्मा में कोई फर्क नहीं है। पापी सोचता है पाप कर रहा हूं, पुण्यात्मा सोचता है पुण्य कर रहा हूं, मगर कर्ता का भाव दोनों में अवशिष्ट है। और जो रोक रहा है, वह कर्ता का भाव है।

मेरा मन
एक वन है इस घड़ी
जिसमें से
गंधवाही तुम्हारे
समीरण का झोंका
गुजर रहा है
उसे करते हुए अस्थिर
और भरते हुए उसमें
प्रवालवर्णी
छंद
वेणु-बंधी
स्वर!

तुम अपने को ऐसा समझो जैसा बांसों का वन। हवा का झोंका गुजर रहा है-- सारे वन को कंपाता हुआ, नये स्वरों को जगाता हुआ। एक-एक पत्ते से संगीत झर रहा है, नाद हो रहा है, ओंकार जग रहा है। तुम अपने को ऐसा ही समझो--वेणुवन; जिसमें ऊर्जा परमात्मा की है, जिसमें प्रवाह उसका है--वही बोलता, वही चलता, वही उठता। तुम अपने को हटा लो। और तुम अपने को हटाते ही पाओगे--बन गए तुम वेणु; गीत उसके तुमसे बरसने लगे, बन गए तुम वेणु। वेणु बनने की कला प्रसाद पाने की कला है। खाली, भीतर से कोरे। बांसुरी में भीतर कुछ भी नहीं होता-- पोला बांस ही तो बांसुरी है। पोलापन ही तो उसका सारा राज है। पोली है बांसुरी, इसीलिए तो गीत को ले आती है।
जिस दिन तुम पोले बांस की तरह हो जाओगे, उसी दिन परमात्मा का गीत तुमसे झरने लगेगा। गीत तो अभी भी बहने को तत्पर है, मगर तुम भरे हो। और तुम किससे भरे हो? तुमसे ही भरे हो। मैं के अतिरिक्त तुम्हारा और कोई भराव

नहीं। मैं गया कि तुम शून्य हुए। उस महाशून्य में प्रसाद की वर्षा है। उस महाशून्य में तुम्हारे हाथ पसर जाएंगे, सारा ब्रह्मांड तुम पर बरस उठेगा। सब मिल सकता है--एक तुम खो जाओ। इतनी कीमत चुका दो। भक्ति का सारा सार इतनी छोटी सी बात में है--भक्त मिट जाए, तो भगवान हो जाए।

दूसरा प्रश्नः नारद और शांडिल्य, दोनों ने भक्ति-सूत्र कहे हैं। आप नारद के भक्ति-सूत्र पर बोल चुके और अब शांडिल्य के भक्ति-सूत्र पर विमर्श कर रहे हैं। मेरे जैसे सामान्य मानस को दोनों के दृष्टिकोण में बड़ा भेद दिखाई पड़ता है। एक ही मार्ग पर इतना भेद क्यों?

अभेद की हमारी इतनी आकांक्षा क्यों है? हम भेद को बर्दाश्त क्यों नहीं कर पाते हैं? हम सारे जगत को एक रंग में क्यों रंग देना चाहते हैं? और क्या सारे फूल एक रंग के होंगे तो यह जगत इतना सुंदर होगा? क्या सारे गायक एक ही गीत गुनगुनाएंगे, ऊब पैदा नहीं होगी? सारी वीणाओं से एक ही स्वर उठेगा और एक ही स्वर, और एक ही स्वर गूंजता रहेगा, तो तुम आत्मघात करने की नहीं सोचने लगोगे?
अभेद की हमारी इतनी आकांक्षा क्यों है? हम भेद से इतने भयभीत क्यों हैं? इतने वृक्ष हैं! कोई इस ढंग का है, कोई उस ढंग का है। कोई छोटा है, कोई बड़ा है। किसी पर छोटे सफेद फूल आते, किसी पर रंगीन फूल आते--नीले, पीले, लाल, कितने फूल हैं! कितनी हरियालियां हैं! कितने पक्षी हैं! कितने उनके कंठगान हैं! जगत वैविध्य है। वैविध्य में सौंदर्य है। वैविध्य में संपदा है। जरा सोचो--एक ही जैसे वृक्ष, एक ही जैसे लोग, एक ही जैसे पक्षी--जीवन बड़ा दरिद्र हो जाएगा।
शांडिल्य शांडिल्य हैं। नारद नारद हैं। नारद ने अपने ढंग से बात कही है। जो जाना वह तो एक है, लेकिन जब नारद कहेंगे तो नारद के ढंग से ही कहेंगे। शांडिल्य कहेंगे, शांडिल्य के ढंग से कहेंगे। और अगर शांडिल्य का अपना कोई ढंग न हो कहने को, तो शांडिल्य कहेंगे ही क्यों? नारद ने कह दिया, बात खतम हो गई।
परमात्मा चुकता नहीं। अनंत-अनंत लोगों ने कहा है, फिर भी अनकहा रह गया है। अनंत-अनंत लोग आगे भी कहेंगे, और फिर भी अनकहा रह जाएगा। चुकता ही नहीं। हम एक तस्वीर बनाते हैं, तस्वीर बन नहीं पाती कि हम पाते हैं कि परमात्मा ने चेहरा बदल लिया, कि परमात्मा नया हो गया। फिर तस्वीर बनाओ, फिर सूत्र रचो, फिर गीत गाओ। परमात्मा सतत प्रवाही है। परमात्मा कोई बंद तालाब की तरह नहीं है, बहती हुई गंगा की धारा है। रोज नई उमंग है, रोज नया उल्लास है। एक तरंग नारद की उठी, एक तरंग शांडिल्य की। सागर में कितनी लहरें हैं! दो लहरें एक जैसी होती हैं? हालांकि एक ही सागर की हैं, फिर भी दो लहरें एक जैसी नहीं होतीं। और अच्छा ही है कि नहीं होतीं।
तुम यह चिंता ही छोड़ दो कि सब ज्ञानियों को एक जैसी ही बात कहनी चाहिए। अक्सर ऐसा होता है, अज्ञानी एक जैसी बात कहते हैं। जैसे, एक अज्ञानी हिंदू और दूसरे अज्ञानी हिंदू की बात में कोई फर्क पाओगे? एक अज्ञानी मुसलमान और दूसरे अज्ञानी मुसलमान की बात में तुम कोई फर्क पाओगे? अज्ञानी तो एक-दूसरे को दोहराते हैं, फर्क हो कैसे सकता है? अज्ञानी तो तोते हैं, उधार हैं, फर्क हो कैसे सकता है? लेकिन एक हिंदू ज्ञानी और दूसरे हिंदू ज्ञानी में फर्क हो जाता है। क्योंकि दोनों मूल स्रोत से लाते हैं, दोहराते नहीं किसी को; किसी की पुनरुक्ति नहीं करते। कोई ज्ञानी किसी की कार्बनकापी नहीं होता, मूल होता है, मौलिक होता है। जान कर आता है मूल स्रोत से। और जब गाता है, तो उसका गीत ऐसा होता है जैसा पहले कभी किसी ने नहीं गाया। इसीलिए तो गाने योग्य होता है। नहीं तो शांडिल्य क्यों परेशान हों? कह दिया नारद ने, शांडिल्य कह देते कि बस ठीक है, वही ठीक है।
तुमने उस वकील की कहानी सुनी? होशियार आदमी था। घर में उसके एक मेहमान हुआ, एक मित्र आया। रात दोनों एक ही कमरे में सोए। मित्र बड़ा हैरान हुआ, वकील बैठा। मित्र ने पूछा, क्या करते हो? वकील ने कहा, प्रार्थना। और आकाश

की तरफ हाथ उठाया, बिजली बुझाई और कहाः डिट्टो! और जल्दी से सो गया। मित्र ने पूछा कि यह कैसी प्रार्थना? बहुत प्रार्थनाएं सुनी हैं, डिट्टो! वकील ने कहा, रोज-रोज वही-वही क्या दोहराना? कल भी की थी, परसों भी की थी। एक दफे कर दी, अब रोज तो डिट्टो कह देते हैं, वे समझ जाते होंगे। भगवान को इतनी अकल तो होगी ही! अब उसी को क्या दोहराना?
अगर नारद की ही बात शांडिल्य को कहनी थी, तो कह देते--डिट्टो! बात खतम
हो गई। नारद के सूत्र पर अपने दस्तखत भी कर देते!
लेकिन शांडिल्य को अपना गीत गाना था। यह जगत बड़ा सृजनात्मक है। और जब
तक शांडिल्य अपना गीत न गा लें, तब तक चैन नहीं होगा। जब तक नारद अपना गीत न गा लें, तब तक चैन नहीं होगा।

मैंने एक किरन देखी है
जो सविता है

मैंने एक हंसी सुनी है
जो कविता है

एक फूल देखा है मैंने
जो सचमुच कमल है

एक रंग देखा है मैंने
जो ठीक धवल है

सारे रंग जिसमें समाए हुए हैं तपाए हुए सोने से अलग
हर तरह के होने से अलग
यह किरन, यह हंसी
यह फूल, यह रंग
मगर आनंद नहीं है मेरे जीवन का

क्योंकि मैं इसे
देखता रह गया हूं
छंद नहीं कर पाया हूं अभी!

देख लेने से ही कुछ नहीं होता, जब तक छंद न कर पाओ। जब तक बांध न पाओ अभिव्यक्ति में। परमात्मा का गीत सुन लेने से कुछ नहीं होता, जब तक गीत तुमसे बहे न, और पहुंच न जाए लोगों तक, तब तक अधूरा रहता है। तब तक बात पूरी नहीं हुई। जब तक तुम कह न दो जो तुमने सुना है, तब तक तुमने सुना है, इस पर भी तुम्हें भरोसा नहीं आता। और तब तक, सुना है या नहीं सुना, इसकी स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। जब ज्ञानी बोलता है, तभी स्वयं भी उसके सामने स्पष्ट होता है कि क्या उसने देखा। क्योंकि जो देखा वह तो बड़ा विराट था, अराजक था, एक नीहारिका थी अनंत, जो देखा वह तो बहुत बड़ा था; उस देखे को जब वह सार-सूत्र में बांधने लगता है, तब स्वयं भी स्पष्ट होता है।
एक बड़ी प्रसिद्ध मिश्री कहावत है कि दुनिया में किसी बात को सीखने का सबसे अच्छा ढंग उसे दूसरों को सिखाना है।
बात में कुछ सार है। सार यही है कि जब तुम किसी दूसरे को सिखाने बैठते
हो, तब तुम्हारे सामने भी चीजें साफ होनी शुरू होती हैं। तुमने भी देखा होगा। प्रकरणात च। कभी-कभी तुम्हें भी ऐसा अनुभव हुआ होगा कि जब तुम किसी को कुछ समझा रहे थे, तब तुम्हारे सामने बात पहली दफे साफ हुई। हालांकि तुम्हारे अनुभव में थी, लेकिन धुंधली-धुंधली थी, प्रकट नहीं थी, स्पष्ट नहीं थी। किसी को समझाते थे, तब अचानक स्पष्ट हो गई। किसी को समझाते थे, तब तुम भी समझ गए।

इसीलिए तो संवाद का इतना आनंद है। इसीलिए तो सत्संग का इतना अर्थ है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने कहा है--जब दो भक्त मिलें आपस में तो प्रभु की प्रशंसा करें, प्रभु की स्तुति एक-दूसरे से करें। क्यों? क्योंकि उस स्थिति में उन्हें भी साफ होगा, दूसरे के भीतर भी उमंग उठेगी। तुमने जो जाना हो, उसे कहना। कहते-कहते तुम पाओगे--तुमने और भी जाना। कह कर तुम पाओगे--बात अब तक धुंधली थी, आज प्रकट हुई, साफ हुई, रेखाबद्ध हुई।
और एक अनिवार्य है सत्य की अनुभूति में बात कि उसे कहना ही पड़ेगा। जो जाना है, उसे बांटना पड़ेगा। नहीं तो फूल अपनी गंध को अपने भीतर ही रख लेते। नहीं तो दीया अपनी रोशनी को अपने भीतर ही बंद कर लेता। नहीं तो बादल अपने जल पर पहरा बिठा देते। लेकिन बादल बरसेंगे, बरसना ही होगा। तुम यह मत सोचना कि जब धरती प्यासी होती है तो धरती ही तड़फती है बादलों के लिए, बादल भी तड़फते हैं प्यासी धरती के लिए। उतनी ही तड़प दोनों तरफ, आग दोनों तरफ। इधर धरती तड़फती है कि पानी मिले, उधर बादल तड़फता है कि कोई प्यासा मिले। बादल भी बोझिल हो जाता है।
तो जब बुद्ध पचास वर्षों तक गांव-गांव घूमते हैं, वह प्यासी धरती की तलाश है। महावीर चालीस वर्षों तक निरंतर उपदेश देते हैं, वह फूल की गंध है जो नासापुटों की तलाश कर रही है। नारद और शांडिल्य ने ये सूत्र कहे हैं, ये दीये की किरणें हैं, जो आंखों की खोज कर रही हैं। कोई आंख मिले, तो पहचान हो। अक्सर तुमने एक तरफ से ही बात देखी है, तुमने देखा कि शिष्य खोजता है, तुमने यह नहीं देखा कि गुरु भी खोजता है। शिष्य तो खोजता है, क्योंकि उसे मिला नहीं। गुरु खोजता है, क्योंकि उसे मिल गया। दोनों खोजते हैं। और जब दोनों मिल जाते हैं तो अपूर्व आनंद होता है। शिष्य को आनंद होता है कि जो उसे नहीं था, दिखा; जो उसके पास नहीं था, मिला; और गुरु को आनंद होता है कि जो था, उसे बांट सका। उऋण हुआ। परमात्मा ने उसे दिया था, उसने किसी को दे दिया। प्रसाद में जो मिला है, वह जब तुम प्रसाद की तरह बांट दोगे तभी उऋण होओगे, नहीं तो ऋण रह जाएगा, ऋणी हो जाओगे। इतना परमात्मा ने दिया है, उसे क्या करोगे अब? उसे किसी को दे दो।
यह मार्ग है परमात्मा तक उसे वापस लौटा देने का--क्योंकि दूसरे भी परमात्मा हैं। जब गुरु अपने शिष्य को कुछ देता है, तो वह परमात्मा को ही लौटा रहा है--शिष्य के बहाने, शिष्य के निमित्त। त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पयेत्। वह यह कह रहा है कि ठीक, अब गोविंद तुम आ गए शिष्य बन कर, यह लो, सम्हालो। तुम्हारी चीज तुम्हीं को लौटा देते हैं।
देखते हो, आकाश में बादल उठे, बरसे हिमालय पर, गंगा में भर गया जल ही जल
और चली गंगा सागर में उलीचने। और फिर सागर में बादल उठेंगे, और फिर गंगा में भरेंगे, और फिर गंगा उलीचेगी अपने को, ऐसा वर्तुल है। जीवन एक वर्तुल है। जो मिला है, देना पड़ेगा। गंगा कहे कि क्यों दूं? बामुश्किल तो मिलता है; महीनों प्रतीक्षा करती हूं, तब कहीं वर्षा के मेघ घिरते हैं, आषाढ़ आता है। नहीं दूंगी, रोक रखूंगी। गंगा अगर रोक रख ले, तो वर्तुल टूट जाएगा। फिर बादल नहीं आएंगे, आषाढ़ में बादल भी नहीं आएंगे। आषाढ़ में बादल इसीलिए आते हैं, क्योंकि गंगा जाती है और गंगासागर में लीन हो जाती है। तो सागर से फिर बादल उठते हैं।
परमात्मा ने नारद को दिया, नारद ने फिर गंगा में डाल दिया। फिर कोई नारद उठेगा, परमात्मा फिर नारद में बरसेगा। इस जीवन की वर्तुलाकार प्रक्रिया को समझो। मगर हर एक का भेद होगा। गंगा की अपनी चाल, गंगा का अपना लहजा! सिंधु की अपनी चाल, अपनी मौज, अपना ढंग! सबकी अपनी शैली। गंगा अपने ढंग से बहती, ब्रह्मपुत्र अपने ढंग से बहती। सब सागर की तरफ जाती हैं और सब सागर से ही पाती हैं, लेकिन यह वैविध्य सुंदर है। नहीं तो जीवन बड़ी ऊब हो जाए।
भेद अभिव्यक्ति का है, अनुभूति का नहीं। जो जाना है, वह एक है। इसलिए शास्त्र कहते हैंः जानने वालों ने एक को जाना, लेकिन बहुविधि से कहा है। विविधता कथन में है।

तीसरा प्रश्नः दर्शनशास्त्र में इतनी उलझनें क्यों हैं?

दर्शन में उलझन नहीं है, शास्त्र में तो उलझन होगी। शास्त्र का मतलब
ही होता है उलझन। शास्त्र का अर्थ होता हैः सिद्धांत, तर्क, शब्द। दर्शन तो साफ-सीधा है। दर्शन का तो अर्थ होता हैः दृष्टि, देखने की क्षमता, आंख। जब आंख खाली होती है, अहंकार से शून्य होती है, विचार से मुक्त होती है, मन बाधा नहीं डालता, तब जो घटता है वह दर्शन। जैसा है, उसको वैसा ही देख लेना दर्शन है। दर्शन और दर्शनशास्त्र के भेद को याद रखना। दर्शनशास्त्र दर्शन नहीं है, दर्शनशास्त्र ऊहापोह है। दर्शन दृष्टि है, अनुभव है। दर्शनशास्त्र में तो झंझट होगी। दर्शनशास्त्र में तो एक-एक प्रश्न में हजार प्रश्न लगेंगे और एक-एक उत्तर से हजार प्रश्न उठेंगे। और दर्शनशास्त्र में कभी किसी प्रश्न का कोई हल नहीं हो पाता। पांच हजार साल के इतिहास में दर्शनशास्त्रियों ने एक प्रश्न भी हल नहीं किया है। पांच हजार साल में उन्होंने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन एक भी उत्तर नहीं दिया है। वे दे ही नहीं सकते।
दर्शनशास्त्री तो करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे तुमने कहानी सुनी होगी
कि पांच अंधे एक हाथी को देखने गए थे। आंख तो पास नहीं, तो टटोला। किसी ने हाथी के पैर को टटोला तो उसने कहा, खंभे की भांति है, स्तंभवत। और किसी ने हाथी के कान को टटोला और उसने कहा, सूप की भांति है। और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। पांचों अंधों में बड़ा विवाद हो गया। जो जिसने टटोला था, उसने उसी को पूरा हाथी सिद्ध करने की कोशिश की। पूरा किसी ने देखा नहीं, क्योंकि पूरा देखने के लिए आंख चाहिए। बड़ा विवाद मच गया।
वे अंधे अब भी विवाद कर रहे हैं। उन्हीं पांचों ने सारे दर्शनशास्त्र रचे हैं। जिनको हम दार्शनिक कहते हैं वे और कोई नहीं, वे ही अंधे हैं। और उनके विवाद का कोई अंत कभी नहीं होना है।
मैं विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ, विद्यार्थी था, दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी था। मेरे जो वृद्ध प्रोफेसर थे, उन्होंने पहले ही दिन अपना जो पहला व्याख्यान दिया, वह बड़ा प्यारा था। वेदांती थे वे और मानते थे कि जगत माया है। मगर मेरे साथ उनकी झंझट हो गई। उन्होंने उदाहरण बड़ा अच्छा लिया था। उन्होंने उदाहरण लिया था जगत को माया सिद्ध करने के लिए, बड़ा वैज्ञानिक उदाहरण लिया था। उन्होंने कहा, जैसे समझो, न्याग्रा का जलप्रपात। हजारों साल से गिर रहा था, लेकिन शून्य था और शांत था, आवाज नहीं थी।... सुनने वाले हम सब चौंके भी थे कि आवाज नहीं थी? न्याग्रा के पास तो भयंकर आवाज होती है। इतनी ऊंचाई से गिरता है! इतनी जलधार गिरती है! चट्टानों पर गिरता है--पहाड़ तोड़ डाले हैं न्याग्रा ने, इससे बड़ा कोई प्रपात नहीं है। आवाज नहीं? लेकिन फिर जल्दी ही समझ में आया कि उनका मतलब क्या है, वे विज्ञान का सहारा ले रहे थे। फिर उन्होंने कहा कि हजारों- हजारों साल तक कोई आवाज नहीं हुई, सन्नाटा था। फिर एक जंगली आदमी न्याग्रा के पास पहुंचा। जैसे ही वह पास पहुंचा कि सारा जगत न्याग्रा के उदघोष से भर गया। मतलब कि जब तक कान न हो, तब तक आवाज नहीं हो सकती।
बात तो ठीक है, आवाज हो ही कैसे सकती है? न्याग्रा गिरता रहे, लेकिन जब
तक कोई कान न आए पास... तुम थोड़ा सोचो तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि आवाज हो ही कैसे सकती है? आवाज के लिए कान बिल्कुल जरूरी है, अनिवार्य है। हम सब विद्यार्थी चौंके थे कि बात तो ठीक है।
फिर उन्होंने कहा, और अब तक कोई रंग न था न्याग्रा में।
रंग भी नहीं हो सकता बिना आंख के। ये वृक्ष हरे हैं, ऐसा मत कहो; तुम जब चले जाते हो तब ये हरे नहीं रह जाते। तुम जब चले गए--आंख चली गई--तो फिर कैसे हरे? हरे में तो संबंध है वृक्ष और तुम्हारी आंख का। जो पीलिया से बीमार है, उसको ये पीले दिखाई पड़ते हैं--वह दूसरे ढंग की आंख है, उसका संबंध दूसरा बनता है। जब कोई आंख नहीं होती, तब वृक्ष अपना रंग छोड़ देते हैं, क्योंकि रंग किसके लिए होगा? रंग तो आंख का संबंध है।
हम सब जानते थे कि वे वेदांती हैं और इस जगत को माया सिद्ध करना चाहते हैं। तो उन्होंने कहा कि देखते हो, न तो रंग है न्याग्रा में कोई, न ध्वनि

है कोई। ध्वनि और रंग, दोनों आदमी के सिर में हैं। वह जो आदमी आया था, दोनों घटनाएं उसके सिर में घटीं।
मुझे झंझट की आदत रही है, मैं खड़ा हो गया। मैंने उनसे पूछा कि आप कहते हैं कि ध्वनि नहीं बाहर? उन्होंने कहा, ठीक। रंग नहीं बाहर? उन्होंने कहा, ठीक। वे बहुत प्रसन्न थे कि एक विद्यार्थी शिष्य मिला। मैंने पूछा, सब सिर के भीतर? उन्होंने कहा, बिल्कुल ठीक। और मैंने कहा, सिर? सिर सिर के बाहर है या सिर के भीतर? वे थोड़े बेचैन हुए। अब झंझट! अगर कहें सिर सिर के बाहर है, तो बाहर को स्वीकार करना पड़ेगा। अगर कहें सिर सिर के भीतर है, तो भी झंझट होगी। क्योंकि किसके भीतर कौन? भीतर होने के लिए कुछ बाहर होना चाहिए। उन्होंने एक क्षण सोचा, फिर उन्होंने कहा कि सिर भी सिर के ही भीतर है। तो मैंने कहा, तब दो सिर हो गए। भीतर होने के लिए एक सिर, जिसके भीतर है, और एक सिर, जो भीतर है। एक सिर बाहर हो गया। जो बाहर सिर है, वह बाहर है? जो भीतर सिर है, वह भीतर है?
वे थोड़े बेचैन हो आए, उनको पसीना आ गया; उन्होंने कहा, तुम बाहर चले जाओ!
मैंने कहा, कहां है बाहर? आपके सिर में कि मेरे सिर में? मैं जाऊं कहां?
वे तो इतने नाराज हो गए--सब वेदांत वगैरह भूल गए! वे चिल्लाने लगे-- निकल जाओ!
मैंने कहा, आप चिल्लाते रहें, मगर मैं निकल कर जाऊं कहां? आपकी आवाज भी मेरे सिर के भीतर है, बाहर भी मेरे सिर के भीतर है, आप भी मेरे सिर के भीतर हैं, मैं आपके सिर के भीतर हूं, बहुत झंझट है, उलझाव है बहुत!
मैंने उनसे कहा, यह तो ऐसा हुआ कि एक चूहा अपनी पोल में घुसा और जब पोल में घुस गया तो उसने खींच कर अपनी पोल को भी अपने भीतर कर लिया। अब मैं पूछता हूं कि पोल चूहे के भीतर है कि चूहा पोल के भीतर है? पहले चूहा पोल के भीतर गया, तब तक बात ठीक है। फिर उसने खींच कर पोल को भी अपने भीतर कर लिया। अब जिस पोल को उसने अपने भीतर किया, उसके वह भीतर था, तो अब चूहा कहां है?
वे तो एकदम क्लास छोड़ दिए। उन्होंने तो जाकर इस्तीफा लिख दिया। उन्होंने कहा, या तो यह विद्यार्थी पढ़े, या मैं पढ़ाऊं, दोनों साथ नहीं चल सकते हैं। यह झंझटी है।
मुझे बुलाया प्रिंसिपल ने, उन्होंने कहा कि क्या झंझट है? मैंने कहा, झंझट नहीं, यह दर्शनशास्त्र है। झंझट उन्होंने ही खड़ी की है। मैं तो बिल्कुल चुप ही था। मैं तो न्याग्रा प्रपात था, चुप बैठा था, घंटे भर वे बोले। जब मैंने प्रिंसिपल को सारी उलझन समझाई, तो उन्होंने कहा, मेरा सिर घुमा दोगे। मैं समझ गया कि वे क्यों छोड़ कर चले गए हैं। जब मैंने उनको कहा कि चूहा पोल के भीतर कि पोल चूहे के भीतर? तो उन्होंने कहा, भई, मैं बिल्कुल दार्शनिक नहीं हूं। और जब तुमने उनका सिर घुमा दिया तो मेरा घुमा दोगे। अच्छा हो कि तुम छोड़ दो यह कालेज। मैंने कहा, फिर मैं दर्शनशास्त्र कहां पढूंगा?
अफवाह पूरे नगर में--जहां मैं पढ़ता था--सब जगह धीरे-धीरे खबर पहुंच गई। तीन दिन तक वे कालेज नहीं आए, उन्होंने तो जिद्द ही कर ली। और उनकी जिद्द ठीक भी थी। मैं भी जानता हूं कि वह उन्होंने ठीक ही किया, क्योंकि यह बात आगे बढ़ नहीं सकती थी, मैं वहीं अटकाए रखता। या तो उनको स्वीकार करना पड़े कि बाहर है--जो वे कर नहीं सकते थे, वे बड़े बर्कले के मानने वाले और शंकर के मानने वाले वेदांती थे, विज्ञानवादी थे, वे मान नहीं सकते थे। और जब तक वे मान न लें, तब तक मैं छोड़ सकता नहीं था।
प्रिंसिपल ने मुझे बहुत समझाया कि बूढ़े आदमी हैं वे। और मैं जानता हूं कि तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। उन्होंने ही समस्या उठाई, यह भी ठीक है। लेकिन उनको हम छोड़ना भी नहीं चाहते, प्रतिष्ठित हैं। तुम किसी दूसरे कालेज में भर्ती हो जाओ।
मुझे कोई दूसरा कालेज जगह देने को राजी नहीं। वे कहें, पहले यह लिख कर
दो कि प्रश्न तो नहीं उठाओगे।

दर्शनशास्त्र तो झंझट है। तुमने प्रश्न उठाया कि झंझट शुरू हुई। उत्तर दिया कि झंझट और बढ़ी। फिर कोई अंत नहीं है। लेकिन दर्शन झंझट नहीं है।
धर्म का रस दर्शन में है, दर्शनशास्त्र में नहीं। और भक्ति का रस तो दर्शन से भी गहरा जाता है--देखने में ही नहीं, होने में। ये बड़ी अलग बातें हैं। दर्शनशास्त्र का रस तो सिर्फ यही है कि सोचो, विचारो, जिज्ञासा करो, तर्क बिठाओ; समाधान; समस्याएं। कहीं पहुंचता नहीं आदमी, यह जाल बढ़ता चला जाता है। यह ढेर बड़ा हो जाता है। इसमें आदमी विक्षिप्त हो सकता है। इसलिए अगर दार्शनिक विक्षिप्त हो जाते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। दार्शनिक होने के लिए बड़ी प्रगाढ़ मेधा चाहिए, नहीं तो विक्षिप्त हो ही जाओगे।
धर्म की आकांक्षा दर्शन में है--देखना चाहता है धर्म; सोचना नहीं, देखना। भक्ति की आकांक्षा और भी गहरी है--देखना भी क्या? देखने से भी क्या होगा? सोचने से गहरा है देखना, देखने से भी गहरा है होना। भक्त तो भगवान होना चाहता है, भक्त तो भगवत्ता को अनुभव करना चाहता है। देखा, वह भी तो दूर रह गया।
इसलिए शांडिल्य ने कहा कि भक्त चाहता है--न ज्ञान, न दर्शन--समस्त रूप
से एक हो जाना, एकात्मभाव।

चौथा प्रश्नः सूत्र "अथातोभक्तिजिज्ञासा" में भक्ति के लिए जिज्ञासा शब्द का उपयोग करना कुछ अजीब लगता है। क्योंकि जिज्ञासा में कुछ बौद्धिक गंध है। क्या जिज्ञासा जिज्ञासा में फर्क है--ज्ञान की जिज्ञासा में और भक्ति की जिज्ञासा में? क्या प्रेम भी विस्मय और रस-विभोरता की जगह जिज्ञासा बन सकता है?

शब्द में कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ तो तुम डालते हो--वही हो जाता है। शब्द तो कृत्रिम हैं, कामचलाऊ हैं। अगर शब्दों में ही कोई अर्थ होता होता, तब तो तुम चीनी भाषा पहली दफे सुनते और समझ जाते। शब्द तो सुनाई पड़ते हैं, लेकिन अर्थ पकड़ में नहीं आता। शब्दों में कोई अर्थ नहीं है। शब्दों में अर्थ तो निरंतर अभ्यास से डाला जाता है। तुम बार-बार उस शब्द का वही अर्थ मान कर चलते हो, बार-बार वही अर्थ प्रयोग करते हो, तो धीरे-धीरे वही अर्थ घनीभूत हो जाता है। लेकिन शब्द में कोई अर्थ नहीं है। एक ही शब्द का अलग-अलग लोग अलग-अलग अर्थ कर सकते हैं। और अलग-अलग परंपराएं एक ही शब्द का अलग-अलग अर्थ करती हैं।
जैसे जिज्ञासा शब्द। ज्ञानी इसका उपयोग करता है खोजबीन के अर्थ में, बौद्धिक अर्थ में। भक्त इसका अर्थ करता है खोजबीन के ही अर्थ में, लेकिन अस्तित्वगत खोजबीन। जानना ही नहीं चाहता, होना चाहता है--होने की जिज्ञासा।
शब्द अपने आप में कोई नियत अर्थ नहीं रखते हैं। अर्थ तो प्रयोग से निर्णीत होता है। इसलिए तुम ऐसा भी पाओगे कि जो शब्द एक परंपरा में एक अर्थ रखता है, दूसरी परंपरा में दूसरा अर्थ रखता है। जैसे दर्शन शब्द। हिंदू परंपरा में अर्थ रखता है--दृष्टि, जैन परंपरा में अर्थ रखता है-- श्रद्धा। सम्यक दर्शन का जहां जैन परंपरा उपयोग करती है वहां अर्थ होता है--सम्यक श्रद्धान। वहां दृष्टि अर्थ नहीं होता। उनका भी कारण है। वे कहते हैं, जो देख लिया, उसमें श्रद्धा आ जाती है। वह फिर दृष्टि नहीं रह जाती, श्रद्धा बन जाती है। जो देख लिया ठीक से, वह श्रद्धा का अंग हो गया। सुकरात ने कहा हैः ज्ञान क्रांति है, ज्ञान मुक्ति है, ज्ञान शक्ति है।
ज्ञान का सुकरात का अर्थ अपना है, शांडिल्य से बहुत भिन्न है। ज्ञान
का अर्थ होता है, जिसने वस्तुतः जाग कर देख लिया, जान लिया, जिसका सारा अज्ञान मिट गया, जिसके भीतर ज्ञान की ज्योति जगमगा उठी। तो ठीक कह रहा है सुकरात कि ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है, ज्ञान क्रांति है।
लेकिन शांडिल्य कहते हैंः ज्ञान से क्या होगा? ज्ञान का अर्थ शांडिल्य करते हैं--जानकारी, इनफर्मेशन, सूचना। तुम ईश्वर के संबंध में

कितना ही जान लो, इससे क्या होगा? जब तक ईश्वर को न जानो। तुम सूरज के संबंध में कितना ही जान लो, इससे क्या होगा? जब तक तुम्हारी आंख अंधी है, जब तक तुम्हारी आंख न खुले।
अब फर्क हो गया। सुकरात जब ज्ञान का उपयोग करता है, तो उसका अर्थ यही
है कि आंख खुल कर जो दिखे। और शांडिल्य जब ज्ञान का उपयोग करते हैं, तो उनका अर्थ यह होता है कि अंधा भी प्रकाश के संबंध में जान सकता है--वह ज्ञान; और आंख वाला जो जानता है, वह ज्ञान नहीं, वह तो एकात्म हो गया, वह लीन हो गया।
शब्द-शब्द का भेद स्मरण रखना।
तुम पूछते होः "सूत्र अथातोभक्तिजिज्ञासा में भक्ति के लिए जिज्ञासा शब्द का उपयोग करना कुछ अजीब लगता है।"
वह अजीब तुम्हें अपनी आदत के कारण लगता होगा। तुम्हें शांडिल्य के साथ चलना पड़ेगा। तुम्हें शांडिल्य के शब्दों का अर्थ पकड़ना होगा। शांडिल्य के साथ सहानुभूति रखनी होगी। तुम अपना अर्थ मत डालो, नहीं तो शांडिल्य के साथ संबंध छूट जाएगा।
तुम कहते होः "क्योंकि जिज्ञासा में कुछ बौद्धिक गंध है।"
वह बौद्धिक गंध तुम्हें दिखाई पड़ रही है, शांडिल्य को नहीं। शांडिल्य
को बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। शांडिल्य की सारी जिज्ञासा हार्दिक है।
तीन तल हो सकते हैं जिज्ञासा के--बौद्धिक, हार्दिक, अस्तित्वगत। शांडिल्य की जिज्ञासा हार्दिक है। भक्ति हृदय से शुरू होती है, अस्तित्व पर पूर्ण होती है। ज्ञान का मार्ग मस्तिष्क से शुरू होता है, हृदय में प्रवेश करता है, अस्तित्व पर पहुंचता है। भक्ति का मार्ग बुद्धि को छोड़ ही देता है एक किनारे। वह शुरू ही हृदय से होता है और सीधा अस्तित्व की यात्रा करता है। ध्यान का मार्ग हृदय से भी शुरू नहीं होता। वह बुद्धि को भी छोड़ देता है, हृदय को भी छोड़ देता है। वह सीधी छलांग लेता है अस्तित्व में। वह सीढ़ियों को हटा ही देता है, छलांग है। तो जब ध्यानी कहेगा जिज्ञासा, तो उसका अर्थ होगा--अस्तित्व की जिज्ञासा। प्रेमी कहेगा जिज्ञासा, उसका अर्थ होगा--हृदय की, भाव की जिज्ञासा। ज्ञानी कहेगा जिज्ञासा, उसका अर्थ होगा--विचारणा, ऊहापोह।
एक डाक्टर की प्रैक्टिस काफी चलती थी। जगह छोटी पड़ने लगी, तो उसे दूसरी मंजिल पर, उसी मकान में, बड़ा स्थान मिल गया। तो वह पहली मंजिल से हट कर दूसरी पर चला गया। लेकिन दूसरी पर जाने के बाद उसकी प्रैक्टिस एकदम मर गई। लोग आते ही न। उसके अपने मरीज भी दूसरों के पास जाने लगे। वह बड़ा हैरान था। उसने एक दिन एक मरीज से पूछा कि बात क्या है--राह पर मिल गया मरीज--कि बात क्या है? तुमने मेरे पास आना बंद क्यों कर दिया? औरों ने भी बंद कर दिया है। उस मरीज ने कहा, इसका कारण है सीढ़ियों पर लगी हुई पटिया। डाक्टर ने कहा, सीढ़ियों पर लगी पटिया! उससे क्या लेना-देना? मरीज ने कहा, लेना- देना है। डाक्टर ने पूछा, मतलब? उसने कहा, मतलब, उस पटिया पर लिखा है, ऊपर जाने का रास्ता। अब ऊपर कोई जाना नहीं चाहता है, इसीलिए तो हम आते हैं डाक्टर के पास। अब यह ऊपर जाने का रास्ता, मरीज डर गए हैं, गांव में खबर फैल गई है कि भाई, जरा सावधान!
कौन ऊपर जाना चाहता है!
एक धर्मसभा में धर्मगुरु ने लोगों को समझाया कि कौन-कौन स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ उठा दें। सबने हाथ उठा दिए, सिर्फ मुल्ला नसरुद्दीन बैठा रहा। उसने दुबारा पूछा, वह जरा हैरान हुआ, उसने कहा, नसरुद्दीन, सुना या नहीं? झपकी लेते हो? स्वर्ग जाना है कि नहीं? नसरुद्दीन फिर भी बैठा रहा। तब उसने दूसरा सवाल पूछा कि जो नरक जाना चाहते हैं, वे हाथ उठा दें। किसी ने हाथ नहीं उठाया--मुल्ला ने भी नहीं उठाया। तब उस धर्मगुरु ने पूछा कि तुम आखिर जाना कहां चाहते हो? उसने कहा, मैं अपने घर जाना चाहता हूं। जब घर से चलने लगा तो पत्नी ने कहा थाः मस्जिद से सीधे घर आना, नहीं तो टांग तोड़ दूंगी। कोई स्वर्ग जाए, कोई नरक जाए, मुझे घर जाना है। मैं टांग नहीं तुड़वाना चाहता।

अपने-अपने भाव हैं, अपने-अपने शब्दों के अर्थ हैं।
मैंने यहां पिछले दो या तीन दिन पहले भक्ति का अर्थ कहा--माधुर्य, कि भक्ति तो ऐसे है जैसे सभी मिठाइयों में माधुर्य है। जैसे सभी मिठाइयों में शक्कर। कमल ने दूसरे दिन एक प्रश्न लिख कर भेज दिया कि पहले आश्रम के भोजनालय में दही में शक्कर मिलती थी, अब क्यों नहीं मिलती?
उसको याद आ गई होगी शक्कर शब्द सुन कर। मैं किस शक्कर की समझा रहा हूं, तुम्हें कौन सी शक्कर याद आ रही है! मगर अपने-अपने अर्थ हैं।
एक संवाददाता जब एक फिल्म के सेट पर पहुंचा, तो देखा, खंडहरों का सेट लगा हुआ है; बेहोश अभिनेत्री पड़ी है, टूटी कुर्सियां, टूटी मेजें, सेट की टूटी हुई दीवालें, और खिड़कियों के बीच हांफता हुआ हीरो खड़ा है। निर्देशक भी बेहोश है, असिस्टेंट, लाइटमैन वगैरह सब चुप खड़े हैं। सिर्फ हीरो का सेक्रेटरी निश्चिंत खड़ा सिगरेट पी रहा है। संवाददाता ने पूछा, यह सब क्या? सेट की दीवालें टूटी हुई हैं, लोगों की यह हालत, यह सब कैसे हुआ? हीरो का लड़ाई के दृश्य में इंवॉल्वमेंट बढ़ गया था, सेक्रेटरी बोला। इतना ज्यादा इंवॉल्वमेंट कैसे हो गया? सेक्रेटरी ने कहा, इंस्टालमेंट नहीं मिला था। अपने शब्द हैं, अपने अर्थ हैं।
वित्तविभाग के एक अधिकारी को, जो अविवाहित थे, किसी भी विभाग की धन संबंधी मांगों में बड़ा अड़ंगा लगाने की आदत थी। वे विभागों द्वारा आई हुई फाइलों पर यह लिख कर कि--यह बताने का कष्ट करें कि पहले आपका काम कैसे चलता था? वापस कर देते थे। इसी बीच उनका विवाह निश्चित हुआ, उन्होंने सभी को शादी के कार्ड भेजे। दूसरे दिन सभी कार्ड वापस आ गए और सब पर यही लिखा था-- यह बताने का कष्ट करें कि पहले आपका काम कैसे चलता था?
शब्दों का अर्थ संदर्भ में होता है। शब्दों का अर्थ संदर्भ के बाहर नहीं होता। शांडिल्य का जिज्ञासा से अर्थ है--हार्दिक जिज्ञासा।

आखिरी प्रश्नः मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन मित्र और प्रियजन बाधा बन रहे हैं! मैं क्या करूं?

वे मित्र न होंगे, और वे प्रियजन भी नहीं। जो तुम्हें स्वतंत्रता न दें स्वयं होने की, वे मित्र भी नहीं हो सकते, प्रियजन भी नहीं हो सकते। मित्रता का अर्थ ही यही है कि हम दूसरे को इतना चाहते हैं कि वह जो होना चाहे, हम उसे स्वतंत्रता देंगे। और प्रियजन का अर्थ यही है कि तुम जिस दिशा में जाना चाहो, जहां तुम्हारा आनंद हो, हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ होंगे--चाहे हम विचार से राजी न भी हों।
प्रेम मुक्ति देता है। और जो मुक्ति न दे, वह प्रेम नहीं है।
मैं तुमसे कहता नहीं कि तुम संन्यास लो। मैं तुमसे इतना ही कहना चाहूंगा--जो तुम्हारी अंतर्भावना हो, हिम्मत से उस पर बढ़ो। संन्यास की हो तो, संसार की हो तो। दूसरे को निर्णायक मत बनाओ। दूसरे के हाथ में निर्णय मत दो। अन्यथा तुम अपने जीवन को नष्ट कर लोगे। तुम्हारा जीवन तुम्हारा है, तुम इसे अपने ढंग से जीओ।

मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए

यानी
वन का वृक्ष
खेत की मेंड
नदी की लहर
दूर का गीत
व्यतीत
वर्तमान में
उपस्थित
भविष्य में

मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए

तेज गर्मी
मूसलाधार वर्षा
कड़ाके की सर्दी
खून की लाली
दूब का हरापन
फूल की जर्दी
मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए

मुझे अपना
होना
ठीक-ठीक सहना चाहिए

तपना चाहिए
अगर लोहा हूं
तो हल बनने के लिए

बीज हूं
तो गड़ना चाहिए
फूल बनने के लिए

मैं जो हूं
मुझे वही बनना चाहिए

धारा हूं अंतःसलिला
तो मुझे कुएं के रूप में
खनना चाहिए
ठीक जरूरतमंद हाथों से
गान फैलाना चाहिए मुझे
अगर मैं आसमान हूं

मगर मैं
कब से ऐसा नहीं
कर रहा हूं
जो हूं
वही होने से डर रहा हूं!

जीवन में एक ही असफलता है--तुम जो हो, वही होने से डरना। और जीवन में एक
ही सफलता है--वही हो जाना, जो तुम्हारी अंतःप्रेरणा है। तुम जो होना चाहो, हो जाओ। सब झंझट मोल लो, सब कीमत चुकाओ, यही साहस है। डरपोक रहे, जीवन से चूक जाओगे। कायर रहे, जीवन की संपदा तुम्हारी कभी भी न हो सकेगी। विजेता बनना हो तो एक बात तय कर लेनी चाहिए कि कुछ भी हो परिणाम, सारा संसार साथ हो कि विपरीत, मैं अपनी डगर पर चलूंगा। फिर चाहे मेरी डगर नरक ही क्यों न जाती हो। मैं अपने हृदय की सुनूंगा।
और जो व्यक्ति अपनी सुन कर नरक भी जाए, वह स्वर्ग पहुंच जाता है। और जो दूसरे की सुन कर स्वर्ग भी जाए, वह निश्चित ही नरक पहुंच जाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
सातवां प्रवचन

स्वानुभव ही श्रद्धा है

सूत्र

प्रागुक्तं च।। 16।।
एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः।। 17।।
देवभक्तिरितरस्मिन साहचर्य्यात्।। 18।।
योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।। 19।।
गौण्यातु समाधिसिद्धिः।। 20।।

भक्ति परम है। उसके पार कुछ और नहीं, भगवान भी नहीं।
भक्ति है वह बिंदु जहां भक्त और भगवान का द्वैत समाप्त हो जाता है; जहां सब दुई मिट जाती है; जहां दो-पन एक-पन में लीन हो जाता है--ऐसे एक-पन में कि उसे एक भी कहें तो ठीक नहीं। क्योंकि जहां दो ही न रहे, वहां एक का भी क्या अर्थ? ऐसी शून्य-दशा है भक्ति, या ऐसी पूर्ण-दशा है भक्ति। नकार से कहो तो शून्य, विधेय से कहो तो पूर्ण, बात एक ही है। लेकिन भक्ति के पार और कुछ भी नहीं।
जैसे बीज होता, फिर बीज से अंकुर होता, फिर अंकुर से वृक्ष होता, फिर वृक्ष में फूल लगते और फिर फूल से गंध उड़ती--गंध है भक्ति। जीवन का अंतिम चरण, जहां जीवन परिपूर्ण होता, सुगंध, आखिरी घड़ी आ गई, इसके पार अब कुछ होने को नहीं, इसलिए सुगंध में संतोष है। न पार होने को कुछ है, न पार की आकांक्षा हो सकती। आकांक्षा करने वाला भी गया, आकांक्षा की जा सकती थी जिसकी वह भी समाप्त हुआ। ऐसी निष्कांक्षा, ऐसी वासनाशून्य, ऐसी रिक्त-दशा है भक्ति। रिक्त, अगर संसार की तरफ से देखें--तो सारा संसार समाप्त हुआ। भरी-पूरी, लबालब, अगर उस तरफ से देखें, परमात्मा की तरफ से देखें--क्योंकि शून्य घट में ही परमात्मा का पूर्ण भर पाता है।
शांडिल्य ने कहाः प्रागुक्तं च।
मैं जो कहता हूं, नया नहीं है, ऐसा पूर्व में भी कहा गया है। सदा-सदा कहा गया है।
प्रागुक्तं च का अर्थ होता हैः पूर्व में भी ऐसा ही कहा गया; जिन्होंने जाना उन्होंने भी ऐसा ही कहा है; जब भी जाना, तभी ऐसा कहा गया है; भविष्य में भी जो जानेंगे, ऐसा ही कहेंगे। अभिव्यक्तियां भिन्न होंगी, शब्द अलग होंगे, भाषाएं पृथक होंगी, पर जो कहा गया है सार में वह यही है। अज्ञानी एक जैसी बातें कहें तो भी बातें भिन्न-भिन्न होती हैं, क्योंकि अज्ञान निजी है, वैयक्तिक है, सबका अलग-अलग है। जैसे सपने सबके अलग-अलग होते हैं, झूठ सबके अलग-अलग होते हैं। सपना यानी झूठ। जो सपना तुमने देखा है, वह दुनिया में कोई कभी नहीं देखेगा। तुम अपने सपने में किसी को निमंत्रण भी नहीं दे सकते कि आओ, मेरा सपना देखो। बिल्कुल निजी है। अपने प्रीतम को भी नहीं बुला सकते, अपने निकटतम मित्र को भी नहीं कह सकते कि मेरे सपने में आज आ जाना। वहां बस तुम अकेले हो--पृथक, अस्तित्व से टूटे हुए, अपने में बंद। इसीलिए तो सपना झूठ है, क्योंकि उसका कोई गवाह भी नहीं है। तुम एक गवाह नहीं खोज सकते अपने सपने के लिए। इसलिए तो सपना झूठ है, क्योंकि उसका कोई साक्षी नहीं है।
जिस जगत में हम संगी-साथी खोज लेते हैं, वह ज्यादा सच है। इसलिए जो वृक्ष तुमने आंख खोल कर देखा है, वह ज्यादा सच है--क्योंकि तुमने भी देखा, तुम्हारे पड़ोसी ने भी देखा, तुम्हारे मित्रों ने भी देखा, तुम्हारे शत्रुओं ने भी देखा। लेकिन जो सपने का वृक्ष है, आंख बंद करके तुमने देखा, बस तुमने देखा--शत्रुओं की तो बात दूर, मित्र भी उसे देख नहीं सकते। मित्रों की तो बात दूर, तुम भी उसे दुबारा देखना चाहो तो असमर्थ हो। तुम्हारे भी हाथ में नहीं है। एक तरंग थी झूठ की; तुम नींद में सोए थे, तुम

इतने सोए थे कि झूठ को झूठ की तरह न देख पाए और सच मान लिया। नींद के कारण झूठ सच लगा।
अज्ञानियों की भाषा चाहे एक हो, चाहे उनके वक्तव्य एक हों, मगर वे अलग-अलग बात कहते हैं। अलग-अलग ही कहेंगे, क्योंकि वे अलग-अलग हैं। उन्होंने अभी एकात्म नहीं जाना; सर्व के साथ संबंध नहीं जाना, अभी सेतु ही नहीं बना। अभी सब अपने-अपने में बंद, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठे हैं।
अज्ञानी एक सा भी बोलें तो उनकी बात का अर्थ एक नहीं होता--हो ही नहीं सकता। ज्ञानी अलग-अलग बोलें--अलग-अलग ही बोलते हैं--फिर भी उनकी बात का अर्थ एक ही होता है।
शांडिल्य कहते हैंः प्रागुक्तं च।
"ऐसा ही पहले भी कहा गया है।"
ऐसा ही आगे भी कहा जाएगा। ऐसा ही कहा जा सकता है। सत्य को अन्यथा कहने
का उपाय नहीं है, फिर गीता कहे, कि बाइबिल, कि कुरान। जिनके पास आंख है, वे गीता, कुरान और बाइबिल में एक की ही उदघोषणा पाएंगे, एक ही ओंकार का नाद पाएंगे।
कृष्ण का वचन हैः
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।
"ब्रह्मभाव प्राप्त करके जब मनुष्य प्रसन्नात्मा होता हुआ सब प्रकार
की वासनाओं से मुक्त हो जाता है, उस समय सर्वभूत में समदर्शी होने पर वह मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।" अर्थात समस्त साधनाओं का एकमात्र फल भक्ति है। जब सारी आकांक्षाएं गिर जाती हैं, सारा सोच-विचार शांत हो जाता है--
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
ध्यान रखना, वासना है इसलिए विचार है।
मेरे पास अनेक बार लोग आते हैं, वे कहते हैं, विचार कैसे बंद करें? विचार बंद नहीं होगा जब तक वासना है। वासना है तो विचार उठता ही रहेगा। ऐसे ही जैसे जब तक वायु का प्रचंड वेग है, झील पर लहरें उठती रहेंगी। लहरों को कैसे बंद करोगे? वायु का वेग रुके तो लहरें अपने आप शांत हो जाएंगी, बंद करनी भी नहीं पड़ेंगी। विचार तो तरंगें हैं वासना के वेग में उठी।
तुमने देखा, चुपचाप बैठे हो, शांत बैठे हो, एक सुंदर स्त्री निकल गई और वासना उठी और तत्क्षण विचारों से घिर गए तुम--इधर आई वासना, उधर विचारों का प्रवाह आया; हजार-हजार तरंगें आ गईं। वासना का जरा सा कंकड़ गिर जाए तुम्हारी चेतना की झील में कि तरंग, और तरंग, और तरंग उठ आती है। चुपचाप बैठे थे, एक कार गुजर गई, मन में वासना उठी कि पाऊं। बस विचार का तांता शुरू हुआ, कतार बंधी। तुम अपने भीतर निरीक्षण करोगे तो इस सत्य को पकड़ पाओगे कि अगर विचार से मुक्त होना हो तो वासना से मुक्त होना पड़ेगा। विचार वासना के पीछे आता है--अनुसंगी है, छाया है।
कृष्ण कहते हैंः जब कोई न सोचता, न वासना करता, तब प्रसन्नात्मा हो जाता है।
सोचने वाला, वासना और विचार में ग्रस्त हमेशा अवसन्न रहेगा--उदास, हारा-थका, विषादग्रस्त, चिंतामग्न, संताप से भरा। क्यों? क्योंकि जितनी तुम्हारी वासना होगी, उतनी ही तुम्हें अपनी दीनता अनुभव होगी। वासना तुम्हें बताएगी क्या-क्या तुम्हारे पास नहीं है। किस-किस बात का अभाव है। जितनी ज्यादा वासनाएं होंगी, उतना अभाव मालूम होगा। तुम उतने ही दरिद्र होते हो जितनी तुम्हारी वासनाएं होती हैं, क्योंकि हर वासना खबर देती है कि यह मेरे पास नहीं। जिस दिन तक तुमने नहीं सोचा था कि एक बड़ा महल बनाऊं, उस दिन तक तुम महल में ही थे। तुम जहां भी थे महल था, झोपड़ा ही महल था। लेकिन जिस दिन यह वासना उठी कि एक बड़ा महल बनाऊं, उसी दिन से तुम झोपड़े में हो गए--क्योंकि अब उस महल की तुलना में यह झोपड़ा अखरता है, खटता है, काटता है। रूखी-सूखी रोटी मिल जाती थी, सुस्वादु थी; जिस दिन वासना उठी, उसी दिन स्वाद खो गया, उसी दिन से तुम भूखे हो। अब पेट नहीं भरता रूखी-सूखी रोटी से।

स्वामी राम कहते थे कि मैं बादशाह हूं। किसी ने पूछा--क्यों? तो उन्होंने कहा, इसीलिए कि मेरी कोई वासना नहीं। जितनी वासनाएं कम होती गईं, उतनी मेरी बादशाहत बढ़ती गई। और जिस दिन मेरी कोई वासना न रही, उस दिन मैंने पाया कि मैं सबसे बड़ा बादशाह हूं; सम्राट हूं, शहंशाह हूं। क्योंकि जहां हूं, वहां कोई अभाव नहीं है अब।
अभाव पता ही चलता है वासना से। वासना की लकीर बड़ी होती जाती है, तुम्हारे जीवन की लकीर छोटी होती चली जाती है। वासना की लकीर को मिटा दो और तुम पाओगे कि तुम प्रसन्नात्मा हो।
कृष्ण कहते हैंः जिसकी वासना गई, विचार गया, वह प्रसन्नात्मा हो जाता है। और जो प्रसन्नात्मा है, वह ब्रह्मभूत होने में समर्थ हो जाता है। वह परमात्मा में लीन होने के करीब आ गया। अब बाधा न रही। बाधा थी अभाव की; बाधा थी दीनता, दरिद्रता की।
मैं निरंतर तुमसे कहा हूं--भिखारी की तरह से उसके द्वार पर मत जाना।
जो भिखारी की तरह उसके द्वार पर गया है, वह खाली हाथ लौटा है। खाली हाथ जाओगे, खाली हाथ लौटोगे। तुमने ही अगर तय कर रखा है कि खाली हाथ रखने हैं, तो परमात्मा भी तुम्हारे हाथ नहीं भर सकेगा। सम्राट की तरह जाना उसके द्वार पर। लेने और मांगने मत जाना, अपने को देने जाना। जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना मांग नहीं होती, दान होती है, उसी दिन पूरी हो जाती है। जिस दिन तुम परमात्मा को देने को तत्पर होते हो, उस दिन फिर कोई अभाव नहीं रह जाएगा।
प्रसन्नात्मा दे सकता है। जो आनंद-उल्लास से भरा है, वही दे सकता है। जिसकी श्वास-श्वास उत्सव हो गई है, वही दे सकता है। जो प्रसन्नात्मा है, उसमें और ब्रह्म में दूरी नहीं रह गई। पास आने लगा घर। नदी उतरने लगी सागर में, जल्दी ही लीन हो जाएगी। ब्रह्मभाव उपलब्ध होगा।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु...
और जिसको ब्रह्मभाव उपलब्ध हुआ, वह सभी में अपने को पाएगा, और सभी में समता पाएगा। पत्थर में भी अपने को पाएगा, फूल में भी अपने को पाएगा। अपने को विस्तीर्ण होता पाएगा। सारा अस्तित्व उसकी देह बन जाएगा।
तुमने छोटी सी देह में अपने को बांध रखा है, क्योंकि तुमने क्षुद्र वासनाओं में अपने को कस रखा है। जैसे-जैसे वासना के बंधन गिरते हैं, तुम विराट होने लगते हो। ऐसा नहीं है कि परमात्मा कहीं से आता है, सिर्फ तुम्हारे बंधन गिर जाते हैं। तुम परमात्मा हो बंधे हुए; बंधन गिर जाते हैं, अचानक अनुभव होता है कि जो मैं सदा से था, वही हूं, सिर्फ भेद इतना पड़ा है--बंधन गिर गए।
बुद्ध एक सुबह अपने भिक्षुओं के सामने आए और उन्होंने अपने हाथ में
एक रूमाल ले रखा था, और उन्होंने सबके सामने खड़े होकर उस रूमाल में पांच गांठें बांधीं, और फिर एक भिक्षु से पूछा कि क्या तुम कह सकते हो यह रूमाल वही है जैसा मैं लाया था, या भिन्न हो गया?
उस भिक्षु ने कहा, भगवान, आप उलझन की बात पूछते हैं। सही उत्तर यही हो सकता है कि एक अर्थ में तो रूमाल वही है, और एक अर्थ में रूमाल बदल गया। इस अर्थ में रूमाल वही है, क्योंकि रूमाल में कुछ नया नहीं हुआ है--गांठ से कुछ नया नहीं हो गया है। गांठ से क्या नया होगा? रूमाल बिल्कुल वही है। लेकिन फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि बिल्कुल वही है, क्योंकि गांठ ने थोड़ा फर्क तो कर दिया। गांठ पहले नहीं थी, अब है।
तुम गांठ लगे रूमाल हो। तुम गांठ लगे भगवान हो। गांठ खुल जाए, भगवान कहीं और से आता नहीं--ग्रंथि खुल जाए। ग्रंथियां विचार की हैं, वासना की हैं। उनके कारण अभाव, विषाद, संताप। उनके कारण नरक। जितना बड़ा तुम्हारा विषाद है, उतनी परमात्मा से दूरी है। दुख में कोई परमात्मा से नहीं जुड़ पाता। और आदमी ऐसा मूढ़ है कि दुख में याद करता है, सुख में भूल जाता है। और दुख में कभी कोई नहीं जुड़ा। सुना ही नहीं, ऐसी घटना ही नहीं घटी कि दुख में कोई छलांग लगा गया हो परमात्मा में। दुख में तो तुम सिकुड़ जाते हो, गांठ और मजबूत हो जाती है। गांठ ही गांठ रह जाती है, रूमाल बचता ही नहीं; पांच नहीं,

पचास गांठ हो जाती हैं, कि हजार गांठ हो जाती हैं। सारा रूमाल गांठों में दब जाता है। गांठों पर गांठें लग जाती हैं। ग्रंथियों पर ग्रंथियां। पता लगाना ही मुश्किल हो जाता है कि कभी यह रूमाल खुला भी था, कभी तुम मुक्त भी थे, कभी तुम निर्विकार भी थे, कभी तुम्हारी स्लेट पर कुछ भी न लिखा था; शांति थी, कोई धब्बा न पड़ा था।
दुख में आदमी भगवान को याद करता है। और दुख सर्वाधिक दूरी है मनुष्य
और भगवान के बीच। प्रसन्नात्मा पहुंचता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं-- नाचो, गाओ! रोते हुए मत जाओ, हंसते हुए जाओ! हंसते हुए ही कोई पहुंचता है। नाचते हुए जाओ! पहाड़ मत ढोओ चिंताओं के अपने सिर पर।
अक्सर ऐसा हो जाता है, ये पहाड़ ढोने वाले लोग ही तुम्हें संत-महात्मा मालूम होते हैं। ये बहुत दूर हैं, इन्हें कुछ भी पता नहीं है। कहीं कोई मस्त होकर नाचता हो, चाहे परमात्मा की उसे याद भी न हो, तो भी परमात्मा के करीब है। मस्ती में सार है। कहीं कोई रस-निमग्न है, कहीं कोई डूबा है, सब भांति भूल कर, वहीं समझना कि परमात्मा का द्वार करीब है--चूकना मत, वहां सत्संग करना। जहां मस्ती में डूबे हुए लोग मिल जाएं, जहां मस्तों की मधुशाला मिल जाए, वहीं मंदिर है। उस क्षण याद किया तो काम आ जाता है-- क्योंकि उस वक्त हम बहुत करीब होते हैं। जरा सी आवाज दी कि वहां तक पहुंच जाती है। आनंद के पंखों पर चढ़ कर ही प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंचती हैं। दुख तो पंखहीन है, पंख कटे जटायु सा। उस पर चढ़ कर कोई यात्रा नहीं होती।
जो ब्रह्मभूत हो गया, आनंदमग्न होकर सोच-विचार-वासना से मुक्त हुआ, उसे सबमें एक ही का वास दिखाई पड़ने लगता है।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।
और इस अवस्था का नाम परा भक्ति है। भगवान ही भगवान, शैतान में भी भगवान। राम ही राम, रावण में भी राम। जिस क्षण भगवान के अतिरिक्त कुछ और दिखाई ही न पड़े--चाहो तो भी दिखाई न पड़े, खोजो तो भी न पा सको; जहां उलटो, जिस पत्थर को पलटो, वही मिल जाए; जिस लकड़ी को तोड़ो, वही मिल जाए; आंख खोलो तो वही, आंख बंद करो तो वही; जिस दिन जहां जाओ वहीं काबा, वहीं काशी; जिस दिन जहां झुको वहीं मंदिर; जहां बैठ रहो वहीं तीर्थ।
कबीर ने कहा हैः खाऊं-पीयूं सो सेवा, उठूं-बैठूं सो परिक्रमा।
वही है, तो अब अलग से भोग लगाने की भगवान को जरूरत न रही, तुमने जो खाया-पीया वह भी उसी को भोग लग गया। खाऊं-पीयूं सो सेवा, उठूं-बैठूं सो परिक्रमा। उठता हूं, बैठता हूं, यह उसी की परिक्रमा चल रही है। यह श्वास उसी की परिक्रमा है--आती-जाती श्वास; यह आती-जाती श्वास उसी का निनाद है, यह आती-जाती श्वास उसी का ओंकार है, यह उसी का भजन है।
इस परमदशा को कृष्ण ने भक्ति कहा है।
ठीक कहते हैं शांडिल्यः प्रागुक्तं च।
"पूर्व में भी ऐसा ही कहा गया है।"
और दूसरे भक्ति के तत्त्वज्ञ नारद ने कहा हैः ओम फल रूपत्वात्।
वह भक्ति सब साधनों का फलरूप है। अंतिम है। पराकाष्ठा है। उसके पार
और कुछ भी नहीं है। शेष सब रूप साधनाओं के उसी तरफ ले जाते हैं। शेष सब मार्ग हैं, साधन हैं, भक्ति साध्य है।
एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः।
"इससे विकल्प का नाश भी हो गया।"
साधारणतः इस वचन का अर्थ किया जाता है कि चूंकि शास्त्रों में भी ऐसा कहा है, आप्तपुरुषों ने भी ऐसा कहा है, जानने वालों के ऐसे ही वचन हैं, इसलिए अब कोई संदेह की बात न रही, अब सब विकल्प समाप्त हो गए, अब श्रद्धा की जा सकती है।
मैं इतने से अर्थ से राजी नहीं होऊंगा। यह अर्थ ठीक है, पर बहुत ऊपर-ऊपर है। क्योंकि शांडिल्य जैसा ज्ञानी सिर्फ शास्त्रों का उल्लेख करके ऐसा नहीं कह सकता कि सब विकल्प समाप्त हो गए। सब विकल्प तो समाप्त होते हैं तभी जब अनुभव हो जाए। शास्त्रों से कैसे विकल्प समाप्त हो जाएंगे? और शांडिल्य तो ऐसा कह ही नहीं सकते, क्योंकि अभी-अभी तो हमने देखे उनके और

सूत्र जिनमें उन्होंने ज्ञान की व्यर्थता कही है; जिनमें उन्होंने कहा कि ज्ञान कचरा है; ज्ञान से कोई भक्ति तक नहीं पहुंचता। कृष्ण ने क्या कहा गीता में और नारद ने क्या कहा भक्ति-सूत्रों में, इसको जानने से कोई शांति होगी, विकल्प समाप्त होंगे? इसके जानने से समाधान होगा? समाधि के बिना कोई समाधान न हुआ है कभी, न हो सकता है।
शास्त्र कहते रहें कितना ही, जब तक तुम्हारा अंतर-शास्त्र न जाग उठे,
तब तक सब विश्वास है, श्रद्धा नहीं। और विश्वास झूठी श्रद्धा का नाम है। तुम मान लो कि कृष्ण ने कहा तो ठीक ही कहा होगा, लेकिन पहले तो तुम्हें यह मानना पड़ता है कि कृष्ण ठीक हैं, फिर तुम्हें यह मानना पड़ता है कि जब ठीक व्यक्ति ने कहा है तो ठीक ही कहा होगा। मगर सारी बात अंधी है। तुम्हें कैसे पक्का पता हो कि कृष्ण ठीक हैं? शांडिल्य कहते हैं इसलिए कृष्ण ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि फिर यह पक्का होना चाहिए कि शांडिल्य ठीक हैं। तुम रुकोगे कहां? तुम किस जगह से शुरू करोगे? जहां से भी शुरू करोगे वहीं से अंधापन होगा। तुम कहोगे, परंपरा कहती है। लेकिन परंपरा गलत हो सकती है। कहीं भ्रांति हो गई हो, कहीं भूल हो गई हो। जब तक तुम्हारा अंतर-अनुभव गवाही न दे, तब तक दुनिया की कोई चीज प्रमाण नहीं बन सकती। हां, मान ले सकते हो, सांत्वना होगी, थोड़ी राहत मिलेगी, मगर राहत और सत्य एक ही नहीं हैं। अक्सर तो ऐसा हो जाता है, जो आदमी राहत पाने का बहुत आदी हो जाता है, वह सत्य से सदा के लिए वंचित रह जाता है। क्योंकि वह व्यर्थ की बातें में ही राहत कर लेता है।
सत्य सुविधा नहीं है, राहत नहीं है, अपने को समझा-बुझा लेना नहीं है। सत्य अनुभव है। और अनुभव में जलना पड़ता है। सत्य अग्नि है। सत्य बहुत आग्नेय है। तुम्हें जलाएगा, निखारेगा, तभी तुम कुंदन बनोगे, तभी तुम्हारा सोना शुद्ध होगा।
मान लेने से यह नहीं हो सकता। मानने के कारण ही तो इतने लोग भटके हुए हैं। मानते तो सभी हैं--कोई कृष्ण को, कोई क्राइस्ट को, कोई मोहम्मद को, कोई महावीर को--मानते तो सभी हैं। फिर जो मोहम्मद को मानता है वह महावीर को नहीं मान सकता। जो महावीर को मानता है वह मोहम्मद को नहीं मान सकता। फिर इनमें से कौन आप्तपुरुष है? महावीर को मानने वाला मोहम्मद के मानने वाले के मन में संदेह तो पैदा कराएगा ही--कौन आप्तपुरुष है? आखिर कुछ लोग हैं जो महावीर को मानते हैं, कुछ लोग जो मोहम्मद को मानते हैं; कुछ लोग जो क्राइस्ट को, कुछ लोग जो कृष्ण को; इनमें कौन सच है? इस तरह की श्रद्धा विकल्पों से मुक्ति नहीं ला सकती।
इसलिए जिन्होंने शांडिल्य के इस सूत्र--
एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः।
"इससे विकल्प का नाश हो गया।"
इसका ऐसा अर्थ किया है कि चूंकि सत्पुरुषों ने कहा है, चूंकि सद्शास्त्र दोहराते हैं, इसलिए अब कोई शंका-संदेह का कारण नहीं रहा, ऐसा अर्थ मैं नहीं करना चाहूंगा। इतनी आसानी से संदेह नहीं मिटते, संदेह बड़े गहरे हैं। सच तो यह है कि स्वयं परमात्मा भी तुम्हारे सामने खड़ा हो तो भी संदेह नहीं मिटते, जब तक कि परमात्मा तुम्हारे भीतर खड़ा न हो जाए। उतनी दूरी भी रहे कि वह सामने खड़ा है, उतना भी फासला रहे--हाथ भर का फासला--तो भी संदेह उठते ही चले जाते हैं। पता नहीं धोखा हो; पता नहीं कोई चालबाज हो; पता नहीं कोई माया हो; पता नहीं मैं कोई सपना देख रहा हूं, कल्पना कर ली है; भरोसा कैसे आए? भरोसा स्वानुभव से ही आता है। स्वानुभव ही श्रद्धा है। तो मैं इसका क्या अर्थ करूं?
मैं इसका अर्थ करना चाहूंगा कि जहां न भक्त बचता, न भगवान, ऐसी पराभक्ति में विकल्प समाप्त होते हैं।
एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः।
उस पराभक्ति में जाकर विकल्प समाप्त हो जाते हैं। जहां तुम्हारे सब विकल्प समाप्त हो जाएं, समझना कि पराभक्ति आई। जहां कोई विकल्प न बचे।
जब तक दो हैं, तब तक विकल्प रहेंगे। जब तक मैं हूं और तू है, तब तक विकल्प रहेंगे। तब तक संघर्ष चलेगा। जब एक ही बचता है--न मैं, न तू, जब वह

बचता है--तत्, तब विकल्प बचने की कोई जगह न रही। अब विकल्प किसमें उठेंगे-- न भक्त है, न भगवान है, भगवत्ता रही। उस भगवत्ता में, उस पराभक्ति में, उस परम अवस्था में, जहां बीज गया, वृक्ष गया, फूल गया, सिर्फ सुगंध रही--अदृश्य सुगंध--वहीं जाकर विकल्प शांत होते हैं।
देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्।
"ईश्वर में भक्ति के सिवाय और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार की भक्ति की नाईं और-और साधनों में भी भक्ति देख पड़ती है।"
और जो मैंने अर्थ किया, वह इस आने वाले सूत्र से और भी स्पष्ट हो जाएगा, और भी पुष्ट हो जाएगा।
शांडिल्य कहते हैंः ईश्वर में भक्ति के सिवाय और देवताओं की जो भक्ति
है वह पराभक्ति नहीं है। क्या अर्थ होगा? हिंदू को मैं धार्मिक नहीं कहता, और मुसलमान को भी धार्मिक नहीं कहता, और जैन को भी नहीं, और बौद्ध को भी नहीं। जब तक जैन-हिंदू-मुसलमान-ईसाई मौजूद हैं, तब तक कोई धार्मिक नहीं होता। क्योंकि ईसाई का अपना परमात्मा है, हिंदू का अपना परमात्मा है। अभी तो परमात्मा तक कई हैं। अभी तो परमात्मा में भी भेद है। अभी तो भक्त और भगवान का भेद मिटने का तो सवाल ही दूर, अभी तो भगवानों में भेद है। अभी तो भगवान भी एक नहीं है, भक्त का उससे एक होना तो बहुत दूर की बात है, दूर का सपना है। जब हिंदू झुकता है तो वह भगवान के चरणों में नहीं झुकता, वह हिंदू भगवान के चरणों में झुकता है।
कहानी है कि तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया जब वे वृंदावन गए, वे झुके नहीं। कृष्ण के सामने और तुलसीदास झुकें! नहीं झुके। उन्होंने कहा कि जब तक धनुषबाण हाथ न लोगे, तब तक मैं नहीं झुकूंगा। यह मजा देखते हैं! यह अहंकार देखते हैं! भक्त भगवान पर भी शर्त लगा रहा है। भक्त यह कह रहा है कि मेरी शर्त के अनुकूल होओगे तो झुकूंगा। धनुषबाण हाथ लो, तो तुलसी का माथा झुके। मैं धनुषबाण वाले राम को मानता हूं, मैं यह बांसुरी वाले कृष्ण को नहीं मानता।
तुलसीदास के पास भी आंखें नहीं मालूम होतीं। नहीं तो जिसने धनुषबाण लिया है, उसी ने बांसुरी भी बजाई है। और ये तो दोनों ही हिंदू थे--ये कृष्ण और राम की दोनों धारणाएं हिंदू थीं। जरा मस्जिद में सोचो तुलसीदास की क्या गति होती! भीतर ही न घुसते। मंदिर में चले गए, यह उनकी बड़ी कृपा! कम से कम भीतर तो चले गए! इतना अनुग्रह तो किया परमात्मा पर, कि कृष्ण को एक मौका तो दिया कि अगर झुकवाना हो मुझे, तो धनुषबाण हाथ ले लो! लेकिन मस्जिद में क्या करते, वहां तो हाथ ही नहीं हैं! बांसुरी लेने वाला तो धनुषबाण भी कभी ले सकता है, मगर मस्जिद में तो हाथ ही नहीं हैं, कोई प्रतिमा ही नहीं, वहां क्या करते? वहां तो भीतर जा ही नहीं सकते थे।
अगर किसी जैन मंदिर में गए होते और महावीर खड़े थे, तो महावीर से यह कहना कि धनुषबाण हाथ लो, बड़ी बेहूदी बात हो जाती। क्योंकि वह आदमी धनुषबाण के बिल्कुल विपरीत था। अहिंसा परमो धर्मः। वह धनुषबाण हाथ में लेने की ही वजह से तो राम जैनों को स्वीकार नहीं हो सकते। जैन नहीं झुक सकता राम के मंदिर में। कैसे झुके? ये धनुषबाण लिए खड़े हैं! और धनुषबाण तो पाप का प्रतीक है, हिंसा का प्रतीक है। और हिंसा से कहीं हिंसा मिटी है? हिंसा से तो और हिंसा जन्मती है। जैन शास्त्रों में राम की कथाएं हैं--उनको महापुरुष कहा है, लेकिन भगवान नहीं। बस उतने दूर तक जैन उनको मान सकते हैं--कि एक महापुरुष हैं, जैसे और बहुत महापुरुष हुए, लेकिन भगवान नहीं। बुद्ध का भी नाम अगर जैन उल्लेख करते हैं तो उनको महात्मा कहते हैं, भगवान नहीं। महात्मा मान सकते हैं। लेकिन भगवान! धारणा उनकी है अपनी। हर एक की अपनी धारणा है। और जब तक तुम्हारी धारणा है, तब तक तुम भगवान से न जुड़ सकोगे--धारणा ही बाधा है। तब तक हिंदू हिंदू भगवान के सामने झुक रहा है--और हिंदू भगवान कहीं है? भगवान तो बस भगवान है--न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। मैंने एक कहानी सुनी है। एक फकीर रात सोया। उसने एक सपना देखा कि वह स्वर्ग पहुंच गया है। और बड़ी भीड़-भड़क्का है; स्वर्ग बड़ा सजा है और बड़ा जुलूस निकल रहा है--शोभायात्रा! उसने पूछा, वह भी खड़ा हो गया भीड़ में कि

क्या बात है? आज भगवान का जन्मदिन है, किसी राहगीर ने कहा, उत्सव मनाया जा रहा है। उसने कहा, अच्छे भाग्य मेरे कि ठीक दिन आया स्वर्ग। जुलूस निकलते हैं। निकले रामचंद्रजी धनुषबाण लिए हुए, और लाखों-करोड़ों लोग उनके पीछे। फिर निकले मोहम्मद अपनी तलवार लिए, और लाखों-करा.ेडों लोग उनके भी पीछे। और फिर निकले बुद्ध, और फिर निकले महावीर, और जरथुस्त्र, और निकलते गए, निकलते गए... और आखिर में जब सब निकल गए तो एक आदमी एक बूढ़े से मरियल से घोड़े पर सवार निकला। जनता भी जा चुकी थी, लोग भी जा चुके थे, उत्सव समाप्त होने के करीब था, आधी रात हो गई, इस फकीर को इस आदमी को देख कर हंसी आने लगी कि ये भी सज्जन खूब हैं, ये काहे के लिए निकल रहे हैं अब! और इनके पीछे कोई भी नहीं। उसने पूछा, आप कौन हैं और घोड़े पर किसलिए सवार हैं? और यह कैसी शोभायात्रा है, आपके पीछे कोई नहीं! उसने कहा, मैं क्या करूं, मैं भगवान हूं। कुछ लोग हिंदुओं के साथ हो गए हैं, कुछ बौद्धों के साथ, कुछ ईसाइयों के साथ, कुछ मुसलमानों के साथ, मेरे साथ कोई भी नहीं, मैं अकेला हूं। मेरा जन्मदिन मनाया जा रहा है, तुम्हें मालूम नहीं?
घबड़ाहट में फकीर की नींद खुल गई। तुम भी सोचोगे तो घबड़ाहट में तुम्हारी भी नींद खुल जाएगी।
शांडिल्य का सूत्र बड़ा अदभुत है, शांडिल्य कहते हैं--
देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्।
ईश्वर में भक्ति के सिवाय और-और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं है। और-और देवता अर्थात विशेषण वाले भगवान। और-और देवता अर्थात धारणाओं में आबद्ध, सीमाओं में आबद्ध। भगवान का अर्थ होता हैः जो एक है, जो समस्त में व्याप्त है। तुम हिंदू होना छोड़ो तो ही उससे संबंध जुड़े। तुम मुसलमान होना छोड़ो तो ही उससे संबंध बने। यही मेरी शिक्षा है। यही मैं सिखा रहा हूं सुबह-शाम कि तुम मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे से मुक्त हो जाओ, तो तुम्हें उसका मंदिर मिले। और तुम धनुष वाले राम, और बांसुरी वाले कृष्ण, और नग्न खड़े महावीर से मुक्त हो जाओ, तो तुम्हें उसकी झलक मिले। नहीं तो झलक असंभव है।
ख्याल रखना, अगर तुम्हारे भगवान की धारणा किसी दूसरे के भगवान की धारणा के विपरीत पड़ती है, तो यह भगवान सच्चा नहीं हो सकता। ऐसे भगवान को खोजो, जिसमें सभी धारणाएं लीन हो जाती हैं। जो धारणातीत है। जो शब्दों के पार है। जो सिद्धांतों की पकड़ में नहीं आता। शास्त्र जिसकी तरफ इंगित करते हैं, मगर जिसकी व्याख्या नहीं कर पाते। महर्षि जिसकी चर्चा करते हैं, लेकिन जो चर्चा में बंध नहीं पाता। समझाते हैं और नहीं समझा पाते। लाओत्सु ने कहा हैः उसका क्या नाम है, मुझे मालूम नहीं, काम चलाने के लिए उसको मैं "ताओ" कहूंगा। काम चलाने को! उसका क्या नाम है, मुझे मालूम नहीं। वह अनाम है। काम चलाने को "ताओ" कहूंगा। अब ताओ कहो, कि भगवान कहो, प्रभु कहो, निर्वाण कहो, धर्म कहो, कुछ भेद नहीं पड़ता, सब कामचलाऊ हैं, सब नाम कामचलाऊ हैं।
जरा गौर से देखो, तुम पैदा हुए तब अनाम पैदा हुए। मगर काम तो चलाना पड़ेगा, तो तुम्हारा एक नाम रखा। नाम तुम्हारा रखा हुआ है--जरूरत थी, बिना नाम के अड़चन आती, चिट्ठी-पत्री आती तो कैसे तुम तक पहुंचाते? और कोई पुकारता तो कैसे पुकारता? और इतनी भीड़-भाड़ है, इतने लोग हैं!
अभी मैंने देखा, अमरीका की एक अदालत ने फैसला दिया। एक आदमी अपना नाम बदलना चाहता था, अदालत ने इनकार कर दिया कि नाम नहीं बदल सकते। आदमी अपना नाम बदलना चाहता था और नाम की जगह नंबर चाहता था--1001। अदालत मुश्किल में पड़ी, क्योंकि इसके पहले कोई घटना नहीं है कि किसी ने कभी नंबर अपना नाम रखा हो। बड़ा सोच-विचार किया और फैसला दिया कि नहीं, यह हो नहीं सकेगा, क्योंकि पहले यह कभी हुआ नहीं।
अब यह बड़ी मूढ़ता की बात है। जब मैंने यह निर्णय देखा तो मुझे बड़ी हैरानी हुई--पहले यह हुआ नहीं, तो यह हो नहीं सकता। तो फिर यह होगा कैसे? और पहले भी अगर आता यह आदमी, तब भी तुम यही कहते कि पहले हुआ नहीं। तब तो यह कभी हो ही नहीं सकता। एक बार तो कम से कम होने दो, तब पहले हुआ, फिर सुविधा बन जाएगी। एक आदमी को तो पहले होने दो!

मगर अदालत की भी झंझट थी। झंझट यह थी--और उस आदमी की थोड़ी गलती थी, अगर
वह मुझसे सलाह ले तो उसको मैं कहूं कि तू थोड़ी सी सुधार इसमें कर। उसने अंक लिखे थे; अंक नहीं लिखने चाहिए, अक्षर लिखता तो रास्ता बन जाता। उसने लिखा--1001, अंक। अब इसमें झंझट है। क्योंकि इसको कोई कैसा पढ़ेगा, इस पर निर्भर है। तो नाम में अड़चन हो जाएगी। कोई पढ़ सकता है--दस सौ एक; कोई पढ़ सकता है--एक हजार एक; तो ये तो दो नाम हो गए एक नाम में! और इसमें कठिनाई खड़ी हो सकती है। उसे भाषा में लिखना था, अक्षरों में लिखना था--एक हजार एक। तो कानूनी झंझट नहीं आती।
मगर अदालत मूढ़ मालूम होती है--सभी अदालतें मूढ़ होती हैं। मूढ़ इसलिए होती हैं कि वे अतीत से बंधी होती हैं। उनके पास भविष्य की कोई योजना नहीं होती। चूंकि पहले कभी नहीं हुआ, इसलिए नहीं होने देंगे, यह भी कोई बात हुई! यह इस आदमी का कसूर है कोई कि पहले किसी ने नहीं चाहा! इसकी इस आदमी की तो कहीं भी भूल नहीं है। सिर्फ इस कारण कि पहले किसी ने नहीं किया, तुम भी नहीं कर सकोगे, तब तो भविष्य को मार डालोगे तुम। इसलिए सब कानून भविष्य-विरोधी होते हैं। और सब सिद्धांत अतीत-आग्रही होते हैं। और जितना सिद्धांतों और नियमों का जाल होता है उतना ही भविष्य के जन्म में अड़चन पड़ती है। इसका कोई गलत मामला नहीं है, ठीक, अच्छी बात है, 1001 सही। मगर नाम तो चाहिए ही पड़ेगा। बिना नाम के काम नहीं चलेगा। नंबर हो तो चलेगा, लेकिन कुछ न कुछ नाम चाहिए, कुछ प्रतीक चाहिए। यद्यपि भीतर तुम नामरहित हो। लाओत्सु ठीक कहता है कि उसका कोई नाम नहीं है और मुझे पता नहीं है कि उसका कोई नाम हो सकता है, इसलिए काम चलाने के लिए "ताओ" कहूंगा। काम चलाने को किसी ने राम कहा है; और काम चलाने को किसी ने कृष्ण कहा है; और काम चलाने को किसी ने ईसा कहा है; यह सब काम चलाना है। उसका कोई नाम नहीं है। तुम अनाम में उतरो तो ही भक्ति का जन्म होगा।
ईश्वर में भक्ति के सिवाय--उस अनाम तत्व में डूबने के सिवाय--और-और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं है।
कोई गणेश की भक्ति कर रहा है, कोई कालीमाता को पूज रहा है; कोई मस्जिद जाता, कोई मंदिर जाता; कितने-कितने देवी-देवता हैं! जब इस देश की संख्या तैंतीस करोड़ हुआ करती थी, तब लोग कहते थे कि तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। अब तो संख्या साठ करोड़ है, अब देवी-देवता भी साठ करोड़ हो गए होंगे। क्योंकि हर आदमी का अपना देवी-देवता है। हर आदमी की अपनी धारणा है। हर आदमी का अपना मन है। उसी से तो देवी-देवता निर्मित होते हैं। इन देवी-देवताओं में उलझे तो तुम अपने अहंकार के पार कभी न जा सकोगे--ये तुम्हारे अहंकार की ही छायाएं हैं। इनसे मुक्त हो जाना है।
तुम क्यों जैन मंदिर जाते हो? क्योंकि बचपन से, संयोग की बात थी, तुम ऐसे घर में पैदा हुए जहां लोग जैन मंदिर जाते थे, बस इतनी सी बात है। इसमें कुछ और ज्यादा सार नहीं है। अगर तुम पैदा हुए थे तभी उठा कर तुम्हें मुसलमान घर में रख दिया होता, तो तुम कभी भूल कर जैन मंदिर न गए होते। खून वही होता, हड्डी-मांस-मज्जा वही होती, लेकिन तुम जाते मस्जिद। यह तो संस्कार की बात हो गई। और अगर तुम्हें रूस भेज दिया गया होता पैदा होते ही से, तो तुम मस्जिद भी न जाते और जैन मंदिर भी न जाते, तुम मानते कि ईश्वर है ही नहीं। तुम्हें जो सिखाया जाता वही तुम मानते। जो तुम्हें सिखाया गया है उससे मुक्त होना पड़ेगा, तो तुम वह जान सकोगे जो है। जिसे कम्युनिज्म सिखाया गया है जन्म से, दूध में घोंट कर पिलाया गया है, उसे कम्युनिज्म से मुक्त होना पड़ेगा। और जिसे हिंदूइज्म सिखाया गया है, उसे हिंदूइज्म से मुक्त होना पड़ेगा। इज्म से मुक्त होना ही पड़ेगा, वाद से मुक्त होना ही पड़ेगा। वादी कभी सत्य तक नहीं पहुंचता है। वहां तो निर्विवाद चित्त चाहिए।
शांडिल्य कहते हैंः इस प्रकार की भक्ति पराभक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार की भक्ति की नाईं और-और स्थानों में भी भक्ति देख पड़ती है।
इसे समझना। छोटे-छोटे बच्चे लड़ पड़ते हैं कि मेरे पिता तुम्हारे पिता
से ज्यादा ताकतवर हैं, कि मेरी मां तुम्हारी मां से ज्यादा सुंदर है, कि

मेरी अध्यापिका तुम्हारी अध्यापिका से ज्यादा बुद्धिमान है। यही झगड़ा जारी रहता है जिंदगी भर, कि मेरा मंदिर तुम्हारे मंदिर से ज्यादा पवित्र, कि मेरा गुरु तुम्हारे गुरु से ज्यादा सच्चा, कि मेरा शास्त्र तुम्हारे शास्त्र से ज्यादा प्रामाणिक। ये बचकानी बातें हैं। ये चित्त के विकास के लक्षण नहीं हैं, अप्रौढ़ता के लक्षण हैं। और इन सबके पीछे अहंकार है, जब कोई बच्चा कहता है कि मेरे पिता तुम्हारे पिता से ज्यादा ताकतवर, तो वह यह क्या कह रहा है--कि मैं ताकतवर पिता का बेटा हूं, मैं ताकतवर! वह पिता के बहाने अपनी घोषणा कर रहा है। जब तुम कहते हो, मेरा धर्म सबसे प्राचीन धर्म दुनिया का। तो तुम यह कह रहे हो कि मेरा धर्म है, कोई साधारण बात है! मेरा है, प्राचीन होना ही चाहिए! मेरी किताब दुनिया की सबसे अच्छी किताब होनी ही चाहिए। फिर वह किताब कोई भी हो। तुम्हारी किताब है तो सबसे अच्छी होनी ही चाहिए। ये अहंकार की छिपी हुई घोषणाएं हैं। यह भक्ति नहीं है। यह कई रूपों में प्रकट होती है--माता की भक्ति, पिता की भक्ति, गुरु की भक्ति, देश भक्ति--मेरा देश!
सभी देशों में वही भ्रांति है। भारत में रहने वाले लोग सोचते हैं कि
यह पुण्य-भूमि है, और सारी भूमियां पाप-भूमियां हैं। और भूमियां जैसे अलग-अलग हैं! जैसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान कहीं कटे हैं भूमि से! और मजा यह है कि पाकिस्तान भी उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले पुण्य-भूमि हुआ करता था, अब नहीं है! उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले वह भी भारत था, तो पुण्य-भूमि था। जब से नक्शे पर एक लकीर खिंच गई--नक्शे पर खिंची है, जमीन पर नहीं। जमीन पर कौन लकीर खींच सकेगा? जमीन तो अविभाज्य है। नक्शे पर एक लकीर खिंच गई, तब से पाकिस्तान पुण्य-भूमि नहीं है, तब से वहां पापी रहने लगे। और वे भी इसी भ्रांति में हैं। इसीलिए तो पाकिस्तान कहते हैं उसको। पाकिस्तान मतलब पवित्र-भूमि, पाक! वे भी यही कह रहे हैं कि तुम हिंदुस्तान में रहते हो? हम पाकिस्तान में रहते हैं! हिंदुस्तान में रखा क्या है? यह पाक-भूमि है, यह पवित्र-भूमि है। एक सी मूढ़ताएं हैं।
चीनियों से पूछो, तो वे कहते हैं, हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन है। और हिंदुओं से पूछो, तो वे कहते हैं, हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन है। और मिश्रियों से पूछो, तो वे कहते हैं, तुम हो क्या हमारे सामने, हम बहुत प्राचीन हैं। सब अपनी किताबों को प्राचीन सिद्ध करते हैं, सब अपने झंडों को ऊंचा करते हैं--झंडा ऊंचा रहे हमारा! जो भी तुम्हें कभी आदमी मिल जाए झंडा लिए हुए, समझ लेना पागल है। और जो कहे झंडा ऊंचा रहे हमारा, समझना कि इस आदमी के पास बुद्धि नाम की चीज ही नहीं है। झंडा ऊंचा रहे हमारा! इससे ज्यादा मूढ़ता की और क्या बात होगी? मगर इस पर झगड़े हो जाते हैं, युद्ध हो जाते हैं। लोग मारे जाते हैं, कट जाते हैं--मातृभूमि पर हमला हो गया। मेरी मातृभूमि!
शांडिल्य कहते हैंः इस तरह की भ्रांतियां और-और जगह भी देखी जाती हैं,
यह कोई भक्ति नहीं है। देश-भक्ति भक्ति नहीं है। और न ही देवता की भक्ति भक्ति है। फिर भक्ति क्या है? शांडिल्य कहते हैंः भक्ति तो सिर्फ एक है-- विराट के साथ तुम लीन हो जाओ, जैसे बूंद सागर में गिर जाती है। अनाम में अनाम हो जाओ! उसके साथ सेतु जोड़ लो। दावेदार मत बनो तुम, दावेदार बन कैसे सकते हो? जब तक दावा है तब तक दूरी है, जब तक दूरी है तब तक भक्ति कहां!
देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्!
ईश्वर में भक्ति के सिवाय... ईश्वर अर्थात न हिंदू का, न मुसलमान का; न जैन का, न बौद्ध का; न हिंदुस्तान का, न चीन का; ईश्वर यानी वह अनाम परम तत्व जिससे हम सब आए और जिसमें हम सब एक दिन लीन हो जाएंगे; जो हमारा स्रोत है और हमारा गंतव्य है; जो हमारा बीज है और जो हमारा फल है; जिसमें हम इस क्षण भी जी रहे हैं; जो हममें अभी भी सांस फूंक रहा है; जो हमारा प्राणों का प्राण है; उस परात्पर में लीन हो जाने का नाम भक्ति है।
पराभक्ति है परम की, परात्पर की घोषणा। मेरा-तेरा वहां नहीं। मैं ही वहां नहीं है तो तेरा तो हो नहीं सकता। मेरा देवता, मेरा भगवान, ऐसी वृत्ति क्षुद्र है। जो भगवान सबका नहीं, वह भगवान ही नहीं। जो भगवान किसी का है, उसी मात्रा में कम भगवान हो गया। शब्दों से ऊपर उठो। क्षुद्र सीमाओं को

तोड़ो। इन सीमाओं के कारण ही तुम कष्ट में हो। विस्तार से, विराट से आनंद उपजेगा। तुम क्षुद्र से अपने को बांध रहे हो। छोटे-छोटे बिलों में घुस गए हो--वहां तड़प रहे हो, और निकलते भी नहीं, और बिल को छोटे से छोटा करते चले जाते हो; आखिर में तुम्हीं बचते हो, सिर्फ तुम्हारा अहंकार ही बचता है आखिर में। अगर छोटे होते चले जाओगे तो अहंकार ही बचेगा आखिर में, अगर बड़े होते चले जाओगे तो सब बचेगा, अहंकार भर नहीं बचेगा। और ये दो ही संभावनाएं हैं--या तो मैं, या सर्व। सर्व के लिए मैं को समर्पित कर दो। और मैं है भी व्यर्थ। मैं है भी झूठा। लेकिन झूठ से हमारा मोह ज्यादा है। हम सत्य को समर्पित करने को तैयार हैं, झूठ को छोड़ने को नहीं। इस झूठ से हमारे बड़े लंबे संबंध हैं, बड़े पुराने संबंध हैं। इसी झूठ को हम नये-नये ढंग से स्थापित करते चले जाते हैं। नई-नई तरकीबें खोज लेते हैं, नये-नये निमित्त खोज लेते हैं, मगर झूठ पुराना है, वही का वही है।
तुम देखो, अपने भीतर जांच करना, तुम जिन-जिन बातों की घोषणा करते हो कि
यह श्रेष्ठ, वहां अपने मैं को छिपा हुआ पाओगे। वेद श्रेष्ठ, जब कोई कहे, तो तुम जान ले सकते हो कि यह आदमी हिंदू है। बाइबिल श्रेष्ठ, तो तुम जान सकते हो कि यह आदमी ईसाई है। क्योंकि आदमी अपनी ही श्रेष्ठता की घोषणाएं करते हैं--बहाने कुछ भी हों। अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो वेद की श्रेष्ठता की घोषणा कर रहा है, वेद शायद पढ़ा ही न हो।
एक बार एक वृद्ध सज्जन मुझे मिलने आए, अमृतसर के निवासी थे। कहने लगे, वेद तो परम है। आर्यसमाजी थे। मैंने उनसे पूछा, वेद आपने कभी पढ़ा? थोड़ा तिलमिलाए। कहा कि नहीं, पढ़ा तो नहीं। तो मैंने कहा, घोषणा कैसे कर रहे हैं? सामने ही आलमारी में वेद की किताब रखी थी, मैं वह निकाल कर लाया, मैंने उनसे कहा, कोई भी पन्ना खोलिए और एक पन्ना पढ़ डालिए--जोर से। वे कहने लगे, क्यों? मैंने कहा, उससे सिद्ध हो जाएगा कि श्रेष्ठता क्या है। जो पन्ना खुल जाए! यह भी नहीं कहता कि कोई खास पन्ना। उन्होंने किताब खोली और एक पन्ना पढ़ा--बीच में ही रुक गए। क्योंकि वेद में निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। हीरे हैं, मगर मुश्किल से कहीं-कहीं। क्योंकि वेद सिर्फ हीरों का संग्रह नहीं है, उस दिन की सारी बातों का संग्रह है। अखबार में भी कभी-कभी हीरा मिल जाता है। वेद उस दिन का अखबार है। उस दिन का इतिहास भी उसमें है, उस दिन की कविता भी उसमें है, उस दिन का पुराण भी उसमें है, उस दिन का धर्म, दर्शन भी उसमें है, उस दिन के... उस दिन जो भी था उस सबकी झलक उसमें है। उसमें हीरे ही हीरे नहीं हो सकते। उस दिन की राजनीति, कूटनीति, धोखाधड़ी, सब उसमें है। वह उस दिन का दर्पण है। यही तो उसकी खूबी है।
एक पन्ना पढ़ा, बीच में ही रुक गए, कहने लगे कि यह तो मैंने सोचा ही नहीं
था कि इस तरह की बातें... । तुमने भी नहीं सोची होंगी कि वेद में कोई ब्राह्मण प्रार्थना कर रहा है परमात्मा से कि मेरी गाय के थन बड़े हो जाएं! तुम कहोगे--यह कोई बात हुई? और यहीं तक बात नहीं रुकती, मेरे दुश्मन की गाय के थन छोटे हो जाएं।
मगर मैं कहता हूं, यह वेद सिर्फ प्रतिफलन है मनुष्य का। ऐसा आदमी है। वेद ईमानदार है। मैं तो प्रशंसा करता हूं इस बात की कि वेद ईमानदार है। उसने बताया कि आखिर ऋषि भी तुम्हारे तुम जैसे ही हैं। उनके भी पैर मिट्टी के हैं, और उनकी खोपड़ी में भी तुमसे कुछ ऊंची बातें नहीं उठतीं। उनकी प्रार्थनाएं भी क्षुद्र आकांक्षाओं से भरी हैं, कि मेरे खेत में वर्षा ज्यादा हो जाए, और पड़ोसी के खेत में बिल्कुल न हो। यही तो तुम भी चाहते हो कि तुम्हारे खेत में वर्षा हो जाए और पड़ोसी के खेत में वर्षा न हो। यही तो आदमी की सामान्य आकांक्षा है।
मैंने सुना है, एक आदमी ने बहुत भक्ति की, बहुत भक्ति की और परमात्मा प्रकट हुआ, उसने कहा, मांग ले तू क्या मांगता है! उसने कहा, जो मैं मांगूं, वह मुझे मिल जाए। परमात्मा ने कहा, ठीक! लेकिन एक शर्त मेरी भी, तुझसे दुगना तेरे पड़ोसियों को मिल जाएगा। तू जो मांग वह तुझे मिलेगा, मगर तत्क्षण तुझसे दुगना तेरे पड़ोसियों को मिल जाएगा।
उस आदमी ने छाती पीट ली, उसने कहा कि मार डाला! भगवान तो तिरोहित हो गए। अब वह आदमी बड़ी मुश्किल में। मांगना चाहे कि लाख रुपये चाहिए, मगर लाख

मांगे तो पड़ोसियों को दो लाख मिल जाएंगे! आखिर उसने किसी वकील की तलाश की। वकील तो मिल ही जाते हैं। उसने खोजा किसी को कि कोई तरकीब निकालो, इस शर्त में से कुछ रास्ता निकालो। एक वकील ने कहा, इसमें क्या रखा है! तू मांग कि तेरे घर के सामने एक कुआं खुद जाए। उसने कहा, इससे क्या होगा? उसने कहा, पड़ोसियों के सामने तू पहले कुआं तो खुदने दे! उसने मांगा कि मेरे घर के सामने एक कुआं खुद जाए। कुआं खुद गया--और पड़ोसियों के सामने दो-दो कुएं। और वकील ने कहा, अब तू मांग कि मेरी एक आंख फूट जाए। पड़ोसियों की दो-दो आंखें फूट गईं। और सामने दो-दो कुएं! तो जो गति हो गई उस गांव की! मगर वह आदमी बड़ा प्रसन्न था। घूमता था बस्ती में--अकेला ही बचा, अंधों में कनवा राजा--और लोग तड़प रहे हैं, कुओं में गिरे हैं, वह देख रहा है मजा, कि यह रहा मजा! भगवान ने भी न सोचा होगा कि वकील रास्ता निकाल लेंगे। लेकिन उस आदमी
ने लाख रुपये नहीं मांगे सो नहीं मांगे। उसने महल मांगना चाहा था, वह नहीं मांगा। मांगने का मजा ही चला गया। मांगने का मजा ही इसमें है कि पड़ोसी से ज्यादा तुम्हारे पास हो।
तो वह जो वेद की ऋचा है वह मनुष्य की सहज, स्वाभाविक, पाशविक, क्षुद्र आकांक्षा की प्रतीक है। मैं तो कहता हूं यह सुंदर है। मगर वे वेद के पोषक एकदम बेचैन हो गए। उन्होंने कहा, मैंने तो नहीं सोचा था इस तरह की छोटी बातें वेद में होंगी।
इस तरह की छोटी बातें बाइबिल में भी हैं। इस तरह की छोटी बातें कुरान में भी हैं। मगर जो जिस शास्त्र की घोषणा करता है, वह हर चीज को ठीक सिद्ध करना चाहता है। शायद इसी डर से वह पढ़ता भी नहीं कि कहीं कुछ ऐसा मिल जाए कि जिससे मेरी श्रेष्ठता की घोषणा में अड़चन पड़े, पढ़ने-वढ़ने की झंझट में भी नहीं पड़ता। लोग लड़ने को तैयार होते हैं, पढ़ने को कौन तैयार है!
तुम अपने भीतर जांचना, निरीक्षण करना, जब भी तुम किसी बात की घोषणा करते हो कि यह ठीक, यह श्रेष्ठ, तो क्या परोक्षरूपेण तुम अपने अहंकार की घोषणा नहीं कर रहे हो? और जहां अहंकार की घोषणा है, वहीं पाप है। और जाग कर धीरे-धीरे अपने अहंकार की सारी घोषणाओं को विलीन कर दो। जिस दिन तुम्हारे अहंकार की सारी घोषणाएं जा चुकी होंगी, उस क्षण तुम पाओगे भगवान से संबंध होना शुरू हुआ। फिर न वेद बाधा है, न बाइबिल, न कुरान; फिर न कृष्ण, न राम, न अल्लाह। फिर तुम्हें दिखाई पड़ेगा वह, लाओत्सु कहता है--उसका क्या नाम है, मुझे मालूम नहीं, काम चलाने को "ताओ" कहता हूं। फिर काम चलाने को तुम "राम" कह लेना, कोई हर्जा नहीं है। मगर काम चलाने को, याद रहे, भूल मत जाना, कि यह काम चलाने की बात है।
योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।
"और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भांति भक्ति और ज्ञान का अंग स्वरूप है।"
और शांडिल्य कहते हैं कि जैसे ज्ञान समझ हो तो सहयोगी हो सकता है भक्ति में... समझ हो तो, ज्ञान अपने आप में सहयोगी नहीं होता। समझ लेना ठीक से! समझ हो तो जहर भी अमृत हो सकता है। और ज्ञान जहर है! जरा भी नासमझी की तो औषधि नहीं रह जाएगी; उसी से व्याधि पैदा हो जाएगी। ज्ञान समझपूर्वक हो। समझ का मतलब ही यह हैः यह बात याद रहे कि जो मैंने नहीं जाना है वह सिर्फ जानकारी है। यह बात याद रहे कि औरों ने जाना है, मुझे खोजना है अभी।
ज्ञान से प्यास जगे सत्य की, तब तो समझ। और ज्ञान से तृप्ति होने लगे
कि पा लिया, जान लिया, तो मृत्यु। तो तुम मारे गए। तो तुमने आत्महत्या कर ली। ज्ञान की फांसी लगा ली। ज्ञान में बोध होना चाहिए। यह याद सदा ही रहे कि यह मेरा जाना हुआ नहीं है। बुद्ध ने कहा है। बुद्ध ने कहा है तो ठीक ही कहा होगा। शांडिल्य ने कहा है। शांडिल्य ने कहा है तो ठीक ही कहा होगा। लेकिन मैं नहीं जानता हूं। और जब तक मैं नहीं जानता हूं, मैं कैसे गवाह बनूं? मुझे खोजना है अभी। और शांडिल्य ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, नारद ने कहा है, कृष्ण ने कहा है, इतने लोगों ने कहा है तो खोजना होगा। फिर बैठूं न, जीवन गंवाऊं न, मैं भी इस खोज पर निकलूं। और इन सबने कहा कि परम आनंद है उस उपलब्धि से, तो मेरा जीवन ऐसे ही रेगिस्तान न रह जाए, मरूद्यान बनाऊं, एक बगिया लगाऊं, फूल खिलाऊं। मगर मेरे फूल खिलेंगे तभी गवाही दे सकूंगा, तभी

कह सकूंगा बुद्धों से कि हां, ठीक कहा है। जब तक मेरे फूल न खिलेंगे तब तक तुम्हारी बात सुन कर अपनी प्यास को जगाऊंगा, अपनी खोज को त्वरा दूंगा, तीव्रता लाऊंगा, और भी बल लगाऊंगा, अपनी सारी ऊर्जा समर्पित कर दूंगा कि जब इतने महापुरुषों ने कहा है तो पाने योग्य कुछ होगा, खोजूं, लेकिन जब तक स्वयं न पा लूं तब तक यह न कहूंगा कि मैंने जान लिया है। क्योंकि वह तो झूठ होगा। वह तो ज्ञान के साथ अन्याय होगा। ज्ञान अगर बोधपूर्वक हो तो भक्ति में सहयोगी बन जाता है।
शांडिल्य कहते हैंः ऐसे ही योग भी सहयोगी बन जाता है, अगर समझपूर्वक हो।
योग बड़ी महिमापूर्ण प्रक्रिया है, साधन है। योग साध्य नहीं है, भक्ति साध्य है। ज्ञान साध्य नहीं है, भक्ति साध्य है। ज्ञान का उपयोग कर लेना प्यास जगाने के लिए। और योग का क्या उपयोग करोगे? योग का उपयोग करना अपने को शुद्ध करने के लिए। परमात्मा के आने के पूर्व तैयारी करनी होगी न! घर में मेहमान आता है तो स्वच्छता करते हो न! झाडू-बुहारी लगाते हो न! कूड़ा- कर्कट साफ करते हो न! योग वही है। उस परम प्रिय को पुकारा है तो घर की तैयारी कर लेनी जरूरी है। उसके योग्य आसन बिछाओगे न! उसके योग्य स्वच्छता चाहिए, पुनीतता चाहिए, पवित्रता चाहिए। धूप-दीप जलाओगे न! वही योग है। योग का इतना ही अर्थ हैः जो कल्मष है, उसे धो डालूं। जो दीवालें गंदी हो गई हैं मेरे जीवन के अनाचरण से, मेरे जीवन के अज्ञान से, मेरे जीवन की मूर्च्छा से, वे सब धब्बे साफ कर डालूं। स्वच्छ कर लूं घर, ताकि उसे असुविधा न हो। जब तुम्हारे पात्र में अमृत भरने को हो, तो जो जहर के दाग लग गए हैं उन्हें छुड़ाओगे न! बस वही है योग। समझ हो तो योग की प्रत्येक प्रक्रिया अनूठी है। शुद्धि का अपूर्व मार्ग है। तुम्हारे रोएं-रोएं को शुद्ध कर जाएगी, पुनीत कर जाएगी, पावन कर जाएगी। तुम्हें तैयार कर जाएगी, तुम्हें मंदिर बना देगी, जिसमें कि विराजमान हो सके परमात्मा। तुम्हें सिंहासन बना देगी, जिस पर वह हृदयों का सम्राट आए और बैठे।
मगर अक्सर ऐसा होता है कि समझ है कहां! ज्ञान इकट्ठा करके आदमी पंडित
हो जाता है, प्रज्ञावान नहीं होता। और योग की प्रक्रियाओं में पड़ कर आदमी गोरखधंधे में पड़ जाता है। बस वह फिर व्यर्थ की बातें ही करता रहता है। आसन लगाए रहता है, आसन जमाए जाता है, उलटे-सीधे व्यायाम करता रहता है, सिर के बल खड़ा होता रहता है; धीरे-धीरे यही उसकी जीवनचर्या हो जाती है, वह भूल ही जाता है कि मेहमान को भी बुलाना है। वह मंदिर ही बनाने में इतना मशगूल हो जाता है कि मेहमान द्वार पर भी आकर खड़ा हो जाए तो भी वह आंख उठा कर नहीं देखता, वह मंदिर ही बनाने में लगा रहता है। वह सफाई ही करता रहता है। सफाई का फिर कोई अंत नहीं है। फिर तुम करते ही चले जाओ।
यह देह पूर्ण शुद्ध तो हो ही नहीं सकती। यह देह अशुद्धि से बनी है। शुद्ध हो सकती है, पूर्ण शुद्ध कभी नहीं हो सकती। स्वस्थ हो सकती है, पूर्ण स्वस्थ कभी नहीं हो सकती। पूर्णता का देह से संबंध नहीं जुड़ सकता। देह तो अपूर्ण रहेगी, सीमा में बंधी रहेगी। इसमें तो व्याधियां-आधियां रहेंगी। समाधि इसमें फलानी है। इसलिए जितनी व्याधियां कम हों, उतना अच्छा। लेकिन तुम इसी फिक्र में मत पड़ जाना कि जब सब व्याधियां समाप्त हो जाएंगी तब देखेंगे समाधि। तो फिर तुम कभी न देख पाओगे समाधि को। एक व्याधि हटेगी, दूसरी पैदा होगी; दूसरी हटेगी, तीसरी पैदा होगी।
इसी से तो गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ, वह गोरखनाथ से पैदा हुआ। गोरखनाथ महायोगी हुए। उन्होंने योग की प्रक्रियाओं का जैसा प्रयोग किया, किसी ने कभी नहीं किया था। पतंजलि भी देखते तो सिर ठोंक लेते! क्योंकि गोरखनाथ ने बड़ी प्रक्रियाएं, कृच्छ साधनाएं खोजीं। सुबह से लेकर सांझ तक लगे ही रहते थे--और दूसरों को भी लगाए रखते थे। उसी से गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ। भूल ही गए असली बात, इसी में लग गए; गौण में उलझ गए।
अगर समझ हो, तो गौण में मत उलझना। और ख्याल रखना, गोरखनाथ स्वयं उलझ गए, ऐसा नहीं है। गोरखनाथ के मानने वाले उलझ गए। गोरखनाथ ने तो जो प्रक्रियाएं दी थीं--यद्यपि बहुत प्रक्रियाएं दी थीं--वह अलग-अलग साधकों के लिए दी थीं। किसी को एक प्रक्रिया दी थी, किसी को दूसरी दी थी, किसी को

तीसरी दी थी। धीरे-धीरे यह हुआ कि साधकों को तो लोभ पैदा होता है, उन्होंने सोचा कि फलां फलां कर रहा है, फलां फलां कर रहा है, हम भी सब कर डालें। यहां शिविर में तुम पांच ध्यान करते हो। उनमें से एक चुन लेना है। वे सिर्फ चुनाव के लिए हैं। एक सज्जन मेरे पास आए कुछ महीने पहले, उनकी हालत बहुत खराब हुई जा रही है, कहने लगे कि ध्यान से बड़ी हालत खराब हुई जा रही है।
मैंने पूछा कि कौन सा ध्यान करते हो?
उन्होंने कहा, कौन सा क्या, दस ध्यान करता हूं। जितने आपने बताए हैं,
सब करता हूं। सुबह चार बजे से लेकर रात बारह बजे तक लगा ही रहता हूं।
हालत तो खराब हो ही जाएगी! मेरा कसूर नहीं है। मैंने तुमसे कहा कब कि तुम सब करना? और सब करोगे तो और कब बचेगा कुछ करने को? भगवान को आने की थोड़ी-बहुत जगह भी दोगे, वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा? कभी तुम कुंडलिनी कर रहे, कभी तुम सक्रिय कर रहे, और कभी तुम नादब्रह्म कर रहे, और कभी तुम सूफी कर रहे, और कभी तुम कुछ कर रहे, वह बाहर ही खड़ा रहेगा कि भई, तुम चुको, तुम्हारी झंझट से मुक्त होओ, तो मैं भी आऊं, दो बात तुमसे कर लूं! मगर तुम्हें फुर्सत कहां है? थक जाओगे, तब सो जाओगे। सुबह फिर उठोगे, फिर अपने गोरखधंधे में लग जाओगे।
यह गोरखधंधा हो गया! गोरखनाथ ने गोरखधंधा नहीं दिया था, गोरखनाथ ने तो अलग-अलग साधकों को अलग-अलग प्रक्रियाएं दी थीं। मगर लोभ पकड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस प्रक्रिया से न मिले, तो उससे मिल जाए, उससे न मिले तो उससे मिल जाए, सभी कर डालो। आदमी बड़ा लोभी है। उस लोभ से गोरखधंधा पैदा हुआ। अज्ञानी जो भी करेगा उसमें से कुछ न कुछ उपद्रव निकाल लेता है। तुम इससे सावधान रहना।
शांडिल्य कहते हैंः योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।
"और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भांति भक्ति और ज्ञान का अंग स्वरूप है।"
जब कोई यज्ञ करता है तो पहले यज्ञ की तैयारी करनी होती है। उस तैयारी
का नाम है प्रयाज--पूर्व तैयारी, भूमिका। हवनकुंड बनाना होगा, भूमि शुद्ध करनी होगी, बंदनवार बांधने होंगे--वह सब जो तैयारी है, उसका नाम प्रयाज। बिना तैयारी के तो यज्ञ नहीं हो सकेगा। ऐसे ही, शांडिल्य कहते हैं, भक्ति तो यज्ञ है, योग प्रयाज है--पूर्व तैयारी, भूमिका। मगर भूमिका ही है। भूमिका में ज्यादा मत उलझ जाना।
अगर तुमने जार्ज बर्नार्ड शॉ की कोई किताब देखी है, तो तुम चकित होओगे, किताब से बड़ी भूमिका है। किताब है सौ पन्ने की, भूमिका दो सौ पन्ने की। अब भूमिका का मतलब ही यह होता है कि उसमें सार-इशारा होना चाहिए, किताब के संबंध में कुछ संकेत होना चाहिए, ताकि जो आदमी किताब पढ़ने को उत्सुक है, वह दो पन्ने भूमिका के पढ़ कर यह सोच ले कि यह मेरे काम की है या नहीं। अब दो सौ पन्ने भूमिका के पढ़ने हैं। इससे तो सौ पन्ने की किताब ही सीधी पढ़ लेना ज्यादा सस्ता है। लेकिन बर्नार्ड शॉ को वैसी आदत थी--बहुत लोगों को वैसी आदत है। उनकी भूमिका लंबी होती है। अक्सर वे भूल ही जाते हैं कि भूमिका में ही जीवन व्यतीत हो जाता है। ऐसे बहुत लोग हैं जो सुख से जीना चाहते हैं; सुख से जीने के लिए धन इकट्ठा करने में लगते हैं; फिर धन ही इकट्ठा करते-करते मर जाते हैं, सुख से जीने का मौका ही नहीं आता; भूमिका ही पूरी नहीं होती।
सिकंदर सारी दुनिया को जीत कर सुख से जीना चाहता था। मगर सारी दुनिया
को जीत कर। फकीर डायोजनीज ने उससे कहा था कि मेरी समझ में यह तर्क नहीं आता। सुख से ही जीना है न! तो अभी क्यों नहीं सुख से जीते? सिकंदर ने कहा, अभी कैसे जी सकता हूं? पहले दुनिया जीतनी है! डायोजनीज ने कहा, अभी क्यों नहीं जी सकते? मैं जी रहा हूं! और मैंने पूरी दुनिया नहीं जीती। पूरी दुनिया की तो बात और, जो मेरे पास था वह भी मैंने छोड़ दिया, क्योंकि उससे झंझट होती थी। देखो मैं मजे में लेटा हूं--वह लेटा ही था नग्न, नदी के तट पर, धूप ले रहा था सुबह की--उसने सिकंदर से कहा, तुम क्यों परेशान होते हो? इस

टीन के पोंगरे में मैं रहता हूं, इसमें जगह काफी है, इसमें एक कुत्ता भी रहता है, मैं भी रहता हूं, तुम भी रह सकते हो।
वह जो म्युनिसिपलिटी का कचरा इकट्ठा करने के लिए टीन का बड़ा डब्बा रखा होता है, वही डब्बा उसको मिल गया था, एक पुराना डब्बा, म्युनिसिपलिटी ने फेंक दिया होगा, उसने उसी को साफ कर लिया, वह उसी में रहने लगा था; नदी के किनारे उसको रख लिया था; जब छाया की जरूरत होती, अंदर चला गया; जब धूप की जरूरत होती, बाहर आ गया। एक भिक्षापात्र उसके पास था केवल। वह भी उसने एक दिन फेंक दिया। क्योंकि एक दिन पानी पीने जा रहा था नदी की तरफ अपना भिक्षापात्र लिए, उसी के साथ-साथ एक कुत्ता भागता हुआ आया। इसके पहले कि वह पात्र में पानी भरे, कुत्ते ने झटके से जल्दी से अपनी जीभ से सीधा-सीधा पानी पी लिया। उसे बड़ी हार मालूम हुई। उसने कहा, कुत्ता हमसे आगे निकल गया! हम नाहक यह भिक्षापात्र लिए फिरते हैं! इसके पास कोई पात्र वगैरह भी नहीं है, यह हमसे महात्यागी है। उसने वहीं नदी में पात्र बहा दिया। उसने कहा, जब कुत्ता चला लेता है काम, तो हम भी चला लेंगे। वह उसकी आखिरी संपदा थी। उसने सिकंदर को कहा कि उस दिन से मेरे पास कुछ है ही नहीं, मगर मैं बड़े मजे में हूं। और निश्चित वह मजे में था! उतना मस्त आदमी लोगों ने देखा नहीं। वह यूनान का महावीर है। नग्न था और मस्त था।
एक बार कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया एक जंगल में। मस्ती देख कर और नग्न देख कर उन्होंने सोचा कि अच्छा है, बाजार में बेच देंगे। उन दिनों गुलाम बिकते थे। जब उन्होंने उसे पकड़ा तो उसने जल्दी से अपने हाथ उनके सामने कर दिए। वे तो बड़े हैरान हुए, क्योंकि उन्होंने सोचा था कि यह झंझट-झगड़ा करेगा तो चार को पस्त कर देगा। मगर उसने जल्दी से हाथ कर दिए और उसने जल्दी से जंजीरें डलवा लीं। उसने कहा, तुम नाहक जंजीर डाल रहे हो, तुम कहां जाना चाहते हो, मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं; जंजीर काहे को तुम झंझट करते हो! वह उनके साथ हो लिया। रास्ते में जो भी मिलता, उसको लोग नमस्कार करते, वे चार तो उसके गुलाम जैसे मालूम पड़ते। किसी ने पूछा कि ये लोग कौन हैं? उसने कहा, ये मेरे गुलाम हैं। उन्होंने कहा, तुम बात क्या कर रहे हो? उसने कहा, तुम देख लो, कोई से भी पूछ लो, मालिक कौन मालूम पड़ रहा है? तुम चोर जैसे मालूम पड़ते हो, मैं मालिक हूं।
फिर उसे वे बाजार ले गए। वहां बाजार में जब उसे तख्ती पर खड़ा किया गया, जिस पर खड़े होकर गुलाम बिकते थे--उसने जोर से आवाज लगाई कि एक मालिक आज बिकने आया है, किसी गुलाम को खरीदना हो तो खरीद ले! और था भी वह आदमी मालिक। उसकी शान वैसी थी! जिसकी कोई इच्छा न रही हो वह मालिक हो ही जाता है। उसकी गरिमा!
लेकिन सिकंदर ने कहा कि ठीक तुम कहते हो कि मैं भी आराम कर सकता हूं, मगर मुश्किल है। पहले तो मैं दुनिया जीतूंगा। डायोजनीज ने कहा, तो तुम एक बात मेरी याद रखना, दुनिया तो शायद जीतोगे कि नहीं, मगर आराम कभी न कर पाओगे। दुनिया जीतने के पहले मर जाओगे।
और यही हुआ। सिकंदर जब हिंदुस्तान से वापस लौटता था तो यूनान वापस नहीं पहुंच पाया, रास्ते में मर गया। जिस दिन मरा, उस दिन उसे डायोजनीज की याद आई। उस दिन उसकी आंख से आंसू गिरे। और किसी ने पूछा कि तुम क्यों रोते हो? उसने कहा, मैं उस फकीर के लिए रोता हूं, उसने ठीक कहा था, वह आदमी सच कहता था।
भूमिका में ही जिंदगी निकल जाती है।
तो योग को कहीं इतना मत पकड़ लेना कि नौली, धोती, और आसन, व्यायाम, और प्राणायाम, और करते-करते ही मर जाओ। योग भूमिका है, समाधि लक्ष्य है। न मालूम कितने लोग भूमिका में ही मर जाते हैं। समाधि पर ध्यान रखना।
शांडिल्य ठीक कहते हैं कि योग का उपयोग हो सकता है सहयोग की तरह।
गौण्यातु समाधिसिद्धिः।
"गौणी भक्ति के द्वारा समाधि की सिद्धि होती है।"
दो तरह की भक्तियां शांडिल्य ने कही हैं--गौणी भक्ति और पराभक्ति।
गौणी भक्ति का अर्थ होता हैः अभी भक्त मौजूद है, भगवान मौजूद है, दोनों आमने-सामने खड़े हैं; रस बह रहा है, अपूर्व आनंद है, मस्ती बंधी है, लौ से लौ

मिल गई है; मगर अभी द्वैत कायम है; गौणी भक्ति। पराभक्ति का अर्थ हैः भगवान भक्त में खो गया, भक्त भगवान में खो गया, अब दो नहीं।
पहली जो गौणी भक्ति है, उससे जो समाधि मिलती है, पतंजलि का शब्द उपयोग करें तो उसका नाम है--सबीज समाधि। और जो पराभक्ति है, उसके लिए पतंजलि का शब्द उपयोग करें तो उसका नाम है--निर्बीज समाधि। सबीज समाधि में बीज अभी कायम है; वृक्ष खो गया, लेकिन बीज अभी कायम है। मौका पाकर बीज से फिर वृक्ष पैदा हो सकता है। गौणी भक्ति से जो समाधि मिलती है, वह खो सकती है। तुम भगवान के सामने खड़े हो, लेकिन अभी दूरी है, चाहे इंच भर की दूरी हो, मगर दूरी है। और जो इंच भर की दूरी है, वह मील की दूरी हो सकती है, योजनों की दूरी हो सकती है, फिर दूरी बढ़ सकती है, फिर भेद पैदा हो सकता है, फिर भटकाव हो सकता है। अभी बीज कायम है, द्वैत कायम है। तो या तो उसे सबीज समाधि कहें--अभी गिरना हो सकता है। या सविकल्प समाधि कहें--अभी विचार कायम है, अनुभव हो रहा है कि आनंद आ रहा है, मैं हूं और मुझे आनंद आ रहा है।
जब तक तुम्हें ऐसा लगे कि आनंद आ रहा है, तब तक समझना--गौणी भक्ति, छोटी समाधि; अभी अनुभव करने वाला शेष है। फिर अंतिम चरण में होती है--पराभक्ति; बीज भी मिट गया, बीज दग्ध हो गया, अब कभी लौटना न हो सकेगा, अब कोई वापसी नहीं होगी, संसार समाप्त हुआ। अब अनुभव भी नहीं हो सकता कि मैं आनंद में हूं--मैं ही नहीं हूं, आनंद ही आनंद है। इसलिए गौणी भक्ति से तो अनुभव होता है, पराभक्ति में अनुभव नहीं होता।
कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं कि वह जो परमदशा है, उसको अनुभव नहीं कहा जा सकता। उसे ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। उसे दर्शन भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दर्शन, ज्ञान, अनुभव, सभी में दो की अपेक्षा है--जानने वाला अलग होता है जाना जाने वाले से; ज्ञेय अलग होता है ज्ञाता से; द्रष्टा अलग होता है दृश्य से। उस परमदशा में द्रष्टा और दृश्य एक है। वह पराभक्ति, वह निर्बीज समाधि, निर्विकल्प समाधि। वही लक्ष्य है।
गौणी भक्ति से समाधि की सिद्धि हो सकती है। लेकिन उससे तृप्त मत हो जाना। उससे भी पार जाना है। ऐसी जगह जाना है जिसके पार और जाना न रहे। उस स्थिति को पाना है जिसके पार और कोई स्थिति नहीं है। फूल ही बन कर समाप्त मत हो जाना--फूल यानी गौणी भक्ति; अभी आकार है, अभी रूप है, अभी रंग है; सुवास होकर समाप्त होना। सुवास मुक्त हो गई आकार से, रूप से, रंग से। सुवास आकाश में लीन हो गई। सुवास आकाश हो गई। उसे शांडिल्य ने पराभक्ति कहा है। गौणी भक्ति में भक्त और भगवान होते हैं और भक्ति होती है, पराभक्ति में न कोई भक्त होता, न कोई भगवान होता, बस भक्ति होती है, भगवत्ता होती है।
ऐसे ये अपूर्व सूत्र हैं। शांडिल्य को सुन कर तुममें प्यास जगे, इसलिए इन सूत्रों की व्याख्या कर रहा हूं। ज्ञान न जमा लेना। ज्ञान जमा लिया, चूक गए। प्यास जगाना। तुम्हारे भीतर गहन आकांक्षा उठे, अभीप्सा जगे, एक लपट बन जाए कि पाकर रहूं, कि इस अनुभव को जान कर रहूं, कि इस अनुभव को जाने बिना जीवन अकारथ है। ऐसी ज्वलंत आग तुम्हारे भीतर पैदा हो जाए तो दूर नहीं है गंतव्य। उसी आग में अहंकार जल जाता है। उसी आग में बीज दग्ध हो जाता है और तुम्हारे भीतर जन्मों-जन्मों से छिपी हुई सुवास मुक्त आकाश में विलीन हो जाती है। उसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, जो नाम देना चाहो दो-- उसका कोई नाम नहीं है।
लाओत्सु ठीक कहता है, उसका कोई नाम नहीं है, काम चलाने को "ताओ" कहता हूं।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 आठवां प्रवचन

प्रीति की पराकाष्ठा भक्ति है

पहला प्रश्नः मनुष्य की आस्था धर्म से क्यों उठ गई है?

धर्मों के कारण ही। धर्मों का विवाद इतना है, धर्मों की एक-दूसरे के साथ छीना-झपटी इतनी है, धर्मों का एक-दूसरे के प्रति विद्वेष इतना है कि धर्म धर्म ही न रहे। उन पर श्रद्धा सिर्फ वे ही कर सकते हैं जिनमें बुद्धि नाममात्र को नहीं है। अब सिर्फ मूढ़ ही पाए जाते हैं मंदिरों में, मस्जिदों में। जिसमें थोड़ा भी सोच-विचार है, वहां से कभी का विदा हो चुका है। क्योंकि जिसमें थोड़ा सोच-विचार है, उसे दिखाई पड़ेगा कि धर्म के नाम से जो चल रहा है वह धर्म नहीं, राजनीति है; कुछ और है।
जीसस चले जब जमीन पर तो धर्म चला; पोप जब चलते हैं तो धर्म नहीं चलता, कुछ और चलता है। बुद्ध जब चले तो धर्म चला; अब पंडित हैं, पुजारी हैं, पुरोहित हैं, वे चलते हैं। उनके चलने में वह प्रसाद नहीं। उनकी वाणी में अनुभव की गंध नहीं। उनके व्यक्तित्व में वह कमल नहीं खिला जो प्रतीक है धर्म का। उनके हृदय बंद हैं और उतनी ही कालिख से भरे हैं जितने किसी और के, शायद थोड़े ज्यादा ही।
धर्म के नाम पर वैमनस्य है, ईर्ष्या है, हिंसा है, खून-खराबा है। मस्जिद और मंदिर ने इतना लड़वाया है कि कोई भरोसा भी करना चाहे तो कैसे करे? और शास्त्र सब आज नहीं कल झूठे हो जाते हैं। सत्य तो शास्ता में होता है, शास्त्रों में नहीं। सत्य तो बुद्ध में है, धम्मपद में नहीं; मोहम्मद में है, कुरान में नहीं। यद्यपि कुरान मोहम्मद से पैदा हुई है। तो जब तक कुरान मोहम्मद के ओंठों पर थी, तब तक उसमें मोहम्मद की श्वास थी, मोहम्मद की प्राण-ऊर्जा प्रतिफलित होती थी; जैसे ही शब्द मोहम्मद के ओंठों से हटे, मुर्दा हो गए; स्रोत से टूटे, कुछ के कुछ हो गए। फिर तुम्हारे हाथ में पड़े, तुमने उन्हें वह अर्थ दिया जो तुम दे सकते हो। तुम वह अर्थ तो कैसे दोगे जो मोहम्मद देना चाहते थे? मोहम्मद हुए बिना वह अर्थ नहीं दिया जा सकता। वह अर्थ मोहम्मद के होने में है। तुमने अपने अर्थ दिए। तुम्हारे अर्थ किसी प्रयोजन के नहीं। लाभ तो नहीं हो सकता, हानि सुनिश्चित होगी।
अनातोले फ्रांस का प्रसिद्ध वचन है कि कोई बंदर अगर दर्पण में झांकेगा तो बंदर को ही पाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजरता था। एक दर्पण पड़ा हुआ मिल गया। उसने कभी दर्पण नहीं देखा था। उठा कर देखा, खुद की तस्वीर दिखाई पड़ी। खुद की तस्वीर कभी देखी नहीं थी, सोचा कि हो न हो मेरे पिता की तस्वीर है। पिता को देखा था। पिता को तो मरे हुए वक्त हो गया था। सोचा, मगर हद्द हो गई, यह मैंने कभी सोचा न था कि वे इतने रंगीन तबीयत के थे कि तस्वीर बनवाएंगे! पोंछ-पांछ कर, सम्हाल कर घर ले आया; छुपा कर रख दिया एक संदूक में। पत्नी चुपचाप देखती रही--जैसे पत्नियां देखती हैं--कि क्या कर रहा है! शक उसे हुआ कि कुछ गड़बड़ है, कुछ दाल में काला है। जब चला गया नसरुद्दीन तो उसने खोली संदूक, तस्वीर उठा कर देखी, अपना चेहरा दिखाई पड़ा। तो उसने कहा, अच्छा, तो इस खडूस के पीछे दीवाना है! उसने भी कभी अपनी तस्वीर न देखी थी।
दर्पण में वही दिखाई पड़ता है जो तुम हो। शास्त्रों में भी वही दिखाई पड़ता है जो तुम हो। जिसके हाथ में शास्त्र पड़ा, उसका ही हो गया। मोहम्मद के हाथ में जब तक था, तब तक कुरान थी; तुम्हारे हाथ में पड़ी, कुछ की कुछ और हो गई। और फिर तुम्हारे हाथों से भी चलती रही। हजारों साल बीत जाते हैं, एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे हाथ से तीसरे हाथ, गंदी होती चली जाती है। किताबें गंदी हो जाती हैं।
ध्यान रहे, इस जगत में प्रत्येक चीज का जन्म होता है और प्रत्येक चीज
की मृत्यु होती है। धर्म तो शाश्वत है। लेकिन कौन सा धर्म? वह धर्म जो जीवन का धारण किए है, वह शाश्वत है। लेकिन बुद्ध ने जब कहा, कहा शाश्वत को ही, लेकिन जब विचार में बांधा तो शाश्वत समय में उतरा। और समय के भीतर कोई

भी चीज शाश्वत नहीं हो सकती। समय के भीतर तो पैदा हुई है, मरेगी। जन्मदिन होगा, मृत्यु भी आएगी। जब कोई सत्य शब्द में रूपायित होता है, तो सबसे पहले लोग उसका विरोध करते हैं। क्यों? क्योंकि उनकी पुरानी मानी हुई किताबों के खिलाफ पड़ता है। खिलाफ न पड़े तो कम से कम भिन्न तो पड़ता ही है। लोग विरोध करते हैं।
सत्य का पहला स्वागत विरोध से होता है--पत्थरों से, गालियों से। सत्य पहले विद्रोह की तरह मालूम होता है। खतरनाक मालूम होता है। बहुत सूलियां चढ़नी पड़ती हैं सत्य को, तब कहीं स्वीकार होता है। लेकिन वे सूलियां चढ़ने में ही समय बीत जाता है और सत्य जो संदेश लाया था वह धूमिल हो चुका होता है। जब तक तुम सत्य को स्वीकार करते हो, तब तक वह सत्य ही नहीं रह जाता। इतनी देर लगा देते हो स्वीकार करने में; लड़ने-झगड़ने में, विवाद में इतना समय गंवा देते हो कि तब तक सत्य पर बहुत धूल जम जाती है। धूल जम जाती है तभी तुम स्वीकार करते हो। क्योंकि तब सत्य तुम्हारे शास्त्र जैसा मालूम होने लगता है। तुम्हारे शास्त्र पर भी धूल जमी है बहुत।
जब बुद्ध पहली दफा बोले, तो जो गीता को मानते थे उन्होंने विरोध किया,
जो वेद को मानते थे उन्होंने विरोध किया, बुद्ध दुश्मन की तरह मालूम पड़े, संघातक। फिर धीरे-धीरे बुद्ध के वचनों पर भी धूल जम गई, धम्मपद ने भी धूल इकट्ठी कर ली; जब धम्मपद पर धूल की पर्त इकट्ठी हो गई, तो धूल और धूल तो सब एक जैसी होती हैं, उसके नीचे क्या दबा है--वेद दबा है, कि धम्मपद, कि कुरान-- क्या फर्क पड़ता है? जब धूल की पर्त खूब गहरी हो जाती है, तब तुम्हारा मन भर जाता है, तब तुम कहते हो--अब ठीक है, अब अपने शास्त्र जैसा लगने लगा।
एक मकान पर एक आदमी ने दस्तक दी। वह कुछ किताबें बेचने लाया था। उसने
घर की महिला से कहा कि यह नया से नया निकला हुआ शब्दकोश है, खरीद लें, बच्चों के काम आएगा, और बड़ों के भी काम का है। महिला उसे टालना चाहती थी। उसने कहा, शब्दकोश हम क्या करेंगे? वह रखा है शब्दकोश, टेबल पर; हमारे पास शब्दकोश है, धन्यवाद! लेकिन वह भी एक ही आदमी था, उसने कहा, टेबल पर जो रखा है वह शब्दकोश नहीं है, बाइबिल है। वह स्त्री तो बड़ी हैरान हुई; क्योंकि टेबल दूर कोने में रखी थी, उतनी दूर से दिखाई भी नहीं पड़ता था कि बाइबिल हो सकती है। उसने कहा, तुमने कैसे जाना? उसने कहा, धूल जमी है, उसी से पता चलता है। शब्दकोश को तो कोई कभी उलटता-पलटता भी है, बाइबिल को कौन खोलता है?
जब धूल जम जाती है शास्त्रों पर समय की, जब शास्त्र परंपरा बन जाता है,
जब शास्त्र सत्य को जन्माता नहीं, सत्य की कब्र बन जाता है, तब तुम स्वीकार करते हो--इसीलिए तुम स्वीकार करते हो। कब्रें कब्रें सब एक जैसी होती हैं। कब्रों में क्या फर्क! जिंदा आदमियों में फर्क होते हैं। कब्रों में तो सिर्फ नाम का ही फर्क रह जाता है, कि किसकी कब्र, पत्थर पर लिखा होता है, बस इतना ही फर्क होता है। और तो कोई फर्क नहीं होता। धम्मपद जब कब्र बन जाता है तो गीता की कब्र और कुरान की कब्र और वेद की कब्र से कुछ फर्क नहीं होता। तब तुम स्वागत कर लेते हो। तुम पुराने का स्वागत करते हो।
सत्य जब नया होता है तब सत्य होता है। जितना नया होता है, उतना सत्य होता है। क्योंकि उतना ही ताजा-ताजा परमात्मा से आया होता है। जैसे गंगा गंगोत्री में जैसी स्वच्छ है, फिर वैसी काशी में थोड़े ही होगी! हालांकि तुम काशी जाते हो पूजने! काशी तक तो बहुत गंदी हो चुकी, बहुत नदी-नाले गिर चुके, बहुत अर्थ मिश्रित हो चुके, न मालूम कितने मुर्दे बहाए जा चुके। काशी तक आते-आते तो गंगा अपवित्र हो गई, कितनी ही पवित्र रही हो गंगोत्री में। जैसे वर्षा होती है, तो जब तक पानी की बूंद ने जमीन नहीं छुई, तब तक वह परम शुद्ध होती है; जैसे ही जमीन छुई, कीचड़ हो गई, कीचड़ के साथ एक हो गई। बुद्ध जब जानते हैं, या शांडिल्य जब जानते हैं, जब उनकी समाधि में परमात्मा झलकता है, तब ऐसी बूंद है जो अभी आकाश से पृथ्वी की तरफ चली--अभी आई नहीं। जब शांडिल्य बोलते हैं, तो पृथ्वी की धूल मिलने लगी। शब्द पृथ्वी के हैं, सत्य आकाश का है। फिर तुमने सुना, फिर दर्पण तुम्हारे हाथ में पड़ा, फिर उसमें तुम्हें जो दिखाई पड़ता है वह तुम्हारा ही चेहरा है। फिर धीरे- धीरे पर्त दर पर्त धूल इकट्ठी होती जाती है। जब धूल काफी हो जाती है--उसी धूल को हम कहते हैं परंपरा। सत्य की कोई परंपरा होती है? सत्य की कोई

परंपरा नहीं होती। सत्य का कोई संप्रदाय होता है? सत्य का कोई संप्रदाय नहीं होता। लेकिन जब सत्य संप्रदाय बन जाए, अर्थात मर जाए, सड़ जाए, गल जाए, लाश हो जाए, तब तुम उसे छाती से लगाते हो। तुम्हारा लाशों से प्रेम इतना गहरा है, तुम जिंदा आदमी को मार लेते हो तब प्रेम करते हो।
तो पहले तो सत्य का अवतरण होता है विद्रोह की तरह। जब सत्य मरने लगता
है, तब धीरे-धीरे कुछ लोग स्वीकार करते हैं। जब बिल्कुल मर जाता है, तो सभी लोग स्वीकार करते हैं। तब सत्य विश्वास बन जाता है।
फिर और एक पतन होता है। यह तो तब की बात है जब बुद्ध के आस-पास लोग सुनते हैं, विरोध करते हैं, अंगीकार करते हैं। फिर बुद्ध को बीते ढाई हजार साल हो गए, फिर एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देती चली जाती है। जिन्होंने बुद्ध से सुना था, या जिन्होंने कम से कम बुद्ध को देखा था, उन्हें कुछ भी सत्य की भनक कान में पड़ी होगी, बुद्ध के व्यक्तित्व का थोड़ा सा स्पर्श हुआ होगा, बुद्ध का रंग थोड़ा उनकी आत्मा पर पड़ा होगा, छाया पड़ी होगी--कितनी ही कम, लेकिन पड़ी होगी। फिर उनके बेटे और उनके बेटों के बेटे इसलिए मानते हैं कि पिता मानते थे, पिता के पिता मानते थे, सदा से लोग मानते रहे हैं, तब विश्वास अंधविश्वास हो जाता है। और जिनको तुम धर्म कहते हो, वे अंधविश्वास हैं। उन्हें कभी का विदा हो जाना चाहिए।
सत्य के रोज नये संस्करण आकाश से उतरते हैं। रोज नई कुरान उतरती है। परमात्मा थक नहीं गया है, मोहम्मद पर चुक नहीं गया है। न ईसा परमात्मा के अकेले बेटे हैं--जैसा ईसाई कहते हैं, इकलौते बेटे। और न चौबीस तीर्थंकरों पर परमात्मा समाप्त हो गया है। हजारों बुद्ध हुए हैं, हजारों बुद्ध होते रहेंगे। परमात्मा रोज आता रहा है, रोज आता रहेगा, लेकिन बीते परमात्मा से तुम्हारा छुटकारा हो तो तुम नये को समझ पाओ। पुरानी प्रतिमाएं तुमने इतनी इकट्ठी कर ली हैं--राम की, कृष्ण की, बुद्ध की--कि जब नया संस्करण परमात्मा का आता है तो तुम्हें अड़चन आती है, जगह ही नहीं मिलती, कहां रखो! और उस नये में ही श्रद्धा पैदा हो सकती है, क्योंकि उसी नये में चिनगारी है। वही चिनगारी तुम्हारे भीतर पड़ जाए तो तुम्हारे जीवन-यज्ञ को प्रज्वलित करे। तुम राख की पूजा कर रहे हो, इसलिए चिनगारी पर श्रद्धा कैसे आए? फिर राख की पूजा करते-करते तुम भी ऊब जाते हो, कुछ होता नहीं, फिर श्रद्धा खो जाती है। तुमने पूछाः "मनुष्य की आस्था धर्म से क्यों उठ गई है?"
धर्मों के कारण। अन्यथा मैंने ऐसा मनुष्य नहीं देखा जो किसी न किसी रूप में जाने-अनजाने धर्म की खोज न करता हो। ऐसा मनुष्य होता ही नहीं। धर्म की खोज मनुष्य की अंतर्निहित खोज है। वह स्वाभाविक है। जैसे भूख लगती है हर आदमी को, और हर आदमी को प्यास लगती है, और हर आदमी को प्रेम की आकांक्षा जगती है, वैसे ही हर आदमी को प्रभु की आकांक्षा भी जगती है। नाम कुछ भी हों।
एक युवक ने कुछ दिन पहले मुझे आकर कहा कि मुझे परमात्मा में कोई उत्सुकता नहीं है, मैं तो यहां आनंद पाने आया हूं। तो मैंने कहा, तुम पागल हो; तुमने परमात्मा का नाम आनंद रखा है। आनंद से चलेगा। नाम का ही भेद है। आनंद कहो। सदा से उपनिषद के ऋषि कहते रहे हैंः सच्चिदानंद। सत-चित-आनंद।
चलो, तुम आनंद कहो। कोई सत कहता है, कोई चित कहता है, कोई तीनों इकट्ठे जोड़ लेता है। तुम्हें जो नाम देना हो।
कोई आकर कहता है कि मुझे शांति की तलाश है। तो तुम शांति कहो। तलाश परमात्मा की है। तलाश अंतिम की है। तलाश उसकी है जिसने सबको सम्हाला है। तलाश उसकी है जिससे हम आए हैं और जिसमें हमें जाना है। तलाश उसकी है कि जो मिल जाए तो जीवन में अर्थ आए, सुगंध आए, नृत्य आए, उत्सव आए। उसी का नाम परमात्मा है। उस तत्व का नाम परमात्मा है जिसके आने से जीवन में अंधेरा टूट जाता है और रोशनी होती है। जिसके आने से उदासी कट जाती है, थकान मिट जाती है, तुम पुनरुज्जीवित हो उठते हो। उस तत्व का नाम है जिसके आने से फिर मृत्यु नहीं घटती, अमृत ही घटता है। शांडिल्य ने कहा न कि जो उसके साथ एक हो जाता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

तुमने ऐसा आदमी देखा जो अमृत न चाहता हो? जो न चाहता हो कि मृत्यु के पार भी जीऊं? कि मृत्यु आए और मैं न मरूं? जिसके भीतर शाश्वत के साथ संबंध जोड़ लेने की प्रबल आकांक्षा न हो, ऐसा आदमी देखा? ऐसा आदमी होता ही नहीं। तो धर्म से तो श्रद्धा उठ ही नहीं सकती, लेकिन धर्मों से उठ जाती है। अच्छा ही है। मैं तुम्हें एक बात याद दिला देना चाहता हूं, जिनकी धर्मों से श्रद्धा उठ जाती है, वे ही धार्मिक हो सकते हैं। मेरे देखे नास्तिक ही आस्तिक हो सकता है। जो झूठी आस्तिकता में उलझे रह जाते हैं, वे कभी आस्तिक नहीं हो पाते। झूठी आस्तिकता असली शत्रु है आस्तिकता की, नास्तिकता नहीं। नास्तिक तो कहता है--मैंने देखा नहीं, मैं कैसे मानूं? यह तो ईमानदारी की बात हुई। देखा नहीं, कैसे मानूं? देखूंगा तो मानूंगा। नास्तिक कहता है-- दिखा दो तो मानूं। परमात्मा मिले तो बराबर मानूं। इसमें कहां बुराई है? निर्भीक स्वर है, साहस है, खोज की तैयारी है। असल में जो खोज से बचना चाहते हैं वे कहते हैं--हो या न हो, हमें क्या लेना-देना! कौन सिर मारे! आप कहते हो कि है, होगा, जरूर होगा। यह बचने की तरकीब है, यह पाने की तरकीब नहीं है। मंदिरों-मस्जिदों में तुम्हें झूठे धार्मिक लोग मिलेंगे। सच्चे धार्मिक की तो कभी की श्रद्धा उठ जाती है मंदिर-मस्जिदों से। सच्चा धार्मिक बुद्ध को खोजता है, शांडिल्य को खोजता है, नारद को खोजता है; कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को खोजता है। सच्चा धार्मिक मंदिर-मस्जिदों में पंडित-पुजारियों को नहीं खोजता। जिनको खुद ही पता नहीं है, वे दूसरे को कैसे जनाएंगे? जिनके जीवन में खुद ही कोई किरण नहीं है, जिनके दीये खुद बुझे पड़े हैं, उनके पास भी पहुंच जाओगे तो तुम्हारे दीये को ज्योति कैसे मिलेगी? सच्चा धार्मिक गुरु को खोजता है, सिद्धांत नहीं खोजता। क्योंकि कोई मिल जाए, जो जुड़ा दे। कोई ऐसा मिल जाए, जिसने जाना हो, जिसके माध्यम से सेतु बन जाए।
लेकिन मंदिर-मस्जिद तुम्हें परंपरा से मिलते हैं, पंडित-पुजारी तुम्हें परंपरा से मिलते हैं। तुम्हें पता ही नहीं कि तुमने उन्हें कभी चुना था। तुम्हें बिना चुने मिलते हैं। बच्चा पैदा हुआ नहीं कि हम चले उसे लेकर, कि चलो जाकर बपतिस्मा करवा दें, कि चलो खतना करवा दें, कि चलो जनेऊ डलवा दें, हम चले! अभी बच्चे को कुछ भी पता नहीं है, उससे हमने पूछा भी नहीं है। और हम जिनके पास ले जा रहे हैं उनके पास हम भी इसी तरह ले जाए गए थे, हमने भी नहीं जाना है। जो पिता अपने बच्चे को ले जा रहा है चर्च की तरफ, उसने अगर चर्च में जाना हो तो भी ठीक है--तब तो ठीक ही है। उसने चर्च में जाकर जाना, उसे जीवन का आनंद मिला, जीवन का रस बहा, वह अपने बेटे को भी भागीदार बनाना चाहता है। लेकिन उसे भी नहीं मिला है, उसके पिता उसे ले गए थे; उसके पिता को भी नहीं मिला था; याद ही नहीं पड़ता कि कभी किसी को पीछे कब मिला था। अंधे अंधों को मार्ग दिखा रहे हैं। अंधा अंधा ठेलिया, दोई कूप पड़ंत। नानक ने कहा हैः अंधे अंधों को ठेल रहे हैं।
तुम ईसाई बन गए, यह तुम्हारा चुनाव नहीं; तुम हिंदू बन गए, यह तुम्हारा चुनाव नहीं; तुम्हारी श्रद्धा हो तो कैसे हो? तुमने इस श्रद्धा के लिए दांव पर क्या लगाया है? तुमने कीमत क्या चुकाई?
जो आदमी जीसस के पास जाकर उनका अनुयायी बना था, उसने कीमत चुकाई थी, उसने खतरा मोल लिया था। जीसस को सूली लगी थी, उनके साथ चलने वाले लोगों के भी प्राण उतने ही खतरे में थे। कुछ कीमत चुकानी पड़ती है। जो आदमी बुद्ध के साथ चला था, उसने बहुत अवमानना सही थी।
एक मित्र ने पूछा है कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन ये गैरिक वस्त्र बड़ी अड़चन में डाल देंगे मुझे। नौकरी मुश्किल में पड़ेगी, परिवार झंझट खड़ी करेगा, गांव-समाज के लोग अड़चन डालेंगे।
यह तो होगा। इतनी कीमत तो चुकानी होगी। परमात्मा मुफ्त नहीं मिलता है। और यह भी कोई कीमत है! एक नौकरी जाएगी तो दूसरी मिलेगी। और नहीं भी मिली तो क्या? अगर परमात्मा के रास्ते पर बिना नौकरी के जीना पड़ा तो बेहतर है, भीख मांगनी पड़ी तो बेहतर है। परमात्मा को खोकर तुम सम्राट भी हो जाओ तो तुम भिखारी हो। और परमात्मा को पाकर तुम भिखारी भी रह जाओ तो तुम जैसा सम्राट और कोई नहीं। लेकिन हम छोटी-छोटी बातों से डरते हैं।

यह डर ज्यादा दिन न रहेगा। जल्दी ही बहुत से गैरिक संन्यासी होंगे और
यह भय समाप्त हो जाएगा। लेकिन तब सार भी चला जाएगा। सार अभी है। अभी जो मेरे साथ चलने को तत्पर हैं, उनके जीवन में रूपांतरण होगा। सौ साल बाद बहुत लोग चलने को तैयार होंगे, लेकिन तब तक शास्त्र पर धूल जम गई होगी; तब तक बात खो गई होगी; तुमने अपने ढंग की बना ली होगी। उसके पहले जागो।
इसलिए मैं कहता हूंः जो धार्मिक हैं, या कम से कम धार्मिक होने के लिए आतुर हैं, उनकी श्रद्धा धर्मों से उठ जाती है। उनकी ही उठती है, क्योंकि उनकी तृप्ति नहीं होती। जिसको प्यास लगी है, उसे तुम पानी की तस्वीर बताओ-- सुंदर सरोवर, हरे वृक्षों से ढंका, बतखें तैरती हुई--प्यारी तस्वीर दिखाओ, वह आगबबूला हो जाएगा। वह कहेगा, मैं प्यासा हूं, तस्वीरें मत दिखाओ! जिसको प्यास नहीं लगी, वह बड़ा प्रसन्न होगा, वह कहेगाः सुंदर तस्वीर है, मढ़वा लूंगा, अपने घर पर टांगूंगा; बड़ी सुंदर है, बड़ी प्यारी है। तो पानी ऐसा होता है। सुंदर हुआ कि तुम ले आए। बड़ी कृपा है। जिसे भूख लगी है, उसे तुम पाकशास्त्र की किताब दो कि इसमें सब है, सब भोजन तैयार करने की विधियां लिखी हैं। वह किताब तुम्हारे सिर पर मारेगा; वह कहेगा, मुझे भूख लगी है, पाकशास्त्र का क्या करूंगा? जिसे परमात्मा की प्यास जगी है, वही तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों से घबड़ा जाता है; वही तुम्हारे पुरोहितों की बकवास से ऊब जाता है; वही उनके व्यर्थ के वितंडा और व्यर्थ के सिद्धांतों के ऊहापोह से ऊब जाता है; वही पीठ फेर लेता है; वही है नास्तिक, उसी को तुम कहते हो अश्रद्धालु। लेकिन मेरे देखे, वह श्रद्धा के स्रोत की तरफ चल पड़ा, उसकी खोज शुरू हो गई है।

इक यही सोजे-निहां कुल मेरा सरमाया है
दोस्तो, मैं किसे ये सोजे-निहां नज्र करूं
कोई कातिल सरे-मक्तल नजर आता ही नहीं
किसको दिल नज्र करूं और किसे जां नज्र करूं

तुम भी महबूब मेरे, तुम भी हो दिलदार मेरे आशना मुझसे मगर तुम भी नहीं, तुम भी नहीं खत्म है तुम पे मसीहानफसी चारागरी मरहमे-दर्दे-जिगर तुम भी नहीं, तुम भी नहीं

अपनी लाश आप उठाना कोई आसान नहीं दस्तो-बाजू मेरे नाकारा हुए जाते हैं जिनसे हर दौर में चमकी है तुम्हारी दहलीज आज सज्दे वही आवारा हुए जाते हैं

दूर मंजिल थी मगर ऐसी भी कुछ दूर न थी लेके फिरती रही रस्ते ही में वहशत मुझको एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
दार तक लेके गया शौके-शहादत मुझको

राह में टूट गए पांव तो मालूम हुआ
जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं
एक के बाद खुदा एक चला आता था
कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं

जिसके हृदय में प्यास है, वहां जख्म है, घाव है। वह घाव पंडित-पुरोहितों की मलहम-पट्टी से नहीं भरता। झूठी सांत्वनाओं से नहीं भरता। और मवाद इकट्ठी होती है, और समय जाया होता है। जिसके भीतर घाव है वह तो परमात्मा से मिले बिना तृप्त नहीं होगा। वह तो हटा देगा बीच से सारी मूर्तियों को। वही तो मूर्तिभंजक है। हटा देगा सारे सिद्धांतों और

शास्त्रों को, निकल पड़ेगा तलाश में। वह परमात्मा से कम पर राजी नहीं हो सकता।
एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
दुख तो यही है कि हजारों लोग मंदिर-मस्जिदों में हैं और उनके दिल में कोई जख्म नहीं। नहीं तो बहार कभी की आ जाती। प्यास हो, तो पानी मिल जाता है। मिलेगा ही, क्योंकि खोज होती है। प्यास ही न हो, तो पानी बहता रहे सामने से तो भी दिखाई नहीं पड़ता।
हमें वही दिखाई पड़ता है जिसकी आकांक्षा और अभीप्सा होती है। परमात्मा
तो चारों तरफ खड़ा है--इन हरे वृक्षों में, इन लोगों में, इन आकाश के चांद-तारों में, लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता। हमें आकांक्षा नहीं है। हमें वही दिखाई पड़ता है जो हम चाहते हैं।
तुमने देखा, जब तुम बाजार जाते हो, तो जिस दिन तुम जो खरीदने जाते हो, उसी-उसी की दुकानें तुम्हें दिखाई पड़ती हैं। किसी दिन तुम मिठाई खरीदने गए हो, तो तुम हैरान होते हो कि इतनी मिठाई की दुकानें हैं इस बाजार में! पहले नहीं दिखाई पड़ी थीं! उस दिन तुम्हें चांदी-सोने की दुकानें दिखाई नहीं पड़तीं। उनसे तुम्हें लेना-देना नहीं है। फिर किसी दिन चांदी-सोना खरीदने गए हो, तब तुम हैरान होते हो--इतनी दुकानें! उस दिन मिठाई की दुकानें तिरोहित हो जाती हैं, धूमिल हो जाती हैं। तुम जो खरीदने निकलते हो वही दिखाई पड़ता है।
मंदिर-मस्जिदों में वे लोग बैठे रहते हैं जो परमात्मा को खरीदने नहीं निकले हैं। झूठी सांत्वनाओं में बैठे रहते हैं। नहीं तो आदमी सदगुरु की तलाश में निकलता है।
लेके फिरती रही रस्ते ही में वहशत मुझको
एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
दार तक लेके गया शौके-शहादत मुझको
राह में टूट गए पांव तो मालूम हुआ
जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं
तुम्हारे अतिरिक्त और तुम्हें कोई नहीं बचा सकता। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें और कोई परमात्मा तक पहुंचा नहीं सकता। बुद्धपुरुष इशारा करते हैं, चलना तो तुम्हीं को है।
जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं
मेरे अलावा मेरा मार्गदर्शक और कोई भी नहीं। यह उसी दिन पता चलता है जिस दिन सच्ची प्यास जगती है और तुम खोज में निकलते हो और सब झूठी बातों को रास्ते से हटा देते हो।
एक के बाद खुदा एक चला आता था
कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं
इतने मंदिर-मस्जिद! इतनी मूर्तियां! इतने शास्त्र! इतने सिद्धांत! इतना जंजाल!
कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं
तुम पूछते होः धर्म से श्रद्धा क्यों उठ गई? आस्था क्यों उठ गई?
इसलिए कि धर्म हो तो एक ही हो सकता है। विज्ञान एक है, इसलिए विज्ञान
पर श्रद्धा है। अब तुमने कहीं सुना कि विज्ञान अगर बहुत हो जाएं--हिंदुओं का, मुसलमानों का, ईसाइयों का--और सब अलग-अलग बातें कहने लगें, तो विज्ञान पर भी श्रद्धा उठ जाएगी। विज्ञान पर इतनी श्रद्धा क्यों है? क्योंकि विज्ञान सार्वभौम है, एक ही है। फिर चाहे ईसाई खोजे, चाहे हिंदू, चाहे मुसलमान, कोई फर्क नहीं पड़ता। विज्ञान का सिद्धांत न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, सिर्फ वैज्ञानिक होता है।
यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि धर्म का सिद्धांत सिर्फ धार्मिक होता है; बुद्ध कहें, शांडिल्य कहें, कृष्ण कहें; कौन कहे, इससे फर्क नहीं पड़ता। धर्म का सिद्धांत धार्मिक होता है, जैसे विज्ञान का सिद्धांत वैज्ञानिक होता है। धर्म तो और भी सार्वभौम है। विज्ञान की तो सीमा है, क्योंकि वह पदार्थ पर समाप्त हो जाता है। धर्म की तो असीमा है, क्योंकि वह

आत्मा में ले जाता है, परमात्मा में ले जाता है। धर्म को संकीर्ण दायरों से मुक्त होने दो, श्रद्धा लौट आएगी।
अभी हालत ऐसी है, जिनकी श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं, उनको श्रद्धा है;
और जिनकी श्रद्धा का कुछ मूल्य हो सकता है, उनको कोई श्रद्धा नहीं है। हालत बड़ी अजीब है। मुर्दे बैठे हैं मंदिरों में, जिंदा आदमी कभी के निकल भागे हैं। और वे जिंदा आदमी ही मंदिरों को जिंदा बना सकते थे। लेकिन तुम्हारे मंदिरों की इतनी कतारें घबड़ा देती हैं, बुद्धि तंग आ जाती है। लोग सोचते हैं कि धर्म से आस्था उठ गई है, क्योंकि दुनिया में नास्तिकता बढ़ गई है। गलत सोचते हैं। कि दुनिया में कम्युनिज्म बढ़ गया है। गलत सोचते हैं। कि विज्ञान के प्रभाव ने लोगों के मन में श्रद्धा नष्ट कर दी है। गलत सोचते हैं। धर्म पर श्रद्धा उठ गई है धर्म के नाम पर चलते गहन पाखंड के कारण, धर्म के नाम पर चलते अंधविश्वास के कारण। धर्म ने आत्महत्या कर ली है, इसलिए श्रद्धा उठ गई है।
मगर खोज मरती नहीं, खोज का मंदिरों-मस्जिदों से कुछ रुकाव नहीं होता, खोज जारी है। खोजने वाले खोजते रहते हैं, कोई उन्हें कभी नहीं रोक पाता। वे अपनी खोज में लगे रहते हैं। नाम बदल जाएं, हो सकता है कि भगवान को भगवान कहने में संकोच होने लगे, क्योंकि भगवान शब्द के साथ इतने गलत साहचर्य जुड़ गए हैं; आनंद कहो, ध्यान कहो, समाधि कहो, प्रेम कहो, कुछ नये नाम खोज लो, कुछ फर्क नहीं पड़ता; लेकिन एक बात सुनिश्चित है--आदमी अंधेरे में है और रोशनी चाहता है; आदमी मृत्यु से घिरा है और अमृत का स्वाद चाहता है; आदमी महादुख में है, आनंद का उत्सव चाहता है। वह श्रद्धा अखंड है। उस श्रद्धा को ही मैं धर्म की श्रद्धा कहता हूं। वह न कभी नष्ट हुई है, न कभी नष्ट होगी। जो नष्ट हो जाता है, जो नष्ट हो सकता है, वैसी वह श्रद्धा नहीं। तुम लाख कहो कि मैं अश्रद्धालु हूं, तो भी तुम्हारे भीतर ये तीन बातों की तलाश चलती रहती है-- अंधेरे के पार, दुख के पार, मृत्यु के पार कुछ है, कुछ होना चाहिए। पर्दे के पार कुछ जरूर होना चाहिए। नहीं तो इतना जीवन कहां से आए? कैसे आए? और जीवन कितना सुसंबद्ध चलता है! कोई सूत्र होना चाहिए जो सबको बांधे हुए है। दिखाई नहीं पड़ता, सच है।
तुमने गले में माला पहन रखी है, उसमें मनके तो दिखाई पड़ते हैं, धागा जो
सब मनकों को बांधे है, दिखाई नहीं पड़ता। वही सूत्रधार है। वही परमात्मा है। इतना विराट आयोजन चल रहा है, इसमें कोई सूत्रबद्ध सबको सम्हाले है, नहीं तो ये मनके बिखर जाते कभी के, यह सब गिर जाता। अराजकता नहीं है, एक गहन सुसंबद्धता है; एक संगीत है। यही संगीत प्रमाण है ईश्वर का। तर्क प्रमाण नहीं होते ईश्वर के, यह जीवन की जो संयोजना है, यही प्रमाण है।
उसकी तलाश सदा रही है, सदा रहेगी। नाम बदल जाते तलाश के, लेकिन तलाश जारी रहती है। बहुत रूपों में प्रकट होती है। यह सदी प्रौढ़ सदी है। यह पुरानी सदियों जैसी नहीं है कि किसी ने कहा और मान लिया। यह बचकानी सदी नहीं है। आदमी प्रौढ़ हुआ है, हर कुछ नहीं मान लेगा, वही मानेगा जिसको कसौटी पर कसेगा और ठीक पाएगा। यह सौभाग्य की घड़ी है। अब दुनिया में पाखंड ज्यादा दिन नहीं चलेगा। यह अश्रद्धा, यह अनास्था अच्छी है, सौभाग्य है, शुभ संकेत है, शुभ मुहूर्त है यह। इसलिए इसे शुभ मुहूर्त कहता हूं कि इस अनास्था की आग में पाखंड के सारे जाल जल जाएंगे, धर्म नया होकर निकलेगा, फिर सूरज उगेगा--ताजा। सूरज की तस्वीरों से बहुत दिन मन बहला लिया, अब उनसे मन बहलता नहीं, अब असली सूरज चाहिए, इसलिए अनास्था है।
इससे तुम विषाद मत लेना। इस अनास्था को सीढ़ी बनाओ। इसी सीढ़ी पर चढ़ कर असली आस्था सदा आई है, सदा आती है। और कोई उपाय नहीं है। अनास्था की रात से गुजर कर ही आस्था की सुबह पैदा होती है। और ध्यान रखना, जब रात बहुत-बहुत अंधेरी होती है, तभी सुबह बहुत करीब होती है।

दूसरा प्रश्नः जैसे शांडिल्य ऋषि ज्ञान और योग को भक्ति का सहायक बताते हैं, वैसे ही ज्ञान और योग के प्रस्तोता भक्ति को अपना सहायक मानते हैं या नहीं?

भक्त की दृष्टि ज्ञानी और योगी की दृष्टि से ज्यादा उदार होती है। चूंकि भक्ति का स्रोत है हृदय। हृदय विराट है, अपने से विरोधी को भी समा लेता है। हृदय संगति की चिंता नहीं करता, हृदय संगीत की चिंता करता है। ज्ञान और योग हृदय के मार्ग नहीं हैं, बुद्धि के मार्ग हैं। बुद्धि बड़ी संकीर्ण है। बुद्धि चुनाव करती है। फिर बुद्धि संगति की चिंता करती है, संगीत की नहीं--तर्कयुक्त संगति होनी चाहिए।
तो महावीर के वचनों में भक्ति की गुंजाइश नहीं हो सकती। शुद्ध विचार
का मार्ग है, सम्यक ज्ञान, ठीक ज्ञान का मार्ग है। वहां तो जो ज्ञान को एकदम अनुकूल है वही अंगीकार होगा। ज्ञान चुनाव कर लेता है, छांट लेता है; सुसंबद्ध होता है; रूपरेखा होती है ज्ञान की। भक्त इतना संकीर्ण नहीं होता। भक्त को असंगति में कुछ घबड़ाहट नहीं होती। जैसे तार्किक, दार्शनिक असंगत नहीं होता, लेकिन कवि असंगत होता है।
अमरीका के महाकवि व्हिटमैन को किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओं में बड़ी असंगतियां हैं, कंट्राडिक्शंस हैं, बड़े विरोधाभास हैं। मालूम है व्हिटमैन ने क्या कहा? व्हिटमैन ने कहा, हां हैं, क्योंकि मैं बड़ा हूं, क्योंकि मैं विराट हूं, और मैं विरोधाभासों को आत्मसात कर लेता हूं।
यह कोई तर्कशास्त्री नहीं कह सकता कि मैं विरोधाभासों को आत्मसात कर लेता हूं, कि दिन और रात दोनों के लिए मुझमें जगह है। यह कोई कवि ही कह सकता है। और भक्ति तो कवि का मार्ग है, हृदय का मार्ग है। भक्ति काव्य है।
तुम कविता में संगति नहीं खोजते, संगीत खोजते हो। तुमने भी ख्याल किया होगा, जब तुम किसी कविता को सुंदर कहते हो, तब तुम यही कहते हो कि कविता में बड़ा लालित्य है, बड़ी लय है, बड़ा रस है, बड़ा संगीत है; यह कविता ऐसी है कि गुनगुनाई जा सकती है, गेय है। कविता में तुम सत्य-असत्य की फिक्र नहीं करते, संगीत की फिक्र करते हो। लेकिन गणित में तुम संगीत की फिक्र नहीं करते; तुम ठीक है कि गलत है, संगत है कि असंगत है, इसकी चिंता करते हो। विचार के जो मार्ग हैं, वे तर्कनिष्ठ होते हैं; उनकी निष्ठा तर्क की है। भाव का जो मार्ग है, उसकी निष्ठा तर्क की नहीं है; वह अतर्क्य है, तर्कातीत है। इसलिए शांडिल्य जितनी सरलता से कह देते हैं कि ज्ञान भी सहयोगी है और योग भी भूमिका है, उतनी सरलता से ज्ञानी नहीं कह सकेंगे, योगी नहीं कह सकेंगे; उनका दायरा संकीर्ण होगा। सिर छोटा है, हृदय से बहुत छोटा है।
इसलिए तो सिर में जीने वाले लोग ओछे हो जाते हैं; खोपड़ी ही उनकी दुनिया हो जाती है। हृदय खुले आकाश जैसा है, खोपड़ी तुम्हारे घर का आंगन है। या ऐसा समझो कि खोपड़ी ऐसे है जैसे तुमने एक छोटी सी बगिया लगाई, साफ-सुथरी, कटी-छंटी, लान बनाया, क्यारियां बनाईं, सब सिमिट्री में रखा, समतोल बनाई; इधर एक क्यारी, तो उधर एक क्यारी; इधर एक द्वार, तो उधर एक द्वार। लेकिन भक्ति जंगल की तरह है, बगिया नहीं है, आदमी की बनाई हुई बगिया नहीं है। तो जंगल में तो सभी होगा। वहां तुम सिमिट्री खोजने जाओगे तो नहीं मिलेगी। वहां तो कोई वृक्ष कहां ऊग आएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम यह नहीं कह सकते कि ये दोनों वृक्ष अगर आमने-सामने होते तो अच्छे लगते। वहां तो सब जंगल ही होगा न! आदमी व्यवस्था बनाता है; जंगल में एक स्वतंत्रता है, व्यवस्था नहीं। भक्ति में एक स्वतंत्रता है, ज्ञान उतना स्वतंत्र नहीं। इसलिए धन्यभागी हैं वे जो भक्ति में पग जाएं, जो भक्ति में उतर जाएं।
जो भक्ति में न उतर सकें, उनके लिए कोई संकीर्ण मार्ग चुनना होगा। भक्ति बड़ा पथ है, सबको समा लेता है। क्योंकि भक्ति प्रेम है। प्रीति का तत्व उसका मूल आधार है। ज्ञान में प्रीति का तत्व नहीं है। प्रीति जोड़ती है, विपरीत को भी जोड़ देती है। सच तो यह है, प्रीति विपरीत को ही जोड़ती है। इसलिए तो पुरुष स्त्री के प्रेम में पड़ता है, स्त्री पुरुष के प्रेम में पड़ती है, वह विपरीत है। जितना वैपरीत्य होता है, उतना ही प्रेम सघन होता है।
पश्चिम में स्त्री-पुरुषों के बीच प्रेम कम होता जा रहा है। और कारण? कारण यह है कि स्त्री-पुरुष समान होते जा रहे हैं, उनकी वैषम्यता मिटती जा रही है, तो रस खोता जा रहा है। पुरुष भी वैसे कपड़े पहने है, स्त्री भी वैसे

कपड़े पहने है; पुरुष भी सिगरेट पी रहा है, स्त्री भी सिगरेट पी रही है; पुरुष भी दफ्तर में काम कर रहा है, स्त्री भी दफ्तर में काम कर रही है-- स्त्री की पूरी चेष्टा है कि वह ठीक जैसा पुरुष है वैसी ही होनी चाहिए। इसलिए पश्चिम की स्त्री थोड़ी कम स्त्रैण होती जा रही है। उसका स्त्रैण-तत्व कम होता जा रहा है। और जैसे-जैसे स्त्रैण-तत्व कम होता जा रहा है, वैसे-वैसे पुरुष का रस उसमें कम होता जा रहा है। पूरब की स्त्री में ज्यादा स्त्रैण-तत्व है। और इसलिए पूरब की स्त्री ज्यादा आकर्षक है। उतना वैपरीत्य है, पुरुष से भिन्नता है। भिन्नता में रस होता है।
प्रीति का तत्व विपरीत को जोड़ता है--जितने विपरीत हों, उतने ज्यादा गहराई से जोड़ता है। उतनी ही बड़ी चुनौती होती है प्रीति के तत्व को कि वह जोड़े। इस जगत को जिस तत्व से परमात्मा ने जोड़ा है उस तत्व का नाम प्रीति है। क्योंकि इस जगत में बड़े विरोधाभास हैं, लेकिन सब जुड़ा है। दिन और रात जुड़ी है, अंधेरा-रोशनी जुड़ी है, मृत्यु-जीवन जुड़ा है, अपूर्व जोड़ है; यह जोड़ सिर्फ प्रीति से ही हो सकता है। यह प्रीति ही है जो विपरीत को बांध सकती है।
अगर भक्तों से पूछो तो भक्त यही कहेंगेः यह सारा अस्तित्व प्रीति के तत्व से जुड़ा है, निबद्ध है। नहीं तो यह गिर पड़े, सब उखड़ जाए, सब टूट जाए। विपरीत में बड़ा आकर्षण होता है।
तो शांडिल्य तो चूंकि प्रीति के उपदेष्टा हैं, उन्होंने योग को भी समाहित कर लिया, ज्ञान को भी समाहित कर लिया। करना ही चाहिए! इससे प्रमाण मिलता है कि जरूर उन्होंने प्रीति को जाना होगा। प्रीति को न जाना होता तो यह बात नहीं हो सकती थी।
तुम ज्ञानी से पूछो, तुम कृष्णमूर्ति से पूछो। कृष्णमूर्ति शुद्ध ज्ञान हैं, वहां प्रीति का तत्व जरा भी नहीं है। तुम कृष्णमूर्ति से पूछो कि भक्त के संबंध में क्या ख्याल है? वे कहेंगे, सब कल्पना-जाल। इससे ज्यादा जगह नहीं हो सकती, कल्पना-जाल! सब मन के ही खेल! भक्ति से मुक्त होना पड़ेगा, सहयोग भक्ति का नहीं लिया जा सकता, भक्ति बाधा है। बंधन है, उसी से तो अटकाव है। तुम पतंजलि को पूछो। प्रेम के तत्व के लिए कोई जगह नहीं रह जाती, क्योंकि सारा गणित का हिसाब है। प्रेम को बीच में क्यों लाना? प्रेम के लाने से झंझट होती है।
वैज्ञानिक भी प्रेम को बीच में नहीं लाता। तुम वैज्ञानिक की सुनो, वैज्ञानिक क्या कहता है? वैज्ञानिक कहता है, अगर तुम्हें सत्य का निरीक्षण करना हो तो निष्पक्ष होना, तटस्थ होना, भाव से आंदोलित मत होना, नहीं तो तुम्हारा भाव तुम्हारे सत्य की प्रतीति को डांवाडोल कर देगा। जब एक वैज्ञानिक निरीक्षण करता होता है प्रयोगशाला में तो वह अपने को बिल्कुल अलग-थलग कर लेता है, वह तटस्थ खड़ा होता है। कवि इस तरह खड़ा नहीं होता। कवि जब गुलाब के खिले फूल को देखता है तो आनंदमग्न हो जाता है, भावमुग्ध हो जाता है, नाचने लगता है, गुनगुनाने लगता है, उसके भीतर तरंग उठती है। जब वनस्पतिशास्त्री इसी गुलाब के फूल को देखता है, वह न तो गुनगुनाता, न नाचता, क्योंकि वह नाचे और गुनगुनाए तो यह प्रमाण होगा कि वह वनस्पतिशास्त्री नहीं है, वह वैज्ञानिक नहीं है। वैज्ञानिक का मतलब ही यह है कि तुम अपने को बिल्कुल दूर रखो, अपने को बीच में मत डालो, अन्यथा तुम जो बीच में डाल रहे हो, उसके कारण ही सत्य को न जान पाओगे।
अब फर्क समझते हो?
कवि कहता है कि अपने को अगर तुमने जोड़ा नहीं फूल से, तो जानोगे कैसे? दूर-दूर रहे, तटस्थ रहे, अपने को बचाए रहे; न फूल को तुम्हारे हृदय में प्रवेश मिला, न तुम्हारा फूल में प्रवेश हुआ, जोड़ ही न बना, आलिंगन न हुआ, नाचे नहीं फूल के साथ, फूल की तरंग में मस्त न हुए, मादकता आई ही न, तो तुम जानोगे कैसे फूल को? फूल अपना हृदय ही नहीं खोलेगा तुम्हारे सामने, फूल अपना घूंघट न उठाएगा। तुम दूर खड़े रहे तो फूल भी दूर खड़ा रह जाएगा, यह कवि कहता है। तुम बढ़ो तो फूल भी बढ़े। तुम पास आओ तो फूल भी पास आए। तुम एक कदम चलो तो फूल भी एक कदम चले। तुम अकड़े खड़े रहे कि मैं तटस्थ, तो फूल भी तटस्थ रह जाएगा, घूंघट पड़ा रहेगा, फूल अपने हृदय को तुम्हारे सामने खोलेगा नहीं,

फूल अपने रहस्य को प्रकट नहीं करेगा। तब तुम जो जानोगे वह व्यर्थ होगा, ऊपरी होगा, परिधि का होगा; सार नहीं होगा उसमें, आत्मा नहीं होगी उसमें, फूल का अस्तित्व अपरिचित रहेगा। इसलिए कवि कहता है कि वैज्ञानिक कितना ही जान ले जगत को, उसका जानना ऊपरी-ऊपरी है, बाहर-बाहर है।
जैसे कोई किसी राजमहल में आए और बाहर ही बाहर दीवालों का चक्कर लगा कर, निरीक्षण करके चला जाए, राजमहल के भीतर कभी प्रवेश न करे। और महल भीतर है। बाहर की दीवालें महल नहीं हैं। बाहर की दीवालें तो महल का अंत हैं, वहां महल समाप्त होता है। महल तो भीतर है, महल का सौंदर्य भीतर है, महल का मालिक भीतर है, मालकिन भीतर है, महल का सारा राज भीतर है। बाहर की दीवालों को देख कर गुजर कर चले गए, तो तुम कुछ खबर ले जाओगे, कुछ तस्वीरें ले जाओगे, वे महल की ही होंगी, मगर बाहर से होंगी। और बाहर और भीतर में बड़ा भेद है। विज्ञान बाहर-बाहर भटकता है। तर्क और गणित बाहर-बाहर रह जाते हैं। प्रेम छलांग लगाता है। प्रेम तटस्थ नहीं होता, प्रेम अपने को निमज्जित कर देता है, डुबकी मार जाता है। ज्ञान तैरता है, प्रेम डुबकी मारता है। तो ज्ञान खूब तैर सकता है, दूर-दूर की यात्रा कर सकता है, लेकिन गहराई में उसकी पहुंच नहीं हो पाती।
और ध्यान रखना, जिसने गहराई को जाना, वह बाहर को भी अंगीकार कर लेगा। क्योंकि वह जानता है कि बाहर भी उसी भीतर का हिस्सा है। लेकिन जिसने बाहर को जाना, वह भीतर को अंगीकार नहीं करेगा, क्योंकि भीतर को उसने जाना ही नहीं, अंगीकार कैसे करे?
ज्ञान का मार्ग संकीर्ण है, भक्ति का मार्ग विराट है। अगर भक्तों से तुम्हारा जोड़ मिल जाए, तो फिर तुम किसी और की चिंता मत करना। न मिले दुर्भाग्यवश, तो फिर तुम कोई और मार्ग खोजना। प्रार्थना बन सकती हो, प्रेम बन सकता हो, तो चूकना मत; क्योंकि वह सुगमतम है, स्वाभाविक है। स्नेह तुम्हारे भीतर है, थोड़ा-बहुत प्रेम भी तुम्हारे भीतर है, थोड़ी-बहुत श्रद्धा भी तुम्हारे भीतर है, इन्हीं को थोड़ा निखार लेना है, फिर ये प्रीति बन जाएंगे। और प्रीति की ही अंतिम पराकाष्ठा भक्ति है।
भक्ति के मार्ग पर तुम्हारे पास संपत्ति पहले से कुछ है, तुम एकदम भिखारी नहीं हो। कुछ है तुम्हारे पास, थोड़ा निखारना है, थोड़ा साफ-सुथरा करना है जरूर, लेकिन कुछ तुम्हारे पास है। ज्ञान के मार्ग पर तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। वहां तो तुम्हें अ ब स से शुरू करना पड़ेगा। ज्ञान का मार्ग आदमी की खोज है और भक्ति का मार्ग प्रभु का प्रसाद है। वह तुम्हें दिया ही हुआ है।

तीसरा प्रश्नः क्या भक्त भी कभी भगवान से झगड़ता है?

भक्त ही झगड़ता है! और कौन झगड़ेगा? भक्त ही झगड़ सकता है! और तो किसकी इतनी सामर्थ्य होगी? भक्त को भय नहीं होता। प्रेम में कहां भय है?
इसलिए मैं कहता हूंः तुलसीदास का वचन गलत है, जो उन्होंने कहा--भय बिन होई न प्रीति। तुलसीदास को प्रीति का पता नहीं है। जहां भय है, वहां प्रीति कैसी? और जो भय के कारण होती है प्रीति, वह कुछ और होगी, प्रीति नहीं है। कोई डंडा लेकर खड़ा है और तुमसे कहता है, प्रेम करो मुझे! करोगे तुम, क्योंकि डंडा देख रहे हो, नहीं तो सिर खोल देगा। मां बेटे से कह रही है कि मुझे प्रेम करो, मैं तेरी मां हूं! और नहीं तो दूध नहीं दूंगी, भूखा मर जाएगा। बेटा भी सोचता है कि प्रेम करना पड़ेगा। यह प्रीति तो भय से हो रही है। बाप कहता है, मुझे प्रेम करो, मैं पिता हूं तुम्हारा! इस जगत में तुम्हारी जो प्रीतियां हैं, वे भय से ही हो रही हैं। तुलसीदास उस संबंध में सच हैं। लेकिन ये प्रीतियां कहां हैं? ये तो पाखंड हैं। ये तो थोथी बातें हैं, जबर्दस्ती ओढ़ ली हैं। इनमें सत्य नहीं है, प्रामाणिकता नहीं है। असली प्रीति भय से नहीं होती। और जहां प्रीति होती है, वहां भय नहीं होता। उनका एक साथ समागम नहीं होता।
तो भक्त तो लड़ता है, जब जरूरत होती है तो वह लड़ता है। वह लड़ सकता है। प्रेमी लड़ते हैं। लड़ने से प्रेम नष्ट नहीं होता, सघन होता है। जो प्रेम

लड़ने से नष्ट हो जाए, समझो बहुत कमजोर था, था ही नहीं, काम का ही नहीं था, खतम हुआ अच्छा हुआ। हर लड़ाई के बाद जो प्रेम और प्रगाढ़ हो जाता है, वही प्रेम है। हर लड़ने के बाद और एक नया सोपान उपलब्ध होता है प्रेम को। भक्त तो खूब लड़ता है। लड़ने के कारण भी हैं। भक्त का लड़ना एकदम अकारण भी नहीं है।

रात चुपचाप दबे पांव चली जाती है
रात खामोश है, रोती नहीं, हंसती भी नहीं
कांच का नीला सा गुंबद है, उड़ा जाता है
खाली-खाली कोई बजरा-सा बहा जाता है
चांद की किरणों में वह रोज-सा रेशम भी नहीं
चांद की चिकनी डली है कि घुली जाती है
और सन्नाटों की इक धूल उड़ी जाती है
काश! इक बार कभी नींद से उठ कर तुम भी
हिज्र की रातों में यह देखो तो क्या होता है

प्रेमी भी लड़ता है, भक्त भी लड़ता है। उनकी लड़ाई का सार एक है। भक्त कहता हैः मैं इतनी तकलीफ में पड़ा हूं, इतने विरह में पड़ा हूं, कभी तुमको भी विरह सताए तो पता चले!
काश! इक बार कभी नींद से उठ कर तुम भी
हिज्र की रातों में यह देखो तो क्या होता है
तुम्हें पता है कि मैं कितना रो रहा हूं, भक्त कहता है! तुम्हें पता है
कि कितने आंसू गिरा चुका हूं! तुम्हें सुनाई पड़ता है कि तुम बहरे हो? तुम तक खबर पहुंचती है या नहीं पहुंचती है? शायद तुम्हें अनुभव ही नहीं है विरह का कोई!

फिर वही रात, वही दर्द, वही गम की कसक
फिर उसी दर्द ने सीने में जलाया संदल
फिर वही यादों के बजते हैं तिलस्मी घुंघरू
दूधिया चांदनी पहने हुए अंगूरी बदन
और आवाज में पिघली हुई चांदी लेकर
कोई अनजानी-सी राहों से चला आता है
संगेमरमर के तराशे हुए बुत जागते हैं
संगेमरमर के तराशे हुए बुत बोलते हैं
आज की रात वही दर्द की तनहाई की रात
दर्द तनहाई का शायद तुझे मालूम नहीं
काश! इक बार तो तुझको भी यह जहमत होती

प्रेमी भी यही कहता है, भक्त भी यही कहता है कि यह दर्द जो तनहाई का है, एकांत का है, अकेले हो जाने का है, इसका तुझे पता होता! शायद तू इसीलिए नहीं सुन पाता इस रुदन को, इस पुकार को, इस प्यास को, क्योंकि तुझे प्यास का कुछ पता नहीं है, क्योंकि तू कभी रोया नहीं है, तुझे आंसुओं से कुछ मुलाकात-पहचान नहीं है, तुझे हृदय की पीड़ा का कुछ अनुभव नहीं है!
दर्द तनहाई का शायद तुझे मालूम नहीं
काश! इक बार तो तुझको भी यह जहमत होती
इसलिए भक्त के पास कारण हैं कि वह लड़े। नाराजगी के कारण हैं। लेकिन उसकी लड़ाई में बड़ी मिठास है। उसकी लड़ाई उसकी प्रार्थना का एक ढंग है। फिर दोहरा दूं, भक्त की लड़ाई उसकी भक्ति का एक ढंग है, वह उसकी आराधना है। उसकी शिकायत, उसका शिकवा, सब उसकी प्रार्थना है। ऐसा मत समझना कि वह किसी दुश्मनी से ये बातें कहता है। ये बड़े प्रेम से उठती हैं, बड़े गहरे प्रेम से उठती हैं। ये उसकी मिलन की गहरी आतुरता से उठती हैं। और कई बार खोज का रेगिस्तान इतना लंबा होता जाता है और आदमी की इतनी छोटी सी सामर्थ्य है कि अगर भक्त नाराज होकर चिल्लाने लगता है कि आखिर कब? आखिर कब मिलन होगा? कब तक चलता रहूं? पैर टूटे जाते हैं! अब यह बोझ और ढोया नहीं जाता! और रास्ते

का कोई अंत मालूम होता नहीं, और राह है कि बढ़ी जाती है, और रात है कि लंबी हुई जाती है, सुबह का कोई संदेशा मिलता नहीं, कोई किरण भी फूटती मालूम नहीं होती--और कब तक? और कब तक? लेकिन इस सारी शिकायत के पीछे प्यास है, त्वरा है, गहन अभीप्सा है और बड़ा माधुर्य है।

चौथा प्रश्नः नीत्शे ने कहीं कहा है कि संन्यासी एक सूक्ष्म तरह की हिंसा करता है। वह अपनी ऊंचाई से साधारणजनों को दीन-हीन बनाता है, उन्हें आत्मग्लानि के भाव से उत्पीड़ित करता है। हो न हो यही हिंसा उसके संन्यास की प्रेरणा हो। नीत्शे के इस विचार पर कुछ कहने की कृपा करेंगे?

फ्रेड्रिक नीत्शे जब भी कुछ कहे तो विचार-योग्य कहता है। आदमी बड़ी गहराई का था। बुद्ध हो सकता, शांडिल्य हो सकता, ऐसा आदमी था। लेकिन पश्चिम में उसे मार्ग नहीं मिला। जैसा मैं कहता हूं कि नास्तिकता पहला चरण है, नीत्शे महानास्तिक है; पहला चरण तो पूरा हो गया, दूसरा चरण नहीं उठा, नहीं तो महाआस्तिक का जन्म होता।
नीत्शे जब भी कुछ कहता है तो गहरी बात कहता है, सदा ख्याल रखना। मगर अधूरी होती है बात, क्योंकि एक ही कदम उठा, दूसरा कदम नहीं उठा। गहरी होती है, मगर अधूरी होती है। गहरी होती है, काफी दूर तक सही होती है, लेकिन पूरी दूर तक सही नहीं होती।
यही वचन कि संन्यासी एक तरह की सूक्ष्म हिंसा करता है, वह अपनी ऊंचाई
से साधारणजनों को दीन-हीन बनाता है, उन्हें आत्मग्लानि के भाव से उत्पीड़ित करता है, यही हिंसा उसके संन्यास की प्रेरणा है। इसमें सचाई है। पूरी सचाई नहीं है, सचाई है। आधी बात है। इसमें सत्य है इतना, क्योंकि आदमी का अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। धन से भी आदमी अपने अहंकार को भरता है और तप और त्याग से भी। नीत्शे कह रहा है, तो निरीक्षण करके कह रहा है। तुम देख सकते हो अपने तथाकथित संन्यासियों के चेहरे पर दंभ, भयंकर दंभ। भूल से कभी-कभी तुम उसे तप की चमक समझ लेते हो। वह तप की चमक नहीं है, वह अहंकार है--इतना तप किया मैंने! मैं असाधारण हूं! इतना छोड़ा मैंने, इतना त्याग किया, मैं विशिष्ट हूं! मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं।
तुम्हारा संन्यासी अपने को किसी सिंहासन पर मंडित मानता है। तुम्हारे संन्यासी की आंख में तुम्हारे प्रति गहरी घृणा है, तुम्हारा अपमान है। तुम जाओ तुम्हारे तथाकथित मुनि-यतियों के पास। तुम्हारे प्रति एक गहरी अवमानना है। तुम पापी हो। उनके सारे उपदेशों का सार इतना है कि तुम पापी हो। और तुम्हें पापी सिद्ध करके वे बड़े अपने को पुण्यात्मा मान लेते हैं। उनकी आंखों में तुम्हारे तरफ एक ही खबर है कि जाओगे नरक! कि नरक जा रहे हो! सम्हल जाओ, मान लो हमारी, नहीं तो नरक जाओगे! और उन्होंने खूब रस ले-ले कर नरक का वर्णन किया है कि कैसे-कैसे आदमी वहां जलाए जाएंगे कड़ाहों में, सताए जाएंगे, कीड़े-मकोड़े किस तरह आदमियों के शरीरों को छेद-छेद कर देंगे; कैसी वहां भयंकर प्यास लगी होगी, जल की धार सामने बहती होगी और पानी पीने की आज्ञा नहीं होगी। खूब-खूब खोजी हैं उन्होंने तरकीबें। जिन्होंने खोजीं, ये रुग्ण लोग रहे होंगे। जिन्होंने नरक का वर्णन किया है शास्त्रों में, ये स्वस्थ लोग नहीं हो सकते। ये एडोल्फ हिटलर के पूर्वज रहे होंगे।
एडोल्फ हिटलर ने करके बता दिया, वैसे ही नरक उसने बना दिए थे जर्मनी में, लाखों लोगों को जला डाला। और तुम चकित होओगे यह जान कर कि जिन भट्टियों में हजारों लोग एक साथ जलाए जाते थे, उन भट्टियों के पास उसने कांच लगवा रखा था। उस कांच में से लोग आकर देखते थे--भीड़ें देखने आती थीं। इकतरफा दिखाई पड़ता था। अंदर जो लोग खड़े हैं नग्न, जलने की तैयारी में, उनको बाहर की तरफ नहीं दिखाई पड़ता था कि कोई देख रहा है। मगर बाहर जो खड़े थे, उनको दिखाई पड़ता था। हजारों लोग देखने आते थे, यह भी आश्चर्य है! और बिजली की बटन दबी, और एक भपका हुआ, और दस हजार आदमी इकट्ठे एक भट्टी में धुआं हो गए, और चिमनी से तुमने धुआं उठते देखा। लोग इसको देखने आते थे, जैसे यह कोई सर्कस हो! एडोल्फ हिटलर ने तुम्हारे संतों-महात्माओं की सारी कल्पनाओं को

पूरा करके दिखा दिया। उसने कहा, कहां नरक की प्रतीक्षा करते हो, यहीं बनाए देते हैं! हो नरक, न हो!
यह दुख में रस है, दूसरे के दुख में रस है। जिस शास्त्र में नरक का वर्णन हो, मान लेना कि वह शास्त्र किसी दुखवादी ने लिखा होगा--परदुखवादी ने, सैडिस्ट ने लिखा होगा, जो दूसरे को सताना चाहता है। यहां सताने का मौका नहीं है, तो रस ले रहा है कि नरक में सताए जाओगे।
और अपने लिए उसने स्वर्ग की कल्पनाएं की हैं, वहां उसने सारे सुख के इंतजाम कर लिए हैं--सुंदर स्त्रियां, अप्सराएं; कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठो और जो इच्छा हो तत्क्षण पूरी हो जाए; और शराब के झरने; ये सारे इंतजाम कर लिए हैं--अपने लिए। यह त्यागी-तपस्वियों के लिए है, ध्यान रखना। जिन्होंने स्त्रियां यहां छोड़ी हैं, उनके लिए सुंदर अप्सराएं आकाश में। यह भी खूब मजा हुआ! अगर स्त्रियां छोड़ने से स्त्रियां ही मिलनी हैं, तो फिर स्त्रियां छोड़ना ही क्यों? यहां समझाते रहे कि स्त्रियां छोड़ो, स्त्रियां पाप हैं, स्त्रियां नरक के द्वार हैं, और आखिर में स्वर्ग में उन्हीं का इंतजाम कर लिया! यह तो बड़ी चालबाजी हो गई। यह तो बड़ा धोखा हो गया।
लेकिन इसके पीछे मनोविज्ञान का सीधा सत्य है। तुम जो भी दबाओगे, उसकी आकांक्षा तुम्हारा पीछा करेगी। ये तुम्हारे त्यागी-मुनियों ने स्त्रियों को किसी तरह छोड़ दिया--किसी तरह छोड़ दिया--मन मांग कर रहा है। वे मन को समझा रहे हैं कि बेटा, चुप रह! थोड़ी देर और, फिर तो अप्सराएं ही अप्सराएं हैं--उर्वशियां, और कल्पवृक्ष, जरा और, जरा धीरज और, ज्यादा देर नहीं है! और ईर्ष्या भी उठती होगी मन में इन लोगों के प्रति जो मजे कर रहे हैं। इस ईर्ष्या का बदला भी लेना है। इनसे भी वे कह रहे हैं कि कर लो थोड़ा मजा, भोगोगे! पीछे पछताओगे! याद आएगी फिर हमारी कि समझाया था कितना! फिर सड़ोगे अनंत काल तक नरक में!
ये चित्त के विकार हैं। ये स्वर्ग और नरक कहीं भी नहीं हैं। स्वर्ग में तुम हो, जब भी तुम शांत हो, आनंदित हो, ध्यानस्थ हो, प्रेमपूर्ण हो, तुम स्वर्ग में हो। स्वर्ग कहीं और नहीं। और नरक भी कहीं और नहीं, जब तुम क्रोध में हो और जब तुम ईर्ष्या से भरे हो और जब तुम जलन से जल रहे हो, तो तुम नरक की भट्टी में हो। और स्वर्ग और नरक भूगोल नहीं हैं। और ऐसा भी नहीं है कि कोई स्वर्ग में रहता है और कोई नरक में। घड़ी भर पहले तुम नरक में, घड़ी भर बाद तुम स्वर्ग में--दिन में पच्चीस दफा तुम बदलते हो। कभी स्वर्ग, कभी नरक, कभी स्वर्ग, कभी नरक। ये तुम्हारी मनोदशाएं हैं। और इन दोनों से जो मुक्त हो गया, उस दशा का नाम मोक्ष है, जहां न सुख है, न दुख है। वही परम दशा है, वही असली बात है। सुख-दुख के पार आनंद है, सुख-दुख के पार शांति है, स्वतंत्रता है, मुक्ति है।
नीत्शे ठीक ही कहता है कि तुम्हारे संन्यासी अहंकारी हैं। यह बात निन्यानबे प्रतिशत संन्यासियों के संबंध में सही है। मगर एक प्रतिशत के संबंध में गलत है और इसलिए यह पूरा सत्य नहीं है। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई शांडिल्य नीत्शे की इस रूप-रेखा में नहीं आता। और वही सच्चा संन्यासी है जो रूप-रेखा में नहीं आता। और जिन संन्यासियों के संबंध में यह बात सच है, वे तो झूठे संन्यासी हैं।
मेरी बात समझ में आई? नीत्शे की बात सच है केवल झूठे संन्यासियों के संबंध में, सच्चे संन्यासियों के संबंध में सच नहीं है। नीत्शे वहां चूक कर गया है। उसने फिर सबको एक साथ गिन लिया। उसने अपवाद भी नहीं माने। वह भी तर्कवादी है, बुद्धिवादी है, असंगति नहीं मान सकता। अपवाद मानो तो असंगति होती है, विसंगति आ जाती है; निरपवाद मानने चाहिए सिद्धांत; तो उसने कोई संगति में बाधा नहीं पड़ने दी। उसने तो जीसस तक की खबर ली है इस बात से। अब देखना वह किस तरह खबर लेता है।
जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देना।
यह परम संन्यासी का वक्तव्य है। और जीसस ने कभी सोचा नहीं होगा कि इसमें भी कोई भूल खोज लेगा! तुम इसमें सोच सकते हो भूल? भूल ही नहीं, इसमें कोई पाप खोज लेगा। नीत्शे ने वह भी खोज लिया। नीत्शे ने तो निर्णय कर लिया

है कि धर्म यानी गलत। सही तो हो ही नहीं सकता, इसलिए गलत को तो खोजना ही पड़ेगा। तो उसने क्या तरकीब निकाली? उसने यह तरकीब निकाली कि यह दूसरे का अपमान है। एक आदमी ने तुम्हारे गाल पर चांटा मारा और तुम दूसरा गाल उसके सामने करते हो, तुमने उसको कीड़ा-मकोड़ा कर दिया। तुमने उसका भयंकर अपमान कर दिया। तुमने सिद्ध कर दिया कि देखो, मैं कितना महान हूं, तू कितना क्षुद्र है। नीत्शे कहता है कि यह तो बर्दाश्त के बाहर है यह अपमान। ज्यादा सम्मान यह होता कि तुमने भी उसके गाल पर एक चांटा मारा होता, कम से कम उसको भी आदमी तो स्वीकार करते, बराबर का तो होता। उसने चांटा मारा, तुमने चांटा मारा, बराबर तो हुए। सम होते, समानता होती। उसने चांटा मारा, तुमने दूसरा गाल कर दिया, तुम तो आसमान में चले गए, उसको तुमने जमीन में गाड़ दिया।
जीसस के संबंध में तो यह बात गलत है, लेकिन निन्यानबे संन्यासियों के संबंध में सही है। निन्यानबे प्रतिशत आदमी ऐसे ही हैं कि जब वे दूसरा गाल तुम्हारे सामने करेंगे तो अकड़ कर देखेंगे कि देखो, एक मैं हूं कि तुम चांटा मार रहे हो, मैं दूसरा गाल तुम्हारे सामने कर रहा हूं। मेरी विनम्रता देखो, मेरी महानता देखो, और तुम अपनी क्षुद्रता देखो! देखो यह चला मैं स्वर्ग और तुम चले नरक! यह मैंने सीढ़ी लगा ली स्वर्ग की!
मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी इस सिद्धांत को मानता था। एक आदमी ने उसके चांटा मारा, उसे अपनी किताब याद आई, रोज-रोज बाइबिल पढ़ता था और समझाता भी था दूसरों को, उसे याद आया--जीसस ने कहा है कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा गाल कर दो। उसने दूसरा गाल कर दिया। वह दूसरा आदमी हो सकता है नीत्शे का पढ़ने वाला रहा हो--दुनिया में सब तरह के लोग हैं--उसने यह मौका न छोड़ा, उसने दूसरे गाल पर भी और जोर से जड़ दिया! साधारणतः हमारी आशा यह होती है कि जब हम दूसरा गाल करेंगे, तो तुम क्षमा मांगोगे कि भई, भूल हो गई, आप जैसे महात्मा को और हमने चोट की। ऐसी हमारी कहानियों में यही आता है, सब पुराण में यही कहानियां लिखी हैं कि फिर महात्मा ने माफ किया तो तुम जल्दी से उसके पैर पर गिर पड़े कि क्षमा करिए, मुझसे बड़ी भूल हो गई, आप जैसे सत्पुरुष को मार दिया।
लेकिन वह आदमी भी मजे का आदमी था--नीत्शे का अनुयायी रहा होगा--उसने एक
और करारा जड़ दिया। जब उसने करारा चांटा मारा, तब ईसाई पादरी हैरान हुआ कि अब क्या करना? तब उसे याद आया कि बाइबिल में इसके आगे तो कुछ कहा ही नहीं है। और दो ही तो गाल हैं आदमी के पास। वह एकदम उचक कर उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा। उस आदमी ने कहा, भई, यह क्या करते हो? क्योंकि वह भरोसा कर रहा था कि पादरी है; और एक गाल किया, दूसरा किया, यह क्या करते हो?
उसने कहा, अब क्या करें, इसके आगे जीसस का वचन ही नहीं है! अब हम तुम्हें मजा चखाएंगे। यहीं तक कहा है हमारे गुरु ने कि एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना; तीसरा कोई गाल नहीं है, और अब इसके आगे हम स्वतंत्र हैं।
जबर्दस्ती माने गए नियम कितनी दूर तक साथ जा सकते हैं।
जीसस के जीवन में उल्लेख है, उनके एक शिष्य ने उनसे पूछा कि आप कहते हैं कि लोगों को माफ करो। कितनी बार माफ करें? अब इसमें ही माफ न करने की वृत्ति है--कितनी बार? कुछ सीमा होती है हर बात की, कितनी बार माफ करें? तो जीसस ने कहा, कम से कम सात बार। उसने कहा, अच्छी बात है। लेकिन जिस ढंग से उसने कहा "अच्छी बात है", उससे जीसस को लगा कि यह आठवीं बार सातों का इकट्ठा बदला लेगा। अच्छी बात है, उसने कहा, ठीक है, देख लेंगे! सात के बाद तो मौका आएगा न आठवां! उसकी आंख की चमक को देख कर जीसस को लगा होगा कि यह तो भूल हो गई, यह आदमी से तो गलती बात हो गई। क्योंकि सात बार का इकट्ठा अगर बदला लेगा तो बहुत महंगा हो जाएगा। उससे तो पहली दफा ही ले लेता तो ही ठीक था। क्योंकि उस पहली दफा बहुत इकट्ठा भी तो नहीं होता। एक गाली दी थी तो तुमने एक गाली दे दी होती। किसी ने सात गाली दीं, फिर आठवीं गाली तुम दोगे तो वजनी खोजनी पड़ेगी कि आठ के मुकाबले! तो जीसस ने कहा, नहीं सात बार नहीं, सतहत्तर बार। वह आदमी थोड़ा उदास दिखा, उसने कहा, अच्छी बात है।
करोगे क्या ऐसे आदमियों के साथ? सात कहो कि सतहत्तर, सतहत्तर भी प्रतीक्षा कर सकते हैं वे। और यह भी हो सकता है कि उकसाएं तुम्हें कि अब

सतहत्तर बार कर लो। सौ सुनार की, एक लुहार की! फिर देखेंगे, एक में ही फैसला कर देंगे। आदमी बेईमान है। शुभ का भी शोषण कर लेता है। लेकिन इसमें शुभ का कोई कसूर नहीं। धर्म से भी अहंकार को भर लेता है। लेकिन इसमें धर्म का कोई कसूर नहीं है। संन्यास से भी रोग पाल लेता है। लेकिन इसमें संन्यास का कोई कसूर नहीं।
नीत्शे सही है और गलत भी। सही है गलत संन्यासियों के संबंध में, गलत
है सही संन्यासियों के संबंध में। और अच्छा है कि तुम दोनों को समझ लो, क्योंकि दोनों संभावनाएं तुम्हारे भीतर भी हैं। ठीक भी हो सकते हो, गलत भी हो सकते हो। गलत का बोध रहे, तो ठीक होने की गुंजाइश बनी रहती है। गलत के संबंध में समझदारी हो, तो गलत होने का डर कम हो जाता है। गलत के प्रति जागरूकता सम्यक बने रहने का उपाय है।

आखिरी प्रश्नः समर्पण यानी क्या?

संकल्प का अर्थ होता हैः मैं। समर्पण का अर्थ होता हैः ना-मैं। संकल्प का अर्थ होता हैः कर्ताभाव। समर्पण का अर्थ होता हैः अकर्ताभाव। संकल्प का अर्थ होता हैः मेरे किए ही कुछ हो सकता है, मेरे बिना किए कुछ भी न होगा, प्रयत्न सब कुछ है। समर्पण का अर्थ होता हैः प्रसाद सब कुछ है। मेरे किए क्या होगा? प्रभु करेगा तो होगा। मैं तो बांस की पोंगरी हूं, वह गाएगा तो बांसुरी बन जाऊंगा। उसका गीत सब कुछ है। मैं उसे मार्ग दूं, अवरोध न बनूं। मैं मार्ग से हट जाऊं।
समर्पण अपने को विदा देना है, अलविदा। और तब जीवन में अपूर्व क्रांति घटती है।

शाम से
जरा पहले
खत्म हुआ हाथ का काम
नाम से
जरा पहले जैसे
जाग गया मन में
रूप
अब मैं
तल्लीन एक धूप हूं
तन्मय चांदनी की तरह
छंद की जगह
लय हूं लहर की
याने शाम से ही
किरन हूं सहर की

जिस व्यक्ति में समर्पण जगा, पहली किरण आ गई--शाम से ही किरण आ गई सुबह की!
छंद की जगह
लय हूं लहर की
याने शाम से ही
किरन हूं सहर की
समर्पण परमात्मा का पहला चरण है तुम्हारे भीतर। अंधेरा है अभी, लेकिन किरण आ गई। भोर का पहला पक्षी बोला। समर्पण भोर के पहले पक्षी की आवाज है। मुर्गे ने बांग दी। अभी रात है, मगर रात टूटने लगी। अभी रात है, लेकिन रात नहीं रही, तुम्हारे लिए टूट गई। इधर मैं टूटा, उधर रात टूटी। हम नाहक ही बोझ लिए चल रहे हैं।
मैंने सुना है, एक राजा एक रथ से गुजरता था--जंगल का रास्ता, शिकार से लौटता था। राह पर उसने एक गरीब आदमी को, एक भिखारी को एक बड़ी पोटली--बूढ़ा आदमी और बड़ा बोझ लिए हुए चलते देखा। उसे दया आ गई। उसने रथ रुकवाया और कहा

भिखारी को कि तू बैठ जा! कहां तुझे उतरना है, हम उतार देंगे। भिखारी बैठ तो गया, डरता, सकुचाता--रथ, राजा! अपनी आंखों पर भरोसा नहीं आता! कहीं छू न जाए राजा को! कहीं रथ पर ज्यादा बोझ न पड़ जाए! ऐसा संकुचित, घबड़ाया, बेचैन! सच में तो डरा हुआ बैठ गया, क्योंकि इनकार कैसे करे? मन तो यह था कि कह दूं कि नहीं-नहीं, मैं और रथ पर! मुझ जैसे गंदे आदमी को, चीथड़े जैसे कपड़े, इस रथ पर बैठाएंगे, शोभा नहीं देती। लेकिन राजा की बात इनकार भी कैसे करो? बुरा न मान जाए, अपमान न हो जाए। तो बैठ तो गया, बड़े डरे-डरे मन से, और पोटली सिर से न उतारी। राजा ने कहा, मेरे भाई, पोटली तेरे सिर पर भारी है इसीलिए तो तुझे मैंने रथ में बिठाया, तू पोटली सिर से नीचे क्यों नहीं उतारता? उसने कहा, आप भी क्या कहते हैं? मैं ही बैठा हूं, यही क्या कम है। और पोटली का वजन भी रथ पर डालूं! मुझे बैठा लिया, यही कम सौभाग्य मेरा! नहीं-नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा; पोटली का वजन भी और रथ पर डालूं!
अब तुम रथ में बैठे हो, पोटली सिर पर रखे हो तो भी वजन रथ पर ही पड़ रहा है। उतार कर रख दोगे तो भी वजन रथ पर पड़ रहा है।
इस भिखारी की दशा है अहंकारी की। वह नाहक ही बोझढो रहा है। वह कह रहा है--मैं यह करूं, मैं यह करूं, मैं यह करके दिखाऊं, वह करके दिखाऊं। करने वाला कोई और। तुम न करो तो भी वही होगा जो होना है। तुम करो तो भी वही होगा जो होना है। तुम नाहक ही पोटली सिर पर लिए बैठे हो। सब उसके हाथों में है। उसके हाथ सब तरफ फैले हुए हैं। इसीलिए तो हिंदुओं ने उसको हजार हाथों का बनाया है। दो हाथ का हो तो हमें संकोच होगा कि भई, पता नहीं किसी और के काम में उलझा हो अभी। हजार हाथ हैं उसके, अनंत हाथ हैं उसके। तुम जरा अपने को छोड़ो, तो उसका हाथ का सहारा सदा है। वही तुम्हें सम्हाले है। जब तुम जीते हो, तब वही जीता है। जब तुम हारे हो, तब तुम हारे हो। हार उसकी नहीं है। हार तुम्हारी इस भ्रांति की है कि मैं कुछ करके रहूंगा। वह टूटती है भ्रांति कभी। अगर तुम उसके विपरीत कुछ करते हो तो नहीं होता, नहीं होता तो तुम हारते हो, हारते हो तो रोते हो, दुखी होते हो, पीड़ित-परेशान होते हो। छोड़ दो उस पर, फिर कोई हार नहीं है, फिर कोई विषाद नहीं है।
सब संयुक्त है। हम सब जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व एक ही लय में बद्ध है। यहां हमें अलग-अलग कुछ करने की बड़ी जरूरत नहीं है।

सड़क-सड़क
चली
इक कली
नदी के तीर पर
सपना
सोया था कोई उसका
काले गहरे नीर पर
कितने और कैसे-कैसे
पांवों से बच कर
पहुंची वह घाट तक
उतरी अभिसारिका वह
सीढ़ियों से लहरों पर
चेहरों पर तारों के
चमक आ गई
पूरे प्रवाह पर
एक चुप्पी छा गई

एक छोटी सी कली नदी के तीर पर चल कर पहुंची, उतरी है जलधार में! उतरी अभिसारिका वह
सीढ़ियों से लहरों पर
चेहरों पर तारों के
चमक आ गई

इतना सब जुड़ा है। एक छोटी सी कली भी जब पानी की लहर में उतरती है, तो अनंत-अनंत दूरी पर जो तारे हैं, उनकी आंखों में भी चमक आ जाती है।
पूरे प्रवाह पर
एक चुप्पी छा गई
सब संयुक्त है। एक पत्ता हिलता है तो चांद-तारे हिलते हैं। एक छोटी सी घास की पत्ती भी सूरज से जुड़ी है। हम सब इकट्ठे हैं। इस इकट्ठे होने का नाम परमात्मा है। तुम अपने को अलग मानते हो, यह अहंकार। तुम अपने को इसके साथ एक मानते हो, यह समर्पण।
अहंकार मरेगा, क्योंकि अहंकार झूठा है। कैसे तुम सम्हाले हो उसे, यही चमत्कार है! जितने दिन सम्हाल लो, यह चमत्कार है! जादू किया तुमने! अहंकार तो है ही नहीं, इसलिए मरेगा, आज नहीं कल भ्रम टूटेगा, सपने से आदमी जगेगा। कब तक देखोगे सपना? सपना आखिर सपना है! सुबह होगी, आंख खुलेगी, और तब तुम पाओगे जो बच रहा है वह परमात्मा है। और वही सदा सच था। बीच में तुम एक झूठ में खो गए थे, एक सपना जगा लिया था।

कविता टिकेगी
क्योंकि
कोई शरीर नहीं है वह मेरा
वह मेरी
आत्मा ही नहीं
अध्यात्म है
वह मेरे जीवन से उपज कर
बाहर को भेंटती है
बाहर को भेंट कर
समूचे को भीतर समेटती है
मगर मेरी नहीं है
मेरी व्यक्तिगत किसी भी इच्छा की चेरी नहीं है
इसलिए वह टिकेगी
वह टिकेगी
क्योंकि वह समय है
भय नहीं है वह
मेरे भीतर का
विश्वात्मा का अभय है!

तुम्हारे भीतर वही टिकेगा जो शाश्वत से जुड़ा है। तुम्हारे भीतर वही टिकेगा जो समष्टि का अंग है। जो तुमने अलग-थलग अपना बना लिया है, निजी, वह झूठा है। निजता असत्य है, समग्रता सत्य है।
निजता को जोर से पकड़ लेना अहंकार है। निजता को जाने देना, बह जाने देना, धार में सम्मिलित हो जाना, विराट के इस नृत्य में अंग बन जाना, सागर की एक लहर हो जाना समर्पण है। समर्पण भक्ति का सार है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
नौवां प्रवचन

अनुराग है तुम्हारा अस्तित्व

सूत्र

रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात संगवत्।। 21।।
तदेव कर्म्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात्।। 22।।
प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः।। 23।।
नैवश्रद्धा तु साधारण्यात्।। 24।।
तस्यां तत्वेचानवस्थानात्।। 25।।

क्षज्ञगत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात संगवत्।
"अनुराग का ही नाम भक्ति है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि अनुराग दुख का कारण है, इसलिए उसका त्याग करना उचित है। परंतु यह बात ऐसी नहीं है; क्योंकि संग की भांति इसका आश्रय उत्तम है।"
यह सूत्र महत्वपूर्ण है। ध्यानपूर्वक समझना। इस सूत्र पर सब कुछ निर्भर है तुम्हारे जीवन का रूपांतरण। सदा से तुमने सुना है, उसका खंडन कर रहे हैं शांडिल्य। सदा से तुमने जो माना है, उसका विरोध कर रहे हैं। इसलिए बहुत सजग होकर सुनोगे तो ही ख्याल में पड़ सकेगी बात; क्योंकि तुम्हारे जाने-माने के बहुत विपरीत है।
कहा गया है तुमसे बार-बार कि प्रेम के कारण ही संसार है, दुख है, बंधन है। साधुओं ने, संन्यासियों ने तुम्हें यही समझाया है कि तुम्हारे सारे दुख का मूल प्रेम है, अनुराग है, प्रीति है, राग है। सारी शिक्षाएं तुमसे यह कहती हैंः विराग को उपलब्ध हो जाओ, राग को छोड़ दो। और बात तुम्हें भी जंचती है। और जंचने के पीछे कारण है। जहां राग है, वहीं से दुख उत्पन्न होता मालूम होता है। जिससे राग है, वही तुम्हें दुखी भी कर सकता है। तुमने किसी स्त्री को चाहा, जिस मात्रा में चाहा, उसी मात्रा में वह स्त्री तुम्हें दुख दे सकती है। तुमने किसी पुरुष से प्रेम किया, जिस मात्रा में प्रेम किया, उसी मात्रा में उस पुरुष से तुम्हें सुख मिलेगा, उसी मात्रा में दुख भी मिलेगा, मात्रा बराबर होगी। अगर कल पुरुष छोड़ कर चला जाए, या स्त्री छोड़ कर चली जाए, तो कितना दुख तुम उठाओगे? वह दुख उतना ही होगा जितना उसके पास होने से सुख होता था। सुख का स्रोत भी राग मालूम होता है, दुख का स्रोत भी राग मालूम होता है। जिसे हम चाहते हैं, मिल जाए तो सुख। जिसे हम चाहते हैं, छूट जाए तो दुख। जिसे हम नहीं चाहते, मिल जाए तो दुख। जिसे हम नहीं चाहते, छूट जाए तो सुख।
मनुष्य के सारे सुख और दुख अनुराग-आश्रित हैं। नरक भी वहीं से उमगता है, स्वर्ग भी। इसलिए तुम्हारे भोगी और योगियों के तर्क में भेद नहीं है।
भोगी कहता है, माना कि दुख वहां से निकलता है, लेकिन सुख भी वहां से निकलता है। मैं दुख भोगने को तैयार हूं, लेकिन सुख छोड़ने को तैयार नहीं। यह तुम्हारे भोगी का तर्क है, यह उसकी सरणी है, यह उसकी विचार-दशा है। वह कहता है, माना कि गुलाब की झाड़ी में बहुत कांटे हैं, मगर फूल भी वहां हैं। कांटों के कारण फूल छोड़ दूं? यह नासमझी मुझसे न होगी। मैं जाऊंगा, चुभें कांटे तो चुभें; बचने की कोशिश करूंगा, बचाऊंगा; लेकिन फूल छोड़ने योग्य नहीं हैं। फूल इतने प्यारे हैं कि कांटे सहे जा सकते हैं। यह भोगी की तर्कदशा।
योगी क्या कहता है? विरागी क्या कहता है?
विरागी कहता है कि कांटे इतने ज्यादा हैं कि मैं फूल छोड़ने को तैयार हूं। विरागी भी मानता है कि फूल वहां हैं। अगर फूल न हों तो कांटों को छोड़ने की बात में कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। कुछ वहां छोड़ने योग्य है, कुछ वहां संपदा है। कुछ अपूर्व फूल खिले हैं जो मन को लुभाते हैं, बुलाते हैं, पुकारते हैं। वहां निमंत्रण है, आकर्षण है। लेकिन कांटे बहुत हैं। शर्त बड़ी है, महंगी है। इतना मूल्य चुकाने को योगी तैयार नहीं। वह कहता है, हम

फूल छोड़ देंगे, मगर कांटों में न जाएंगे। दोनों मानते हैं कि वहां फूल भी हैं और कांटे भी हैं। एक फूल चुनता है, एक फूल छोड़ता है। एक फूलों के कारण कांटे चुनता है, एक कांटों के कारण फूल छोड़ता है। लेकिन दोनों की तर्कसरणी में भेद नहीं है।
शांडिल्य कह रहे हैंः अनुराग से इसका कोई भी संबंध नहीं। अनुराग के पात्र से संबंध है। तुमने किससे प्रेम किया, इस पर निर्भर करता है कि कितना दुख पाओगे। तुमने क्षणभंगुर से प्रेम किया, तो बहुत दुख पाओगे। क्योंकि प्रेम चाहता है शाश्वत होना। तुमने पानी के बबूले से प्रेम किया, तो दुख पाओगे ही। क्योंकि बबूला अभी है और अभी नहीं हुआ। पानी में उठा बबूला है, कब फूट जाएगा, पता नहीं--फूटता है, फूटता है, अब फूटा, तब फूटा, फूटने को ही तत्पर है, फूटेगा ही। एक बात सुनिश्चित है--सदा रहने वाला नहीं है। और तुमने प्रेम इससे लगाया, तो जब बबूला टूट जाएगा तब तुम तड़फोगे, तब तुम जलोगे आग में। यह प्रेम के कारण तुम नहीं जल रहे हो--शांडिल्य के सूत्र को ख्याल में लेना। शांडिल्य कहते हैं, प्रेम के कारण तुम नहीं जल रहे हो, प्रेम के कारण तो तुम्हें बबूले में से भी रस मिला था--बबूला, जिसमें कि रस है ही नहीं। बबूला, जिसमें कुछ भी न था। तुमने चूंकि बबूले से प्रेम किया, उससे भी रस पा लिया था। प्रेम के कारण तुमने रेत से भी तेल निचोड़ लिया था। तेल तो आया था प्रेम से। अब बबूला टूटेगा तो दुख आएगा; दुख आता है बबूले की क्षणभंगुरता से। सुख आता है प्रेम से, दुख आता है क्षणभंगुर विषय से। किसी ने धन चाहा। धन का क्या भरोसा, आज है, कल न हो! किसी ने पद चाहा। पद
का क्या भरोसा, आज है, कल न हो! इस संसार में तुमने जो चाहा है, वह सदा रहने वाला नहीं है। फिर भी चाह के कारण, राग के कारण थोड़ा सा सुख मिलता है-- इंद्रधनुषों से भी मिल जाता है, मृग-मरीचिकाओं से भी मिल जाता है। जो आदमी भटक गया है मरुस्थल में और प्यासा है, उसे दूर दिखाई पड़ता है एक मरूद्यान-- हो या न हो। मान लो कि नहीं है, सिर्फ दिखाई पड़ता है, भ्रांति है, प्यासे आदमी का सपना है, प्यासे आदमी का प्रक्षेपण है, प्यासे आदमी की प्यास ही इतनी प्रगाढ़ हो गई है कि वह चारों तरफ मरूद्यान देखने लगा है। झूठा सही, लेकिन जब तक मरूद्यान तक नहीं पहुंचेगा, तब तक तो सच्चा है। जब तक सच्चा है, तब तक आशा और सुख।
राग लग गया झूठे मरूद्यान से, तो उससे भी थोड़ा सुख मिला है। पहुंचेगा पास, बोध होगा, दिखाई पड़ेगा कि झूठा था, तब दुख होगा। दुख राग के कारण नहीं हो रहा है--राग के कारण तो झूठे मरूद्यान से भी सुख पैदा हो गया था--दुख पैदा हो रहा है, क्योंकि मरूद्यान झूठा था।
शांडिल्य यह कह रहे हैं कि राग से तो दुख पैदा होता ही नहीं।
भेद ख्याल में आया?
एक तो प्रेम है और एक प्रेम का विषय है। विषय अगर क्षणभंगुर है, तो दुख पैदा होता है। शांडिल्य कहते हैंः क्षणभंगुर की जगह शाश्वत को विषय बनाओ, परमात्मा को विषय बनाओ, फिर दुख न होगा। यही भक्ति है।
विरागी भ्रांति में है। उसने विश्लेषण ठीक से नहीं किया। शांडिल्य कहते हैंः वे जो फूल खिले हैं कांटों में, वे प्रेम के फूल हैं। और जो कांटे हैं, वे क्षणभंगुरता के हैं। दोनों चूंकि साथ-साथ खिले हैं, इसलिए तुम्हें भ्रांति हो रही है, तुम्हें अड़चन हो रही है।

जब भी चूम लेता हूं इन हसीन आंखों को
सौ चिराग अंधेरे में झिलमिलाने लगते हैं
फूल क्या, शिगूफे क्या, चांद क्या, सितारे क्या
सब रकीब कदमों पर सर झुकाने लगते हैं
रक्स करने लगती हैं मूरतें अजंता की
मुद्दतों के लबबस्ता गार गाने लगते हैं
फूल खिलने लगते हैं उजड़े-उजड़े गुलशन में प्यासी-प्यासी धरती पर अब्र छाने लगते हैं लम्हे भर को ये दुनिया जुल्म छोड़ देती है लम्हे भर को सब पत्थर मुस्कुराने लगते हैं

लम्हे भर को ही लेकिन, क्षण भर को ही लेकिन। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, सपना ही है यह, मगर प्रेम की शक्ति इतनी विराट है कि क्षण भर को सपने को भी सच कर देती है, क्षण भर को झूठ को भी प्रामाणिक कर देती है। शांडिल्य कह रहे हैंः प्रेम की शक्ति तो देखो, अनुराग की ऊर्जा तो देखो, झूठ पर बरसती है तो झूठ भी सच मालूम होने लगता है। यद्यपि क्षण भर को ही यह बात हो सकती है, क्योंकि झूठ आखिर झूठ है। आज नहीं कल उघड़ेगा, आज नहीं कल सपना टूटेगा। आज नहीं कल इंद्रधनुष विदा होगा। तुम्हारी आंखें फिर अंधेरे में रह जाएंगी। यह दीया बुझेगा।
विरागी भाग खड़ा होता है। वह कहता हैः अब कभी प्रेम न लगाएंगे, प्रेम
से बड़ा दुख पाया। शांडिल्य कहते हैंः प्रेम से दुख नहीं पाया, क्षणभंगुर से लगाया था इसलिए पाया--धन से लगाया, इसलिए पाया; तन से लगाया, इसलिए पाया; मन से लगाया, इसलिए पाया। परमात्मा से लगा कर देखो! उससे, जो सदा है। उससे, जो कभी "नहीं" नहीं होता। और फिर आनंद ही आनंद है। रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात संगवत्।
उत्तम से लगाओ, पारलौकिक से लगाओ। किससे लगाया, इस पर निर्भर है। सांप-बिच्छू से दोस्ती की, आज नहीं कल डसे जाओगे। यह दोस्ती का कसूर नहीं है, सांप-बिच्छू से दोस्ती की। इसलिए यह मत सोच लेना कि अब कसम खा लेता हूं कि कभी दोस्ती न करूंगा। सांप से दोस्ती की इसलिए पीड़ा पाई; दोस्ती से ही मत संबंध तोड़ लेना। अन्यथा तुम्हारे जीवन में सेतु ही खो जाएगा, तुम्हारे जीवन से रंग खो जाएगा, तुम्हारे जीवन से लय खो जाएगी, तुम्हारे जीवन से संगीत खो जाएगा। क्योंकि सब संगीत, सब लय, सब राग, सब रंग प्रेम का ही है। अनुराग के ही फूल हैं ये सब। यहां जितनी सुगंध है, प्रेम की है। और जितनी दुर्गंध है, अप्रेम की है।
तो यहां भोगी है, जो गलत से प्रेम लगा रहा है। वह गलत है, क्योंकि गलत
से प्रेम लगा रहा है। और योगी है, जिसने प्रेम लगाना छोड़ दिया। वह गलत है, क्योंकि उसने प्रेम ही लगाना छोड़ दिया। अगर बात को तुम ठीक समझो तो योगी से भोगी बेहतर है। क्योंकि भोगी कम से कम प्रेम तो लगा रहा है। गलत से लगा रहा है, कभी समझ आएगी तो सही से भी लगाएगा। अभी गलत दिशा में जा रहा है, जा तो रहा है। कभी समझ आई तो ठीक दिशा में जा सकेगा। यही पैर ठीक दिशा में भी ले जा सकेंगे। यही पंख, जो अंधेरे और महा अंधकार की तरफ ले जा रहे हैं, किसी दिन प्रकाश की यात्रा पर भी निकल सकेंगे। लेकिन योगी ने तो पंख काट दिए। अब न अंधेरे की यात्रा हो सकती है, न उजाले की यात्रा हो सकती है, अब यात्रा ही नहीं हो सकती।
फिर योगी जब पंख काट देता है, तो एक अपूर्व उदासी से भर जाता है। उसी उदासी को बहुत से लोग साधुता समझते हैं। साधुओं का एक संप्रदाय तो उदासी कहलाता है। उदासी को लोग साधुता समझते हैं। साधुता तो आनंद होना चाहिए। साधुता तो नाचती हुई होनी चाहिए। साधुता में तो बहुत गीत जन्मने चाहिए। साधुता में तो चांद-तारे उगने चाहिए। साधुता नृत्य न हो तो साधुता नहीं है। साधुता में तो मस्ती होनी चाहिए, मादकता होनी चाहिए। साधु का जीवन तो मधुशाला होगी। वहां तो बड़ी मादकता होगी, बड़ा माधुर्य होगा। वहां तो सब तरफ आनंद ही आनंद होगा।
लेकिन जिसको तुम साधु कहते हो, वहां आनंद की कोई खबर नहीं; उदासी है, जड़ता है; एक तरह का मुर्दापन है, और सन्नाटा है मरघट का। साधु जड़ हो गया है; ठहर गया, डबरा हो गया है; अब यह धारा कहीं जाती नहीं, किसी सागर तक कभी नहीं पहुंचेगी, यह सड़ेगी। भक्त कहता हैः नाचो! भक्त कहता हैः उत्साह से भरो! भक्त कहता हैः प्रेम की धारा को संसार से परमात्मा की तरफ मोड़ दो। धारा तुम्हारे पास है, पंख तुम्हारे पास हैं, दिशा तुम ठीक चुन लो, पंखों से नाराज मत हो जाओ।
और जब तुम्हारा कोई साधु पंखों से नाराज हो जाता है और अपने पंख काट देता है, तो दूसरों के पंख देख कर ईर्ष्या से भी भरता है। तुम्हारे साधु तुम्हें समझा रहे हैं कि तुम भी पंख काट दो। वे नाराज हैं, खुद पर नाराज हैं, तुम पर नाराज हैं, उनकी जिंदगी नाराजगी की जिंदगी है। वहां क्रोध है,

वहां रोष है, वहां दमित वासना है। दमित होगी ही। क्योंकि प्रेम कुछ ऐसी बात है जिससे तुम छुटकारा पा नहीं सकते। पंख भी काट दो तुम पक्षी के, तो भी पक्षी उड़ने की आकांक्षा से छुटकारा नहीं पा सकता। वह तो पक्षी की आत्मा है, उससे छुटकारा नहीं है। उड़ने की आकांक्षा ही तो पक्षी के प्राण हैं। प्रेम की आकांक्षा ही तो तुम्हारी आत्मा है। तुम कितने ही जंगलों में चले जाओ, कितनी ही दूर, और कितनी ही गुफाओं में बैठ जाओ, तुम्हारे भीतर प्रेम सुगबुगाएगा, तुम्हारे भीतर प्रेम का झरना फूटने की चेष्टा करता रहेगा। गुफा में बैठोगे तो गुफा से प्रेम हो जाएगा। किसी वृक्ष के नीचे बैठोगे तो उस वृक्ष से प्रेम हो जाएगा। कोई पक्षी तुम्हारे कंधे पर आकर बैठने लगेगा, वृक्ष के नीचे तुम्हें शांत बैठा देख कर, तो उस पक्षी से प्रेम हो जाएगा। अगर वह एक दिन न आएगा, तो तुम प्रतीक्षा करोगे। वैसी ही प्रतीक्षा जैसे प्रेमी प्रेयसी की करता है, या प्रेयसी प्रेमी की करती है। तुम चिंतातुर होओगे कि क्या हुआ उस पक्षी का? अंधड़ था, तूफान था, कहीं गिर तो नहीं गया? कहीं मर तो नहीं गया? वह वृक्ष सूखने लगेगा तो तुम बेचैन होओगे, तुम दूर नदी से जल भर कर लाओगे, उस वृक्ष को डालोगे। वह बेचैनी वैसी ही होगी जैसे बच्चा बीमार होता है तो मां को होती है। प्रेम से भागोगे कहां? तुम प्रेम हो।
भक्तों का यह उदघोष है कि प्रेम तुम्हारी आत्मा है, अनुराग तुम्हारा अस्तित्व है, इससे छूटने का कोई उपाय नहीं। पंख काट सकते हो, फिर भी तुम्हारे भीतर उड़ने की आकांक्षा तड़फड़ाएगी--और भी ज्यादा तड़फड़ाएगी। और जब तुम दूसरों को उड़ते देखोगे, तो बहुत ईर्ष्या पैदा होगी। उसी ईर्ष्या के कारण तुम्हारे साधु तुम्हें उपदेश देते हैं कि छोड़ो, त्यागो, भागो। मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आप अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को क्यों नहीं कहते हैं?
परमात्मा ही संसार नहीं छोड़ रहा है, तो मेरा संन्यासी क्यों छोड़े? परमात्मा नहीं ऊबा है संसार से, तुम परमात्मा से भी श्रेष्ठ होने की आकांक्षा से भरे हो क्या? तुम्हें परमात्मा को भी पराजित करना है? तुम्हारा तथाकथित महात्मा अपने को परमात्मा से भी ज्यादा बुद्धिमान मान रहा है। परमात्मा अभी भी फूलों में हंसता है, अभी भी पक्षियों में उड़ता है, अभी भी झरनों में बहता है, अभी भी पहाड़ों में उठता है, अभी भी चांद-तारों में बसता है, अभी भी नये बच्चे पैदा होते हैं, परमात्मा अभी थक नहीं गया है।
रवींद्रनाथ ने कहा है कि जब भी कोई नया बच्चा पैदा होता है, तो मेरे मन में धन्यवाद उठता है परमात्मा के प्रति--तो तू अभी थका नहीं! तो तूने फिर एक नया आदमी बनाया! तेरी आशा अपरंपार है। अनंत है तेरी आशा। आदमी कितना ही गलत करे, आदमी कितना ही गलत हो जाए, लेकिन तू है कि आदमी गढ़े चला जाता है। तू कहता है--आज चूके तो कल जीतेंगे, कल चूके तो परसों, मगर जीतेंगे। आज नहीं कल मनुष्य जैसा होना चाहिए वैसा होगा। तेरा यह भरोसा!
आदमी की श्रद्धा परमात्मा पर भला खो गई हो, परमात्मा की श्रद्धा आदमी
पर नहीं खो गई है। परमात्मा की श्रद्धा अपूर्व है तुम्हारे प्रति, इसीलिए तो तुम जी रहे हो, तुम्हारी श्वास चल रही है। उसका राग तुमसे है, और तुम विराग की बातें कर रहे हो? उसने तुम्हें चाहा है, उसकी चाहत तुम पर रोज बरसती है सुबह-सांझ, चाहे तुम देखो, चाहे तुम न देखो। सूरज की रोशनी में बरसती है, हवाओं के झोंकों में बरसती है, फूलों की गंध में बरसती है, मनुष्यों के प्रेम में बरसती है; उसकी अनुकंपा तुम्हारे पास रोज आती है, तुम चाहे धन्यवाद दो या न दो; उसका राग तुमसे है। परमात्मा तुम्हारे प्रेम में है। परमात्मा अपनी सृष्टि के प्रेम में है। नहीं तो इन वृक्षों को कौन हरा रखे? इन चांद-तारों को कौन रोशन रखे? इन पक्षियों के पंखों में कौन उड़े? और इन पक्षियों के कंठों में कौन गाए?
परमात्मा का राग तुमसे है, और तुम विराग की बात कर रहे हो? तुम भी इतने
ही राग से उसके प्रति भर जाओ। तुम दोनों का राग मिल जाए, वहीं मुक्ति है, वहीं मोक्ष है। परमात्मा ने तुम्हें खूब चाहा है, और तुमने नहीं चाहा है,

यही तुम्हारी भ्रांति है। तुम्हारी चाहत ऊर्ध्वगामी हो जाए! अभी अधोगामी है, नीचे की तरफ जाती है, क्षुद्र की तरफ जाती है।
इसलिए सावधान रहना, जब भी तुम्हें कोई उदास महात्मा दिखे, बचना। क्योंकि वह रोग के कीटाणु लिए हुए है। उससे दूर-दूर रहना, उससे सावधान रहना। क्योंकि वे रोग के कीटाणु खतरनाक हैं। एक बार तुम्हारे भीतर पड़ गए, तुम संक्रामक हो गए, तो उनका इलाज मुश्किल है। और वे रोग के कीटाणु तुम्हें जंचेंगे। जंचेंगे इसलिए कि तुमने भी दुख पाया है, तुम्हारे भी हाथ जले हैं, तुमने भी इस जीवन में बहुत पीड़ा पाई है। जिससे प्रेम किया उसी से दुख पाया है। किस और से दुख पाओगे? दुख तो पाया जाता है उसी से जिससे हम प्रेम करते हैं; क्योंकि उसी से हम आशा करते हैं, उसी से आशा भी टूटती है; उसी से आकांक्षा करते हैं, उसी से आकांक्षा उखड़ती है; उसी से हमारी अपेक्षाएं होती हैं, उसी से विषाद आता है।
तुमने देखा, अजनबी से तुम्हें कभी दुख नहीं होता। क्यों होगा? दुख तो अपनों से होता है, क्योंकि अपनों से अपेक्षा लगी होती है। कुछ तुम चाहते थे और वैसा नहीं हुआ। राह चलता कोई तुम्हारा एक छोटा सा काम कर देता है तो तुम अनुग्रह से भर जाते हो, क्योंकि कोई अपेक्षा नहीं है। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी जीवन भर से सेवा कर रही है, तुमने कभी धन्यवाद नहीं दिया। धन्यवाद देना बेहूदा भी लगेगा--अपनों को कोई धन्यवाद देता है! परायों को ही हम धन्यवाद देते हैं। धन्यवाद का मतलब ही इतना है कि अपेक्षा न थी और तुमने किया। जिससे अपेक्षा है उस पर हम नाराज होते हैं, धन्यवाद नहीं देते। जितनी अपेक्षा थी उतना न किया तो नाराज होते हैं। कोई बेटा अपनी मां को धन्यवाद देता है? कोई मां अपने बेटे को धन्यवाद देती है? यह बात ही नहीं उठती। हां, शिकायतें चलती हैं; नाराजगियां होती हैं, क्रोध होता है।
तो हर आदमी जला हुआ है, और हर आदमी के फफोले पड़े हुए हैं। और तुमने कहावत सुनी है न--दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। तो तुम्हारा भी अनुभव तुमसे यही कहता है। तुम्हारा भी विश्लेषण बहुत गहरा नहीं है, तुमने भी जीवन को बहुत उसकी गहराइयों में न समझा है, न परखा है; तुम्हारी आंखें भी बहुत पारदर्शी नहीं हैं। तो जब तुम्हारा महात्मा तुमसे कहता है कि यह सब राग का ही फल है; तुम को भी बात जंचती है, गणित बैठता है कि बात तो ठीक ही है, मैं भी राग में पड़ा हूं इसलिए दुख भोग रहा हूं। तो रोग के कीटाणु तुम लेने को तत्पर हो जाते हो।
शांडिल्य तुम्हारे लिए बड़े क्रांति के सूत्र दे रहे हैं। शांडिल्य कह रहे हैंः राग से नहीं कोई दुख पाता। कह दो अपने महात्माओं को कि तुमने राग से दुख नहीं पाया, गलत से राग लगाया था, उससे दुख पाया। अब तुम दूसरी गलती कर रहे हो कि तुमने राग ही छोड़ दिया।
एक आदमी अपने पैरों से चल कर वेश्यालय गया। निश्चित ही, पैर न होते तो कैसे जाता, पैरों से ही गया। फिर वेश्यालय में बहुत दुख पाया, बहुत अवमानना झेली, बहुत जीवन को दूषित बना डाला। क्रोध में अपने पैर काट डाले, क्योंकि ये पैर ही वेश्यालय ले गए थे। लेकिन ये पैर मंदिर भी ले जाते, इनसे ही तीर्थयात्रा भी होती। यह जो पैर काट कर बैठ गया है, इसको तुम महात्मा कहते हो? क्योंकि यह कहता है--पैर वेश्यालय ले गए थे, जुआघर ले गए थे, शराबघर ले गए थे, इन पैरों पर बहुत नाराज था, इसने पैर काट डाले। इसको तुम पागल कहोगे न! इसको तुम महात्मा तो नहीं कहोगे। इस आदमी ने पहले भी मूढ़ताएं कीं और अब महामूढ़ता कर रहा है, क्योंकि जो वेश्यालय तक जा सकता है, वह मंदिर तक जाने में समर्थ है। जो शराबघर तक जा सकता है, वह स्वर्ग तक जा सकता है। पैर हैं! जो नरक की यात्रा कर सकता है, उसको स्वर्ग की यात्रा में कौन सी बाधा है? रुख बदलना है, दिशा बदलनी है; बाएं न चले, दाएं चले, बस इतना ही फर्क करना है। पैर तो वही हैं, सीढ़ी तो वही है, नीचे न गए, ऊपर गए। उसी सीढ़ी से तुम ऊपर जाते हो, उसी से नीचे जाते हो, सीढ़ी थोड़े ही तोड़ देते हो इसलिए कि नीचे ले जाती है! जो सीढ़ी नीचे ले जाती है, वही ऊपर नहीं ले जाती? सिर्फ दिशा बदलनी होती है।
शांडिल्य कहते हैंः दिशा बदलो। क्षणभंगुर से छोड़ो नाता, राग छोड़ो, और शाश्वत से राग जोड़ो। परम से जोड़ो राग।

जरा सोचो तो कि क्षणभंगुर में, जहां कोई सुख नहीं है, राग के कारण वहां
भी सुख के क्षण मिल जाते हैं--लम्हे भर को!
लम्हे भर को ये दुनिया जुल्म छोड़ देती है
लम्हे भर को सब पत्थर मुस्कुराने लगते हैं
तुम्हें दिखाई पड़ने लगता है कि सब चारों तरफ हंसी है, चारों तरफ खुशी है। जरा सोचो, अगर यही प्रेम तुम शाश्वत से लगाओ, तो अनंत होगी तुम्हारी संपदा, उसका कोई पारावार न होगा। और उन लोगों से बचना जिन्होंने पैर काट लिए, पंख काट लिए। विरागियों से बचना, राग ही मार्ग है।

जवानी अपनी किस तरह गुजारी है तूने
कि अब हर उठती जवानी से बदगुमान है तू
ये फर्दे-जुर्म किसी और की जुबां पर नहीं
खुद अपने अहदे-गुजिश्तां की तर्जुमान है तू

वो चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं महो-नजूम पे तू तीरगी उछालती है

मिटा दिया तेरे चेहरे की झुर्रियों ने जिसे तू उस निखार की अब ताब ला नहीं सकती
हंसी को जुर्म समझने का यह सबब तो नहीं
कि हंसी तेरे ओंठों पे आ नहीं सकती

बिठा दिए तो हैं पहरे कदम-कदम पे मगर
झिझक के चलने में लग्जिश जरूर होती है
गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में जवानी अपना जहां एतबार खोती है

ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रक्खा है जो उड़ने पाएं तो उलझें कभी न खारों से
तेरी तरह ये भी कहीं न बुझ के रह जाएं
तपिश निचोड़ न इन नाचते शरारों से

कवि कहता है--
जवानी अपनी किस तरह गुजारी है तूने
कि अब हर उठती जवानी से बदगुमान है तू
तुमने जरूर गलत ढंग से अपनी जवानी गुजारी होगी, तभी तुम जवानों पर नाराज होते हो, तभी तुम हर जवान के विरोध में होते हो। तुमने राग अपना गलत से लगाया होगा, इसलिए तुम हर रागी पर नाराज होते हो।
ये फर्दे-जुर्म किसी और की जुबां पर नहीं
खुद अपने अहदे-गुजिश्तां की तर्जुमान है तू
और जब भी तुम किसी बात की निंदा करते हो तो ख्याल रखना, यह तुम्हारे अतीत की ही निंदा है, और किसी बात की निंदा नहीं। जब कोई आदमी कहता है--धन पाप है, तो समझ लेना कि इसने अपनी जिंदगी धन कमाने में गंवाई होगी। कुछ और नहीं कहता यह आदमी। जब कोई आदमी कहता है--स्त्रियों के पीछे मत भागो, यह सब व्यर्थ है, तो वह इतना ही कहता है कि इसने अपनी जिंदगी स्त्रियों के पीछे भागने में गंवा दी है। यह आदमी अपने संबंध में कुछ कह रहा है। यह तुम्हारे संबंध में कुछ नहीं कह रहा है, यह स्त्रियों के संबंध में कुछ नहीं कह रहा है, यह सिर्फ अपने संबंध में कुछ कह रहा है।
वो चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है

यहां ऐसी स्त्रियां भी हुईं जैसे मरियम--जीसस की मां मरियम, उससे ज्यादा पवित्र चेहरा और कहां खोज पाओगे? लेकिन तुम कहते हो कि स्त्रियां नरक के द्वार हैं। जरूर तुम अपना ही अनुभव दोहरा रहे हो। तुमने ऐसी स्त्रियां खोजी होंगी जो नरक के द्वार हैं। यह तुम्हारी खोज के संबंध में खबर है, यह स्त्रियों के संबंध में कोई खबर नहीं है। यहां तो मरियम जैसी स्त्रियां भी हैं, जो स्वर्ग के द्वार हैं, जिनसे देवता भी पैदा होने को तड़पें।
वो चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है
तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं
तेरा अंतःकरण अंधेरे से भरा है, आकाश नहीं, आकाश में तो बहुत चांद-तारे हैं!
तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं
महो-नजूम पे तू तीरगी उछालती है
और तुम अपने भीतर के अंधेरे को चांद-तारों पर फेंकते हो।
मिटा दिया तेरे चेहरे की झुर्रियों ने जिसे
तू उस निखार की अब ताब ला नहीं सकती
हंसी को जुर्म समझने का यह सबब तो नहीं
कि हंसी तेरे ओंठों पे आ नहीं सकती
क्योंकि तुम नहीं हंस सकते, इसलिए हंसी पाप है? क्योंकि तुम नहीं हंस सकते, इसलिए हंसी जुर्म है? क्योंकि तुम नहीं हंस सके तुम्हारे जीवन में, तुम्हें कला के सूत्र न मिले, तुम्हें हंसने का राज न मिला--क्योंकि तुमने रोते जिंदगी बिताई--तो तुम सभी को कहते फिरते हो कि जिंदगी में सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं है, कांटे ही कांटे हैं, फूल यहां हैं ही नहीं। क्योंकि तुम्हारी बगिया में फूल न खिला, इसलिए और बगियाओं में फूल नहीं हैं? तुम अपने को सब पर मत थोपो। तुम्हारी हार तुम सबकी हार में मत बदलो। मगर तुम्हारे महात्मा यही करते रहे हैं।
बिठा दिए तो हैं पहरे कदम-कदम पे मगर
झिझक के चलने में लग्जिश जरूर होती है
गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में
जवानी अपना जहां एतबार खोती है
जहां जवान आदमी, जहां जीवन अपने में आस्था खो देता है, वहीं से पाप शुरू होते हैं। और तुम्हारे महात्माओं ने तुम्हारी आस्था डगमगा दी है। उन्होंने तुम्हें ऐसी बातें दी हैं कि तुम जो भी करो, गलत है। तुम जो भी करो, गुनाह है। खाओ-पीओ, गुनाह है। उठो-बैठो, गुनाह है। सोओ-जागो, गुनाह है। प्रेम करो, संबंध बनाओ, दोस्ती बनाओ, गुनाह है। सब गुनाह है। तुम्हें गुनाहों से भर दिया। यह गुनाहों से भरा हुआ आदमी कैसे तो ईश्वर को पुकारे? किस मुंह से पुकारे? किस कारण पुकारे? ईश्वर ने सिवाय गुनाहों के और कुछ तो दिया नहीं। सिवाय पापों से भरी यह जिंदगी, और तो कुछ दिया नहीं। तुम धन्यवाद किस बात का दो? और जहां धन्यवाद नहीं है, वहां प्रार्थना नहीं पैदा होती।
गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में
जवानी अपना जहां एतबार खोती है
ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रक्खा है
जो उड़ने पाएं तो उलझें कभी न खारों से
और तुम्हारे महात्माओं ने क्या किया है? तितलियां पकड़ रखी हैं! इस डर
से कि कहीं अगर उड़ें तो कांटों से न उलझ जाएं।
ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रक्खा है
जो उड़ने पाएं तो उलझें कभी न खारों से
तेरी तरह ये भी कहीं न बुझ के रह जाएं
तपिश निचोड़ न इन नाचते शरारों से
इन नाचती हुई चिनगारियों से आग को मत निकाल लो। इनका जीवन निचोड़ मत लो। इन्हें उड़ने दो।

भक्ति तुम्हें जीवन की परम स्वतंत्रता देती है। भक्ति कहती हैः तुम्हारा आकाश है, उड़ो! प्रभु ने पंख दिए, उड़ो! इतना ही ध्यान रहे कि ये पंख ऊपर भी ले जा सकते हैं; ये पैर मंदिर तक भी पहुंच सकते हैं। ये आंखें देह का ही सौंदर्य देखने पर चुक न जाएं। यद्यपि देह के सौंदर्य में कुछ भी खराबी नहीं है, कोई भी पाप नहीं है, है तो सौंदर्य उसी का, सारा सौंदर्य उसी का है। जब तुम किसी स्त्री को या किसी पुरुष को सुंदर पाते हो, तो यह उसी की झलक है, यह उसी की खबर है। दूर की सही, बहुत दूर की गूंज सही, मगर उसी की गूंज है, अनुगूंज है। वही झलका है। लेकिन ये आंखें दृश्य पर ही समाप्त न हो जाएं, एक अदृश्य सौंदर्य भी है, इन आंखों को उसकी तलाश में लगाना। और ये कान शब्दों को ही सुनते-सुनते शांत न हो जाएं, शून्य को सुनने का भी और बड़ा आनंद है। और ये हाथ, जो छुआ जा सकता है उसी को न छूते रहें। कुछ ऐसा भी है जो छुआ नहीं जा सकता, फिर भी हाथों में आ सकता है। और यह हृदय व्यर्थ की ही चिंतना में न डूबा रहे, सार से भी इसका संबंध जुड़े। राग के दुश्मन मत बन जाना। राग के अतिरिक्त कोई सेतु नहीं है।
इसलिए कहते हैं शांडिल्यः रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात संगवत्।
"अनुराग ही का नाम भक्ति है। कोई ऐसा कहते हैं कि अनुराग दुख का कारण है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। परंतु यह बात ऐसी नहीं है; क्योंकि संग की भांति इसका आश्रय उत्तम है।"
आश्रय कैसा है? विषय कैसा है?
उत्तम से जोड़ दो तो भक्ति हो जाती है। क्षुद्र से जोड़ दो तो क्षुद्रता। इसलिए मैंने तुमसे कहा कि प्रीति-तत्व के ये रूप हैंः एक, स्नेह। अपने से छोटे से--बच्चे से, बेटे से। दूसरा, प्रेम। अपने समान से-- पति से, पत्नी से, मित्र से। तीसरा, श्रद्धा। अपने से बड़े से--पिता से, मां से, गुरु से। और चौथी परम दशा है, भक्ति। ये सब प्रीति के ही रूप हैं। तुम्हारा प्रेम भक्ति तक पहुंच जाए। इतना स्मरण रहे, न कुछ छोड़ना है, नहीं कहीं भाग जाना है। इसी संसार की मिट्टी में परमात्मा का सोना मिला है। छांटना है, मिट्टी-मिट्टी अलग कर देनी है, सोना-सोना छांट लेना है।
तत एव कर्म्मि ज्ञानि योगिभ्य आधिक्यशब्दात्।
"कर्मी, ज्ञानी और योगी से भी भक्त को आधिक्य शब्द में वर्णन होते देखा जाता, इस कारण वह श्रेष्ठ ही है।"
शांडिल्य कहते हैंः सारे शास्त्रों का सार यह है कि जिस भांति शास्त्रों ने भक्त की प्रशंसा की है, वैसी किसी की भी नहीं की। वेद भी भक्त को परम कहते हैं, उपनिषद भी। कृष्ण भी गीता में भक्त को परम कहते हैं। आधिक्य से वर्णन किया गया है अगर किसी का, तो वह भक्त का किया गया है। कर्म की भी प्रशंसा की गई है। और ज्ञान की भी प्रशंसा की गई है। और योग की भी प्रशंसा की गई है। और सारी विधियों की भी चर्चा की गई है। लेकिन भक्त को आधिक्य से कहा गया है। उसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। क्यों? क्योंकि भक्त इस जगत में द्वंद्व पैदा नहीं करता; निर्द्वंद्व है। भक्त इस जगत में चुनाव नहीं करता। यह संसार और यह परमात्मा, ऐसा खंड नहीं करता। कहता है, यह संसार भी उसी परमात्मा का। भक्त परमात्मा को संसार के विपरीत नहीं देखता, संसार में छिपा, अनुस्यूत देखता है। कण-कण में है। क्षण-क्षण में वही व्याप्त है।
फिर भक्त अपने को सब भांति समर्पित करता है। उसका समर्पण पूर्ण है। भक्त ही कर सकता है पूर्ण समर्पण। प्रेम ही कर सकता है पूर्ण समर्पण, और तो कोई पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता। योगी का स्वार्थ है, मोक्ष चाहिए। भक्त को वैसा स्वार्थ भी नहीं है। भक्तों ने कभी मोक्ष नहीं मांगा। ज्ञानी को ज्ञान चाहिए। सत्य क्या है, इसका साक्षात्कार चाहिए। भक्त को उसकी भी चिंता नहीं है। भक्त तो कहता है, मेरे हृदय में मैं न रहूं, बस इतना काफी है। जहां मैं न रहा, वहां तू रहेगा ही। मैं शून्य हो जाऊं, मैं तेरे योग्य पात्र बन जाऊं, तेरे चरणों में कहीं धूल बन कर पड़ा रहूं, बस पर्याप्त है। मेरी अलग से कोई आकांक्षा नहीं है। योगी मोक्ष मांगता, ज्ञानी ज्ञान मांगता, कोई कुछ मांगता, कोई कुछ मांगता; भक्त कहता है, इतना ही कि मुझे

मिटा दे; मुझे ऐसा नेस्तनाबूद कर दे कि मुझे मेरा कुछ पता न रहे; मैं बेखुद हो जाऊं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि भक्त के हृदय में मैं जिस भांति विराजता हूं, वैसा किसी और के हृदय में नहीं विराजता हूं, वैसा वैकुंठ में भी नहीं।
भक्त के हृदय में जिस प्रीति से बैठता हूं, वैसा कहीं और स्थान ही नहीं है। प्रश्ननिरूपणाभ्याम आधिक्य सिद्धेः।
"भक्ति की यह श्रेष्ठता प्रश्न और उत्तर द्वारा भी सिद्ध हो चुकी है।"
यह सूत्र बड़ा अनूठा है। अनूठा इसलिए कि बड़ा सांकेतिक है। और सांकेतिक होने के कारण इसके अब तक जो अर्थ लिए गए हैं, बड़े गलत लिए गए हैं। यह सूत्र सीधा-सीधा नहीं है, बड़ा परोक्ष है। क्या चाहते हैं शांडिल्य कहना कि भक्ति की यह श्रेष्ठता प्रश्न और उत्तर द्वारा सिद्ध हो चुकी है?
जिन्होंने शांडिल्य पर व्याख्याएं की हैं, उन्होंने यह मान लिया कि प्रश्न-उत्तर से शांडिल्य का इशारा श्रीमद्भगवद्गीता की तरफ है; क्योंकि कृष्ण और अर्जुन के बीच प्रश्न-उत्तर हुए। और उन्हीं प्रश्न-उत्तर में भक्ति की सर्वोच्च ऊंचाई सिद्ध हो चुकी है।
ऐसा अर्थ किया जाए तो किया जा सकता है। मगर यह अर्थ बड़ा दूरगामी नहीं है। अगर शांडिल्य को यही कहना होता तो कृष्ण-अर्जुन संवाद कह देते; यही कहना होता तो श्रीमद्भगवद्गीता का नाम ही ले देते। इस तरह परोक्ष कहने की क्या जरूरत थी? इसलिए मैं इसका कुछ और अर्थ करना चाहता हूं।
शिष्य और गुरु के बीच बहुत कुछ है जो शब्दों के बिना भी होता है। विद्यार्थी और अध्यापक के बीच केवल शब्दों का लेन-देन होता है। यही फर्क है। शिष्य और गुरु के बीच निशब्द का भी लेन-देन होता है। शब्द का भी लेन-देन होता है, मगर वह गौण है, दोयम, नंबर दो। प्रथम तो है मौन का आदान-प्रदान।
पच्चीस सौ साल हुए, एक जंगल में एक सुबह यह घटना घटी। एक व्यक्ति अपने हाथ में फूल लिए हुए आया। आकर बैठा। उसके चारों तरफ उसकी शिष्य-मंडली थी। और उस व्यक्ति ने वह फूल एक-एक शिष्य के सामने किया। जिसके सामने फूल गया, उसने कुछ कहा, फूल के संबंध में कुछ व्याख्या की। फूल घूमता रहा। और आखिर में एक शिष्य के सामने गया और उस शिष्य ने कुछ भी न कहा, वह सिर्फ मुस्कुराया, हंसा। और कहते हैं, इसी घटना में झेन संप्रदाय का जन्म हुआ, ध्यान संप्रदाय का जन्म हुआ।
यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि वह व्यक्ति गौतम बुद्ध था। कोई और
भी हो सकता था। कृष्ण हो सकते थे, क्राइस्ट हो सकते थे, कपिल हो सकते थे, कणाद हो सकते थे, कबीर हो सकते थे, कोई भी हो सकता था; शर्त एक ही है कि जो भी हो, वह जागा हुआ होना चाहिए।
और ध्यान संप्रदाय का जन्म क्यों हुआ उस एक के हंसने पर? क्योंकि जब बुद्ध ने इस फूल को औरों के सामने किया, तो वे भाषा में बोले, उन्होंने कुछ कहा, अपना-अपना ज्ञान दिखलाया; फूल के संबंध में कुछ कहा, लेकिन फूल से चूक गए। फूल तो तथ्य है, शब्दातीत है, कुछ कहने का उपाय नहीं है। आश्चर्यचकित हो सकते हो फूल को देख कर, विस्मय-विमुग्ध हो सकते हो फूल को देख कर, आनंदमग्न हो सकते हो फूल को देख कर, फूल के सौंदर्य को देख कर स्तब्ध हो सकते हो, आंसू झर सकते हैं आनंद के, कि हंसी फूट सकती है, मगर शब्द, शब्द बहुत ओछा है, शब्द बहुत छोटा है।
जिस शिष्य के पास फूल आया और ठहर गया, वह था महाकाश्यप। वह सिर्फ मुस्कुराया, फिर खिलखिला कर हंसा। और बुद्ध ने वह फूल महाकाश्यप को दे दिया। और कहा कि जो मैं कह सकता था वह मैंने औरों से कह दिया है, जो मैं नहीं कह सकता वह मैं तुझे दिए दे रहा हूं।
परम घटना मौन में घटती है। शिष्य और गुरु के बीच शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता, ऐसा नहीं, होता है, लेकिन वह असली आदान-प्रदान नहीं। एक और आदान-प्रदान है जो चुप-चुप होता है, जो बिन बोले होता है। शांडिल्य जिस शिष्य से ये सूत्र कह रहे हैं, या जिन शिष्यों से ये सूत्र कह रहे हैं, उनसे उनका मौन का नाता है। उन शिष्यों ने मौन में बहुत बार उनसे प्रश्न पूछे

हैं, और बहुत बार उनके उत्तर पाए हैं। यहां मेरे पास वे लोग हैं जो मौन में पूछते हैं, और मौन में पाते भी हैं। मौन में पूछने वाला ही पाता है। शांडिल्य जब कहते हैंः प्रश्ननिरूपणाभ्याम आधिक्य सिद्धेः।
प्रश्न और उत्तर द्वारा भी क्या यही बात सिद्ध नहीं हो चुकी है!
वे किस बात की तरफ इशारा कर रहे हैं? वे अपने शिष्यों से कह रहे हैं कि तुमने कितनी बार पूछा है और मैंने कितनी बार तुमसे कहा है। भीतर-भीतर अंतरंग में तुम प्रश्न बने हो, मैं उत्तर बना हूं। क्या हर बार भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई है?
क्या मतलब इसका? इसका मतलब यह हुआ कि जब भी तुमने शांत और मौन होकर प्रेम से भर कर पूछा है, तो तुमने उत्तर पाया है। जब भी तुम शांत और मौन होकर प्रेम से मेरी तरफ देखे हो, तो तुम चाहे हजार मील दूर रहे, तुमने मुझे अपने भीतर पाया है। क्या उससे बात सिद्ध नहीं हो गई है? क्या प्रेम के अनुभव से बात सिद्ध नहीं हो गई है?
यह इशारा कृष्ण की गीता की तरफ नहीं है। कृष्ण की गीता की तरफ होता तो सीधा कह देते, ऐसे प्रश्न-उत्तर की बात क्यों उठाते? क्योंकि फिर तो बड़ी झंझट है। उपनिषदों में भी प्रश्न-उत्तर हैं। फिर गीता ही क्यों? फिर उपनिषद क्यों नहीं? फिर प्रश्न-उत्तर तो हजारों साल से चलते रहे हैं, न मालूम कितने शास्त्रों में प्रश्न-उत्तर हैं। नहीं, शांडिल्य तो अपने उस अंतर्संबंध की तरफ इशारा कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि सुनो! तुम भी पूछते हो, और कितनी बार नहीं तुम्हारे प्रेम के कारण समय और स्थान की दूरी मेरे और तुम्हारे बीच मिट गई है! कितनी बार तुमने चुपचाप प्रेम से पूछा है और उत्तर पाया है! क्या उससे भक्ति का आधिक्य सिद्ध नहीं हो गया? उससे बात सिद्ध हो चुकी है।
न एव श्रद्धा तु साधारण्यात्।
"भक्ति श्रद्धा की भांति नहीं है, क्योंकि श्रद्धा साधारणरूप से दिखाई पड़ती है।"
श्रद्धा साधन है भक्ति का, भक्ति साध्य है। साधन साध्य नहीं हो सकता। तुम जिस नाव से दूसरे किनारे पर जाते हो, वह नाव दूसरा किनारा नहीं है, न हो सकती है। साधन साधन है, साध्य साध्य है। श्रद्धा भक्ति तक लाती है, लेकिन भक्ति नहीं है। बहुत लोग श्रद्धा को ही भक्ति समझ लेते हैं, तो भ्रांति हो जाती है। फिर भक्ति क्या है?
श्रद्धा में कुछ न कुछ पाने की आकांक्षा बनी रहती है, भक्ति निष्कांक्षी है। भक्त ने तो पा लिया, श्रद्धालु पाने में लगा है। भक्ति उस भाव-दशा का नाम है, जब तुम्हें पता चलता है कि परमात्मा मिला ही हुआ है, पाने का कोई सवाल ही नहीं है। पाने की बात ही गलत है।
ऐसा समझो, तुम्हारे खीसे में हीरा पड़ा है और तुम भूल गए। श्रद्धा का अर्थ है, किसी ने कहा कि तुम भूल गए क्या? तुम्हारे पास हीरा है! और तुमने उस आदमी की बात पर भरोसा किया और खोज शुरू की, कि हो सकता है यह आदमी ठीक कहता हो। तुम इस आदमी को जानते हो, यह प्रामाणिक है, यह कभी झूठ नहीं बोला, इसने तुम्हें कभी धोखा नहीं दिया, इसकी और सलाहें भी पीछे अतीत में काम आई हैं, इसने जब जो कहा काम पड़ा है, इसने जब जो कहा वैसा ही हुआ है, हजार-हजार अनुभवों से सिद्ध हो चुका है कि यह आदमी विश्वास योग्य है। और यह आदमी आज तुमसे कहता है कि हीरा तुम्हारे पास है! तुम तलाशते क्यों नहीं? तुम हाथ फैलाए भीख क्यों मांगते हो? हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है! तो तुम्हें श्रद्धा उमगती है। तुम सोचते हो कि यह आदमी कभी झूठ नहीं बोला, यह आदमी सदा मेरे काम आया, और इसने जो कहा सदा ठीक हुआ, मैंने माना तो, मैंने नहीं माना तो, अंततः इसकी बात सदा सही सिद्ध हुई है। हो न हो यह भी बात सही हो--यह श्रद्धा।
फिर तुम खोज करते हो और एक दिन हीरा तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता है।
जब हीरा तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता है, तब भक्ति। अब तुम अहोभाव से भरते हो। अब तुम्हारे भीतर बड़ी कृतज्ञता उठती है। तुम नाचते हो, तुम मस्त हो, मस्ती समाती नहीं, बही जाती है--आधिक्य हो गया। और अब तुम हंसते भी हो कि

मैं भी कैसा मूढ़ हूं! जिस हीरे को खोजता था वह मेरे पास था। हीरा मेरे पास था और मैं दाने-दाने को मोहताज था। मैं भी कैसा पागल!
ऐसी ही परमात्मा की उपलब्धि है। परमात्मा को तुमने कभी खोया नहीं। जिसे तुम खो दो, वह परमात्मा नहीं। परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है, खोओगे कैसे? तुम परमात्मा हो। परमात्मा तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है। वह हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है। तुम जब चाहो तब पा लो, क्योंकि तुम पाए ही हुए हो। भक्ति उस दशा का नाम है जब तुम अपने भीतर भगवान को पाते हो। भक्ति भगवान की उपस्थिति से उठी सुवास है। श्रद्धा तलाश है, श्रद्धा खोज है।
शांडिल्य कहते हैंः "भक्ति श्रद्धा की भांति नहीं है, क्योंकि श्रद्धा साधारण रूप से दिखाई पड़ती है।"
और भी भेद हैं श्रद्धा और भक्ति में। श्रद्धा नास्तिक को भी होती है। आखिर कम्युनिस्ट कार्ल मार्क्स और एंजिल्स और लेनिन पर वैसी ही श्रद्धा करता है जैसे हिंदू कृष्ण पर करता है और ईसाई क्राइस्ट पर करता है। कम्युनिस्ट दास कैपिटल पर वैसी ही श्रद्धा करता है जैसे मुसलमान कुरान पर करता है और बौद्ध धम्मपद पर करता है। यद्यपि कम्युनिस्ट भक्त नहीं है, और कभी भक्त नहीं हो सकता। श्रद्धा तो साधारणतः सब तरफ दिखाई पड़ती है। बच्चे मां-बाप पर श्रद्धा करते हैं, लेकिन भक्ति नहीं है वह। जिस गुरु से तुम कुछ सीख लेते हो, उस पर तुम्हें श्रद्धा आती है, सम्मान आता है, आदर भाव आता है, लेकिन भक्ति नहीं है वह।
श्रद्धा अधार्मिक भी हो सकती है, अनैतिक भी हो सकती है। समझो कि किसी
ने तुम्हें जेब काटना सिखाया, वह तुम्हारा गुरु हो गया। उस पर श्रद्धा होगी, उस पर आदर होगा। चोरों के भी गुरु होते हैं, बेईमानों के भी गुरु होते हैं। बेईमानी की भी तो कला होती है। कोई ऐसे ही तो नहीं आ जाती है बेईमानी, सीखनी पड़ती है। उसमें भी दादागुरु होते हैं! तो वहां भी श्रद्धा होती है। श्रद्धा साधारण बात है। जिससे हमें कुछ मिलता है मूल्यवान, उसी पर श्रद्धा हो जाती है।
परमात्मा से जो संबंध है, वह मात्र श्रद्धा का नहीं हो सकता। श्रद्धा
का हो, तो अभी संबंध हुआ नहीं। परमात्मा से संबंध भक्ति का हो सकता है। इसीलिए तो कृष्ण को मानने वाला कृष्ण को भगवान कहेगा। क्यों? महावीर को मानने वाला महावीर को भगवान कहेगा। क्यों? वह इतना ही कह रहा है कि हम साधारण गुरु नहीं मानते महावीर को, हमारा संबंध श्रद्धा का ही नहीं है, भक्ति का है। वह और कुछ भी नहीं कह रहा है। वह सिर्फ इस बात की घोषणा कर रहा है कि महावीर मेरे लिए गुरु ही नहीं हैं, भगवान हैं। मेरे भीतर उनके प्रति जो भाव है वह मात्र श्रद्धा का नहीं है, श्रद्धा तो साधारण बात है। मेरे और उनके बीच जो फूल खिला है वह भक्ति का है। मुझे अब उनसे कुछ लेना-देना नहीं है, उनकी मौजूदगी काफी है, उनका होना परम धन्यता है।
इसलिए जो एक को भगवान है, दूसरे को नहीं भी होगा। जैनों का भगवान हिंदुओं के लिए भगवान नहीं है। कोई कारण नहीं है। क्योंकि भगवत्ता तो एक निजी घटना है। ईसाइयों का भगवान मुसलमानों का भगवान नहीं है। बुद्ध को मानने वाले बुद्ध को भगवान कहते हैं। कृष्ण को मानने वाले राजी नहीं होंगे, जैन राजी नहीं होंगे--बुद्ध और भगवान? लेकिन उनकी नाराजगी इतना ही कहती है कि उनके और बुद्ध के बीच भक्ति का संबंध नहीं है--और कुछ नहीं कहती। इसमें कुछ विवाद जैसी बात नहीं है। अगर जैन यह सिद्ध करने लगें कि महावीर सबके भगवान हैं, तो झंझट की बात है। जैन अगर इतना ही कहें कि हमारे भगवान हैं, बात समाप्त हो गई। इससे आगे कोई विवाद का उपाय नहीं है। लेकिन महावीर की, कृष्ण की, या बुद्ध की उदघोषणा भगवान की तरह उनके प्रेम करने वालों ने की, उसका कारण इतना ही है कि वे यह जाहिर करना चाहते हैं कि हमारे और उनके बीच साधारण श्रद्धा का नाता नहीं है, वह नाता वही है जिसको भक्ति का नाता कहते हैं। भक्ति परम नाता है। वह अनुराग की परम शुद्ध दशा है। उसके ऊपर और कोई शुद्धि नहीं है।
स्नेह क्षणभंगुर का होता, प्रेम भी क्षणभंगुर का होता, और श्रद्धा भी। भक्ति शाश्वत की है। श्रद्धा बनती है, मिट सकती है। आज है, कल खो जाए।
आज तुमने जिसे श्रद्धा से देखा, शायद कल श्रद्धा से न देखो, अश्रद्धा से

देखो। श्रद्धा बदल सकती है। लेकिन भक्ति आई तो आई, फिर बदलना नहीं जानती।
और जो भक्ति बदल जाए, तो जानना कि भक्ति नहीं थी; श्रद्धा ही रही होगी; तुमने भक्ति मान लिया था। झूठ तुमने अपने ऊपर आरोपित कर लिया था। भक्ति बदलती नहीं, बदल ही नहीं सकती। एक बार आई तो आई, फिर जाने का नाम नहीं लेती। जो चली जाए, वह ज्यादा से ज्यादा श्रद्धा हो सकती है।
काम तखईल आ नहीं सकती
दीद दूरी मिटा नहीं सकती
कैफ क्या भागती बहारों में
दिल की राहत कहां नजारों में
लाख झूले नजर सितारों में
तीरगी घर की जा नहीं सकती
कल्पना से कुछ काम नहीं बनता।
काम तखईल आ नहीं सकती
तुम्हारे प्रेम, तुम्हारे स्नेह, तुम्हारी श्रद्धाएं कल्पना के फैलाव हैं; तुम्हारी मान्यताएं हैं; तुमने मान लिया। मान लिया तो ठीक, लेकिन जीवन के सत्य के अनुभव नहीं हैं।
दीद दूरी मिटा नहीं सकती
और दर्शन भर से दूरी नहीं मिटती, जब तक एकात्म अवस्था न हो जाए। श्रद्धा में दूरी है, भक्ति में दूरी समाप्त हो गई। भक्त और भगवान एक हो गए।
काम तखईल आ नहीं सकती
दीद दूरी मिटा नहीं सकती
कैफ क्या भागती बहारों में
और जहां प्रतिक्षण सब कुछ बदला जा रहा है, वहां आनंद कैसे होगा?
कैफ क्या भागती बहारों में
दिल की राहत कहां नजारों में
लाख झूले नजर सितारों में
तीरगी घर की जा नहीं सकती
और तुम कितने ही आकाश के तारों को देखते रहो, इससे तुम्हारे घर का अंधेरा नहीं मिटेगा। घर का अंधेरा तो तभी मिटेगा जब घर का दीया जलेगा। श्रद्धा दूसरे पर होती है, श्रद्धा "पर" पर होती है। भक्ति, जब तुम्हारे भीतर भगवान का दीया जलता, जब तुम भगवान के मंदिर बनते हो, तब, जब तुम उसके पूजागृह बन जाते हो--पुजारी ही नहीं, उसके पूजागृह; उपासक ही नहीं, उसके मंदिर।
जिक्रे अजदाद से हूं गो खुर्सद
हालो-माजी का राब्ता ता चंद
मौत से साज करके जीना क्या
खुम से जो गिर गई वो पीना क्या
वहम से चाके-अक्ल सीना क्या
उधड़े जाते हैं खुद-ब-खुद पैबंद

नग्मगी गम पे छाएगी क्यों कर
मुफलिसी गुनगुनाएगी क्यों कर
मैकदा है निशात की बस्ती
फिर भी मिटता नहीं गमे-हस्ती
मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती
रूह तस्कीन पाएगी क्यों कर
यहां इस जगत में राहत नहीं मिल सकती, तस्कीन नहीं मिल सकती।
मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती
यहां सब क्षणिक है। अभी है, अभी नहीं है। सब पानी पर खींची गई लकीरें हैं।
मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती
रूह तस्कीन पाएगी क्यों कर

यख जमेगी शरार पर कितनी
आगही होगी बेखबर कितनी
जुल्फ लहरा के इत्र बरसा जाए
नश्शा-सा इक हवास पर छा जाए
नर्म जानू पे नींद आ जाए
नींद की उम्र ही मगर कितनी
यख जमेगी शरार पर कितनी
चिनगारी पर बर्फ जमाना चाहो तो कितनी देर जमा पाओगे? कितनी जमा पाओगे?
यख जमेगी शरार पर कितनी
आगही होगी बेखबर कितनी
जुल्फ लहरा के इत्र बरसा जाए
नश्शा-सा इक हवास पर छा जाए
नर्म जानू पे नींद आ जाए
नींद की उम्र ही मगर कितनी
बार-बार सोओगे क्षणभंगुर में, बार-बार नींद टूटेगी, बार-बार जगोगे। यहां तो उथल-पुथल मची ही रहेगी। तो स्नेह से काम न चलेगा, प्रेम से काम न चलेगा, श्रद्धा से काम न चलेगा--वे सभी के सभी संसार के भीतर हैं--भक्ति चाहिए। संसार के पार आंख उठनी चाहिए। कुछ तो तुम्हारे जीवन में ऐसा हो जो सांसारिक नहीं है। कोई एक किरण सही, जो तुम्हें संसार के पार ले चले। उसी किरण के सहारे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे।

और फिर कृष्ण ने अर्जुन से कहाः
न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं, जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में

जिस्म लेते हैं जनम, जिस्म फना होते हैं
और जो इक रोज फना होगा, वह पैदा होगा
इक कड़ी टूटती है, दूसरी बन जाती है
खत्म ये सिलसिला-ए-जिंदगी फिर क्या होगा

रिश्ते सौ, जज्बे भी सौ, चेहरे भी सौ होते हैं फर्ज सौ चेहरों में शक्ल अपनी ही पहचानता है वही महबूब, वही दोस्त, वही एक अजीज
दिल जिसे इश्क, और इदराक अमल मानता है

जिंदगी सिर्फ अमल, सिर्फ अमल, सिर्फ अमल
और ये बेदर्द अमल सुलह भी है, जंग भी है अम्न की मोहनी तस्वीर में हैं जितने रंग उन्हीं रंगों में छिपा खून का इक रंग भी है

खौफ के रूप कई होते हैं, अंदाज कई
प्यार समझा है जिसे, खौफ है वो प्यार नहीं उंगलियां और गड़ा, और जकड़, और जकड़
आज महबूब का बाजू है ये, तलवार नहीं

जंग रहमत है कि लानत, पर सवाल अब न उठा जंग जब आ ही गई सर पे तो रहमत होगी
दूर से देख न भड़के हुए शोलों का जलाल इसी दोजख के किसी कोने में जन्नत होगी

जख्म खा, जख्म लगा, जख्म हैं किस गिनती में
फर्ज जख्मों को भी चुन लेता है फूलों की तरह
न कोई रंज, न राहत, न सिले की परवा
पाक हर गर्द से रख दिल को रसूलों की तरह

यहां जितने संबंध हैं--भाई का, बेटे का, मां का, पिता का, गुरु का--सब संसार के हैं।
न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं, जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में
जिस दिन तुमने सब शक्लों में छिपे उस एक को देख लिया, उस दिन भक्ति। जब
तक शक्ल में अटके, तब तक स्नेह, प्रेम, श्रद्धा। जिस दिन शक्लों के पीछे छिपे उस एक को देख लिया--जब तक लहरों में उलझे, तब तक स्नेह, प्रेम, श्रद्धा। जब सागर को देख लिया, तो भक्ति।
ऐसा नहीं है कुछ कि भगवान कहीं और है। यहीं छिपा है--इन्हीं वृक्षों में, इन्हीं लोगों में, इन्हीं पक्षियों में, इन्हीं पहाड़ों में--यहीं छिपा है। लेकिन हम शक्ल से उलझ जाते हैं। हम वृक्ष को देखते हैं, वृक्ष के भीतर बहते प्राण की धारा को नहीं। हम पक्षी को उड़ते देखते हैं, पक्षी के भीतर उड़ती हुई आत्मा को नहीं। हम आदमी को देखते हैं, औरत को देखते हैं-- आदमी और औरत ऊपर की बातें हैं--भीतर छिपे हुए चैतन्य को नहीं देखते। वह चैतन्य दिखने लगे तो भक्ति।
न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं, जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में
ऐसा देखो, ऐसा परखो, तो तुम धीरे-धीरे पाओगेः शांडिल्य जिस अनुपम अनुराग की बात कह रहे हैं, वह तुम्हारे भीतर उठने लगा--अरूप का प्रेम, निराकार का प्रेम, निर्गुण का प्रेम।
तस्यां तत्वेचानवस्थानात्।
"श्रद्धा और भक्ति को एक अर्थ में लगाने से दोष हो जाएगा।"
श्रद्धा को भक्ति मत समझ लेना; श्रद्धा पर रुक मत जाना, शांडिल्य का
यह इशारा है।
तुम कुछ ऐसे हो कि जगह-जगह रुक जाते हो, इसलिए सदगुरुओं को कहना पड़ता
है बार-बार। तुम ऐसे हो कि रुकने को तत्पर हो। बुद्ध ने कहा हैः अगर मैं तुम्हारे ध्यान के रास्ते पर कहीं मिल जाऊं, तो मुझे दो टुकड़े कर देना। इफ यू मीट मी ऑन दि वे, किल मी। मुझे मार डालना। क्यों? क्योंकि अगर बुद्ध न मारे जाएं, तो श्रद्धा पर अटकन हो जाएगी। जब बुद्ध भी विदा हो जाएं, तो भगवत्ता का उदय हो।
गुरु के भी पार जाना होगा। गुरु ले जाता अंतिम तक, लेकिन अंततः, अंततोगत्वा गुरु अपना हाथ छुड़ा लेता है। उस समय हिम्मत होनी चाहिए कि तुम भी हाथ छोड़ दो। क्योंकि गुरु आखिरी रूप है, अरूप और रूप के बीच गुरु आखिरी कड़ी है। मगर अरूप में जाना है, निर्गुण में जाना है, निराकार में जाना है। इसलिए शांडिल्य कहते हैंः श्रद्धा और भक्ति को एक समझोगे, तो दोष हो जाएगा।
श्रद्धा और भक्ति को एक मत समझना। श्रद्धा जगे, शुभ है। अगर तुम स्नेह में पड़े हो, प्रेम में पड़े हो, तो श्रद्धा तक पहुंचना बड़ी क्रांति है।
लेकिन फिर उस क्रांति के भी पार जाना है। बुद्ध ने कहा हैः जैसे कोई नाव से नदी पार करता है, फिर दूसरे किनारे उतर कर नाव को छोड़ कर आगे बढ़ जाता है।
ऐसे श्रद्धा से नाव बना लेना, पार कर लेना नदी; लेकिन जब दूसरा किनारा आ जाए, तो श्रद्धा को सिर पर मत ढोते फिरना।

इसलिए झेन फकीरों की अदभुत कहानियां हैं। रिंझाई ने बौद्ध शास्त्रों
को आग लगा दी। शिष्यों ने पूछा, यह क्या करते हो? रिंझाई ने कहा, श्रद्धा बहुत हो चुकी, श्रद्धा तोड़नी जरूरी है। तुम इन शास्त्रों में मत अटक जाना, इसलिए आग लगाता हूं।
दूसरेझेन फकीर इक्का ने बुद्ध की लकड़ी की मूर्तियां जला दीं और आंच ताप ली।
श्रद्धा को एक दिन छोड़ देना है। श्रद्धा के जो पार उठता है, वही भक्ति
को उपलब्ध होता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 दसवां प्रवचन

संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है

पहला प्रश्नः क्या प्रार्थना और भक्ति भिन्न-भिन्न हैं?

भिन्न भी हैं और अभिन्न भी।
भिन्न इसलिए हैं कि जहां प्रार्थना पूर्ण होती है, वहां भक्ति प्रारंभ होती है। अभिन्न इसलिए हैं कि बिना प्रार्थना के कोई भक्ति नहीं। ऐसा ही समझो कि कोई शास्त्रीय संगीतज्ञ पहले अपना साज बिठाता है। साज बैठ जाए तो संगीत पैदा हो। साज बिठाना ही संगीत नहीं है, लेकिन साज बिना बिठाए भी संगीत पैदा न होगा--भूमिका है। ऐसी ही प्रार्थना है। प्रार्थना यानी साज बिठाना।
परमात्मा की तरफ शब्द के माध्यम से चलने का नाम प्रार्थना है। जब शब्द अनिवार्य नहीं रह जाते, निःशब्द फलित होता है; जब हम परमात्मा के साथ चुप हो सकते हैं, मौन हो सकते हैं; जब बोलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती; जब श्रद्धा उस पराकाष्ठा को छू लेती है जहां यह सवाल ही नहीं उठता कि हम कुछ कहें--जो कहना है, वह जानता है; जो होना है, वह वह जानता है; जो नहीं होना है, वह नहीं हो सकता है; जो नहीं होना चाहिए, वह नहीं होगा--जहां प्रीति ऐसी परम स्थिति को उपलब्ध होती है, वहां भक्ति।
प्रार्थना है फूल जैसी, भक्ति है सुगंध जैसी। प्रार्थना में थोड़ा रूप है, थोड़ा रंग है; आकार है, गुण है; भक्ति निर्गुण है, निराकार है। भक्ति सुवास है मुक्त हो गई फूल से। लेकिन फूल के बिना कोई सुवास नहीं है। दोनों की सीमाएं मिलती हैं, एक-दूसरे में प्रवेश करती हैं। कहां प्रार्थना समाप्त हो जाती है, कहां भक्ति शुरू होती है, कहना अति कठिन है। रेखा खींची नहीं जा सकती। किस दिन आदमी जवान था और किस दिन बूढ़ा हो गया, कौन रेखा खींचे? किस दिन बच्चा बच्चा था और कब जवान हो गया, कौन रेखा खींचे? कब तक आदमी जीवित था और कब मर गया, कौन रेखा खींचे? सब रेखाएं कृत्रिम हैं, कामचलाऊ हैं।
काम चलाने के लिए तुमसे कह रहा हूं कि प्रार्थना सशब्द भक्ति है। और भक्ति निःशब्द हो गई प्रार्थना है। जहां सारे शब्द शून्य में लीन हो गए, जहां संगीत भी शांत हो गया, उस परम नीरवता में, उस निबिड़ घने मौन में भक्ति है।

दूसरा प्रश्नः संन्यास की वैज्ञानिक विधि क्या है? विधि की व्याख्या करें। जो पथ मुझे मौन में मिला है, वह श्रेष्ठ है या संन्यास?

संन्यास की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है। संन्यास वैज्ञानिक नहीं है। संन्यास विज्ञान के पार है। विज्ञान यानी गणित, विज्ञान यानी तर्क, विज्ञान यानी आदमी के सोच-समझ के जो भीतर है। विज्ञान की सीमा पदार्थ पर पूरी हो जाती है। विज्ञान देह से ज्यादा गहरा प्रवेश नहीं कर पाता। विज्ञान की विधि ही स्थूल पर आधारित है। सूक्ष्म विज्ञान की पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म छूट-छूट जाता है। चूंकि सूक्ष्म छूट-छूट जाता है, विज्ञान कहता है कि सूक्ष्म है ही नहीं।
ऐसे ही समझो कि कोई कान से देखने चला। कान से कोई कैसे देखेगा? कान से सुनेगा। फिर कान को ही जिसने आंख समझा है, वह कहेगा, सुनने पर जगत समाप्त हो जाता है; यहां देखने को न कुछ है, न कभी था, न कभी होगा। या जो आंख से सुनने चला, वह भी अज्ञान में भटक जाएगा। आंख देख सकती है, सुन नहीं सकती। रूप देखेगी, रंग देखेगी, लेकिन ध्वनि! ध्वनि आंख के लिए अस्तित्व में ही नहीं होती। ध्वनि की कोई टंकार आंख पर नहीं पड़ती। तो जो आंख से सुनने चला है, वह अगर कहे--कोई संगीत नहीं, कोई ध्वनि नहीं, जगत मौन है, तो कुछ आश्चर्य न होगा।

ऐसी ही अड़चन विधियों के साथ है। विज्ञान की विधि है--तर्क, गणित। जीवन तर्क और गणित से बड़ा है। यहां बहुत कुछ है जो तर्क और गणित की पकड़ में नहीं आता। और सच तो यह है, वह जो तर्क और गणित की पकड़ में नहीं आता, वही मूल्यवान है।
कोई पूछे तुमसेः प्रेम की क्या वैज्ञानिक व्याख्या है? अब तक कोई कर नहीं पाया। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेम नहीं होता है। इससे यही सिद्ध होता है कि प्रेम और तर्क के रास्ते अलग-अलग हैं, एक-दूसरे को काटते नहीं। प्रेम होता है अतर्क्य, अनिर्वचनीय। उतरता है ऊपर से, घेर लेता है तुम्हें, रूपांतरित कर जाता है, नया कर जाता है। तुम अनुभव भी कर लेते हो, फिर भी कहने में असमर्थ पाते हो कि क्या हुआ है। प्रेमी अवाक होता है, ठगा- ठगा रह जाता है। भरोसा नहीं कर पाता कि जो हुआ है, वह हुआ है! लेकिन हुआ है, यह भी तय है, क्योंकि अपने को बदला हुआ पाता है, नया हुआ पाता है।
संन्यास परम का प्रेम है। वह जो आत्यंतिक है, वह जो तर्कातीत है, उसका प्रेम है। संन्यास का अर्थ हैः मैं इस बात की घोषणा करता हूं कि अब मैं परम के लिए समर्पित हूं। और अगर परम अतर्क्य है, तो मैं अतर्क्य में जाऊंगा। मैं तर्क को बाधा न बनाऊंगा। और अगर परम बुद्धि के अतीत है, तो मैं बुद्धि के अतीत उठूंगा। मैं कोई सीमा न मानूंगा। जैसा जीवन है, मैं उस पूरे-पूरे जीवन को जानना चाहूंगा। अगर जीवन विरोधाभासी है, तो मैं कोई शर्त न लगाऊंगा कि विरोधाभास नहीं होना चाहिए। अगर जीवन असंगत है, तो मैं असंगत में छलांग लगाऊंगा।
संन्यास की कोई वैज्ञानिक व्याख्या संभव नहीं है। काम चलाने को कुछ बातें हम कह सकते हैं, लेकिन ध्यान रखना, काम चलाने को।
एक व्यक्ति तो होता है विद्यार्थी। विद्यार्थी का अर्थ होता है, जो ज्ञान अर्जित करने चला। और एक व्यक्ति होता है शिष्य। शिष्य का अर्थ होता है, जो अस्तित्व अर्जित करने चला, ज्ञान नहीं। ज्ञान छोटी बात है। विद्यार्थी सूचनाएं इकट्ठी करता है। शिष्य गुरु का अस्तित्व पीता है, सत्संग करता है। संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है। जहां शिष्य ऐसा अनुभव करता है कि अब मेरे अलग होने की कोई जरूरत नहीं है। अब मैं गुरु से एक हो जाऊं। अब इतनी भी दूरी क्यों रखूं? यह मैं मैं मैं का स्वर क्यों बचाऊं? शिष्य गुरु के सान्निध्य को अनुभव करते-करते उस जगह आ जाता है जहां वह जानता है--अब एक छोटी सी बाधा रह गई है मैं की, अब इस बाधा को भी गिरा दूं। अब मेरे और गुरु के बीच कोई व्यवधान न रहे। वह घड़ी संन्यास की घड़ी है। विद्यार्थी सूचना इकट्ठी करता है, शिष्य अस्तित्व इकट्ठा करता है। संन्यासी अस्तित्व में एक हो जाता है, लीन हो जाता है। संन्यास ऐसे है जैसे नदी सागर में गिरती है; ऐसे जब कोई व्यक्ति किसी में गिरता है। विद्यार्थी को प्रयोजन नहीं है। उसकी एक सीमा है। वह कहता है, आपकी जानकारियों का मुझे पता चल जाए, मैं इकट्ठी कर लूं, और अपने रास्ते पर चला जाऊं। उसका एक स्वार्थ है, वह पूरा हो जाए। संन्यासी जाने को नहीं है। वह कहता है--आ गया, मुझे मेरा मुकाम मिल गया, अब मुझे कहीं जाना नहीं है। इन दोनों के बीच में शिष्य है, जो थोड़ा-थोड़ा संन्यासी है, थोड़ा-थोड़ा विद्यार्थी है। जो कहता है कि सूचना से ही नहीं होगा, अस्तित्व को भी थोड़ा चखूं। लेकिन अभी अपने को बचाए भी रखता है कि कौन जाने, जरूरत पड़ जाए, तो एकदम अपने को गंवा ही न दूं। मौका आए, अड़चन आए, कठिनाई पड़े तो लौट भी जा सकूं। पुरानी सीढ़ियां तोड़ न दूं, पुरानी नाव जला न दूं, अपने को थोड़ा बचाए रखूं। कभी कोई कठिनाई हो जाएगी तो अपनी सुरक्षा रहेगी।
संन्यासी अपनी सब सुरक्षा भूल जाता है। तोड़ देता है उन सेतुओं को जिनसे आया, तोड़ देता है अपने को। मैं के स्वर के विसर्जन का नाम संन्यास है। यह तो उसकी अंतरात्मा है। फिर भी कहता हूं--यह कामचलाऊ है। लेकिन इससे तुम्हें थोड़ा सा इंगित मिलेगा।
पूछा हैः "संन्यास की वैज्ञानिक विधि क्या है?"
संन्यास की विधि कहना ठीक नहीं, संन्यास परम विधि है। संन्यास एक उपाय है अहंकार-मुक्ति का। संन्यास और विधियों में एक विधि नहीं है। जब सब विधियां हार जाती हैं, तब संन्यास है। जहां आदमी जो कर सकता था, कर लिया--

योग किया, ध्यान किया, तप किया, पूजा की, उपासना की, उपवास किए--जो कर सकता था, सब कर लिया; जो अपने से कर सकता था, सब कर लिया। और ऐसा भी नहीं है कि उनसे लाभ नहीं हुआ, खूब लाभ भी हुए, मगर तृप्ति नहीं हुई। मिला भी; नहीं मिला, ऐसा नहीं। जो टटोलेगा, खोजेगा, चलेगा, पाएगा। लेकिन इतना न मिला कि यह खोज समाप्त हो जाती।
तब एक दिन सारी विधियों के उपयोग करने के बाद यह समझ में आना शुरू होता है कि एक अड़चन है--मैं अड़चन हूं--जिसके कारण सभी विधियां अधूरी रह जाती हैं। ध्यान तो करता हूं, लेकिन मैं ध्यान करता हूं। और मैं बाधा बन जाता है। तप तो करता हूं, लेकिन मैं तप करता हूं। और मैं तप की सारी की सारी गुणवत्ता बदल देता है। अमृत तो खोजता हूं, लेकिन मैं के पात्र में खोजता हूं। और मैं जहर है, अमृत की बूंद पड़ भी नहीं पाती इस पात्र में कि जहर हो जाती है। जिस दिन बहुत विधियां करके यह समझ में आता है--संन्यास निर्विधि है--उस दिन व्यक्ति कहता हैः अब इस मैं को कहां टांगूं? इस मैं को कैसे गिराऊं?
तुम अपने से गिराओ तो अड़चन है। अड़चन यह है कि वह मैं ही गिराने वाला भी होगा। इसे समझना, यह थोड़ा सूक्ष्म है।
मैं को अपने से गिराना ऐसे ही है, जैसे कोई अपने जूते के बंदों को पकड़
कर अपने को उठाने की कोशिश करे। या जैसे कभी सर्दी की सुबह में तुमने धूप लेते कुत्ते को देखा हो, अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश करे। बैठा देखता है कि पूंछ यह रही, पास ही पड़ी है, इतने पास कि झपट्टा मारता है। लेकिन जब झपट्टा मारता है, तो पूंछ भी छलांग लगा जाती है। तब तो कुत्ता भी और भी उद्विग्न हो जाता है, और भी तीव्रता से भर जाता है। यह चुनौती स्वीकार करने योग्य मालूम होती है। और झपटने लगता है। जितना झपटता है, उतना ही पगलाता है। पूंछ पकड़ी नहीं जा सकती ऐसे।
तुम अपने अहंकार को अपने से न गिरा सकोगे। गिराने वाला कौन? गिराने वाले में ही अहंकार छिप जाएगा। अहंकार की यही सूक्ष्म गति है। अहंकार कहने लगेगा, देखो, मैं कितना निर-अहंकारी हो गया! देखो, मेरी जैसी विनम्रता किसकी! देखो, मैं चरणों की धूल हो गया--सबके चरणों की धूल! लेकिन मैं खड़ा है और रस ले रहा है। कभी लेता था रस--मेरे पास इतना धन है! मेरा इतना नाम है! मेरा इतना यश है! अब रस लेता है कि देखो मेरी विनम्रता।
चीन में एक पुरानी कहानी है। एक ताओवादी संत दूर जंगल में अकेला रहता था। कोई यात्री निकलते थे जंगल से। संत को वृक्ष के नीचे बैठे देख कर वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने और भी संत देखे थे, लेकिन इतने एकांत में बैठा हुआ संत! उन्होंने संत देखे थे जो शिष्यों की तलाश करते रहते हैं। और यह आदमी सबसे भाग आया है। इसे शिष्यों से कुछ लेना-देना नहीं है। इसे भीड़-भाड़ से कोई संबंध नहीं है। वे चरणों में झुके और उन्होंने कहा, संत आप हैं! और संतों को तो हमने बाजार में भागते देखा है, शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करते देखा है। संत आप हैं! संत ने आंखें खोलीं और कहा कि तुम ठीक कहते हो, मेरा एक भी शिष्य नहीं है।
क्या फर्क पड़ा? कोई कहता है मेरे लाख शिष्य हैं और कोई कहता है मेरा एक
भी शिष्य नहीं है। कहां फर्क है? कहीं फर्क नहीं है। मैं खड़ा है। संत की आंखों में वही चमक आ गई जो अहंकार की चमक है। संत यह कह रहा है--मुझे देखो! और संत कहां हैं? संत हूं तो मैं हूं, और तो सब धोखा-ढकोसला हैं। सब मिथ्या हैं, सत्य मैं हूं।
अहंकार और क्या है? स्वयं से गिराना मुश्किल है। संन्यास का इतना ही अर्थ होता है--कोई बहाना ले लें अहंकार को गिराने का। मैं तुमसे कहता हूं कि लाओ, मुझे दे दो। अहंकार कुछ है नहीं कि तुम मुझे दे दोगे। अहंकार तो छाया है। ऐसा भी कुछ नहीं है कि तुम्हारा अहंकार मैं ले लूंगा तो मैं किसी अड़चन में पड़ जाऊंगा। अहंकार तो कुछ है ही नहीं, सिर्फ भ्रांति है। मैं तुमसे कहता हूं--चलो, मुझे दे दो। तुम भ्रांति से भरे हो, मैं कहता हूं, तुम्हारी भ्रांति मुझे दे दो, मैं सम्हाल लूंगा; तुम निश्चिंत हो जाओ। यह तो सिर्फ निमित्त है। गुरु सिर्फ निमित्त है, जहां अहंकार को चढ़ाया जा सकता है--और सरलता से, बिना चेष्टा के।

संन्यास लेने का अर्थ है, अहंकार देना। तुम उधर से अहंकार दो, मैं इधर
से तुम्हें संन्यास देता हूं। तुम उधर से झुको, मैं इधर से अपने को तुम में भरूं। तुम उधर खाली हो जाओ, तो मेरे और तुम्हारे बीच एक संबंध बनेगा जो न विद्यार्थी का है, न जो केवल शिष्य का है, एक ऐसा संबंध बनेगा जिसमें तुम मुझसे अन्य नहीं हो; तुम मुझसे अनन्य हो गए, तुम मुझसे अभिन्न हो गए। यह हिम्मत वही कर सकता है जो पीछे लौटने की जरा भी कामना न रखता हो। यह हिम्मत वही कर सकता है जिसे अतीत का थोड़ा भी मोह न हो। यह हिम्मत वही कर सकता है जो जोखम उठाने में साहसी है।
संन्यास जोखम है, दुस्साहस है। यह परम विधि है। यह सारी विधियों का अंतिम चरण है। जब और विधियां और काम कर जाती हैं लेकिन अहंकार को नहीं छुड़ा पातीं, तब संन्यास है।
संन्यास शब्द का अर्थ होता हैः सम्यक-न्यास। ठीक-ठीक छुटकारा। ठीक-ठीक मुक्ति। कर ली सारी चेष्टाएं, अब हार गए, थक गए। उस हारी-थकी दशा में चढ़ा दिया जो भी था। निर्भार हो रहे।
बड़ा कठिन है आदमी को निर्भार होना। अहंकार हमारे भीतर ऐसा प्रबल है
कि हम उसी अहंकार के कारण दूसरों में भी अहंकार देखते हैं। जहां नहीं है, वहां भी हमें अहंकार दिखाई पड़ता है। लोगों की तो बात ही छोड़ दो, हम परमात्मा में भी किसी तरह का अहंकार खोजते रहते हैं।
कल मैं एक गीत पढ़ता था--

रात में क्या जाने
कोई गिनता है कि नहीं गिनता
आसमान के तारों को यों
कि कोई रह तो नहीं गया आने से!

प्रभात में क्या जाने
कोई सुनता है कि नहीं सुनता यों कि रह तो नहीं गया कोई पंछी गाने से!

दोपहर को कोई
देखता है कि नहीं देखता
वन-भर पर दौड़ा कर आंख
कि पानी सबने पी लिया है कि नहीं!

और शाम को यह
कि जितना जिसे दिया गया था
उतना उसने जी लिया है कि नहीं!

ऐसा कोई परमात्मा कहीं बैठा हुआ नहीं। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन हम व्यक्ति हैं, तो हम परमात्मा तक को व्यक्ति के ही आकार में सोचते हैं। हम सोचते हैं, परमात्मा भी कहता होगा--मैं। मैं चलाऊं तारों को, मैं जगाऊं तारों को, मैं सुलाऊं तारों को, मैं उठाऊं पक्षियों को, मैं खोलूं पंखड़ियों को फूलों की, मैं जाऊं और देखूं, मैं रक्षा करूं, नियोजन करूं, संयोजन करूं--ऐसा कोई मैं नहीं है वहां। लेकिन तुम्हारे भीतर तुमने मान रखा है कि कोई मैं है--श्वास लूं, यह करूं, वह करूं। तुम सोचते हो, ऐसा ही विराट होगा परमात्मा का अहंकार।
जैसे-जैसे तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे होने की कोई जरूरत नहीं, और सब चलता है, यही परम अनुभव है। जिस दिन तुम यह पाते हो कि तुम श्वास न लो तो भी चलती है--सब चलता है, कहीं कोई अवरोध नहीं आता। सच तो यह है, पहले से बेहतर चलता है, क्योंकि पहले मैं के कारण थोड़ी अड़चनें आती थीं, अब वे भी नहीं आतीं। मैं के कारण कभी विषाद होता था, कभी विजय के कारण उन्माद होता था, कभी हार के कारण विषाद होता था, अब वे भी नहीं होते। अब न कोई उन्माद है, न कोई विषाद है। अब सब शांत है। अब सब गया ऊहापोह, गई सब आपाधापी। अब चीजें

बड़ी शांति से बहती हैं, जैसे झरने बहते हैं, जैसे वृक्ष बढ़ते हैं, जैसे किसी मां के पेट में बच्चा बड़ा होता है, जैसे जमीन में कोई बीज टूटता है, ऐसे सब चुपचाप होता रहता है, किसी के किए कुछ भी नहीं।
क्या तुम सोचते हो, बीज जब टूटता है जमीन में तो अपने को तोड़ता है, कि कहता है कि अब मैं तोडूं, कि देखो अब वसंत के दिन आ गए, कि अब ऋतु अनुकूल हुई, कि अब यह समय है, कि यह तिथि आ गई, अब मुझे टूटना ही होगा। क्या सुबह उठ कर पक्षी सोचते हैं कि अब सुबह हो गई, अब उठें भी और अब गीत गाएं। क्योंकि यही हमारे पुरखे भी करते रहे, यही हम भी करें, यही हमारी नियति है। क्या तुम सोचते हो, सांझ होने पर तारे विचार करते हैं कि अब हटा दें अपना घूंघट और प्रकट हो जाएं, दिन गया, सूरज अस्त हुआ।
कहीं कुछ नहीं कोई सोच रहा है। सब हो रहा है चुपचाप। कर्ता कहीं भी नहीं है और विराट कृत्य चल रहा है। यही रहस्य है, यही लीला है। लीलाधर कोई भी नहीं है। संन्यास उसी की दिशा में एक अनुभव है। संन्यास उसी की दिशा में एक द्वार है कि तुम छोड़ो और चीजों को अपने से होने दो।
फिर तुमने पूछा कि जो पथ मुझे मौन में मिला है, वह श्रेष्ठ है या संन्यास?
मौन में यदि पथ मिला हो तो कहां ले जाएगा? संन्यास में ही ले जाएगा। मौन में अगर समझ जगी हो, तो समर्पण में ही ले जाएगी। मौन में अगर अहंकार मिला हो, तो संन्यास में बाधा पड़ेगी। तो तुम्हारे प्रश्न में बहुत ज्यादा अर्थ नहीं है कि श्रेष्ठ कौन है? यह तो ऐसे ही है कि जैसे कोई कहे कि अगर एकांत में फूल खिला हो, तो फिर सुगंध श्रेष्ठ है या फूल? फूल खिला हो तो सुगंध ही प्रकट होगी, और क्या प्रकट होगा? एकांत में मौन फला हो तो अहंकार की मृत्यु होगी, और क्या होगा? और संन्यास अहंकार की मृत्यु का एक प्रयोग है। दोनों में कुछ भेद नहीं है।

सुगंध में
स्वर होता है कि नहीं होता
प्यार में
डर होता है कि नहीं होता
पुरानी पड़ चुकी छवियां
मन में नाचती हैं कि नहीं नाचतीं डूब कर किरनें
छाया को बांचती हैं कि नहीं बांचतीं फूल और बीज एक हैं या नहीं
पूनों और तीज एक हैं या नहीं
या सब चीजें एक हैं
उनके सिर्फ अलग-अलग रुख हैं
जैसे हमारे ये
सुख और दुख हैं!

कहां भेद हैं?
फूल और बीज एक हैं या नहीं
पूनों और तीज एक हैं या नहीं
वह जो तीज है, वही तो पूनों बनेगी। और जो पूनों है, वही तो तीज बनती है। तुम्हें अगर एकांत में कोई मार्ग मिला है, पथ सूझा है, तो कहां ले जाएगा? एकांत में मिला हुआ पथ, मौन में दिखा हुआ मार्ग, अंततः ले जाएगा समर्पण में। समर्पण संन्यास है।
मैं तो निमित्त हूं; यहां संन्यास घटता है या नहीं घटता, यह सवाल नहीं है, कहीं न कहीं घटेगा। यहीं घटे, ऐसा कोई आग्रह नहीं है। क्यों यहीं घटे? इतनी विराट पृथ्वी है, कहीं भी घट सकता है।
तो ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा संन्यास यहीं घटना चाहिए। तुम्हारा फूल यहीं सुगंध को बिखेरे, यह भी कोई बात हुई! मगर फूल खिला है तो सुगंध बिखरेगी। संन्यास फलित होगा। कपड़े बदलें कि न बदलें, यह

बड़ा सवाल नहीं है। मेरे पास घटे कि किसी और के पास घटे, कि अत्यंत एकांत में घटे, यह भी बात नहीं है। लेकिन संन्यास घटेगा, अगर मार्ग मिल गया है। लेकिन तुम्हारा प्रश्न ही बताता है कि मार्ग मिला नहीं होगा। तुमने मान लिया है कि मिल गया है। मिल ही गया हो तो पूछो क्यों? पूछने को क्या है फिर और? मानते होओगे कि मिल गया है--ऐसा कैसे हो सकता है कि मुझे और न मिले? वही मैं पीछे खड़ा है कहीं। वही मैं झुकने से रोकता है।
गौर से देख लेना, तुम्हारी मर्जी। उस मैं के साथ तुम रहना चाहो तो मैं कौन हूं जो बाधा दूं? उस मैं के साथ तुम्हें रस आता हो, तो मेरे सारे आशीर्वाद तुम्हें हैं, तुम रस लो। लेकिन अगर उस मैं में कांटे चुभते हों, उदासी पकड़ती हो, विषाद गहन होता हो; उस मैं के कारण जीवन उथला-उथला रह जाता हो, गहराई न पाता हो, तो यहां भी एक द्वार हमने खोला है, उस द्वार से तुम प्रवेश पा सकते हो प्रभु के मंदिर में। और भी बहुत द्वार हैं, इसी द्वार का दावा नहीं है। लेकिन तुम कहीं न कहीं से प्रवेश पाओ जरूर। मैं से थको, समर्पण में डूबो।

तीसरा प्रश्नः क्या यह संभव है कि मैं बगैर संन्यास लिए आपका शिष्य
रह सकूं और जिस मौन-साधना का जन्म मेरे भीतर हुआ है, उसे आगे बढ़ाता जाऊं? है तो सब आपका ही दिया हुआ, पर यह मेरे अंतस से जागी हुई प्रणाली है, और मुझे लगता है इसी का अनुगमन करने में ज्यादा फायदा है। मैं यह भी सोचता हूं कि आपकी साधना में एक शाखा ऐसी भी रहे जिसमें बिना संन्यास वगैरह लिए भी उस सत्ता तक पहुंचा जाए। कृपा कर बताएं कि मैं कहां तक सही सोचता हूं।

जब तक तुम सोचते हो, गलत ही सोचोगे। सोचना मात्र गलत है। जब तक तुम सोचोगे, तब तक गलत सोचोगे, क्योंकि मैं की अवधारणा ही गलत है।
तुम जोखम भी नहीं लेना चाहते। तुम पाने को भी आतुर हो, और तुम कोई खतरा नहीं उठाना चाहते।
तुम कहते होः "क्या यह संभव है कि मैं बगैर संन्यास लिए आपका शिष्य रह सकूं?"
मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है, अड़चन तुम्हारी तरफ से आएगी। मेरी तरफ
से क्या अड़चन है, तुम मजे से शिष्य रहो, विद्यार्थी रहो, कोई भी न रहो, मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। मेरी तरफ से तुम मुक्त हो।
अड़चन तुम्हारी तरफ से आएगी। तुम बिना संन्यासी हुए शिष्य रहना चाहते हो, अड़चन शुरू हो गई। इसका मतलब यह हुआ कि मेरे बिना पास आए पास आना चाहते हो। कैसे यह होगा? पास आओगे तो संन्यास फलित होगा। संन्यास से बचना है तो दूर-दूर रहना होगा, थोड़े फासले पर बैठना होगा, थोड़ी गुंजाइश रखनी होगी। कहीं ज्यादा पास आ जाओ और मेरे रंग में रंग जाओ, यह डर तो बना ही रहेगा न! मेरी बात भी सुनोगे तो भी दूर खड़े होकर सुनोगे, कि कितनी लेनी और कितनी नहीं लेनी। चुनाव करने वाले तुम ही रहोगे। और काश! तुम्हें पता होता कि सत्य क्या है, तब तो मेरी बात भी सुनने की क्या जरूरत थी! तुम्हें सत्य का कुछ पता नहीं। तुम चुनाव करोगे, तुम्हारे असत्य ही उस चुनाव में आधारभूत होंगे। वही तुम्हारी तराजू होगी, उसी पर तुम तौलोगे। और सदा तुम डरे भी रहोगे कि कहीं ज्यादा पास न आ जाऊं, कहीं इन और दूसरे गैरिक वस्त्रधारियों की तरह मैं भी सम्मोहित न हो जाऊं, मुझे तो संन्यासी नहीं होना है, मुझे तो सिर्फ शिष्य रहना है।
शिष्य का मतलब समझते हो?
शिष्य का मतलब होता हैः जो सीखने के लिए परिपूर्ण रूप से तैयार है। परिपूर्ण रूप से तैयार है। फिर संन्यास घटे कि मौत घटे, फिर शर्त नहीं बांधता। वह कहता है--जब सीखने ही चले, तो कोई शर्त न बांधेंगे। फिर जो हो। अगर सीखने के पहले ही निर्णय कर लिया है कि इतना ही सीखेंगे, इससे आगे कदम न बढ़ाएंगे, तो तुम अपने अतीत से छुटकारा कैसे पाओगे? तुम अपने व्यतीत से मुक्त कैसे होओगे? तो तुम्हारा अतीत तुम्हें अवरुद्ध रखेगा।
मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। मैं किसी को भी नहीं कह रहा हूं कि संन्यासी हो जाओ। जल्दी ही मैं लोगों को समझाने भी लगूंगा कि अब मत होना।

क्योंकि आखिर मुझे भी कितनी झंझट लेनी है, उसकी सीमा है। जल्दी ही मैं लोगों को हताश भी करने लगूंगा कि नहीं, कोई जरूरत नहीं है संन्यास की। मैं किसी को कह भी नहीं रहा हूं कि तुम संन्यास ले लो। और अगर कभी किसी को कहता हूं तो उसी को कहता हूं जिसे मैं पाता हूं कि जो ले ही चुका है; जो सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा है। प्रतीक्षा भी इसलिए कर रहा है कि संकोच लगता है-- कैसे कहूं कि मुझे संन्यास दे दें? उसको ही मैं कहता हूं। मांगूं कैसे? पता नहीं पात्र हूं या अपात्र हूं? ऐसा जब मैं कोई व्यक्ति पाता हूं, जो यह सोचता है कि मांगूं कैसे, पता नहीं अपात्र होऊं? यह दुविधा मेरे सामने नहीं खड़ी करना चाहता कि मुझे न कहना पड़े, तो चुपचाप प्रतीक्षा करता है। जब मैं किसी को ऐसे चुपचाप प्रतीक्षा करते देखता हूं, तभी उसे पुकार कर कहता हूं कि तू संन्यास ले। अन्यथा मैं नहीं कहता।
यह प्रश्न पूछा है विजय ने। विजय परसों दर्शन को आया था। बार-बार माला
की तरफ देखता था। मगर मैंने नहीं कहा। नहीं कहा इसीलिए कि ये सब भाव भीतर बैठे हैं। और विजय मुझसे परिचित है, कम से कम बीस साल से परिचित है। लेकिन उसके भीतर एक तरह की अस्मिता है, जिसका मुझे पता है। कठोर अस्मिता है, वही बाधा है। वही अस्मिता नये-नये रूप लेती है। अब वही अस्मिता कहती है कि क्या आपके पास शिष्य बन कर नहीं रह सकता? संन्यास लेना क्या आवश्यक है? मेरी तरफ से कोई भी बात आवश्यक नहीं है। तुम्हें जितने दूर तक चलना हो, चलो। शिष्य रहना है, शिष्य रहो; विद्यार्थी रहना है, विद्यार्थी रहो; दर्शक की भांति आना है, दर्शक की भांति आओ। तुम जितना पी सको, उतना पीओ। मेरी तरफ से बाधा नहीं है अगर तुम आगे बढ़ना चाहो तो, मेरी तरफ से उसमें भी बाधा नहीं है।
तुम पूछते हो कि जिस मौन-साधना का जन्म मेरे भीतर हुआ है, उसे आगे बढ़ाता जाऊं? है तो सब आपका ही दिया हुआ...
यह भी तुम बड़ी मुश्किल से कह रहे होओगे। यह भी मन मार कर कहा होगा कि
है तो सब आपका ही दिया हुआ। यह भी तुम्हें कहना पड़ा है। नहीं तो प्रसन्नता तुम्हें यही कहने में है कि मेरे भीतर जिस मौन-साधना का जन्म हुआ है, उसे मैं आगे बढ़ाता जाऊं? क्योंकि वह मेरे अंतस से जागी हुई प्रणाली है। और मुझे लगता है कि इसी का अनुगमन करने में ज्यादा फायदा है।
जब तुम जानते ही हो कि फायदा किस बात में है, तो चुपचाप अपने फायदे की बात को माने चलो। जिस दिन फायदा न दिखे, उस दिन पूछना। अभी वक्त नहीं आया, अभी पूछने का क्षण नहीं आया। जिस दिन हार जाओ, उस दिन पूछना। पूछते क्यों हो अगर फायदा पता है? कहीं संदेह होगा। कहीं संदेह होगा कि फायदा हो रहा है कि नहीं हो रहा है? कि मैं माने जा रहा हूं?
अक्सर ऐसा हो जाता है। एक वृद्ध सज्जन कुछ दिन पहले आए, कहा कि तीस साल
से ध्यान कर रहा हूं, मंत्र-जाप करता हूं! मैंने पूछा, कुछ हुआ? कहा, हुआ क्यों नहीं! मगर चेहरे पर मुझे दूसरा भाव दिखाई पड़ रहा है कि कुछ नहीं हुआ, वे कहते हैं, हुआ क्यों नहीं! तो मैंने कहा, सच कह रहे हैं? थोड़ा सोच कर कहें; आंख बंद कर लें, एक क्षण सोच लें--कुछ हुआ? सोचा होगा, एकदम मूढ़ नहीं थे, नहीं तो जिद बांध कर बैठ जाते कि जरूर हुआ है। आंख खोलीं और कहा, आपने ठीक पकड़ा, हुआ तो कुछ भी नहीं है। तो फिर मैंने कहा, आप इतनी जल्दी कह क्यों दिए कि हुआ क्यों नहीं! कहा, वह भी मुश्किल मालूम होता है। तीस साल से मंत्र-जाप करो और कुछ न हो तो कैसी अपात्रता मालूम होती है! तो कैसा पापी हूं मैं! फिर तीस साल बेकार गए? तो तीस साल का अहंकार खंडित होता है।
तो अक्सर लोग, जब कुछ नहीं भी होता, तो भी किए चले जाते हैं। क्योंकि
अब कैसे छोड़ें? तीस साल नियोजित कर दिए, किसी ने पचास साल किसी विधि में लगा दिए, अब कैसे छोड़ें? अभी एक वृद्ध सज्जन सी.एस.लेविश लंदन से आए, वे गुरजिएफ के शिष्य हैं। कोई पचास साल... अस्सी साल उनकी उम्र... पचास साल गुरजिएफ की धारा के अनुसार चले। मुझे वहां से पत्र लिखते थे कि आना है, दर्शन करना है। गुरजिएफ के साथ तो नहीं हो पाया, चूक गया, आपको नहीं चूकना है। यहां आए, लेकिन वह पचास साल का जो गुरजिएफ की प्रणाली के साथ चलने का अहंकार है, वह भारी था। कहने लगे कि अब इस उम्र में क्या संन्यास लेना! अस्सी साल का हो गया; अब इस उम्र में क्या नाव बदलनी!

मैंने कहा, पुरानी नाव ले जाती हो तो मैं भी नहीं कहूंगा कि नाव बदलो। मेरी नाव में वैसे ही भीड़ है; तुम पुरानी नाव से जा सकते हो, इस नाव में वैसे भी गुंजाइश नहीं है, नाव को रोज बड़ा करने की कोशिश चल रही है। मगर अगर पुरानी नाव कहीं न ले जाती हो तो एक दफा सोच लो।
वे इतने घबड़ा गए कि भाग गए। यह बात ही सोच कर घबड़ा गए कि पुरानी नाव से
न हुआ हो! फिर उन्होंने आश्रम में दूसरे दिन प्रवेश ही नहीं किया। आए थे यहां दो-तीन महीने रुकने को। सिर्फ एक चिट्ठी लिख कर छोड़ गए कि मैं जाता हूं। वह पचास साल का भाव, कि पचास साल मैंने एक साधना में लगाए। आदमी का अहंकार न मालूम किस-किस तरकीबों से अपने को भरता है।
मार्ग मिला हो, मजे से चलो। लाभ हो रहा हो, छोड़ना ही मत! फिर क्या मेरे साथ और हानि उठानी है? जब लाभ हो रहा है, फायदा हो रहा है, और तुम्हें पता है कि फायदा किस बात में होगा, तुम निश्चिंतमना उसी मार्ग पर चलते रहो। और मुझे यह भी सलाह दी है कि मैं यह भी सोचता हूं कि आपकी साधना में एक शाखा ऐसी भी रहे जिसमें बिना संन्यास वगैरह लिए भी उस सत्ता तक पहुंचा जाए।
क्यों? जिनकी इतनी हिम्मत नहीं कि जो मुझसे पूरे जुड़ सकें, वे कहीं और
ही रहें। यहां भीड़ उनकी क्यों मचानी? यहां मुझे उन पर काम करने दो जिन्होंने साहस किया है अपने को पूरा छोड़ने का। इन कमजोरों को यहां क्यों इकट्ठा करना? इन अपाहिजों को यहां क्यों इकट्ठा करना? लंगड़े-लूलों को क्यों इकट्ठा करना? जिन लोगों ने समर्पण किया है, उनको पहुंचा पाऊं उनकी मंजिल तक, सारी शक्ति उन्हीं पर लगा देनी है।
इसलिए चुनूंगा, जल्दी ही उनको चुनता रहूंगा, धीरे-धीरे उनको छांट दूंगा बिल्कुल, जिनसे मुझे लगे कि जिनका साथ कुछ अर्थ का नहीं--जो साथ हैं ही नहीं; जो नाहक ही भीड़-भाड़ किए हैं। ताकि मेरी सारी शक्ति और मेरी सारी सुविधा उनके लिए उपलब्ध हो सके जिन्होंने जोखम उठाई है। उनके प्रति मेरा कुछ दायित्व है। उन्होंने जोखम उठाई है, उनके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है। और जिन्होंने कुछ दांव पर नहीं लगाया है, उनसे मेरा क्या लेना-देना? तुम उतनी ही मात्रा में पाओगे, जितना तुम दांव पर लगाओगे। उससे ज्यादा नहीं मिल सकता है। उससे ज्यादा मिलना संभव ही नहीं है।

आज कुछ नहीं दिया मुझे पूर्व ने

यों रोज कितना देता था।
छंद-छंद हवा के झोंके
प्रकाश, गान, गंध

आज उसने मुझे कुछ नहीं दिया

शायद
मेरे भीतर नहीं उभरा
मेरा सूरज

खोले नहीं मेरे कमल ने
अपने दल
रात बीत जाने पर!

सूरज तभी दे सकता है जब तुम अपने कमल-दल खोलो। तुम जब अपना हृदय-कमल खोलो। तुम अपना हृदय-कमल बंद रखो, फिर शिकायत सूरज की मत करना, फिर यह मत कहना कि सूरज ने मुझे कुछ नहीं दिया। तुम लेने के लिए झोली तो फैलाओ। संन्यास वही झोली फैलाना है। तुम कहते होः मेरी झोली खाली है। तुम कहते होः छुपाऊंगा नहीं, सच-सच कहे देता हूं, मेरी झोली खाली, ये मेरे हाथ खाली, यह मेरा भिक्षापात्र है, मुझे भर दो। संन्यास का इतना ही अर्थ है कि मैं निवेदन करता हूं कि मैं खाली रह गया हूं, और मैं खाली नहीं रह जाना

चाहता, मैं इस जीवन से भर कर विदा होना चाहता हूं। संन्यास का अर्थ है कि मैं कहता हूं कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे किरण चाहिए।
लोग हैं जो कहना चाहते हैं कि जानता तो मैं भी हूं, लेकिन थोड़ा-बहुत आपसे भी मिल जाए तो कोई हर्जा नहीं, उसको भी सम्हाल लूंगा, उसको भी रख लूंगा। ऐसे तो मैंने पा ही लिया है, कुछ आपसे भी मिल जाए तो चलो और, थोड़े से ज्यादा भला।
जिन्हें पता है, उन्हें मुझसे कुछ भी नहीं मिलेगा। जो ज्ञानी हैं, उन्हें मेरे पास से एक किरण भी नहीं मिलेगी। इसलिए नहीं कि मैं उन्हें देने में कोई कंजूसी करूंगा; नहीं मिल सकती, क्योंकि वे अपने कमल-हृदय को ही नहीं खोलेंगे।
संन्यास निमंत्रण है अपने को मिटाने का।

विराट किसी
तरल रूप-सिंधु की लहर
आत्मा के मेरे तट
तोड़ रही है

तकलीफ हो रही है मगर
आश्वास मिल रहा है एक
कि लहर
रूप से अरूप को
जोड़ रही है!

पीड़ा तो होती है। जब तुम टूटोगे तो दुख भी होगा। हृदय क्षार-क्षार होगा, खंड-खंड होगा। टूटोगे तो सुख से कोई नहीं टूटता, यह बात सच है। टूटो तो पीड़ा होती ही है। लेकिन इतना ही आश्वासन बना रहे--
तकलीफ हो रही है मगर
आश्वास मिल रहा है एक
कि लहर
रूप से अरूप को
जोड़ रही है
आने दो मुझे एक लहर की तरह, खोलो अपना हृदय, तो मैं तुम्हें तोडूं। तोडूं तो तुम्हें बनाऊं। मारूं तो तुम्हें जिलाऊं। सूली पर लटको तो तुम्हारा पुनरुज्जीवन है। संन्यास सूली है और पुनरुज्जीवन।

चौथा प्रश्नः यह संसार क्या है? यह माया क्या है?

स्वप्न है अंधेरे से भरे मन का। स्वप्न है सोई हुई चेतना का। रोज रात तुम सपने देखते हो न, ऐसा ही यह भी स्वप्न है खुली आंख देखा गया। भेद जरा भी नहीं है। रात सपने में भी तो तुम इसी भ्रांति में पड़ जाते हो कि जो देख रहे हो वह सच है। वही भ्रांति दिन में भी दोहराते हो। भ्रांति एक ही है। रात सपने को सच मान लेते हो, दिन संसार को सच मान लेते हो। रात दिन का संसार बिल्कुल भूल जाता है; और दिन में रात का सपना बिल्कुल भूल जाता है। और तुमने हजारों सपने देखे और हजारों सुबह तुमने देखीं, और हर सुबह जाग कर पाया सपने झूठे थे। और फिर रात आई और फिर सपने में खो गए; फिर भी याद न की। सपने में कभी याद आती है तुम्हें कि जो देख रहा हूं, यह झूठ है, यह बहुत बार देख चुका? नींद तुम्हारी हद्द की है! कितनी बार तुमने जाना कि सपना झूठ है, मगर यह संपदा तुम्हारे भीतर टिकती नहीं। यह छोटा सा बोध भी तुम्हारे भीतर निर्मित नहीं होता। इसी बोध को तुम्हें नींद में ले जाना पड़ेगा। यह नींद में जाए तो फिर जागरण में भी आएगा।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि पहला काम हैः नींद में जो सपना है उसको सपना जानना। वह यह नहीं कहता था कि संसार को सपना जानो। क्योंकि यह बड़ा काम है, यह संसार तो बहुत बड़ा है। तुम्हारा छोटा सा एक संसार है रात

सपने का--बिल्कुल निजी, वैयक्तिक। वहां तुम अकेले होते हो, कोई बहुत बड़ा भी नहीं होता, छोटा सा घेरा होता है, आंगन! यह तो बड़ा आकाश है। फिर इसमें एक खतरा और है, कि इसमें तुम्हीं नहीं देखने वाले हो, दूसरे भी देख रहे हैं। और दूसरों की गवाही भी मिल रही है कि सच है। रात तुम जो फूल देखते हो वह तो तुम अकेले देखते हो, कोई गवाह नहीं होता, बिना गवाह के भी तुम सच मानते हो। दिन में तो बहुत गवाह हैं; फूल खिला है, लाखों गवाह हैं; हो सकता है तुम गलत हो, इतने लोग कैसे गलत होंगे! इसलिए दिन पर तो भरोसा टूट नहीं सकता।
इस देश में संसार को माया कहने की पुरानी परंपरा रही है। लेकिन गुरजिएफ ने ठीक विधि खोजी थी--इसको तोड़ना कैसे? सिर्फ कहने से क्या होगा? वेदांती कहते रहते हैं--सब संसार माया है। मगर कहने से क्या होता है? उस वेदांती के जीवन में भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता कि संसार माया है। वह भी ऐसे ही जीता है जैसा जिसको तुम कहते हो अज्ञानी, कोई भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है।
मेरे घर एक वेदांती संन्यासी मेहमान हुए। कहते--सब माया है। अपनी छोटी सी संदूक में शंकरजी की एक पिंडी लिए हुए थे। मैं जिनके पड़ोस में रहता था उनके बच्चे वहां मेरे पास खेलने आते थे। वे बच्चे खेल रहे थे, मैंने उनको वह शंकरजी की पिंडी दे दी। मैंने कहा, खेलो! मजा करो! ले जाओ! वे स्वामी तो बहुत नाराज हुए। एकदम पिंडी छीन ली और कहा, आप क्या कहते हैं? यह शंकरजी की पिंडी है, आपको पता नहीं? अपवित्र करवा दी!
मैंने कहा, संसार माया है और पिंडी सच? इतना विराट संसार, ब्रह्मांड माया है और ये छोटे से शंकरजी सच? छोड़ो भी, जाने भी दो, सब माया है! कोई खास चीज नहीं ले जा रहे हैं। पत्थर का टुकड़ा है, कहीं से उठा लिया है।
लेकिन हिम्मत न जुटा सके वे कि पिंडी को दे देते। जल्दी से संदूकची में सम्हाल कर रख ली। तो मैंने कहा, अब तुम यह माया इत्यादि की बकवास बंद कर दो। तुम्हारी पिंडी सच है और किसी ने अपनी तिजोड़ी में धन इकट्ठा कर रखा है, वह माया है? फर्क क्या है? भेद क्या है?
स्वयं आद्य शंकराचार्य के संबंध में यह कहानी है कि काशी के घाट पर उतरते थे सुबह स्नान करके कि एक शूद्र पास से गुजर गया--गुजरा ही नहीं, उनको छूता गुजर गया। बहुत नाराज हो गए। एकदम चिल्लाए कि तुझे इतनी भी समझ नहीं है! शूद्र होकर होश नहीं रखता! मैं अभी-अभी नहा कर आया, मुझे अपवित्र कर दिया!
उस शूद्र ने कहा, महाराज, आपकी ज्ञान की चर्चा सुनी, उसी भ्रांति में मैं आ गया। मैंने सोचा जब सब माया है तो कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण? कैसा शूद्र, कैसा ब्राह्मण, जब सब सपना है? किसने किसको छुआ, जब छूना ही सपना है? फिर मैं यह पूछता हूं कि आपकी देह अपवित्र हो गई कि आपकी आत्मा अपवित्र हो गई? क्योंकि देह तो अपवित्र है, ऐसा आपके वचनों में मैंने पढ़ा कि देह तो अपवित्र है ही। तो जो अपवित्र है, वह तो मेरे छूने से अपवित्र नहीं हो जाएगी। यह भी देह है, वह भी देह है, अपवित्र ने अपवित्र को छुआ, इसमें क्या फर्क पड़ गया? और आत्मा, आपके भाषणों में मैंने सुना कि पवित्र है, शुद्ध-बुद्ध, सत-चित-आनंद। तो मेरी आत्मा ने अगर आपकी आत्मा को छुआ, तो भी कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए, क्योंकि दोनों ही शुद्ध-बुद्ध मिल गए, आनंद ही आनंद है। आप इतने नाराज क्यों होते हैं?
शंकराचार्य कभी किसी पंडित से नहीं हारे थे, उस शूद्र से हारे। झुक कर उसे प्रणाम किया और कहा, तूने मुझे ठीक बोध दिया।
सिद्धांत की बात एक है, तर्क की बात एक है, जीवंत अनुभव बड़ी और बात है। गुरजिएफ ने ठीक विधि खोजी थी। गुरजिएफ की विधि यह थी कि सपने में जाग
कर देखना है कि यह सपना है। तो वह अपने शिष्यों को कहता कि रोज रात सोते समय एक ही बात, एक ही बात, एक ही बात दोहराते-दोहराते सोना; कब नींद आ जाए, पता न चले, तुम यह दोहराते ही रहना कि आज की रात चूकूंगा नहीं, सपना सामने आएगा और मेरे भीतर यह भाव उठेगा कि यह सपना है, यह झूठ है।
कोई तीन महीने से छह महीने लग जाते हैं, लेकिन एक दिन यह बात घटती है।
एक दिन यह बात सपने में घट जाती है कि सामने सपना होता है--यह सोने का महल, कि यह अप्सराओं का नृत्य, कि यह हीरे-जवाहरातों की राशि, या कुछ और--एक दिन

यह बात घटती है कि वह दोहरते-दोहरते निरंतर-निरंतर तुम्हारे चेतन से उतरते-उतरते, रिसते-रिसते अचेतन में बात पहुंच गई। उस दिन सपना होता है और तुम एकदम से जाग कर भीतर देखते हो कि अरे! यह सपना है, झूठ है। और तब एक बड़ा अदभुत अनुभव होगा! अदभुत अनुभव यह होगा कि जैसे ही तुमने जाना कि यह झूठ है कि सपना टूट जाता है--उसी वक्त सपना टूट जाता है; फिर एक इंच आगे नहीं चलता, जैसे फिल्म एकदम से बंद हो गई, पर्दा खाली हो गया।
गुरजिएफ कहता था, फिर दूसरा चरण है। जब यह घट जाए, रात का सपना तोड़ने
की कला तुम्हें आ जाए, तब फिर दिन में जाग कर देखना कि सब सपना है। तब वह भी घटेगा, शायद वह और भी ज्यादा समय लेगा। मगर रात का सपना जिसने तोड़ लिया, उसका दिन का सपना भी टूट जाएगा।
तुम पूछते होः "यह संसार क्या है? यह माया क्या है?"
यह खुली आंख देखा गया सपना है। यह तुम्हारी वासनाओं का विस्तार है।
यह तुम्हारे विचारों का प्रक्षेपण है।

रेत की नाव, झाग के मांझी
काठ की रेल, सीप के हाथी
हलकी-भारी प्लास्टिक की कलें
मोम के चाक, जो रुकें न चलें

राख के खेत, धूल के खलिहान
भाप के पैरहन, धुएं के मकान नहर जादू की, पुल दुआओं के झुनझुने चंद योजनाओं के

सूत के चेले, मूंज के उस्ताद तेश दफ्ती के, कांच के फरिहाद आलिम आटे के और रवे के इमाम और पन्नी के शायराने-कराम

ऊन के तीर, रुई की शमशीर
सदर मिट्टी का और रबर के वजीर

अपने सारे खिलौने साथ लिए दस्ते-खाली में कायनात लिए दो सुतूनों में बांध के रस्सी
हम खुदा जाने कब से चलते हैं
न तो गिरते हैं न सम्हलते हैं

ऐसा सब झूठ है।
हम खुदा जाने कब से चलते हैं
न तो गिरते हैं न सम्हलते हैं
चलती जाती है यह कहानी। और इस कहानी को हम गूंथते चले जाते हैं। हम इसमें रोज पानी डालते हैं। हम रोज इसमें नये-नये आयोजन जुटाते हैं। अगर पुराने खिलौने टूट जाते हैं, हम नये बनाते हैं। अगर एक वासना व्यर्थ होती है, हम दस और सजा लेते हैं। मरते दम तक हम रंगते ही जाते हैं पर्दे को। नये- नये चित्र उभारते हैं, नये-नये गीत बसाते हैं, नये-नये राग छेड़ते हैं, और अत्यंत दुख पाते हैं। फल दुख है।
इसे ऐसा समझो, सत्य का फल है आनंद, असत्य का फल है दुख। जहां दुख पाओ, जानना असत्य है। दुख कसौटी है। जितना दुख, उतना असत्य। जहां दुख पाओ, समझना कि झूठ है कुछ। झूठ से दुख मिलता है। दुख झूठ के साथ-साथ चलता है। दुख और झूठ का शाश्वत रिश्ता है। जहां थोड़ी सी आनंद की झलक मिले, जहां थोड़ी शांति उतरे, जहां थोड़ा सन्नाटा घेरे, जहां थोड़ा विश्राम हो, जहां थोड़ी मौज

उठे, वहां समझना कि सच करीब है, सत्य की कोई किरण तुम्हारे अंतःपटल में प्रवेश कर गई है। खोजना, जहां-जहां आनंद हो वहां-वहां खोजना।
तुमसे कहा गया है कि परमात्मा मिले तो आनंद मिले। मैं तुमसे कहता हूंः आनंद मिले तो परमात्मा मिले। और शांडिल्य मुझसे राजी होंगे। तुमसे कहा गया हैः परमात्मा मिले तो तुम्हारे जीवन में प्रीति का आविर्भाव हो। मैं तुमसे कहता हूंः तुम्हारे जीवन में प्रीति का आविर्भाव हो तो तुम्हें परमात्मा मिले। और शांडिल्य मुझसे राजी होंगे।
सत्य कहो, अगर ज्ञानी की भाषा उपयोग करनी हो; प्रेम कहो, अगर भक्त की भाषा उपयोग करनी हो; लेकिन बात एक ही है। जहां सत्य है, जहां प्रेम है, वहां आनंद है। आनंद सबूत है। इसलिए तुम आनंद की तलाश करो। और जहां-जहां तुम्हें दुख मिलता हो, वहां-वहां अपने को जगाओ। बहुत हो गया! खूब चल चुके! यह सपना अब टूटना ही चाहिए। और तुम्हारे अतिरिक्त कोई इसे तोड़ न सकेगा। तुम ही तोड़ना चाहोगे तो तोड़ सकोगे। खूब देखो, कितना दुख इससे मिलता है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि सपना तोड़ें कैसे? यह बात ही गलत है। सिर्फ सपने से कितना दुख मिलता है, यह भर देखते चलो, टूट जाएगा। तुम्हें दुख का ठीक-ठीक एहसास हो जाए, तुम्हें कार्य-कारण की साफ-साफ समझ आ जाए कि जहां- जहां दुख मिलता है, वहां-वहां झूठ है।
लेकिन तुम बड़े चालबाज हो। तुम अजीब-अजीब बातें सोच लेते हो।
कुसुम ने एक प्रश्न पूछा हैः कि धर्मात्मा मनुष्य को दुख क्यों मिलता
है और पापी मजा क्यों करते हैं?
ऐसा कभी हुआ ही नहीं। अगर दुख मिल रहा हो धर्मात्मा को, तो वे छिपे पापी हैं, और कुछ भी नहीं। और अगर पापी आनंद कर रहा हो, तो तुम्हारे समझने में कहीं भूल हो गई है, वह पापी नहीं है। पाप से और आनंद मिलता ही नहीं, मिल ही नहीं सकता। अगर तुम पाओ कि कोई चोर बड़ा सुखी है, तो उसका मतलब इतना ही हुआ कि चोरी के अतिरिक्त भी उसमें कुछ और गुण होंगे जिनके कारण सुख मिल रहा है। चोरी से कैसे सुख मिल सकता है? हो सकता है साहसी हो। चोर अक्सर साहसी होते हैं। दुनिया में सौ में निन्यानबे आदमी इसीलिए चोर नहीं हैं कि साहस नहीं है, और कोई खास बात नहीं है। कोई गुण वगैरह नहीं है, कोई नीति वगैरह नहीं है, सिर्फ कमजोर हैं, काहिल हैं, नपुंसक हैं, चोरी करने से डरते हैं, कि कहीं पकड़े न जाएं। तुम भी जरा सोचो, अगर तुम्हें कोई बिल्कुल गारंटी दे दे कि तुम पकड़े नहीं जाओगे, फिर तुम चोरी करोगे कि नहीं? पकड़े जाओगे ही नहीं, इसकी पक्की गारंटी है। तो तुम फिर कहोगे, फिर क्यों नहीं करनी? फिर कर ही लें। तो तुम इतने दिन से जो चोरी नहीं कर रहे थे, वह चोरी गलत है, इस कारण नहीं, बल्कि पकड़े जाने का भय है। प्रतिष्ठा पर दाग लगेगा, बेइज्जती होगी, लोग क्या कहेंगे, कि आप और चोर! अहंकार को चोट लगेगी। बस, उसी डर से रुके थे।
सौ अचोरों में निन्यानबे सिर्फ भय के कारण अचोर हैं, इसलिए दुख पाएंगे। वे सोचेंगे कि हम चोरी नहीं कर रहे और दुख क्यों पा रहे हैं? चोर तो हो ही तुम, चोरी की या नहीं, इससे थोड़े ही कोई चोर होता है! चोर होना तुम्हारी चेतना की दशा है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर करता था। उस डिब्बे में दो ही थे,
वह था और एक सुंदर स्त्री थी। उसने सुंदर स्त्री को कहा कि अगर मैं हजार रुपये दूं तो रात मेरे साथ सोओगी? उस स्त्री ने कहा, तुमने मुझे समझा क्या है? चेन खींच दूंगी! पुलिस को बुलाऊंगी! उसने कहा, नाराज न होओ, मैं तो सिर्फ एक निवेदन किया। अगर दस हजार दूं तो? स्त्री शांत हो गई, फिर उसने नहीं चिल्लाया। न उसने कहा कि पुलिस को बुलाऊंगी और चेन खींच दूंगी। मुल्ला ने कहा, दस हजार? तो उसने कहा, दस हजार के लिए मैं राजी हो सकती हूं। मुल्ला ने कहा, ठीक है, और अगर दस रुपया दूं? तब तो वह स्त्री एकदम खड़ी हो गई और उसने कहा, अभी चेन खींचती हूं, अभी पुलिस को बुलाती हूं। पर मुल्ला ने कहा, यह क्या बात हुई? उस स्त्री ने कहा, आप जानते नहीं मैं कौन हूं! मुल्ला ने कहा, मैं समझ गया तुम कौन हो, अब तो हम मोल-भाव कर रहे हैं। दस हजार में जब तुम सोने को राजी हो तो यह तो मैं जान ही गया कि तुम कौन हो, अब तो सिर्फ मोल-भाव की बात है। तो मैं व्यापारी आदमी हूं! वह तो मैंने दस

हजार इसीलिए कहे थे कि पहचान लूं कि तुम हो कौन। वह बात खतम हो गई, वह निर्णय हो चुका, अब नाहक चेन वगैरह न खींचो, बैठो। अब तो मोल-भाव कर लें बैठ कर, जो भी तय हो जाए, ठीक है।
तुम भी सोच लेना, तुम्हारी जीवन-दशा तुम्हारे चोरी करने से चोर की नहीं होती, चोर की वृत्ति! उस वृत्ति के कारण तुम दुख पाते हो। और हो सकता है, चोर अगर सुख पा रहा है, तो जरूर उसमें कुछ होगा, कुछ होगा जिससे सुख आता है--साहस होगा, बल होगा, दांव पर लगाने की हिम्मत होगी, निश्चिंत मन होगा कि हो जो हो। दुनिया क्या कहती है, इसकी फिकर न करता होगा। थोड़ी बगावती दशा होगी। कुछ होगा उसके भीतर, कुछ गुण होगा जिसके कारण सुख मिलता है। तुम्हारा महात्मा है, तुम कहते हो, महात्मा है, बड़ा दुख पा रहा है। लेकिन दुख पाएगा तो सबूत है कि कहीं कुछ बात होगी। कभी महात्मा दुख नहीं पाता; पा नहीं सकता, क्योंकि दुख छाया है झूठ की। दुख छाया है असत्य की। दुख छाया है माया की। अब अगर महात्मा दुख पा रहा है तो कहीं न कहीं कोई भ्रांति है, महात्मा है नहीं। और अगर कहीं कोई पापी आनंद पा रहा है, तो वहां भी तुम्हारी समझ में कुछ भूल हो गई है। फिर से देखना, गौर से देखना। कभी-कभी शराबियों में ऐसे सज्जन मिल जाते हैं, जो सज्जनों में न मिलें। अक्सर शराबी जितने सरल होते हैं, उतने सज्जन नहीं होते। सरलता आनंद लाती है। अगर कोई सरलता की वजह से शराब पी रहा है तो निश्चित ही आनंद होगा। और अगर कोई सिर्फ स्वर्ग पाने के लिए शराब नहीं पी रहा है, तो आनंद नहीं हो सकता। क्योंकि वहां वासना है। सरलता नहीं है, गणित है, चालबाजी है। वह आदमी होशियार है। वह कह रहा है, स्वर्ग जाना है मुझे। स्वर्ग जाना है तो इतना चुकाना पड़ेगा।
तुम अपने भीतर ही परीक्षण करो और तुम पाओगेः जब भी तुम सच के अनुकूल होते हो, तब तत्क्षण वर्षा होती है आनंद की। धूप खिल जाती है, फूल उमग आते हैं, सुवासित हो जाते हो।
संसार क्या है? माया क्या है?
एक जाल है, जो हमने बुना--मकड़ी के जाल की तरह--और जिसमें हम खुद फंस गए हैं।

रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौट के आ जाता हूं
बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं

रोज बसते हैं कई शहर नये
रोज धरती में समा जाते हैं जलजलों में थी जरा-सी गर्मी वो भी अब रोज ही आ जाते हैं

जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत न कहीं धूप, न साया, न सराब कितने अरमान हैं किस सहरा में कौन रखता है मजारों का हिसाब

नब्ज बुझती भी भड़कती भी है दिल का मामूल है घबराना भी रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा एक आदत है जिए जाना भी

कौस इक रंग की होती है तुलूअ एक ही चाल भी पैमाने की
गोशे-गोशे में खड़ी है मस्जिद शक्ल क्या हो गई मयखाने की

कोई कहता था समंदर हूं मैं और मेरी जेब में कतरा भी नहीं खैरियत अपनी लिखा करता हूं अब तो तकदीर में खतरा भी नहीं

अपने हाथों को पढ़ा करता हूं कभी कुरान, कभी गीता की तरह चंद रेखाओं में सीमाओं में जिंदगी कैद है सीता की तरह

राम कब लौटेंगे, मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता

ऐसी बुरी दशा है--
राम कब लौटेंगे, मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता
आदमी बंद पड़ा सीता की तरह। और किसी और ने नहीं बनाए हैं ये जाल, ये हमने बनाए। और न हमने केवल बनाए, हम रोज बना रहे हैं। आज भी तुम बनाओगे। आज तुम्हारा दिन इसी में जाएगा। इन्हीं दीवालों को तुम और मजबूत करोगे, इन्हीं सींखचों पर तुम और फौलाद चढ़ाओगे। इन्हीं जंजीरों को तुम और भारी करोगे। इसी पागलपन को तुम और खाद दोगे, पानी दोगे।
रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा
एक आदत है जिए जाना भी
तुम जीए जा रहे हो, आदतवश। कल भी जीए थे, परसों भी जीए थे, जीने की एक आदत हो गई है। जैसे लोग सिगरेट पीते हैं, ऐसे लोग जीते हैं। क्या करें, आदत हो गई। लोग सिगरेट पीते हैं, शराब पीते हैं, पान खाते हैं, तमाखू चबाते हैं, ऐसी ही जीने की भी आदत हो गई है, क्या करें? कल भी जीए थे, परसों भी जीए थे, बहुत दिन जीए हैं, अब जीने की आदत हो गई है तो जीए जाते हैं। उन्हीं बातों को दोहराए चले जाते हैं जिन्हें कल भी किया था।
रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौट के आ जाता हूं
तुम जरा देखो, तुम्हारा जीवन का चाक घूमता रहता है--वहीं, वहीं, वहीं। इसलिए ज्ञानियों ने संसार को संसार-चक्र कहा है।
रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौट के आ जाता हूं
बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं
सोचते हो तुम कि तोड़ चुके तुम, मगर तुम जरा गौर से देखो, उन्हीं से टकराते हो। कल भी क्रोध से टकराए थे, परसों भी क्रोध से, और परसों से पहले भी, और आज भी। भरोसा रखो अपना, आज भी क्रोध से ही टकराओगे; और आने वाले कल भी। सोचते हो तुम कि कसमें खा ली हैं, अब कभी क्रोध न करेंगे। कसमें काम आती हैं? सब कसमें खाते हैं! क्रोध कसमों से बहुत बड़ा है। कितनी बार कसम खा ली है कि अब और मोह न बनाएंगे! लेकिन मोह फिर-फिर बन जाता है। मोह कसमों से बड़ा है। कितने तो व्रत लिए, सब व्रत तो टूट गए; कोई व्रत तो सम्हलता नहीं। व्रत सम्हल ही नहीं सकता, सिर्फ होश काम आता है; कोई और बात काम नहीं आती। जरा होश से देखो! यह मत कहो कि क्रोध नहीं करूंगा अब। सोचो कि अब तक क्रोध क्यों किया? यह मत कहो कि कसम खाता हूं कि अब क्रोध न करूंगा। क्योंकि तुम्हारी कसम से क्या होगा? क्रोध जहां से आता था वहां से आएगा; जिस अंधेरे अचेतन से उठता था, फिर उठेगा। तुम्हारी आदत बड़ी है; तुम्हारी कसम नई है, आदत पुरानी है, कसम बहुत छोटी है। जब आदत का तूफान आएगा, कसम ऐसे उड़ जाएगी जैसे हवा में कोई तिनका उड़ गया। फिर-फिर पछताओगे। पछताना भी तुम्हारी आदत है।

मेरे पास एक आदमी आया, उसने कहा कि मेरी क्रोध से जिंदगी बरबाद हो गई, मुझे क्रोध से छुड़ाओ। और मैं बहुत पछताता हूं, और हर बार क्रोध करके रोता हूं, छाती पीटता हूं, अपने को उपवासा भी रखा कई दिन तक, मारा भी है अपने को, आत्मघात की भी सोची, मगर यह क्रोध जाता नहीं। मुझे क्रोध से बचाओ। मैंने उससे कहा, तू एक काम कर, क्रोध तो जाता नहीं, तू कम से कम पश्चात्ताप छोड़। उसने कहा, आप क्या कहते हैं? पश्चात्ताप छोड़ दूंगा, पश्चात्ताप कर-कर के तो क्रोध छूटा नहीं, पश्चात्ताप छोड़ दूंगा तो और क्रोधी हो जाऊंगा। मैंने कहा, वह तो तू करके देख चुका, अब मेरी मान, तू कम से कम पश्चात्ताप छोड़। तू अब क्रोध कर, और बेफिकर कर, और पश्चात्ताप छोड़ दे। और तीन सप्ताह बाद आकर मुझे कहना कि क्या हुआ।
तीन सप्ताह बाद वह आया, वह बोला कि पश्चात्ताप भी नहीं छूटता। तुम जरा सोचो तो, क्रोध क्या खाक छूटेगा, पश्चात्ताप भी नहीं छूटता! नपुंसक पश्चात्ताप, जिससे कुछ परिणाम कभी नहीं हुआ, वह भी नहीं छूटता, वह भी आदत हो गई। मैंने कहा, इसीलिए मैंने तुझसे कहा था कि तुझे यह दिखाई पड़ जाए कि पश्चात्ताप, जिसका कोई परिणाम कभी नहीं हुआ, मुर्दा पश्चात्ताप, वह भी नहीं छूटता, तो क्रोध तो परिणामकारी है। उससे तो बहुत परिणाम हुए हैं-- बुरे हुए, भले हुए, क्या हुए, मगर परिणाम हुए हैं। क्रोध तो ऊर्जा है। जब निर्वीर्य पश्चात्ताप नहीं छूटता, तो यह ऊर्जा से भरा हुआ क्रोध कैसे छूटेगा? तू फिर से देख, तू फिर से सोच। तूने शास्त्रों से सुन लिया कि क्रोध करना बुरा है और तू कसमें खाने लगा है, तूने अपने क्रोध को नहीं जाना।
जमाना था एक, आकाश में बिजली चमकती थी, लोग घबड़ाते थे, कंपते थे। वेद कहते हैं कि इंद्र नाराज है, बिजलियां कौंधा रहा है, देवता नाराज है। अज्ञानियों की तो छोड़ो, उस दिन के ज्ञानी भी यही सोचते थे कि देवता नाराज है। न कोई देवता है, न कोई नाराज है, मगर बिजली इतनी भयंकर थी और घबड़ाने वाली थी, और बिजली की दहाड़ और बादलों की गड़गड़ाहट--हम सोच सकते हैं, आदमी की छाती बैठ जाती होगी, डरता होगा।
फिर हमने एक दिन बिजली को समझ लिया। वेद के ऋषि तो प्रार्थना ही करते रहे कि हे इंद्र देवता, नाराज न होओ! हम गाय चढ़ाएंगे, बैल चढ़ाएंगे, आदमी चढ़ाएंगे; हम यज्ञ करेंगे, हम तुम्हारी स्तुति करेंगे, हे इंद्र देवता! स्तुतियों से भरा हुआ सारा वेद पड़ा है। मगर न इंद्र देवता ने सुनी--कोई हों तो सुनें--न बिजली बंद हुई; बिजली वैसी ही कड़कती रही, और बादल वैसे ही गरजते रहे, और तुम्हारे ऋषि आए और चले गए, और कोई परिणाम न हुआ। पानी पर खींची गई लकीरें थीं उनकी प्रार्थनाएं और उनके हवन और उनके यज्ञ। और तुमने बलि भी दी, और तुमने आदमी भी मारे, मगर कुछ भी न हुआ। फिर एक दिन आदमी ने बिजली के रहस्य को समझा, तब से बिजली गुलाम हो गई। अब तुम्हारे घर में पंखा चलाती है, अब इंद्र देवता कुछ भी नहीं कर पाते। बिजली पंखा चला रही है, बिजली घर में तुम्हारे रोशनी कर रही है, तुम्हारा चूल्हा जला रही है, बिजली हजार काम कर रही है। अब कोई प्रार्थना नहीं करता है कि हे इंद्र देवता! अब हम जानते हैं, बिजली हमारे वश में है।
ऐसा ही क्रोध तुम्हारे भीतर के आकाश की बिजली है। पश्चात्ताप से नहीं रुकेगा, प्रार्थना से नहीं रुकेगा; समझो, पकड़ो, पहचानो, जागो--क्या है क्रोध? क्रोध में करुणा छिपी है। जिस दिन तुम क्रोध को समझ लोगे, उसके मालिक हो जाओगे, उस दिन तुम पाओगेः क्रोध तुम्हारा सेवक हो गया! बड़ा सेवक है, उस पर चढ़ कर तुम बड़ी दूर की यात्रा कर सकते हो। जिस आदमी में क्रोध नहीं, उस आदमी में रीढ़ ही नहीं होती। जिस आदमी में क्रोध नहीं, उस आदमी में जिंदगी ही नहीं होती। जिस बच्चे में क्रोध है, उसी में संभावना है। और किसी बच्चे में क्रोध न हो तो समझना गोबरगणेश, किसी काम के नहीं हैं। गणेशजी की जरूरत हो तो उनको बिठाल लो और पूजा का लो। इनसे जीवन में कुछ भी नहीं होगा। कोई संभावना नहीं, ऊर्जा ही नहीं है।
क्रोध मनुष्य के अंतर-आकाश की बिजली है। जीवन को समझो, पहचानो। बिना पहचाने हम जीते हैं, तो--
रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा

एक आदत है जिए जाना भी
रोज बढ़ता हूं जहां से आगे फिर वहीं लौट के आ जाता हूं बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं
रोज बसते हैं कई शहर नये
रोज धरती में समा जाते हैं
जलजलों में थी जरा-सी गर्मी
वो भी अब रोज ही आ जाते हैं
धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सब उदास हो जाता है।
इस संसार की पूरी यात्रा का फल क्या है? आंखें धूल से भर जाती हैं, ओंठों पर धूल जम जाती है, स्वाद मर जाता है, संवेदनशीलता मर जाती है, मरने के पहले हम मर जाते हैं, मरने के पहले हम मुर्दा हो जाते हैं। लोगों को देखो, कितनी धूल जम गई है उन पर! फिर भी चले जाते हैं।
रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा
एक आदत है जिए जाना भी
जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत
न कहीं धूप, न साया, न सराब
कितने अरमान हैं किस सहरा में
कौन रखता है मजारों का हिसाब
नब्ज बुझती भी भड़कती भी है
दिल का मामूल है घबराना भी
और दिल घबड़ाए, यह स्वाभाविक है; क्योंकि यहां कुछ हाथ लग नहीं रहा है। टटोलते-टटोलते थक गए हैं। मरुस्थल ही मरुस्थल है।
जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत
न कहीं धूप, न साया, न सराब
पानी की तो कौन कहे, झूठी मृग-मरीचिका भी नहीं मिलती! मरूद्यान की तो कौन कहे, मरूद्यान का सपना भी हाथ नहीं लगता! जो पकड़ो, वही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं, पास आते-आते सब रंग-रौनक उड़ जाती है। दूर रहो, सब ठीक लगता है। पास आओ, सब व्यर्थ हो जाता है। जो मिल जाए, वही व्यर्थ हो जाता है। जो न मिले, उसी में रस टंगा रहता है। आदमी आशा के सहारे जीता है, अनुभव के सहारे नहीं। अनुभव तो यही कहता है कि अब जागो, बहुत हो गया! आशा कहती है, और थोड़ी देर सो लो, कौन जाने कोई सुखद सपना आने को हो! अनुभव कहता है, यहां कभी कुछ हाथ नहीं लगा। आशा कहती है, अभी तक तो नहीं लगा, ठीक है। लेकिन कल की कौन जाने? कल लग जाए, थोड़ा और, थोड़ा और... । आशा अटकाए चली जाती है। आशा माया का आधार है।
इस आदत से जगना होगा। इस यंत्रवत्ता को तोड़ना होगा। थोड़ा होश सम्हालो। क्या कर रहे हो, इसे जाग कर करना शुरू करो। मैं नहीं कहता कि इसे बंद कर दो आज। किसी स्त्री के प्रेम में हो, अब जाग कर। किसी स्त्री को छाती लगाओ, अब जाग कर। मैं नहीं कहता कि अभी रोक दो। जल्दी मत करना। जल्दी में आदमी कच्चा रह जाता है। और जब तक आदमी पक न जाए, जीवन में कोई क्रांति नहीं होती। धन में मजा है, चलो, और धन इकट्ठा करो, लेकिन अब जरा होश से। गौर से देख लेना धन को हाथ में ले-ले कर कि क्या मिल रहा है? कुछ मिल रहा है? और अभी मैं नहीं कह रहा हूं कि जल्दी निर्णय ले लेना कि नहीं मिल रहा है। शास्त्रों को बीच में मत आने देना और सदगुरुओं को बीच में मत बोलने देना। वे कितना ही कहें कि कुछ नहीं है, सब राख है, मगर तुम्हें अभी इसमें चमक मालूम पड़ती है। तुम्हें जिसमें चमक मालूम पड़ती है, तुम अभी उसकी चमक को और गौर से देखते रहो।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी एक रास्ते से गुजरते थे। उसने भाग कर रास्ते के किनारे पड़ा कुछ उठाया, फिर जोर से फेंका और कहा कि अगर यह आदमी मिल जाए तो इसकी गर्दन उतार लूं। उसकी पत्नी ने कहा, बात क्या है? क्या हुआ? उसने कहा कि किसी आदमी ने इस तरह खखार थूकी कि बिल्कुल अठन्नी मालूम होती थी। चमक रही होगी धूप में।

मगर दूसरों के कहने से नहीं, तुम उठाओगे तो ही, तो ही तुम जानोगे। धन इकट्ठा करने का मन है, करो! पद पर जाने का मन है, जाओ! लड़ो! मगर होश से जाना, कुर्सी पर बैठ कर देखना कि ऊंचे हो गए? क्या मिल गया? यश का मोह है, ठीक है, तलाश करो! जब हजारों लोग तुम्हें जानने लगें, तब सोचना कि क्या मिल गया? इतने लोग मुझे जानते हैं, मेरे नाम को जानते हैं, इससे क्या मिल गया? क्या हुआ? नहीं जानते थे तो हर्ज क्या था? जानते हैं तो लाभ क्या है? मैं भी मिट जाऊंगा, ये भी मिट जाएंगे; इस प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा का प्रयोजन क्या है? बस, इतना जाग कर देखते रहो।
जल्दी निष्कर्ष मत लेना। मेरी तुमसे यह विनती है, जल्दी निष्कर्ष मत लेना। तुम जल्दी निष्कर्ष लेते हो, उसी में कच्चे रह जाते हो, फिर लौट-लौट कर वहीं आ जाते हो। एक चीज को पक जाने दो। जिस दिन तुम पूरी तरह जान लोगे कि कुर्सी पर बैठ कर कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता--चाहे प्रधानमंत्री बन जाओ और चाहे राष्ट्रपति, कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता। सच तो यह है कि कुर्सी पर बैठ कर आदमी के सब छोटेपन जाहिर हो जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि सब छोटेपन ब्रॉडकास्ट हो जाते हैं, सबको दिखाई पड़ने लगते हैं, और कुछ भी नहीं होता। और आदमी भीतर खाली है सो खाली है। मगर जो आदमी कुर्सी पर बैठ जाता है, फिर कुर्सी नहीं छोड़ता, वह जोर से पकड़ लेता है। उसे यह भी दिखाई पड़ता है कि कुछ मिल नहीं रहा है, लेकिन अब छोड़ने में भी डर लगता है। अब यह भय होता है कि मिल तो कुछ नहीं रहा है, लेकिन चलो, ना-कुछ से यही ठीक, कम से कम लोग तो जानते हैं, कम से कम लोगों को तो भ्रांति है कि मिल गया।
ख्याल करना इस बात पर। तुम्हें तो नहीं मिला है, तुम तो जानते हो कि मुझे कुछ नहीं मिला, मगर अब कहने से भी क्या सार है! अपनी दीनता क्या कहनी है! अकड़ कर चलते रहो। लोग तो मानते हैं कि मिल गया। चलो, लोगों को मानने दो। इससे ही एक राहत मिलती है।
जिंदगी कैद है सीता की तरह
राम कब लौटेंगे, मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता
कुछ तो आ गया, रावण ही सही! धन तो आ गया! दूसरे तो सोचते हैं, दूसरे तो तड़फते हैं, दूसरे तो ईर्ष्या से भरते हैं कि इस आदमी को मिल गया। हमको नहीं मिला, कोई हर्जा नहीं! हम अपनी बात छुपा कर रखेंगे, चुपचाप चले जाएंगे। बिना किसी को पता हुए, बिना किसी को खबर पड़े, विदा हो जाएंगे। कहानी रह जाएगी, लोग कहेंगे कि क्या आदमी था, सिकंदर था! इतना धन पाकर मरा! इतनी प्रतिष्ठा, इतना यश लेकर मरा!
ध्यान रखना, जो लोग ऐसा कहेंगे वे वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में
यश नहीं मिला। इसलिए उन्हें कुछ पता नहीं कि अठन्नी थी ही नहीं। ये वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में धन नहीं मिला; ये वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में पद नहीं मिला। चूंकि इन्हें नहीं मिला, दूर के ढोल सुहावने हैं। तुम देखते हो, प्रधानमंत्री आ जाएं या राष्ट्रपति, भीड़ इकट्ठी हो जाती है। ये कौन लोग हैं? ये वे ही लोग हैं जिनके जीवन में कुछ भी नहीं मिला। ये खाली लोग एक दूसरे खाली आदमी को भरने पहुंच जाते हैं। और मजा यह है कि इन खाली लोगों की भीड़ को देख कर वह खाली आदमी जो पद पर बैठा है, सोचता है कि चलो कोई बात नहीं, मुझे तो नहीं मिला है, मगर इतने लोग तो मानते हैं कि मुझे मिला है, यही क्या कम है! चलो, रावण ही आया तो ठीक।
जो आदमी जाग कर देखता रहेगा वह धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इन सारी चीजों को इतनी प्रगाढ़ता से पहचान लेगा--उसी पहचान में मुक्ति है; उसी पहचान में संसार समाप्त हो जाता है, मोक्ष का उदय होता है।

अंतिम प्रश्नः क्या आप शराब भी पीते हैं?

और कुछ पीने योग्य है भी नहीं। वर्षों से पानी तो मैंने पीया नहीं, इतना तो मैं पक्का भरोसा दिला देता हूं--दस साल से तो नहीं पीया। सोडा पीता हूं और शराब। सोडा बाहर का, शराब भीतर की। मैं संतुलन में भरोसा रखता हूं-- थोड़ा बाहर का, थोड़ा भीतर का।

जो कभी खींची नहीं गई
ऐसी शराब है एक

जिसकी तरफ
कभी कोई ताक नहीं सका
ऐसी आब है एक

मैं इस बिना खींची
शराब को
पीता हूं

मैं इस बिना देखी
आब को जीता हूं!

और मैं तुम्हें भी शराबी बनाना चाहता हूं। भक्ति यानी शराब। शांडिल्य यानी शराबी। भक्त का मंदिर यानी मधुशाला, मादकता, माधुर्य। परमात्मा को पीओ, फिर कोई और शराब पीने जैसी नहीं रह जाएगी। मेरे देखे, जो लोग शराब पीते हैं, वे इसीलिए पीते हैं कि उनकी असली खोज तो परमात्मा की है, और परमात्मा मिलता नहीं। असली खोज तो यह है कि कैसे अपने को डुबा दें, लेकिन ऐसी कोई जगह नहीं मिलती जहां डुबा दें, तो चलो भुला लें; डूबना तो होता नहीं, तो थोड़ी देर को भुला लें। शराब थोड़ी देर को भ्रांति देती है कि भूल गए अपने को। अहंकार बहुत पीड़ा है।
ये दो ही उपाय हैं। या तो परमात्मा में डुबा दो अहंकार को, तो सदा को डूब जाता है, फिर कोई पीड़ा नहीं बचती। अगर उतनी हिम्मत न हो सदा को डुबाने की, तो फिर शराब में डुबाओ। फिर शराबें कई तरह की हैं। कोई एक ही तरह की शराब नहीं है--शराब और शराब। जो मधुशाला में बिकती है वह तो एक ही प्रकार की शराब है। और बहुत तरह की शराबें हैं जो दूसरी जगह बिकती हैं, और वे ज्यादा सूक्ष्म हैं।
जो आदमी धन के पीछे दीवाना है, तुम सोचते हो वह शराब नहीं पी रहा है? शास्त्रों में धन के दीवाने को, धन की दीवानगी को धन मद कहा है--धन की शराब। उसको एक नशा है। जैसे-जैसे धन की ढेरी बढ़ती जाती है, वह इसी में अपने मैं को डुबा रहा है। वह अपनी तिजोरी में अपने मैं को डुबा रहा है। उसको कुछ और चिंता नहीं बची है अब, दुनिया में और कोई चिंता नहीं है, सारी चिंताएं उसने एक चीज में नियोजित कर दीं--धन का ढेर! यह उसकी शराब है। शास्त्र ठीक कहते हैं--धन मद।
जो आदमी पद के पीछे दीवाना है, तुम सोचते हो वह शराबी नहीं? तुम सोचते
हो मोरारजी देसाई शराबी नहीं? पद मद शास्त्र कहते हैं। धन से भी बड़ा मद है पद का। बड़ा ही होगा, क्योंकि आदमी अस्सी साल का हो जाए और फिर भी पद के मोह से मुक्त न हो, तो कब मुक्त होगा? भयंकर होगा! बचें चाहे जाएं, लेकिन पद पर तो पहुंचना ही है। किसी तरह पहुंचें, पद पर तो पहुंचना ही है। जवान आदमी पद का दीवाना हो, क्षम्य है। जवानी को मूढ़ताएं माफ की जा सकती हैं। जवानी एक तरह की नासमझी है। मगर अस्सी साल का आदमी पद के पीछे दीवाना हो, क्षम्य नहीं है, माफ नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ हुआ, बाल धूप में पकाए। इसका अर्थ हुआ, जिंदगी ऐसे ही चली गई, एक आदत की तरह। और मजा यह है कि मोरारजी खिलाफ हैं शराब के--शराब-बंदी होनी चाहिए!
मेरे देखे, राजनीति की शराब से जितनी हानि मनुष्य-जाति को हुई है, उतनी अंगूर की शराब से नहीं हुई है। राजनीति से जितनी हिंसा और जितना खून बहा है, उतना अंगूर की शराब से नहीं बहा है। लेकिन एक तरह का शराबी दूसरे तरह की शराब के विरोध में होता है। उसको अपनी शराब पसंद है, वह चाहता है सभी लोग उसी शराब में डूब जाएं।
शराबी की तलाश क्या है--चाहे वह किसी तरह का शराबी हो; संगीत में खोजे,
कि संभोग में खोजे, कि संपत्ति में खोजे, कि सुयश में खोजे, कि सत्ता में खोजे, कहीं भी खोजे--शराबी की खोज क्या है? वह अपने को डुबाना चाहता है।

बहुत गहरे में तो वह परमात्मा को खोज रहा है, लेकिन उसे साफ समझ नहीं है कि वह क्या खोज रहा है। पद को खोजने वाला भी बहुत गहरे में परम पद को खोज रहा है, परमात्मा को खोज रहा है। धन को खोजने वाला भी बहुत गहरे में परम धन को खोज रहा है, परमात्मा को खोज रहा है। शराबी भी वस्तुतः तो उस शराब को पीना चाहता है--

जो कभी खींची नहीं गई
ऐसी शराब है एक

जिसकी तरफ
कभी कोई ताक नहीं सका
ऐसी आब है एक

मैं इस बिना खींची
शराब को
पीता हूं

मैं इस बिना देखी
आब को जीता हूं!

वह भी वही पीना चाहता है, लेकिन वह बड़ी महंगी मालूम पड़ती है। दाम चुका सकेगा कि नहीं! यात्रा बड़ी लंबी है, यात्रा शिखर की, उसे अपने पैरों पर इतना भरोसा नहीं। यात्रा कठिन और दुर्गम, खड्ग की धार पर चलना होगा। तो वह सोचता हैः यह अपने वश की बात नहीं, हम तो जाकर बाजार में सस्ती शराब खरीद लेते हैं और पी लेते हैं। चलो थोड़ी देर को भूले, यही बहुत। अहंकार थोड़ी देर को भी भूल जाता है शराब में, तो भी राहत मिलती है। तो जरा सोचो उस शराब की जहां अहंकार सदा के लिए भूल जाएगा! फिर राहत ही राहत है। फिर विश्राम है, विराम है। उस दशा को भक्तों ने बैकुंठ कहा है।
कुरान में यह जो बात है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं, उसका यही अर्थ होना चाहिए कि वहां अहंकार को बचाने का कोई उपाय नहीं है, सब डूब जाएगा। खुदा शराब है, यह मतलब होना चाहिए।
पीओ तुम भी! बनो शराबी तुम भी! भक्ति का मार्ग तो पियक्कड़ों का मार्ग है। पर ऐसी शराब पीओ कि फिर नशा उतरे न। चढ़े तो चढ़े, फिर उतरे न। उतर-उतर जाए, वैसे नशे का कितना मूल्य हो सकता है? वैसा नशा क्षणभंगुर है।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः क्षणभंगुर से संबंध छोड़ो और शाश्वत से जोड़ो। क्षणभंगुर से प्रेम करो, दुख आता है। शाश्वत से प्रेम करो, परम सुख आता है। क्षणभंगुर की शराब पीओ--अंगूर की शराब--दुख लाएगी। थोड़ी देर को धोखा होगा, फिर धोखा टूटेगा। हर बार जब धोखा टूटेगा, तुम और भी गर्त में गिरोगे, और भी अंधेरे में गिरोगे, और भी नरक में गिरोगे। शाश्वत की शराब पीओ। और जब शाश्वत उपलब्ध हो सकता हो, तो फिर क्या क्षुद्र को पीना! जब आकाश से बरसता हुआ स्वाति नक्षत्र का जल उपलब्ध हो सकता हो, तो नाली की गंदगी में क्यों डूबना!
हां, मैं शराब पीता हूं और मैं तुम्हें भी शराब पीना सिखाना चाहता हूं।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
ग्यारहवां प्रवचन

भक्ति आत्यंतिक क्रांति है

सूत्र

ब्रह्मकांडं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्।। 26।।
बुद्धिहेतुप्रवृत्तिराविशुद्धेरवधातवत्।। 27।।
तदड्गानांच।। 28।।
तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्।। 29।।
आत्मैकपरां बादरायणः।। 30।।

मनुष्य का अस्तित्व तीन तलों में विभाजित है--शरीर, बुद्धि, हृदय। या दूसरी तरह से कहें तो कर्म, विचार और भाव। इन तीनों तलों से स्वयं की यात्रा हो सकती है। स्थूलतम यात्रा होगी कर्मवाद की। इसलिए धर्म के जगत में कर्मकांड स्थूलतम प्रक्रिया है। दूसरा द्वार होगा ज्ञान का, विचार का, चिंतन-मनन। दूसरा द्वार पहले से ज्यादा सूक्ष्म है। दूसरे द्वार का नाम है ज्ञानयोग। तीसरा द्वार सूक्ष्मातिसूक्ष्म है--भाव का, प्रीति का, प्रार्थना का। उस तीसरे द्वार का नाम भक्तियोग है।
कर्म से भी लोग पहुंचते हैं। लेकिन बड़ी लंबी यात्रा है। ज्ञान से भी लोग पहुंचते हैं। पर यात्रा संक्षिप्त नहीं है। बहुत सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। पहले से कम, लेकिन तीसरे की दृष्टि में बहुत ज्यादा। भक्ति छलांग है। सीढ़ियां भी नहीं हैं, दूरी भी नहीं है। भक्ति एक क्षण में घट सकती है! भक्ति तत्क्षण घट सकती है। भक्ति केवल भाव की बात है। इधर भाव, उधर रूपांतरण। कर्म में तो कुछ करना होगा, विचार में कुछ सोचना होगा; भक्ति में न सोचना है, न करना है, होना है। इसलिए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा है।
आज के सूत्रों में इसी की चर्चा है। शांडिल्य कहते हैं--
ब्रह्मकांडं तु भक्तौ तस्य अनुज्ञानाय सामान्यात्।
"भक्ति के प्रतिपादन के लिए ब्रह्म विषय के उत्तरकांड से ज्ञानकांड
की सामान्यता दिखाई गई है।"
शांडिल्य कहते हैंः वेदों में पहले क्रियाकांड है, कर्मवाद है; फिर दूसरे चरण में ब्रह्मज्ञान की बात है, ज्ञानवाद है; और फिर अंतिम चरण में ईश्वर की चर्चा है, भक्ति और भाव की बात है। जैसे वृक्ष है, तो कर्म; फिर फूल लगे, तो ज्ञान; और फिर सुवास उड़ी, तो भक्ति। सुवास अंत में है।
जो व्यक्ति वृक्ष को ही पूजता रह गया, वह अटक गया। जिसने फूल को ही सब कुछ मान लिया, उसे अभी परम की प्राप्ति नहीं हुई। जो सुवास के साथ एक हो गया, वही स्वतंत्र है। वृक्ष की तो देह है, जड़ देह है। फूल की देह है--उतनी जड़ नहीं, ज्यादा सूक्ष्म तरंगों से निर्मित है, ज्यादा रंगीन है, ज्यादा माधुर्य से भरी है, फिर भी देह तो देह है। वृक्ष की छाल जैसी खुरदुरी नहीं, रेशम जैसी चिकनी है, पर देह तो देह है, रूप तो रूप है, आकार आकार है। आकार से बंधन तो पड़ता ही है। फिर चाहे पत्थर की लकीर खींचो, चाहे फूलों की एक लकीर बनाओ, रेखा बनती है तो विभाजन हो जाता है। फूल भी अभी दूर है। सुवास एक हो गई। सुवास ने देह छोड़ दी। सुवास से मेरा प्रयोजन है--स्थूलता समग्र रूप से विनष्ट हो गई। इसलिए सुवास को तुम देख नहीं सकते, अनुभव कर सकते हो। पकड़ नहीं सकते, मुट्ठी नहीं बांध सकते, अनुभव कर सकते हो। सुवास आकाश के साथ एक हो गई। ऐसी भक्ति है। भक्ति आत्यंतिक क्रांति है।
शांडिल्य कहते हैंः इसलिए वेदों में भक्ति की चर्चा अंत में आई है। अंत में ही आ सकती है।
लेकिन इधर कोई दो-तीन सौ वर्षों से इस देश में कुछ लोगों ने बड़ी मूढ़तापूर्ण बात फैला रखी है। उन्होंने यह फैला रखा है कि कलियुग में तो भक्ति ही काम की है! जैसे कि भक्ति निकृष्टतम है। उन्होंने यह बात चला रखी है कि कलियुग में और सब मार्ग तो संभव नहीं हैं, वे तो सतयुग में संभव थे,

जब लोग महान थे, जब लोग शुद्ध और सात्विक थे, जब लोगों के जीवन में प्रामाणिकता थी, सचाई थी; जब पृथ्वी पर मनुष्य मनुष्य जैसा नहीं, देवता जैसा चलता था, तब संभव था ज्ञान। अब तो कलियुग है, काले दिन आ गए, अमावस की रात है, पापियों का फैलाव है, सब तरफ पाप है, पुण्य की कहीं कोई खबर नहीं; इस अंधेरे युग में, इस काली रात्रि में तो जो निकृष्टतम है वही संभव हो सकता है, वह है भक्ति।
यह तो बात उलटी हो गई। जितना सात्विक व्यक्ति हो, उतनी भक्ति संभव होती है। जितना असात्विक व्यक्ति हो, उतना कर्मकांड संभव होता है। भक्ति तो सुगंध है। भक्ति तो परा है। इसलिए यह कहना कि इस निकृष्ट युग में भक्ति ही एकमात्र उपाय है--इस कारण कहना क्योंकि आदमी पतित हो गया है और पतित आदमी और कुछ कर नहीं सकता--बुनियादी रूप से गलत बात है, सौ प्रतिशत गलत बात है। ख्याल रहे, आदमी पतित नहीं हुआ है, आदमी रोज विकासमान है। इसलिए भक्ति संभव है। मैं भी तुमसे कहता हूं कि आज भक्ति संभव है, लेकिन कारण यह नहीं है कि आज अमावस की रात है, कारण यह है कि आज पूर्णिमा है। मैं भी यही कहता हूं कि आज भक्ति के सिवाय और कुछ काम नहीं आएगा, क्योंकि आदमी प्रौढ़ हुआ है, उठ चुका क्रियाकांडों से। आज क्रियाकांड पर किसका भरोसा है? आज अगर कहीं यज्ञ होता हो तो सिवाय मूढ़ों के और कौन इकट्ठा होता है? जो आज के नहीं हैं, वे इकट्ठे होते हैं। जिन्हें कब्रों में होना चाहिए था, वे इकट्ठे होते हैं। जो दो हजार, तीन हजार साल पुरानी खोपड़ी लिए बैठे हैं, वे इकट्ठे होते हैं। आज की दुनिया में कौन सोचता है कि यज्ञ करने से और पानी गिरेगा? कहां हैं इंद्र? कहां हैं तुम्हारे देवता? गए सब! जो तुमने बचपन में सोची थीं परियों की कथाएं, उनका अब कोई मूल्य नहीं रहा। वे बचपन के हिस्से थे, बच्चों की कहानियां थीं।
बच्चों को कहानियां बतानी हों तो भूत-प्रेत, और परी, और अप्सराएं, और स्वर्ग, और देवी-देवता, इनकी बात करनी पड़ती है। तो ही बच्चे उत्सुक होते हैं। बच्चे यथार्थ में उत्सुक नहीं होते, बच्चे सपनों में उत्सुक होते हैं। बच्चे सपनों में जीते हैं। अभी बच्चों के जीवन में सपने और यथार्थ का कोई भेद पैदा नहीं होता। तुमने अक्सर देखा होगा, छोटा बच्चा सुबह नींद से उठता है और रोने लगता है। और मां परेशान होती है कि किसलिए, अभी तो कुछ हुआ भी नहीं! एकदम नींद खुलते से ही रोने लगता है, वह कहता है--मेरा खिलौना कहां है? उसने सपने में एक खिलौना देखा था, वह अपना खिलौना मांग रहा है। अभी सपने में और सत्य में फर्क नहीं है। अभी धुंधली है चेतना। अभी बुद्धि जाग्रत नहीं है।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि आज भक्ति ही काम आएगी, क्योंकि आदमी प्रौढ़ हुआ है; आदमी की चेतना ज्यादा सजग हुई है।
दुनिया में जो अधर्म दिखाई पड़ता है वह इसलिए नहीं कि आदमी पतित हो गया है, बल्कि इसलिए कि धर्म के पुराने ढंग आदमी के काम के नहीं रह गए हैं, और तुम उन्हीं ढंगों को थोपे चले जाते हो। जैसे कि कोई जवान हो गया है और तुम उसे बचपन का पाजामा पहना रहे हो। वह फेंकता है पाजामा, वह भागता है कि यह तुम क्या कर रहे हो! पाजामे के खिलाफ नहीं है वह, लेकिन जरा उसकी तरफ भी तो देखो। अब वह छोटा बच्चा नहीं रहा। अब तुम यह जो छोटा पाजामा उसे पहना रहे हो, तुम उसकी मखौल उड़वाओगे। तुम बाजार में उसकी हंसी करवाओगे। उसके योग्य पाजामा चाहिए।
आज का मनुष्य अधार्मिक नहीं है। सच तो यह है कि आज का मनुष्य जितना धार्मिक हो सकता है उतना कभी और किसी समय का मनुष्य नहीं हो सकता था। लेकिन पुराना धर्म काम न आएगा। बचकानी बातें काम न आएंगी। अब धर्म को भी प्रौढ़ होना पड़ेगा। कसूर उनका है जो धर्म को प्रौढ़ नहीं होने दे रहे हैं। आदमी तो धार्मिक होने को उत्सुक है, लेकिन उसके योग्य धर्म चाहिए। आदमी ने समझो कि कार बना ली और तुम बैलगाड़ी लिए उसके द्वार पर खड़े हो, और तुम कहते हो--बैलगाड़ी में बैठो! क्या तुम्हारी यात्रा में उत्सुकता नहीं रही? क्या तीर्थयात्रा को न चलोगे? और अगर वह आदमी तुम्हारी बैलगाड़ी में नहीं बैठता है तो तुम कहते हो--अब कोई तीर्थयात्रा पर जाने को उत्सुक नहीं है।

तीर्थयात्रा पर लोग अब भी जाना चाहते हैं। कौन नहीं जाना चाहता? सारा जीवन तीर्थयात्रा है। परमात्मा को लोग आज भी खोज रहे हैं। ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं जो परमात्मा को न खोज रहा हो। लेकिन अब रास्ते, ढंग बदले हैं। बैलगाड़ी पर कोई सवार नहीं होना चाहता। और तीर्थयात्रा का मतलब अब कुंभ जाना नहीं हो सकता। अब तो कुंभ का गहरा अर्थ खोजना होगा।
कुंभ शब्द जानते हैं कहां से बना? घड़े से बना। कुंभ कहते हैं घड़े को। पूरे भरे घड़े को कुंभ कहते हैं। अब कोई कुंभ के मेले पर नहीं जाना चाहता, अब तो अपने भीतर के सूने घड़े को भरना चाहता है, कुंभ बनाना चाहता है। अब तो लबालब भीतर भरना चाहता है। अब बाहर की गंगा-यमुना और सरस्वतियों में उलझने का कोई रस नहीं है किसी को, अब तो चाहता है कि भीतर। और ये तीन ही भीतर की नदियां हैं--कर्म, ज्ञान, भक्ति।
तुमने देखा, प्रयाग में जाते हो, दो नदियां दिखाई पड़ती हैं--यमुना और गंगा--सरस्वती अदृश्य है। ऐसी ही भक्ति है। कर्मकांड दिखाई पड़ता है। कोई आदमी बैठा है हवन बनाए, अग्नि में आहुति डालता हुआ, शोरगुल मचा रहा है, दिखता है। कोई आदमी बड़े सोच-विचार में पड़ा है, माथे पर पड़े बल तो कम से कम दिखाई पड़ते हैं। तुमने रोदिन का प्रसिद्ध मूर्ति का चित्र देखा होगा-- विचारक। अपनी ठुड्डी से हाथ लगाए, आंख बंद किए, सिर पर बल डाले, रोदिन का विचारक बैठा है। सोच-विचार सिर पर बल ले आता है, चिंता ले आता है। चिंता और चिंतन में बहुत फर्क थोड़े ही है, एक ही शब्द से बने हैं। जहां चिंतन है, वहां चिंता है। लेकिन भक्त को कहां पहचानोगे? भक्त की दशा बड़ी गहन है। भक्त तो भाव है। इसलिए भक्ति को सरस्वती कहा है। वह दिखाई नहीं पड़ती। सुवास! फूल तक दिखाई पड़ती है बात, सुवास में अदृश्य हो जाती है। ऐसी भक्ति है।
आज भी आदमी परमात्मा को खोजना चाहता है, ज्यादा खोजना चाहता है, जितना पहले खोजना चाहता था। और ठीक कारणों से खोजना चाहता है, पुराने लोगों ने गलत कारणों से खोजा था। पुराने आदमी के कारण गलत ही हो सकते थे। बीमारी थी इसलिए खोजा था, क्योंकि औषधि नहीं मिलती थी। आज हमने औषधियां बहुत खोज ली हैं, अब हम परमात्मा को चिकित्सक की तरह नहीं खोजते। जरूरत नहीं है, चिकित्सक हमने पैदा कर लिए हैं। आदमी परमात्मा को खोजता था--वर्षा करो, धूप पड़ रही है, खेत सूखे जा रहे हैं। अब वैज्ञानिक देशों में वर्षा आदमी के हाथ में हो गई है, हम जहां चाहेंगे वहां करवा लेंगे, जब चाहेंगे तब करवा लेंगे। अब इंद्र को कष्ट देने की कोई जरूरत नहीं। आदमी प्रार्थना करता था--मेरी उम्र बड़ी करो, मैं खूब जीऊं। आज उम्र आदमी के हाथ में है। जो बातें आदमी परमात्मा से मांगता था, वे आदमी के हाथ में आ गईं।
लेकिन परमात्मा से उम्र मांगनी, वैभव मांगना, संपदा मांगनी, स्वास्थ्य मांगना, गलत कारण से परमात्मा की तरफ जाना है। परमात्मा की तरफ तो वही जाता है जो सिर्फ परमात्मा को मांगता है। परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी मांगा, तो उसका मतलब है तुम परमात्मा का उपयोग कर रहे हो। परमात्मा में तुम्हारा रस नहीं है; परमात्मा के द्वारा तुम्हें धन मिल सकता है, तो चलो, परमात्मा की पूजा-प्रार्थना कर लेते हो। यह खुशामद से ज्यादा नहीं; यह स्तुति है।
यह आकस्मिक नहीं है कि इस देश में इतने खुशामदी हैं। यह देश सदियों से खुशामद करता रहा है। भगवान की खुशामद करता रहा, राजा-महाराजाओं की खुशामद करता रहा, अब वह दो कौड़ी के राजनीतिज्ञों की खुशामद कर रहा है। खुशामद की आदत पड़ गई है। वह कहीं भी थाल सजाए तैयार है स्वागत करने को! वह किसी के भी चरणों में गिरने को राजी है, नाक रगड़ने को राजी है! रिश्वत देने को राजी है, क्योंकि वह सदा से रिश्वत देता रहा है। यह भारतीय चरित्र हो गया।
लोग कहते हैंः भारत में इतनी रिश्वत क्यों है?
यह कोई नई बात नहीं है। तुम जब जाते हो हनुमानजी के मंदिर में और कह आते हो--लड़के को पास करवा देना तो नारियल चढ़ाऊंगा! तुम क्या समझते हो, क्या दे रहे हो? पांच आने का नारियल! वह भी तुम सड़ा-गला बाजार से खरीद कर लाओगे, सस्ते से सस्ता। तुम हनुमानजी को रिश्वत दे रहे हो।

ये सारी की सारी गलत वृत्तियां धर्म के नाम से प्रचलित थीं। ये समाप्त हो गईं, यह अच्छा हुआ। जाल छूटा इन बीमारियों से। अब आदमी अगर खोजेगा तो परमात्मा के लिए ही खोजेगा।
इसलिए मैं कहता हूंः जब समाज समृद्ध होता है तो परमात्मा की सच्ची तलाश शुरू होती है। क्योंकि समृद्ध आदमी के पास वह सब है जिसको लोग अतीत में परमात्मा से मांगते रहे थे। सब है उसके पास और फिर भी वह नहीं है। सब है और सब खाली है। धन की राशि लग गई है और भीतर गहरी निर्धनता है। हाथ में बड़ी शक्ति है और भीतर प्राण कंप रहे हैं, भीतर बड़ी कमजोरी है।
यह सदी परमात्मा को ठीक कारणों से खोजना चाहती है। कोई अधार्मिक नहीं
हो गया है, धर्म काम के नहीं रह गए हैं। धर्म के ढंग ओछे पड़ गए, पुराने पड़ गए। धर्म के ढंग आज के विकसित आदमी के अनुकूल नहीं हैं।
मैं भी तुमसे कहता हूंः भक्ति आज के अनुकूल है, लेकिन मेरा हेतु, मेरा कारण अलग। दूसरों ने तुमसे कहाः भक्ति आज के लायक है, क्योंकि तुम इतने पतित हो, और कुछ तुम्हारे लायक हो भी नहीं सकता। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः भक्ति तुम्हारे लायक है, क्योंकि तुम पहली दफे प्रौढ़ हुए हो। मनुष्य-जाति पहली दफा जवान हुई है। बचपन के धुंधले दिन गए, प्रौढ़ मस्तिष्क पैदा हुआ है। इसलिए भक्ति काम की है। शांडिल्य से मैं राजी हूं, क्योंकि शांडिल्य कहते हैं--भक्ति सर्वोपरि है।
बुद्धि हेतुः प्रवृत्तिः अविशुद्धेः अवधातवत्।
"जब तक धान पर छिलका रहता है तभी तक धान को उद्कल और मूसल द्वारा कूटा जाता है। इसी प्रकार बुद्धि संबंधी प्रवृत्तियां तभी तक रहती हैं जब तक चित्त शुद्ध नहीं हो जाता है।"
शांडिल्य कहते हैंः भक्ति के लिए कोई साधन आवश्यक नहीं है, सिर्फ भाव। भक्ति के लिए कोई सीढ़ियां नहीं हैं, सिर्फ छलांग का साहस--कहें दुस्साहस। अपने को छोड़ कर परमात्मा में गिरने की हिम्मत। जैसे नदी सागर में गिरती है। जब नदी सागर में गिरती है तो झिझकती होगी, जरूर झिझकती होगी; क्योंकि अब तक जो थी, अब नहीं रह जाएगी। वे कूल-किनारे, जिनमें बही; वे पर्वत-शृंखलाएं, जिनमें जन्मी; वे मैदान, जिनसे गुजरी; वे लोग, वे वृक्ष, वे मौसम, वे सुंदर सुबहें और सुंदर सांझें, और न मालूम कितने गीत, और गांव-गांव के गीत, और गांव-गांव की धुनें, वे सब याद आती होंगी; सारा अतीत रोकता होगा नदी को कि ठहर जा! क्यों मिटी जाती है? फिर तू तू नहीं रह जाएगी। तेरा तादात्म्य खो जाएगा। तू अपने किनारे मत छोड़, क्योंकि किनारों में ही तेरा अस्तित्व है, तेरा तादात्म्य है, तेरा होना है, तेरी परिभाषा है--तू गंगा है, कि तू सिंधु है, कि तू नर्मदा है। सागर में गिर कर न तू गंगा रह जाएगी, न सिंधु रह जाएगी, न नर्मदा रह जाएगी। सागर में गिरते ही तू नहीं हो जाएगी। रुक जा! ठहर जा! पीछे लौट कर देख! तेरा अपना एक अतीत है, तेरी अपनी एक विशिष्टता है, तेरा अपना एक कुल है, अपना एक गौरव है। हिमालय में जन्मी तू। याद कर कितने-कितने लोगों ने राह में तेरी पूजा की! याद कर कितने दीये तुझमें छोड़े गए और कितने फूल तुझ पर गिराए गए, याद कर! याद कर लोग कितने आनंदित थे! याद कर वे प्रसन्न चेहरे! याद कर वे धन्यवाद और कृतज्ञता के भाव जो तुझे अर्पित किए गए! और आज तू मिटने चली है इस खारे सागर में? पीने योग्य भी न रह जाएगी। फिर कोई फूल न चढ़ाएगा। फिर घाट न बनेंगे तेरे किनारे पर, तीर्थ न उमगेंगे तेरे किनारे पर। मेले न भरेंगे तेरे किनारे पर, फिर तेरा कोई किनारा नहीं, फिर तू नहीं। रुक जा!
अगर नदी सोचती, तो ऐसा होता। आदमी सोचता है, इसलिए ऐसा होता है। परमात्मा में छलांग लगानी, अपने को खोना है। सिर्फ थोड़े से दुस्साहसी लोग कर सकते हैं। फिर मैं तुम्हें याद दिलाऊं, जिनको तुम धार्मिक कहते हो, अक्सर कायर और कमजोर लोग होते हैं। उनके कारण धर्म डूबता और बदनाम होता है। जिनको तुम धार्मिक कहते हो--मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में बैठे हुए लोग--अक्सर कंपे हुए लोग हैं; हाथ-पैर कंप रहे हैं उनके, घबड़ाहट में घुटने टेक दिए हैं उन्होंने।

धर्म उनके जीवन में वस्तुतः पैदा होता है जो निर्भीक हैं, जो अभय हैं;
जो परमात्मा से भयभीत होकर प्रार्थना नहीं करते, जो परमात्मा के प्रेम में पड़ते हैं तब प्रार्थना करते हैं।
दोनों में भेद समझ लेना, बड़ा भेद है, जहर-अमृत का भेद है, जीवन-मृत्यु
का भेद है।
एक आदमी भय से भी प्रेम कर सकता है। मगर वह प्रेम किस मतलब का होगा? तुम किसी की छाती पर तलवार लिए खड़े हो और कहते होः मुझे प्रेम करो! करेगा; क्योंकि तुम्हारी तलवार देख रहा है, तुम्हारी आंखों में दानव देख रहा है। करेगा, झुकेगा, तुम्हारे हाथ चूमेगा, तुम्हारे पैर चूमेगा, और कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, सिर्फ तुम्हीं को प्रेम करता हूं, तुम्हारे लिए जी रहा हूं, तुम्हारे लिए जीऊंगा। और भीतर? भीतर इसके ठीक विपरीत बात होगी कि अगर यह तलवार कभी मेरे हाथ में पड़ जाए और कभी तुम्हें सोते में पा लूं तो तुम्हें मजा चखा दूं! तो तुम्हें बता दूं यह प्रेम का अर्थ क्या है! तो तुम्हें झुका दूं अपने चरणों में इसी तलवार के सहारे!
जहां भय है, वहां घृणा पैदा होती है, प्रेम पैदा नहीं होता। चूंकि दुनिया के धर्मों ने लोगों को ईश्वरभीरु बनाया, इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि लोग ईश्वर के दुश्मन हो गए। सारी दुनिया की भाषाओं में ऐसे शब्द हैं-- ईश्वरभीरु, गॉड फियरिंग। इससे ज्यादा कुरूप शब्द नहीं हो सकते।
महात्मा गांधी ने कहा हैः मैं किसी से नहीं डरता, सिर्फ ईश्वर से डरता हूं।
मैं तुमसे कहता हूंः और सबसे डरना, ईश्वर से मत डरना। ईश्वर से डरे तो कभी संबंध ही नहीं हो पाएगा। ईश्वर से डरोगे? तो फिर जुड़ोगे कैसे? भय से कहीं कोई संबंध बनता है? भय तो विषाक्त कर देता है। भय नहीं, ईश्वर और तुम्हारे बीच प्रेम की तरंग चाहिए। प्रेमी एक-दूसरे में डूबने को आतुर होते हैं। भक्त भय से पैदा नहीं होता। और जो भय से पैदा होता हो, जान लेना वह भक्त नहीं है। वह सिर्फ भयभीत है। इसी भयभीतता के कारण दुनिया में धर्म कम दिखाई पड़ता है, क्योंकि सदियों तक आदमी को भयभीत किया गया। इसका इकट्ठा परिणाम यह हुआ कि फ्रेड्रिक नीत्शे जैसे विचारक ने घोषणा की कि ईश्वर मर गया है। और इतना ही नहीं कि उसने यह कहा कि ईश्वर मर गया है, उसने यह भी कहा कि और ठीक से समझ लो कि कैसे मरा। हमने उसे मारा है। हमने उसकी हत्या की है। करनी ही पड़ी। क्योंकि हमारी छाती पर उसका बोझ भारी हो गया था। नीत्शे ने कहाः गॉड इ.ज डेड एंड नाउ मैन इ.ज फ्री। ईश्वर खतम हुआ और अब आदमी स्वतंत्र है। झंझट मिटी। अब तुम मुक्त हो! अब तुम मुक्त भाव से जीओ! अब किसी मंदिर और मस्जिद में जाकर प्रार्थना करने की, घुटने टेकने की जरूरत नहीं।
यह नीत्शे का वचन कहां से आया? यह उन पादरी, पुरोहितों, पंडितों के कारण आया जिन्होंने सदियों-सदियों तक तुम्हें सिखाया--ईश्वर से डरो, घबड़ाओ। और घबड़ाने के लिए कितने-कितने आयोजन किए--नरक बनाया, नरक की बड़ी बेहूदी कल्पनाएं बनाईं कि तुम्हें सड़ाया जाएगा। स्वभावतः आदमी के मन में ईश्वर के प्रति प्रेम की जगह घृणा का भाव पैदा होता रहा। ऊपर-ऊपर पूजा चलती रही, भीतर-भीतर घाव बड़ा होता रहा, मवाद इकट्ठी होती रही। आखिर हर चीज की एक सीमा होती है। इस प्रौढ़ सदी ने आकर ईश्वर को इनकार कर दिया। तुलसीदास ने कहाः भय बिन होई न प्रीति। इससे ज्यादा गलत बात कभी किसी आदमी ने नहीं कही। कहते हैं, भय के बिना प्रीति नहीं होती। तो तुलसीदास को प्रीति नहीं हुई फिर। क्योंकि भय से तो प्रीति होती ही नहीं। तुमने कभी किसी को प्रेम किया है भय के कारण? तुम बदला लेना चाहते हो।
छोटा बच्चा स्कूल जाता है, शिक्षक को नमस्कार भी करता है, जयरामजी भी करता है--भय के कारण, वह शिक्षक के हाथ में जो छड़ी देखता है। लेकिन तुमने देखा, यह छोटा बच्चा भी बदला लेता है। जब शिक्षक तख्ते पर कुछ लिखता होता है, पीठ इसकी तरफ होती है, तब वह मुंह बिचका देता है। छोटा बच्चा भी बदला ले लेता है। वह भी कुछ शरारत कर देता है, मौका पाकर स्याही छिड़क देता है, या उसकी कुर्सी पर कांटे रख जाता है। वह क्या कर रहा है? वह इतना ही कर रहा है कि आखिर मैं भी आदमी हूं, छोटा ही सही, मगर यह बेंत तो मुझे मत दिखाओ। और इस

घबड़ाहट में मुझसे अगर तुमने नमस्कार ली, तो मैं नमस्कार का बदला लूंगा। इसलिए छोटे बच्चे अपने शिक्षकों की मजाक उड़ाते हुए बाहर मिलेंगे। वह सिर्फ बदला है। वह सिर्फ संतुलन है। छोटे से छोटे बच्चे बाहर बैठ कर क्या बात करते हैं? स्कूल से छूटते ही क्या बात करते हैं? शिक्षकों की मजाक उड़ाते हैं। क्यों? नहीं तो उनके ऊपर बड़ी ग्लानि का भाव हो जाएगा कि हममें इतनी भी सामर्थ्य नहीं है कि हम थोड़ा बदला लें। अपमान करना चाहते हैं शिक्षक का वे, सम्मान नहीं। क्योंकि शिक्षक जबर्दस्ती सम्मान करवा रहा है।
पुरानी बाइबिल में ईश्वर कहता है कि मैं खतरनाक ईश्वर हूं, मैं बहुत क्रोधी ईश्वर हूं, अगर तुमने मेरी न सुनी तो तुम्हें नष्ट कर दूंगा। यह जिन पंडितों-पुरोहितों ने कहलवाया, उन्हीं ने, नीत्शे का वचन बन सके एक दिन, इसकी आयोजना की। तुम जरा लौट कर देखो धर्म के इतिहास में, तो तुम पाओगेः सबसे पहले जो ईश्वर आया, वह घबड़ाने वाला ईश्वर था, डराने वाला ईश्वर था। फिर जब आदमी थोड़ा प्रौढ़ हुआ, तो हमने ईश्वर की शक्ल बदली; क्योंकि वह घबड़ाने वाला ईश्वर कुरूप मालूम होने लगा।
मूसा का ईश्वर कहता है कि मैं बहुत खतरनाक हूं, मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं, अगर मेरी नहीं मानी, अगर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, तो तुम्हें जला डालूंगा, नष्ट कर दूंगा, नरकों में सड़ाऊंगा। जीसस का ईश्वर कहता है--मैं प्रेम हूं। मूसा और ईसा के बीच क्रांति हो गई। धर्म थोड़ा प्रौढ़ हुआ। दो- ढाई हजार साल का फासला हो गया।
बुद्ध ने तो ईश्वर को समाप्त ही कर दिया, विदा कर दिया। बुद्ध ने कहाः ईश्वर की मौजूदगी से ही भय पैदा होता है। इतना बड़ा है कि आदमी डरता है और सिकुड़ जाता है। डरने और सिकुड़ने के कारण प्रार्थना पैदा नहीं होती। ईश्वर को विदा ही कर दो। प्रेम करने वाला ईश्वर भी आखिर रहेगा तो। और हमसे विराट, महाशक्तिशाली, सर्वज्ञाता! झंझट रहेगी उसकी मौजूदगी में। वह कितना ही कहे, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, लेकिन वह इतना बड़ा है और हम इतने छोटे हैं! बुद्ध ने कहाः इसे जाने दो, प्रार्थना काफी है, ध्यान काफी है, ईश्वर की कोई जरूरत नहीं है। जहां प्रार्थना है, वहां परमात्मा का अनुभव आ ही जाएगा।
यह धर्म ने और भी ऊंची उड़ान ली। यह धर्म का विकास है। जैसे-जैसे भय हमने छोड़ा, वैसे-वैसे हम धार्मिक होने में सफल हुए।
लेकिन जब तक बुद्धि है, जब तक विचार है, तब तक अशुद्धि रहेगी। शांडिल्य कहते हैंः भाव तो परम शुद्धि है। वहां तो शुद्ध करने को कुछ भी नहीं बचता, भाव यानी शुद्धि। वहां तो आदमी छलांग लगा लेता है। इसलिए भक्ति में कोई साधन नहीं है--न श्रवण, न मनन, न निदिध्यासन; भक्ति में कोई साधन नहीं है--न योग, न तप, न विराग; भक्ति में कोई साधन नहीं है, भक्ति तो शुद्ध साध्य है।
लेकिन आदमी का शरीर है, शरीर में बड़ी अशुद्धियां हैं, तो योग की जरूरत है, तो व्यायाम की जरूरत है। तो शरीर को शुद्ध करने के उपाय हैं, देह-शुद्धि की विधियां हैं--वही योग है। फिर कुछ लोग ऐसे पागल हैं कि उसी में लगे रह जाते हैं, वे देह-शुद्धि ही करते रहते हैं जिंदगी भर। वे भूल ही जाते हैं कि देह-शुद्धि किसलिए कर रहे थे। जैसे कोई अपने घर को साफ करने में लग जाए, क्योंकि साफ न करेंगे तो रहेंगे कैसे घर में, और फिर भूल ही जाए कि रहना भी है, और साफ ही करता रहे।
मैं एक घर में कुछ दिनों तक रहा। महिला बिल्कुल पागल थी सफाई के लिए।
वह इतनी पागल थी कि अपने पति को भी सोफे पर बैठने नहीं देती थी--सलवट पड़ जाए! बच्चों को कमरों में घुसने नहीं देती थी। घर बड़ा था, लेकिन सफाई के कारण सबको रहना पड़ता था एक कोने में ही, घर के एक कमरे में ही, बाकी तो सब साफ-सुथरा रहता, दर्पण की तरह चमकता रहता। कुछ दिन मैं घर में मेहमान था। मैंने उस महिला से पूछा कि घर तो तेरा मुझे पसंद आया, मगर यह घर म्यूजियम है, यह रहने योग्य नहीं, क्योंकि यहां सब डरे हुए हैं। तेरा पति डरा है, तेरे बच्चे डरे हैं कि कहीं किसी चीज में कुछ खरोंच न लग जाए। कोई चलता- फिरता नहीं ठीक से, हिलता-डुलता नहीं ठीक से, तूने सबको घबड़ा रखा है, कोई

कचरा भीतर न ले आए। तो सब इस तरह रह रहे हैं जैसे किसी दूसरे के घर में रह रहे हों और चोर की तरह रह रहे हैं। यह सफाई किसलिए है? आदमी सफाई करता है कि वहां रहे। रहेगा तो थोड़ी गंदगी होगी, तो फिर सफाई। मगर सिर्फ सफाई ही करते रहो और रहना भूल जाओ--ऐसे बहुत योगी तुम्हें इस देश में मिलेंगे जो दिन-रात आसन-व्यायाम-उपवास करने में लगे हैं और यह भूल ही गए कि यह सिर्फ घर की सफाई है। इसमें रहोगे कब? रहोगे कैसे?
इससे कुछ ऊपर जाते हैं वे लोग जो बुद्धि की सफाई में लगते हैं। मगर वह
भी सफाई है। उसी की सफाई में जीवन मत गंवा देना। बहुत लोग विचारक होकर ही नष्ट हो जाते हैं। विचार से कभी कुछ मिलता नहीं, कोई निष्पत्ति नहीं आती हाथ में। विचार थोथी यात्रा है, शब्द ही शब्द हैं वहां। रोटी शब्द से पेट तो नहीं भरता। कितना ही सोचो रोटी शब्द पर, तो भी पेट नहीं भरता। एक रूखी- सूखी रोटी भी बेहतर है। तुम्हारे कितने ही सुंदर विचार हों रोटी के संबंध में, उनसे एक रूखी-सूखी रोटी बेहतर है। और तुम परमात्मा के संबंध में लाख सोचो, उसका कोई मूल्य नहीं है। परमात्मा के संबंध में सोचना परमात्मा को जानना नहीं है। जानना और सोचना अलग-अलग बातें हैं। जानना तो तब होता है, जब सोचना रुकता है। जब तक सोचना चलता है, तब तक जानना नहीं होता। क्योंकि सोचने वाला आदमी सोचने में उलझा रहता है, जानने की फुर्सत कहां? सुविधा कहां? अवकाश कहां?
जो आदमी फूल के संबंध में सोच रहा है, वह फूल के सौंदर्य को जी ही नहीं पाता। कोई पक्षी गीत गाता है। और जो आदमी पक्षी के इस गीत के संबंध में विचार करने लगता है--इसका ध्वनि-शास्त्र क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे है, इस पक्षी का कंठ कैसा होगा, उसके कंठ का यंत्र कैसा है; गीत को पैदा करने वाली ध्वनि की संभावना, ध्वनि का अर्थ--इस सबमें जो पड़ गया, वह व्यक्ति पक्षी के गीत के आनंद को अनुभव नहीं कर पाएगा। वह पक्षी के गीत को जानने से रह जाएगा।
ऐसा ही समझो कि तुम्हें एक सुंदर कविता दी गई और तुम इस उलझन में पड़ गए
कि इसकी व्याकरण क्या है? शब्दों का जमाव कैसा है? शैली कौन सी है? नई है कि पुरानी? आधुनिक है कि प्राचीन? फिर छंद के नियम पाले गए हैं या नहीं? मात्राएं सब अपनी जगह हैं या नहीं? अगर तुम इस सबमें पड़ गए, तो एक बात पक्की है कि तुम बहुत कुछ कविता के संबंध में जान लोगे, लेकिन कविता को जानने से वंचित रह जाओगे। या ऐसा समझो कि तुमने वीणा को बजते देखा और तुम वीणा खोल कर बैठ गए और देखा कि तार कहां बने हैं, जापान में कि जर्मनी में? लकड़ी कहां से लाई गई? यह यंत्र बना कैसे है जिसमें इतना माधुर्यपूर्ण संगीत पैदा होता है? तुम वीणा के संबंध में बहुत कुछ जान लोगे, लेकिन संगीत के संबंध में कुछ भी न जान पाओगे।
प्रेम के संबंध में सोचने वाले लोग प्रेम से वंचित रह जाते हैं। यह दुर्भाग्य है, मगर ऐसा है। ईश्वर के संबंध में जो लोग जीवन भर विचार करते हैं, वे ईश्वर को जानने से वंचित रह जाते हैं।
भक्ति इन सब बातों की तरफ इशारा करती है। भक्ति बड़ी क्रांतिकारी दृष्टि है। भक्ति कहती हैः शरीर की शुद्धि ठीक, अपनी जगह ठीक, लेकिन उसी में उलझ मत जाना। उसका मूल्य बहुत कम है। और विचार की प्रक्रियाएं भी सुंदर हैं, लेकिन उन्हीं में भटक मत जाना, अन्यथा वे महाजंगल सिद्ध होंगी और तुम उन्हीं में भटकते रह जाओगे। पहेलियों पर पहेलियां उठती जाएंगी, तुम कभी उस जंगल के बाहर न आओगे। शरीर से पार जाना है, और मन से भी पार जाना है। हृदय में आरोपित करना है जीवन-चेतना को। हृदय में जड़ें जमानी हैं। भाव में डुबकी लेनी है। जो भाव तक उठ पाता है, वह श्रेष्ठतम है इस जगत में, क्योंकि वही परमात्मा को जान पाता है, जी पाता है, हो पाता है।
बुद्धि मलिन है; चंचलता है बहुत, अस्थिरता है बहुत, विचार ही विचार की इतनी तरंगें हैं जैसे झील पर बहुत तरंगें हों और चांद का प्रतिबिंब न बने, और बने भी तो ऐसा लगे जैसे चांदी बिखरी है, चांद को चांद की तरह देखना असंभव हो। तो बुद्धि के लिए शुद्ध होने की प्रक्रियाएं हैं--वही ध्यान है; वही अवधान है। जो सदियों-सदियों में खोजे गए मार्ग हैं, वे बुद्धि को

शुद्ध करने के मार्ग हैं। कैसे बुद्धि एकाग्र हो, कैसे बुद्धि निर्विकार हो, कैसे बुद्धि शांत हो, कैसे विचार शांत हों, यह ज्ञानयोग का मार्ग है। लेकिन भक्तियोग एक अपूर्व कदम है! भक्तियोग यह कहता हैः बुद्धि को छोड़ो उसकी जगह, उसमें उलझो मत! तुम बुद्धि को दरकिनार रख सकते हो और आगे बढ़ जा सकते हो। बुद्धि इतना समय खराब करने योग्य नहीं है। और एक बार उलझे तो बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा। बुद्धि में उठने दो तरंगें, तुम बुद्धि की तरंगों को बिठालने की उतनी चिंता मत करो। तुम बुद्धि पर ज्यादा ध्यान ही मत दो, उपेक्षा करो। उठने दो बुद्धि में तरंगें, तुम तो परमात्मा में सीधी छलांग लगाओ।
फर्क समझना। ज्ञानी कहता हैः जब तक बुद्धि शुद्ध न होगी, तब तक परमात्मा आएगा नहीं। भक्त कहता हैः जब तक परमात्मा न आए, तब तक बुद्धि शुद्ध कैसे होगी? ज्ञानी कहता हैः पहले मैं शुद्ध कर लूं बुद्धि को, तभी परमात्मा आ सकता है, क्योंकि वह शुद्ध में ही आएगा। भक्त कहता हैः उसकी मौजूदगी में ही शुद्धि फलित होती है, उसके बिना कोई शुद्धि नहीं है। उसके बिना कौन शुद्ध करेगा? तुम्हीं करोगे न! तुम ही अशुद्ध हो, तुम कैसे शुद्ध करोगे? कौन शुद्ध कर रहा है? बुद्धि ही बुद्धि को शुद्ध कर रही है। बुद्धि ही शुद्धि के उपाय खोज रही है, वही बुद्धि जो अशुद्ध है। अशुद्ध बुद्धि से शुद्धि के उपाय खोजे जा रहे हैं, वे सब उपाय अशुद्ध होंगे। इसमें एक बड़ी भ्रमणा हो जाएगी।
भक्त कहता हैः स्वीकार करो कि बुद्धि अशुद्ध है, स्वीकार करो कि मैं अशुद्ध हूं। और फिर भी पुकारो उसे कि मैं अशुद्ध हूं भला, तेरा हूं; बुरा हूं भला, तेरा हूं; जैसा हूं, स्वीकार कर, अंगीकार कर, मुझ पर उतर। मैं अपनी धूल खुद न झाड़ पाऊंगा, तेरी वर्षा हो तो मेरी धूल बह जाएगी, मैं शुद्ध हो जाऊंगा। तू आ! तेरे आते ही रोशनी आ जाएगी। तेरी रोशनी में सब निखर जाएगा, सब साफ हो जाएगा। तू आ! तेरी अग्नि मुझ पर बरसे तो जो कूड़ा-कर्कट है, अपने से जल जाएगा, सोना ही बचेगा। आग में बिना डाले सोना निखरेगा कैसे? और भगवान में गुजरे बिना भक्त निखरेगा कैसे?
इसलिए भक्त की दृष्टि को समझ लेना। उसकी दृष्टि यही है कि उसकी मौजूदगी में सब फलित हो जाता है। हम उसे बुला लें, तो सब हो जाएगा। हमारे किए कुछ भी नहीं हो सकता है। हमारे किए पर हमारे हाथ की छाप होगी--हमारे हाथ गंदे हैं। हमारे किए पर हमारे विचार का अंकन होगा--हमारे विचार गंदे हैं। हम तो जो भी करेंगे उसमें गंदगी आ जाएगी--हम गंदे हैं, हमारा अहंकार गंदा है; यह मैं-भाव तो गंदगी का मूल है। तो भक्त कहता हैः यह हमारे वश की बात नहीं है; हम अवश हैं, हम असहाय हैं; हम रो सकते हैं, हम पुकार सकते हैं, हम विह्वल हो सकते हैं, आना तुझे पड़ेगा।
और परमात्मा आता है। परमात्मा की कोई शर्त नहीं है कि तुम जब शुद्ध होओगे तभी आऊंगा। यह शर्त तुम्हारे अहंकार ने ही लगा रखी है। यह शर्त तुम्हारे ही अहंकार की है।
यह ऐसा ही है जैसे बच्चा मल-मूत्र कर लिया है और अपने झूले में मल-मूत्र में दबा पड़ा है और सोचता है कि जब तक शुद्ध न हो जाऊं तब तक मां को कैसे बुलाऊं? पहले शुद्ध तो हो लूं! ऐसे में कहीं मां को बुलाना होता है? ऐसे में कहीं मां आएगी?
लेकिन यह बच्चा शुद्ध होगा कैसे? यह शुद्ध होने की अगर थोड़ी चेष्टा करेगा तो और गंदगी में दब जाएगा। वह जो गंदगी अभी शायद इतनी फैली भी न हो, इसकी शुद्ध करने की चेष्टा में और बुरी तरह फैल जाएगी। नहीं, यह बच्चे को इस सबकी चिंता नहीं आती। यह रोने लगता है, यह पुकारने लगता है, मां दौड़ी चली आती है।
भक्ति का सूत्र, मौलिक सूत्र यही है कि तुम्हारी पुकार परमात्मा को
ले आती है। तुम एक बार पुकारो तो! तुम आसन-व्यायाम करो, तुम श्रवण-मनन-निदिध्यासन करो, तुम सब तरह से अपने को शुद्ध करो, फिर बुलाओगे, इसमें भी अस्मिता है कि मैं जब शुद्ध हो जाऊंगा तब बुलाऊंगा--लेकिन मैं जब शुद्ध हो जाऊंगा तब! तुमने शर्तें बना रखी हैं अपने ऊपर।

तुम शुद्ध हो पाओगे? इस देह को कितना ही शुद्ध करो, यह रोज अशुद्ध हो जाएगी। फिर भोजन करोगे, फिर अशुद्ध हो जाएगी। इसमें तो खून रहेगा और बहेगा। इसमें तो जीवाणु मरेंगे और जीएंगे। यह देह तुम कितनी ही शुद्ध करो--योगी कितनी ही देह की चिंता में लगा रहे, तुम सोचते हो योगी की देह कुछ भोगी से ज्यादा शुद्ध हो जाती है? शायद थोड़ी कम बीमारियां आती होंगी; लेकिन मौत तो फिर भी आती है। शायद थोड़े ज्यादा दिन जिंदा रह जाता होगा; लेकिन ज्यादा दिन जिंदा रहे कि कम, इससे क्या फर्क पड़ता है? योगी की देह भी सड़ेगी, उससे भी दुर्गंध उठेगी। सब जप-तप व्यर्थ श्रम हुए।
और तुम सोचते हो जो बहुत ज्यादा चित्त को एकाग्र करने बैठे रहते हैं, इनका चित्त शांत हो जाता है? सच तो यह है, उलटा अशांत हो जाता है। तुम्हारे घर में अगर एक आदमी को भी यह सनक सवार हो जाए कि चित्त एकाग्र करना है, तो वह खुद तो अशांत हो ही जाता है, पूरे घर को भी अशांत कर देता है। क्योंकि जरा कोई हिल नहीं सकता, लोग बोल नहीं सकते, बच्चे शोरगुल नहीं मचा सकते। पत्नी को बर्तन भी चौके में सम्हाल कर रखने होते हैं--कोई आवाज न हो जाए, क्योंकि पतिदेवता ध्यान कर रहे हैं! उनका ध्यान अगर खंडित हो जाए--और वे बिल्कुल तैयार ही बैठे हैं कि कोई बहाना मिल जाए; खंडित तो हो ही रहा है, बिना किसी बहाने के भी हो रहा है, लेकिन बिना बहाने के वे किस पर टूटें? अगर पत्नी का बर्तन गिर जाए हाथ से, तो वे निकल कर अभी पूजागृह के बाहर आ जाएं कि भ्रष्ट कर दिया मेरा ध्यान! अशांति पैदा कर दी! कोई बच्चा चिल्ला दे, तो उनको मौका मिले, वे बाहर आ जाएं। वे तैयार ही बैठे हैं, वे उबल ही रहे हैं भीतर, भाप इकट्ठी हो रही है।
तुमने देखा नहीं, जितने लोग ध्यान इत्यादि में बहुत उत्सुक हो जाते हैं, उतने ही ज्यादा अशांत चित्त हो जाते हैं, उतने ही क्रोधी हो जाते हैं। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाए, तो समझो घर में एक उपद्रव हो गया। वह क्रोधी हो जाता है। वह माला फेरता रहता है और चारों तरफ देखता रहता है कि सारा संसार उसके अनुकूल चल रहा है कि नहीं! जब मैं माला फेर रहा हूं तो कुत्ते क्यों भौंक रहे हैं? जब मैं माला फेर रहा हूं तो बच्चे क्यों शोरगुल कर रहे हैं? जब मैं माला फेर रहा हूं तो कोई गीत क्यों गा रहा है? जैसे सारी दुनिया तुम्हारे साथ माला फेरने का निर्णय किए बैठी है।
नहीं, ये चित्त को शांत करने वाले लोग चित्त को शांत नहीं कर पाते। चित्त को शांत कर पाते हैं वे लोग, जो चित्त के ऊपर है उसको बुलाते, जो उसे पुकारते; जो कहते हैं, मैं तो ऐसा हूं, बुरा-भला तुम्हारा हूं, तुम आओ, मुझे निखारो, मुझे पखारो, मुझे ले चलो, मैं तो अंधा हूं, मेरा हाथ गहो।
भक्त कहता हैः मैं अपने से कुछ न कर पाऊंगा, तुम कुछ करो। यही समर्पण है। इसी समर्पण में शांति है, शुद्धि है।
शांडिल्य कहते हैंः बुद्धि हेतुः प्रवृत्तिः अविशुद्धेः अवधातवत्।
"जब तक धान पर छिलका रहता है तभी तक धान को मूसल द्वारा कूटा जाता है।"
जब धान का छिलका उतर जाता है, तो फिर उसे कोई नहीं कूटता। क्या छिलका
है जिसकी वजह से तुम्हें अशुद्धि हो रही है और शुद्ध नहीं हो पा रहे हो? अहंकार छिलका है। अहंकार ने तुम्हारी आत्मा को घेरा है। जब तक अहंकार है, तब तक बहुत कूटे जाओगे। जिस दिन अहंकार नहीं रहा, उस दिन कूटने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। इसलिए भक्त कहता हैः न तो कोई योग है, न कोई ध्यान है, सिर्फ शरणागति। अहंकार को छोड़ दो तो धान ने अपना छिलका छोड़ दिया, फिर कूटने की कोई जरूरत नहीं रही।
ये जिनको तुम तपस्वी कहते हो, ये क्या कर रहे हैं? ये मूसल से अपने को कूट रहे हैं। तुम्हें इन पर दया भी आती है, सम्मान भी आता है कि बिचारे कितना कष्ट उठा रहे हैं! इनका कष्ट देख कर तुम इनके चरण छूने भी जाते हो, आदर देने भी जाते हो। मगर ये व्यर्थ कष्ट उठा रहे हैं। और इनके कष्ट उठाने से छिलका कटता नहीं। मजा यह है, यह कोई साधारण धान नहीं है कि मूसल से कूटा और छिलका निकल जाए। यह आदमी है, आदमी बड़ी उलझी हुई धान है। जितना कूटो, छिलका और चिपकता है। तो तुम अपने त्यागियों में जितना अहंकार पाओगे, उतना भोगियों में नहीं होता।

जो आदमी शराबघर जाता है रोज, वह विनम्र होता है। विनम्र इसलिए होता है
कि अहंकार करने का है ही क्या? हमेशा सिर झुकाए रहता है, कहता है--हां, पापी हूं, क्षुद्र हूं, तुच्छ हूं, किसी योग्य नहीं हूं, आपके सामने आंख भी उठाऊं इस योग्य भी नहीं हूं। यह विनम्र होता है। लेकिन जो आदमी रोज मंदिर जाता है, उसकी छाती अकड़ जाती है, उसकी रीढ़ एकदम सीधी हो जाती है। वह अकड़ कर चलता है। वह चारों तरफ देख कर चलता है कि देखो, मैं मंदिर गया! देखो, मैं मंदिर से आ रहा हूं! और तुम सब पापी क्या कर रहे हो? जिसने एकाध दिन उपवास कर लिया, वह दूसरे दिन बाजार में इस तरह घूमता है जैसे उसने कोई संपदा इकट्ठी कर ली। जरा सा किसी ने त्याग कर दिया, कुछ दान दे दिया कि उसका अहंकार बढ़ा।
तुम अपने योगियों को, अपने महात्माओं को जितने अहंकार से भरा हुआ पाओगे, उतने तुम साधारणजनों को न पाओगे। तुम्हारे साधारणजन ज्यादा धार्मिक हैं। मैं दोनों से परिचित हूं। जिसको तुम साधारणजन कहते हो, वह परमात्मा के ज्यादा करीब मालूम पड़ता है। तुम्हारा महात्मा तो भयंकर अहंकार से ग्रस्त है। यह धान ऐसी है आदमी की कि इसको मूसल से कूटो तो छिलका और चिपक जाता है। अगर बहुत कूटो तो धान तो समाप्त हो जाती है, छिलका ही छिलका रह जाता है। छूंछा अहंकार।
शांडिल्य कहते हैंः "इसी प्रकार बुद्धि संबंधी प्रवृत्तियां तभी तक रहती हैं, जब तक चित्त शुद्ध नहीं हो पाता।"
लेकिन चित्त शुद्ध कैसे होगा? शुद्ध कौन करेगा? इसको मैं फिर दोहरा दूं, शुद्ध कौन करेगा? तुम शुद्ध करोगे! तुम्हीं तो अशुद्ध हो! यह ऐसे ही है, जैसे कोई आदमी अपने ही पेट को खोल ले और आपरेशन करे। कितना ही बड़ा सर्जन हो, अपना ही पेट नहीं खोलेगा। कितना ही बड़ा, कितना ही कुशल सर्जन हो और हजारों लोगों की अपेंडिक्स निकाली हो, तो भी अपनी अपेंडिक्स नहीं निकालेगा। क्योंकि वह प्रक्रिया तो घातक है। किसी को पुकारना पड़ेगा। और जब पुकारना ही हो, तो परमात्मा से छोटे को क्यों पुकारना? छोटे से क्यों राजी होना? उस महाचिकित्सक को बुलाओ, उस परमवैद्य को उतरने दो। उसकी मौजूदगी तुम्हें स्वस्थ कर जाएगी, तुम्हारे घाव भर जाएगी। जो गलत है, ले जाएगी; जो सही है, दे जाएगी।
इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि भक्त को इन सब बातों में नहीं पड़ने की जरूरत है।
त्यागियों को बड़ी हैरानी होती है भक्तों को देख कर, क्योंकि उनको लगता है भक्त तो भोगी जैसे हैं। क्योंकि भक्त नाचता, गाता, आनंदित रहता है। यह अस्तित्व भगवान से भरा है, इसलिए उल्लसित रहता है, उदास नहीं रहता। भक्त उदास नहीं होता, यह उसके स्वास्थ्य का लक्षण है। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट होती है। यह परमात्मा से भरा हुआ जगत, यहां मुस्कुराओगे नहीं तो कहां मुस्कुराओगे? भक्त उदास नहीं है, क्योंकि अपने चेहरे पर चिंता का कोई कारण ही नहीं है, सब उस पर छोड़ दिया है, अब वह जाने। जो चांद-तारे चला रहा है, वह मुझ एक छोटे से आदमी को न चला पाएगा? भक्त कहता हैः जो इतने विराट की लीला के पीछे छिपा है, वह मुझ छोटे से क्षणभंगुर के पीछे भी चला लेगा। उसके हाथों में मैं सुरक्षित हूं। भक्त आनंदित होता है, प्रफुल्लित होता है, प्रसन्नचित्त होता है। जैसे-जैसे भक्ति की गहराई बढ़ती है, वैसे- वैसे उसका भोग गहन होता है। यहां भोगने को ही है, त्यागने को क्या है! क्योंकि सब तरफ परमात्मा है। जो भी तुमने त्यागा, वह परमात्मा को ही त्यागा। जितना तुमने त्यागा, उतना परमात्मा तुमने त्यागा। यहां सभी परमात्मा है। कुछ भी त्यागने को नहीं है। हर भोग में परमात्मा को खोज लेना, हर भोग में भगवान को खोज लेना। तपस्वी कहता हैः भोजन करना, लेकिन स्वाद मत लेना। भक्त कहता हैः अन्नं ब्रह्म। भक्त कहता हैः अन्न तो ब्रह्म है। इतना स्वाद लेना कि अन्न तो भूल ही जाए, भगवान का स्वाद आ जाए। ये बड़ी भिन्न दृष्टियां हैं। ये बड़े महत्वपूर्ण बिंदु हैं।
त्यागी भागता है स्त्री से, पुरुष से, डर लगता है उसे। त्यागी सदा डरा हुआ है। और जितना भागता है, उतना डर बढ़ता है। भक्त तो प्रेम में लवलीन होता है। वह कहता है, सब भक्ति के ही रूप हैं। बाप और बेटे के बीच जो घटता है, वह

भक्ति का ही रूप है। और पति-पत्नी के बीच जो घटता है, वह भी भक्ति का ही रूप है। गुरु-शिष्य के बीच जो घटता है, वह भी भक्ति का ही रूप है। परम भक्तियां ये नहीं हैं, बड़ी धूलमिश्रित भक्तियां हैं, मगर हैं तो भक्तियां ही। कभी-कभी किसी क्षण में, जिसे तुमने प्रेम किया है उसमें परमात्मा की झलक निश्चित मिलती है। नहीं तो प्रेम ही नहीं किया होता। प्रेम ही हम परमात्मा को करते हैं, झलक उसकी कहीं भी मिली हो। झलक ही मिलती है; खो-खो जाती है, फिर अंधेरा घना हो जाता है; इससे क्या फर्क पड़ता है? भक्त कहता हैः इस तरह प्रेम करना कि जहां तुम्हारा प्रेम हो, वहीं से प्रार्थना का अनुभव शुरू हो जाए। पत्नी इस तरह चाही जा सकती है कि पत्नी परमात्मा की मौजूदगी बन जाए। पति इस तरह चाहा जा सकता है, पति के साथ इस तरह की लीनता हो सकती है कि पति के साथ, उसका संग प्रार्थना की झलक लाने लगे। मां अपने बेटे को इस भांति चाह सकती है कि हर बेटा कृष्ण बन जाए। भक्त कहता हैः जीवन को रूपांतरण करना है, त्यागना नहीं है। आंख खोल कर ठीक से देखना है, यहां सब तरफ भगवान छिपा है, उसे पुकारना है।
तत अंगानान च।
यह बड़ी क्रांति का सूत्र है।
"उसके अंगसमूहों की भी आवश्यकता नहीं है।"
भक्त को तपश्चर्या, योग इत्यादि के अंगसमूहों की कोई आवश्यकता नहीं है।
तत अंगानान च।
कोई योग, कोई विधि-विधान, कोई निधि, कोई निषेध, भक्त को कुछ भी जरूरत नहीं है। भक्ति काफी है। सीढ़ियां नहीं हैं भक्ति में।
तत अंगानान च।
अंगसमूहों की आवश्यकता भक्ति को नहीं है। योग में अष्टांग है--अंग।
बुद्ध ने भी अष्टांगिक मार्ग कहा है--अंग। भक्ति में कोई अंग नहीं है। भक्ति समग्र है, पूरी-पूरी है। चाहो तो ले लो पूरी, चाहो तो न लो। टुकड़ों में बंटी हुई नहीं है। ऐसा नहीं है कि थोड़ा लिया, फिर थोड़ा लिया, फिर थोड़ा लिया। जिसे लेना है, उसे पूरा। भक्ति अखंड है। उसमें अंग नहीं हैं, खंड नहीं हैं। इसका परम अर्थ होता है कि भक्त सब विधि-निषेधों से मुक्त। जिसको अष्टावक्र ने कहा है--स्वच्छंदता, वह भक्त की परम दशा है। भक्त स्वच्छंद होता है।
घबड़ा मत जाना शब्द स्वच्छंद से; क्योंकि तुमने उसका जो अर्थ सुना है,
वह गलत है। तुमने स्वच्छंद से अर्थ समझ लिया--उच्छृंखल। तुमने स्वच्छंद का अर्थ समझ लिया है--जो कुछ भी करता है उलटा-सीधा। नहीं, स्वच्छंद का वह अर्थ नहीं है। स्वच्छंद का अर्थ होता हैः जो भीतर के छंद से जीता है, स्वयं के छंद से जीता है। जिसके ऊपर बाहर से विधि-निषेध नहीं आते। जो शास्त्रों में देख-देख कर नहीं चलता। जिसके पास बाहर के कोई नक्शे नहीं हैं, जो अंतर्ज्योति से चलता है। प्रभु को पुकार लिया है, अब प्रभु उसके भीतर नाच रहा है, वह उसी नाच में मस्त है, वह उसी मस्ती में चलता है। अब उस पर कोई विधि-विधान नहीं लगते। अब उस पर छोटी-छोटी बातें मर्यादा की लागू नहीं होतीं।
इसलिए तो मीरा कहती हैः लोकलाज खोई।
लोकलाज अंधे आदमियों के लिए व्यवस्थाएं हैं। जिसको आंख मिल गई, वह लोकलाज की चिंता नहीं करता। ऐसा समझो कि एक अंधा आदमी एक लकड़ी को लेकर चलता है, टटोल-टटोल कर। फिर उसकी आंख ठीक हो गई, तो वह लकड़ी को फेंक देता है, अब लकड़ी किसलिए? अब वह स्वच्छंद हो जाता है। पहले लकड़ी से बंधा था, पहले एक तरह की परतंत्रता थी, लकड़ी के बिना चल ही नहीं सकता था। उठता था तो पहले पूछता था--मेरी लकड़ी कहां है? एक इंच नहीं हिलता था बिना लकड़ी के। बिना लकड़ी के चलना खतरनाक था। लकड़ी ही उसकी परिपूरक आंख थी, वही आंख का काम देती थी। लेकिन अब असली आंख मिल गई, अब आंख की जाली कट गई, आंख खुल गई, अब वह लकड़ी के लिए नहीं रुकता, अब लकड़ी को टटोलता भी नहीं है, अब लकड़ी को लेकर चलता भी नहीं है, अब लकड़ी की कोई जरूरत भी नहीं है। जिसके हाथ-पैर ठीक हो गए, वह बैसाखी लेकर तो नहीं चलता?

जगत में इतने विधि-निषेध हैं--ऐसा करो, ऐसा मत करो; यहां जाना, वहां मत जाना; इस तरह बोलना, उस तरह मत बोलना; इस तरह का व्यवहार शुभ, इस तरह का व्यवहार अशुभ; यह नीति, यह अनीति; यह चरित्र, यह दुश्चरित्रता--ये सारे जो इतने नियम हैं, ये लकड़ियां हैं। आदमी अंधा है, उसके भीतर कोई रोशनी नहीं है, उसके पास अपनी आंख नहीं है, उसे टटोल-टटोल कर चलना पड़ता है, नहीं तो गड्ढों में गिरेगा। इतना टटोल-टटोल कर चलता है फिर भी तो गड्ढों में गिरता है, तो बिना टटोले चलेगा तो और भी ज्यादा गिरेगा। टटोल-टटोल कर भी कहां बच पाता है?
कितना तुम सोचते हो कि क्रोध बुरा है और क्रोध करना नहीं है, और शास्त्र कहते हैं क्रोध मत करो, फिर भी क्रोध आता है तब आता है। गड्ढा जब आता है तो तुम चूक नहीं पाते, गिर ही जाते हो। कामवासना जब पकड़ती है तो पकड़ती है। फिर ज्वर की भांति पकड़ती है। फिर तुम्हारे हाथ के बाहर होती है। फिर तुम्हारे सब निर्णय ब्रह्मचर्य के, और तुम्हारी सारी पढ़ी-लिखी बातें दो कौड़ी की हो जाती हैं। उस प्रगाढ़ बाढ़ में सब बह जाता है--तुम्हारे सब शास्त्र, तुम्हारे सब शास्ता। लेकिन जब वासना चली जाती है, तब तुम फिर अपने शास्त्रों को सम्हाल कर फिर चलने लगते हो। फिर अपनी लकड़ी उठा ली, गड्ढे से फिर निकल आए, अब तय कर लिया अब कभी न गिरेंगे, अब जरा और सम्हाल कर चलेंगे, और टटोल कर चलेंगे। मगर ये लकड़ियां बहुत काम आतीं नहीं। स्वच्छंद का अर्थ होता हैः जिसको भीतर का छंद उपलब्ध हो गया, जिसको भीतर की गीतमयता उपलब्ध हो गई, जिसको भीतर का राग सुनाई पड़ने लगा, जिसके भीतर की वीणा बज उठी। अब बाहर से उसको हिसाब नहीं लगाना पड़ता। अब तो उसकी भीतर की वीणा के जो अनुकूल है, वही शुभ है; जो अनुकूल नहीं है, वही अशुभ है। इसको हम ऐसा कहेंः भक्त के अतिरिक्त और लोग सोच-सोच कर करते हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है। भक्त जो करता है वही ठीक है, और भक्त जो नहीं करता वही गलत है। भक्त ठीक ही करता है। क्योंकि भक्त ने अपने को भगवान के साथ तन्मय कर लिया।
और भी ठीक होगा यह कहना कि भक्त अब कुछ नहीं करता, जो भगवान उससे करवाता है वही करता है। भक्त ने अपने को उसके हाथ में छोड़ दिया। भक्त कहता हैः जो तेरी मर्जी। राम बनाना है, राम बना दे; रावण बनाना है, रावण बना दे। जो तेरी मर्जी! मेरी अपनी कोई मर्जी नहीं, मेरी अपनी कोई ना-मर्जी नहीं।
मेरा अपना कोई निर्णय नहीं, सब निर्णय तेरे हाथ में हैं। तू जिलाए तो जीऊं, तू मारे तो मरूं। न तो जीने में मेरा कोई रस है, न मरने में मेरा कोई भय है। एक ही रस है मेरा कि तेरे हाथ मेरे हाथों को पकड़ लें, और मैं तुझसे अलग कभी भी न चलूं; तू चलाए, वैसा ही चलूं।
ऐसी भगवान में तल्लीनता की दशा में स्वच्छंदता अपने आप पैदा हो जाती है। स्वच्छंदता के लिए जो शब्द उपयोग किया है शास्त्रों में, वह है परमहंस। इसलिए भक्त पर कोई नियम लागू नहीं होता। तुम्हारी सामान्य नैतिकताएं-अनैतिकताएं लागू नहीं होतीं।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अपनी सामान्य नैतिकता और अनैतिकता को छोड़ देना। मैं यह कह रहा हूं कि जब तुम भक्त होओगे तो वे छूट ही जाती हैं, वे बच नहीं सकतीं। भक्त का व्यक्तित्व बड़ा विद्रोही होता है, क्योंकि चरित्र-मुक्त होता है।
तुमने देखा, राम की कथा को हम कहते हैं--राम चरित्र मानस। कृष्ण की कथा
को नहीं कहते। कृष्ण की कथा को कहते हैं--कृष्ण-लीला। चरित्र जरा ठीक नहीं है वहां कहना। कृष्ण में चरित्र जैसा कुछ भी नहीं है। राम में चरित्र ही चरित्र है, लीला जैसा कुछ भी नहीं है। राम सत्पुरुष हैं, सच्चरित्र, मर्यादापुरुषोत्तम। क्या करना है, खूब सोच-सोच कर फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं। जो करना चाहिए, वही करते हैं। जो नहीं करना चाहिए, कभी नहीं करते। एक धोबी भी छोटी सी बात उठा देता है, दो कौड़ी की बात, लेकिन राम की मर्यादा ऐसी है कि वे सीता को त्याग देते हैं। एक भी आदमी ने अगर संदेह उठा दिया, तो उनके चरित्र को लांछन लगता है।
पिता आज्ञा दे देते हैं--और पिता ने आज्ञा कोई बहुत सोच-समझ में नहीं
दी थी। दशरथ कोई बहुत चरित्र के व्यक्ति मालूम नहीं होते हैं। बुढ़ापे में

विवाह कर लिया था उस नवयुवती से। अक्सर जब कोई बूढ़ा आदमी विवाह करता है तो झंझटें होती हैं। बूढ़ा आदमी विवाह करता है तो जो नई युवती को ले आया है पत्नी बना कर, उसकी हर बात माननी पड़ती है। अब और तो कुछ कर भी नहीं सकता, जवानी तो है नहीं उसके पास कि प्रेम से आपूर कर दे इस युवती को। अब इसका प्रेम तो भर नहीं सकता, इसलिए यह परोक्ष रूप से और भी कुछ मांगे तो वह भर देता है--हीरे-जवाहरात खरीद लाता है, कार खरीद देता है, बड़ा मकान बना देता है--ये परिपूर्तियां हैं, जवानी तो है नहीं।
तो दशरथ ने बुढ़ापे में विवाह किया। इस नई युवती ने वचन ले लिया कि मैं
जो कहूंगी, वही तुम्हें मानना पड़ेगा। एक वचन मेरा पूरा करना पड़ेगा। अब यह बड़ी क्षुद्र सी बात थी। लेकिन उसने--राम को वनवास भेज दो चौदह वर्ष के लिए, क्योंकि उसके बेटे को राज्य मिले। यह अनैतिक बात थी, नियम के अनुकूल नहीं थी। राम मानते, ऐसा आवश्यक नहीं था। राम कह सकते थे, यह बात ही गलत है, गलत के सामने मैं न झुकूंगा। मगर राम हैं मर्यादापुरुषोत्तम, गलत-सही का सवाल नहीं, पिता की आज्ञा पिता की आज्ञा है। ऐसा नहीं है कि राम को न दिखा होगा कि गलत है, दिखा होगा, लेकिन वे मर्यादा से चलेंगे, वे नियम के अनुकूल होंगे, वे लकीर के फकीर होंगे; जैसा है, जैसा होना चाहिए, जो विधि कहती है, विधान कहता है, संस्कार कहते हैं, उससे रत्ती भर यहां-वहां नहीं होंगे।
उनके जीवन में चरित्र है।
कृष्ण के जीवन में लीला है। लीला का अर्थ होता हैः कोई नियम नहीं है।
इसलिए कृष्ण क्या करेंगे, उसकी पहले से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।
कृष्ण बेबूझ रहेंगे। कुछ भी कर सकते हैं, दिए गए वचन भी भंग कर सकते हैं।
क्योंकि कृष्ण जो कह रहे हैं, वह इस क्षण के लिए लागू है, कल के लिए नहीं।
इमर्सन का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो आज तुम्हारे भीतर से कहा जाए, कहना, और जो कल तुम्हारे भीतर से कहना चाहे, कल जो कहना चाहे, वह कल होने देना। बाधा मत बनने देना। यह मत सोचना कल कि मैंने बीते कल ऐसा कहा था, अब मैं ऐसा कैसे कहूं? प्रत्येक क्षण को उसकी समग्रता में जीना।
लीला का अर्थ होता हैः जीवन में असंगति होगी। तो कृष्ण ने कह दिया था
कि युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा, और फिर उठा लिया। राम से ऐसी अपेक्षा नहीं हो सकती। राम नैतिक पुरुष हैं। कृष्ण धार्मिक पुरुष हैं। कृष्ण परमहंस हैं। कृष्ण उस जगह हैं, जहां परमात्मा के साथ एकलयता हो गई है, स्वच्छंद हैं। अपने को मिटा ही दिया है। अब जो परमात्मा की मर्जी। उस क्षण उसकी मर्जी थी कि वचन दिया कि युद्ध में शस्त्र न उठाऊंगा, और अब उसकी मर्जी है कि उठाना चाहता है, तो मैं कौन हूं बीच में बाधा डालने वाला? मैं कैसे कहूं कि मर्यादा उल्लंघित होती है? कि मेरा दिया हुआ वचन खंडित होगा? मेरे अहंकार पर बदनामी आएगी? नहीं, कृष्ण तो बांस की बांसुरी हैं। कल वैसा गीत गाया था, वह कल का गीत था; आज ऐसा गीत गाते हो, यह आज का गीत है। कल के और आज के गीत में संगति होनी चाहिए, इसकी कोई अनिवार्यता नहीं। कल कल था, आज आज है।
परमहंस का अर्थ होता हैः क्षण-क्षण जीएगा जो। और जिसके दो क्षणों में संगति हो भी सकती है, न भी हो। परमहंस दशा को हमने अंतिम दशा कहा है। वह भक्त की स्थिति है।
तत अंगानान च।
भक्ति के कोई अंग नहीं हैं। और भक्त को किन्हीं अंगों की कोई आवश्यकता नहीं है। भक्त भगवान से तन्मय हो जाता है। बस, यही भक्ति का सार है--तन्मयता। अब कैसी विधि, कैसा निषेध? ज्ञानी कहता हैः नेति-नेति; यह भी नहीं, यह भी नहीं। भक्त कहता हैः इति-इति; यह भी, यह भी। भक्त समग्र स्वीकार करता है। भक्त नहीं जानता ही नहीं। भक्त अस्तित्व के प्रति एक पूर्ण हां का भाव है--स्वीकार, परम स्वीकार। भक्त निषेध, नकार जानता ही नहीं। भक्त की भाषा में नहीं शब्द होता ही नहीं। भक्त की भाषा में एक ही शब्द होता है-- हां।
मैंने सुना है, एक युवती को उसके प्रेमी ने दूर से तार भेजा कि क्या तुम मुझसे विवाह करने को राजी हो? उस युवती ने जल्दी से जाकर पोस्ट आफिस में तार का उत्तर दिया--गांव की ग्रामीण युवती, उसने लिखा--हां। जिस क्लर्क

को तार दिया, उसने कहा कि एक ही शब्द लिख रही हो? एक लिखो चाहे दस, दाम बराबर लगते हैं, तुम दस लिख सकती हो। तो उसने बहुत सोचा और फिर लिखा--हां, हां, हां, नौ बार हां। क्लर्क ने गिनती की, उसने कहा, एक बार और लिख सकती हो। उसने कहा, लिख तो सकती हूं, मगर जरा ज्यादा हो जाएगा। नौ हां काफी नहीं हैं?
असल में एक ही हां में सब हां समा जाते हैं, नौ लिखो, कि दस लिखो, कि हजार लिखो, कि करोड़ लिखो, कोई फर्क नहीं पड़ता। एक ही हां में सब समा जाते हैं। एक ही न में सारी न समा जाती है, एक ही हां में सारे हां समा जाते हैं। भक्त एक बार हां कह देता है, फिर हां जीता है। फिर न नहीं उठाता। इति-इति; यह भी, यह भी, सब परमात्मा है, यहां-यहां, अब, अभी, भक्त की यह उदघोषणा है। ताम ऐश्वर्यपदाम काश्यपः परत्वात्।
"विभिन्नता के कारण आचार्य काश्यप ऋषि ने इसको ऐश्वर्यपदा कह कर वर्णन किया है।"
काश्यप परमभक्त हुए। भक्तों की परंपरा में प्रथम भक्त हुए। उन्होंने
इस अवस्था को ऐश्वर्यपदा कहा है। शांडिल्य उनका उल्लेख करते हैं। ऐश्वर्यपदा क्यों? क्योंकि इसी हां में सारा ऐश्वर्य है, क्योंकि इस हां में स्वयं ईश्वर है। तुमने ख्याल किया, ईश्वर और ऐश्वर्य शब्द एक ही शब्द के रूप हैं। ऐश्वर्य से ही ईश्वर बना है। जिसके साथ जुड़ जाने से ऐश्वर्य मिलता है, वह ईश्वर। जिसके साथ न जुड़े तो दरिद्रता बनी रहती है। चाहे लाख धन इकट्ठा करो, कितना ही पद, कितना ही धन, सारी पृथ्वी पर साम्राज्य फैला दो, लेकिन जब तक ईश्वर से न जुड़े तब तक दीनता और दरिद्रता बनी रहती है, तब तक आदमी भिखारी होता है। तुम्हारे सिकंदर, तुम्हारे नेपोलियन, सब भिखारी हैं। भिखारी की तरह ही जीते हैं और भिखारी की तरह ही मरते हैं। उनके भिक्षापात्र तुमसे बड़े हैं जरूर, बस इतना ही फर्क है। राह के किनारे जो भिखारी भीख मांगता है, उसका भिक्षापात्र छोटा है। सिकंदर जो भीख मांगता है, उसका भिक्षापात्र बड़ा है। राह के भिखारी का भिक्षापात्र गरीब है, सिकंदर का भिक्षापात्र हीरे-जवाहरातों से जड़ा है, मगर भिक्षापात्र भिक्षापात्र है। दोनों मांग रहे हैं, और दोनों गरीब हैं।
सिकंदर जब मरा, तो उसने कहा कि मेरे दोनों हाथ मेरी अरथी के बाहर लटके रहने देना। उसके वजीरों ने पूछा, क्यों? ऐसा कोई रिवाज नहीं। सिकंदर ने कहा, रिवाज हो या न हो, मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहें। लेकिन वजीरों ने पूछा, ऐसी बेढंगी चाह का कारण? तो सिकंदर ने कहा, मैं चाहता हूं कि लोग जब मेरी अरथी को उठते देखें, तो गौर से देख लें कि मैं भी खाली हाथ लिए जा रहा हूं; खाली हाथ आया, खाली हाथ जा रहा हूं, मेरे हाथ भी भरे नहीं; दौड़ा बहुत, तड़पा बहुत, भिखारी का भिखारी मर रहा हूं।
चलो देर सही, लेकिन सिकंदर को समझ तो आई। बहुत देर में आई, मगर थोड़ी समझ की किरण तो आई।
ईश्वर के साथ जुड़ कर ही ऐश्वर्य है। इसलिए काश्यप ने कहा है-- ऐश्वर्यपदा। भक्त की परमहंस दशा, उसकी स्वच्छंद दशा, फिर उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। फिर भक्त ईश्वर है, क्योंकि भक्त ऐश्वर्य के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। सब उसका है, इसलिए ऐश्वर्यपदा। सारा भोग उसका है, सारा सौंदर्य उसका है, सारा रंग, सारे इंद्रधनुष, सारे फूल, सारे आकाश के तारे उसके हैं; यह सारे जगत का वैविध्य उसका है; इसमें से कुछ भी उसने छोड़ा नहीं। त्यागी का ऐश्वर्य इतना बड़ा नहीं हो सकता। उसने बहुत कुछ छोड़ दिया, सिकुड़ गया--त्यागी सिकुड़ जाता है। भक्त फैलता है, विस्तीर्ण हो जाता है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः जो फैलता चला जाए। ब्रह्म का अर्थ होता हैः विस्तार। भक्त जानता है फैलने की कला। त्यागी सिकुड़ना जानता है। त्यागी कहता है, इतना और कैसे छोड़ दूं! इतना और कैसे छोड़ दूं! यह भी कैसे छूट जाए! वह भी कैसे छूट जाए! जिसको तुम संसारी कहते हो, वह कहता है, यह भी कैसे मिल जाए! वह भी कैसे मिल जाए! त्यागी उसके विपरीत है, शीर्षासन करता हुआ भोगी है, वह कहता है, यह भी कैसे छूट जाए! वह भी कैसे छूट जाए! भक्त कहता है, न यहां कुछ छोड़ने को है, न यहां कुछ पकड़ने को है, यह सब हमारा है, हम इसके हैं, हमारे और इसके बीच कोई भेद नहीं है। छोड़ कर कहां जाओगे? इकट्ठा करने

की क्या जरूरत है? यह तुम्हारा है ही, इसलिए इकट्ठा मत करो; और छोड़ कर कहां जाओगे, जहां भी जाओगे यह तुम्हारा ही रहेगा, इसलिए छोड़ कर भी मत जाओ। न भोग, न त्याग। भक्त कहता है, सत्य देखो और ऐश्वर्य से भर जाओ। यह सब तुम्हारा है, तुम इसके हो। यहां तुम अजनबी नहीं हो, यह तुम्हारा घर है।
ताम ऐश्वर्यपदाम काश्यपः परत्वात्।
"इसलिए काश्यप ने कहा कि वह दशा परम ऐश्वर्य की है, ऐश्वर्यपदा है।"
सीमा में दरिद्रता है, असीमा में ऐश्वर्य है। ईश्वर के साथ होकर तुम असीम हो जाते हो, फिर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती--न नीति की, न धर्म की, न समाज की, न संस्कृति की, न सभ्यता की। ईश्वर के साथ होकर फिर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती--हिंदू की नहीं, मुसलमान की नहीं, ईसाई की नहीं। ईश्वर के साथ होकर तुम्हें कोई सीमा नहीं बांधती--पुरुष की नहीं, स्त्री की नहीं; गोरे की नहीं, काले की नहीं; सुंदर की नहीं, असुंदर की नहीं; शिक्षित की नहीं, अशिक्षित की नहीं। ईश्वर के साथ होते ही सारी सीमाएं टूट गईं। नदी सागर में गिरी, सब किनारे खो गए। नदी सागर में गिरी, नाम-रूप सब खो गया। नदी सागर में गिरी, सागर हो गई।
ताम ऐश्वर्यपदाम काश्यपः परत्वात्।
आत्मा एक पराम बादरायणः।
"और आचार्य बादरायण ने इसी अवस्था को आत्मपर कहा है।
आत्मसाक्षात्कार की अवस्था कहा है।"
यह दूसरे महर्षि का उल्लेख करते हैं। दो का किया उल्लेख, क्योंकि दोनों थोड़े प्रतीक रूप हैं।
समझें।
काश्यप ने कहाः ईश्वर की अवस्था है वह, तू। और बादरायण ने कहाः मैं की अवस्था है वह, आत्मपरक, आत्मसाक्षात्कार की। ये दो शब्द समझ लेने जैसे हैंः मैं-तू। ये दो उपाय हैं प्रकट करने के।
पश्चिम के बहुत बड़े यहूदी विचारक मार्टिन बूबर ने एक किताब लिखी है--
आई दाऊ, मैं-तू। किताब महत्वपूर्ण है। यहूदी भक्ति संप्रदाय का सारा सार उसमें है। बूबर ने कहा है कि परमात्मा और भक्त के बीच एक संवाद चलता है, मैं-तू का संवाद। जैसे प्रेमियों के बीच चलता है मैं-तू का संवाद। मैं अकेला-अकेला रहे तो ऊब जाता है, तू की जरूरत पड़ती है; तू के बिना बेचैनी लगती है, तू के बिना खालीपन लगता है, तू के साथ भराव आता है। इसी तरह अकेला कोई मैं ही मैं को जपता रहे, तो ध्यान। बूबर कहता हैः ध्यान में आदमी थोड़ा उदास हो जाएगा, अपने में बंद हो जाएगा, आत्मोन्मुख हो जाएगा, बाहर से संबंध टूट जाएगा। बूबर का कहना हैः प्रार्थना ज्यादा मूल्यवान, उसमें तू मौजूद रहता है--परमात्मा। प्रार्थना में एक संवाद है, डायलॉग है। काश्यप उसमें से चुनते हैं--तू। काश्यप कहते हैं कि मैं तो नहीं हो गया। काश्यप बूबर से आगे जाते हैं। बूबर कहता है, मैं और तू दोनों। इसमें द्वंद्व रहेगा, इसमें द्वैत रहेगा, दुई रहेगी। यहूदी भक्ति का संप्रदाय द्वैत के ऊपर नहीं उठ पाया।
काश्यप कहते हैंः तू, मैं नहीं; ईश्वर; भक्त मिट गया, बस भगवान बचा। यह अद्वैत की घोषणा हुई। लेकिन जब तक तू है, तब तक कहीं छिपे में मैं रहेगा, नहीं तो तू कौन कहेगा? तो ऊपर-ऊपर तो अद्वैत की घोषणा हुई, लेकिन भीतर-भीतर द्वैत बचा रह गया। भूमि में दब गया, भूमिगत हो गया, अंडरग्राउंड हो गया, मगर बचा रहा। इसके विपरीत बादरायण कहते हैंः तू नहीं, मैं। अहं ब्रह्मास्मि! या जैसा मंसूर ने कहाः अनलहक! मैं हूं ईश्वर। तू नहीं है, मैं ही हूं। यह भी एक उपाय है अद्वैत की घोषणा का। लेकिन इसमें भी भूल वही है। जब तक मैं हूं, तब तक तू भी छुपा रहेगा। तू के बिना मैं में कोई अर्थ नहीं होता।
लेकिन ये उपाय हैं अलग-अलग ढंग से उस परम अवस्था को प्रकट करने के। एक उपायः मैं-तू; यहूदी फकीर, हसीद, बूबर। तू--काश्यप, सूफी फकीर जलालुद्दीन रूमी। मैं--वेदांत, बादरायण, मंसूर; अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि। और चौथी संभावना हैः न मैं, न तू; गौतम बुद्ध, झेन। ये चार संभावनाएं हैं। और

पांचवीं संभावना है, वह शांडिल्य की स्वयं की है। आगे के सूत्रों में हम उसकी चर्चा करेंगे।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 बारहवां प्रवचन

भक्ति एकमात्र धर्म

पहला प्रश्नः शुभ क्या है और अशुभ क्या है? फिर शुभाशुभ के पार क्या है?

शुभ का कोई संबंध नीति से नहीं है। नीतियां अनेक हैं, शुभ एक है। हिंदू की नीति एक, मुसलमान की नीति दूसरी, जैन की नीति तीसरी। इसलिए नीतियां तो मान्यताएं हैं; बदलती रहती हैं। उनका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। जो कल अनैतिक था, आज नैतिक हो सकता है। जो आज नैतिक है, कल अनैतिक हो जाएगा।
जैसे, महाभारत युधिष्ठिर को धर्मराज कहता है, और धर्मराज जुआ खेलने में जरा भी संकोच अनुभव नहीं करते। जुआ अनैतिक नहीं था। उन दिनों जुआ नैतिक था। धर्मराज के धर्मराज होने में जुआ खेलने से कोई बाधा नहीं आती। और छोटे-मोटे जुआरी भी न रहे होंगे, सब लगा दिया! सब ही नहीं लगा दिया, पत्नी भी लगा दी! पत्नी कोई संपत्ति नहीं है। पत्नी के पास उतनी ही आत्मा है जितनी पति के पास। किसी को कोई हक नहीं है कि पत्नी को या पति को दांव पर लगा दे। दांव पर लगाने का मतलब है कि पत्नी को बेचने का हक था। इस देश में तो लोग कहते ही हैं--स्त्री-संपत्ति। यह बड़ी अनैतिक बात है--आज। आज धर्मराज को धर्मराज कहना बहुत मुश्किल होगा। अगर धर्मराज धर्मराज हैं तो फिर अधर्मराज कौन है? यह बात ही बेहूदी है, असंस्कृत है। पर उस दिन स्वीकार थी, कोई अड़चन न थी।
आज जो नैतिक है, कल अनैतिक हो जाएगा। नीति बदलती है। इसलिए नीति के साथ शुभ को एक मत समझ लेना। शुभ शाश्वत है। शुभ न हिंदू का, न मुसलमान का, न जैन का, न ईसाई का। शुभ तो परमात्मा से संबंधित होने का नाम है। शुभ सांसारिक धारणा नहीं है, न सामाजिक धारणा है। शुभ तो अंतस-छंद की प्रतीति है। शांडिल्य से पूछो, या अष्टावक्र से, या मुझसे, उत्तर यही होगा कि जिस बात से तुम्हारे भीतर के छंद में सहयोग मिले, वह शुभ। और जिस बात से तुम्हारे भीतर के छंद में बाधा पड़े, वह अशुभ। जिससे तुम्हारा अंतर्संगीत बढ़े, वह शुभ। जिससे तुम्हारा अंतर्संगीत छिन्न-भिन्न हो, खंडित हो, वह अशुभ। जिससे तुम समाधि के करीब आओ, वह शुभ; और जिससे तुम समाधि से दूर जाओ, वह अशुभ। कसौटी भीतर है, कसौटी बाहर नहीं है।
किसी ने पूछा हैः क्या मांसाहार शुभ है या अशुभ?
कसौटी भीतर है। अगर मांसाहार से तुम्हारा ध्यान बढ़ता हो, तो शुभ। अगर मांसाहार से ध्यान में बाधा पड़ती हो, तो अशुभ।
यह भी पूछा है कि मोहम्मद तो मांसाहार करते थे, क्राइस्ट तो मांसाहार करते थे, फिर भी समाधि को उपलब्ध हुए!
तुम क्राइस्ट और मोहम्मद की चिंता मत करो; न महावीर और बुद्ध की चिंता करो; क्योंकि वे बाहर हैं; तुम अपना छंद देखो। कौन जाने महावीर पहुंचे कि नहीं पहुंचे? और कौन जाने मोहम्मद पहुंचे कि नहीं पहुंचे? वह तो मान्यता की बात है। उसके लिए और कोई प्रमाण नहीं है। वह तो विश्वास की बात है। एक बात सुनिश्चित हो सकती है कि तुम जिससे पहुंचो, वह शुभ। तुम अपने भीतर परखो। मांसाहार करते समय तुम्हारी वृत्ति वैसी ही होती है जैसी शाकाहार करते समय? यह देखो। बस वहीं परखो। बाहर से बहाने मत खोजो।
यह बहाना है। मांसाहार करना चाहते होओगे, तो बहाना खोज रहे हो कि मोहम्मद पहुंच गए, तो मैं क्यों नहीं पहुंच जाऊंगा? इस तरह अपने को समझाओ मत। परखो, प्रयोग करो। मैं प्रयोग का पक्षपाती हूं, विश्वास का नहीं। तुम्हारा जीवन ही निर्धारक होगा। तुम अगर पाओ कि मांसाहार करने के बाद चित्त शांत होता है, चित्त में उद्वेग कम हो जाते हैं, क्रोध कम हो जाता है, हिंसा कम हो जाती है, ईर्ष्या कम हो जाती है, अहंकार कम हो जाता है, तो फिक्र छोड़ो महावीरों की और बुद्धों की, तुम मांसाहार करो। और अगर तुम पाओ कि मांसाहार करने से द्वेष बढ़ता है, घृणा बढ़ती है, वैमनस्य बढ़ता है, जीवन

में उत्पन्न होता है गलत, जीवन के संबंध विषाक्त होते हैं, तो फिर फिकर छोड़ो क्राइस्ट की और मोहम्मद की, वे जानें उनका, तुम अपनी फिकर करो।
तुम पाओगे कि मांसाहार करने से अड़चन आती है। और मैं यह नहीं कहता हूं
कि मांसाहार करने वाला समाधिस्थ नहीं हो सकता है। समाधिस्थ हो सकता है। लेकिन फिजूल की अड़चनें। ऐसे ही समझो कि कोई आदमी पहाड़ चढ़ रहा है और गले से एक पत्थर बांधे हुए है। चढ़ सकता है, कोई अड़चन नहीं है, ऐसी अड़चन नहीं है, असंभव नहीं हो गई है बात, पत्थर बांध कर भी कोई चढ़ सकता है। लेकिन इसलिए तुम पत्थर बांध कर चढ़ो, यह तो कोई तर्क न हुआ। अपना ही बोझ चढ़ा लो तो बहुत है, पत्थर और किसलिए बांधते हो? फिर कोई चढ़ गया होगा, रहा होगा कोई राममूर्ति जैसा कि छाती पर पत्थर तुड़वा लिए होंगे। लेकिन तुम्हारे पास वैसी छाती है? पत्थर शायद ही टूटें, छाती टूट जाएगी।
फिर व्यक्ति-व्यक्ति अलग हैं। किसी के भीतर एक तत्व जाकर आनंद उत्पन्न करता है, किसी के भीतर विषाद उत्पन्न करता है। व्यक्ति को परख भीतर से लेनी चाहिए। स्वयं के अतिरिक्त कहीं और कोई कसौटी नहीं है।
तुम पूछते होः "शुभ क्या है?"
शुभ, तुम्हारे छंद में बढ़ती जिससे हो। वही खाओ, वही पीयो, वही उठो, वही बोलो, वही चलो, जिससे तुम्हारा भीतर का छंद बढ़े। जिससे भीतर की वीणा ठीक से बजे। जिससे तुम्हारे जीवन में एक उल्लास, एक हलकापन, जिससे तुम्हें पंख लगें और तुम उड़ सको।
अष्टावक्र का शरीर आठ जगह से टेढ़ा था--इसीलिए उनका नाम अष्टावक्र। तुम यह तो नहीं पूछते कि मैं भी अपने शरीर को आठ जगह से टेढ़ा करूं, क्योंकि अष्टावक्र तो पहुंच गए, आठ जगह से टेढ़े थे--ऊंट जैसे रहे होंगे--इस कारण तुम अपने शरीर को आठ जगह से टेढ़ा तो न करोगे! और मैं यह नहीं कहता हूं कि अष्टावक्र नहीं पहुंचे। जरूर पहुंचे। मगर यह फिजूल झंझट किसलिए लेनी? भले-चंगे पहुंच सकते हो, तो आठ जगह से शरीर को तिरछा क्यों करना? जहां सुगमता से पहुंचा जा सके, वहां व्यर्थ की बाधाएं क्यों खड़ी करना?
शराब पीने वाले भी पहुंच जाते हैं। इससे शराब पीने मत लग जाना। शराब पीने वाला पहुंचता है--शराब पीने के कारण नहीं, शराब पीने के बावजूद। मांसाहारी भी पहुंचता है--मांसाहार के कारण नहीं, मांसाहार के बावजूद। अष्टावक्र पहुंचते हैं, आठ जगह से टेढ़े होने के कारण नहीं, आठ जगह से टेढ़े होने के बावजूद। आठ जगह से टेढ़े होने के कारण तो हजार तरह की अड़चनें आती ही हैं। तुम सौभाग्यशाली हो अगर उन अड़चनों से बच जाओ।
और फिर मैं दोहरा दूं कि मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जिसने मांसाहार किया वह नहीं पहुंचा। नहीं तो राम भी नहीं पहुंचेंगे--क्षत्रिय घर में पैदा हुए थे। और रामकृष्ण भी नहीं पहुंचेंगे, क्योंकि बंगाली घर में मछली तो चलेगी! बिना मछली के कहीं बंगाली का भोजन होता है? फिर तो बहुत कम लोग पहुंचेंगे, सारी पृथ्वी तो मांसाहारियों से भरी है। लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो अगर शाकाहारी होने की सुविधा हो। क्योंकि शाकाहार तुम्हारी देह को निर्मल रखेगा, मन को ताजा और स्वच्छ रखेगा। शाकाहार तुम्हें हलका-फुलका रखेगा। तुम भारी न हो जाओगे।

तुमने देखा, शाकाहारी पशु-पक्षी दिन भर भोजन करते हैं, मांसाहारी सिंह एक ही बार चौबीस घंटे में। क्यों? मांसाहार इतना भारी है कि चौबीस घंटे पचाने में लग जाते हैं। बंदर बैठा है वृक्ष पर, वह शाकाहारी है, वह दिन भर चलाते ही रहता है, जो मिल जाए। क्यों? शाकाहार हलका है। पत्थर की तरह नहीं पड़ जाता है। और देह जब भी भारी होगी, तब आकाश में उड़ना कठिन होगा। देह जब भी भारी होगी, तब ध्यान की ऊंचाइयां छूना कठिन होगा--असंभव नहीं कह रहा हूं, कठिन।
तुमने देखा नहीं, जब तुम खूब भोजन कर लेते हो तो नींद आने लगती है। उससे थोड़ा सा समझो। जब बहुत भोजन कर लिया तो नींद क्यों आती है? जाग्रत रहना कठिन हो जाता है। शरीर इतना भारी हो गया कि सोना चाहता है। बहुत भोजन कर लेने के बाद ध्यान करने नहीं बैठ सकोगे। ध्यान करोगे, झपकी खाओगे, नींद आ जाएगी। इसीलिए तो लोगों ने उपवास की प्रक्रिया खोजी। हलके पेट, खाली पेट

जैसा ध्यान लग सकता है, वैसा भरे पेट नहीं लग सकता। तुमने भी देखा है, तुमने सोचा नहीं है जीवन के बाबत, जिस दिन बिना भोजन किए रात सोओ, तुम्हें पता चल जाएगा, नींद नहीं आती, नींद मुश्किल हो जाती है। नींद के लिए भोजन जरूरी है। ध्यान तो नींद से विपरीत दशा है। ध्यान जागरण की दशा है।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम भूखे रहो, क्योंकि ज्यादा दिन भूखे रहोगे तो घातक हो जाएगा। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम बहुत भारी भोजन करो। मैं तुमसे यही कहता हूं--सम्यक आहार। इतना करो, जिससे शरीर आनंद से चले, नाचता हुआ चले; न ज्यादा, न कम।
और ध्यान रखो, क्योंकि तुम जो भी कर रहे हो उसके परिणाम हैं। एक आदमी किसी पशु की हत्या करके भोजन कर रहा है। यह भोजन बहुत महंगा हो गया। पशु की हत्या करने में इसे कठोर तो हो ही जाना पड़ेगा। फिर चाहे कोई और इसके लिए करे, इसे पता तो है कि मेरे लिए की जा रही है। एक प्राण नष्ट किया जा रहा है, एक देह खंडित की जा रही है। तुम कर पा रहे हो--सिर्फ भोजन के लिए, और भोजन जब कि और ढंग से भी हो सकता था, अपरिहार्य नहीं थी यह हत्या, यह बचाई जा सकती थी--तो तुम कठोर हो रहे हो। अब इस कठोर हृदय में करुणा कैसे पैदा होगी? यह ऐसा ही हो गया कि झरने के मार्ग में एक चट्टान रख दी। हां, कभी-कभी झरना चट्टान को तोड़ कर भी बह आता है--ऐसा ही मोहम्मद में हुआ होगा, झरना चट्टान को तोड़ कर बह आया। लेकिन सदा ऐसा नहीं होगा। मोहम्मद का झरना बड़ा रहा होगा। छोटी-मोटी चट्टान की परवाह नहीं की। अब कौन जाने तुम्हारा झरना कितना बड़ा है? हो सकता है छोटा-मोटा झरना हो, पत्थर रोक ही दे सदा को। झरना बंद ही रह जाए, बहे न, सागर तक पहुंचे न, तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जाए।
सदा अपने भीतर जांचो, परखो। शुभ क्या है, जिससे तुम्हारा जीवन-छंद सधे, जीवन-वीणा से स्वर उठें, जितने संगीतपूर्ण हो सकें, तुम्हारी श्वास-प्रश्वास जितनी संगीत से भर सके, उतना शुभ। शास्त्रों से मत तौलना, अपने भीतर के संगीत से परखना। और एक बार तुम्हें यह कसौटी हाथ लग जाए, तो जल्दी ही तुम अनुभव करने लगोगे कि जीवन में क्रांति होनी शुरू हो गई। क्योंकि जान कर कौन अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारता है? जान कर कोई नहीं मारता। अनजाने चोट लग जाए, एक बात।
तुमने पूछाः "और अशुभ क्या है?"
अशुभ, शुभ से जो विपरीत है, जिससे तुम्हारा छंद भंग होता है, जिससे तुम्हारे भीतर का रस छिन्न-भिन्न होता है, जिससे तुम्हारे भीतर की वीणा के तार टूट जाते हैं, वही अशुभ है।
तुम देखो, किसी से झूठ बोले, झूठ बोलते ही तुम्हारे भीतर के तार संगीत पैदा नहीं करते। झूठ बोलो और तुम देखो, झूठ बोलते ही तुम सिकुड़ जाते हो; भयभीत हो जाते हो; डर जाते हो--पकड़े तो नहीं जाओगे? आज नहीं कल झूठ किसी की पकड़ में तो न आ जाएगा? फिर एक झूठ बोलो तो उस झूठ को बचाने के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर पकड़े जाने की संभावना भी बढ़ती जाती है। जितनी पकड़े जाने की संभावना बढ़ती है, उतना भय बढ़ता है। जितना भय बढ़ता है, उतना झूठ बढ़ता है। जितना झूठ बढ़ता है, और पकड़े जाने की संभावना बढ़ती है। तुम फंस गए एक जाल में। अपने ही हाथ से जाल बुना, मकड़ी खुद ही फंस गई अपने जाल में। फिर निकलने का रास्ता नहीं सूझता। क्योंकि इतने झूठ बोल चुके हो, अब अगर सच बोले तो सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। एक और सही, एक और सही। एक झूठ बोलो, फिर झूठ की बड़ी संतानें हैं--झूठ संतति-नियमन में नहीं मानता।
सत्य की संतान नहीं होती। सत्य ब्रह्मचारी है। एक सत्य बोलो, पूरा हो गया--अपने में पूरा होता है, अब किसी और सहारे की जरूरत नहीं होती। और सत्य बोल कर निश्चिंत सो सकते हो, चिंता नहीं पकड़ती। सत्य की सुरक्षा नहीं करनी पड़ती। सत्य के लिए आयोजन नहीं करना पड़ता बचाने का। सत्य अपना प्रमाण है। सत्य के साथ हृदय निर्भार होता है। सत्य के साथ मन मौज में होता है। सत्य के साथ अभय होता है। और जहां अभय है, और जहां मन मुक्त है, वहां संगीत है, वहां छंद है। उसी छंद में शुभ है। अशुभ का अर्थ हुआ, ऐसा कुछ मत करो जिससे तुम सिकुड़ते हो। ऐसा कुछ मत करो जिससे तुम्हें अपने को छिपाना पड़ता है। ऐसा कुछ मत करो जिसके कारण तुम नग्न नहीं हो सकते। ऐसा कुछ मत करो जिसके कारण तुम्हें अवरोध खड़े करने पड़ें। बस इतना ही ध्यान रहे।

मैं तुम्हें मूल कुंजी की बात कर रहा हूं, विस्तार की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तुम्हें कोई गिना नहीं रहा हूं कि ये-ये बातें शुभ हैं और ये-ये बातें अशुभ हैं। क्योंकि गिनती हो नहीं सकती, जीवन विराट है, बहुत बड़ा है जीवन। दस आज्ञाएं हैं यहूदियों की। मगर ऐसा मौका आ जाता है, ग्यारहवीं की जरूरत पड़ती है। तब क्या करोगे? फिर तो तुम्हीं निर्णय करोगे! दस आज्ञाओं में कहीं दुनिया समाप्त होती है? यहां रोज प्रतिपल नई आज्ञा की जरूरत पड़ती है। इसलिए बजाय इसके कि मैं तुम्हें फेहरिस्त दूं कि यह करना शुभ है और यह करना शुभ है और यह करना शुभ नहीं है, मैं तुम्हें सिर्फ रोशनी दे रहा हूं कि यह दीया सम्हालो। इस दीये में तुम्हें जो मार्ग दिखाई पड़े वह शुभ है, और जहां दीवाल दिखाई पड़े वहां से मत जाना--जाओगे ही क्यों? वहां सिर टूटेगा। सदगुरुओं ने सिद्धांत नहीं दिए हैं, सदगुरुओं ने दृष्टि दी है। सिद्धांत थोड़ी दूर काम पड़ सकते हैं। ऐसा समझो, एक अंधा आदमी तुमसे पूछता है कि मुझे स्टेशन जाना है, कैसे जाऊं? तुम उसे सब समझा देते हो कि पहले बाएं रास्ते से चलना मील भर, फिर दाएं मुड़ जाना, फिर मील भर चलना, फिर बाएं मुड़ जाना; तुम उसे सब समझा देते हो। फिर भी पक्का नहीं है कि अंधा पहुंच पाएगा--अंधा आखिर अंधा है। कब मील पूरा हुआ, कैसे जानेगा? आधा मील पर ही मुड़ जाए, कि डेढ़ मील तक चलता चला जाए! सदगुरु अंधे को सूचनाएं नहीं देते। सदगुरु कहते हैंः यह अंजन लो, आंख पर आंज लो, इससे तुम्हें दिखाई पड़ेगा। फिर तुम खुद ही जानोगे, राह के किनारे पत्थर लगे हैं वे इशारा बताते हैं कि स्टेशन कितनी दूर, तुम खुद ही पहुंच जाओगे। दृष्टि चाहिए!
मैं तुमसे दृष्टि की बात कर रहा हूं। तुम इस तरह से अपने जीवन की परीक्षा में लग जाओ--जो भी करते हो, इतनी ही बात सोच कर करो कि इससे मेरा संगीत गहन होगा? बस। अगर संगीत गहन होता है, फिकर छोड़ो दुनिया के शास्त्रों की और फिकर छोड़ो दुनिया के सिद्धांतों की, उनका कोई मूल्य नहीं है। वे तुम्हारे लिए बनाए भी नहीं गए। जिनके लिए बनाए गए थे वे लोग अब हैं भी नहीं।
अब कोई वेद में जाकर अपना सिद्धांत खोजता है। वेद पांच हजार साल पहले लिखे गए--और अगर लोकमान्य तिलक की मानें तो पंचानबे हजार साल पहले लिखे गए। अगर लोकमान्य तिलक सही हैं, तो वेद उतने ही व्यर्थ हो गए, ज्यादा व्यर्थ हो गए, क्योंकि पंचानबे हजार साल पहले जिस आदमी से कहे गए थे वह आदमी अब नहीं है। पांच हजार साल भी काफी समय हो गया, जिंदगी बहुत बदल गई है। जिंदगी ने नये रूप ले लिए हैं, नये मोड़ ले लिए हैं। जिन मोड़ों का कोई पता नहीं था वेद लिखने वालों को--हो भी नहीं सकता था--इन नये मोड़ों पर नई घटनाएं घट गई हैं।
अब जैसे समझो, जैन मुनि वाहन में नहीं चलता। यह बात महावीर के समय में समझ में आती थी। क्योंकि वाहन का मतलब था--घोड़े जुते होंगे, बैल जुते होंगे--बैलगाड़ी होगी, कि घोड़ागाड़ी होगी, और तो कोई वाहन था नहीं। बैलों पर कोड़े पड़ेंगे। महावीर ने कहाः यह हिंसा है। अपने पैर से जितना बन सके, चल लो। यह ज्यादती है। यह बैल पर सवार होना, यह घोड़े पर सवार होना ज्यादती है। यह तुम इन निरीह पशुओं के साथ अन्याय कर रहे हो।
यह बात समझ में आती है। इससे भीतर का छंद टूटेगा। जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे--वह चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे मनुष्य हो--जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे, तुमने अपनी ही गुलामी का जाल रचा। तुमने जब किसी के लिए गड्ढा खोदा, गड्ढा तुम्हारे लिए खुदा। आखिर बैल का भी तो प्राण है, आत्मा है, संवेदना है! तुम मजे से बैठे हो, तुमको बैल ढो रहा है--जैसे बैल सिर्फ तुम्हें ढोने के लिए पैदा हुआ है! अगर बैलों की दुनिया होती तो तुम बैलों को ढोते, तुम जुते होते। यह तो बात ठीक थी।
लेकिन अब जैन मुनि कार में भी नहीं बैठ सकता, क्योंकि वाहन का इनकार है। अब महावीर को कार का कुछ पता नहीं था कि एक दिन ऐसी घड़ी आ जाएगी कि न घोड़ा जुतेगा, न बैल जुतेगा--हॉर्स तो चला जाएगा, हॉर्स पावर आएगा--इसका कुछ पता नहीं था। अब यह जैन मुनि अभी भी पैदल चल रहा है। अब यह बात जरा मूढ़ता की हो गई। अब कार में चलने में कोई अड़चन नहीं, कोई हिंसा नहीं। लेकिन घबड़ाहट लगती है उसे, उसके शास्त्र में लिखा है। शास्त्र के विपरीत कैसे जाए?

शास्त्र सदा पैर की जंजीर हो जाते हैं। समय बीता कि पैर की जंजीर हुए। फिर उनमें तुम देखोगे तो उलझोगे। और दो ही उपाय बचते हैं फिर। एक उपाय तो बचता हैः उनकी मान कर चलो और मूढ़ रहो। और दूसरा उपाय यह बचता है कि उनको ऊपर-ऊपर मानते रहो और भीतर-भीतर मत मानो, तब पाखंडी हो जाते हो। दोनों हालत में हानि होती है।
अब तो आकाश में उड़ता हवाई जहाज है। पैदल चल कर जितनी हिंसा होती है उतनी हिंसा भी नहीं होती। पैदल भी चलोगे तो पैर तो जमीन पर पड़ता है न, कीड़े- मकोड़े, छोटे-मोटे जीव-जंतु तो दबते ही हैं! महावीर ने उसकी भी चिंता की है-- सूखी जमीन में चलना, गीली जमीन में मत चलना; वर्षा में मत चलना; इसलिए वर्षा में जैन मुनि नहीं चलता। लेकिन हवाई जहाज में उड़ो। जमीन से कोई संबंध ही न रहा। हेलिकॉप्टर में जाओ। न पैर पड़ेगा जमीन पर, न कोई कीड़ा मरेगा। फिर वर्षा हो कि गर्मी, कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन जैन मुनि अटका है, क्योंकि वाहन! वह शब्द जान ले रहा है--यह भी वाहन है, और वाहन का विरोध है! मैंने सिर्फ उदाहरण के लिए तुमसे कहा।
शास्त्र सदा रुकावट का कारण हो जाते हैं। और निर्बुद्धि के लिए तो बहुत ज्यादा रुकावट के कारण हो जाते हैं। गले की फांसी लग जाती है, जीना असंभव हो जाता है।
महावीर ने कहाः रात भोजन मत करना। ठीक कहा, बिजली का उन्हें कुछ पता नहीं था। रात अभी भी तुम जाओ इस देश के गांवों में--ठेठ देहातों में जहां बिजली नहीं है, जहां केरोसिन का तेल भी मिलना मुश्किल है; इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि केरोसिन का तेल खरीदें--लोग अंधेरे में भोजन करते हैं। महावीर ने जब कहा तो सारे लोग अंधेरे में भोजन कर रहे होंगे। अंधेरे में भोजन करना जरूर खतरनाक है। खुद के लिए भी, कीड़े-मकोड़ों के लिए भी; पतिंगों के लिए भी, मच्छरों के लिए भी; और हिंसा हो जाएगी। हिंसा भी होगी और विषाक्त भी हो सकता है भोजन।
लेकिन आज तो दिन की रोशनी रात में भी उपलब्ध है। दिन से भी ज्यादा रोशनी चाहो तो उतनी उपलब्ध हो सकती है। अब यह बात व्यर्थ हो गई। मगर रात्रि भोजन का निषेध है, इसलिए रात्रि भोजन नहीं किया जा सकता।
तुम अपने छंद से परखो। आंख खोल कर देखो, अपने जीवन की जांच करते रहो। जहां तुम्हें लगे कि यह बात मेरे आनंद से जुड़ती है और इससे मेरा आनंद विकासमान होगा, वही शुभ। और जिससे तुम्हारा आनंद खंडित होता हो, वही अशुभ। फिर पूछा हैः "शुभाशुभ के पार क्या है?"
छंद बंधे तो शुभ, छंद टूटे तो अशुभ, और जब छंद ऐसा हो जाए कि टूटने की संभावना ही न रहे, तुम ही छंद हो जाओ, छंद तुम्हारी नियति हो जाए, तुम्हारा स्वभाव हो जाए, तब शुभाशुभ के पार। फिर चिंता की भी जरूरत नहीं कि क्या करूं, क्या न करूं? फिर उस छंद से जो होता है, वह सब ठीक ही होता है।
साधु और संत की परिभाषा में यही भेद है। असाधु वह, जो अशुभ करता है। साधु वह, जो शुभ करता है। संत वह, जिससे शुभ होता है, अशुभ नहीं होता--करने के पार चले गए। करने में तो सोचना पड़ता है--ऐसा करूं या न करूं? निर्णय लेना पड़ता है, विकल्प होता है। विकल्प में कभी भूल भी हो सकती है। विकल्प में कभी चूक भी हो सकती है। आखिर विचार से ही किया जा रहा है, विचार में भ्रांतियां हैं। संत की दशा का अर्थ होता हैः अब न शुभ की चिंता है, न अशुभ की चिंता है। छंद ऐसा बंधा है कि अब टूट ही नहीं सकता। तुम संत को नरक में भी फेंक दो तो भी वह स्वर्ग में होगा। छंद ऐसा बंधा है कि अब नरक भी उसे तोड़ नहीं सकता। तुम संत को बाजार में बिठा दो तो भी उसके ध्यान में भंग नहीं है, छंद ऐसा बंधा है। अब हिमालय की गुफा पर ही बैठने की कोई जरूरत नहीं है। अब डर ही नहीं रहा। अब छंद से भेद नहीं रहा कि मैं अलग और छंद अलग, सम्हाले रहूं। अब संगीतज्ञ अलग नहीं है, अब संगीतज्ञ अपना संगीत हो गया है।
वह आखिरी दशा है। उसी को परमहंस कहा है। उसी को शांडिल्य ने भक्ति कहा है, परम भक्ति, जहां भक्त और भगवान एक हो जाते हैं--पराभक्ति, जहां भक्त और भगवान एक हो गए, फिर कौन सी चिंता कि ऐसा करूं कि वैसा करूं। करने वाला रहा ही नहीं, अब भगवान करता है। अब तुम तो मिट ही गए। अब तो भूल हो ही नहीं सकती, क्योंकि बुनियादी भूल मिट गई--मैं होने की भूल ही मिट गई। उस मैं से और-और

भूलें पैदा होती थीं। अब चिंता की कोई जरूरत नहीं, अब निश्चिंत होकर जी सकते हो। इसलिए उस परमदशा में संत बालवत हो जाता है, छोटे बच्चे जैसा हो जाता है--न कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ है। उसे पता ही नहीं कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है।

दूसरा प्रश्नः जीवन दुख है, फिर भी आदमी जागता नहीं। जीवन के नरक के बावजूद भी आदमी जीए किस तरह चला जाता है?

जरूर विचार उठता है। इतना दुख है! बुद्धपुरुष चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं, मकानों की मुंडेर पर चढ़ कर कहते हैं कि दुख है, जीवन दुख है, जागो! लोग बुद्धों की सुन लेते, उनके चरणों पर दो फूल भी चढ़ा देते कि महाराज, ठीक ही कहते होओगे। मगर अभी मैं जल्दी में हूं, दुकान जाना है; अभी मैं जल्दी में हूं, चुनाव लड़ना है; अभी मैं जल्दी में हूं, विवाह करना है। इन सबसे निपट लूं, फिर कभी आऊंगा निश्चिंत होकर, जरूर आऊंगा, चरणों में बैठूंगा, सुनूंगा, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।
लेकिन तुम्हारी आंखें कहती हैं कि बुद्ध ठीक नहीं कह रहे हैं। तुम्हारे प्राण कहते हैं कि बुद्ध ठीक नहीं कह रहे हैं। तुम्हें अभी जीवन में आशा है। तुम सोचते हो कि हां, माना कि अब तक जीवन में दुख पाए, लेकिन कल भी पाऊंगा, ऐसी क्या अनिवार्यता है? कल चीजें बदल भी सकती हैं। आज तक हारा, कल जीत भी सकता हूं। आज तक नहीं मिला, कल मिल भी सकता है। नहीं मिला, इसका कारण यही होगा कि मैंने ठीक से प्रयास नहीं किया। नहीं मिला, इसका कारण यही होगा कि मैंने अपने सारे जीवन को दांव पर नहीं लगाया। नहीं मिला तो इसीलिए कि दूसरे ज्यादा चालबाज थे, पा गए; मैं सीधा-सादा आदमी था, खड़ा रह गया। कल जुगत बिठाऊंगा, यत्न करूंगा, कल सब दांव पर लगाऊंगा। कल की आशा चलाए जाती है। और कल कभी आता नहीं। और आशा मिटती नहीं। दुख तो है, सभी के अनुभव में है। लेकिन अनुभव पर आशा की विजय होती है। अनुभव तो अतीत का है, आशा भविष्य की है, यह खूबी है। अनुभव अतीत का है, अतीत तो हो गया, ठीक; यह कैसे मानें कि हमारा भविष्य हमारे अतीत की ही पुनरुक्ति होगा? मन मानने को नहीं होता कि हमारा भविष्य हमारे अतीत की ही पुनरुक्ति होगा। और हम ऐसी कहानियां भी सुनते हैं; और ऐसी कहानियां हम बच्चों को कहते भी हैं।
गजनी का मोहम्मद भारत आया। वह सत्रह बार हार गया। सत्रहवीं बार हार
कर जब वह भाग गया था और एक गुफा में छिपा बैठा था, तो उसने देखा--एक मकड़ी जाला बुन रही है। बैठा था, कुछ और काम भी न था, तो देखता रहा। संयोग की बात कि सत्रह बार धागा टूट गया और मकड़ी गिर गई और अठारहवीं बार चढ़ी और धागा सम्हल गया और जाला बन गया। बैठे-बैठे गजनी को लगा कि मैं भी सत्रह बार हारा, कौन जाने अठारहवीं बार जीत जाऊं? मकड़ी नहीं हारी, मैं क्यों हार गया हूं? उठ आया, बाहर निकल आया, फिर जूझ पड़ा।
हम बच्चों को समझाते हैं कि अठारहवीं बार गजनी जीता; तो घबड़ाओ मत, उत्साह मत खोओ, लड़े जाओ। लेकिन हम कभी यह नहीं पूछते कि गजनी जीत कर भी क्या जीता? जो हार कर हालत थी, क्या जीत कर बदली? क्या गजनी सुखी हुआ? क्या गजनी ने आनंद जाना? क्या गजनी ने आत्मा पहचानी? क्या गजनी को समाधि का सुख मिला? मिला क्या? हार कर जैसा मरता और धूल में गिरता, वैसा ही जीत कर भी मरा और धूल में गिरा; तो जीत जीत थी कहां? जीत में जीत कहां है?
हम उदाहरण देते हैं लोगों को, क्योंकि हम सभी को महत्वाकांक्षा में चलाए रखना चाहते हैं। स्कूल में शिक्षक समझाते हैं--हारो मत! आज हार गए, कल जीतोगे! मगर कोई यह नहीं पूछता कि जीत जो जाते हैं, उनमें जीतता क्या है? हारों में और जीतों में भेद क्या है? दोनों एक से उदास और रिक्त और खाली। दोनों के भीतर की वीणा खंडित। दोनों के प्राण सूने। दोनों के प्राण में गंदगी। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि जीते आदमी की हार हारे आदमी से ज्यादा होती है। इसे थोड़ा समझना। क्योंकि हारे आदमी को अभी लगता है कि शायद जीत जाऊंगा, जीते आदमी को तो पक्का पता चल जाता है कि जीत कर भी जीत होती नहीं। इसीलिए तो बुद्ध और महावीर, राजपुत्र, महलों को छोड़ कर, साम्राज्यों को

छोड़ कर चले गए। क्योंकि देखा कि महलों में भी महल नहीं है, और धन में भी धन नहीं है, और यश में भी कुछ मिलता नहीं, सब कोरी बातचीत है, सब अफवाहें हैं। कितने लोग तुम्हें जानते हैं, इससे क्या होगा? दस लोग जानते हैं, दस हजार लोग जानते हैं, कि दस लाख, कि दस करोड़, इससे क्या होगा? तुम्हारे जीवन में इससे क्या रूपांतरण होगा? तुम कैसे बदल जाओगे इस बात से कि बहुत लोग तुम्हें जानते हैं? यश से भी क्या होता है? भीतर तो आदमी दरिद्र का दरिद्र! धन मिले तो दरिद्र, यश मिले तो दरिद्र, पद मिले तो दरिद्र। तुम जरा पद वालों की आंख में झांक कर तो देखो! तुम जरा धनी की आत्मा को टटोल कर तो देखो! तुम जिनको विजेता कहते हो जरा उनकी हार को तो देखो कि किस बुरी तरह हार गए हैं! लेकिन आशा है।

एक दो नहीं, छब्बीस दीये
एक-एक करके जलाए मैंने
इक दीया नाम का आजादी के
उसने जलते हुए ओंठों से कहा
चाहे जिस मुल्क से गेहूं मांगो
हाथ फैलाने की आजादी है

इक दीया नाम का खुशहाली के
उसके जलते ही यह मालूम हुआ
कितनी बदहाली है
पेट खाली है मेरा, जेब मेरी खाली है

इक दीया नाम का यकजदी के
रोशनी उसकी जहां तक पहुंची
कौम को लड़ते-झगड़ते देखा
मां के आंचल में हैं जितने पैबंद सबको इक साथ उघड़ते देखा

दूर से बीबी ने झल्ला कर कहा तेल महंगा भी है, मिलता भी नहीं क्यों दीये इतने जला रखे हैं
अपने घर में न झरोखा न मुंडेर
ताक सपनों के सजा रखे हैं

आया गुस्से का एक ऐसा झोंका
बुझ गए सारे दीये
हां मगर इक दीया नाम है जिसका उम्मीद
झिलमिलाता ही चला जाता है!

उम्मीद, आशा, कल्पना--आने वाला कल बीते कल से भिन्न होगा; जो आज तक नहीं हुआ, कल होगा--ऐसी आशा को संजोए आदमी चलता जाता है। इसलिए दुख भी हैं और फिर भी आदमी जागता नहीं। एक दीया नाम जिसका उम्मीद। जितने जल्दी यह दीया बुझ जाए, उतना अच्छा। जितने जल्दी तुम आशा के पार हो जाओ, उतना अच्छा।
मुझसे लोग संन्यास की परिभाषा पूछते हैं। उनसे मैं कहता हूंः आशा के
जो पार हो गया।
तुम थोड़ा चौंकोगे, अष्टावक्र ने भी यही परिभाषा की है। कहा हैः ज्ञानी वही, जो निराशा से भर गया। निराशा! हम तो इस शब्द से ही डरते हैं। यह शब्द ही हमें घबड़ाता है--निराशा!
यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है। निर-आशा--जिसकी अब कोई आशा नहीं। जिसने सब देख लिया, सब पहचान लिया, आशा का दीया जिसका बुझ गया। जिसकी आंख खुल गईं और जिसने देखा कि यहां रेत ही रेत है, इस रेत से तेल निकाला न जा सकेगा। यहां

रेगिस्तान ही रेगिस्तान है, यहां कोई मरूद्यान नहीं। और जो दिखते थे मरूद्यान, वे भी मेरी कल्पनाएं थे। जो ऐसा आशा के पार हो गया।
तुम जिसको निराशा कहते हो, वही मेरी निराशा नहीं है, वही अष्टावक्र की निराशा नहीं है। फर्क समझ लेना। तुम्हारा भाषाकोश और अष्टावक्र का भाषाकोश निश्चित ही अलग होने वाला है। तुम निराशा कब कहते हो? जब तुम्हारी कोई आशा टूटती है तब निराशा कहते हो। अष्टावक्र कहते हैंः जब सब आशाओं से मुक्ति हो गई, तब निराशा। एक आशा टूटी, तुम दूसरी बना लेते हो। इस स्त्री से नहीं मिल सका सुख, तुम तत्क्षण दूसरी स्त्री की तलाश में लग गए। इस धंधे से नहीं मिला लाभ, तुम दूसरा धंधा खोजने लगे। इस गांव में नहीं मिला सुख, तुम दूसरे गांव की तरफ चले। आशा एक तरफ टूटती है, तुम तत्क्षण दूसरी तरफ सजा लेते हो। दीया बुझ नहीं पाता कि तुम दूसरा दीया जला लेते हो--एक दीया जिसका नाम उम्मीद! अष्टावक्र कहते हैं उस स्थिति को निराशा, जब तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि आशा मात्र व्यर्थ है, आशा मात्र। यह आशा, वह आशा नहीं, आशा मात्र दुराशा है, दुष्पूर है। कभी घटती नहीं, सिर्फ भरमाती है।
उस क्षण में क्रांति हो जाती है। उस क्षण में तुम्हारे जीवन में एक नई किरण उतरती है। वही संन्यास है। संसार के पार से कुछ आया। संसार यानी आशा का फैलाव। संन्यास यानी संसार के आशा के फैलाव में कुछ उतरा पार से, तुम्हें दिखाई पड़ने लगा, तुम्हें चीजें जैसी हैं वैसी समझ में आने लगीं। और यह मत समझ लेना कि जिसको अष्टावक्र निराशा कहते हैं, वैसा आदमी निराश होकर बैठ जाता है। जिसकी आशा ही नहीं रही, उसकी निराशा भी क्या रहेगी? वह दोनों से मुक्त हो गया। उदास नहीं हो जाता, अब उदासी का कोई कारण ही नहीं रहा। यहां कोई चीज फलती ही नहीं, फूलती ही नहीं, उदास क्या होना है? यहां अपेक्षा करनी ही व्यर्थ है, तो अपेक्षा के टूटने का कारण भी समाप्त हो गया। ऐसा आदमी न दुखी होता, न सुखी। ऐसा आदमी शांत हो जाता है। ऐसे आदमी के जीवन में शांति का रस बहता है। उस शांति के रस का ही नाम आनंद है। तुम आनंद से अक्सर सुख समझ लेते हो, वह तुम्हारी भूल है। तुम आनंद में अक्सर सुख आरोपित कर लेते हो, वह भी तुम्हारी आशा है। एक दीया जिसका नाम उम्मीद। आनंद का अर्थ होता हैः शांति, परम शांति। न दुख रहा, न सुख रहा, सब तरंगें सुख-दुख की समाप्त हो गईं, निस्तरंग हो गई चेतना।
पूछा तुमनेः "जीवन दुख है... "
तुम्हें नहीं दिखाई पड़ा है ऐसा अभी। ऐसा तुमने सुना बुद्धों को कहते
कि जीवन दुख है। यह तुम्हारी अपनी प्रतीति नहीं, अपना साक्षात्कार नहीं। यह काम नहीं आएगा। यह उधार वचन तुम्हारी छाती में कांटा सा चुभेगा, फूल नहीं बनेगा। उधार वचन कांटे बन जाते हैं, छाती में चुभते हैं, चुभाते हैं, घाव बनाते हैं, लेकिन उनसे जीवन में आनंद की वर्षा नहीं होती। तुमने जाना जीवन दुख है? कि तुमने सुना बुद्धों को कहते? कि तुमने मान लिया कि बुद्ध कहते तो ठीक ही कहते होंगे? क्यों कहेंगे गलत? जान कर कहा है तो ठीक ही कहते होंगे। यह ऐसे ही है जैसे किसी ने मान लिया कि आग जलाती है, क्योंकि और लोग कहते हैं कि आग जलाती है।
दूसरों का कहा हुआ कि आग जलाती है और अपना जाना हुआ कि आग जलाती है, इसमें तुम्हें भेद दिखता है या नहीं? अपना जाना हुआ क्रांति कर देता है। तब आदमी, कहते हैं, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। खुद जला हो। तुमने जाना कि जीवन दुख है? यह तुम्हारी पहचान? यह तुम्हारी प्रत्यभिज्ञा? यह तुम्हारी अनुभव-संपदा? अगर तुमने जाना, तो आशा गई। फिर तुम यह न पूछोगे कि आदमी फिर क्यों चला जाता है?
और आदमी की क्या पूछते हो, आदमी यानी कौन? अपनी पूछो। किस आदमी की पूछ रहे हो, दूसरों की? यह भ्रांति भी छोड़ो। दूसरों के लिए प्रश्न मत पूछो। दूसरों की दूसरे जानें। तुम्हारी चिंता इतनी ही बहुत कि तुम अपने प्रश्न हल कर लो, अपनी समस्याएं हल कर लो। दूसरों की कहां हल करने बैठोगे! तुम रुको, आदमी को चलने दो।
यह आदमी कौन? इसका न तो नाम, न पता, न ठिकाना, यह तो सिर्फ एक शब्द है-- आदमी। तुम्हें आदमी कभी मिला? नहीं, आदमी तुम्हें कभी नहीं मिला। आदमी मिलते हैं, आदमी कभी नहीं मिलता। राम मिलते हैं, कृष्ण मिलते हैं, बुद्ध

मिलते हैं, हजार तरह के आदमी मिलते हैं, मगर आदमी कभी नहीं मिलता। आदमी तो केवल एक शब्द है, संज्ञामात्र। यह आदमी तो चलता रहेगा, जिसकी तुम बात कर रहे हो। जो जाग जाएंगे, वे चुपचाप इस व्यर्थ के पागलपन से हट जाएंगे। जो जाग गए, वे किनारे उतर गए, उन्होंने पगडंडियां पकड़ लीं और प्रभु तक पहुंच गए। जो सोए हैं, वे इस राजपथ पर--अंधेरे राजपथ पर--भीड़ के साथ भेड़ों की भांति चलते रहेंगे। तुम इनकी चिंता मत करो। और तुम चाहो भी तो भी इन्हें इनके मार्ग से हटा नहीं सकते। और तुम्हें हक भी नहीं है। अगर इन्होंने यही तय किया है कि यही इनका जीवन है, तो ये हकदार हैं कि ये इसी को जीवन मानें और इसी भांति चलें।
तुम हट जाओ। शायद तुम्हें हटते देख कर किसी सोए की नींद टूटे। शायद तुम्हें हटते देख कर, तुम्हारे जीवन में खिलते फूल देख कर, किसी के नासापुटों में सुगंध भर जाए, और कोई खिंचा चला आए, वह बात दूसरी है। मगर तुम दूसरे को हटाने की चेष्टा मत करना। अक्सर ऐसी शुभ चेष्टाओं का ही बड़ा दुष्परिणाम हुआ है। तुम जबर्दस्ती लोगों को खींच लेते हो धर्म की तरफ। वे भागते संसार की तरफ, तुम खींचते धर्म की तरफ। इससे संसार के प्रति उनका विराग पैदा नहीं होता, सिर्फ तुम्हारे धर्म के प्रति खीझ पैदा होती है। बाप जबर्दस्ती बेटे को मंदिर ले जा रहा है। अभी बेटा बाजार भी नहीं पहुंचा, बाजार का दुख भी नहीं झेला और तुम मंदिर ले चले! अभी बेटा बीमार भी नहीं हुआ और तुम चिकित्सक के घर तक ले चले! दवा इसको जंचेगी? रुचेगी? तुमने उपचार शुरू कर दिया!
धर्म तो उपचार है। जब संसार व्यर्थ दिखाई पड़ता है, तब धर्म में सार्थकता दिखाई पड़ती है। अब छोटा सा बच्चा घर में पैदा हुआ, तुम चले मंदिर, मस्जिद, गिरजा लेकर--बपतिस्मा करवा लाएं, कि जनेऊ पहना दें, कि क्या न करवा दें, कि राम-नाम इसके कान में डलवा दें, कि कान फुंकवा दें--हजार तरह की मूढ़ताएं। तुम सिर्फ इस बच्चे को सदा के लिए धर्म से तोड़े दे रहे हो।
मेरे पास न मालूम कितने लोगों ने आकर यह कहा है--ईसाइयों ने मुझसे आकर कहा है--कि चर्च ने हमारे मन में ईसा के प्रति नफरत भर दी। क्यूं? क्योंकि बचपन से जबर्दस्ती थोपा गया, आग्रहपूर्वक थोपा गया।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे से बोला कि तू जा, यह मटकी ले जा और कुएं
से पानी भर ला। और इसके पहले कि जाए, जरा मेरे पास आ। और जब वह उसके पास आया तो उसने एक जोर का तमाचा उस लड़के को मारा। एक मेहमान घर में बैठे थे, वे तो कुछ समझे ही नहीं यह राज! उन्होंने कहा, भई, यह हद हो गई! अभी बेटे ने कोई कसूर भी नहीं किया, मैं घंटे भर से यहां बैठा हूं, यह चांटा किस बात का? मुल्ला ने कहा, यह चांटा इस बात का कि घड़ा मत फोड़ना। मगर उसने कहा, अभी घड़ा इसने फोड़ा नहीं! मुल्ला ने कहा, अगर फोड़ ही दे फिर फायदा क्या?
मगर अगर बेटे में थोड़े भी प्राण होंगे, तो जरूर फोड़ कर आएगा। फोड़ना ही पड़ेगा। अगर बेटा बिल्कुल गोबरगणेश हो तो बात अलग। नहीं तो बेटा निश्चित जाकर इस घड़े को फोड़ देगा कुएं पर। यह तो हद हो गई, अभी घड़ा फोड़ा नहीं और सजा मिल गई! अभी बीमारी न थी और दवा मिल गई।
तुम्हारे मंदिर-मस्जिद तुम्हारे मन में धर्म के प्रति आदर पैदा नहीं
कर पाते, अनादर पैदा करवाते हैं। मंदिर और मस्जिद तो किसी को खोजते हुए जाना पड़ता है--बड़ी लालसा से, बड़ी अभीप्सा से। मंदिर और मस्जिद को तो टटोलना पड़ता है, सरक-सरक कर। जीवन के अनेक-अनेक कष्ट और कांटों को झेल कर मंदिर का फूल दिखाई पड़ता है, नहीं तो नहीं दिखाई पड़ता। जीवन के अंधेरे में खूब भोग कर भुक्तभोगी को ही मंदिर का दीया जलता हुआ दिखाई पड़ता है। जिसने जीवन का अंधकार नहीं देखा, उसको तुम मंदिर के दीये की तरफ ले चले? जिसने अंधकार नहीं जाना, उसे प्रकाश का अनुभव कैसे होगा?
तो मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम्हें अगर जीवन में दुख दिखाई पड़ गया है, तो तुम फिक्र छोड़ो औरों की, तुम उतरो, तुम डुबकी लो, तुम आशा का जाल तोड़ो, तुम जागो। बस वही एक दीया तुम्हें बुझाना होगा। और उस एक दीये के बुझाते ही सूरज निकल आएगा। एक दीया नाम जिसका उम्मीद! उस एक दीये को तुम बुझा दो और अचानक तुम पाओगे सुबह हो गई। इधर आशा का दीया बुझा, उधर आत्मा का सूरज निकला।

तीसरा प्रश्नः जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है?

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को आत्मरक्षा का अधिकार है। तुम्हारी चाहना; दूसरा भागता होगा कि बचो भाई, यह आदमी आया! क्योंकि जहां-जहां लोगों ने चाहत देखी है, वहीं-वहीं बंधन पाए। और जहां-जहां किसी के प्रेम में पड़े, वहीं फांसी लगी।
तुम्हारा प्रेम है क्या? बस वैसा ही है जैसा मछलीमार मछली पकड़ने के लिए कांटे पर आटा लगाता है। मछली फंस जाती है आटे के कारण। मछलीमार का प्रयोजन मछली को आटा खिलाना नहीं है; मछलीमार का प्रयोजन--आटा खाने में कांटा फंस जाए उसके मुंह में, बस। आटा तो तरकीब है।
तुम पूछते होः "जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है?"
तुम्हारे चाहने में कांटा है। तुम सोचते हो--आटा ही आटा है। लेकिन तुम जरा गौर से विचारो, तुमने जिसको चाहा उसका जीवन दुखमय बना दिया या नहीं? जिसने तुम्हें चाहा, उसने तुम्हारा जीवन दुखमय बना दिया या नहीं? इस प्रेम के नाम पर जो चलता है, इसमें फूल तो कभी-कभार खिलते हैं, कांटे ही कांटे पलते हैं। कभी सौ में एकाध मौके पर कभी फूल की झलक मिली हो तो मिली हो, निन्यानबे मौकों पर तो कांटा चुभा और बुरी तरह चुभा और नासूर बना गया, और घाव छोड़ गया। तुम्हारी चाहत शुद्ध नहीं है, इसलिए लोग बचना चाहते हैं। तुम यह मत समझो कि लोग कुछ गलत हैं। प्रश्न पूछने वाले की मर्जी यही
है कि लोग कुछ गलत हैं, कि मैं तो इतना प्रेम का थाल सजा कर आता हूं और लोग चले, एकदम भागे--पुलिस को बुलाने लगते हैं--और मैं तो सिर्फ प्रेम का थाल सजा कर आया था। मैं तो कहता था, आरती उतारूंगा आपकी। आप चले क्यों? तुम्हारे प्रेम के थाल में जहर है। हर वासना में जहर है। तुम अपनी वासना को प्रार्थना बनाओ, फिर कोई नहीं भागेगा। फिर लोग तुम्हें खोजते आएंगे; तुम्हारे पास बैठ कर शांति पाएंगे; तुम्हारी छाया में विश्राम पाएंगे; तुम्हारी आंख उन पर पड़ जाएगी, वे धन्यभागी हो जाएंगे। तुम अपनी वासना को प्रार्थना बनाओ। क्या मतलब है मेरा वासना को प्रार्थना बनाने से? वासना में जो ईर्ष्या है, उसे जाने दो; वासना में जो द्वेष है, उसे जाने दो; वासना में दूसरे का शोषण करने की जो आकांक्षा है, उसे जाने दो; वासना में दूसरे का मालिक बनने की जो वृत्ति है, उसे जाने दो; और तब तुम्हारी वासना शुद्ध होकर प्रार्थना बन जाएगी। तब तुम दोगे और उत्तर में कुछ भी न मांगोगे। तब तुम प्रेम दोगे, उत्तर में कुछ भी न मांगोगे। तब तुम्हारे प्रेम में सिर्फ आटा होगा, कांटा नहीं होगा।
ये कुछ छोटी-छोटी घटनाएं समझें।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसके मित्र चंदूलाल ने पूछा, मुल्ला, अगर तुम शादी ही करना चाहते हो तो उसी लड़की से क्यों नहीं कर लेते जिसके साथ रोज शाम को सागर की सैर करने जाते हो?
मुल्ला ने कहा, अगर मैं उसी से शादी कर लूंगा, तब मेरी शामें कैसे कटेंगी?
जिससे शादी की, उससे झंझट हो जाती है; उससे सब प्रेम का नाता टूट जाता है। यह बड़े मजे की बात है। प्रेम का नाता जिससे बनाया--विवाह किया, शादी की, वह प्रेम का नाता है--मगर जिससे विवाह किया, उससे प्रेम का नाता टूट जाता है। यह बड़ी अजीब दुनिया है। यह बड़ी चमत्कार से भरी दुनिया है। प्रेम का नाता बनाते ही प्रेम टूट जाता है। क्योंकि प्रेम के नाम पर जो सब सांप-बिच्छू छिपे बैठे थे अभी तक पिटारे में, सब निकलना शुरू हो जाते हैं। इधर विवाह की बांसुरी बजी कि उधर निकले सब सांप-बिच्छू। वे सब जो छिपे पड़े थे, कहते थे--बच्चू जरा रुको, जरा ठहरो, ठीक समय आने दो, एक बार गठबंधन हो जाने दो, एक बार छूटना मुश्किल हो जाए, फिर असलियत प्रकट होती है। तुम्हारा भी सब रोग बाहर आता है, जिससे तुमने प्रेम किया उसका भी सब रोग बाहर आता है, धीरे-धीरे पति-पत्नी के बीच सिवाय रोग के आदान-प्रदान के और कुछ भी नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा, प्रेम के विषय में आपका क्या अनुभव है?
मुल्ला ने कहा, यही, दो बार निराशा। पहली बार इसलिए कि एक स्त्री ने न कहा, और दूसरी बार इसलिए कि दूसरी स्त्री ने हां कहा।
हर हालत में निराशा है। स्त्री मिल जाए तो निराशा, स्त्री न मिले तो निराशा। पुरुष मिल जाए तो निराशा, न मिले तो निराशा।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही थी--मैं अपने नये पड़ोसियों से तंग आ चुकी हूं, हमेशा आपस में लड़ाई-झगड़ा करते रहते हैं। मुल्ला ने कहा, एक समय ऐसा भी था जब ये दोनों एक-दूसरे से बेहद प्यार करते थे। पत्नी ने पूछा, फिर क्या हुआ? मुल्ला ने कहा, फिर, फिर दोनों की शादी हो गई।
और मुल्ला से किसी ने पूछा, तुमने कैसे उस औरत से विवाह करने का निश्चय कर लिया है? वह सुंदर हो सही, मगर तुम्हें पता है नसरुद्दीन, उसके पिछले पांचों पति पागलखाने में हैं!
मुल्ला ने कहा, छोड़ो, मुझे डरवाने से रहे, शायद तुम्हें भी पता नहीं है
कि बंदा पागलखाने से लौट चुका है। अब मुझे कोई पागलखाना भेज नहीं सकता। अब तुम पूछते होः "जिसे चाहो वह ठुकराता क्यों है?"
पागलखाने न जाना चाहता होगा। अनुभव जीवन का आदमी को डरा देता है। बुद्धिमान होगा, जो तुम्हें ठुकरा देता है। तुम अपने प्रेम को परखो, फिर से देखो। तुम्हारे प्रेम में कुछ गलत छिपा है। तुम्हारे प्रेम के वस्त्रों में जंजीरें हैं। प्रेम का आवरण है, भीतर कुछ और है। तुम किसी के मालिक होना चाहते हो? तुम किसी पर कब्जा करना चाहते हो? तुम किसी को वस्तु की तरह उपयोग करना चाहते हो? कोई नहीं चाहता कि उसका उपयोग किया जाए; क्योंकि जब भी किसी का उपयोग किया जाता है, उसका अपमान होता है। कोई नहीं चाहता कि कोई उसका मालिक हो; क्योंकि जब भी कोई किसी का मालिक हो बैठता है, तब उस व्यक्ति को अपनी आत्मा को खोना पड़ता है। कोई नहीं चाहता कि परतंत्र हो। प्रेम तो लोग चाहते हैं, लेकिन परतंत्रता नहीं चाहते हैं। और तुम्हारे सब प्रेम में परतंत्रता छिपी हुई है। वह अनिवार्य शर्त है। वह ऐसी शर्त है कि लोग डरने लगे हैं, लोग भयभीत होने लगे हैं, लोग घबड़ाने लगे हैं।
तुम अपने प्रेम को शुद्ध करो। तुम उसे प्रार्थना बनाओ। तुम दो और मांगने की इच्छा मत करो। और तुम जिसे दो, उस पर कब्जा न करो। और तुम जिसे दो, उससे अपेक्षा धन्यवाद की भी मत करो। उतनी अपेक्षा भी सौदा है। और तुम दो, क्योंकि तुम्हारे पास है। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम अगर दोगे, तो हजार गुना तुम्हारे पास आएगा--मगर मांगो मत। भिखमंगों के पास नहीं आता है, सम्राटों के पास आता है। जो मांगते हैं उनके पास नहीं आता। तुम मांगो ही मत। एक बार यह भी तो प्रयोग करके देखो कि तुम चाहो और दो, मगर मांगो मत। नेकी कर और कुएं में डाल। पीछे लौट कर ही मत देखो, धन्यवाद की भी प्रतीक्षा मत करो। और तुम पाओगे, कितने लोग तुम्हारे निकट आते हैं! और कितने लोग तुम्हारे प्रेम के लिए आतुर हैं! और कितने लोग तुम्हारे पास बैठना चाहते हैं! कितने लोग तुम्हारी मौजूदगी से अनुगृहीत हैं!
मगर अभी तुम्हारी मौजूदगी बड़ी जहर भरी है। अभी जब भी तुम हाथ फैलाते हो, दूसरे डरने लगते हैं, क्योंकि तुम्हारे हाथ में उन्हें फांसी का फंदा दिखाई पड़ता है।

चौथा प्रश्नः ज्ञान, ध्यान और योग के मुकाबले में भक्ति अधिक परंपराग्रस्त और रूढ़िवादी क्यों हो जाती है?

प्रश्न महत्वपूर्ण है। पहली बात, भक्ति स्त्रैण हृदय की भंगिमा है। पुरुष भी जब भक्त होता है तो उसमें स्त्रैण माधुर्य आ जाता है। चैतन्य में तुम्हें दिखाई पड़ेगा वही माधुर्य जो मीरा में है। वही स्त्रैण कोमलता, वही सुकुमारता, वही सौंदर्य।
पुरुष में थोड़ी परुषता होती है, थोड़ी कठोरता होती है, थोड़ा पाषाण होता है। पुरुष में थोड़ी आक्रामक वृत्ति होती है। पुरुष में थोड़ा अहंकार होता

है। पुरुष बहिर्गामी होता है। स्त्री ग्राहक होती है, ग्रहणशील होती है-- क्योंकि स्त्री यानी गर्भ--आक्रामक नहीं होती। स्त्री अतिथि का सत्कार करने को द्वार खोल कर खड़ी होती है।
भक्त भी ऐसा ही होता है, परमात्मा के लिए द्वार खोल कर खड़ा हो जाता है। भक्त भी ऐसा ही होता है, परमात्मा के लिए गर्भ बन जाता है। परमात्मा को पुकारता है भक्त, खोजता नहीं। ज्ञानी, ध्यानी, योगी परमात्मा को खोजता है, वह पुरुष की वृत्तियां हैं--खोज। वह जाता पहाड़ों में, पर्वतों में, वह बड़ी यात्राएं करता है, वह परमात्मा को खोजने निकलता है। भक्त शांत बैठ जाता है, आनंदमग्न हो डोलता है और कहता है--जब तुम्हारी मर्जी हो, जब पाओ कि मैं पात्र हूं, आ जाना, मेरे द्वार खुले हैं। मैं तुम्हें कहां खोजूं? खोजना भी चाहूं तो कैसे खोजूं? तुम्हारा घर कहां? तुम्हारा पता कहां? तुम्हारा नाम क्या? मेरी तो कोई पहचान नहीं तुमसे, पहले तो मिलना हुआ नहीं। तुम मिल भी जाओगे तो मैं पहचान न पाऊंगा कि तुम ही मिल गए। तुम्हीं आओ, मैं अवश हूं, मैं असहाय हूं, मैं रो सकता हूं। भक्त रोता है, ज्ञानी खोजता है। भक्त विह्वल होता है, ज्ञानी उपाय करता है।
ज्ञानी मानता हैः मेरे किए कुछ हो जाएगा। वही मान्यता पुरुष की मान्यता है। भक्त कहता हैः मेरे किए क्या होगा? मेरे किए ही तो सब अनकिया हुआ है। मैं ही तो बाधा हूं। तो भक्त अपने मैं को गिरा देता है, समर्पित हो जाता है, प्रतीक्षा करता है। भक्ति यानी प्रतीक्षा। भक्ति यानी प्रार्थना। बस प्रतीक्षा और प्रार्थना। भक्त के पास और कोई उपाय नहीं, आंसू। रोता, अपने हृदय को उघाड़ता, पुकारता--गहन प्यास से भर कर--और प्रतीक्षा करता।
भक्त के पास परमात्मा आता है। आना ही पड़ता है। जब पुकार पूरी हो जाती
है और जब प्यास गहन हो जाती है, तो आना ही पड़ता है। यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं है। इस अस्तित्व से तुम जन्मे हो, यह तुम्हारी मां है। और जब बच्चा पुकारेगा तो मां आएगी। पुकार सच्ची हो, पुकार झूठी न हो, पुकार में वंचना न हो, पुकार किसी क्षुद्र बात के लिए न हो। व्यर्थ बातों के लिए मत पुकारना। क्योंकि तुम्हारी व्यर्थ बातें ही तुम्हारी पुकार को खराब कर देती हैं।
अब तुम बैठे हो और तुम्हें सिगरेट पीनी है, अब परमात्मा को मत पुकारना--कि जरा आ जाओ, वह पॉकेट पड़ा है उधर, उठा कर दे दो! मगर तुम्हारी सब प्रार्थनाएं ऐसी ही हैं--कि पत्नी बीमार है, इसे ठीक करो। कि नौकरी नहीं लगती, मुझे नौकरी लगाओ। कि धंधा नहीं चलता, मेरा धंधा चलाओ। यह सब ऐसे ही है जैसे सिगरेट का बॉक्स पड़ा है उधर, और मैं तो भक्त हूं, उठूं कैसे? तुम्हीं आ जाओ और उठा कर दे दो। और अगर न आए, तो याद रखना, फिर कभी प्रार्थना न करूंगा। फिर मेरा भरोसा ही टूट जाएगा। फिर मेरी श्रद्धा ही खंडित हो जाएगी। एक अवसर देता हूं, अपने को सिद्ध कर लो!
यह भक्ति नहीं है। भक्ति कुछ नहीं मांगती। भक्ति कहती है--तुम्हारी मौजूदगी, तुम्हारी कृपा की एक किरण, बस काफी है, अनंत-अनंत काल के लिए तृप्त कर जाएगी। तुम्हारा एक झरोखा खुल जाए, तुम्हारा एक झोंका आ जाए, एक बूंद मेरे कंठ में गिर जाए तुम्हारी, बस सदा के लिए मैं तृप्त हो जाऊंगा, कुछ और नहीं चाहिए।
तो यह पहले समझो कि भक्ति है स्त्रैणभाव। इसलिए भक्ति परंपरागत और रूढ़िगत दिखाई पड़ती है। क्योंकि स्त्रियां बड़ी सहज हैं, प्राकृतिक हैं। इसलिए शास्त्रों ने स्त्री को प्रकृति कहा है, पुरुष के विपरीत। प्रकृति तुम देखते हो कितनी परंपराग्रस्त है? प्रकृति में तुमने कभी देखा कुछ बदलते? सब वही है। सब वैसा ही है। प्रकृति का वर्तुल एक गति से घूमता रहता है। वर्षा आई, फिर सर्दी आएगी, फिर गर्मी आएगी, फिर वर्षा आ जाएगी--एक वर्तुल है। ऐसा ही सदा हुआ, ऐसा ही सदा होता रहा, ऐसा ही सदा होता रहेगा। वसंत आया और फूल खिल गए। और पतझड़ में पत्ते गिर गए। ऐसा ही सदा होता रहा, ऐसा ही सदा होता है, ऐसा ही सदा होगा। इसको ही लाओत्सु ने ताओ कहा है, और वेदों ने ऋत। इसको ही बुद्ध ने धम्म कहा है।

भक्त तो प्राकृतिक है। जैसे सुबह होती है, सूरज निकलता है, प्रकाश फैलता है, तारे खो जाते हैं; सांझ होती है, सूरज डूबता है, प्रकाश खो जाता है, तारे उग आते हैं। ऐसा सदा से होता रहा है। ऐसी ही भक्ति है--शाश्वत, सनातन। अगर दुनिया में कोई सनातन धर्म है, तो भक्ति। हिंदू से सनातन धर्म का कुछ लेना-देना नहीं है। सनातन धर्म तो एक है--भक्ति। ध्यान विद्रोही है, भक्ति सनातन है। ध्यान नई-नई विधियां खोजता है, क्योंकि ध्यान में विधियां होती हैं; जहां विधियां होती हैं, वहां नई खोजी जा सकती हैं। भक्ति में कोई विधि नहीं है। भक्ति तो निर्विधि है। जहां विधि नहीं है, वहां नई विधि कहां से लाओगे? भक्ति तो भाव है, विधि नहीं है।
तुमने कभी सोचा कि प्रेम कितना परंपरागत है? ज्ञान परंपरागत नहीं होता। ज्ञान बढ़ता है, फैलता है। बहुत सी बातें थीं जो बुद्ध को पता नहीं थीं, वे आइंस्टीन को पता हैं। और बहुत सी बातें हैं जो महावीर को पता नहीं थीं, वे एडिंगटन को पता हैं। आदमी ज्ञान में रोज-रोज नई राशि बढ़ाता जाता है। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि प्रेम में ऐसी कुछ बातें थीं जो मीरा को पता नहीं थीं और आइंस्टीन को पता हैं? गलत। प्रेम के संबंध में पहले प्रेमी को जो पता था, वही अंतिम प्रेमी को भी पता होगा। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। प्रेम सनातन है। ज्ञान बदलता है। इसलिए ज्ञान सामयिक होता है। जो आज ज्ञान है, कल अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान का कोई भरोसा नहीं है, ज्ञान तो पानी पर खींची लकीर है। प्रेम पत्थर पर खींची लकीर है, मिटती नहीं। प्रेम ही लकीर है जो शाश्वत है। ज्ञान तो तुम देखते हो, कितनी जल्दी बदलता है! अब तो हालत ऐसी हो गई है, इतनी तेजी से ज्ञान बदलता है कि जब तक विश्वविद्यालय की किताब में ज्ञान पहुंचता है, तब तक वह तिथि-बाह्य हो जाता है, आउट ऑफ डेट हो जाता है।
तुम जान कर यह हैरान होओगे कि पश्चिम में अब विज्ञान की बड़ी-बड़ी किताबें नहीं लिखी जातीं--लिखी नहीं जा सकतीं। क्योंकि जब तक तुम बड़ी किताब लिखो--बड़ी किताब लिखने में समय लगता है--तब तक तुम जो लिख रहे हो, वह कुटा-पिटा हो जाएगा। विज्ञान के तो छोटे-छोटे लेख लिखे जाते हैं, विज्ञान के पीरियाडिकल्स होते हैं, क्योंकि विज्ञान खुद ही पीरियाडिकल है। उसकी तो पत्रिकाएं होती हैं--जल्दी छापो। वैज्ञानिक पेपर पढ़ता है, किताब नहीं-- कुछ पन्ने। क्योंकि इसके पहले कि पुराना पड़ जाए, कह दो। तुम्हारे कहते- कहते भी पुराना पड़ सकता है।
ज्ञान तो रोज बदलता है। इसलिए ज्ञान पर कोई भरोसा करना मत। क्योंकि
जो अभी ठीक है, वह कल सही नहीं रह जाएगा। नई दवा आ गई और डाक्टर कितने भरोसे से तुम्हें दवा देता है, और कहता है कि बस, यह दवा काम करेगी! और छह महीने बाद जाओ, वही डाक्टर दूसरी दवा दे रहा है। उससे पूछो--भई, छह महीने पहले का क्या हुआ? वह दवा जो बहुत काम करती थी, क्या हुई? वह कहता है--वह पुरानी पड़ गई, अब वह काम नहीं करती।
जो अब काम नहीं करती, वह छह महीने पहले कैसे काम करती थी? और जो अब काम
कर रही है, छह महीने बाद की कहानी क्या होगी? ज्ञान का कोई भरोसा नहीं है, ज्ञान पानी पर बना हुआ बबूला है। रोज बनता है, रोज मिटता है। प्रेम शाश्वत है।
इसलिए भक्ति में तुम्हें लगेगा ऐसा स्वभावतः कि भक्ति में क्यों परंपरागत मालूम होता है? मीरा कहे भी तो क्या कहे! जो प्रेमियों ने सदा कहा है, वही कहेगी। हां, ज्ञानी आविष्कार कर सकते हैं। ज्ञानी नई-नई ईजादें कर सकते हैं। मगर ईजाद आदमी की है, पिट जाएगी। और प्रेम परमात्मा का है। कितना ही पुराना हो, फिर भी पुराना नहीं होता।
तुम इसे ऐसा समझो कि ज्ञान जल्दी ही पुराना पड़ जाता है, क्योंकि नया होता है। भक्ति पुरानी नहीं पड़ती, सदा नई रहती है, क्योंकि नये-पुराने का कोई संबंध ही भक्ति से नहीं जुड़ता।
कुछ चीजें जीवन के आधार हैं। उन आधारों को रोज-रोज नहीं बदला जा सकता, नहीं तो जीवन गिर जाए। भक्ति वैसा ही आधार है।
इसलिए तुम्हें यह प्रतीति हो सकती है कि भक्ति में रूढ़ि मालूम पड़ती है। रूढ़ि नहीं है वह, रूढ़ि शब्द ज्ञानियों का है--शाश्वतता है, सनातनता है।

उसके विपरीत तुम हो तो रूढ़ि कहोगे। अगर उसको समझोगे और उसके आशय में पड़ोगे, तो तुम उसे कहोगे--सनातनता।
सनातन का अर्थ समझ लेना। सनातन का अर्थ होता हैः जो न तो कभी नया था और
न कभी पुराना होगा, जो सदा है। जो नया है वह पुराना होगा, जो पुराना है वह कभी नया था। नया पुराना होता रहता है, पुराना नया होता रहता है। तुम देखते नहीं, रोज ऐसी बातें होती रहती हैं। एक चीज कुछ दिन फैशन में रहती है, फिर पुरानी पड़ जाती है, फिर खो जाती है, दस-बीस साल बाद फिर लौट आती है। आखिर करोगे क्या? फिर नई हो जाती है। फिर कुछ दिन, फिर पुरानी हो जाती है।
तुम गौर से देखो, फैशन में क्या होता है? एक ढंग के कपड़े आज फैशन में हैं, कल पुराने पड़ गए। फेंक मत देना, सम्हाल कर रख लेना। दस साल बाद तुम पाओगे फिर फैशन में आ गए। सौ साल बाद किसी ओबेराय में विंटेज कपड़ों की प्रतियोगिता होगी, तब तुम लेकर अपना कोट पहुंच जाना कि यह सौ साल पुराना है! देखते नहीं कि कोई अपनी फोर्ड--टी मॉडल, उन्नीस सौ चौबीस की लिए खड़ा है। विंटेज कार! अब उसकी बड़ी कीमत है। बड़ी पुरानी गाड़ी है! अब वह बड़ी नई मालूम पड़ती है कि अब उन्नीस सौ चौबीस की गाड़ियां कहीं दिखाई तो पड़तीं नहीं, वे तो सब खो गईं, अब किसी एकाध के पास बची है, किसी के कबाड़खाने में पड़ी है, वह किसी तरह ठोंक-पीट कर उसे ले आता है; बड़ी नई मालूम पड़ती है! लोग देखने जाते हैं।
पश्चिम में कीमत बढ़ती जा रही है पुरानी गाड़ियों की। जितनी पुरानी गाड़ी, उतना पैसा लाती है। आदमी करे क्या! बैठा-ठाला आदमी करे क्या! फैशन बदल लेता, कपड़े बदल लेता, मकान के ढंग बदल लेता, फिर चीजें बदल कर फिर वही की वही हो जाती हैं। जो नया है वह पुराना होता रहता है, जो पुराना है वह नया होता रहता है--जल में उठी तरंगें हैं।
भक्ति तो जल है, तरंग नहीं। ज्ञान तरंग है। तरंगें उठती रहती हैं सागर में, सागर तो वही है।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा--अपने प्रेमी, अपनी प्रेयसी में भी परमात्मा
ही देखो। यह मेरी समझ में नहीं आया। प्रेम मैंने भी किया है, लेकिन अपनी प्रेयसी में परमात्मा देखना असंभव मालूम होता है। शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा? वासना के संबंधों में कहां परमात्मा?

प्रेम तुमने किया नहीं, कुछ और किया होगा। उसको प्रेम पुकारा होगा। प्रेम तुमने जाना नहीं। प्रेम का लेबल रहा होगा, अंदर कुछ और रहा होगा। क्योंकि प्रेम तो जिससे हो जाए, उसी में परमात्मा दिखाई पड़ता है--दिखाई पड़ना ही चाहिए; वही प्रेम का प्रमाण है। तुम्हें जिससे प्रेम हो जाए, उसमें परमात्मा की झलक दिखाई पड़नी ही चाहिए। अगर न दिखाई पड़े तो वासना होगी, कामना होगी, प्रेम नहीं। प्रेम तो द्वार है जिससे परमात्मा झलकता है। पत्थर से प्रेम हो जाए तो पत्थर मूर्ति बन जाती है। आदमी से प्रेम हो जाए तो आदमी में परमात्मा की झलक आने लगती है। अपने बच्चे से प्रेम हो जाए तो तुम अपने घर में ही कृष्ण-कन्हैया को फिर नाचते देखोगे। फिर पैरों में पैंजना बांध कर तुम उन्हें खेलते-कूदते देखोगे। फिर वही खेल, जो यशोदा ने कृष्ण का देखा होगा, कोई भी मां देख सकती है, बच्चे से प्रेम होना चाहिए। और यही तो प्रेमियों का अनुभव है। इसीलिए तो प्रेमी पागल मालूम होते हैं। क्योंकि किसी दूसरे को तो दिखाई नहीं पड़ता। कोई आदमी किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गया, फिर उसको लोग पागल समझते हैं, क्योंकि वह ऐसी बातें करता है उस स्त्री के संबंध में कि लोग इधर-उधर मुंह करके हंसते हैं। वे कहते हैं, इसका दिमाग खराब हो गया है। साधारण स्त्री और यह ऐसी बातें कर रहा है बढ़ा-चढ़ा कर, होश में नहीं है।
मजनू पागल था लैला के लिए। उसके गांव के राजा ने उसे बुलाया, क्योंकि उसकी हालत बिगड़ती गई, बिगड़ती गई। गांव भर उसकी चर्चा करता, पागल भी लोग उसे कहते, दीवाना भी कहते और दया भी खाते। आखिर राजा ने उसे बुलाया और कहा, तू इस लैला के पीछे पड़ा है! मैं तेरी लैला को जानता हूं। सच तो यह है कि तेरा इतना लगाव देख कर मैं भी उत्सुक हो गया था कि देखूं यह लैला है कौन? मगर

पाया कि एक साधारण सी स्त्री; तू व्यर्थ परेशान हो रहा है। तुझ पर मुझे दया आती है। तू महल के सामने से रोता निकलता है, जब देखो तेरे आंसू गिरते रहते हैं, हर गली तूने भर दी है गांव की--लैला! लैला! मुझे तुझ पर इतनी दया आती है कि तू मेरे राजमहल से कोई भी स्त्री चुन ले।
उसने बारह युवतियां खड़ी करवा दीं। सुंदरतम स्त्रियां थीं राजमहल में, देश की सुंदरतम स्त्रियां थीं। मजनू से कहा, चुन ले। मजनू उनके पास गया, एक-एक को इनकार करता गया, फिर आखिर में बोलाः लेकिन इनमें लैला तो कोई भी नहीं। राजा हंसा, उसने कहा, तू पागल है! तू निश्चित पागल है! लोग ठीक ही कहते हैं। लैला इनके सामने कुछ भी नहीं। और मैंने तेरी लैला को देखा है, और मैं ज्यादा अनुभवी हूं, जिंदगी में मैंने बहुत सुंदर स्त्रियां जानी हैं। तूने अभी जाना क्या, जवान छोकरा है! मजनू ने कहा, आप कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। लेकिन लैला को देखने के लिए मजनू की नजर चाहिए, उसके बिना कोई लैला को देख ही नहीं सकता। आपके पास मेरी आंख कहां? आपने अपनी आंख से देखा होगा। मेरी आंख से देखें, तब लैला दिखाई पड़ेगी।
इसलिए प्रेमी पागल मालूम होता है, क्योंकि किसी और को तो दिखाई नहीं पड़ता, प्रेमी को न मालूम क्या-क्या दिखाई पड़ता है। तुमने प्रेमियों की कविताएं देखी हैं? सुनो एक-दो गीत। एक--

दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

मुझसे शाने-जल्वाफर्माई न पूछ
किस तरह वह सामने आई न पूछ
उसका हुस्न और उसकी रानाई न पूछ
वह हिजाब-आलूदा अंगड़ाई न पूछ
दिल न कदमों पर लुटाता किस तरह वह तबस्सुम, वह तरन्नुम, वह शबाब वे निगाहें, वे अदाएं, वह हिजाब उसके आरिज में लहकता है गुलाब उसकी आंखों में बरसती है शराब पीके बेखुद हो न जाता किस तरह दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

उसके ओंठों पर जब आती है हंसी फैल जाती है फजा में चांदनी
वह है चलती-फिरती जूही की कली वह है हंसती-मुस्कुराती बांसुरी गीत उल्फत के न गाता किस तरह दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

ढूंढ़ता था हुस्न उसका तख्तो-ताज मांगती थी उसकी रानाई खिराज सोहनी का नाज, राधा का मिजाज चाहती थी कर ले मेरे दिल पे राज मैं भला आंखें चुराता किस तरह दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

दिल पे हंस कर तीर खाना ही पड़ा उसके आगे सर झुकाना ही पड़ा होश मजबूरन गंवाना ही पड़ा जब्त का खिरमन जलाना ही पड़ा और जलाता तो बुझाता किस तरह दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

प्रेम जहां होगा, वहां अपूर्व दिखाई पड़ने लगेगा। वहां साधारण विलीन
हो जाता है, वहां हर चीज असाधारण हो जाती है। वहां साधारण सी आंखें कमल के फूल हो जाती हैं। साधारण सी देह में दीप्ति विराजमान हो जाती है। प्रेम तुम्हें आंख देता है। उस आंख के कारण गहराई आती है। गहराई के कारण हर एक के भीतर छिपा परमात्मा दिखाई पड़ता है। जिससे तुम्हारा प्रेम है, उसमें तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। प्रेमी पागल नहीं है, प्रेमी के पास नई तरह की आंख है जो गहरे में देख पाती है।
भक्त ऐसा प्रेमी है, जो एक के प्रेम में नहीं, सबके प्रेम में पड़ गया,
जो समग्र के प्रेम में पड़ गया। इसलिए वृक्षों में भी उसे वही दिखाई पड़ता है, पत्थरों में उसे वही दिखाई पड़ता है, लोगों में भी वही दिखाई पड़ता है, उसके अतिरिक्त और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। अपने भीतर भी वही, अपने बाहर भी वही।
नहीं, तुमने प्रेम किया ही नहीं होगा। तुमने कुछ और किया, तुम उसे प्रेम समझ बैठे। तुमने अपने अहंकार को सजाया होगा, अहंकार को गंवाया न होगा। अगर तुमने प्रेम से अहंकार को सजाया, तो चूक जाओगे; अगर प्रेम में अहंकार को गंवाया, तो तुम्हें ध्यान की पहली झलक मिलेगी। तुम पर निर्भर है सब। तुम जानते ही नहीं कि प्रेम का अर्थ होता है अपने को गंवाना। और जहां अपने को गंवाया, वहीं से तो प्रार्थना की शुरुआत है।
इस दूसरे गीत को सुनो--

फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर

हो गए मुझको बहुत से दिन तुम्हारी छवि संवारे
झर गए कितने धरा के फूल, नभ के नील तारे
भूल बैठे रात-दिन आलोक की पगडंडियों को
भूल बैठी है नदी सौंदर्य से जकड़े किनारे

फिर तरंगों को तुम्हारी बांह दूं
फिर कमल-वन को तुम्हारी छांह दूं

है समय छिछला, बहुत ओछा, नशे के ज्वार जैसा स्वप्न मेरा गुरु-गहन है जागरण के सार जैसा मुक्त, चिर निर्बंध में मेरे उदय की भव्यता हो इन घृणा के कंटकों में तुम दया की दिव्यता हो

रागबंधों का तुम्हें सत्कार दूं
पूर्ण अर्पण का अकंपित प्यार दूं शुक्लवर्णी ऋतु तुम्हीं में आंक दूं
छोर सुषमा के तुम्हीं में टांक दूं

मैं तुम्हें बांधूं गिरा के प्राण से
रूप-श्री लालित्य के दिनमान से
फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर

जब तुम किसी के प्रेम में पड़ोगे, तो वहां से तुम्हें पहली भनक मिलेगी अस्तित्व के रहस्य की; वहां से तुम्हें पहली खबर मिलेगी कि यह जीवन ऊपर-ऊपर नहीं है; जो ऊपर से दिखाई देता है, उस पर समाप्त नहीं है। जीवन की और-और गहराइयां हैं। जीवन के और-और तल हैं। दृश्य पर समाप्त नहीं है जीवन, अदृश्य है। प्रेमी को अदृश्य की भनक पड़नी शुरू होती है। उसे शून्य के स्वर सुनाई पड़ने लगते हैं। उसे दूसरे के हृदय की ऊष्मा अनुभव होने लगती है। दो प्रेमी दो देहों का मिलन नहीं हैं। जहां दो देहें ही मिलती हैं, वहां तो

केवल काम है, प्रेम नहीं। जहां दो मन मिलते हैं, वहां प्रेम की शुरुआत है। और जहां दो आत्माएं मिल जाती हैं, वहां प्रेम की पूर्णता है, वहां भक्ति है।
तुम पूछतेः "आपने कहा--अपने प्रेमी, अपनी प्रेयसी में भी परमात्मा ही देखो।"
अगर प्रेमी और प्रेयसी में न देख सकोगे, तो फिर कहां देखोगे? फिर तो जगत खाली है। फिर तो जगत कोरा है। वहीं खोजो, वहीं मंदिर है, उन्हीं सीढ़ियों पर सिर झुकाओ। प्रेम में डूबो, वहीं से कुरान की आयतें उठेंगी और वेद के स्वर। वहीं मीरा जगेगी। वहीं शांडिल्य के सूत्र सत्य होंगे।
तुम कहतेः "यह मेरी समझ में नहीं आया। प्रेम मैंने भी किया है, लेकिन अपनी प्रेयसी में परमात्मा देखना असंभव मालूम होता है।"
फिर कहां संभव होगा? फिर कैसे संभव होगा? फिर तुम्हारे लिए नास्तिक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रह जाएगा। जो प्रेम में हार गया, वही नास्तिक है। जो प्रेम में पराजित हुआ, वही नास्तिक है। जब प्रेम में भी नहीं मिला, तो स्वभावतः तुम कहोगे कि है ही नहीं। प्रेम सबसे ऊंची उड़ान है। उतनी ऊंची उड़ान की और फिर भी उसकी कोई झलक न मिली, तो फिर कहां मिलेगा? "शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा?"
परमात्मा शरीर में बसा है। नहीं तो शरीर ही नहीं होगा। नहीं तो लाश में और जीवित आदमी में फर्क क्या है? यही फर्क है कि एक में अभी परमात्मा चलता, बोलता, उठता, सोचता; एक में परमात्मा विदा हो गया। एक में घर खाली है, एक में घर मालिक से भरा है। एक दीया जलता है, रोशनी है, और एक दीया बुझा है। जहां तक दीयों का संबंध है, दोनों एक जैसे हैं, लेकिन रोशनी के संबंध में भेद पड़ गया है। हर जीवित व्यक्ति में जीवन है। जीवन यानी परमात्मा। जीवन यानी ज्योति। जहां वृक्ष जी रहा है, वहां परमात्मा है। जहां गति है, वहां परमात्मा है।
तुम कहतेः "शरीर के नाते-रिश्ते में कहां परमात्मा?"
परमात्मा का ही नाता-रिश्ता है। सबसे छोटा है, पहली सीढ़ी है उस बड़ी यात्रा की, लेकिन है तो उसी बड़ी यात्रा की पहली सीढ़ी। पहला सोपान भी है तो सोपान ही। उस पर रुक मत जाना, मगर उसकी निंदा भी मत करना। उस पर चढ़ना और पार जाना।
"वासना के संबंधों में कहां परमात्मा?"
वासना कीचड़ भरी है, सच, मगर कीचड़ से कमल पैदा होते हैं। और वासना से ही प्रार्थना के फूल खिलते हैं।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
तेरहवां प्रवचन

स्वभाव यानी परमात्मा

सूत्र

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम्।। 31।।
वैषम्यादऽसिद्धमितिचेन्नाभिज्ञानवदवैशिष्ट्यात्।। 32।।
न च क्लिष्टः परस्मादनन्तरं विशेषात्।। 33।।
ऐश्वर्ये तथेति चेन्न स्वाभाव्यात्।। 34।।
अप्रतिषिद्धं परैश्वर्यं तद्भावाच्च नैवमितरेषाम्।। 35।।

प्रूभु को पाना कठिन। लेकिन उसे पाकर उसे कहना और भी कठिन। पाना इतना कठिन नहीं है, क्योंकि वस्तुतः हम उससे क्षण भर को भी दूर नहीं हुए हैं। मछली सागर में ही है। सागर का विस्मरण हुआ है। जिस क्षण याद आ जाएगी, उसी क्षण सागर मिल गया। सागर छूटा कभी न था। संपत्ति गंवाई नहीं है। संपत्ति ऐसी है ही नहीं जो गंवाई जा सके। तुम्हारे प्राणों का प्राण है, तुम्हारी श्वासों की श्वास है, तुम्हारे हृदय की धड़कन है। विस्मरण हो गया है। जब स्मरण आ जाएगा, तभी संपदा उपलब्ध हो जाएगी। उपलब्ध थी ही।
जैसे कोई सम्राट भूल जाए सपने में कि मैं सम्राट हूं और भिखारी हो जाए, और भीख मांगे और दर-दर कूचा-कूचा भटके, और सुबह आंख खुले तो हंसे, बस वैसी ही ईश्वर की अनुभूति है। हमने उसे कभी खोया नहीं है। संसार एक सपना है जिसमें हम सो गए हैं। एक नींद, जिसमें विस्मरण हुआ है। जब भी आंख खुल जाएगी, तभी हंसी आएगी। हंसी आएगी इस बात पर कि जिसे हम खो ही नहीं सकते थे, उसे भूल कैसे गए? लेकिन जिसे नहीं खो सकते, उसे भी भूल जा सकते हैं। विस्मरण संभव है, स्मरण संभव है। न तो परमात्मा खोया जाता और न पाया जाता। जब हम कहते हैं--पाया, तो उसका अर्थ इतना ही है कि पुनः स्मरण हुआ, सुरति आई। खोया, उसका अर्थ है कि विस्मरण हुआ, सुरति गई। खोने का अर्थ हैः नींद आ गई, झपकी लग गई। पाने का अर्थ हैः जाग गए, आंख खुल गई। इसलिए जिन्होंने पाया, उनको हमने बुद्धपुरुष कहा है। जागे हुए लोग।
बुद्ध को जब मिला तो किसी ने पूछा कि क्या मिला? बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही था उसका पता चला। खो जरूर बहुत कुछ गया--मैं खो गया, अस्मिता खो गई, अज्ञान खो गया, चिंता खो गई, दुख खो गया, नरक खो गया; खो बहुत गया, मिला कुछ भी नहीं। मिला तो वही जो मिला ही था। उसकी याद लौट आई। बीच में जो कूड़ा-कर्कट इकट्ठा था, पहाड़ खड़े हो गए थे अहंकार के, उनके हटते ही सूरज प्रकट हो गया। सूरज कभी खोया न था, बीच में पहाड़ खड़े हो गए थे। जैसे बादल घिर जाएं और सूरज दिखाई न पड़े। तब भी सूरज उतना ही है, जितना तब जब कि दिखाई पड़ता है और आकाश में बादल नहीं होते।
मेघाच्छन्न हो तुम। बादलों से घिर गए हो। भीतर सूरज उतना ही प्रज्वलित है। वह ऐसा सूरज नहीं जो बुझ जाए। इसलिए ईश्वर को पाना कठिन तो है, क्योंकि याद लानी बड़ी कठिन है। भूले-बिसरे बहुत समय हो गया। अनंतकाल हो गए, तब से हम सोए हैं। जन्मों-जन्मों से सोए हैं। कठिन तो है, असंभव नहीं। लेकिन उससे भी बड़ी कठिनाई हैः जो पा लेते हैं, वे कैसे कहें उनसे जिन्हें मिला नहीं? जिसकी आंख खुल गई, वह कैसे कहे अंधे से कि प्रकाश क्या है? जिसका बहरापन चला गया, वह कैसे कहे बहरे से ध्वनि क्या है, संगीत क्या है? कोई भी उपाय नहीं सूझता।
रामकृष्ण कहते थे, एक अंधा आदमी कहीं मेहमान था। खीर बनी, उसे खीर परोसी गई। गरीब था, अंधा था, पहली दफा खीर मिली थी, उसे बहुत भाई। उसने पास बैठे आदमी से पूछा, यह क्या है? पास के आदमी ने कहा, दूध की बनी मिठाई। अंधे ने कहा, पहेलियां मत बूझो, दूध क्या है? पास बैठे आदमी ने कहा, यह तो झंझट हुई! पंडित होगा, इसलिए इसकी तो फिकर ही नहीं की कि आंख का अंधा है जिसको मैं समझा रहा हूं। कहा, दूध? दूध का रंग सफेद होता है। उस अंधे ने कहा, यह और उलझन हो गई, यह सफेद क्या? पंडित भी पंडित ही था, हार नहीं मानी। उसने

कहा, सफेद क्या? बगुला देखा है कभी, बगुले जैसा सफेद। उस अंधे को तो मामला और उलझता गया। खीर से चला, बगुले पर पहुंच गया। अब अंधे ने बगुला कब देखा? उसने पूछा कि कुछ ऐसा करो कि मैं समझूं, मैं अंधा आदमी हूं। तुम बगुले को मुझे समझाओ। तब उस पंडित को याद आई कि मैं किससे बात कर रहा हूं। अंधे को कैसे समझाऊं? तो उसने अपना हाथ उसके पास किया, हाथ टेढ़ा किया और कहा, मेरे हाथ पर हाथ फेरो, इस तरह बगुले की गर्दन होती है। अंधे ने उसके हाथ पर हाथ फेरा, बड़ा खुश हो गया और उसने कहा, अब मैं समझा कि खीर तिरछे हाथ की तरह होती है।
ऐसे ही सारे शास्त्र अंधों के हाथ में पड़ कर खो जाते हैं।
बुद्ध एक बात कहते हैं, तुम कुछ और समझते हो। कसूर तुम्हारा भी नहीं, कसूर बुद्ध का भी नहीं, दोनों के बीच जो लेन-देन होता है वहीं कुछ भूल-चूक हो जाती है। बुद्ध किसी और लोक से कहते हैं, तुम किसी और लोक से समझते हो। तुम्हारा क्या कसूर? अगर तुमने रोशनी नहीं देखी, तो कोई रोशनी की बातें करे, चांद-तारों की बातें करे, आकाश में तने हुए इंद्रधनुषों की बातें करे और तुम्हें समझ में न आए; रंगों की बातें करे और तुम्हें समझ में न आए; तुम्हारा कसूर क्या? और वह भी क्या करे जिसने रंग देखे हैं? रंग रंगों से ही कहे जा सकते हैं। और कोई उपाय नहीं है।
पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक था, लुडविग विटगिंस्टीन। विटगिंस्टीन ने कहा है कि जो न कहा जा सके, उसे कहना ही मत। मगर तब तो सारे शास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। तब तो आग लगा देनी पड़ेगी वेद में, उपनिषद में, कुरान में, शांडिल्य-सूत्र में, क्योंकि इन सबकी चेष्टा यही है कि जो न कहा जा सके उसे कहना है। विटगिंस्टीन की बात भी सही मालूम पड़ती है कि जो न कहा जा सके, उसे कहना ही क्यों? चुप ही रह जाना बेहतर है। जब कहा ही नहीं जा सकता, तो कहो मत। क्योंकि तुम जो भी कहोगे, वह गलत होगा। और तुम जो भी कहोगे, वह गलत ढंग से समझा जाएगा। उससे उपद्रव बढ़ेंगे।
उसकी बात में बल है। दुनिया में इतने संप्रदाय हैं, वह बुद्धपुरुषों
के द्वारा कही गई बातों का परिणाम है। बुद्धपुरुषों ने चाहा था कुछ और, हुआ कुछ और। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और परमात्मा का अनुभव तो एक है। ये तीन सौ धर्म कैसे संभव हुए? यह शब्दों का परिणाम है। जानने वालों ने तो एक जाना, लेकिन जानने वालों ने जब कहा, तो उनकी भाषाएं अलग थीं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। कबीर बोलेंगे तो कबीर की भाषा ही बोलेंगे, जुलाहे की भाषा होगी, कहेंगेः झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया। अब यह बुद्ध तो नहीं कह सकते। यह वचन बुद्ध के ओंठों पर आ ही नहीं सकता। यह बुद्ध के मस्तिष्क में उतर ही नहीं सकता--झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया; ज्यों की त्यों धरि दीनी रे चदरिया। बुद्ध ने कभी चादर बुनी नहीं। बुद्ध को यह बात याद भी नहीं आ सकती। यह कबीर को याद आती है। जीसस बोलते हैं तो बढ़ई के बेटे की तरह बोलते हैं। बुद्ध बोलते हैं, तो सम्राट की तरह बोलते हैं। उनकी भाषा अलग होगी; उनके संस्कार अलग हैं, उनके मस्तिष्क का निर्माण भिन्न ढंग से हुआ है। मीरा नाच कर बोलती है। महावीर नाच कर नहीं बोलते। महावीर के मन में नाच की कोई जगह नहीं है। वे थिर हो जाते हैं। पहले शायद कभी नाचते भी रहे हों, लेकिन जब जाना तो बिल्कुल ठहर गए, मूर्तिवत हो गए।
यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जैन और बौद्धों ने ही सबसे पहले पत्थर की मूर्तियां बनाईं। क्योंकि बुद्ध और महावीर पत्थर की भांति खड़े हो गए, पत्थर की भांति बैठ गए। संगमरमर से मेल पड़ा। मीरा की मूर्ति बनाओगे तो झूठी होगी--संगमरमर नाचे कैसे? बुद्ध की मूर्ति बनाओगे तो एकदम झूठी नहीं होती, बुद्ध के साथ थोड़ा तारतम्य होता है, बुद्ध भी ऐसे ही बैठे थे, पत्थर की भांति--थिर, अडिग, अकंप।
मीरा की मूर्ति बनानी हो तो पत्थर से नहीं बन सकती। हां, किसी फव्वारे
से बन जाए। नाचती हुई कोई चीज चाहिए। पत्थर तो झूठ कर देगा मीरा को। मीरा शायद पहले कभी न नाची हो, जब जाना तो नाच उठी। नाच उसके भीतर पड़ा होगा, नाच उसके संस्कार में होगा। मीरा ने नाच कर कहा वही, जो महावीर ने शांत खड़े होकर कहा।

भाषाएं अलग हैं, सत्य का अनुभव एक है। कहने वालों ने बहुत ढंग से उसे कहा है, सुनने वालों ने फिर और बहुत ढंग से उसे समझा है। तो एक अनुभव से हजार-हजार पंथ निकल जाते हैं। फिर इनमें विवाद है। फिर भयंकर वैमनस्य है। फिर एक-दूसरे की निंदा है। फिर अपने को सही और दूसरे को गलत करने का उपाय है, तर्कजाल है, विवाद है। इसी विवाद में धर्म खो गया।
तो विटगिंस्टीन भी ठीक ही कहता है कि अच्छा होता कि जानने वाले चुप रहे होते, न बोले होते। विटगिंस्टीन यह भी कहता है कि तुम जब कहते हो कि उसे कहा नहीं जा सकता, तो यह भी तो तुमने कहा। इतना भी कहा जा सकता है क्या? इतना भी नहीं कहा जा सकता।
फिर भी शांडिल्य और नारद और बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट, जिन्होंने कहा है, उनकी भी मजबूरी हमें समझनी चाहिए। जब यह घटना घटती है और सत्य मिलता है, तो उस मिलने के साथ ही यह प्रेरणा भी मिलती है कि कह दो! बांट दो! यह प्रेरणा उसमें अंतर्निहित है। बाहर से नहीं आती। ऐसा नहीं है कि जब मीरा को सत्य मिला तो उसने सोचा कि कहूं या न कहूं? सोचा होगा इतना ही कि कैसे कहूं? कहना तो पड़ेगा ही। यह भी हो सकता है कि कोई मौन से कहे, चुप रह कर कहे, लेकिन वह भी कहने का एक ढंग है। तुम नहीं जानते, कई बार तुम मौन से बहुत सी बातें कहते हो। कहावत है--मौनं सम्मति लक्षणम्। जब कोई चुप रह जाए तो समझ लेना स्वीकार कर लिया उसने। यह भी कहने का ढंग हुआ। हां नहीं कहा उसने, लेकिन चुप रह गया; न भी नहीं कहा उसने। अगर न उसे कहना होता तो न उसने कही होती कि कहीं भ्रांति न हो जाए। कहीं कोई चुप्पी को स्वीकार न समझ ले। चुप रह गया, उसने हां भर दी। कभी-कभी चुप रह कर तुम न भी करते हो। तुम्हारा चेहरा कहता है। तुम्हारी चुप्पी का गुणधर्म कहता है। तुम्हारी आंखें कहती हैं। तुम्हारी भावभंगिमा कहती है। आदमी चुप रह कर भी कहता है, बोल कर भी कहता है--कहे बिना चारा नहीं है।
जानेगा जो परमात्मा को, उसी जानने के साथ एक अंतःप्रेरणा मिलती है कि बांट दो! कह दो! लुटा दो! क्योंकि कितने लोग भटक रहे हैं और कितने लोग पाना चाह रहे हैं और मुझे मिल गया, मैं धन्यभागी हूं। मगर इसके साथ ही एक दायित्व भी मिलता है कि अब इसे बांट दूं, इसे कह दूं। जैसे बादल जब भर जाता है तो उसे बरसना ही पड़ता है। कोई बादल ऐसा थोड़े ही सोचता है कि अब बरसूं कि न बरसूं? जब मां के पेट में बच्चा नौ महीने रह चुका, तो जन्म होगा ही। ऐसा थोड़े ही है कि नौ महीने के बाद मां सोचती है कि अब जन्म दूं या न दूं? इसके कोई उपाय नहीं हैं। जब बीज जमीन में पड़ा रहता है और ठीक घड़ी, अवसर आ जाता है, ऋतु आ जाती है, तो फूटता ही है। और जब दीया जलता है, तो रोशनी भी फैलती ही है। और जब तुम्हारे प्राणों में गीत होगा, तो आज नहीं कल तुम्हारे ओंठों पर गुनगुनाया भी जाएगा। और अगर तुम्हारे पैरों में नाच होगा, तो आज नहीं कल तुम घूंघर बांधोगे और नाचोगे--पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे--बचा नहीं जा सकता। सत्य के अनुभव के साथ ही एक महत प्रेरणा आती है--सत्य के साथ ही आती है, सत्य में निहित आती है; यह सत्य के बाहर नहीं होती, सत्य के भीतर छिपी होती है--सत्य बंटना चाहता है।
इसे हम ऐसा समझें, क्योंकि सत्य का तो अनुभव नहीं, तुम्हारे जीवन में कुछ अनुभव हो, उससे समझना चाहिए। जब भी तुम आनंदित होते हो, तब तुम बांटना चाहते हो। आनंदित आदमी संग-साथ खोजता है--कोई मिल जाए, किसी से दो बात कर लेते, किसी से दिल खोल लेते, हंस लेते, बोल लेते। लेकिन जब तुम बहुत गहन दुख में होते हो, तब बोलना कठिन मालूम होता है। तब तुम चाहते हो कोई छेड़े न, कोई बोले न, तब तुम चादर ओढ़ कर अपने कमरे में दरवाजा-द्वार बंद करके पड़ रहना चाहते हो। तुम चाहते हो सब तरफ से अपने को बंद कर लूं। कभी-कभी गहन दुख में आदमी आत्मघात भी कर लेता है। वह आत्मघात भी इसी की सूचना है कि वह चाहता है कि अब मैं परिपूर्ण रूप से बंद हो जाऊं, अब कभी किसी से दुबारा न मिलना हो, न बोलना हो, न संबंध बनाना हो, बात समाप्त हो गई। आदमी अपनी कब्र में छिप जाना चाहता है, तो आत्मघात करता है। जब तुम आनंदित होते हो, जब तुम थिरकते हो आनंद से, पुलक से भरे होते हो, तब तुम संग-साथ खोजते हो, तब तुम मित्र खोजते हो। अकेले में समाता नहीं। कोई और चाहिए जो थोड़ा बांट ले। भारी हो जाता है आनंद।

सत्य के आनंद का तो क्या कहना! बूंद में सागर आ गया है, बूंद फटी पड़ती है। छोटे से आदमी में परमात्मा उतर आया है, प्रकाश समाता नहीं, बाढ़ आई है, सब कूल-किनारे तोड़ कर बहने लगता है प्रकाश।
विटगिंस्टीन ठीक कहता है, लेकिन विटगिंस्टीन को सत्य का कोई अनुभव नहीं। विटगिंस्टीन दार्शनिक की तरह कहता है कि जो न कहा जा सके, वह नहीं कहना चाहिए। तर्कयुक्त है बात, लेकिन उसे कुछ अनुभव नहीं है। काश, उसे अनुभव होता तो उसे पीड़ा पता चलती--उनकी पीड़ा जिन्होंने जाना है।
यह मनुष्य-जाति का सबसे पुराना प्रश्न है जो अब तक हल नहीं हुआ कि सत्य की अनुभूति को कैसे प्रकट किया जाए--किस भाषा में, किस विधि में? कैसे कहा जाए कि भूल न हो? कैसे कहा जाए कि सत्य के साथ अन्याय न हो? कैसे कहा जाए कि दूसरा वही समझे जो कहा गया है? कुछ का कुछ न समझ ले, अन्यथा न समझ ले। जितनी पुरानी धर्म की खोज है, उतनी ही पुरानी यह पहेली है। अब तक तो हल हुई नहीं। आगे भी होगी, इसकी संभावना नहीं। यह हो नहीं सकती हल। यह पहेली शाश्वत है।
इसी पहेली पर आज शांडिल्य अपना मंतव्य देते हैं। बड़ा अनूठा मंतव्य है। इसके पहले कि तुम शांडिल्य को समझो, हम थोड़ी सी बातों का पुनर्विचार कर लें जो मैंने तुमसे पहले कही हैं।
पश्चिम का यहूदी विचारक हुआ, मार्टिन बूबर। बूबर कहता है, उस घड़ी में
दो बचते हैं--मैं और तू; आई, दाऊ। वह घड़ी मैं-तू की घड़ी है। इधर भक्त बचता है, उधर भगवान। भक्त यानी मैं, भगवान यानी तू। तो वह मैं-तू का संवाद है। यह बूबर के कहने का ढंग है। दुनिया के बहुत से मनीषियों ने यही ढंग चुना है। हसीद फकीर बालसेम, यहूदी और फकीर, सबने यही मैं-तू का संवाद चुना है। परम अनुभव मैं और तू के बीच संवाद है। मैं और तू के बीच सेतु का जुड़ जाना है। मैं और तू का मिलन है। जैसे संभोग में प्रेमी और प्रेयसी मिल जाते हैं और एक क्षण को एक हो जाते हैं। एक होकर भी लेकिन होते दो हैं, दो होकर भी लेकिन होते एक हैं। देह तो दो बनी रहती हैं, चित्त भी दो बने रहते हैं, आत्माएं भी दो बनी रहती हैं, फिर भी संभोग के एक गहन क्षण में, क्षण भर को सही, एक ऊंचाई आती है, एक शिखर आता है, उस शिखर पर दोनों को अपना विस्मरण हो जाता है, दोनों एक हो जाते हैं, आत्मसात हो जाते हैं एक-दूसरे में। मगर फिर भी तो दो होते हैं, और दो होकर फिर भी एक होते हैं। यही प्रेम की पहेली है। यही प्रेम की पीड़ा भी है कि जिससे एक होना है, उससे एक हो-हो कर भी एक नहीं हो पाते। कोई उपाय नहीं है। और एक हो भी जाते हैं, तो भी दो बने रहते हैं। बूबर कहता है, जो संभोग की घड़ी है उसमें थोड़ी झलक मिल सकती है उस परम संवाद की जो भक्त और भगवान के बीच होता है। वह अनुभव संवाद है, डायलॉग है।
मीरा भी राजी होगी, कबीर भी राजी होंगे, जुन्नैद भी राजी होगा, सूफी फकीरों का बहुत बड़ा हिस्सा राजी होगा कि यह बात सच है।
यह एक ढंग है कहने का।
दूसरा ढंग है महर्षि काश्यप काः तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्।
तू से कहेंगे। मैं मिट जाता है, तू ही रह जाता है। भक्त लीन हो जाता है, भगवान ही बचता है। जैसे बूंद सागर में गिरी, बूंद तो खो गई, सागर बचा। मैं गया, तू ही बचा। मैं अलग-अलग था, यही पीड़ा थी। अब मैं अलग-थलग नहीं रहा, अब एक हो गया, अनन्य हो गया।
काश्यप जो कहते हैं, वही जलालुद्दीन भी कहता है। वही और फकीरों ने भी कहा है--तू है, मैं नहीं। इस बात में भी सचाई है। क्योंकि मैं तो एक भ्रांति है। उस परम क्षण में कैसे मैं बचेगा? परमात्मा सत्य है, सागर सत्य है, बूंद का होना क्या--क्षणभंगुर, सीमित। सीमा जब असीम से मिलेगी तो असीम तो बचेगा, सीमा खो जाएगी। और ध्यान रखना, असीम बढ़ता नहीं है एक बूंद के गिरने से। इसलिए उपनिषद कहते हैं--उस पूर्ण से हम पूर्ण को निकाल लें, तो भी पूर्ण पीछे शेष रहता है। उस पूर्ण में हम पूर्ण को डाल दें, तो भी पूर्ण उतना का उतना ही रहता है। असीम में न तो कुछ घटता है, न कुछ बढ़ता है। देखते हो कितनी नदियां सागर में गिरती हैं, लेकिन सागर में न कुछ बढ़ता है, न कुछ घटता है। कितने बादल सागर से उठते हैं, न कुछ घटता है; कितनी नदियां सागर में गिरती हैं, न कुछ बढ़ता है। सागर वैसा का वैसा। और सागर, ध्यान रहे, असीम नहीं है।

सागर की सीमा है--बड़ी है सीमा, मगर सीमा है। परमात्मा असीम है। तो काश्यप कहते हैं--ईश्वर बचता है। तामैश्वर्यपदां। उस परम क्षण में ऐश्वर्य मात्र बचता है।
इसे भी समझना, क्योंकि काश्यप ईश्वर भी नहीं कहते। वे कहते हैं, ऐश्वर्य बचता है।
क्यों ईश्वर नहीं कहते? क्योंकि ईश्वर कहने से तो मतलब यह होगा कि कोई व्यक्ति बचता है। व्यक्ति नहीं बचता, सिर्फ एक अनुभूति बचती है--शुद्ध अनुभूति--ऐश्वर्य की, परम ऐश्वर्य की, परम सौंदर्य की, धन्यता की। ईश्वर कहने से ऐश्वर्य कहना ज्यादा ठीक है, क्योंकि ईश्वर व्यक्तिवाची है। और जहां व्यक्ति है, वहां अहंकार है। परमात्मा में कहां अहंकार? वहां कोई मैं-भाव नहीं है। वहां शुद्ध ऐश्वर्य है। परमात्मा संज्ञा नहीं है, क्रिया है; वस्तु नहीं है, प्रवाह है, गति है, गत्यात्मकता है। काम चलाने के लिए हम ईश्वर कह लेते हैं। क्योंकि ऐश्वर्य की कैसे पूजा करोगे? ऐश्वर्य की कैसे प्रतिमा बनाओगे? ऐश्वर्य की कैसे आराधना करोगे? ऐश्वर्य को कहां खोजोगे? ऐश्वर्य तो सब तरफ फैला हुआ है। भक्त अपनी जरूरत के हिसाब से ऐश्वर्य को संकीर्ण कर लेता है एक छोटी प्रतिमा में। एक राम की प्रतिमा बनाई, या कृष्ण की प्रतिमा बनाई। कृष्ण की प्रतिमा बना कर सुंदर पीतांबर पहना कर, मोरमुकुट बांध कर, हाथ में बांसुरी देकर नृत्य की मुद्रा में खड़ा किया। अब यह जो मोरमुकुट बांधा है, यह सारे जगत के सौंदर्य का संकेत है। यह जो बांसुरी ओंठों पर रखी है, यह सारे जगत में जो गीत व्याप्त है उसका संकेत है। भक्त की जरूरत है। भक्त सीमित है, वह सीमित से ही दोस्ती कर सकेगा। इसलिए कृष्ण ने जब गीता में अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाया, अर्जुन घबड़ा गया। हालांकि उसी ने मांग की थी। उसी ने चाहा था कि तुम मुझे अपना विराट रूप दिखाओ। जब दिखाया तो बहुत घबड़ा गया। बूंद सागर को देख कर थरथराने लगी। इतना विराट सामने खड़ा था कि भय लगने लगा। विराट का अर्थ होगाः जिसकी कोई सीमा नहीं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं। उस ओर-छोर हीन के सामने खड़े होकर तुम कंप न जाओगे तो क्या करोगे?
भक्त अपनी जरूरत के हिसाब से, अपनी मात्रा में भगवान बना लेता है। सारा जगत सौंदर्य से भरा है, लेकिन इस सौंदर्य को देखने के लिए तो बड़ी प्रगाढ़ आंखें चाहिए। इस सारे सौंदर्य को मोरमुकुट में समा लेता है। जगत में तो संगीत गूंज रहा है, ओंकार का नाद हो रहा है। वृक्षों से हवाएं गुजरती हैं और ओंकार का नाद है। आकाश में बादल गरजते हैं और ओंकार का नाद है। सब तरफ ध्वनि है। उस ध्वनि के भीतर छिपा हुआ सत्य भक्त ने पकड़ लिया बांसुरी में। यह बांसुरी समझ में आ जाती है। इसे कृष्ण के ओंठों पर रख दिया है। यह पीतांबर पहना दिया है। यह पीतांबर इस सूरज का पीला प्रकाश है जो सारे जगत को घेरे हुए है, जिसके बिना जीवन नहीं है। यह सारी पृथ्वी पीतांबर ओढ़े है। इसी पीतांबर को ओढ़ कर तुम जी रहे हो, वृक्ष जी रहे हैं, पशु-पक्षी जी रहे हैं। मगर आंखों में कहां समाएं इस विराट को? कृष्ण को पीतांबर ओढ़ा दिया है--धूप का प्रतीक है, सूर्य का प्रतीक है, जीवन का प्रतीक है। उनके पैरों को नृत्य की मुद्रा में रखा है, क्योंकि सारा जगत एक महोत्सव है, नृत्य है।
कृष्ण को खोजने जाओगे तो कहीं तुम्हें ऐसा कोई व्यक्ति मिलेगा नहीं, ध्यान रखना, कि मोरमुकुट बांधे, पीतांबर पहने, बांसुरी लिए, नृत्य की मुद्रा में खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो। अब तक थक भी गया होगा। कभी का उदास हो गया होगा कि अब तुम नहीं आते, बहुत देर हो गई। अब तक नाटक का पर्दा गिर भी चुका होगा। कब तक प्रतीक्षा होगी? नहीं, कोई व्यक्ति कहीं है नहीं।
इसलिए काश्यप ने कहाः तामैश्वर्यपदां। वह ऐश्वर्य, ईश्वर नहीं। काश्यपः परत्वात्। वह तू। मैं चला जाता है, उसका ऐश्वर्य रह जाता है, वह रह जाता है, तू रह जाता है।
यह बात पहले से थोड़ी आगे जाती है, बूबर से थोड़ी आगे जाती है। क्योंकि बूबर में द्वंद्व बचता है। काश्यप में द्वंद्व खोया, एक बचा, दो नहीं रहे।

तीसरी अभिव्यक्ति बादरायण की है--मैं! अहं ब्रह्मास्मि! वही अभिव्यक्ति वेदांत की है, जैन मनीषियों की है, मंसूर की है--अनलहक! वे कहते हैं, भीतर जो छिपा है हमारे, वही पूर्ण होकर प्रकट होता है, बाहर कुछ भी नहीं है। परमात्मा दूजा नहीं है, दूसरा नहीं है। परमात्मा तू नहीं है, मैं के भीतर छिपा हुआ है, मैं का अंतर्तम है। यह बात थोड़ी और गहरी जाती है, क्योंकि तू में थोड़ी दूरी है। इतनी दूरी क्यों बचानी? परमात्मा मेरा ही स्वभाव है।
इसलिए बादरायण कहते हैंः आत्मैकपरां बादरायणः। वह आत्मपर है। वह मेरा मैं है।
यह तुम्हारा मैं नहीं, जिसको तुम दिन-रात दोहराते रहते हो--मैं, मैं, मैं। यह तो भ्रांत मैं है। यह तो नकली सिक्का है। असली सिक्का तब, जब परमात्मा तुम्हारे भीतर मैं होकर प्रकट होता है। उसमें कोई अहंकार नहीं होता, उसमें कोई मैं-भाव नहीं होता। लेकिन बादरायण यह कहना चाहते हैं कि परमात्मा तुमसे बाहर नहीं है, तुम उसे कहीं खोजने मत जाओ। आंख बंद करो! आंख खोलने से नहीं मिलेगा, आंख बंद करने से मिलेगा। डूबो अपने भीतर, डुबकी लगाओ वहां, वहीं मिलेगा। जीसस कहते हैंः उस प्रभु का राज्य तुम्हारे भीतर है। दि किंग्डम ऑफ गॉड इ.ज विदिन यू। बादरायण से वे भी राजी होंगे।
चौथी अभिव्यक्ति गौतम बुद्ध की है, जो और भी गहरी जाती है। गौतम बुद्ध कहते हैंः न मैं, न तू; वहां दोनों नहीं हैं।
समझना। गौतम बुद्ध की ही यही अनुभूति फिर झेन फकीरों में बड़ी प्रगाढ़ता को उपलब्ध हुई। यह शून्य की अभिव्यक्ति है। एक तरफ बूबर--मैं-तू, एक छोर पर। दूसरे छोर पर--गौतम बुद्ध, बोधिधर्म, रिंझाई, हुई हाई, ह्वांग पो--झेन फकीरों की लंबी परंपरा। वे कहते हैंः न मैं, न तू। नेति-नेति। न यह, न वह। क्यों? क्योंकि बुद्ध कहते हैंः जब तक मैं है, तभी तक तू हो सकता है। और जब तक तू है, तभी तक मैं हो सकता है। ये दोनों साथ ही हो सकते हैं। और अगर ये दोनों हैं, तो अभी अद्वैत का अनुभव ही नहीं हुआ। अभी एक का अनुभव ही नहीं हुआ। और जब एक का अनुभव होगा, तो ये दोनों को मिट जाना होगा, इनमें से कोई भी नहीं बच सकता।
परमात्मा को न तो हम कह सकते हैं मैं, क्योंकि वह तू भी है, और न हम कह सकते हैं तू, क्योंकि वह मैं भी है। अगर हम कहें मैं, तो सीमा बनती है; अगर कहें तू, तो सीमा बनती है। और अगर कहें दोनों, तो द्वैत प्रकट हो जाता है, दूरी हो जाती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, यह भी नहीं, वह भी नहीं। उपनिषद के नेति-नेति वचन बुद्ध से राजी होंगे। बुद्ध कहते हैं, न मैं बचता है वहां, न तू बचता है वहां। मैं-तू का झगड़ा ही नहीं बचता, मैं-तू ही नहीं बचती। एक विराट शून्य घेर लेता है, जिसमें दोनों खो जाते हैं। कुछ बचता है, जिसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। इसलिए बुद्ध कहते हैंः अनिर्वचनीय है वह, अव्याख्य है वह; अपरिहार्यरूपेण उसे कहा नहीं जा सकता।
ये चार सामान्य उत्तर हैं। शांडिल्य का उत्तर पांचवां है, जो और भी गहरा जाता है।
शांडिल्य कहते हैंः उभयपरां शांडिल्यः शब्दः उपपत्तिभ्याम्।
"शब्द और उपपत्ति द्वारा शांडिल्य इसको उभयपर कहते हैं।"
शांडिल्य कहते हैंः ये जो जितनी बातें कही गई हैं, सब ठीक हैं और फिर
भी कोई ठीक नहीं। शांडिल्य का वक्तव्य बहुत अनूठा है। शांडिल्य कहते हैंः ये जितनी बातें कही गई हैं--मैं-तू; तू; मैं; न मैं, न तू--ये सब बातें एक अर्थ में सही हैं, किसी दृष्टि से सही हैं; मगर एक ही दृष्टि से सही हैं, शेष दृष्टियों से गलत हैं। शांडिल्य कहते हैंः यह कहना कि न मैं, न तू, यह भी सच नहीं है। क्योंकि जहां न मैं बचा, न तू बचा, वैसी स्थिति को खोज करने की जरूरत भी क्या है? अगर दोनों बचे, तो संसार बच गया। मैं-तू का सारा झगड़ा सूक्ष्म हो गया, लेकिन बच गया। अगर एक बचा, तो आधा सत्य प्रकट होता है। दूसरा बचा, तो भी आधा सत्य प्रकट होता है। ये सब एकांगी दृष्टियां हैं। ये कहने के ढंग हैं। इनसे कहने की मजबूरी पता चलती है, लेकिन सत्य का उदघोष नहीं होता।

शांडिल्य कहते हैंः उभयपर। वह दोनों है, दोनों नहीं है। वह यह भी है,
वह भी है। एक वचन हैः नेति-नेति; शांडिल्य कहते हैंः इति-इति। वह यह भी है, वह भी है, दोनों है। और ये सारे वचन सही हैं। इन सभी वचनों में सत्य का कुछ अंश झलका है, लेकिन पूरा सत्य किसी वचन में नहीं है और किसी वचन में कभी हो नहीं सकता है। पूर्ण सत्य के लिए शब्द बहुत छोटे हैं।
परमात्मा को प्रकाश कहें कि अंधकार? प्रकाश कहें तो फिर अंधकार कहां
से आता है? फिर कोई और परमात्मा मानना पड़ेगा जिससे अंधकार आता है। उसको शैतान कहो, या कोई और नाम दो, मगर फिर और कोई परमात्मा मानना पड़ेगा। अगर परमात्मा को अंधकार कहें, तो प्रकाश कहां से आता है? अगर परमात्मा को दोनों कहें, अंधकार और प्रकाश, तो हमारे मन में बड़ी झंझट खड़ी होती है, कि दोनों कभी साथ तो पाए नहीं जाते, जहां अंधकार होता है वहां प्रकाश नहीं होता, जहां प्रकाश होता है वहां अंधकार नहीं होता। अगर दोनों कहो, तो दोनों हमने कभी साथ देखे नहीं, वह बात जमती नहीं, विरोधाभासी मालूम पड़ती है। अगर कहो दोनों नहीं है, तो हमारा सारा अनुभव, हमारी आंख का सारा अनुभव दो का ही है--प्रकाश और अंधकार, अगर दोनों नहीं है, तो फिर बात ही खतम हो गई; फिर हमारे बस के बाहर हो गई बात। फिर तो हम समझ ही न पाएंगे। ये अड़चनें हैं।
शांडिल्य कहते हैंः सभी वचनों में सत्य का अंश है। शांडिल्य स्यातवादी हैं। वे कहते हैं, प्रत्येक वचन में सत्य की थोड़ी सी झलक है; एक पहलू प्रकट हुआ है; लेकिन और पहलू दबे रह गए हैं, उन पहलुओं को भूल मत जाना। सत्य उभयपर है, सभी पहलुओं में है। जिसने कहा परमात्मा अंधकार है, वह भी सच कह रहा है, क्योंकि परमात्मा में कुछ गुण हैं जो अंधकार के हैं--गहनता, गहराई, शांति, विश्राम। और जिन्होंने कहा परमात्मा प्रकाश है, वे भी ठीक कहते हैं, क्योंकि परमात्मा में कुछ गुण हैं जो प्रकाश के हैं--सब स्पष्ट हो जाता है, सब दिखाई पड़ता है, सब रोशन हो जाता है, आंख खुल जाती है, कुछ छिपा नहीं रह जाता। अंधेरे में तो सब छिप जाता है, परमात्मा में तो सब प्रकट हो जाता है।
परमात्मा में कुछ लक्षण प्रकाश के भी हैं, कुछ लक्षण अंधकार के भी हैं। और चूंकि परमात्मा समग्रता है, इसलिए उसे दोनों ही होना चाहिए। मगर हमारी भाषा की अड़चनें हैं। हम दोनों कहें तो तार्किक दृष्टि से कठिनाई खड़ी होती है। दोनों इनकार कर दें, जैसा बुद्ध ने किया, तो तार्किक झंझट से तो बच गए, लेकिन न मैं, न तू; न अंधकार, न प्रकाश; न जीवन, न मृत्यु; न बसंत, न पतझड़; तब वह है क्या? तब हाथ में कुछ पकड़ नहीं आता। तब सारी पकड़ छूट जाती है। तब हाथ कोरे के कोरे रह जाते हैं। तो इतनी लंबी चर्चा और परिणाम क्या? तो रात भर रामलीला देखी और सुबह प्रश्न वहीं का वहीं खड़ा है कि सीता राम की कौन थी? कुछ हल नहीं हुआ।
शांडिल्य की बात समझना।
शांडिल्य कहते हैंः उभयपरां। ये जो द्वंद्व हैं शब्दों के, इन दोनों
को ही समझना होगा। सब द्वंद्वों के बीच छिपा है, सब द्वंद्वों के बीच निर्द्वंद्व बैठा है। जीवन भी वही है, मृत्यु भी वही है; प्रकाश भी वही, अंधकार भी वही; और दोनों के पार भी वही। दोनों भी और दोनों के पार भी-- उभयपरां।
इसलिए उपनिषद कहते हैंः वह पास से पास और दूर से दूर। यह उभयपरां की भाषा है। अगर कहो कि दूर, तो खोज मुश्किल हो जाती है। अगर कहो पास, तो खोजने की जरूरत नहीं रह जाती है। फिर कितने ही पास हो तब भी तो दूरी होती है। पास भी तो दूर होने का ही एक ढंग है। फिर कहो क्या? उपनिषद कहते हैंः दोनों, उभयपरां। वह दूर से भी दूर, पास से भी पास। जब तक नहीं पाया, तब तक दूर से दूर; और जब पाओगे, तो पाओगे, पास से भी पास। जब तक सोए, तब तक दूर से दूर; जब जागोगे तो पाओगे, पास से भी पास।
पहले जो चार मंतव्य हैं, उनसे संप्रदाय निर्मित होते हैं। क्यों? उनमें एक खूबी है, वे स्पष्ट हैं। जैसे काश्यप कहते हैं--तू, या बादरायण कहते हैं--मैं; बात साफ है, इसमें उलझन नहीं है। सच तो यह है, स्पष्टता के कारण ही सत्य की बलि दे दी गई। दो में से एक ही चुन सकते हो। अगर सत्य को

चुनोगे, तो विरोधाभासी होना पड़ेगा। उलझन रहेगी, अस्पष्टता रहेगी। अतर्क हो जाएंगे वक्तव्य। अगर स्पष्टता चुननी है, तो सत्य आंशिक ही हो सकता है, पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि पूर्ण सत्य विरोधाभासी है। इसमें हम कुछ कर नहीं सकते, कोई कुछ नहीं कर सकता--ऐसा सत्य का स्वभाव है कि सत्य अपने से विपरीत को भी अपने भीतर लिए हुए है।
जीवन में मृत्यु छिपी है, देखते नहीं? प्रेम में घृणा छिपी है, देखते नहीं? मित्र में ही शत्रु छिपा है, देखते नहीं? किसी को शत्रु बनाना हो तो पहले मित्र बनाना पड़ता है। यह भी खूब अजीब बात है! तुम किसी को सीधा शत्रु नहीं बना सकते। कैसे बनाओगे? पहले मित्र तो बनाओ, तब शत्रुता पैदा होती है। इसलिए जितना बड़ा मित्र हो, उतना ही बड़ा शत्रु हो सकता है।
पश्चिम के चाणक्य मैक्यावेली ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "प्रिंस" में लिखा है--राजाओं को सलाह दी है--कि जो बात तुम अपने शत्रुओं से न कहना चाहो, उसे अपने मित्रों से भी मत कहना। क्योंकि मित्र ही कभी शत्रु बन जाते हैं। और जो बात तुम अपने मित्रों के संबंध में न कहना चाहो, वह शत्रुओं के संबंध में भी मत कहना। क्योंकि आज नहीं कल, शत्रु ही मित्र बन जाते हैं। फिर पीछे झंझट होगी, पछतावा होगा कि ऐसा न कहा होता तो अच्छा था।
मैक्यावेली की बात में बड़ा अर्थ है। मैक्यावेली यह कह रहा हैः शत्रु में मित्र छिपा है, मित्र में शत्रु छिपा है। घृणा में प्रेम, प्रेम में घृणा। समृद्धि में दरिद्रता छिपी है, दरिद्रता में समृद्धि छिपी है। तुम देखते न, बुद्ध और महावीर अपने साम्राज्य छोड़ कर दरिद्र हो गए। एक बात उनकी समझ में आ गई होगी कि समृद्धि में दरिद्रता छिपी है, और दरिद्रता में समृद्धि छिपी है। नंगे होकर सम्राट हो गए, और सम्राट होकर नंगे थे। सम्राट होकर भिखारी थे, और भिखारी होकर सम्राट हो गए। यहां द्वंद्व जुड़े हैं। यहां सब चीजें एक-दूसरे में छिपी हैं। स्वास्थ्य में बीमारी छिपी है, बीमारी में स्वास्थ्य छिपा है। जब तक तुम बीमार हो सकते हो, तब तक तुम जिंदा हो। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं हो सकता। अब क्या बीमार होगा? जिंदा आदमी बीमार हो सकता है। और जो बीमार है, वह स्वस्थ हो सकता है। जो स्वस्थ है, वह बीमार हो सकता है। तो स्वास्थ्य और बीमारी विपरीत हैं, इतना ही मत समझना, भीतर जुड़े हैं, एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं--उभयपरां। मगर जब तुम ऐसा कहोगे, तो तुम्हारे पीछे कोई संप्रदाय खड़ा नहीं हो सकता।
बादरायण का संप्रदाय खड़ा हुआ। बादरायण के ब्रह्मसूत्र शंकर के संप्रदाय के आधार बने। काश्यप का संप्रदाय है। लेकिन शांडिल्य का कोई संप्रदाय खड़ा नहीं हुआ, खड़ा हो नहीं सकता। जब सत्य को तुम सब पहलुओं से कहने की कोशिश करोगे, तो तुमसे कोई भी राजी नहीं होगा। सत्य को जब तुम सब पहलुओं से कहोगे तो किसी की समझ में बात नहीं पड़ेगी, समझ के पार हो जाएगी, जरा कठिन हो जाएगी। तुम सत्य के साथ तो न्याय कर पाओगे, लेकिन लोग तुम्हारे साथ राजी नहीं होंगे।
तुम यह बात समझना। झूठ में स्पष्टता होती है। यह तुम्हें उलटी लगेगी बात--झूठ में स्पष्टता होती है। झूठ साफ-सुथरा होता है। क्योंकि आदमी की बनाई चीज है, जैसा चाहो वैसा काटो, जैसा चाहो वैसा बनाओ, जो शक्ल देना चाहो दे दो, झूठ तुम्हारे हाथ में होता है। सत्य तुम्हारे हाथ में नहीं, तुम सत्य के हाथ में हो; तुम उसे शक्ल नहीं दे सकते, तुम उसे आकार नहीं दे सकते, तुम उसे रंग नहीं सकते। सत्य तो जैसा है वैसा कहना होगा।
लाओत्सु ने कहा हैः और सब तो बड़े बुद्धिमान हैं और बड़े सुस्पष्ट, मेरी बुद्धि बड़ी उलझ गई है। मैं तो करीब-करीब मूढ़ हो गया हूं। ज्ञानी, परम ज्ञानी कह रहा है कि मैं करीब-करीब मूढ़ हो गया हूं। मेरे भीतर सब धुंधला हो गया है, कोई चीज साफ नहीं है। दूसरों की बुद्धि तो दुपहरी में है, मेरी बुद्धि संध्याकालीन जैसी हो गई--न दिन, न रात।
तुमने कभी सोचा इस बात पर कि हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या क्यों कहते हैं? इसीलिए कहते हैं--उभयपरां। प्रार्थना को संध्या कहने की क्या जरूरत? उभयपरां! संध्या का अर्थ हैः जहां दिन और रात मिलते हैं; जहां न तो दिन होता, न रात होती; दिन भी होता, रात भी होती। संध्या एक धुंधलका है, मध्य की घड़ी है, संक्रमण का काल है। ऐसी ही दशा है उस परम अनुभव की--न मैं

होता, न तू होता; मैं भी होता है, तू भी होता है--उभयपरां। संध्या जैसा। न तो भरी दुपहरी और न निबिड़ रात्रि। न तो मैं और न तू, स्पष्ट नहीं है। सब धुंधला-धुंधला है। इसलिए तो इस घड़ी को रहस्य की घड़ी कहते हैं, विस्मय की घड़ी।
लाओत्सु ठीक कहता है कि और सब तो बुद्धिमान हैं, तर्कयुक्त हैं, एक मैं ही मूढ़ हो गया हूं, मुझे कुछ साफ-साफ नहीं सूझता। मेरे भीतर सब धुंधला- धुंधला हो गया है।
परम ज्ञानी की यही दशा होगी। उसके भीतर सब धुंधला-धुंधला हो जाएगा, क्योंकि सब रहस्यपूर्ण हो जाएगा। वहां द्वंद्व एक-दूसरे में लीन होते हैं। वहां दो लोकों की सीमाएं मिलती हैं। वहां संध्या घटती है।
तुमने इस पर भी शायद ख्याल न किया हो कि इस देश में संतों की भाषा को संध्या-भाषा कहा जाता है। कबीर की भाषा संध्या-भाषा कहलाती है; सधुक्कड़ी को संध्या-भाषा कहा जाता है। क्यों? क्योंकि उस भाषा में चीजें साफ नहीं हैं। गणित की तरह साफ नहीं हैं। विज्ञान और धर्म का यही भेद है। गणित दुपहरी की भाषा बोलता है, कविता अंधेरी रात की भाषा बोलती है, धर्म संध्या की भाषा बोलता है। धर्म की कुछ बातें विज्ञान जैसी स्पष्ट होती हैं, और धर्म की कुछ बातें काव्य जैसी अस्पष्ट होती हैं। और दोनों के मेल से बड़ी उलझन पैदा होती है।
पश्चिम में तो संतों ने जो प्रतिवादन किया है, उसका नाम ही मिस्टीसिज्म हो गया है। कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है। जैसे सुबह धुंधलका छाया हो, घना कुहासा हो, हाथ को हाथ न सूझे, ऐसी दशा है। रोशनी भी है और हाथ को हाथ भी नहीं सूझता। काव्य साफ-साफ रूप से अस्पष्ट होता है। गणित स्पष्ट रूप से स्पष्ट होता है। धर्म स्पष्ट-अस्पष्ट दोनों साथ-साथ होता है। धर्म चुनाव नहीं करता।
उभयपरां शांडिल्यः शब्दः उपपत्तिभ्याम्।
"शब्द और उपपत्ति द्वारा शांडिल्य इसको उभयपर कहते हैं।"
दो कारणों से उभयपरां कहते हैं।
एकः शब्द की सीमा है, सत्य की सीमा नहीं। शब्द को स्पष्ट होना ही चाहिए, नहीं तो उसका प्रयोजन ही खो जाएगा। अंधेरे का अर्थ अंधेरा ही होना चाहिए, और प्रकाश का अर्थ प्रकाश ही होना चाहिए। और गर्मी का अर्थ गर्मी, और सर्दी का अर्थ सर्दी। नहीं तो शब्द का अर्थ क्या रहेगा? कभी इस शब्द का अर्थ एक हो, कभी दूसरा हो, सब घोल-मेल हो, खिचड़ी हो, तो शब्द तो बोलना ही मुश्किल हो जाएगा। शब्द की तो जीवन-प्रक्रिया ही यही है कि उसे स्पष्ट होना चाहिए।
अब तुम ऐसा समझो कि तुमने एक हाथ को सिगड़ी पर तपाया और एक हाथ को बर्फ
पर रख कर ठंडा किया, फिर दोनों हाथों को एक बाल्टी में भरे पानी में डुबा दिया। अब तुमसे कोई पूछे कि पानी बाल्टी का ठंडा है या गरम है? तो मुश्किल में पड़ जाओगे। एक हाथ कहेगा ठंडा और एक हाथ कहेगा गरम। पानी बाल्टी का एक ही तापमान पर है। एक हाथ कहता है ठंडा, जिस हाथ को तुमने सिगड़ी पर तपा लिया है, वह हाथ कहता है ठंडा। जिस हाथ को तुमने बर्फ पर ठंडा कर लिया है, वह हाथ कहता है गरम, कुनकुना। किसकी बात सच मानोगे? पानी दोनों है।
सर्दी और गर्मी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन भाषा में तो अलग करना पड़ेगा, नहीं तो मुश्किल हो जाएगी। भाषा में तो साफ-साफ सीमाएं बनानी पड़ेंगी। भाषा में तो व्याख्या देनी होगी।
यह जो भाषा के कारण उपद्रव पैदा हो रहा है, शांडिल्य कहते हैं, मैं तुमसे कहना चाहता हूं, सत्य उभयपरक है। दोनों है, और दोनों नहीं है, और दोनों के पार है। इसलिए किसी एक शब्द की सीमा में मत बंध जाना।
और, उपपत्ति। उस अनुभूति तक पहुंचते-पहुंचते तुम्हारे भीतर इतनी क्रांतियां घट जाती हैं। पहली क्रांति तो घटती है, तुम्हारे विचार शांत हो जाते हैं। जहां विचार शांत हुए, वहां शब्द विलीन हो जाते हैं। वह घड़ी परम मौन में घटती है, वहां शब्द होते नहीं। दूसरी बात, वहां मन नहीं होता। मन तो विचारों की प्रक्रिया का ही नाम है। वहां कोई मन नहीं होता, वहां कोई मनन नहीं होता, वहां कोई चिंतन नहीं होता। सत्य सामने खड़ा होता है, सत्य से

तुम आपूर होते हो, भरे होते हो, चिंतन-मनन की सुविधा कहां? चिंतन-मनन तो आदमी तब करता है जब सामने कुछ नहीं होता, टटोलता है।
चिंतन यानी टटोलना, अंधेरे में टटोलना। रोशनी हो गई, सब चीजें साफ हैं, फिर क्या चिंतन करोगे? वहां चिंतन अवरुद्ध हो जाता है। आदमी अवाक होता है। ठक से सारा मन बंद हो गया। और मन ही खबर देगा। जब तुम लौटोगे संसार में, अपने मित्रों के बीच, अपने परिवार में, अपने प्रियजनों में, और उनसे तुम कहोगे कि मैंने जाना, तो कौन खबर लाएगा? मन खबर लाएगा। और मजा यह है कि मन वहां था नहीं। खबर उससे देनी पड़ती है जो वहां था नहीं। और जो वहां था वह कभी लौटता नहीं। उसे तुम ला नहीं सकते वापस। उसे लाने का कोई उपाय नहीं।
तुम गए सागरतट पर... एक बड़ा प्रसिद्ध कवि था, वह गया सागरतट पर। उसकी प्रेयसी बीमार पड़ी है अस्पताल में। सागर बड़ा सुंदर था। नीलिमा सागर की, सुबह की ताजी हवाएं, सूरज की ताजी किरणें, सागर के तट पर बड़ा सौंदर्य था। हवाएं बड़ी सुगंधित थीं। वह बहुत पुलकित और आनंदित हुआ। उसने सोचा कि काश! मेरी प्रेयसी भी यहां होती। वह तो नहीं आ सकती, अस्पताल में बीमार पड़ी है, उसके लिए क्या करूं? उसके लिए थोड़ी भेंट ले जाऊं। तो वह एक बड़ी पेटी लाया और पेटी में उसने सागर की हवाएं और रोशनी, जो भी बन सकता था, पेटी खोल कर और जल्दी से बंद करके ताला लगा कर सील-मोहर लगा दी।
पहुंचा अस्पताल, बड़ा खुश था। सोचता था रोशनी भर लाया हूं, ताजी हवाएं
भर लाया हूं। लेकिन पेटियों में कहीं हवाएं ताजी रहती हैं? कितनी ही ताजी हवा भरो, पेटी में जाते ही बासी हो जाती है। और पेटियों में कहीं रोशनी पकड़ी जाती है? जब उसने पेटी खोली थी तो सूरज की किरणें चमकती उसने देखी थीं पेटी पर पड़ती हुई, जल्दी से पेटी बंद कर दी थी तो सोच रहा था कि भीतर होंगी। कुछ चीजें हैं जो पकड़ में नहीं आतीं। उसने तो पेटी बंद कर दी थी और सब तरफ से मोम लगा दिया और ताले भी लगा दिए, लेकिन सूरज की किरणें कोई रुपये-पैसे तो नहीं हैं कि तुमने तिजोड़ी में बंद कर दीं और ताला लगा दिया। सूरज की किरणें तो पेटी के बंद होते ही निकल गईं। उन्हें बंद करने का कोई उपाय नहीं है। कोई उन पर मुट्ठियां थोड़े ही बांध सकता है।
पर बड़ा खुश था, बड़ा प्रसन्न था। कल्पना कर रहा था कि पेटी जब खोलूंगा अस्पताल में, जगमगा उठेंगी मेरी प्रेयसी की आंखें। जब पेटी खोली तो प्रेयसी थोड़ी हैरान थी, उसने कहा, तुम लाए क्या, खाली पेटी? उसने भी पेटी में देखा, उसने कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है! जब मैंने बंद की थी तो खाली नहीं थी। जब बंद की थी तो सूरज की किरणें नाचती थीं और ताजी हवा बहती थी। मैं तो यही सोच कर इतनी दूर इसे लाया कि थोड़ा सागर का अनुभव तुम्हारे लिए ले चलूं।
बस ऐसी ही हालत है। जब तुम जाते हो उस परमात्मा के किनारे, प्रभु-तीरे,
उस तट से जब तुम अनुभव लाते हो, यहां तक लाते-लाते, जिन पेटियों में तुम लाते हो--शब्दों की पेटियां--उनमें सब मर जाता है। उसकी अनुभूति उस समय होती है, जब मन नहीं होता। और जब तुम बताते हो, तब मन का सहारा लेना पड़ता है। मन की गवाही, मन का उपयोग करना पड़ता है। इसलिए उस अनुभव की जो उपपत्ति है, वही इतनी भिन्न है, वही इतनी अनूठी है कि उसे तुम शब्दों में नहीं पकड़ पाते। शब्दों के पार जाते हो, तभी वह पकड़ में आती है। और जब शब्दों में लाने की कोशिश करते हो, तभी छूट-छूट जाती है।
फिर भी सदगुरु बोलते हैं। इसलिए नहीं कि वे सोचते हैं बोल कर कहा जा सकेगा, बल्कि इसलिए कि बोल कर प्यास जगाई जा सकेगी। अब तुमने यह कवि की मूढ़ता देखी? फिर भी मैं कहता हूं, उसने ठीक ही किया। इतना तो हुआ होगा कम से कम प्रेयसी को, कवि की आंखों को देख कर, कवि पेटी भर कर लाया--नहीं ला सका जो लाना था, मगर भर कर लाया--तो जरूर लाने योग्य कुछ रहा होगा, प्यास तो जगी होगी उस प्रेयसी में! उसके मन में एक पुलक तो आई होगी कि मैं भी जाऊं सागरतट पर। जब स्वस्थ हो जाऊंगी तब जाऊंगी। आज नहीं कल मैं भी यात्रा करूंगी।
स्वस्थ अगर हुई होगी कभी तो उसने जो पहली बात कही होगी, मुझे ले चलो सागरतट। तुम लाना चाहे थे कुछ, नहीं ला पाए, लेकिन मेरे भीतर एक प्यास जग

गई है। उस दिन से मैं सो नहीं पाई ठीक से, उस दिन से मुझे सपना सागर का आ रहा है, उस दिन से मैं बार-बार उसी-उसी विचार से भर गई हूं। यद्यपि मुझे कुछ पता नहीं कि तुमने क्या देखा था वहां, लेकिन तुमने देखा जरूर था। तुम्हारी अवाक आंखें, तुम्हारा विस्मय-विमुग्ध चेहरा, तुम्हारे लाने का भाव, तुम्हारी भंगिमा, जिस प्रेम से तुमने पेटी खोली थी और जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ तुम खड़े हो गए थे पेटी को खाली देख कर, उससे एक बात तो मुझे समझ में आ गई थी कि तुम कुछ जरूर भर कर लाए थे, अन्यथा तुम पेटी न ढोते। तुम कुछ संपदा लाए थे, जो लाई नहीं जा सकी। संपदा थी जरूर। तुम जैसे थके-हारे रह गए थे, तुम्हें जैसे भरोसा नहीं आया था, तुमने बार-बार पेटी उघाड़ कर खोल कर देखी थी कि हुआ क्या? किरणें गईं कहां? हवा कहां है? वह सागर का जो थोड़ा सा टुकड़ा लाया था, वह कहां है? तुम्हारी उस सारी मनोस्थिति ने मेरे मन में एक प्यास जगा दी थी कि जैसे ही ठीक होऊं, जैसे ही चल पाऊं, सागर जाना है।
बस यही होता है। शांडिल्य कहें, कि कपिल कहें, कि कणाद, कि नारद, कि काश्यप, कि बादरायण, कौन कहे, किस ढंग से कहे, किस तरह की पेटी लाए--बड़ी कि छोटी; कि सोने की, कि लोहे की, कि लकड़ी की; कि सुंदर, कि असुंदर; कि नक्काशी वाली; किस ढंग की पेटी लाए, मूल्यवान कि कम मूल्यवान, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, इतनी बात पक्की है कि जब भी बादरायण लौटे, काश्यप लौटे, शांडिल्य लौटे, तब उनके प्रेमियों ने अनुभव किया कि कुछ है जो हमने नहीं देखा, उन्होंने देखा है। कुछ है, जो उनके जीवन में घट गया है और हमारे जीवन में घटना चाहिए, घटने योग्य कुछ है। और यह भी देखा कि वे कह नहीं पा रहे हैं; उनकी जबान लड़खड़ाती है। बड़े से बड़े संत भी तुतलाते हैं, क्योंकि परमात्मा का अनुभव ऐसा है। उसे कहो कैसे? गूंगे केरी सरकरा। गूंगे ने शक्कर चख ली है; कहो कैसे? लेकिन गूंगा तुम्हारा हाथ पकड़ता है कि आओ, तुम्हें भी ले चलूं! गूंगा शोरगुल मचाता है--गूंगा है, बोल नहीं सकता, लेकिन शोरगुल तो मचा सकता है। उसकी आंखें तो तुम्हें कह सकती हैं कि इसने कुछ देखा है, चलो इसके साथ चल कर थोड़ा देख लें। यह इतना आनंदित हो रहा है, व्यर्थ ही नहीं हो रहा होगा। और वह तुम्हारा हाथ खींचता है कि चलो। काश! तुम चल पाओ, तो तुम भी पहुंच जाओ। और बिना पहुंचे जीवन में कोई सार्थकता नहीं है। बिना पहुंचे जीवन में कोई कृतार्थता नहीं है।
उभयपरां शांडिल्यः।
शांडिल्य कहते हैं कि उभयपरक है वह अनुभूति, संध्याकाल जैसी है।
वैषम्यात असिद्धं इति चेन्न अभिज्ञानवत वैशिष्ट्यात्।
"वैषम्य होने से यह असिद्ध नहीं होगा, क्योंकि यह ज्ञान की नाईं अविशिष्ट है।"
तुम्हारे मन में यह सवाल उठेगा, शांडिल्य उसका जवाब देते हैं। तुम्हारे मन में यह सवाल उठेगा--इतने लोगों को परमात्मा का इतना अलग-अलग अनुभव होता है क्या? अलग-अलग भाषा अलग-अलग अनुभव की सूचक है क्या? भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न बातें कहते हैं, एक ही परमात्मा है या बहुत परमात्मा हैं? कौन जाने इनके अनुभव भी अलग-अलग परमात्मा के होते हों! इतना वैषम्य है अभिव्यक्ति में तो क्या परमात्मा में भी इतना वैषम्य है? शांडिल्य कहते हैंः नहीं, उसमें कोई वैषम्य नहीं है। वह विराट है। वह विराट है, इसीलिए वक्तव्यों में वैषम्य है। वह इतना बड़ा है कि जो भी देख कर आया है, एक पहलू को ही बता पाए तो बहुत।
फिर प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से खबर लाता है। जब तुम कोई खबर लाते हो, तो उस खबर में तुम्हारी खबर भी सम्मिलित होती है। मीरा नाची, चैतन्य नाचे, बुद्ध बिना नाचे बैठे रहे, क्राइस्ट बगावत ले आए, और बहुत हुए ज्ञानी जिनका नाम भी पता कभी न चला, क्योंकि वे बोले ही नहीं, वे चुप ही रह गए; अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग ढंग से अभिव्यक्ति की। सवाल उठना स्वाभाविक है--इन सबका अनुभव एक था?
शांडिल्य कहते हैंः अनुभव तो एक था, अनुभव तो दो नहीं हो सकते। क्यों नहीं हो सकते दो? क्योंकि अनुभव तभी होता है जब मन मिट जाता है। जहां मन

मिट गया, वहां भेद मिट गए। अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न है, क्योंकि अभिव्यक्ति करते वक्त फिर मन को वापस लाना होता है।
यहां तुम इस बगीचे में चार लोगों को ले आओ। एक हो कवि, एक हो चित्रकार,
एक हो संगीतज्ञ, एक हो नर्तक, उन चारों को तुम इस बगीचे में ले आओ। यह बगीचा एक है। वे चारों एक ही वृक्ष की छाया में बैठेंगे, एक से फूलों की सुगंध उनके नासापुटों को भरेगी, वृक्षों से छनती हुई सूरज की किरणें उन पर पड़ेंगी वे एक हैं, हवाएं जो बहेंगी वे एक हैं, पक्षी जो गीत गाएंगे वे एक हैं। फिर वे चारों यहां से विदा हो जाएं, फिर उन चारों से तुम कहो कि तुमने जो उस बगीचे में देखा हो, हमें समझाने की कोशिश करो। कवि गीत गाएगा। गीत गा सकता है इसलिए। गीत को ही पाएगा कि निकटतम माध्यम है कह देने का, उसी में वह कुशल है। वह गीत गाएगा इस बगीचे के संबंध में। और संगीतज्ञ वीणा के तार छेड़ेगा। अब गीत में और वीणा के तारों में कहां साम्य? और नर्तक पैर में घूंघर बांध कर नाचेगा। नर्तक नाच कर खबर देगा कि हवाएं कैसी नाचती थीं और वृक्ष कैसे मस्त थे! गायक गाकर, गीत लिख कर कहेगा कि पक्षियों की गुनगुनाहट में क्या छिपा था, और हवाएं जब वृक्षों से निकलती थीं तो कैसी ध्वनि, कैसा नाद पैदा हो रहा था! और चित्रकार चित्र बनाएगा, उसमें रंग होंगे। न उसमें शब्द होंगे, न नृत्य होगा, न ध्वनि होगी, रंग होंगे। ये चारों की अपनी विशिष्टताएं प्रविष्ट हो जाएंगी अभिव्यक्ति में। इससे यह पता नहीं चलता कि इन्होंने जो जाना था, वह अलग-अलग था। जाना तो एक था, लेकिन जनाते वक्त अलग-अलग हो गया।
वैषम्य होने से यह सिद्ध नहीं होता कि परमात्मा एक नहीं है। परमात्मा
तो एक है। एक का नाम ही परमात्मा है। जो एक सभी में समाया हुआ है, जो समग्र का प्राण है, उसका नाम परमात्मा है। समग्रता का नाम परमात्मा है। लेकिन उसका जो अनुभव होता है, वह प्रत्येक का अपना-अपना होता है, अभिव्यक्ति में भेद पड़ जाते हैं। परमात्मा विशिष्ट-विशिष्ट ढंग से प्रकट नहीं होता। उसका होना तो अविशिष्ट है। यह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है--
वैषम्यात असिद्धं इति चेन्न अभिज्ञानवत वैशिष्ट्यात्।
उसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है। वह तो सामान्य है, अविशिष्ट है। जिसको झेन फकीर कहते हैं, ऑर्डिनरी, अति सामान्य। उसमें कुछ विशिष्टता नहीं है। एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि तुम निर्वाण को उपलब्ध हो गए, तुमने प्रभु को जान लिया, अब तुम्हारे जीवन की विधि क्या है? पहले तुम्हारे जीवन की विधि क्या थी? उस फकीर ने कहा, पहले? लकड़ी काटता था, कुएं से पानी खींचता था। अब? उस फकीर ने कहा, हाऊ मार्वलस! हाऊ वंडरस! कैसा विस्मय, कैसी चकित करने वाली घटना है! अब भी मैं जंगल से लकड़ी काटता हूं, कुएं से पानी भरता हूं! आदमी ने पूछा, फिर फर्क क्या है? फर्क बहुत है। फर्क जो देख ले, उसके पास आंख है। पहले भी जंगल से लकड़ी काटता था, लेकिन तब मैं था, लकड़ी काटने वाला था। कुएं से पानी भरता था, तब मैं था, मैं भरने वाला था। अब भी कुएं से पानी भरा जा रहा है और अब भी लकड़ी काटी जा रही है--हाऊ मार्वलस! और चकित करने वाली बात क्या है? इतना विस्मय होने की बात क्या है? यह फकीर यह क्यों कहता है, कितना आश्चर्य? अब भी लकड़ी काटी जाती है, अब भी कुएं से पानी भरा जाता है--न कोई भरने वाला है, न कोई काटने वाला है। मैं तो गया, अब वही काटता है; अब मैं नहीं बचा।
लेकिन जगत तो जैसा है वैसा ही चलता है। तुम बदल जाते हो, तुम्हारा मैं गिर जाता है। परमात्मा में जब तुम्हारा मैं गिर जाता है तो और कुछ नहीं बदलता, फिर भी तुम दुकान पर बैठोगे, बैठना ही चाहिए; फिर भी तुम बाजार में जाओगे, जाना ही चाहिए; लेकिन तुम नहीं बचे। तुम जाओगे, फिर भी कोई नहीं जाएगा; दुकान पर तुम बैठोगे, फिर भी कोई नहीं बैठेगा। वही तो कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू लड़, तू बीच में मत आ, तू अपने को छोड़, जो उसे करना है करने दे, तू वाहन बन, तू निमित्त हो जा। तू चिंता मत कर कि इन लोगों को मार डालेगा। जिनको मरना है वे मर चुके हैं, तू सिर्फ बहाना होगा। तू कर्ता की भ्रांति छोड़, कर्ता वही एक है।
तो जो साधु-संत अपने अनुभव के कारण विशिष्ट होने का दावा करने लगते हैं, समझ लेना उन्हें अनुभव नहीं हुआ। यह विशिष्टता का दावा तो अहंकार का

ही नया रूप है। कहते हैं--मैं त्यागी, मैं ऐसा, मैं वैसा। जो सिंहासनों पर बैठ जाते हैं, विशिष्टता का दावा करने लगते हैं, वे गलती में हैं, अनुभव नहीं हुआ। जिनको अनुभव हुआ है, वे तो एकदम सामान्य हो जाएंगे। वे तो तुम्हारे जैसे ही सामान्य होंगे। उनमें तुममें कुछ भेद नहीं होगा, भेद अगर होगा तो भीतर होगा जो तुम्हें दिखाई भी नहीं पड़ सकता। भेद अगर होगा तो आंतरिक होगा, वे ही जानेंगे अपने भेद को। और उनके जीवन में यही सामान्यता होगी--भूख लगेगी तो भोजन करेंगे, प्यास लगेगी तो पानी पीएंगे, रात आएगी तो सो जाएंगे। वे तुम जैसे ही होंगे।
मगर मनुष्य का अहंकार बड़ा अजीब है। मनुष्य चाहता है कि जो ज्ञानी हों, पहुंचे हुए हों, वे विशिष्ट होने चाहिए। इसलिए तुम झूठी कहानियां गढ़ते हो विशिष्टता के लिए। तुम्हारे भीतर विशिष्ट होने का दंभ पड़ा है, उसी दंभ के कारण तुम अपने संतों-महात्माओं के आस-पास भी विशिष्टता की कहानियां गढ़ते हो। मुसलमान कहते हैं कि मोहम्मद जब चलते थे तो उनके ऊपर बदलियां चलती थीं छाया करने को, रेगिस्तान अरब का! जैन कहते हैं, महावीर धूप में भी चलते तो उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता था। ईसाई कहते हैं कि जीसस का जन्म कुंवारी मरियम से हुआ।

ये सब फिजूल की बातें हैं। यह विशिष्ट बनाने की कोशिश की जा रही है।
और परमात्मा विशिष्ट नहीं है। परमात्मा सामान्य से भी सामान्य है, क्योंकि परमात्मा सामान्य में ही छिपा है। परमात्मा वहां आकाश में नहीं बैठा है, परमात्मा तुममें मौजूद है।
इसलिए परम ज्ञानी बिल्कुल सामान्य हो जाता है। शायद तुम्हें रास्ते
पर मिले तो तुम पहचान भी न सको। शायद तुम्हारे पास ही बैठा हो और तुम्हें खबर न चले।
जापान में एक सम्राट सदगुरु की तलाश में था--बूढ़ा हो गया था। जितने- जितने बड़े-बड़े नाम थे, सब साधुओं के पास गया, महात्माओं के पास गया, लेकिन कहीं उसका मन न भरा। उसने अपने बूढ़े वजीर से कहा कि मैं करूं क्या? मेरा मन नहीं भरता! मैं बड़े-बड़े महात्माओं के पास हो आया, लेकिन अभी मुझे वह आदमी नहीं मिला जो मेरा सदगुरु हो जाए।
उस वजीर ने कहा, तुम्हें मिलेगा भी नहीं, क्योंकि तुम विशिष्ट की तलाश में हो। तुम सोचते हो, मैं सम्राट, सम्राट का गुरु भी बहुत विशिष्ट होना चाहिए। और जो परम ज्ञानी है, वह सामान्य हो जाता है। तुम्हें मिल भी जाए परम ज्ञानी, तुम पहचान न सकोगे, क्योंकि तुम्हारी आदत खराब है। तुम सोचते हो, उस पर चांद-तारे जड़े होने चाहिए, हीरे-जवाहरात लगे होने चाहिए; तुम्हारी आदत खराब है। तुम सिंहासन पर बैठते-बैठते सोचते हो कि वह मुझसे बड़े सिंहासन पर बैठा होगा, उसमें कुछ खूबी होगी। तुम्हें मिल भी जाए तो तुम पहचान न सकोगे।
उस सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी अजीब बात हुई। तो तुम किसी को जानते हो जो मुझे मिल जाए तो न पहचान सकूंगा? उसने कहा, हां, मैं जानता हूं, और तुम नहीं पहचान सकोगे। यह तुम्हारे सामने जो द्वार पर खड़ा हुआ बूढ़ा है, यही है। इससे मैं तीस साल से सत्संग कर रहा हूं। और इससे जो मैंने पाया है, उसकी तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को खबर भी नहीं है। सम्राट ने कहा, यह पहरेदार मेरा, यह ज्ञानी! तुम होश में हो, पागल तो नहीं हो गए हो! वजीर ने कहा, मैंने आपसे पहले ही कहा था कि आप न पहचान सकेंगे, आप विशिष्ट की खोज कर रहे हैं।
अक्सर ऐसा है। कभी तुम्हारे घर में हो सकता है परम ज्ञानी हो और तुम बाहर खोजो। तुम्हारे पड़ोस में हो और तुम बाहर खोजो। और तुम हिमालय जाओ खोजने और ज्ञानी बाजार में बैठा हो। क्योंकि ज्ञानी किसलिए हिमालय जाएगा? बाजार भी उसका है, हिमालय भी उसका है, सब उसका है। ज्ञान कोई विशिष्ट घटना नहीं है। तुमने जिस दिन अपनी सामान्यता को पहचान लिया, सहजता को पहचान लिया, उसी दिन घट जाता है।
इस सूत्र को याद रखना!
न च क्लिष्टः परस्मात अनन्तरं विशेषात्।

"परमात्मा में वैषम्य-दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि ज्ञान द्वारा विशेष भावों की उपलब्धि हुआ करती है।"
ये जो इतनी विशिष्टताएं अलग-अलग संप्रदाय, अलग-अलग धर्म, अलग-अलग कहने वाले परमात्मा की बताते हैं, ये परमात्मा की विशिष्टताएं नहीं हैं, इन ज्ञानियों की विशिष्टताएं हैं। ज्ञान के कारण, इनके ज्ञान के ढंग के कारण पैदा हो रही हैं। ज्ञान द्वारा विशेष भावों की उपलब्धि हो रही है।
जो संगीतज्ञ है, उसका ज्ञान संगीत का है। जब वह परमात्मा को अनुभव करेगा तो वह कहेगा, परमात्मा परम संगीत है, ओंकार है। यह इसकी वजह से हो रहा है। जो परमात्मा को किसी और रास्ते से खोजा है और जिसका ढंग और है, जैसे समझो--
पश्चिम के बहुत बड़े यूनानी विचारक प्लेटो ने अपनी एकेडमी के बाहर लिखवा छोड़ा था कि जो गणित न जानते हों, वे भीतर न आएं। क्योंकि प्लेटो कहता था, परमात्मा जगत का सबसे बड़ा गणितज्ञ है। प्लेटो गणितज्ञ था, यह बात सच है! मगर गणितज्ञ जब परमात्मा के संबंध में सोचेगा तो परमात्मा को भी गणितज्ञ बना लेगा। और उसके पास सोचने का उपाय भी नहीं है। वह हर जगह गणित देख लेता था। और देखता था, अहा! परमात्मा कैसा गणित बिठाया है! हर जगह गणित है! गणित में कहीं कोई भूल-चूक नहीं होती! गणित अकेला विज्ञान है जो पूर्ण है। बाकी सब विज्ञान में भूल-चूक होती है, सुधार होता रहता है, गणित थिर है। गणित के सिद्धांत शाश्वत मालूम होते हैं। तो प्लेटो कहता था, परमात्मा गणित है। इसलिए जो गणित न जानते हों, वे मेरे आश्रम में प्रवेश न करें, गणित सीख कर आएं। गणित ही नहीं जानते तो परमात्मा से कैसे संबंध जुड़ेगा?
यह भी अजीब बात हो गई। तुमने कभी सुनी न होगी कि गणित भी कोई शर्त है परमात्मा को जानने में। लेकिन प्लेटो के आश्रम में थी। प्लेटो गणित की भाषा जानता था।
अलग-अलग लोग अलग-अलग भाषा बोलेंगे। उनकी भाषा तुम्हें पकड़नी होगी। उमर खय्याम परमात्मा की बात करता है, तो शराब की बात करता है। वह उसकी भाषा है। शराबी मत समझ लेना उसको। यह मत समझ लेना कि वह शराब के गुणगान कर रहा है। शराब का उसने अनुभव किया है, और जब उसने परमात्मा का अनुभव किया, तो उसे याद आया कि यह शराब का ही परम अनुभव है। क्योंकि शराब में भी थोड़ी देर को "मैं" भूल गया था, और परमात्मा में आया तो "मैं" सदा के लिए भूल गया। तो यह शराब का ही अनुभव हुआ न! मगर यह शराबी को हो सकता है। जिसने शराब पी ही न हो... अब तुम महावीर से पूछो, तो महावीर कहेंगे, हद्द हो गई, परमात्मा और शराब! तुम बात क्या कर रहे हो?
प्रत्येक व्यक्ति का अपना ज्ञान परमात्मा में वैशिष्ट्य को आरोपित
कर देता है। लेकिन परमात्मा इससे विशिष्ट नहीं होता। न तो परमात्मा गणित है, और न शराब है, और न संगीत है। परमात्मा सब है, क्योंकि परमात्मा किसी एक विशिष्ट से बंधा नहीं है। परमात्मा सब है, परमात्मा में सब समाहित है। ऐश्वर्ये तथा इति चेन्न स्वाभाव्यात्।
"ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं।"
और परमात्मा की यह जो समग्रता है, यह उसका ऐश्वर्य है। वह सब है--सारा काव्य उसका है, और सारा गणित भी उसका, सारा नृत्य भी उसका, सारा प्रेम भी उसका, सारी शराब भी उसकी, सब उसका है, अच्छा-बुरा सब उसका है--यह सारा उसका ऐश्वर्य है। और ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं। यह परमात्मा का ऐश्वर्य स्वभाव है उसका।
फर्क समझना।
जब आदमी ऐश्वर्य को उपलब्ध होता है, तो यह उसका स्वभाव भी हो सकता है,
न भी हो। जैसे तुमने धन इकट्ठा किया और लोग कहते हैं, बड़ा ऐश्वर्य पा लिया। मगर धन तुम्हारा स्वभाव नहीं है; चोरी जा सकता है, सरकार नोट कैंसिल कर सकती है। तुम्हारे ऐश्वर्य की कीमत कितनी? एक क्षण में तुम दरिद्र हो जाओ! कम्युनिज्म आ सकता है, हजार बातें घट सकती हैं--घर में आग लग सकती है, बैंक फेल हो सकता है, साझीदार धोखा दे जाए; पत्नी ही ले भागे! भरोसा किसका

करोगे? तुम्हारे पास जो संपत्ति है, वह स्वभाव नहीं है। इसलिए उस संपत्ति में विपत्ति छिपी ही रहेगी।
तुम्हारा जो यश है, वह स्वाभाविक नहीं है। वह दूसरों पर निर्भर है। तुम्हें दूसरों को रिश्वत देनी पड़ेगी, दूसरों की तुम्हें खुशामद करनी पड़ेगी। अगर तुम चाहते हो कि लोग तुमको भला कहें, तो तुम्हें लोगों को भला कहना पड़ेगा। लोग उसी को भला कहते हैं, जो उनको भला कहता है। अगर तुम चाहते हो लोग तुम्हें ज्ञानी मानें, तो तुम जो भी आए उसको कहना--आप महाज्ञानी हैं, महात्मा हैं। वह भी लोगों से जाकर कहेगा कि भई, ऐसा महात्मा नहीं देखा। तुम अगर चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे सामने झुकें, तो तुम उनके चरण छूते रहना, वे तुम्हारे सामने झुकते रहेंगे। यह सब लेन-देन है। मगर यह सब निर्भर है दूसरों पर, इससे वास्तविक ऐश्वर्य उपलब्ध नहीं होता। वास्तविक ऐश्वर्य स्वाभाविक ऐश्वर्य है, जो किसी और पर निर्भर नहीं है; जो तुम्हारी अंतर्चेतना से उमगता है, जो तुम्हारा है, जो फूल तुममें खिलता है। क्या तुम सोचते हो जंगल में जो फूल खिलता है वह कम ऐश्वर्यवान होता है, क्योंकि उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता, और क्योंकि किसी गुलाब की प्रदर्शनी में उसे रखा नहीं जाता, क्योंकि फोटोग्राफर उसके फोटो नहीं निकालते, अखबारों में उसकी खबर नहीं छपती। शायद जंगल से कोई गुजरे भी नहीं, वह फूल खिले, नाचे हवाओं में, सुगंध को बिखेरे, गिर जाए, खो जाए, इतिहास में कभी उसका अंकन न हो। मगर क्या तुम सोचते हो वह फूल ऐश्वर्यवान नहीं था? वह ऐश्वर्यवान था। वह जीया, नाचा--और क्या चाहिए? वह अपने स्वभाव को उपलब्ध हुआ।
दो तरह के ऐश्वर्य हैं। एक, कल्पित ऐश्वर्य, जो दूसरों पर निर्भर होता है। कल्पित ऐश्वर्य में जो ज्यादा खो गया, वह स्वाभाविक ऐश्वर्य को नहीं खोज पाता है। जो फालतू धन में उलझ गया, वह असली धन से वंचित रह जाता है। एक स्वाभाविक ऐश्वर्य है, जो किसी पर निर्भर नहीं है। तुम पर ही निर्भर है। उसे कोई चुरा नहीं सकता। उसका कोई खंडन नहीं कर सकता। उसे तुमसे कोई छीन नहीं सकता। जो छिन जाए, वह तुम्हारा नहीं, इसको तुम कसौटी मानना। अगर इतनी कसौटी तुम्हें ख्याल में आ जाए, तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी--जो छिन सकता है, वह मेरा नहीं है। फिर तो क्या बचता है तुम्हारे पास? सिर्फ तुम्हारे भीतर का बोध बचता है, ध्यान बचता है, जागरूकता, चैतन्यता बचती है।
कृष्ण उसी के लिए अर्जुन से कहे हैंः नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। वह जो भीतर है, उसे न तो शस्त्र छेद सकते और न आग जला सकती। वही तुम हो। वही तुम्हारा ऐश्वर्य है।
जब शांडिल्य परमात्मा के ऐश्वर्य की बात कर रहे हैं, तो वह ऐसे ही ऐश्वर्य की बात कर रहे हैं। उसके ऐश्वर्य में दोष स्पर्श नहीं करता। तुम्हारे ऐश्वर्य में बड़ा दोष स्पर्श करता है।
समझो। तुम्हें धनी होना है, तो बहुतों को गरीब बनाए बिना तुम धनी न हो सकोगे। यह दोषी हो गई बात। तुम्हें धनी होना है, तो एक ही उपाय है कि हजारों लोग गरीब हो जाएं। तुम्हें यशस्वी होना है, तो एक ही उपाय है कि हजारों लोग यशस्वी न हो पाएं। उतना साफ नहीं दिखाई पड़ता है तुम्हें, लेकिन बात वही की वही है। कितने लोग राष्ट्रपति हो सकते हैं इस देश में? साठ करोड़ आदमी हैं, साठों करोड़ को तुम राष्ट्रपति घोषित कर दो, फिर राष्ट्रपति होने का क्या मतलब रहा? राष्ट्रपति होने का मतलब तभी तक है, जब तक एक ही राष्ट्रपति हो सकता है। साठ करोड़ राष्ट्रपति न हो पाएं, इसकी चेष्टा करनी पड़ेगी। तो ही मजा है। तो एक राष्ट्रपति होता है। लेकिन इसमें बड़ी हिंसा हो गई। एक राष्ट्रपति हो गया और एक को छोड़ कर बाकी साठ करोड़ दीन-हीन रह गए। उनकी दीनता-हीनता पर तुम्हारा गौरव खड़ा है। तुम अमीर हो गए और लाखों लोगों की जिंदगी सड़ गई तुम्हारी अमीरी के कारण। तुमने एक बड़ा महल खड़ा कर लिया और अनेक लोगों के झोपड़े छिन गए। यह तो दोष से भरी बात है। यह बात असली ऐश्वर्य की नहीं। असली ऐश्वर्य तो वही है कि किसी से तुम कुछ न छीनो। तुम्हारी अभिव्यक्ति हो और किसी से कुछ छिने न।

समझो। अगर तुम ध्यान में आगे बढ़ो, तो किसी का ध्यान नहीं छिनता। और तुम अगर प्रेम में आगे बढ़ो, तो किसी का प्रेम नहीं छिनता। तुम अगर शांत होने लगो, तो ऐसा नहीं है कि कुछ लोगों को अशांत होना पड़ेगा तब तुम शांत हो पाओगे। किसी को अशांत होने की कोई जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि तुम जितने शांत होओगे, दूसरे लोग शांत हो जाएंगे। क्योंकि तुमसे शांति की तरंगें पैदा होंगी।
इसको जीवन में एक बुनियादी कसौटी समझना। जो होने में दूसरे का छिनता
हो कुछ, समझ लेना कि वह सांसारिक है। और जिस होने में किसी का कुछ न छिनता हो, वरन उलटा तुम्हारे होने से दूसरे का भी बढ़ता हो, उसे समझना कि वह स्वाभाविक है। स्वभाव यानी परमात्मा।
"ऐश्वर्यों में दोष स्पर्श नहीं करता, क्योंकि वे स्वाभाविक हैं।" परमात्मा को हमने सदा से इस देश में लक्ष्मीनारायण कहा है। गांधी ने
एक बेहूदा शब्द जरूर शुरू किया--दरिद्रनारायण। वह शब्द बेहूदा है। गांधी समझे नहीं ऐश्वर्य का यह भेद। उन्होंने तो समझा कि जो ऐश्वर्य यहां का होता है, वही ऐश्वर्य परमात्मा का भी। तो परमात्मा को लक्ष्मीनारायण कहना ठीक नहीं। लेकिन परमात्मा की जिस लक्ष्मी की बात हो रही है, वह लक्ष्मी और है, वह स्वाभाविक है, वह उसकी अंतःस्थिति है। और जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध होता है, तब फिर ऐश्वर्य को उपलब्ध होता है। तब वह पुनः फिर ईश्वर हो जाता है।
प्रत्येक व्यक्ति भगवान हो सकता है। भगवान शब्द का अर्थ इतना ही होता है--स्वाभाविक भाग्य, भाग्यवान, लेकिन स्वाभाविक होना चाहिए। किसी से छीना-झपटी न हो। अपना हो, निज का हो। जो दूसरे से लिया गया है, उसमें पाप है। जो किसी से छीन कर लिया गया है, उसमें हिंसा है। तुम उसी ऐश्वर्य में प्रमुदित और प्रफुल्लित होना जो तुम्हारा है, और तुम परमात्मा से अपने को दूर न पाओगे। उसी ऐश्वर्य में बढ़ते-बढ़ते तुम ईश्वर हो जाओगे। अप्रतिषिद्धं पर ऐश्वर्यं तत भावात च न एव इतरेषाम्।
"ईश्वर के ऐश्वर्य कभी भी प्रतिषिद्ध नहीं होते हैं; उनकी नित्यता ही देखने में आती है; परंतु जीवगणों में वैसा नहीं है।"
"ईश्वर के ऐश्वर्य कभी प्रतिषिद्ध नहीं होते हैं।"
उन्हें कभी छीना नहीं जा सकता, नष्ट नहीं किया जा सकता, असिद्ध नहीं किया जा सकता, खंडित नहीं किया जा सकता।
"लेकिन जीवगणों में वैसा नहीं है।"
क्योंकि जीवगणों ने जिस ऐश्वर्य को ऐश्वर्य समझ लिया है, वह ऐश्वर्य
ही नहीं है। विपत्ति को संपत्ति समझे बैठे हैं। विपदा को संपदा समझे बैठे हैं। पराए को अपना समझे बैठे हैं। फिर अड़चन होती है। और तुमने देखा, दुनिया का खेल तुमने देखा? एक आदमी पद पर होता है, लोग बड़ा सम्मान देते हैं। पद से नीचे उतरते ही सारा सम्मान तिरोहित हो जाता है। सम्मान ही तिरोहित हो जाता है, इतना नहीं, बदला लेते हैं। जिन्होंने फूलमालाएं पहनाई थीं, वे ही फिर जूते फेंकते हैं। वे ही लोग। असल में जब वे तुम्हारा सम्मान किए थे, तब भी उनके भीतर तुम्हारे प्रति क्रोध था। क्योंकि तुमने उनका यश छीन कर अपना यश बना लिया था। वे तुम्हें क्षमा नहीं कर पाते। सत्ता में तुम होते हो तो बर्दाश्त कर लेते हैं; सत्ता में तुम होते हो तो तुम्हारा विरोध भी नहीं कर सकते; तुम्हारे हाथ में शक्ति है, तुम नुकसान पहुंचा सकते हो, इसलिए झुके रहते हैं; प्रतीक्षा करते हैं, जब मौका मिल जाएगा।
अब तुम देखते हो, इंदिरा के खिलाफ कितनी किताबें लिखी जा रही हैं! ये सारे लोग कहां थे? ये सारे लोग इंदिरा के पक्ष में लिख रहे थे और बोल रहे थे। ये सारे लोग अचानक इंदिरा के विरोध में क्यों हो गए? वह जो सम्मान किया था, उसमें भीतर कष्ट था। वे जो फूलमालाएं चढ़ाई थीं, अब उनका बदला ले रहे हैं। और ये दूसरों के साथ भी वैसा ही करेंगे। अब दूसरे जो सत्ता में हैं वे शायद सोचते होंगे कि सारा देश उनके पक्ष में बोल रहा है। वही भ्रांति! आदमी की भ्रांति टूटती ही नहीं। कल जब तुम सत्ता से उतरोगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि जिन्होंने तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाए, स्तुतियां

लिखीं, वे ही तुम्हें गालियां देने लगे। जो सत्ता में है, लोग उसका सम्मान करते हैं। करना पड़ता है। जो सत्ता से गया उसका सम्मान चला जाता है, अपमान शुरू कर देते हैं। क्योंकि लोगों को भी अनुभव होता है यह कि तुम राष्ट्रपति बने बैठे हो, तो मेरे राष्ट्रपति होने का मौका तुमने छीना है। मुफ्त नहीं तुम राष्ट्रपति बन गए हो। मेरी कीमत पर बन गए हो। होना तो मुझे चाहिए था, और हो तुम गए हो। ठीक है, अभी हो तो ठीक है। जब नहीं होओगे, तब देखेंगे! जब तुम्हारे हाथ में ताकत न होगी, तब तुम्हें इसका पूरा अर्थ समझाएंगे।
तुम देखते हो, धनी को लोग सम्मान भी करते हैं और भीतर से गाली भी देते हैं। और प्रतीक्षा करते हैं--कब इसके भवन में आग लग जाए, कब इसका दिवाला निकल जाए। कौन अमीर आदमी की दिवाली चाहता है? दिवाला चाहते हैं लोग! प्रशंसा भी करते हैं ऊपर से और भीतर ईर्ष्या और जलन से भरते भी हैं। राह देखते हैं कि कभी तो वह घड़ी भी आएगी सौभाग्य की कि जब देखेंगे हम तमाशा। लोग बड़े आतुर हैं। और उसका कारण है। क्योंकि उनसे छीना गया है।
मनुष्य की सारी समृद्धि, ऐश्वर्य, यश, पद-प्रतिष्ठा, सब छीना-झपटी है।
सब चोरी है। ईश्वर का ऐश्वर्य भिन्न प्रकार का है। वह उसका स्वभाव है। तुम भी उसी स्वभाव की तरफ चलो। तुम भी उसको ही खोजो जो तुम्हारा स्वभाव है। तुम किसी से छीन कर अपनी संपदा को, अपने व्यक्तित्व को, अपनी गरिमा को बड़ा मत करो। यह धोखा थोड़ी देर का ही होगा, ये पानी के बबूले थोड़ी देर ही बहेंगे, ये कागज की नावें ज्यादा दूर न जाएंगी, ये डूब जाएंगी। इसके पहले कि ये डूब जाएं, तुम अपनी जीवन की नैया बनाओ--अपनी, अपने स्वभाव की! उसे ही ध्यान कहो, प्रीति कहो, प्रार्थना कहो, आराधना-पूजा कहो, जो भी नाम देना हो दो। मगर शांडिल्य के सूत्र महत्वपूर्ण हैं। स्वाभाविक ऐश्वर्य को पा लेना ही ईश्वर को पा लेना है।
और तुमने कभी सोचा या नहीं कि तुम्हारे भीतर एक स्वाभाविक संपदा पड़ी है, जिसको तुम बढ़ाते ही नहीं। तुम्हारी हालत ऐसे है जैसे कोई बीज वृक्षों से भीख मांगता फिरता हो कि एक फूल मुझे दे दो! कि एक पत्ता मुझे दे दो! कि थोड़ी देर मैं भी तुम्हारे पत्ते से हरा हो लूं! कि तुम्हारे फूल के नीचे दब कर मैं भी खुश हो लूं! एक बीज, जो कि खुद जमीन में गिर जाए और टूट जाए तो बड़ा वृक्ष पैदा हो, और जिसमें हजारों-लाखों पत्ते लगें, बड़ी हरियाली हो और बड़े फूल खिलें--बीज भीख मांग रहा है। ऐसे तुम बीज हो और तुम भीख मांग रहे हो। तुम लक्ष्मीनारायण हो सकते हो, लेकिन दरिद्रनारायण बने हो। और जब तक तुमने अपने को दरिद्रनारायण मान रखा है और इसमें ही मजा ले रहे हो, तब तक तो बहुत मुश्किल है, तब तक तो बड़ी कठिनाई है।
तुम लक्ष्मीनारायण हो। सारी संपदा तुम्हारी है। सारे जगत का ऐश्वर्य तुम्हारा है। सारे फूल, सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं। तुम्हारी मुट्ठी में होने की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि तुम्हारे हैं ही। मुट्ठी बांधने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम एक बार अपने स्वभाव में उतरने लगो, अपनी शांति में, अपने शून्य में; अपने अंतस्तल की सीढ़ियों को पार करो, अपने केंद्र पर खड़े हो जाओ। वहां खड़े होते ही बीज टूट जाएगा--बीज यानी अहंकार। अहंकार की खोल टूट जाएगी। उसके टूटते ही तुम वृक्ष बन जाओगे। और तब तुम्हारे भीतर से जो नाद पैदा होगा, वह अलग-अलग होगा। घटना एक ही घटेगी, लेकिन नाद अलग-अलग पैदा होगा। क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। तुम्हारे व्यक्तित्वों के भेद से परमात्मा के अनुभव में भेद नहीं पड़ता। जीसस वही कहते, जो जरथुस्त्र। कृष्ण वही कहते, जो कबीर। सभी ने एक ही की तरफ इशारा किया है।
शांडिल्य के सूत्र भी उस एक की तरफ ही इशारे हैं। लेकिन शांडिल्य की शर्त यह है कि याद रखना, सब इशारे उसी की तरफ हैं, लेकिन सब इशारे अधूरे हैं; क्योंकि कोई इशारा उसके सारे पहलुओं को प्रकट नहीं कर सकता।
उभयपरां शांडिल्यः शब्दः उपपत्तिभ्याम्।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 चौदहवां प्रवचन

परमात्मा परमनिर्धारणा का नाम

पहला प्रश्नः हसीद फकीरों ने मैं-तू भाव से; सूफियों एवं भक्तों ने तू-भाव से; वेदांत, उपनिषद एवं जैन परंपरा ने मैं-भाव से; बुद्ध एवं झेन परंपरा ने न मैं, न तू भाव से और शांडिल्य ऋषि ने उभयपरां--स्याद भाव--से ईश्वर को अभिव्यक्त किया। पर आप तो पिछले सभी उपायों से अभिव्यक्ति दे रहे हैं!

मनुष्य प्रौढ़ हुआ है। और प्रौढ़ता का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है-- विरोधाभास का अंगीकार। तर्क अप्रौढ़ता का सूचक है। तर्क मनुष्य की चेतना की अंतिम ऊंचाई नहीं है, सीढ़ी का प्रारंभ है। तर्क एकांगी होता है। तर्क की छाती बड़ी नहीं; तर्क का हृदय उदार नहीं, संकीर्ण है। अगर परमात्मा प्रकाश है, तो तर्क कहता हैः अंधेरा फिर परमात्मा कभी नहीं हो सकता। तर्क कहता हैः अ अ है, ब ब है; अ ब नहीं हो सकता। तर्क का दायरा बड़ा छोटा है, आंगन बड़ा छोटा है! अतर्क का दायरा बड़ा है, आकाश जैसा विराट है। परमात्मा प्रकाश भी हो सकता है और अंधेरा भी। परमात्मा जीवन भी है और मृत्यु भी।
परमात्मा जीवन है तो फिर मृत्यु कौन होगा? मृत्यु का फल जीवन में ही
तो लगता है। मृत्यु जीवन का ही तो चरम उत्कर्ष है, मृत्यु जीवन की ही तो समाप्ति है! मृत्यु का फूल जीवन के बाहर नहीं है, जीवन के भीतर है। जीवन की ही रसधार उसमें बहती है। यदि परमात्मा जीवन है तो फिर मृत्यु भी उसे होना पड़ेगा। लेकिन तर्क के सामने अड़चन खड़ी होती है। तर्क कहता है, जो जीवन है, वह मृत्यु कैसे हो सकता है? तर्क कहता है, जो जीवन है, वह मृत्यु के विपरीत होना चाहिए। परमात्मा शुभ है, तो अशुभ के लिए शैतान खोजना पड़ता है--वह तर्क के कारण, क्योंकि परमात्मा कैसे अशुभ होगा? जीवन परमात्मा ने दिया, मृत्यु शैतान ने दी।
शैतान की ईजाद तुम्हारी तर्क की कमजोरी के कारण है। जितना कमजोर तर्क होगा, उतना ही जगत में द्वंद्व होगा; क्योंकि एक के मानने से काम नहीं चलेगा। एक में तुम दोनों को न समा सकोगे। तो तुम्हें दूसरी इकाई माननी पड़ेगी। परमात्मा खुशियां दे रहा है और शैतान दुख ला रहा है। परमात्मा स्वर्ग बना रहा है और शैतान नरक बना रहा है।
लेकिन शैतान कहां से आता है? तर्क को थोड़ा और आगे ले चलो तो अतर्क की समझ आने लगेगी। शैतान कहां से आता है? शैतान भी परमात्मा से ही आएगा; क्योंकि सभी उससे आता है। फूल भी उससे और कांटे भी उससे; स्वर्ग भी उससे और नरक भी उससे। मगर बड़ी छाती चाहिए कि परमात्मा से दुख भी आता है, यह तुम स्वीकार कर सको। उसके लिए बड़ी प्रौढ़ता चाहिए।
तर्क बचकाना है। तर्क एक सीमा खींच देता है, एक लक्ष्मण-रेखा खींच देता है। कहता है, इसके भीतर जो है वह ठीक, इसके बाहर जो है वह ठीक नहीं। लेकिन बाहर और भीतर जुड़े हैं। जो श्वास भीतर गई, वही तो बाहर आती है। और जो श्वास बाहर गई, वही तो भीतर आती है। तर्क कहता है, एक कुछ भी करो, श्वास भीतर लो तो फिर भीतर ही भीतर लेना। श्वास बाहर लो तो फिर बाहर ही बाहर लेना। मगर तर्क तुम्हें मार डालेगा। इसलिए तर्क में जो उलझ जाता है, उसके गले में फांसी लग जाती है। तर्क कहता है, जिससे प्रेम किया, प्रेम ही करना। जीवन ज्यादा विराट है। जिससे प्रेम किया है, उसी से घृणा होती है। जिससे मित्रता बांधी, उसी से झगड़ा हो जाता है। करुणा और क्रोध अलग-अलग नहीं हैं, एक ही ऊर्जा की तरंगें हैं। और जो बनाना चाहता है, उसे मिटाना पड़ेगा। कोई भी स्रष्टा बिना विध्वंस के स्रष्टा नहीं होता।
समझो। तुम एक चित्र बना रहे हो। कैनवास खाली है। जब तुमने चित्र बनाया तो तुमने कैनवास का खालीपन नष्ट कर दिया। बिना कैनवास का खालीपन नष्ट किए चित्र न बनेगा। तुमने एक नया मकान बनाया, तो पुराने को गिराना पड़ा। और तुमने एक बच्चे को जीवन दिया, तो कहीं कोई बूढ़ा मरा। जहां सृजन है, वहां कहीं पीछे विध्वंस होगा। विध्वंस के बिना कोई सृजन नहीं है।

हिंदू ज्यादा प्रौढ़ हैं ईसाइयों-मुसलमानों से। इसलिए हिंदुओं को शैतान को मानने की जरूरत नहीं पड़ी। उन्होंने परमात्मा के ही तीन चेहरे बना दिए, एक के तीन चेहरे, त्रिमूर्ति बना दी। ब्रह्मा निर्माता है और विष्णु सम्हालने वाले और शिव विध्वंस करने वाले--मगर एक ही परमात्मा के तीन चेहरे हैं। इन तीनों को एक परमात्मा में डाल दिया। तर्क कहेगा कि जो बनाता है, वह मिटाएगा क्यों? अतर्क कहता है कि जो बनाता है, उसे मिटाना ही पड़ेगा, नहीं तो बना कैसे सकेगा? तुम चाहते हो जन्म तो परमात्मा ने दिया और मृत्यु कोई और कहीं से आती है, दुश्मन से आती है। जिससे जन्म आता, उसी से मृत्यु आती है। जो तुम्हें भेजता, वही एक दिन तुम्हें बिदा कर लेता। सब उसका है। लेकिन जब सब उसका है, तो अड़चनें खड़ी होंगी, क्योंकि तब चीजें साफ-सुथरी न रह जाएंगी।
तर्क की दुनिया में चीजें साफ-सुथरी होती हैं। तर्क की दुनिया ऐसी है जैसे तुम्हारे आंगन में लगा बगीचा--सब साफ-सुथरा है। अतर्क की दुनिया ऐसी है जैसे जंगल--वहां कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है, सब उलझन है। तुम यह जान कर चकित होओगे कि जो बात बिल्कुल साफ-सुथरी मालूम पड़े, समझ लेना आदमी की बनाई हुई है। जो बात बिल्कुल साफ-सुथरी मालूम पड़े, समझ लेना सत्य नहीं हो सकती। साफ-सुथरापन और सत्य साथ-साथ नहीं जाते। साफ-सुथरापन चाहिए हो तो सत्य को सूली चढ़ा देनी होती है। सत्य की कीमत पर साफ-सुथरापन होता है। और अगर सत्य चाहिए हो, तो सत्य तो रहस्य है, साफ-सुथरा नहीं है। सत्य तो बड़ा जटिल है और उलझा हुआ है। गुत्थी है, जो सुलझाए नहीं सुलझी और सुलझाए नहीं सुलझेगी। जो कभी नहीं सुलझेगी। जिसका होना ही रहस्यपूर्ण है। हम कभी उसे जान न पाएंगे। और हम कभी ठीक-ठीक अपने कठघरों में सत्य को बिठा न पाएंगे। हमारी कोटियों में हम सत्य को बांट न पाएंगे।
परमात्मा को जो अतीत में अलग-अलग ढंगों से कहा गया, वे तर्क की सरणियां हैं। एक तर्क पकड़ो, तो परमात्मा के लिए एक तरह की अभिव्यक्ति देनी जरूरी हो जाएगी। दूसरा तर्क पकड़ो, तो परमात्मा को दूसरी तरह की अभिव्यक्ति देनी जरूरी हो जाएगी। मैं अतर्क्य हूं। मैंने कोई तर्क की लकीर नहीं पकड़ी है। परमात्मा जैसा है, अनंत रहस्यपूर्ण, उसे अनंत मार्गों से कह रहा हूं। और आज यह संभव है। यह कल संभव नहीं था। मनुष्य-जाति प्रौढ़ हुई है, चेतना विकसित हुई है। लेकिन तुम्हारे मन में एक धारणा बिठाई गई है कि सतयुग पहले था और अब कलियुग है। और मैं तुमसे उलटा करने को कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं, कलियुग पहले कभी रहा होगा, अब सतयुग है। बेचैनी मालूम होती है। क्योंकि बड़ी रूढ़ धारणा है कि स्वर्णयुग बीत चुका है।
दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक, जिनका स्वर्णयुग बीत चुका है। तथाकथित धार्मिक लोग; हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, जैन, बौद्ध, इनका स्वर्णयुग बीत चुका है, दुनिया उतार पर है, पतन हो रहा है। इसलिए ईसाइयत को डार्विन का विकासवाद जंचा नहीं। क्योंकि डार्विन का विकासवाद कहता है, विकास हो रहा है। और ईसाइयत कहती है, पतन हो रहा है। आदम का पतन हुआ तो तब से पतन जारी है। दुनिया के किसी धर्म ने डार्विन के विकासवाद को अंगीकार नहीं किया। क्योंकि दुनिया के सभी धर्म मानते हैं, उनका अतीत सुंदर था। स्वर्णकलश चमकते हुए अतीत में उन्हें दिखाई पड़ते हैं। कल्पना का जाल है वह अतीत, वैसा अतीत कभी था नहीं। तुम पुरानी से पुरानी किताब देखोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा। पुरानी से पुरानी किताबें यह कहती हैं कि स्वर्णयुग पहले था। एक किताब नहीं है मनुष्य के पास, जो कहती हो स्वर्णयुग अभी है। वेद भी कहते हैं, स्वर्णयुग पहले था। लाओत्सु की किताब भी कहती है--ताओ-तेह-किंग--कि स्वर्णयुग पहले था। धन्य थे वे प्राचीन पुरुष। जो सबसे पुराना शिलालेख मिला है बेबीलोन में, छह हजार साल पुराना, वह भी कहता हैः धन्य थे वे पुराने लोग।
तो ये पुराने लोग कब थे? एक भी प्रमाण नहीं है जब कोई कहता हो कि ये पुराने लोग अभी हैं, यह स्वर्णयुग अभी है। नहीं, इसके पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक भ्रांति है। इसके पीछे वैसी ही मनोवैज्ञानिक भ्रांति है जैसे तुम अपने पिता से बात करो तो पिता कहेंगे, अरे, वे दिन जो हमने देखे, तुम क्या खाक देखोगे! और तुम पिता के पिता से पूछो, वे भी यही कहते हैं कि

अरे, इसने क्या देखा? यह मेरे बेटे ने क्या देखा? स्वर्णदिन हमने देखे! और तुम पूछते चले जाओ, और हर बाप यह कहेगा कि स्वर्णदिन हमने देखे, अतीत में। दिन गए, असली मजे के दिन तो गए। अब तो दुख के दिन हैं।
इसके पीछे मनोविज्ञान है। मनोवैज्ञानिक इसके विश्लेषण में जाता है,
तो तथ्य पकड़ में आता है। तथ्य यह है कि हर आदमी को ऐसा ख्याल है कि बचपन सुंदर था। और बचपन बीत गया है। कविताएं हैं, कहानियां हैं बचपन के सौंदर्य और बचपन की स्तुति में लिखी गई कि वे प्यारे दिन! हर आदमी को यह ख्याल है कि बचपन बड़ा सुंदर था। इस ख्याल में पीछे कुछ कारण है। एक तो यह, कोई उत्तरदायित्व नहीं था, कोई चिंता नहीं थी, कोई फिक्र-फांटा नहीं था; न काम था, न धाम था, जिंदगी मौज ही मौज थी, विश्राम ही विश्राम था। जिंदगी एक खेल थी, क्रीड़ा थी। फिर जिंदगी में अड़चनें आनी शुरू हुईं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, स्कूल जाना पड़ा। स्कूल से किसी तरह छूटे तो बाजार, घर-गृहस्थी। जाल बढ़ता गया। चिंता का बोझ गहन होता गया। सिर भारी होता गया। फिर वे बचपन के दिन जब तितलियों के पीछे दौड़ते थे, तुलना में बड़े सुंदर मालूम होने लगे। वे बचपन के दिन जब सागर के तट पर शंख-सीप बीन कर प्रसन्न हो लेते थे, बड़े स्वर्णिम मालूम होने लगे।
फिर बच्चे का मन काल्पनिक होता है। बच्चे को सपने में और सत्य में फर्क नहीं होता। उसका सत्य और सपना मिश्रित होता है। इसलिए तुम जिस बचपन की याद करते हो, वह जरूरी नहीं कि हुआ हो। उसमें बहुत कुछ तो तुम्हारा सपना मिला हुआ है। बहुत कुछ तो तुम्हारा निर्मित किया हुआ है, बनाया हुआ है। और जितना तुम्हारे जीवन में दुख बढ़ता है, चिंता बढ़ती है, उतना ही तुम उसका संतुलन बनाने के लिए बचपन में और थोड़ा सौंदर्य बढ़ा देते हो। तुम बचपन को लीपते-पोतते चले जाते हो, रंगते चले जाते हो। आखिर आदमी को कहीं तो सहारा चाहिए। आज तो दुख है, इस दुख से शरण पाने के लिए कहीं कोई शरण-स्थल चाहिए। तो सारे दुनिया के धर्मों ने अतीत में स्वर्णयुग रखा है।
फिर एक दूसरे तरह के लोग हैं, कम्युनिस्ट हैं, फासिस्ट हैं--राजनैतिक धर्म--उनका स्वर्णयुग भविष्य में है। वे कहते हैं, उटोपिया आने को है। आएगा! अभी आया नहीं है। अभी मेहनत करनी है, अभी संघर्ष करना है, अभी जद्दोजहद करनी है, अभी बड़ी कठिनाई है। लेकिन अंधेरी रात कटेगी, सुबह आने वाली है। किसी की सुबह जा चुकी है, किसी की सुबह आने वाली है। ये दो तरह के लोगों की भीड़ है दुनिया में। और इन दोनों की वजह से सुबह नहीं आ पाती। क्योंकि एक कहता है, आएगी कल। कल कभी आता है? और एक कहता है, गई कल। अब जो गई, गई। जो आया नहीं, वह आएगा नहीं। कल सदा कल है। एक कहता है, अतीत के गुणगान गाओ, पुरखों की स्तुति करो, वेदों और बाइबिल की पूजा करो। और दूसरा कहता है, दास कैपिटल, मार्क्स और लेनिन और एंजिल्स और माओ, इनकी सुनो, इनके द्वारा स्वर्णयुग आने वाला है। और उस स्वर्णयुग के लिए जो भी कुर्बानी करनी है, करो। एक कहता है, पुरखों के लिए मर जाओ। एक कहता है, आने वाले बच्चों के लिए मर जाओ। लेकिन तुमसे कोई नहीं कहता कि अपने लिए जीओ।
मैं तुमसे वही कहना चाहता हूं कि अपने लिए जीओ। मैं तीसरे तरह का आदमी हूं, जो तुमसे कहता है कि स्वर्णयुग अभी है! और अभी है, तो ही कभी हो सकता है। अगर अभी नहीं है, तो कभी नहीं होगा। क्योंकि संसार में समय का एक ही ढंग है--अभी। अतीत नहीं हो चुका, भविष्य अभी हुआ नहीं, जो है हमारे हाथ में संपदा वह वर्तमान की है। और वर्तमान की संपदा ही सदा होती है। तुम्हारे पुरखों के हाथ में भी जो समय था, वह वर्तमान था। तुम्हारे बच्चों के हाथ में भी जो समय होगा, वह भी वर्तमान होगा। समय के घटने का ढंग वर्तमान है। अतीत स्मृति है, भविष्य कल्पना है।
तुम किताबों में लिखा देखते हो कि समय के तीन रूप हैं--अतीत, वर्तमान, भविष्य। वह बात गलत है। वह दृष्टि गलत है। समय का तो एक ही ढंग है-- वर्तमान। स्मृति में अतीत है और कल्पना में भविष्य है, वे समय के हिस्से नहीं हैं। इन वृक्षों से पूछो, कोई अतीत है? कोई अतीत नहीं है। कोई भविष्य है? कोई भविष्य नहीं है। फूल अभी खिले हैं और सदा अभी खिलते हैं। वृक्ष अभी हरे हैं और सदा अभी हरे होते हैं। अगर आदमी जमीन से बिदा हो जाए, तो कोई अतीत होगा? कोई इतिहास होगा? या कि कोई उटोपिया होगा? दोनों विदा हो

जाएंगे। आदमी के मन के खेल थे। अस्तित्व एक ही घड़ी को जानता है, वह वर्तमान की घड़ी है।
मैं चाहता हूं कि तुम इस बात को समझो कि न तो पीछे अपने स्वर्णयुग को रखो, न आगे अपने स्वर्णयुग को रखो। दोनों हालत में तुम दुखी रहोगे और दुख में ही मरोगे। स्वर्णयुग अभी है। और अगर जीने की कला आती हो, तो अभी आनंद बरसेगा।
मनुष्य प्रौढ़ है, इतना प्रौढ़ जितना कभी भी नहीं था। मनुष्य पतित नहीं
हो रहा है। डार्विन सच है, मनुष्य विकसित हो रहा है। यह गंगा सागर के करीब पहुंच रही है। गंगोत्री में गंगा की धारा बड़ी क्षीण है। फिर रोज-रोज बड़ी होती जाती है, क्योंकि रोज-रोज नये नाले, नये नद, नये जलस्रोत मिलते जाते हैं। आज से पांच हजार साल पहले जिनके पास वेद था उनके पास सिर्फ वेद था, उनके पास बाइबिल नहीं थी। और जिनके पास बाइबिल थी, उनके पास सिर्फ बाइबिल थी, वेद नहीं था। आज तुम धन्यभागी हो, तुम्हारे पास वेद भी है, कुरान भी है, बाइबिल भी है, धम्मपद भी है। आज बहुत सी धाराएं आकर चेतना की गंगा में मिल गई हैं। आज की दुनिया में जो कहता हैः मैं सिर्फ मुसलमान हूं, उसे अजायबघर में रख दो। आज की दुनिया में जो कहता हैः मैं सिर्फ हिंदू हूं, वह आदमी जिंदा नहीं है। आज की दुनिया में जो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब एक साथ नहीं है, वह आदमी ही नहीं है। आज तो सारी मनुष्य-जाति की वसीयत हमारी है। आज कुरान मेरा उतना ही है, जितना धम्मपद। और गीता मेरी उतनी ही है, जितना ताओ-तेह-किंग।
पृथ्वी एक हुई है। आदमी इकट्ठा हुआ है। सारी चेतना की अलग-अलग विकसित होती धाराएं एक गंगा में सम्मिलित हुई हैं। इसलिए आज यह संभव है कि हम सारी अभिव्यक्तियों का उपयोग कर लें और कोई अड़चन न आए। इसलिए तो मैं जीसस पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है; महावीर पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है; बुद्ध पर बोलता हूं, कोई अड़चन नहीं है। कोई अड़चन का कारण नहीं है। अड़चन खड़ी होगी तर्कवादी को। वह कहेगा, जीसस ने ऐसा कहा और महावीर ने वैसा कहा। उसका सत्य बड़ा छोटा है। अगर जीसस का सत्य सत्य है, तो फिर महावीर असत्य हो जाते हैं।
मेरा सत्य बहुत बड़ा है। उसमें जीसस ने जो कहा वह एक पहलू है, महावीर ने
जो कहा वह दूसरा पहलू है। वे दोनों पहलू आपस में विपरीत हों, मगर वे एक ही सत्य के पहलू हैं। तुम्हारी पीठ और तुम्हारा चेहरा एक ही आदमी के हिस्से हैं, हालांकि एक-दूसरे के विपरीत हैं--तुम्हारी पीठ और तरफ, तुम्हारा चेहरा और तरफ। तुम्हारा बायां हाथ और तुम्हारा दायां हाथ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और चाहो तो दोनों को लड़ा भी सकते हो। या कि नहीं लड़ा सकते? बाएं-दाएं हाथ को लड़ा सकते हो, इतने विपरीत हैं। और बाएं-दाएं हाथ का एक ही काम में सहयोग भी ले सकते हो। तुम पर निर्भर है। बाइबिल और कुरान लड़ेंगे या साथ-साथ खड़े होंगे, तुम्हारा बायां और दायां हाथ लड़ेगा कि संयुक्त सहयोग करेगा, यह तुम पर निर्भर है।
जितना प्रौढ़ आदमी होगा, उतना ही मनुष्य-जाति की सारी संपदा को अपनी मानेगा। यह सब तुम्हारा है। इसमें कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है। और कहीं अगर तुम्हें अड़चन मालूम होती हो, तो उस तर्क को छोड़ देना जिसके कारण अड़चन मालूम होती हो। मगर इस विराट में भेद मत करना। सब ठीक कहते हैं। सबके ठीक उनके समय के ठीक हैं। उनके समय में जो बात कही जा सकती थी, उन्होंने कही। मेरे समय में जो बात कही जा सकती है, वह मैं तुमसे कह रहा हूं।
यहां मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः अदभुत बात है! यहां हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, सब तरह के लोग हैं। आपने बड़ा समन्वय किया!
मैं उनसे कहता हूं, समन्वय की बात ही नासमझी की है। समन्वय का तो मतलब
यह होता है कि हमने विरोध मान ही लिया। समन्वय का अर्थ होता हैः विरोध था, हमने तालमेल जुड़ा दिया। मैं कहता हूं, विरोध है ही नहीं; समन्वय की बात बकवास है।
महात्मा गांधी दोहराते थे अपने आश्रम मेंः अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। उनको थोड़ा-बहुत शक रहा होगा। नहीं तो दोनों नाम

उसके हैं, इसको रोज-रोज दोहराने की कोई जरूरत नहीं थी। हैं ही, इसको दोहराना क्या? तुम रोज-रोज यह तो नहीं कहते कि यह दीवाल दीवाल है। तुम रोज-रोज यह तो नहीं कहते कि मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं। कोई जरूरत नहीं है। और जब महात्मा गांधी को गोली लगी तब पता चल गया कि मुंह से हे राम निकला! अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम खो गए। भीतर पड़ा हिंदू--गहरे में पड़ा हिंदू प्रकट हुआ।
गांधी ने कुरान की कुछ आयतों की प्रशंसा की है। लेकिन उस प्रशंसा में बेईमानी है। वे आयतें वे ही हैं जो गीता से मेल खाती हैं। वह गीता की ही परोक्ष रूप से प्रशंसा है। जो आयतें गीता के विपरीत हैं, गांधी ने उनकी बात ही नहीं उठाई। यह कोई बात हुई? गीता में जो-जो है, वह ठीक है; अगर कुरान में भी है तो ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि गीता ही जब कह रही है। और गीता सत्य का मापदंड है। यह कोई समन्वय हुआ? यह ऊपर की लीपा-पोती हुई। यह राजनीति है। इस राजनीति का कोई मूल्य नहीं है।
इसलिए गांधी जिन्ना को धोखा न दे पाए। गांधी हिंदू थे तो जिन्ना मुसलमान था। और जितना ही मैंने इस पर सोचा है, मैंने पाया है, अगर गांधी न होते तो शायद हिंदुस्तान-पाकिस्तान न बंटता। क्योंकि गांधी की थोथी समन्वय की बात जिन्ना को कभी जमी नहीं। वह समन्वय थोथा था, ऊपर-ऊपर था; भीतर गहरे में हिंदू धारणा थी। हर चीज में हिंदू धारणा थी। हां, इतनी कुशलता थी कि हिंदू धारणा जहां-जहां किसी और से मेल खाती हो, उसको भी ठीक कहते थे। मगर उसको ठीक कहने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहा। दूसरे को ठीक कहने का अर्थ तभी है, जब तुम्हारे विपरीत धारणा जाती हो। लेकिन तब समन्वय की बात नहीं उठती। तब तो सत्य एक है, उसके अनेक पहलू हैं। सब पहलू अपने ढंग से सही हैं, और कोई पहलू पूरे सत्य का प्रतिपादक नहीं है। और कोई पहलू पूरे सत्य का दावा नहीं कर सकता--न गीता, न कुरान, न बाइबिल; न मैं, न तुम, कोई कभी पूरे सत्य का दावा नहीं कर सकता। सत्य इतना विराट है कि उसके नये-नये पहलू रोज-रोज उघड़ते रहेंगे। मेरे बाद लोग होंगे और वे सत्य के और-और नये पहलू खोजेंगे। आदमी विकसित होता रहेगा, सत्य की नई-नई भूमियां टूटती रहेंगी। सत्य के नये-नये लोक खोजे जाते रहेंगे। और इसका कोई अंत नहीं है। यह यात्रा अनंत है। इसलिए कहीं सत्य समाप्त नहीं होता। जितना हमने जाना, उतना सत्य है, उसके पार भी सत्य है जो दूसरे जानेंगे, जो कभी जाना जाएगा। समन्वय की बात नहीं है, विराट पर दृष्टि रखने की बात है। अनंत पर दृष्टि रखने की बात है।
इसलिए मैं इन सारी अभिव्यक्तियों का उपयोग करता हूं। ऐसी अभिव्यक्तियां जो कि बिल्कुल ही विरोधी हैं, फिर भी मुझे विरोध नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि मैं दोनों के भीतर छिपे हुए एक ही परमात्मा को देखता हूं।
जैसे समझो, इतनी विरोधी बात है! महावीर ने कहाः आत्मा ही एकमात्र ज्ञान है; जिसने आत्मा को जाना, उसने सब जाना। और बुद्ध ने कहाः आत्मा ही एकमात्र अज्ञान है; और जिसने आत्मा को माना, उससे बड़ा कोई अज्ञानी नहीं है। अब इससे विपरीत और क्या दो बातें खोजोगे? लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूंः ये दोनों पहलू एक ही सत्य के हैं। महावीर जब कहते हैं आत्मा, तो एक पहलू प्रकट करते हैं। क्योंकि सत्य की परम अनुभूति में ही पता चलता है कि मैं हूं। मेरा होना तब तक तो रेत पर बना है, जब तक मुझे सत्य की अनुभूति नहीं हुई। तब तक तुम्हारे होने का क्या अर्थ है?
तुमसे कोई पूछे कि तुम कौन हो, तो तुम क्या उत्तर दोगे? नाम बताओगे। लेकिन नाम तो सब झूठे हैं, रखे हुए हैं। जब तुम पैदा हुए थे, राम रख लेते तो चल जाता, रहीम रख लेते तो भी चल जाता। कुछ भी नाम रख देते तो चल जाता। सब नाम रखे हुए हैं। नाम आज बदल सकते हो। जितनी दफे जिंदगी में नाम बदलना चाहो, बदल सकते हो। नाम का कोई भी मूल्य नहीं है। तुमसे कोई पूछता है, आप कौन हैं? तो तुम नाम बता सकते हो। बहुत से बहुत अपनी तस्वीर बताओगे कि यह मैं हूं। पासपोर्ट पर यही तो होता है--नाम होता है और तस्वीर होती है। मगर तुम्हारी तस्वीर तुम हो? तुम्हारी तस्वीर भी तो कितनी बार बदल चुकी! जब तुम छोटे थे, तुम्हारी एक तस्वीर थी; जब तुम जवान हुए, दूसरी तस्वीर हो गई;

अब तुम बूढ़े हो, तीसरी तस्वीर हो गई; रोज-रोज तस्वीरें बदलती गई हैं। तुम तस्वीरों की एक धारा हो। सब बह रहा है। कौन सी तस्वीर तुम हो?
थोड़ा समझो। पहले दिन जब तुम्हारे मां और पिता के वीर्याणु गर्भ में मिले, उसकी तस्वीर खींची जाती, वह भी तुम्हारी तस्वीर थी। उसको देखने के लिए खुर्दबीन की जरूरत पड़ती, उसको ऐसे देखा भी नहीं जा सकता। और कुछ खास दिखाई भी न पड़ता। पहला अणु--उस अणु में न नाक थी, न कान था, न चेहरा था, न रंग था, न रूप था। वह अणु तुम थे, वह तुम्हारी तस्वीर थी। आज तुम्हें कोई वह तस्वीर बताए, तो तुम मानने को राजी नहीं होओगे कि यह मैं कभी था।
फिर तुम मां के पेट में बढ़ते रहे। वैज्ञानिक कहते हैं कि तुमने वे सारी सीढ़ियां पार कीं, जो मनुष्य ने अपने विकास के अनंत काल में पार की हैं। सबसे पहले तुम मछली जैसे थे मां के पेट में, और आखिर-आखिर तक तुम बंदर जैसे हो गए। वे सब तस्वीरें तुम्हारी थीं। जिस दिन तुम पहले दिन पैदा हुए थे, आज अगर वह तस्वीर तुम्हें बताई जाए, क्या तुम पहचान सकोगे कि यह तस्वीर मेरी है? मगर तुम्हारी थी। और ऐसे ही जिस तस्वीर को तुम आज अपनी कह रहे हो, यह भी कल तुम्हारी न रह जाएगी।
तुम कौन हो? तुम्हारा नाम? तुम्हारा रूप? तुम कौन हो? तुम्हारा धन? तुम्हारा बैंक बैलेंस? तुम्हारी तिजोड़ी? तुम्हारी दुकान? तुम्हारा काम? तुम्हारा व्यवसाय? तुम कौन हो? ये सब बातें तुम्हारे कौन को प्रकट नहीं करतीं।
महावीर कहते हैंः जब सत्य जाना जाता है, जब कोई अपने अंतर्तम में प्रविष्ट हो जाता है, तब पहली बार जानता है कि मैं कौन हूं। वह उत्तर ही आत्मा है।
बुद्ध कहते हैंः जब कोई पहली दफा उस जगह पहुंचता है जहां पता चलता है
कि क्या है, तो वहां एक बात पता चलती है कि हूं तो जरूर, लेकिन मैं कोई भी नहीं, मैं जैसा कोई भाव नहीं उठता वहां; सिर्फ शुद्ध अस्तित्व का बोध होता है। अहंकार की वहां कोई धारणा नहीं होती। चूंकि अहंकार की कोई धारणा नहीं होती, इसलिए बुद्ध कहते हैं, वहां आत्मा नहीं होती।
दोनों सही कहते हैं।
महावीर कहते हैंः वहां पहली दफा आत्मा होती है; उसके पहले सब झूठ। और बुद्ध कहते हैंः उसके पहले तो सब झूठ था ही, यह आत्मा शब्द भी उसके पहले ही पकड़ा गया है, यह भी वहां नहीं होता। वहां निराकार होता है, निर्गुण होता है, शून्य-भाव होता है। दोनों ठीक कहते हैं। अगर दोनों को एक साथ कहो तो विरोधाभासी वक्तव्य हो जाएगा।
जीसस ने यही कहा है। जीसस ने कहा हैः जो अपने को खोएगा, वह पाएगा। जो अपने को मिटाएगा, हो जाएगा। जो अपने को बचाएगा, खो देगा। अगर अपने को पाना हो, तो अपने को मिटा दो।
जीसस के वक्तव्य में बुद्ध और महावीर की, दोनों की बातें आ गईं। बीज अपने को मिटाता है तो वृक्ष हो जाता है। बूंद अपने को मिटाती है तो सागर हो जाती है। मिटना और होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। महावीर ने एक पहलू पर जोर दिया, बुद्ध ने दूसरे पहलू पर जोर दिया। और दोनों के जोर देने के अपने- अपने कारण थे, अपना-अपना प्रयोजन था। और दोनों के जोर देने को हम गलत नहीं कह सकते। दोनों बातें सच हैं। दोनों बातें एक साथ सच हैं।
जब सारे शास्त्र एक साथ सच हो जाते हैं, तब तुम समझना कि तुम्हारे जीवन में छोटी-छोटी सीमाएं टूटीं, छोटे-छोटे आंगन मिटे, तुम आकाश बने। जिस दिन तुम एक ही साथ बाइबिल, कुरान और वेद के लिए गवाही दे सको, उस दिन समझना कि तुम प्रौढ़ हुए, उस दिन बचपन गया।
आज मनुष्य प्रौढ़ है। इसलिए यह संभव है कि जो मैं कह रहा हूं वह कहा जा सके। मेरी बातों में तुम्हें बहुत विरोधाभास मिलेंगे। अनिवार्य हैं। अगर सत्य कहना हो तो विरोधाभासी होगा, पैराडाक्सिकल होगा। अगर असत्य कहना हो तो विरोधाभासी नहीं होता, कोई जरूरत नहीं है असत्य के विरोधाभासी होने की। असत्य साफ-सुथरा होता है। सत्य रहस्यपूर्ण है।
मगर यही तो मजा है सत्य का कि वह रहस्यपूर्ण है। मैं चाहूंगा कि तुम
भी इस रहस्य में उठो। तर्क के साफ-सुथरेपन को छोड़ो, तर्क की बनाई हुई बगिया

को छोड़ो, सत्य के जंगल में प्रवेश करो। वहीं आनंद है, क्योंकि वहां परमात्मा के हाथ की छाप है। तुम्हारे बगीचे में सब कृत्रिम है।
मेरे इस बगीचे में लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह कैसा जंगल जैसा है!
जान कर यह जंगल जैसा है। मैं भी जंगल जैसा हूं।
तुमने पश्चिम के बगीचे देखे? पश्चिम के बगीचे बिल्कुल कटे-छंटे होते हैं। इसी अर्थ में कुरूप होते हैं। सिमिट्रिकल होते हैं। एक तरफ एक वृक्ष लगाया, तो ठीक वैसा वृक्ष दूसरी तरफ लगाया; दोनों को एक जैसा काटा। जंगल में कहीं तुम दो वृक्ष एक जैसे पा सकते हो--एक जैसे कटे? एक जैसे लगे? जंगल की खूबी क्या है? जंगल की खूबी यह है कि वहां सिमिट्री नहीं है। झेन बगीचा होता है जापान में, उसमें सिमिट्री नहीं होती। वह जंगल के करीब होता है। और वहां तुम ज्यादा सौंदर्य पाओगे, क्योंकि सौंदर्य की जब भी सीमा बनाई जाती है तभी सौंदर्य सिकुड़ जाता है। सौंदर्य जीता ही असीम में है।
एक पक्षी को पिंजड़े में बंद करके रख दिया है, यह भी पक्षी है माना, मगर क्या बहुत पक्षी है? ज्यादा पक्षी नहीं है। क्योंकि पक्षी उतना ही होता है जितना खुला आकाश उसे उपलब्ध होता है। पक्षी का सौंदर्य तब है, जब वह अपने पंखों पर उड़ा होता है। जब सारा आकाश उसे उपलब्ध होता है, और जहां जाना हो वहां जाने की स्वतंत्रता होती है। और जैसा होना हो वैसे होने की स्वतंत्रता होती है। उड़े तो उड़े, न उड़े तो न उड़े, लेकिन सब उसके ऊपर निर्भर होता है, सब उसकी अंतरात्मा पर निर्भर होता है।
इस पक्षी को तुमने सोने के पिंजड़े में बिठा दिया। पिंजड़ा तुमने बहुत कारीगरी से बनाया, साफ-सुथरा भी रखते हो--ऐसा साफ-सुथरा यह पक्षी अपने नीड़ को नहीं रख सकता था--लेकिन फिर भी क्या तुम्हारे साफ-सुथरे पिंजड़े में पक्षी रहने को राजी होगा? चाहेगा उड़ जाए आकाश में।

तर्क पिंजड़े जैसा है। साफ-सुथरा, सोने का बना, हीरा जड़ा। अतर्क खुले आकाश जैसा है। तर्क के साथ सुरक्षा मालूम होती है, क्योंकि तर्क तुम्हारी मुट्ठी में होता है। सत्य के साथ असुरक्षा मालूम होती है, क्योंकि तुम सत्य की मुट्ठी में होते हो। इसलिए लोग तर्क को पकड़ लेते हैं। तर्क है अंधे आदमी की लकड़ी, लंगड़े आदमी की बैसाखी। फेंको बैसाखियां! खतरा मोल लो! क्योंकि बिना खतरा मोल लिए कोई सत्य तक नहीं पहुंचता है।
मैं तुम्हें सब पहलुओं से कह रहा हूं, एक बात याद दिलाने को कि तुम्हारे मन में यह बात साफ हो जाए कि किसी एक पहलू को पकड़ना संकीर्ण होना है। सारे पहलुओं को साथ आने दो। आने दो सब लहरों को, आने दो सब दिशाओं से परमात्मा को, आने दो सब रूपों में। और तुम उसे हर रूप में पहचानने में सफल हो जाओ, यह मेरी चेष्टा है। जिस दिन तुम उसे हर रूप में पहचानने में सफल हो जाओगे, तुम उसे सब जगह पाओगे--क्योंकि सब रूप उसके हैं। वृक्षों में भी वही, पहाड़ों में भी वही, चांद-तारों में भी वही, लोगों में भी वही। तुम्हारी पत्नी और तुम्हारे पति और तुम्हारे मित्र और तुम्हारे शत्रु में भी वही, जरा तुम्हारी आंख पहचानना शुरू कर दे।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि नेति-नेति ज्ञान का उदघोष है और इति-इति भक्ति का। भक्ति के इस उदघोष में तो अंधेरा, कल्मष और पाप, सब आ जाते हैं। क्या परमात्मा सब है?

तुम्हारा मन हिम्मत ही नहीं कर पाता। तुम परमात्मा पर सीमा लगाने को बड़े आतुर हो। परमात्मा असीम हो, इससे तुम्हें भय लगता है--कि कहीं असीम के साथ दोस्ती की, तो खो न जाएं। तुम चाहते हो कि साफ-सुथरा हो जाए परमात्मा के संबंध में सब। हम उसे भी, जैसे हम कबूतरों को उनके दड़बों में बंद कर देते हैं, ऐसे परमात्मा को भी एक दड़बे में रख दें। कैटेगरी, एक कोटि बना दें उसकी, कि यह रहा परमात्मा, और यह रही पहचान, और सम्हालो अपना पासपोर्ट-- यह तुम्हारा नाम है, और यह तुम्हारी शक्ल है, और भूल मत जाना, और यहां-वहां पासपोर्ट गंवा मत देना--तो हम निश्चिंत हो जाएं।

तुम देखते हो, तुम्हें राह में कोई आदमी मिल जाता है तो तुम उससे क्या पूछते हो? तुम निश्चिंत होने के लिए पूछते हो। ट्रेन में कोई आदमी मिल जाता है, अजनबी आदमी, तुम जल्दी से निश्चिंत होना चाहते हो कि कौन है--आपका नाम? कहां से आ रहे हैं? जाति? कौन सा धंधा करते हैं?
तुम क्या कर रहे हो? तुम यह कर रहे हो कि यह आदमी पड़ोस में बैठा है, पक्का तो हो जाए--डाकू है, कि चोर है, कि और भी खतरनाक राजनीतिज्ञ है, कि व्यवसायी है, कौन है? निश्चिंत हो जाएं इसके बाबत। यह बगल में ही बैठा है, जेब भी इसके पास ही है हमारी, कब हाथ डाल दे! गर्दन भी पास है, रात सोना भी पड़ेगा, यह आदमी यहां बैठा है।
मैं एक दफा एक ट्रेन में सवार हुआ। बंबई के स्टेशन पर मित्र मुझे छोड़ने आए थे। उस डिब्बे में एक सज्जन और थे, वे देख रहे थे--ये सारे लोग, फूलमालाएं, लोग चरण छू रहे। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि जैसे ही मैं अंदर आऊं और गाड़ी चले। जैसे ही मैं अंदर आया और गाड़ी चली, वह एकदम साष्टांग उन्होंने दंडवत की कि महात्माजी, बड़ी ईश्वर की कृपा कि आपका सत्संग मिल गया। मैंने कहा, आप बड़ी भूल में हैं। मैं हिंदू महात्मा नहीं हूं; मैं मुसलमान फकीर हूं। उनका चेहरा देखने लायक था। मुसलमान के पैर छू लिए! बोले, नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? जैसे कि मेरे मुसलमान होने में कोई अड़चन है--ऐसा कैसे हो सकता है? नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। अब वे अपने को समझाने लगे कि आप मजाक कर रहे हैं। मैंने कहा, मजाक क्यों करूंगा? सच्ची बात आपसे कह दी। वैसे आपकी मर्जी। हिंदू मानना हो, हिंदू मान लो। अब उनको बड़ी बेचैनी हो गई। पैर छू लिए! मैंने कहा, आपको ज्यादा बेचैनी हो तो मैं आपके पैर छू लूं; तो उधार खतम। नहीं-नहीं, उन्होंने कहा, ऐसी कोई बात नहीं है। मगर आप लगते तो हिंदू हैं। मैंने कहा, बड़ी मुश्किल है। मैं कहता हूं कि मैं मुसलमान हूं, आप कहते हैं कि आप लगते हिंदू हैं। आपको सिर्फ अपना बचाव करना है, क्योंकि वह जो पैर छू लिए।
फिर वे अपना अखबार पढ़ने लगते। फिर बार-बार देखते, कोशिश करते कि आदमी हिंदू है कि मुसलमान है। मैंने उनसे कहा, नाहक न परेशान हों, मैं हिंदू ही हूं, ऐसे ही मजाक कर रहा था। फिर उन्होंने दंडवत किया। उन्होंने कहा कि वह मैं जानता ही था। आप बिल्कुल हिंदू मालूम पड़ते हैं। जो लोग छोड़ने आए थे, वे भी हिंदू थे। आपने भी खूब मजाक किया! उन्होंने फिर जब पैर छू लिए, मैंने कहा, अब यह और झंझट हो गई। मैं मजाक अब कर रहा था। तब जरा बात ज्यादा हो गई। तब तो वे थोड़े भयभीत हो गए कि पता नहीं यह आदमी पागल है! जैसे ही टिकट कलेक्टर आया, वे बाहर गए और उससे बोले कि मुझे दूसरे कमरे में जाना है। टिकट कलेक्टर ने पूछा, क्या तकलीफ है आपको? कहा, तकलीफ की मत पूछो, मैं इसमें सो न सकूंगा।
तुम निश्चिंत होना चाहते हो। अगर हिंदू है तो फिर तुम पूछते हो, ब्राह्मण हो कि क्षत्रिय कि वैश्य? तुम कोशिश कर रहे हो कि इस आदमी को ठीक से एक हिसाब में बिठा लें। तुमने हिसाब बना रखे हैं। अगर तुम हिंदू हो तो तुम सोचते हो--मुसलमान खतरनाक! अगर तुम मुसलमान हो तो तुम सोचते हो--हिंदू बेईमान, चालबाज, धूर्त! अगर तुम हिंदू हो और ईसाई है, तो तुम सोचते हो-- म्लेच्छ, अपवित्र! अगर तुम ईसाई हो और दूसरा हिंदू है, तो तुम सोचते हो-- भ्रष्ट, अधार्मिक, भटका हुआ, काफिर! तुमने कोटियां बना रखी हैं। जब भी एक नया आदमी मिलता है, तुम उसको कोटि में बिठा देते हो। कोटि में बिठाने से तुम्हें निश्चिंतता हो जाती है। अब तुम जानते हो इस आदमी के साथ कैसा व्यवहार करना, और इससे क्या अपेक्षा रखनी। और मजा यह है कि सब कोटियां झूठी हैं। यह आदमी तुम्हें पहली बार मिला है, और ऐसा आदमी तुम्हें कभी नहीं मिला, और दो आदमी दुनिया में एक जैसे नहीं होते, इसलिए सब कोटियां फिजूल हैं। दो आदमी एक जैसे होते ही नहीं। परमात्मा डुप्लीकेट बनाता ही नहीं। परमात्मा के उस विराट से आदमी ऐसे नहीं आते जैसे फोर्ड के कारखाने से कारें निकलती हैं--कतार बंधी एक सी कारें। प्रत्येक आदमी अनूठा है, विशिष्ट है। कोटियां व्यर्थ हैं।
आदमी पर कोटि नहीं लगती, लेकिन तुम परमात्मा पर भी कोटि लगाना चाहते हो। तुम अपनी धारणाएं अपने पर तो थोपे ही हुए हो, तुम परमात्मा पर भी थोपना

चाहते हो। तुम कहते हो, जिसको मैं शुभ मानता हूं, वह तो परमात्मा में हो तो मैं आज्ञा दूंगा; लेकिन जिसको मैं अशुभ मानता हूं, उसको कैसे परमात्मा में मानूं?
तुम्हारे शुभ-अशुभ की धारणा का मूल्य कितना है? क्या शुभ है? क्या अशुभ है? किस बात को तुम शुभ कहते हो? तुमने जाना कैसे कि शुभ क्या है? किस बात को तुमने अशुभ तय कर लिया है? कैसे तय कर लिया है? कोई आदमी मर गया तो अशुभ है? इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि तुम्हारी जीवेषणा प्रबल है, और कुछ नहीं। तुम सदा जीना चाहते हो, इसलिए मौत को अशुभ मानते हो। इससे मौत अशुभ नहीं होती, इससे सिर्फ तुम्हारी जीवन की प्रबल वासना सिद्ध होती है। तुम सदा जीना चाहते हो। हालांकि तुम्हारे जीवन में कुछ भी नहीं, मगर अपने को घसीटे रखना चाहते हो। किसी भी तरह जीना है। किसी भी कीमत पर जीना है। जीना तो है ही, चाहे नालियों में सड़ना पड़े, चाहे भूखों मरना पड़े, चाहे कैंसर से दबा रहना पड़े, जीना तो है ही। जीना शुभ है, जीवन शुभ है और मृत्यु अशुभ है।
तो सवाल उठता है कि परमात्मा कैसे मृत्यु का देने वाला हो सकता है? नहीं-नहीं, मृत्यु कहीं और से आती होगी। कोई शैतान होगा स्रोत मृत्यु का।
तुम कहते हो, फूल तो सुंदर हैं, कांटे सुंदर नहीं हैं। मगर यह तुम्हारी धारणा है। तुम्हारी धारणा परमात्मा मानने को मजबूर नहीं है।
अच्छा तो यह हो कि तुम भी उसी तरह निर्धारणा में हो जाओ जैसे परमात्मा है।
फूल भी सुंदर हैं और कांटे भी सुंदर हैं।
तुमने कांटे का सौंदर्य नहीं देखा? छोटी सी बात से तुम अटक गए हो कि कभी-कभी कांटा तुम्हारे हाथ में चुभ जाता है, हाथ से लहू निकल आता है।
लेकिन लहू का रंग और फूल का रंग एक है। जैसे तुम्हारे हाथ से लहू निकला है, ऐसे ही इस कांटों से भरी झाड़ी में गुलाब निकला है। ये कांटे उस गुलाब की रक्षा कर रहे हैं। ये उस गुलाब के दुश्मन नहीं हैं, ये उसके पहरेदार हैं, ये उसके बॉडीगार्ड हैं, अंगरक्षक हैं। ये कांटे भी सुंदर हैं।
फिर तुम देखते हो, सौंदर्य की भी तो धारणाएं बदलती रहती हैं। जमाने गए
जब गुलाब सुंदर हुआ करता था, अब कैक्टस सुंदर हो गया है। अब जो पढ़े-लिखे लोग हैं, सुसंस्कृत लोग हैं, उनके घर से गुलाब विदा हो गया--गुलाब यानी बुर्जुआ। गुलाब यानी मध्यमवर्गीय। गुलाब यानी रूढ़िग्रस्त, परंपरागत लोग। अब जो आधुनिक कवि हैं, वे गुलाब के गीत नहीं गाते। गुलाब के गीत कौन गाएगा? कैक्टस! उसके सुंदर कांटों, तिरछे-इरछे कांटों के गीत गाते हैं। कैक्टस को घर में सजाते हैं--बैठकखाने में। कैक्टस पहले भी लोग लगाते थे, खेत वगैरह की बागुड़ पर लगा देते थे कि जंगली जानवर भीतर प्रवेश न कर जाएं, कोई चोर न घुस जाए। अब कैक्टस बैठकखाने में आ गया। गुलाब जा चुका, गुलाब प्रतीक हो गया अरिस्ट्रोक्रेसी का, आभिजात्य का। कैक्टस--सर्वहारा, प्रोलिटेरिएट, गरीब, दरिद्रनारायण। भाषाएं बदल जाती हैं। पहले अगर परमात्मा गुलाब का फूल था, तो अब कैक्टस का पौधा है।
परमात्मा के ऊपर कोई धारणा नहीं लगती। धारणाएं तुम बनाते हो। फिर तुम
थक जाते हो एक धारणा से, तो धारणा बदल लेते हो; ऊब जाते हो, तो धारणा बदल लेते हो। फिर नई धारणा कर लेते हो। उससे भी ऊब जाओगे।
जो व्यक्ति सभी धारणाओं से ऊब गया, वही धार्मिक है। जो कहता है, कोई धारणा न बिठाऊंगा। मैं हूं कौन? मेरा इस अस्तित्व पर बस क्या है? मैं अपने ढांचे में क्यों बिठालना चाहूं जगत को? मैं क्यों कहूं यह कुरूप, वह सुंदर? और परमात्मा सुंदर ही होना चाहिए, कुरूप नहीं? परमात्मा न तो सुंदर है और न कुरूप है। सुंदर और कुरूप की धारणाएं मनुष्य की ईजादें हैं।
तुम जरा सोचो। तीसरा महायुद्ध हो गया और सारे आदमी समाप्त हो गए। पृथ्वी पर कुछ सुंदर होगा, कुछ असुंदर होगा? गुलाब भी होंगे, कैक्टस भी होंगे, तुम न होओगे। लेकिन तब गुलाब और कैक्टस में फर्क करने वाला कोई न होगा। तब दोनों होंगे--न सुंदर, न असुंदर। रात भी आएगी और कोई डरेगा नहीं। और दिन भी आएगा और कोई सूरज की प्रार्थना और स्तुति नहीं करेगा। जिंदगी भी चलेगी, पौधे होंगे, पक्षी होंगे और मौत भी आएगी। लेकिन न तो जिंदगी का कोई

स्वागत करने वाला होगा, न मौत का कोई इनकार करने वाला होगा। आदमी गया कि सब धारणाएं गईं। आदमी गया कि द्वंद्व गया।
तीसरे महायुद्ध की प्रतीक्षा मत करो। द्वंद्व को तुम गिरा दो अपने भीतर अभी। और तुम अचानक पाओगे कि द्वंद्व के गिरते ही न तो कुछ शुभ है, न कुछ अशुभ है। न कुछ नीति है, न कुछ अनीति है। और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जाकर मनुष्यों के साथ ऐसा-तैसा कैसा भी व्यवहार शुरू कर दो। क्योंकि मनुष्य परमात्मा नहीं हैं, वे बर्दाश्त नहीं करेंगे। तुम यह मत कहना कि जब कुछ नीति नहीं, कुछ अनीति नहीं, तो बाएं क्यों चलूं? मैं दाएं चलूंगा, या बीच रास्ते में चलूंगा, जहां मौज होगी वैसे चलूंगा। वह जो पुलिसवाला खड़ा है, वह कोई परमहंस नहीं है, वह थाने ले जाएगा पकड़ कर, उस पर भी ध्यान रखना। बाएं ही चलना। लेकिन इतनी बात जान लेना कि बाएं चलो कि दाएं चलो, सब व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं है। इनका मूल्य व्यावहारिक है।
अमरीका में लोग दाएं चलते हैं। इससे कुछ नुकसान नहीं हुआ जा रहा। हिंदुस्तान में बाएं चलते हैं, क्योंकि अंग्रेज बाएं चलने की आदत छोड़ गए। बाएं चलो कि दाएं चलो, लेकिन एक बात तय है कि जहां भीड़-भाड़ है, वहां कुछ नियम बनाना होगा। नियम सिर्फ व्यावहारिक है। अगर भीड़-भाड़ न हो तो नियम की कोई जरूरत नहीं होती। इसलिए छोटे देहात में बाएं चलो कि दाएं चलो, कौन फिक्र करता है? जहां मर्जी हो वहां चलो। कोई रोकने वाला भी नहीं है, कोई चिंता लेने वाला भी नहीं है। जैसे-जैसे नगर बड़ा होगा, वैसे-वैसे व्यवस्था आनी शुरू होगी। जितनी महानगरी होगी, उतने नियम आ जाएंगे। जितनी भीड़ होगी, उतने नियम लाने ही पड़ेंगे। अकेला आदमी बिना नियम के जी सकता है। जब तुम दूसरे से जुड़ते हो तो नियम अनिवार्य हो जाता है। लेकिन ध्यान रखना, नियम अनिवार्य है, फिर भी व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं है। उसकी कोई अंततोगत्वा सत्ता नहीं है, वह कोई सत्य नहीं है।
परमात्मा न तो सुंदर है, न असुंदर। तुमने परमात्मा की सुंदर मूर्तियां बनाई हैं, वह तुम्हारे सौंदर्य की धारणा तुमने परमात्मा पर बिठा दी। इसलिए तुम देखो, दुनिया के अलग-अलग लोग परमात्मा की अलग-अलग ढंग की मूर्तियां बनाते हैं। क्योंकि उनकी सौंदर्य की धारणा अलग-अलग है। चीनी जब बनाएगा तो चपटी नाक बनाएगा। परमात्मा की सही, लेकिन चपटी ही नाक बनेगी। जब हिंदू बनाएगा, तो कश्मीरी नाक खोदेगा। जब नीग्रो, अफ्रीकी बनाएगा, तो मोटे ओंठ बनाएगा। क्योंकि अफ्रीकी मानता है, मोटे ओंठ सुंदर। ओंठों को मोटा करने के लिए अफ्रीकी औरतें और अफ्रीकी पुरुष बड़े उपाय करते हैं। पत्थर बांध-बांध कर लटकाते हैं। सौंदर्य का प्रसाधन है वह। जिसके ओंठ जितने चौड़े, उतना ही उसका चुंबन गहरा और जकड़ गहरी और पकड़ गहरी होती है। पतला ओंठ भी क्या खाक चूमेगा? पता ही नहीं चलेगा। उनकी धारणा में भी कुछ तो बात है।
लेकिन मोटा ओंठ हमें बेहूदा लगता है। जितनी भी आर्य जातियां हैं, उनके ओंठ पतले होते हैं, इसलिए पतला ओंठ सुंदर। उनकी नाक लंबी होती है, इसलिए लंबी नाक सुंदर। जितनी आर्य जातियां हैं, उनका स्वाभाविक रंग गोरा है, इसलिए गोरा रंग सुंदर। राक्षसों को तुम काला बनाते हो, गोरा नहीं। हालांकि गोरों में भी बड़े राक्षस होते हैं, और कालों में भी देवता पुरुष मिल जाते हैं। काले और गोरे से देवता और राक्षस का क्या लेना-देना? लेकिन तुम्हारी काले की धारणा।
हेराडोटस ने कहा हैः अगर गधे और घोड़े अपना भगवान बनाएं तो आदमी की शक्ल में नहीं बनाएंगे। स्वाभाविक। तुम अपनी धारणाएं परमात्मा पर आरोपित करते हो। अपनी धारणाओं को विदा कर लो। तुम्हारी धारणाएं अड़ंगे हैं, बाधाएं हैं।
क्या कल्मष है?
तुम कहते हो कि परमात्मा अगर सब है, तो फिर अंधेरा, कल्मष और पाप, वह भी
सब उसी में होगा?
कौन सी चीज पाप है? अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मैं नहीं काटूंगा इनको।
ये मेरे सगे-संबंधी, ये मेरे मित्र हैं, ये मेरे साथ पढ़े सहपाठी हैं, ये

मेरे परिवार से जुड़े हैं, चचेरे भाई हैं, ममेरे भाई हैं, हम सब साथ बड़े हुए हैं, यह सब मेरा ही परिवार बंट कर खड़ा है--आधा इस तरफ, आधा उस तरफ--इनको मैं नहीं काटूंगा।
उसकी पाप की एक धारणा है, कि अपनों को नहीं मारना। अगर ये अपने न होते,
तो बेधड़क काटता। मगर अपने हैं, यह अड़चन है। अर्जुन को काटने में अड़चन नहीं है, आज तक नहीं आई थी अड़चन, महाभारत के पहले भी उसने बहुत लोग काटे थे, जिंदगी भर से ही योद्धा था। लड़ना-मारना उसकी जीवन-पद्धति थी, जीवन-शैली थी, लेकिन यह प्रश्न कभी नहीं उठा था। आज यह प्रश्न क्यों उठा? अपने को मारना, इसमें अड़चन है। अपने को कैसे मारें? अपने को मारने में पाप है।
कृष्ण ने पूरी गीता में एक ही बात समझाने की कोशिश की है कि तू कौन है पाप और पुण्य का निर्णायक? कौन अपना, कौन पराया? यहां न तो कोई अपना है, न कोई पराया है। और तू कैसे मारेगा? जब तक परमात्मा ने निर्णय न ले लिया हो कि किसी को विदा कर लेना है, तू नहीं मार सकेगा। मैं देखता हूं कि ये मर चुके हैं, सिर्फ तू एक निमित्त होगा। तू निमित्त नहीं होगा, तो कोई और निमित्त होगा। तू कर्ता बनने की धारणा छोड़।
लेकिन अर्जुन की बात बड़ी नैतिक है। वह बार-बार यही दोहराता है कि आप मारना, हिंसा, हत्या, इसको शुभ कह रहे हैं? ये अशुभ हैं।
लेकिन जगत में यह अशुभ घट रहा है विराट पैमाने पर। एक पक्षी आता है, सरकते हुए पतिंगे को खा जाता है; ऊपर से एक बाज झपट्टा मारता है, पक्षी को खा जाता है। छोटी मछली बड़ी मछली के द्वारा खाई जा रही है। सारे जगत में हर चीज एक-दूसरे का भोजन है। अगर हिंसा पाप है तो यह सारा अस्तित्व पाप से भरा है। मगर हिंसा पाप है, यह हमारी धारणा है। हिंसा क्यों पाप है? क्योंकि हम नहीं चाहते हैं कि कोई हमें मारे। वह भय भीतर कि कोई हमें मारे न, प्रकट में, हिंसा पाप है, ऐसा सिद्धांत बन जाता है।
इसलिए तुमने देखा, जितने कमजोर और कायर लोग होते हैं, अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धांत को जल्दी से मान लेते हैं। और अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धांत ने लोगों को कायर भी बनाया। इस देश में जो हजार साल तक गुलामी चली, वह न चली होती--अहिंसा परमो धर्मः! लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि जो कहता है अहिंसा परमो धर्मः, उसमें तो इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि मारे न, ठीक है, लेकिन मरने को तो तैयार हो। लेकिन जैन मरने को भी तैयार नहीं हैं। असल में बात ही छिपाई जा रही है। मरने का भय है, इसको सीधे-सीधे नहीं
कह सकते कि हमें मारो मत, इसको ढंग से कहना होता है कि हिंसा में पाप है। मारोगे तो पाप लगेगा, नरक में सड़ोगे। और देखो, हम भी नहीं मारते। देखो, हम पैर फूंक-फूंक कर रखते हैं।
लेकिन हिंसा से मुक्ति नहीं होती, सिर्फ हिंसा नये और सूक्ष्म रूप ले लेती है। जैनों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी, क्योंकि लगा कि इसमें हिंसा होती है। पौधे में जान है, फिर पौधे को उखाड़ना पड़ेगा, फसल काटनी पड़ेगी, तो जैनों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी। वे सब दुकानदार हो गए, उन्होंने सबने दुकानें खोल लीं। लेकिन कभी नहीं सोचा कि वे जो दुकान पर ब्याज ले रहे हैं, वे जो दुकान पर जो लाभ ले रहे हैं, वह भी शोषण है और हिंसा है। वृक्ष काटने बंद कर दिए, आदमी काटने शुरू कर दिए। मगर काटना सूक्ष्म हो गया, ऊपर-ऊपर दिखाई नहीं पड़ता।
प्रूधो ने कहा हैः सब धन चोरी है। क्योंकि सब धन में छीना-झपटी है। धन ऐसे ही है जैसे खून। जैसे खून के बिना आदमी नहीं जी सकता है, वैसे धन के बिना मुश्किल हो जाता है। खून पीना बंद कर दिया, धन पीना शुरू कर दिया। तुम ऐसा समझो कि एक आदमी को तुमने गुलाम बनाया और रात भर उससे पैर दबवाए, यह हिंसा है। और तुमने हजार रुपये कमा लिए। हजार रुपये से तुम चाहो तो हजार आदमियों से रात भर पैर दबवाओ। हजार रुपये से तुम चाहो तो हजार तरह के काम ले लो। हजार रुपये में कई चीजें छिपी हैं। एक गुलाम में तो एक ही गुलाम था, हजार रुपये में हजार काम छिपे हैं। तुम्हारी जेब में एक रुपया पड़ा है-- किसी से पैर दबवाओ, एक गिलास दूध पी लो, कि सिर की चंपी करवाओ, कि किसी से नाक रगड़वाओ, कहो कि तीन दफे नाक रगड़ो, रुपया दूंगा--या जो भी चाहो, एक बोझढुलवाओ, किसी की गर्दन पर बैठ जाओ, किसी से रिक्शा चलवाओ, तुम्हारा एक

रुपया कई चीजें लिए बैठा है। रुपये की बिसात बड़ी है। एक आदमी को तुम गुलाम बना लो, उससे कोई ज्यादा काम नहीं ले सकते, सीमा है। मगर एक रुपये की सीमा बड़ी है।
इसीलिए आदमी से भी ज्यादा मूल्यवान रुपया हो गया। सब चीजों से मूल्यवान रुपया हो गया। क्योंकि रुपये के विकल्प बहुत छिपे हैं, एक रुपये में न मालूम कितनी बातें छिपी हैं। जरा हुक्म दो और चीजें हाजिर हो जाएंगी--चाय चाहिए, चाय; शरबत चाहिए, शरबत; ठंडा तो ठंडा, गर्म तो गर्म, आदमी तो आदमी, औरत तो औरत, जो चाहिए! वह एक रुपया तुम्हारी जेब में क्या पड़ा है, तुम सारी दुनिया को अपनी जेब में रखे हुए हो। एक दफा यह बात समझ में आ गई, कौन खेती-बाड़ी करे फिर! फिर आदमी की खेती-बाड़ी शुरू हुई। फिर आदमी की लोग फसलें काटने लगे। और नारा जारी रहा--अहिंसा परमो धर्मः। और नारे के नीचे हिंसा ने नये रूप ले लिए।
कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैंः अगर परमात्मा को हिंसा स्वीकार है, तो तू परमात्मा से ऊपर उठने की कोशिश मत कर। अगर उसकी इस जीवन-व्यवस्था में हिंसा अनिवार्य है, तो ठीक ही होगी। हम कौन हैं निर्णायक? कौन सी चीज पाप है? कैसे तुम तय करते हो कि यह पाप? एक ही पाप है मेरे देखे, और वह है-- अज्ञान में जीना। फिर उससे सारे पाप निकलते हैं। परमात्मा--जैसे ही तुम ज्ञान में जीना शुरू करते हो, ध्यान में जीना शुरू करते हो, प्रीति में जीना शुरू करते हो, दिखाई पड़ता है। और जब परमात्मा दिखाई पड़ता है, तो सारे द्वंद्व लीन हो जाते हैं। फिर न कुछ पाप है, न पुण्य; न कुछ शुभ, न कुछ अशुभ। और इसका यह मतलब नहीं है कि तुम पाप करने लगोगे। यह बात ख्याल रखना, मैं फिर दोहरा दूंः इसका यह मतलब कतई नहीं है कि तुम पाप करने लगोगे। पाप बचता ही नहीं, तुम्हीं नहीं बचते। जब परमात्मा का बोध होता है, तब तुम्हें यह बात साफ हो जाती है कि जो वह करवाए, करवाए; मैं उसका उपकरण होकर रहूंगा, माध्यम होकर रहूंगा; उसका निमित्त होकर रहूंगा। मैं साधन मात्र हूं। युद्ध में लड़वाए, तो युद्ध में लडूंगा। और अस्पताल में सेवा करवाए, तो अस्पताल में सेवा करूंगा। जो उसकी मर्जी, वही मेरी मर्जी।
और निश्चित ही, जगत द्वंद्व से बना है। द्वंद्व के बिना जगत बन ही नहीं सकता। अगर यहां अहिंसा ही अहिंसा हो, तो जगत बन ही नहीं सकता। यहां हिंसा और अहिंसा दोनों की ईंटें होनी चाहिए। यहां क्रोध ही क्रोध हो, तो जगत नहीं बनता। और करुणा ही करुणा हो, तो भी जगत नहीं बनता। यहां एक ईंट क्रोध की और एक ईंट करुणा की, तो यह महल खड़ा होता है। यह द्वंद्व की ईंटों से बनता है। यहां एक रात और एक दिन, इस तरह ईंटें चाहिए।
तुम जरा सोचो, एक आदमी ऐसा पैदा हो कि उसे बचपन से ही क्रोध न हो। वह जी
ही नहीं सकेगा। उसमें रीढ़ ही नहीं होगी, उसमें बल नहीं होगा। कोई उसे एक धक्का देगा और वह वहीं गिर रहेगा। उसमें प्राण ही नहीं होंगे। और जिसमें क्रोध नहीं है, उसमें कभी करुणा पैदा नहीं होगी। क्योंकि क्रोध का ही आत्यंतिक रूपांतरण करुणा है।
यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस देश के सबसे बड़े अहिंसक क्षत्रिय घरों
से आए थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, बुद्ध भी क्षत्रिय थे। बुद्ध के जो चौबीस अवतारों की बात है पहले, वे भी सब क्षत्रिय थे। क्षत्रिय घरों से अहिंसा का उदघोष आया, इससे कुछ अर्थ समझो। और जब से जैन वणिक हुए, तब से एक तीर्थंकर पैदा नहीं हुआ। कुछ गड़बड़ हो गई। क्रोध ही न रहा। बल न रहा, ऊर्जा न रही; एक तरह की नपुंसकता छा गई। महावीर हो सके अहिंसक, पहले हिंसक तो होना ही पड़े, तो ही कोई अहिंसक हो सकता है। पहली सीढ़ी हिंसा, दूसरी सीढ़ी अहिंसा। पहली सीढ़ी क्रोध, दूसरी सीढ़ी करुणा। पहली सीढ़ी नास्तिकता, दूसरी सीढ़ी आस्तिकता। पहली सीढ़ी संसार, दूसरी सीढ़ी निर्वाण। और जो पहली सीढ़ी को इनकार कर दे, दूसरी सीढ़ी का तो सवाल ही नहीं उठता।
और तुम सब जगह इसी तरह पाओगे।
जरा सोचो एक ऐसी दुनिया जहां पुरुष ही पुरुष हों और स्त्रियां समाप्त
हो गई हों, वह कितनी देर जिंदगी चलेगी? वहां से द्वंद्व समाप्त हो गया। या ऐसी दुनिया जहां स्त्रियां ही स्त्रियां हों और पुरुष न हों। वहां से

द्वंद्व समाप्त हो गया, मृत्यु घट जाएगी। वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत भी चलती है तो ऋण और धन छोरों के कारण, पाजिटिव और निगेटिव के कारण। जगत में चुंबक चलता है, चुंबकीय क्षेत्र चलते हैं, तो निगेटिव और पाजिटिव के कारण। और वैज्ञानिकों ने जो अंतिम खोज की है परमाणु के भीतर, वहां भी वही भेद है। वहां भी एक कण विधायक है और एक कण नकारात्मक है। वहां भी स्त्री- पुरुष का भेद है। उसके बिना विद्युत भी निर्मित नहीं होती। उसके बिना जगत में पदार्थ भी निर्मित नहीं होता।
यह द्वंद्व समझने जैसा है। पाप और पुण्य का द्वंद्व अनिवार्य है। और परमात्मा दोनों को घेरे है। दोनों बाजुएं परमात्मा की हैं, दोनों पंख परमात्मा के हैं। और जब दोनों बराबर होते हैं, तो एक-दूसरे को काट देते हैं और अतिक्रमण हो जाता है। वह भी ख्याल में ले लेना। परमात्मा में पाप भी है, पुण्य भी है; दिन भी है, रात भी है; जीवन भी, मृत्यु भी। लेकिन दोनों बराबर मात्रा में हैं, इसलिए एक-दूसरे को काट देते हैं। और परमात्मा अतिक्रमण कर जाता है, दोनों के पार हो जाता है।
तुमने देखा, इस देश में, अकेले इस देश में हमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई है। परमात्मा आधा पुरुष, आधी स्त्री। वह महत्वपूर्ण है, बड़ी वैज्ञानिक है। दुनिया में वैसी प्रतिमा कहीं नहीं है। उतनी गहरी सूझ नहीं हुई, उतने गहरे लोग गए नहीं कि परमात्मा स्त्री-पुरुष दोनों होना चाहिए। इसलिए तुम यह जान कर भी चकित होओगे कि संस्कृत में ब्रह्म शब्द नपुंसक लिंग है। क्योंकि जब स्त्री-पुरुष दोनों मिल जाएंगे, एक-दूसरे को काट देंगे, फिर जो शेष बचेगा वह अतिक्रमण कर गया--वह न तो पुरुष है, न स्त्री है, वह दोनों के पार हो गया। लेकिन दोनों की मौजूदगी के कारण पार हुआ।
"आपने कहा कि नेति-नेति ज्ञान का उदघोष है, न यह, न वह। और इति-इति भक्ति का, यह भी, वह भी। भक्ति के इस उदघोष में तो अंधेरा, कल्मष और पाप, सब आ जाते हैं।"
निश्चित आ जाते हैं। भक्त की छाती बड़ी है। भक्त अतर्क है। ज्ञानी की छाती छोटी है। ज्ञानी तर्क है। परमात्मा में सब आना ही चाहिए। उसके बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। नरक भी होगा तो उसके भीतर ही होगा। स्वर्ग भी होगा तो उसके भीतर ही होगा। इसलिए तुमसे कहता हूंः अगर नरक में भी हो, तो भी स्मरण रखो कि परमात्मा में हो। दुख में हो, तो भी स्मरण रखो कि परमात्मा में हो। और जब कांटा चुभ रहा है, तब भी स्मरण रखो, परमात्मा तुम्हें उतना ही छू रहा है जितना तब जब फूल तुम अपने गाल से लगाते हो। चिंता के क्षणों में भी तुम परमात्मा के उतने ही निकट हो, जितने ध्यान के क्षणों में होते हो। परमात्मा से दूर होने का उपाय नहीं है। परमात्मा के विपरीत जाने की जगह नहीं है। परमात्मा से बाहर जाने का कोई द्वार नहीं है। कहां जाओगे? सब वही है। परमात्मा वस्तुतः सबका नाम है, सर्व का नाम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, समग्रता की एक संज्ञा है। और इसीलिए परमात्मा को समझना कठिन हो जाता है। समझ बने तो कैसे बने? शुभ ही शुभ होता तो समझ जाते। अशुभ ही अशुभ होता तो भी समझ जाते। समझ एकदम ठिठक कर खड़ी रह जाती है। जहां समझ ठिठक जाती है, वहीं प्रीति काम आती है।

शिगुफ्तगी का, लताफत का शाहकार हो तुम
फकत बहार नहीं, हासिले-बहार हो तुम
जो एक फूल में है कैद वह गुलिस्तां हो
जो एक कली में है पिन्हां वह लालाजार हो तुम
हलावतों की तमन्ना, मलाहतों की मुराद
गुरूर कलियों का, फूलों का इनकिसार हो तुम जिसे तरंग में फितरत ने गुनगुनाया है
वह भैरवी हो, वह दीपक हो, वह मल्हार हो तुम तुम्हारे जिस्म में ख्वाबीदा हैं हजारों राग निगाह छेड़ती है जिसको वह सितार हो तुम
जिसे उठा न सकी जुस्तजू वह मोती हो
जिसे गूंथ न सकी आरजू वह हार हो तुम

जिसे बूझ न सका इश्क वह पहेली हो
जिसे समझ न सका प्यार भी वह प्यार हो तुम

समझ परमात्मा की संभव नहीं; प्रीति संभव है। प्रीति भी समझ नहीं पाएगी। लेकिन प्रीति अनुभव कर लेगी। प्रीति समझ की चिंता ही नहीं करती, प्रीति स्वाद ले लेती है। फिक्र क्या है कि मिठास को समझे या न समझे? मिठास का स्वाद आ गया, मिठास तुम्हारे रग-रेशे में फैल गई, मिठास में तुम डूब गए। फिक्र क्या है समझे कि नहीं समझे? हो गए मिठास। प्रीति परमात्मा बन जाती है। भक्त भगवत्ता में लीन हो जाता है। समझ तो वह भी नहीं पाता। समझ तो समझदार भी नहीं पाते, भक्त भी नहीं पाता--समझ संभव ही नहीं है। क्योंकि समझ के लिए एक अनिवार्य शर्त है कि विरोधाभास न हो, पैराडॉक्स न हो। और सत्य विरोधाभासी है। इसलिए समझ तो थक कर गिर जाती है। समझ तो अवाक होकर रह जाती है। समझ तो कह देती है--इसके आगे और मेरी गति नहीं।
इसलिए जो समझपूर्वक जाते हैं, वे कभी धार्मिक नहीं हो पाते। समझदार धार्मिक नहीं हो पाते। और इसलिए उनकी समझदारी दुनिया की सबसे बड़ी नासमझी सिद्ध होती है। धार्मिक होने के लिए नासमझी चाहिए, पागलपन चाहिए, हिम्मत चाहिए कि समझ को भी सिकोड़ कर एक तरफ रख दो कि ठीक है, तू आगे नहीं जाती, हम जाते हैं, तू यहीं रह।
इस घटना का नाम ही संन्यास है--समझ को एक तरफ छोड़ कर आगे बढ़ जाना और कहनाः समझ जहां तक ला सकती थी, ले आई, धन्यवाद! अब आगे हम अकेले जाएंगे। प्रीति ले जाती है अंततः। स्वाद, अनुभव, अनुभूति। फिर कौन फिकर करता है समझने की!

तीसरा प्रश्नः तथ्य और सत्य में क्या अंतर है?

तथ्य है सामयिक सत्य और सत्य है शाश्वत तथ्य। ऐसा समझो कि तथ्य है सागर में उठी लहर और सत्य है सागर। लहरें आती हैं, जाती हैं। लहरें क्षणभंगुर होती हैं, सागर शाश्वत होता है। तथ्य सत्य की लहर है। तथ्य का अर्थ हैः अभी है। सत्य का अर्थ हैः सदा है। तथ्य का अर्थ हैः अभी है, अभी नहीं हो जाएगा।
जैसे समझो, तुम्हारी देह तथ्य है। एक दिन नहीं थी, आज से चालीस साल, पचास साल पहले तुम्हारी देह नहीं थी। और आज से चालीस साल, पचास साल बाद फिर नहीं हो जाएगी। एक तथ्य था, पानी में उठी एक लहर थी, जो सत्तर-अस्सी साल या सौ साल रही। सौ साल का कोई ज्यादा मूल्य मत समझ लेना। संसार के बड़े पैमाने को देखते हुए सौ साल कुछ भी नहीं है, क्षणभंगुर भी नहीं है।
तो देह तथ्य है। है तो जरूर, लेकिन नहीं हो जाएगी। इसके होने में नहीं- होना छिपा है। इसके होने में नहीं-होना बड़ा हो रहा है। तुम एक दिन अचानक थोड़े ही मर जाते हो, जिस दिन पैदा होते हो उसी दिन से मरना शुरू हो जाते हो। फिर रोज-रोज धीरे-धीरे मरते-मरते एक दिन मृत्यु पूरी हो जाती है। पहले दिन का बच्चा, एक दिन की उम्र का बच्चा भी एक दिन मर चुका, चौबीस घंटे मर चुका-- चौबीस घंटे उम्र कम हो गई। तुम जिनको जन्म-दिन कहते हो, अच्छा हो कि उनको मृत्यु-दिन कहो; उनका जन्म-दिन से कोई संबंध नहीं है। एक साल बीता, तुम कहते हो जन्म-दिन आया! एक साल और कम हो गई उम्र, मौत एक साल करीब आ गई, तुम कहते हो जन्म-दिन आया! कि मौत करीब आ गई? मौत निकट हो गई?
तथ्य का अर्थ हैः जिसके भीतर नहीं-होना छिपा है और बड़ा हो रहा है--पानी
का बबूला, जैसे-जैसे बड़ा हो रहा है, फूटने के करीब आ रहा है। सत्य का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर वह जो साक्षी है, जो इस देह में रहे, उस देह में रहे, अनंत देहों में रहा है, अनंत देहों में रहेगा, फिर भी सदा है। वह जो साक्षीभाव, वह जो ध्यान है, वह जो जागरूकता है भीतर, चैतन्य है, वह सदा है। ऐसा ही समझो, पानी का एक बबूला उठा। बबूला क्षणभंगुर है, जल्दी ही फूट जाएगा। लेकिन बबूले के भीतर जो हवा थी, वह बचेगी; और बबूले में जो पानी था, वह भी बचेगा। बबूला संयोग था--बना और टूटा।

इस जगत में जो संयोग बनते हैं, उनका नाम तथ्य। और इस जगत में जो संयोग
से नहीं बनता वरन शाश्वतता से है, जो सब संयोगों में होता है, लेकिन स्वयं संयोग नहीं है, उसका नाम सत्य। उसे परमात्मा कहो या जो भी नाम देना चाहो। एक तो जरूर यहां कुछ है, जो सदा है। जो आता नहीं, जाता नहीं; जो सदा मौजूद है। जिसका कोई अतीत नहीं होता और जिसका कोई भविष्य भी नहीं होता, जो सदा वर्तमान है। वही सत्य है।

चौथा प्रश्नः मैं असंतुष्ट हूं, हर बात से असंतुष्ट। और कभी-कभी सोचता हूं कि शायद आनंद मेरे भाग्य में ही नहीं।

ऐसा आदमी ही कभी नहीं हुआ कि आनंद जिसके भाग्य में न हो। हालांकि ऐसे आदमी करोड़ों हैं जो आनंद को अनुभव नहीं कर पाते। लेकिन भाग्य को दोष मत देना। यह अपना दोष भाग्य के कंधों पर मत फेंको। यह तरकीब मत करो। दोषी तुम हो, भाग्य नहीं। तुम्हारे भाग्य के तुम ही निर्माता हो।
तुम असंतुष्ट हो तो अपने असंतोष को समझने की कोशिश करो--कि क्यों असंतुष्ट हूं? तुम कारण खोज लोगे। उन कारणों को मत दोहराओ, असंतोष खो जाएगा।
लेकिन कारण तुम खोजना नहीं चाहते। क्योंकि हो सकता है कारण तुम्हीं होओ, तुम्हारा होना ही कारण हो; यह तुम्हारा मैं जो संतुष्ट होना चाहता है, यही कारण हो। तो तुम उस खतरे को मोल नहीं लेना चाहते। तुम चाहते हो किसी पर दोष टाल दो।
आदमी सदियों से दोष टालता रहा है। बहाने बदल लेता है, लेकिन दोष टालता है। पहले कहता था--भाग्य। तुम पुराने ढंग के आदमी मालूम होते हो--भाग्य, भगवान! फिर लोग बदले, लेकिन कुछ ज्यादा नहीं बदले। मार्क्स ने कहा कि अगर तुम दुखी हो, तो समाज जिम्मेवार है।
अब यह समाज भी वैसे ही थोथा शब्द है जैसे भाग्य, कुछ फर्क नहीं पड़ा। मार्क्स में मैं कोई बड़ी क्रांति नहीं देखता। क्योंकि असली क्रांति एक ही है कि तुम टालो मत, तुम दूसरे पर मत फेंको, दूसरे के कंधे पर बंदूक रख कर मत चलाओ, बहाने मत खोजो, साक्षात करो सीधे-सीधे, अपने जीवन के रोग का ठीक-ठीक विश्लेषण करो, डायग्नोसिस करो, निदान करो, तो चिकित्सा भी हो सके, उपचार भी हो सके। लेकिन तुम बीमार हो और तुम कहते हो भाग्य। तो डाक्टर के पास जाने की कोई जरूरत नहीं, दवा लेने की कोई जरूरत नहीं। भाग्य की कोई दवा तो होती नहीं। या तुम कहते हो समाज। अब समाज जब बदलेगा तब बदलेगा, तब तक तुम न बचोगे।
फिर फ्रायड आया और फ्रायड ने कहा कि न समाज, न भाग्य, बल्कि तुम्हारा बचपन; तुम्हारी मां, तुम्हारे पिता; उन्होंने तुम्हें ऐसे गलत संस्कार दिए, उन्होंने तुम्हें इस तरह से दमित किया, इसलिए तुम उलझे हो। अब यह तो जब दुबारा मां-बाप मिलें और बेहतर मां-बाप मिलें! तो यह तो भूल हो चुकी, अब इसमें कोई उपाय नहीं।
फ्रायड ने कहा है--आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता है। कैसे होगा? तुमने
जो विधि बताई, वह ऐसी है जो कि हो ही चुकी। तुमने पहली भूल कर ही दी कि अपने मां-बाप को चुना। ढंग के मां-बाप चुनने थे। मगर तुम चुनते कैसे ढंग के मां- बाप? तुम थे कहां? तुमने चुने कब? यह तो घटना घटी। अब तो घट गई, अब पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। अब तो किसी तरह अपने को राजी कर लो, समझा-बुझा लो और चला लो, गुजार लो।
न तो फ्रायड ने कोई क्रांति की है, न मार्क्स ने कोई क्रांति की है। क्रांति तो की है बुद्ध ने। क्रांति तो की है महावीर ने। क्रांति तो की है कृष्ण ने, पतंजलि ने, जीसस ने। क्या क्रांति की? उन्होंने कहा कि तुम्हारा हाथ है तुम्हारे असंतोष में। समझो। क्यों तुम असंतुष्ट हो? क्यों हर चीज तुम्हें असंतुष्ट करती है?
पहली तो बात, तुम्हारी मांगें असंभव होंगी। जैसे एक सज्जन मेरे पास
आए और उन्होंने कहा कि मुझे किसी स्त्री में रस नहीं आता, मैं एक परम सुंदरी स्त्री चाहता हूं, एक पूर्ण स्त्री चाहता हूं।

मैंने उनसे कहा कि मैंने एक कहानी सुनी है एक आदमी की, वह भी पूर्ण स्त्री खोजना चाहता था। जिंदगी भर खोजता रहा, नहीं मिली। तो मित्रों ने पूछा कि तुमने जिंदगी भर खोजी और नहीं मिली? उसने कहा, ऐसा नहीं है कि नहीं मिली, मिली, एक बार मिली। तो फिर क्या हुआ? तो उसने कहा कि दुर्भाग्य मेरा कि वह पूर्ण पुरुष खोज रही थी।
अब तुम पूर्ण स्त्री खोजने चले हो, इसकी बिना फिक्र किए कि तुम पूर्ण पुरुष हो या नहीं। पूर्ण पुरुष हो जाओ तो शायद पूर्ण स्त्री मिल जाए--शायद तुम्हारे पड़ोस में ही रहती हो। पूर्ण को पूर्ण दिखाई पड़ता है। अपूर्ण को तो पूर्ण दिखाई भी नहीं पड़ सकता, दिखाई भी पड़ जाए तो पहचान में नहीं आ सकता।
अब तुम अगर पूर्ण स्त्री खोजने चले, तो दुख में रहोगे। तुम्हारी मांगें असंभव हैं, तो असंतोष होगा। मांगों को सीमा में लाओ आदमी की। तुम मांगते ही चले जाते हो। तुम इसकी फिकर ही नहीं करते कि मैं क्या मांग रहा हूं, यह मिल भी सकेगा कि नहीं! तुम शाश्वत जीवन मांगते हो। यह देह सदा रहनी चाहिए। फिर मौत आती है तो असंतोष होता है। तुम कहते हो, यश मुझे ऐसा मिले जो सदा रहे। मगर हवा बदल जाती है। तुम्हारी लहर कभी चली, फिर किसी और की लहर चलने लगती है। आखिर किसी और की भी लहर चलने दोगे कि नहीं चलने दोगे? तुम्हारी ही तुम्हारी चलती रहे तो बाकी लोग असंतुष्ट रह जाएंगे। और जब तुम्हारी चली थी तो किसी की रुक गई थी, वह तुम भूल गए? वह असंतुष्ट हो गया था। यश तो क्षणभंगुर होगा। यह तो पानी की लहर है--आई और गई। अब तुम चाहो कि यह शाश्वत हो जाए; तुम चाहो कि गुलाब का फूल जो सुबह खिला, अब कभी मुर्झाए न, तो फिर तुम प्लास्टिक के फूल खरीदो, तुम असली गुलाब न चाहो। लेकिन प्लास्टिक का फूल नकली मालूम पड़ता है, उससे दिल भरता नहीं। अब तुम एक असंभव मांग कर रहे हो। असली फूल से नकली फूल जैसे होने की मांग कर रहे हो। यह हो नहीं सकता, तो असंतोष होगा।
तुम अपनी मांगों में तलाशो, भाग्य में मत! कोई भाग्य नहीं है। तुम्हारी मांगें कुछ ऐसी होंगी, तुमने अपने ऊपर कुछ ऐसी मांगें बिठा रखी होंगी, कुछ ऐसे आदर्श बिठा रखे होंगे, जो पूरे नहीं होते। पूरे नहीं होते तो पीड़ा होती है। मैं तुम्हें राज बताता हूं, संतुष्ट होने का राज हैः मांगो ही मत, जीओ। जो है, उसको जीओ। असंभव मांगें मत करो। जीवन की सामान्यता को स्वीकार करो।
परसों एक युवती पश्चिम से आई। रोने लगी, कहने लगी कि जब मैं वहां से चली थी तो बड़ी आशाएं लेकर चली थी। यहां आई हूं तो मैं अपने को बहुत साधारण पाती हूं। तो दुखी हो रही हूं।
उसकी हालत समझो, वही तुम्हारी हालत होगी। चली होगी अपने घर से तो सोचा होगा कि जब आश्रम में पहुंचेगी, तो बैंडबाजा बजेगा, कोई हाथी वगैरह पर बिठाल कर जुलूस निकाला जाएगा, कोई स्वागत किया जाएगा। सभी के मन में ऐसी धारणाएं होती हैं। सभी ऐसी कल्पनाओं में जीते हैं। फिर ये कल्पनाएं पूरी नहीं होतीं। न कोई जुलूस निकालता, न कोई हाथी-घोड़े पर बिठाता, न कोई बैंडबाजे बजाता--एकदम से लगता है, अरे, मैं साधारण!
जब चली होगी तो अपने गांव में अकेली संन्यासिनी थी। यहां आई तो देखा
कि यहां एक हजार संन्यासी। स्वभावतः एक संन्यासी हो एक गांव में तो सबकी नजर उस पर पड़ेगी। जहां एक हजार संन्यासी हों, कौन देखता है? एक हजार संन्यासियों में चेहरा ही खो जाएगा। सब गैरिक वस्त्रधारी एक जैसे मालूम होते हैं। साधारण मालूम होने लगी होगी। अब पीड़ित हो रही है। लेकिन पीड़ा किस कारण हो रही है? असाधारण होने की आकांक्षा की थी। विशिष्ट होने की आकांक्षा की थी। उसी आकांक्षा ने यह कष्ट पैदा किया है। इसको न समझोगे तो कष्ट जारी रहेगा।
अपनी साधारणता को स्वीकार करो। सुना नहीं तुमने शांडिल्य ने कहा कि परमात्मा विशिष्ट नहीं है, साधारण है, अविशिष्ट है। ऐसे ही तुम भी साधारण हो जाओ। झेन फकीर लिंची से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा, जब भूख लगती है तो खाना खा लेता, और जब प्यास लगती तो पानी पी लेता, और जब नींद आती तो सो जाता। तो पूछने वाले ने कहा, लेकिन यह तो सभी साधारण लोग

करते हैं! तो लिंची ने कहा, मैं कौन असाधारण हूं? मैं साधारणों में भी साधारण हूं। उस आदमी ने पूछा, फिर फायदा क्या है? लिंची ने कहा, फायदा बहुत है, संतुष्ट हूं। और क्या फायदा!
तुम अगर जीवन की छोटी-छोटी चीजों में रस लेने लगो, तो संतुष्ट हो जाओगे।

मुझे आज फिर तुमसे मिल के नाउम्मीदी हुई है
वही तर्जे-गुफ्तार, चेहरे पे उदासी का आलम
जमाने की बेदाद, हालात की कजअदाई का शिकवा
तग-ओ-ताज, तकदीर की नारसाई का मातम
तही-दामनी पर पशेमान होने की मासूम कोशिश
जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर निशात-आफरीं महफिलों में कभी बारियावी का अरमां गुलाबों की मानिंद खिलते हुए जिस्म छूने की ख्वाहिश

मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम
मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता

यह कोई प्रेयसी कह रही है अपने प्रेमी से--
मुझे आज फिर तुमसे मिल के नाउम्मीदी हुई है
वही तर्जे-गुफ्तार, चेहरे पे उदासी का आलम
वही तुम्हारी पुरानी बातचीत, वही पुरानी आदत, वही ढर्रा, चेहरे पर बड़ी उदास स्थिति।
जमाने की बेदाद, हालात की कजअदाई का शिकवा
और जमाने भर के अत्याचार, दुर्घटनाएं, टेढ़ेपन की चर्चा कि दुनिया बड़ी बुरी है, कि दुनिया में बड़ा अत्याचार हो रहा है, कि दुनिया में बड़ा शोषण है, कि दुनिया में कहीं शांति नहीं है, बड़े युद्ध हो रहे हैं। शिकायत, और शिकायत, और शिकायत।
तग-ओ-ताज, तकदीर की नारसाई का मातम
जिंदगी की भागदौड़, आपाधापी की शिकायत, भाग्य की शिकायत, वही रोना, वही पुराना रोना।
तही-दामनी पर पशेमान होने की मासूम कोशिश
और अपने आप पर निरंतर दुखी होने की, अपने आप पर दया करने की चेष्टा।
जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर
और बड़ी कल्पनाएं कि ऐसा होना चाहिए। जो है, गलत, और जो होना चाहिए वह होता नहीं है। और ऐसा होना चाहिए।
जवां खूबसूरत महकते हुए रोज-ओ-शब का तसव्वुर
निशात-आफरीं महफिलों में कभी बारियावी का अरमां
और बड़े आनंद के सपने।
गुलाबों की मानिंद खिलते हुए जिस्म छूने की ख्वाहिश
और गुलाबों की तरह शरीर हों, उनको छूने की ख्वाहिश। वह प्रेयसी कह रही है--
मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम
मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता
और मैं कब से राह देख रही हूं कि कभी तो तुम आते, मुझ साधारण स्त्री को अंगीकार करते, गुलाब के फूलों जैसे जिस्मों की आकांक्षा न करते। कभी तुम आते और दुनिया की शिकायत बाहर छोड़ आते। कभी तुम आते अनुग्रह से भरे, शिकायत और शिकवे से भरे नहीं।
मुझे कब से हसरत है इक शब कभी तुम

मेरी महफिले-नाज में यूं भी आते
मुझे जिस्म-ओ-जां की सभी राहतें सौंप देने में
कोई तकल्लुफ न होता
लेकिन वह मौका ही नहीं है। मेरे पास जो है, मैं तुम्हें सौंप ही नहीं पाती, क्योंकि तुम तो खोए हो अपनी उदासी में, अपनी शिकायतों में। दुनिया भर के उपद्रव, दुनिया भर की चिंताएं तुम लिए चले आते हो।
जिंदगी छोटी-छोटी बातों में है। और जिंदगी का राज छोटी-छोटी बातों में है। जिंदगी बड़ी छोटी-छोटी बातों से मिल कर बनती है। छोटी-छोटी ईंटें, और जिंदगी का मंदिर बनता है। तुम्हारी आकांक्षाएं बड़ी-बड़ी होंगी। तुम फिजूल की बातों में पड़ गए होओगे। तुम्हारी कल्पनाएं बड़ी-बड़ी होंगी। तुम चाहते हो, ऐसा होना चाहिए। जैसा होता है, वैसा होता है, तुम्हारे चाहने से कुछ होने वाला नहीं है। तुम्हारी चाह सिर्फ तुम्हें असंतुष्ट रखेगी, तुम्हें दुखी रखेगी, तुम्हें पीड़ित रखेगी। यह आदत छोड़ो। भाग्य नहीं, यह सिर्फ आदत है। यह आदत छोड़ो, अनुग्रह से जीना शुरू करो। जो दिया है, वह बहुत है। और ज्यादा मत मांगो। पहले इसे तो भोगो। तुम अगर इसे भोगने में समर्थ हो जाओ, तो तुम्हें और दिया जाएगा।
जीसस का एक बहुत अदभुत वचन है कि जिनके पास है उन्हें और दिया जाएगा,
और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
यह बड़ा चमत्कारी वचन है। दुनिया भर के शास्त्रों में खोज कर भी ऐसा वचन मुझे दुबारा नहीं मिला। यह बड़ा अदभुत है। जिनके पास है उन्हें और भी दिया जाएगा। मतलब? यह तो बड़ा अन्याय मालूम पड़ता है कि जिनके पास है उन्हें और भी दिया जाएगा। यह तो अमीर को और अमीर, गरीब को और गरीब बनाने की कोशिश, यह तो बड़ी पूंजीवादी बात है।
लेकिन जीसस को समझना, जल्दी मत कर लेना। जीसस ठीक कहते हैं। तुम्हें
जो मिला है, अगर तुम उसे आनंद से भोगो, तो उसी आनंद के भोग के कारण तुम्हें और दिया जाएगा। तुम पात्र बन जाओगे। तुम्हें जो रूखी-सूखी मिली है, उसे स्वाद से खाओ; मिष्ठान्न आते होंगे। तुम्हें जो जिंदगी मिली है, उसे ऐसे भोगो जैसे यह स्वर्ग है, तो स्वर्ग भी आता होगा। तुम्हें जो मिला है पहले उसका धन्यवाद तो करो, तो देने वाले की हिम्मत बढ़े, तो देने वाले का मन फैले, तो देने वाला और तुम पर बरसे। लेकिन तुम शिकायत ही शिकायत से भरे हो।
तुम कहतेः "मैं असंतुष्ट हूं, हर बात से असंतुष्ट। और कभी-कभी सोचता हूं कि शायद आनंद मेरे भाग्य में ही नहीं है।"
ऐसा कोई आदमी ही कभी नहीं हुआ। आनंद सबकी नियति है। आनंद सब के भाग्य में है। आनंद लिख कर ही भगवान प्रत्येक को भेजता है। आनंद से ही हम निर्मित हुए हैं, आनंद हमारा स्वभाव है। दुख में अगर तुम हो, तो तुमने पैदा किया होगा। दुख आदमी पैदा कर लेता है। दुख आदमी की कुशलता है। दुख आदमी की कला है। आनंद भगवान का दान है, उसकी भेंट है, उसका प्रसाद है।
इसलिए शांडिल्य ने कहा हैः भक्त प्रसाद में भरोसा करता है, प्रयास में नहीं। प्रयास से तो सिर्फ दुख ही दुख पैदा होता है। प्रयास से संसार, प्रसाद से निर्वाण।
तुम जरा एक बार अपनी जिंदगी पर फिर से पुनर्विचार करो। अपने ढंग, अपने रवैयों को परखो, पहचानो। असंतोष तुम पैदा कर रहे हो।
मैं एक घर में मेहमान हुआ। एयरपोर्ट से ले जाते वक्त मैंने देखा कि जो मेरे मेजबान हैं, बड़े उदास हैं। मैंने उनकी पत्नी से पूछा कि बहुत उदास दिखते हैं तुम्हारे पति, बात क्या है? जब मैं आता हूं, सदा उन्हें प्रसन्न पाता हूं। उनकी पत्नी ने कहा कि जरा मामला है। मामला ऐसा है कि वे कहते हैं, उन्हें बहुत हानि हो गई है। मैंने पति से पूछा कि बात क्या है? उन्होंने कहा, पांच लाख का नुकसान हो गया। पत्नी ने कहा, लेकिन आप इनकी बात पर भरोसा मत करना; मैं कहती हूं कि पांच लाख का लाभ हुआ है; ये कहते हैं, पांच लाख का नुकसान हुआ है; मैं खुश हूं और ये परेशान हैं। पति ने कहा कि हानि हुई है, क्योंकि दस लाख का लाभ होना चाहिए था और सिर्फ पांच का हुआ है।
अब तुम असंतुष्ट न होओगे तो क्या होओगे?

जीवन के देखने के ढंग को बदलो। अपनी आदत बदलो। उस आदत की बदलाहट में
ही संतोष है, शांति है। और जहां संतोष है, शांति है, वहां आज नहीं कल सत्य निश्चित ही आ जाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 पंद्रहवां प्रवचन

भक्ति अंतिम सिद्धि है

सूत्र

सर्वानृते किमितिचेन्नैवं बुद्ध्यानन्त्यात्।। 36।।
प्रकृत्यन्तरालादवैकार्यंचित्सत्त्वेनानुवर्तमानत्वात्।। 37।।
तत्प्रतिष्ठागृहपीठवत्।। 38।।
मिथेपेक्षणादुभयम्।। 39।।
चैत्याचितोर्नत्रितीयम्।। 40।।

एक दृष्टि पूर्व-सूत्रों पर।
शांडिल्य ने कहाः भक्ति परम दशा है। परम दशा यानी भगवत्ता। जहां भक्त
और भगवान में भेद न रह जाए। जब तक भेद है, तब तक अज्ञान है। जब तक दूरी है, तब तक मिलने की प्यास, मिलने की पीड़ा कायम रहेगी। इंच भर भी दूरी हो, तो दुख मौजूद रहेगा। सारी दूरी मिट जाए, भक्त भगवान में लीन हो जाए, भगवान भक्त में लीन हो जाए--जैसे नदी सागर में गिर गई और अब कोई अंतराल न रहा, नदी सागर हो गई और सागर नदी हो गया--ऐसी परम दशा का नाम भगवत्ता है। जहां भक्त भी नहीं और भगवान भी नहीं। जहां दुई समाप्त हुई, द्वैत मिटा।
ऐसी परम दशा में स्वभावतः श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। न जप, न तप; न मंत्र, न तंत्र; न विधि, न विधान। भक्ति अंतिम सिद्धि है। उसके पार कुछ पाने को नहीं है। इसलिए पाने के साधनों का कोई प्रयोजन भी नहीं है। शांडिल्य ने भक्त को परमहंस कहा। पा लिया जो पाना था, अब पाने को कुछ भी नहीं है। इसलिए भक्त की सारी यात्रा समाप्त हो गई। तीर्थ आ गया, यात्रा समाप्त हो गई।
भक्ति के बाद फिर कुछ करने की बात ही नहीं उठती। फिर भक्त सिर्फ आनंदमग्न हो जीता है। फिर उसका जीवन एक उत्सव है, साधना नहीं।
समझ लेना इसे ठीक से।
भक्ति का जीवन उत्सव का जीवन है, साधना का जीवन नहीं। प्रयास नहीं, प्रसाद। इस सिद्धि को ही शांडिल्य ऐश्वर्य कहते हैं।
तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्।
काश्यप ने भी उसे ऐश्वर्यपदा कहा है। उस घड़ी में सारे जगत का ऐश्वर्य तुम्हारा है। सारी गरिमा, सारा गौरव, सारा वैभव। चांद-तारे तुम्हारे हैं।
सूरज और पृथ्वी तुम्हारी है। वृक्ष और पशु-पक्षी तुम्हारे हैं। क्योंकि तुम नहीं रहे। जब तक तुम थे, तब तक बाधा थी। अब अधिकार करने वाला चूंकि कोई नहीं रहा, अधिकार है।
इस बात को ख्याल में लेना।
जब तक तुम चाहते हो कि मालिक हो जाऊं, तब तक तुम मालिक न हो सकोगे। मालिक होने की भावना में ही, मालकियत नहीं है, इस बात की घोषणा छिपी है। तुम मालिक होना चाहते हो, यही बताता है कि तुम अभी मालिक नहीं हो। मालिक होने की चाह में तुम्हारी दीनता छिपी है। जो पद के लिए दौड़ता है, उसके भीतर हीनता की ग्रंथि होगी। जो धन के लिए दौड़ता है, वह निर्धन होगा। जो सुंदर होना चाहता है, वह निश्चित ही कुरूप होगा। तुम वही तो पाना चाहते हो जो तुम्हारे पास नहीं है।
स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। अमरीका गए तो किसी ने पूछा, आपके पास कुछ भी नहीं, और बादशाह? दो लंगोटियां हैं आपके पास, भिक्षा का पात्र है आपके पास, यह आपकी बादशाहत है? यह आपका साम्राज्य है? राम ने कहा कि इन्हीं के कारण थोड़ी साम्राज्य में बाधा है। इन्हीं के कारण साम्राज्य पूरा-पूरा नहीं है। और कोई अड़चन नहीं रही, ये दो लंगोटियां हैं और यह भिक्षापात्र है, इसी से थोड़ा मेरे सम्राट होने में कमी रह गई। इतने पर मैं अभी अधिकार रखना चाहता हूं। जितने पर अधिकार रखना चाहता हूं, उतनी ही मेरी दीनता है।

इसलिए हमने बुद्ध और महावीर को सम्राट कहा, जो भिखारी हो गए। और भिखारियों और सम्राटों में हमने कोई फर्क नहीं पाया। भिखारी भी मांगता है, सम्राट भी मांगते हैं। बड़े से बड़े सम्राट में भी भिखमंगापन कायम रहता है। भिखमंगेपन का अर्थ होता हैः अभी मांग कायम है; अभी कुछ सिद्ध करके दिखाना है; अभी कुछ कमी खलती है, अखरती है।
भक्त की वह दशा परम ऐश्वर्य की दशा है। ऐश्वर्यपदा है। सब छोड़ा कि सब पाया। अपने को गंवाया कि परमात्मा को पाया। इधर बूंद मिटी नहीं कि उधर सारे सागरों से एक हो गई। इधर बीज टूटा नहीं कि वृक्ष हुआ। इधर तुम मरे नहीं, मिटे नहीं कि उधर तुम शाश्वत के साथ एक हुए, कि अमृत तुम्हारा हुआ। काश्यप ठीक ही कहते हैंः तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्।
और यह सिद्धि ऐश्वर्य की ही सिद्धि नहीं है कि बाहर के विराट पर तुम्हारा साम्राज्य फैल गया, यह आत्म सिद्धि भी है। यह और भी समझ लेने की बात है। जिस दिन तुम अपने को खोते हो, उसी दिन अपने को पाते हो। खोए बिना कोई पाना नहीं है। जितना अपने को पकड़ते हो, उतना गंवाते हो। जितना जोर से पकड़ते हो, उतने ही सिकुड़ जाते हो। निर्भय हो, जाने दो, छोड़ो! जो जाना है, जाने दो! जो तुम्हारे छोड़ने पर भी बच रहे, वही आत्मा है; जो बिना बचाए बच रहे, जिसे तुम छोड़ना भी चाहो और न छोड़ सको, वही आत्मा है। जो तुम्हारे छोड़ने से छूट जाए, वह छाया थी, आत्मा नहीं थी; माया थी, आत्मा नहीं थी। यह परम ऐश्वर्य बाहर का ही नहीं है, भीतर का भी है। अंतर और बाहर यहां एक हो गए हैं।
आत्मैकपरां बादरायणः।
इसलिए बादरायण ने कहा कि वह परम दशा आत्मपर है। वह स्वयं की परम अनुभूति है; सर्व की और स्वयं की। काश्यप ने सर्व पर जोर दिया, बादरायण ने स्वयं पर जोर दिया। ये उसी एक सत्य को कहने के दो ढंग हैं। काश्यप ने कहाः ईश्वर ही बचता है; बादरायण ने कहाः भक्त ही बचता है। बूंद जब सागर में गिरती है तो तुम यह भी कह सकते हो कि बूंद अब सागर हो गई, और तुम यह भी कह सकते हो कि सागर अब बूंद हो गया। दोनों बातें सही हैं। वह स्थिति वस्तुतः दोनों है, क्योंकि वहां दोनों का मिलन है। वहां रेखाएं समाप्त हो गईं, सीमाएं विलीन हो गईं, क्योंकि भक्त और भगवान अब दो नहीं हैं। भक्त को ध्यान में रखें तो वह स्थिति है आत्मपरा, भगवान को ध्यान में रखें तो वह स्थिति है ऐश्वर्यपदा।
शांडिल्य ने इसलिए निष्कर्ष दियाः उभयपरां शांडिल्यः।
वह दोनों है, उभयपर है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--भक्त और भगवान एक
ही सिक्के के दो पहलू हैं। न तो भक्त के बिना भगवान है, न भगवान के बिना भक्त है।
यहूदी फकीर बालसेम अपनी प्रार्थनाओं में कहता था--मुझे तुम्हारी जरूरत है, सच, लेकिन तुम्हें भी मेरी जरूरत है। तुम्हारे बिना मैं न हो सकूंगा भगवान, यह सच, लेकिन मेरे बिना तुम भी कैसे हो सकोगे? भक्त के बिना भगवान का क्या अर्थ होगा? गुरु के बिना शिष्य का कोई अर्थ नहीं है, शिष्य के बिना गुरु का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ उभय है। दोनों मिल कर अर्थ को पैदा करते हैं। दोनों का मिलन जहां होता है, वहीं अर्थ की उत्पत्ति होती है। उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्याम्।
इनको दो कहो, ठीक नहीं; एक की तरफ से कहो, अधूरा है। शांडिल्य ने बड़ा समन्वय का सूत्र साधा। समन्वय में कहा--दोनों बातें ठीक हैं; दोनों महर्षि हैं, काश्यप भी और बादरायण भी, दोनों सही हैं; मगर दोनों से भी ज्यादा सही बात यह होगी कि हम एक पर जोर न दें। सब जोर एकांगी हो जाते हैं। एकांगी जोर असत्य हो जाते हैं। हम संतुलन रखें, समन्वय रखें, दोनों तराजू बराबर हों। जहां दोनों तराजू बराबर होते हैं, उस संतुलन में ही सत्य की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए शांडिल्य ने काश्यप और बादरायण दोनों से ऊंची छलांग ली-- अर्थात वह उभय है; दोनों है और दोनों नहीं है; दोनों है और दोनों के पार है। वह परम ऐश्वर्य की दशा है, जिसको शब्दों में कहना कठिन। शब्दों में कहा कि असत्य होना शुरू हो जाता है। शब्दों में कहा तो एक को चुनना पड़ेगा। एक को चुना तो दूसरे का निषेध हो जाता है। उसे तो मौन में ही कहा जा सकता है। उसे

तो मस्ती और मादकता में कहा जा सकता है। उसे तो भक्त जब लीन होकर नाचता है, तब उसके नृत्य में पढ़ना। जब कोई दीवाना अपना एकतारा बजाता है, तब उसके एकतारे के नाद में सुनना। जब कोई भक्त उस परम रस में लीन होकर खो जाता है, अपना होश-हवास गंवा देता है, बेखुद हो जाता है, तब उसकी बेखुदी में पढ़ना।
जब भक्त बोलेगा, सिद्धांत की भाषा में कहेगा, तब थोड़ी अड़चन हो जाएगी।
क्योंकि शब्दों की सीमा है।
इतनी बात ख्याल में रहे तो आज के सूत्र समझ में आने आसान होंगे।
पहला सूत्र--
सर्व अनृते किम इति चेत न एवं बुद्ध्यानंत्यात्।
"सब छोड़ देने पर फिर उसकी क्या आवश्यकता है! आवश्यकता अवश्य है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है।"
शांडिल्य संभावित शंकाओं का उत्तर दे रहे हैं। वे कहते हैंः यह शंका
उठ सकती है किसी के मन में कि जब सब छोड़ दिया तब परमात्मा को पाया, अब सब छोड़ देने के बाद ऐश्वर्य की चर्चा क्यों उठाई जा रही है? सब तो छोड़ दिया, ऐश्वर्य भी छोड़ दिया, सारी पकड़ छोड़ दी, सारा परिग्रह छोड़ दिया, अब जब सब छोड़ दिया और परमात्मा का मिलन हुआ, तो अब शांडिल्य ऐश्वर्य की बात क्यों उठा रहे हैं? सूत्र पूरे हो गए हैं। जहां भक्त भगवान हो गया, वहां ये सूत्र समाप्त हो जाने चाहिए, किसी के मन में यह संदेह-शंका उठ सकती है। यह सार्थक शंका है। संगत है, उपयोगी है। शांडिल्य इसकी संभावना को मान कर उत्तर देते हैं।
वे कहते हैंः "आवश्यकता अवश्य है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है।"
ये सूत्र किसी एक ही प्रकार की बुद्धि के लिए नहीं लिखे जा रहे हैं।
ये सूत्र मनुष्य की समस्त बुद्धियों की संभावनाओं को मान कर लिखे जा रहे हैं। ये सूत्र सबके लिए लिखे जा रहे हैं, किसी एक वर्ग के लिए नहीं। एक वर्ग है जो कहेगा--जब शून्य आ गया, जब सत्य आ गया और जब आप कहते हैं कि इसके पार जाने की कोई जरूरत नहीं है, न अब तंत्र, न मंत्र, न योग, न जप, न तप, न श्रवण-मनन-निदिध्यासन, कुछ भी नहीं बचा, सब साधन समाप्त हो गए, तो अब चुप हो जाना चाहिए। इसलिए बहुत से संत जान कर चुप हो गए। फिर बोले नहीं। फिर बोलना असंगत है। लेकिन शांडिल्य चुप नहीं हैं। यह अवस्था आ गई, अब वे इस अवस्था का वर्णन करते हैं। और यह भी कहते हैं कि अवस्था का वर्णन हो नहीं सकता, वर्णन के अतीत है।
मैंने तुम्हें कल कहा था, या परसों, पश्चिम के बड़े विचारक विटगिंस्टीन ने कहा हैः जो न कहा जा सके, उसे कहना ही नहीं। नहीं तो भूल होगी। जो न कहा जा सके, उसके संबंध में चुप ही रह जाना। दैट व्हिच कैन नाट बी सेड शुड नाट बी सेड। जब नहीं कहा जा सकता, तो फिर कहने की भूल करोगे तो कुछ न कुछ गलती हो जाएगी।
लाओत्सु जिंदगी भर चुप रहा। अस्सी साल का हो गया था, तब तक उसने एक शब्द नहीं लिखा। लोग पूछते और वह टालता; जितना पूछते, उतना टालता; जितना टालता, उतना लोग पूछते कि जरूर कुछ पा लिया है, गुमसुम होकर बैठ गया है। कबीर जैसा रहा होगा लाओत्सु। कबीर ने कहा न कि जब मिल गया रतन, गांठ गठियायो, जल्दी से अपनी गांठ बांध कर सम्हाल कर रख लिया। अब उसको बार-बार क्या खोलना और लोगों को दिखाना! मिल गया, मिल गया! सम्हाल लिया, रख लिया भीतर गांठ बांध कर।
अस्सी साल की उम्र में लाओत्सु देश का त्याग करके चला हिमालय की तरफ। हिमालय से सुंदर जगह कहां होगी अंतिम समाधि के लिए! कहते हैं मार्ग में चीन को छोड़ते समय चीन की अंतिम सीमा पर द्वारपालों ने रोक लिया और द्वारपालों ने कहा कि ऐसे नहीं जाने देंगे। जो तुमने जाना है, लिख दो, तो बाहर जाने देंगे। सम्राट की खबर हमें आई है कि लाओत्सु भाग न जाए। तो हम तुम्हें निकलने न देंगे देश के बाहर। इस मजबूरी में, उन पहरेदारों के तंबू में बैठकर तीन दिन तक लाओत्सु ने ताओ-तेह-किंग नाम की किताब लिखी। छोटी सी किताब है। अदभुत किताब है। पहला ही सूत्र लिखाः जो कहा जा सकता है वह सत्य

नहीं। मजबूरी में कहना पड़ रहा है, लेकिन ध्यान रखना, जो कहा जा सकता है वह सत्य नहीं होता। सत्य तो सदा अनकहा रह जाता है।
शांडिल्य कहते हैंः ऐसे लोग हुए हैं, जो चुप रह गए। उन्होंने उस परम ऐश्वर्य की कोई बात नहीं की। उस परम ऐश्वर्य के सामने अवाक हो गए। हृदय की धड़कन बंद हो गई, श्वास ठहर गई। वाणी खो गई; गूंगे हो गए। गूंगे का गुड़ हो गया सत्य। ऐसे बहुत लोग हुए हैं जो चुप हो गए। जो चुप हो गए, हो गए। उनके लिए वही स्वाभाविक रहा होगा।
शांडिल्य कहते हैंः लेकिन बुद्धियां बहुत प्रकार की हैं।
एक बुद्धि का यह प्रकार है जो मौन हो गई। जिसने फिर मोक्ष का वर्णन नहीं किया। यह जान कर कि नहीं किया जा सकता वर्णन, बात ही नहीं उठाई। मगर दूसरी एक बुद्धि भी है जो यह जान कर कि वर्णन नहीं किया जा सकता, चुनौती को स्वीकार कर लेती है; और इसीलिए वर्णन करने में लग जाती है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्णन करना ही होगा। जिसका वर्णन किया जा सकता है, उसका वर्णन क्या करना? जिसका नहीं किया जा सकता, उसी का करना है। चुनौती वहां है। प्रतिभा के लिए मौका और अवसर वहां है। जो बातें कही जा सकती हैं, उनको क्या कहना?
यही फर्क है कवि और ऋषि का। कवि उन बातों को कहता है जो कही जा सकती हैं। कठिन हों भला कहना, लेकिन कही जा सकती हैं। ऋषि उन बातों को कहता है जो मौलिक रूप से कही ही नहीं जा सकतीं। कहने का जिनसे कोई संबंध ही नहीं बनता। ऋषि असंभव को करने की चेष्टा करता है। यही उसकी गरिमा है। अच्छे थे वे लोग जो चुप रह गए। मगर अगर सभी जानने वाले चुप रह गए होते तो मनुष्य-जाति का बड़ा भयंकर दुर्भाग्य होता। तो शांडिल्य के सूत्र तुम्हारे पास न होते, तो उपनिषद तुम्हारे पास न होते, तो कुरान तुम्हारे पास न होती, तो धम्मपद तुम्हारे पास न होता। तो तुम्हारे पास कुछ भी महत्वपूर्ण न होता। और जरा सोचो, अगर कुरान न हो, बाइबिल न हो, वेद न हों, धम्मपद न हो, गीता न हो, उपनिषद न हों; खजुराहो और कोणार्क के मंदिर न हों; अजंता-एलोरा की गुफाएं न हों; तो तुम्हारे पास क्या बचेगा? बीथोवन का संगीत न हो, माइकलएंजलो की मूर्तियां न हों, तो तुम्हारे पास क्या बचेगा? एक सौ नाम मनुष्य-जाति के इतिहास से निकाल लो, और मनुष्य-जाति का सारा इतिहास दो कौड़ी का हो जाता है। ये वे ही सौ नाम हैं जिन्होंने असंभव को प्रकट करने की कोशिश की है। फिर चाहे पत्थर में खोदा हो, चाहे संगीत के स्वरों में छेड़ा हो, चाहे चित्रों में आंका हो, चाहे गीतों में गाया हो, चाहे शब्दों में बांधा हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, ये तो अलग-अलग माध्यम हैं।
बुद्ध ने जो धम्मपद में कहा है, वही किसी ने अजंता-एलोरा में कहा है। वात्स्यायन ने जो काम-सूत्र में कहा है, वही किसी ने खजुराहो के पत्थरों में कहा है। किसी ने वीणा पर बजाया है और किसी ने तूलिका उठा कर चित्रों में रंगा है। ये माध्यम हैं अलग-अलग। लेकिन उसके कहने की अथक चेष्टा चलती रही है जो नहीं कहा जा सकता। जो अभिव्यक्ति योग्य नहीं है, उसने बड़ी चुनौती दी है। उसकी चुनौती में ही मनुष्य-जाति में प्रतिभा प्रगटी है। उसकी चुनौती जिन्होंने स्वीकार की है, वे अपूर्व थे, वे सुपुत्र थे। जो चुप रह गए, उनका कुछ कसूर नहीं; भेद हैं बुद्धियों के।
शांडिल्य कहते हैंः ऐश्वर्य की बात करनी तो कठिन है, परमात्मा को शब्दों में उतारना तो कठिन है, फिर भी मैं कहूंगा। यह चुनौती मैं खाली न जाने दूंगा। यह अवसर ऐसे ही नहीं खो जाए। बोलूंगा! तुतलाहट ही क्यों न हो बोलना, तुकबंदी ही क्यों न हो--तुकबंदी ही सही, तुतलाहट ही सही--शायद किसी के कान में वे तुतलाहट से भरे हुए शब्द भी पड़ जाएं और मधुरस घोल जाएं! शायद कोई सोया जाग जाए! शायद कोई बंद आंख खुले और देखे! संसार के वैभव में भागते हुए आदमी को इस वैभव की खबर मिल जाए शायद और उसके मन में सवाल उठे कि मैं जिसको वैभव समझ रहा हूं, वह तो वैभव ही नहीं है! मैंने जिसको अब तक ऐश्वर्य समझा है, वह ऐश्वर्य नहीं है, असली ऐश्वर्य तो कहीं और है। पता चले तो ही तो लोग यात्रा पर निकलते हैं। कोई कहे कि जरा और आगे बढ़ो, सोने की खदान है, जरा और कि हीरे की खदान है, तो आदमी खोज पर निकलता है। फिर सौ में से निन्यानबे न जाएं खोज पर, कोई फिकर नहीं, एक भी अगर गया तो भी पर्याप्त है।शृंखला

जारी रहती है। करोड़ों-करोड़ों लोगों में एक आदमी भी सत्य को पाता रहे तो सत्य का झरना बहता रहता है। और जिनको प्यास लगे, उनके लिए जलस्रोत उपलब्ध होते हैं।
शांडिल्य कहते हैंः "आवश्यकता अवश्य है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार
की होती है।"
यह एक तरफ से मैंने बात कही, दूसरी तरफ से भी समझ लेनी चाहिए। ऐसे भी लोग हैं जो मौन से समझ लेंगे। मगर वे बहुत विरल हैं। बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। ऐसे लोग हैं जो मौन से ही समझेंगे। जिनके लिए चुप्पी ही संदेश होगी। जब बुद्ध चुप बैठे होंगे, तभी कुछ लोग बुद्ध के साथ संवाद कर पाएंगे।
ऐसा हुआ, एक आदमी आया बुद्ध के पास, भर दुपहरी थी, और उसने आकर बुद्ध को कहा कि मेरे कुछ प्रश्न हैं और मैं पूछना चाहता हूं, मैं ज्यादा देर ठहर भी नहीं सकता, मैं जल्दी में हूं--और जल्दी में तो सभी हैं, समय भागा जा रहा है, कल का भरोसा नहीं है। इसलिए आप टालना मत, मुझे उत्तर अभी चाहिए। और यह भी आपसे निवेदन कर दूं कि मुझे शब्दों में उत्तर नहीं चाहिए, मुझे तो आप असली चीज कह दें, असली चीज दिखा दें, एक झरोखा खोल दें; एक झलक हो जाए, दरस-परस करवा दें। और उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।
बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं। आनंद जो उनके पास बैठा था, बड़ा हैरान हुआ
कि अब यह मामला कैसे हल होगा? यह आदमी कहता है--शब्द में कहें मत, दरस-परस करवा दें! हमें सुनते-सुनते वर्षों हो गए तब दरस-परस नहीं हुआ और यह इतनी जल्दी में है! अधैर्य की भी एक सीमा होती है! और बुद्ध कुछ क्षण चुप रहे, फिर उन्होंने आंख खोली, उस आदमी ने झुक कर चरण छुए और कहा, आपकी बड़ी अनुकंपा है। मैं धन्यभाग! आपने बड़ी कृपा की! मैं किन शब्दों में धन्यवाद करूं? याद रखूंगा यह क्षण। यह भूले न भूलेगा। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी संपदा है। यह मेरे भीतर दीये की तरह जलेगा। मौत के क्षण में भी यह मेरे साथ होगा। मैं अनुगृहीत हूं। और वह आदमी झुकता है, और झुकता है, और झुकता है। आनंद और चकित होता है। उसके जाते ही वह बुद्ध से पूछता है, यह मामला क्या है? हुआ क्या? मैं भी बैठा था, मुझे तो कोई दरस-परस नहीं हुआ। कुछ दिखाई भी नहीं पड़ा, कुछ... और आपने कुछ कहा भी नहीं, आप आंख बंद करके बैठ गए, वह आदमी बैठा रोता रहा, और इतनी जल्दबाजी में लेन-देन हो गया! न इस हाथ से उस हाथ में कुछ चीज गई, न कुछ मुझे दिखाई पड़ा, और मैं भर अकेला यहां था जो ठीक-ठीक आंख खोले बैठा था--आप भी आंख बंद किए थे, उस आदमी की आंखें भी आधी बंद थीं।
बुद्ध ने कहा, आनंद, मुझे याद है भलीभांति... आनंद बुद्ध का चचेरा भाई था, दोनों साथ-साथ बड़े हुए थे, आनंद बड़ा भाई था, साथ-साथ खेले थे, साथ-साथ घुड़सवारी की थी, शिकार किए थे, साथ-साथ गुरुकुल में रहे थे... बुद्ध ने कहा, मुझे भलीभांति पता है आनंद, बचपन में तुझे घोड़ों का बड़ा शौक था, इसलिए तुझे उसी प्रतीक में कहता हूं। ऐसे घोड़े होते हैं कि मारो और मारो, तो भी चलते नहीं।
आनंद ने कहा, यह बात सच है, ऐसे घोड़े मैं जानता हूं।
और ऐसे भी घोड़े होते हैं, आनंद, कि मारो तो चलते हैं, न मारो तो नहीं चलते। और ऐसे भी घोड़े होते हैं कि मारने की जरूरत नहीं होती, सिर्फ कोड़ा फटकारना पड़ता है। और ऐसे भी घोड़े होते हैं, आनंद, कि कोड़ा फटकारना भी नहीं पड़ता, कोड़े की मौजूदगी काफी है। और तूने ऐसे भी घोड़े शायद देखे होंगे कि कोड़े की मौजूदगी की भी जरूरत नहीं, कोड़े की छाया काफी है। ऐसे कुलीन घोड़े भी होते हैं कि कोड़े की छाया काफी है।
आनंद ने कहा, यह बात मेरी समझ में आती है। वह तो भूल ही गया इस आदमी को,
वह तो घोड़ों की बात उसकी समझ में आई--घोड़ों का प्रेमी था।
बुद्ध ने कहा, यह ऐसा ही घोड़ा था, इसको सिर्फ छाया काफी है; फटकारना भी नहीं पड़ा, कोड़ा दिखाना भी नहीं पड़ा, सिर्फ छाया। इधर मैंने आंख क्या बंद की कि उधर उसने आंखें खोल लीं। लेन-देन हो गया है। मौन ही मौन में हो गया है।
यह संतरण मौन है।

तो ऐसे लोग हैं जो मौन में समझ लेंगे। मगर बहुत विरले हैं ऐसे लोग। फिर जो लोग मौन में समझ लेंगे, उनके लिए किसी के द्वारा बताया जाना आवश्यक नहीं है। अगर यह आदमी बुद्ध के पास न आता, तो भी समझ कर ही मरता। यह आदमी बिना समझे नहीं मर सकता था। हो सकता था किसी वृक्ष के पास बैठ कर समझ जाता-- क्योंकि वृक्ष भी मौन हैं। और हो सकता था किसी पहाड़ की कंदरा में बैठ कर समझ जाता--क्योंकि पहाड़ भी मौन हैं। और हो सकता था चांद को देख कर समझ जाता--क्योंकि चांद भी मौन है। यह आदमी देर-अबेर समझ ही जाता। बुद्ध के पास आने से चलो घटना जल्दी घट गई। मगर यह आदमी समझता तो जरूर। जो इतनी जल्दी समझ गया, जो इतनी त्वरा से समझा, इतनी तीव्रता से समझा, इसके भीतर गहन प्यास थी। यह आदमी निन्यानबे डिग्री पर उबलता हुआ पानी था। जरा सा धक्का कि सौ डिग्री हो गया और उड़ गया। शायद बुद्ध के पास न आता तो दो-चार साल लग जाते, या दो-चार जन्म। लेकिन क्या मूल्य है दो-चार जन्मों का भी इस लंबे विस्तार में? दो पल से ज्यादा मूल्य नहीं। मगर यह पहुंच तो जाता। शांडिल्य कहते हैंः ऐसे लोग हैं जो मौन से समझ लेंगे।
मगर वे तो विरले हैं। जो कोड़े की छाया से चलेंगे ऐसे घोड़े तो विरले हैं। अधिक तो ऐसे हैं जिन्हें शब्दों की जरूरत होगी। फिर शब्दों के मारे- मारे भी कहां चलते हैं? उनके लिए कहना होगा, उनके लिए बोलना होगा। और वे ही बहुमत में हैं, जो शब्दों से भी कहने पर नहीं समझ पाएंगे। जो शब्दों से कहने पर नहीं समझ पाते, वे मौन को तो कैसे समझेंगे? इसलिए बुद्धियां अलग-अलग प्रकार की हैं।
फिर और भी बात समझ लेना, इस सूत्र में कई बातें आ गई हैं।
कुछ लोग हैं जो ईश्वर में उत्सुक हैं, ऐश्वर्य में नहीं; और कुछ लोग हैं जो ऐश्वर्य में उत्सुक हैं, ईश्वर में नहीं। जो लोग ईश्वर में उत्सुक हैं, उनसे अगर ऐश्वर्य की बात न करो तो चलेगा। ऐश्वर्य ईश्वर की छाया है। आ ही जाएगा।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः सीक यी फर्स्ट दि किंग्डम ऑफ गॉड, देन ऑल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। पहले तुम प्रभु को खोज लो या प्रभु के राज्य को खोज लो--फिर शेष सब वैभव, सारी संपदाएं अपने आप पीछे से चली आएंगी। मगर पहले प्रभु को खोज लो।
ऐसे लोग हैं जो ईश्वर में उत्सुक हैं। उन्हें ईश्वर की चर्चा काफी है, ऐश्वर्य की चर्चा आवश्यक नहीं। वे कहेंगेः व्यर्थ समय क्यों खराब करते हैं? बात पूरी हो गई।
लेकिन ऐसे भी लोग हैं--और यह दूसरा वर्ग बड़ा है--जो अगर ईश्वर में भी उत्सुक होते हैं तो इसीलिए उत्सुक होते हैं कि उनकी उत्सुकता ऐश्वर्य में है। वे प्रभु में उत्सुक होते हैं, क्योंकि प्रभुता में उनकी उत्सुकता है। उनकी उत्सुकता को भी ध्यान में रखना जरूरी है। और उनकी संख्या बड़ी है। संसार में आदमी धन को खोजता है--खोजता है और नहीं पाता--तब यही धन की खोज ध्यान की खोज बन जाती है। बाहर खोज लिया, नहीं पाया। अब सोचता है भीतर खोजें; मगर खोज तो धन की ही है। बाहर हार गया है तो अब भीतर चलता है, कहता है--चलो ठीक है, कोई जगह छूट न जाए, कोई दिशा छूट न जाए।
आदमी बाहर प्रभुता खोजता है, बाहर पद खोजता है; फिर हार जाता है। क्योंकि बाहर किसको कब पद मिलता है? जिनको नहीं मिलता उनको तो नहीं मिलता, जिनको मिलता है उनको भी कहां मिलता है? बाहर के सब पद थोथे हैं। दिखावा बड़ा है, भीतर कुछ भी नहीं है। छाछ भी हाथ नहीं आती। शोरगुल बहुत मचता है, परिणाम कुछ भी नहीं है। एक न एक दिन आदमी को यह बात समझ में आ जाती है कि पद बाहर का मिलता नहीं। मिल जाए तो भी कुछ मिलता नहीं। उस दिन आदमी परमपद को खोजने निकलता है। लेकिन खोजता परमपद को है, परम ऐश्वर्य को। उस आदमी के लिए ईश्वर गौण है, ऐश्वर्य प्रमुख है। खोजने निकलता है ऐश्वर्य को, मिल जाता है ईश्वर--छाया की तरह, यह दूसरी बात है।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः यह चर्चा ऐश्वर्य की करनी होगी। यह अधिक लोगों के काम की है। सब छोड़ देने पर इस ऐश्वर्य की चर्चा की जरूरत क्या है, कोई पूछे, तो शांडिल्य कहते हैंः जरूरत है, क्योंकि बुद्धि बहुत प्रकार की होती है। और सदगुरु वही है जो सब प्रकार की बुद्धि के लिए सूत्र दे जाए।

गुरु और सदगुरु का फर्क क्या है?
गुरु का अर्थ होता है, जो एक प्रकार की बुद्धि के लिए सूत्र दे जाए। उसकी सीमा है। वह एक तरह की बात कह जाता है, उतनी बात जिनकी समझ में पड़ती है उतने थोड़े से लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं। सदगुरु कभी-कभी होता है। सदगुरु का अर्थ होता है, जो मनुष्य मात्र के लिए बात कह जाए। जो किसी को छोड़े ही नहीं। जिसकी बांहें इतनी बड़ी हों कि सभी समा जाएं--स्त्री और पुरुष, सक्रिय और निष्क्रिय, कर्मठ और निष्क्रिय, बुद्धिमान और भावुक, तर्कयुक्त और प्रेम से भरे--सब समा जाएं, जिसकी बांहों में सब आ जाएं; जिसकी बांहों में किसी के लिए इनकार ही न हो।
बुद्ध ने बोला। वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी। इनकार करते रहे। वह मार्ग पुरुषों के लिए था। उसमें स्त्रियों की जगह नहीं है। स्त्रियों का थोड़ा भय भी है। और जब मजबूरी में, बहुत आग्रह करने पर बुद्ध ने दीक्षा भी दी स्त्रियों को, तो यह कह कर दी कि मेरा धर्म पांच हजार साल चलता, अब केवल पांच सौ साल चलेगा, क्योंकि स्त्रियों की मौजूदगी मेरे धर्म को भ्रष्ट कर देगी।
बुद्ध के सूत्र मौलिक रूप से पुरुष के लिए काम के हैं, क्योंकि प्रेम
की वहां कोई जगह नहीं है, प्रीति का वहां कोई उपाय नहीं है। और स्त्रैण-चित्त तो प्रीति के बिना परमात्मा की तरफ जा ही नहीं सकता। तो खतरा है, बुद्ध गलत नहीं कह रहे हैं, बुद्ध ठीक ही कह रहे हैं। बुद्ध का भय साफ है कि मैंने स्त्रियों को ले लिया है। और मार्ग पुरुषों का है, और स्त्रियां बिना प्रीति के रह नहीं सकतीं, तो आज नहीं कल स्त्रियां अपनी प्रीति को डालना शुरू कर देंगी इस मार्ग पर। और यह मार्ग शुद्ध ध्यान का है, प्रेम का और प्रार्थना का नहीं है। और स्त्रियों ने प्रीति डाल दी, उन्होंने बुद्ध पर ही प्रीति डाल दी, उन्होंने बुद्ध की ही पूजा शुरू कर दी। स्त्री बिना पूजा के नहीं रह सकती। पुरुष को पूजा करना बड़ा कठिन मालूम पड़ता है, झुकना कठिन मालूम पड़ता है, उसका अहंकार आड़े आता है। विरला है पुरुष जो झुक जाए। समर्पण अगर कभी पुरुष करता भी है तो बड़े बेमन से करता है। बहुत सोच-विचार करता है, करना कि नहीं करना। स्त्री के लिए समर्पण सुगम है, संकल्प कठिन है। दोनों का मनोविज्ञान अलग है। पुरुष का मनोविज्ञान है संकल्प का विज्ञान। लड़ना हो, जूझना हो, युद्ध पर जाना हो, सैनिक बनना हो, वह तैयार है। वह बात उससे मेल खाती है, तालमेल है। स्त्री को समर्पण करना हो, कहीं झुकना हो, तो स्त्री में लोच है। इसलिए स्त्रियों को हमने कहा है--वे लताओं की भांति हैं। पुरुष वृक्षों की भांति हैं। स्त्री में लोच है। लता को कहीं न कहीं झुकना ही है, कहीं न कहीं सहारा लेना ही है।
बुद्ध के मार्ग पर परमात्मा की तो धारणा ही नहीं थी, इसलिए परमात्मा
का तो सहारा नहीं था, तो स्त्रियों ने बुद्ध को ही परमात्मा में रूपांतरित कर दिया। बुद्ध भगवान हो गए। एक नया रूप बुद्ध धर्म का प्रकट हुआ स्त्रियों के प्रवेश से--महायान! वह कभी प्रकट न हुआ होता। हीनयान बुद्ध का मौलिक रूप है। महायान स्त्रियों की अनुकंपा है! लेकिन स्त्रियों के आने से बुद्ध के ध्यान की प्रक्रियाएं तो डांवाडोल हो गईं।
कृष्ण के मार्ग पर कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण के मार्ग पर पुरुष को जाने में थोड़ी अड़चन है। पुरुष जाता है तो थोड़ा सा संकोच करता और झिझकता। स्त्री नाचते चली जाती है। तुम देखते हो न, कृष्ण के रास की इतनी कथाएं हैं! उनके भक्तों में पुरुष भी थे, गोपाल भी थे। मगर तुमने रास में देखा होगा स्त्रियों को ही नाचते। एकाध गोपाल भी दाढ़ी-मूंछधारी वहां दिखाई नहीं पड़ते। सब स्त्रियां हैं। ऐसा नहीं कि कुछ गोपाल न रहे होंगे। लेकिन उनको भी दाढ़ी-मूंछ की तरह चित्रित नहीं किया है, क्योंकि वे उतने ही स्त्रैण-चित्त रहे होंगे जितनी स्त्रियां।
पश्चिम बंगाल में एक छोटा सा संप्रदाय अब भी जीवित है--राधा संप्रदाय। उसमें पुरुष भी अपने को स्त्री मानता है, और जब कृष्ण की पूजा करता है तो स्त्री के वेश में करता है, स्त्री के कपड़े पहन कर करता है। और रात जब सोता है तो कृष्ण की मूर्ति को अपनी छाती से लगा कर सोता है।

कृष्ण के साथ तो गोपी बने बिना कोई उपाय नहीं है। कृष्ण के साथ तो स्त्रैण हुए बिना कोई उपाय नहीं है। वहां तो नाता प्रीति का और प्रार्थना का है। पुरुष कृष्ण के मार्ग पर जाएगा तो भ्रष्ट कर देगा--वैसे ही, जैसे बुद्ध के मार्ग को स्त्रियों ने भ्रष्ट कर दिया।
गुरु का अर्थ होता हैः जिसने एक दिशा दी है, एक सुनिश्चित दिशा दी है।
उस सुनिश्चित दिशा में जितने लोग जा सकते हैं, वे जा सकते हैं; जो नहीं जा सकते, वह उनके लिए मार्ग नहीं है, वे कहीं और तलाशें। सदगुरु मैं उसे कहता हूंः जिसकी बांहें इतनी बड़ी हैं कि स्त्री हों कि पुरुष, कि कर्म में रस रखने वाले लोग हों कि अकर्म में, कि बुद्धि में जीने वाले लोग हों कि हृदय में; जितने ढंग की जीवन-प्रक्रियाएं हैं, शैलियां हैं, सबके लिए उपाय हो, सबका स्वीकार हो। गुरु तो बहुत होते हैं, सदगुरु कभी-कभी होते हैं। शांडिल्य सदगुरु हैं। इसलिए शांडिल्य कहते हैंः मेरे भक्ति के मार्ग में, अगर तुम योग साधते हो, उसका उपयोग कर लेंगे। चित्त-शुद्धि के लिए उपयोग हो जाएगा। अगर तुम ज्ञान साधते हो, उसका उपयोग कर लेंगे। तुम्हारी जिज्ञासा को प्रगाढ़ करने में, तुम्हारी प्यास को निखारने में, तुम्हारी उत्कंठा को अभीप्सा बनाने में उसका उपयोग कर लेंगे। आओ, सब आओ, किसी के लिए निषेध नहीं है, वर्जना नहीं है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि बहुत प्रकार की बुद्धियां हैं और मैं सबके लिए बोल रहा हूं।
प्रकृति अंतरालात इव कार्यं चित्त सत्त्वेन अनुवर्तमानत्वात्। "प्रकृति से अलग रह कर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र अधिकारिता सिद्ध है।" भक्त और भगवान एक हो जाते हैं, संसार और निर्वाण एक हो जाते हैं, पदार्थ और चैतन्य एक हो जाते हैं, देह और आत्मा एक हो जाते हैं, द्वंद्व समाप्त हो जाता है--ऐसी उदघोषणा शांडिल्य ने की है। शंका उठेगी। शंका उठ सकती हैः प्रकृति से अलग रह कर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र अधिकारिता है या नहीं?
प्रकृति और पुरुष, दो शब्दों को ठीक से समझ लें। ये भारतीय मनीषा के बड़े ही विचारणीय शब्द हैं। प्रकृति का अर्थ होता है, वह जो स्त्री-तत्व समाया है जगत में। पुरुष का अर्थ होता है, पुरुष-तत्व। जगत संकल्प और समर्पण के मेल से बना है। अंग्रेजी में प्रकृति के लिए, पदार्थ के लिए शब्द है--मैटर। तुम जान कर चकित होओगे कि मैटर संस्कृत की मूल धातु मातृ से बना है--माता। उसी से मदर भी बना है, उसी से मैटर भी बना है। मैटर यानी स्त्रैण, वह जो मातृ-शक्ति है, वह जो मां है--प्रकृति यानी मां। पुरुष-तत्व यानी संकल्प का तत्व, विचार का तत्व। प्रकृति यानी प्रीति का तत्व। ये दोनों हैं।
एक बहुत पुरानी असीरियन किताब घोषणा करती हैः परमात्मा अकेला था और अपने को जानना चाहता था। अपने को जानने के लिए उसने स्वयं को दो में विभाजित किया--जानने के लिए।
जानने के लिए विभाजन जरूरी है। क्योंकि जब भी तुम कुछ जानना चाहो तो जानने वाले को जाने जाने से अलग होना चाहिए। तुम अपने चेहरे को भी जानना चाहो तो दर्पण की जरूरत पड़ेगी। तुम्हारा चेहरा है, जान क्यों नहीं लेते सीधा-सीधा? दर्पण की क्या जरूरत है? दर्पण की जरूरत पड़ेगी, तो अपने चेहरे का प्रतिबिंब देख सकोगे।
प्रकृति दर्पण है, जहां पुरुष अपने को देखता। बिना दूसरे से संबंधित हुए, बिना किसी गहरे आंतरिक संबंध के तुम अपने को जानने में समर्थ नहीं हो पाते।
इसलिए कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं कि संबंध दर्पण है। संबंधित होकर ही बोध होता है। वह जो पहाड़ की तरफ भाग जाता है, वह दर्पण तोड़ कर भाग रहा है। उसे पहाड़ पर अपने चेहरे का पता कैसे चलेगा? वह आंख बंद करके बैठ सकता है, लेकिन आत्मबोध को उपलब्ध नहीं होगा।
आत्मबोध तो यहां है जहां लोग हैं, जहां हजार तरह के चलते-फिरते आईने हैं, चारों तरफ चल रहे हैं, आईने ही आईने घूम रहे हैं, तुम जहां देखो वहीं तुम्हें अपना चेहरा दिखाई पड़ेगा। किसी आईने में तुम क्रोधित दिखाई पड़ते हो, यह भी तुम्हारी पहचान है। और किसी आईने में तुम बड़े प्रसन्न दिखाई

पड़ते हो, यह भी तुम्हारी पहचान है। ये सब तुम्हारे चेहरे हैं। और तुम्हारे अनंत चेहरे हैं। और उन सब चेहरों को पहचानना जरूरी है। इन सब चेहरों को पहचान लो, तो तुम्हारे भीतर जो चेहरों के पार है, उसकी पहचान हो सके। जंगल में भाग जाओगे, क्या जानोगे? गुफा में बैठ जाओगे, क्या जानोगे? दर्पण तोड़ कर चले आए। समाज दर्पण है।
असीरियन कथा ठीक है कि परमात्मा अकेला था और अपने को जानना चाहता था, इसलिए उसने अपने को दो में तोड़ा। पदार्थ और चेतना में तोड़ा। चेतना यानी देखने वाली और पदार्थ अर्थात जिसमें देखा जाना है। इसलिए हिंदू मनीषा ने स्त्री-पुरुष को अलग नहीं किया, कभी अलग नहीं किया। बौद्ध और जैन इस अर्थ में एकांगी हैं। उनकी विचार-दृष्टि में थोड़ी कमी है। महावीर अकेले खड़े हैं, लेकिन राम के साथ सीता है। इतना ही नहीं, जब भी हिंदू राम और सीता का नाम लेते हैं तो पहले सीता का नाम लेते हैं--सीताराम कहते हैं। राधाकृष्ण कहते हैं। शिव-पार्वती साथ हैं। विष्णु और लक्ष्मी साथ हैं। हिंदू मनीषा ने स्त्री-पुरुष को साथ-साथ देखा है, पुरुष-प्रकृति को साथ-साथ देखा है। दोनों संयुक्त हैं। और दोनों को अलग करने की कोई जरूरत नहीं है। यद्यपि अलग किए जा सकते हैं।
जैन चेतना को अलग कर लेते हैं प्रकृति से; वे कहते हैंः प्रकृति से मुक्त हो जाना मोक्ष है। तुम शुद्ध चैतन्य रह जाओ और प्रकृति से तुम्हारा कोई संबंध न रह जाए, तो सब बंधन समाप्त हो गए।
हिंदू मनीषा कहती हैः जब तुम्हें बंधनों में बंधन मालूम न पड़ें, तब मोक्ष है। जब तुम्हें जंजीरें भी आभूषण मालूम पड़ें, तब मोक्ष है। जब कांटे भी फूल हो जाएं, तब मोक्ष है। जब पदार्थ भी परमात्मा हो जाए, तब मोक्ष है। लेकिन भेद किया जा सकता है। और इसलिए शांडिल्य का यह सूत्र समझना! "प्रकृति से अलग रह कर चित्त-दशा की स्वतंत्र अधिकारिता सिद्ध है।"
अगर कोई चाहे तो अपने को प्रकृति से अलग कर सकता है और शुद्ध चैतन्य में ठहर सकता है और मान ले सकता है कि मैं सिर्फ चेतना हूं, मात्र चेतना हूं। यह संभावना है, इसीलिए तो जैन और बौद्ध जैसी जीवन-दृष्टियां पैदा हो सकीं। यह संभावना है कि तुम दर्पण को छोड़ कर गुफा में बैठ जाओ, यह संभावना है। इस संभावना को शांडिल्य स्वीकार करते हैं। लेकिन यह संभावना निषेध की संभावना है, नकार की। यह निगेटिव है।
इसलिए जैन-विचार नकारात्मक है। उसमें विधेय नहीं है। सिकोड़ देता है, फैलाता नहीं। जैन मुनि उदास हो जाता है, पंगु हो जाता है, हाथ-पैर कट गए। जैन मुनि नाच नहीं सकता, वीणा लेकर गीत नहीं गा सकता; जैन मुनि में मस्ती और मादकता नहीं हो सकती; उस तरह की सारी बातों का निषेध है, उसे तो सूखना है। जब उसमें एक फूल न लगे और एक हरा पत्ता भी न बचे, जब वह ग्रीष्म में खड़े हुए एक सूखे-रूखे वृक्ष की भांति हो जाए, जिसमें हरियाली नहीं आती, तब उसके मानने वाले कहते हैं--अब कुछ हुआ! तब वे कहते हैं--यह वैराग्य है!
यह विराग नकारात्मक है। यह विराग आत्मघाती है। निश्चित ही इसमें शांति मिलती है, क्योंकि अशांति के सारे कारणों से आदमी दूर हट गया। चिंता चली जाती है, निश्चिंतता आती है, लेकिन आनंद नहीं आता। शांति और आनंद के फर्क को ख्याल में रखना।
शांति केवल दुख का अभाव है। आनंद सिर्फ दुख का अभाव नहीं है, सुख का अवतरण भी है। बुद्ध ने कहा, मोक्ष यानी दुख-निरोध। आनंद की बात नहीं की। क्यों आनंद की बात नहीं की? नकार की प्रक्रिया में आनंद के लिए कोई जगह नहीं है। नकार की प्रक्रिया ज्यादा से ज्यादा शांति और शून्यता तक ले जाती है, उसके पार गति नहीं है; उसके पार तो विधेय चाहिए; नहीं के साथ तुम इतने जा सकते हो, उसके आगे तो हां चाहिए। मगर यह संभावना है कि तुम चाहो तो साक्षी बन जाओ, दूर खड़े हो जाओ, तुम शुद्ध चेतना के साथ ही अपना संबंध रखो और सारे संबंध प्रकृति से तोड़ दो।
प्रकृति के भय के कारण ही आदमी स्त्री से भयभीत है; क्योंकि स्त्री प्रतिनिधि है प्रकृति की।
अब यह तुम हैरान होओगे जान कर कि कितने शास्त्र गालियां देते हैं स्त्री को! और ये ऐसे लोग गालियां देते हैं जिनसे गालियों की आशा नहीं की

जानी चाहिए। स्त्री नरक का द्वार है। स्त्री पाप है। एक भी स्त्री ने ऐसी बात पुरुषों के संबंध में अभी तक नहीं कही है। प्रीति इस तरह की बात कह ही नहीं सकती, प्रीति में स्वीकार होता है। हालांकि जितना नरक स्त्रियों ने पुरुषों को दिया है, उससे ज्यादा ही नरक पुरुषों ने स्त्रियों को दिया होगा, कम नहीं दिया है; क्योंकि पुरुष के हाथ में ताकत है, बल है, शोषण है। पुरुष ने ज्यादा सताया है स्त्रियों को। फिर भी किसी स्त्री ने नहीं कहा कि पुरुष नरक का द्वार है। स्त्रियों ने कहाः पुरुष, पति परमात्मा है। और इधर तुम्हारे साधु-संत हैं--जिनको तुम साधु-संत कहते हो--वे लिखे चले जाते हैं, दोहराए चले जाते हैंः स्त्री नरक का द्वार है।
तुलसीदास ने स्त्री को जोड़ दिया है पशुओं के साथ, गंवारों के साथ, शूद्रों के साथ और कहाः ये सब ताड़न के अधिकारी। इन सबको सताना ही चाहिए। इनको न सताओ तो ठीक नहीं। इनके साथ सताने का व्यवहार ही उचित व्यवहार है। स्त्री से इतना भय क्या है?
स्त्री से भय इसी बात का है कि तुम नकार करके भाग रहे हो। और नकार में कोई भी जीएगा तो भयभीत जीएगा। स्वीकार में अभय है, नकार में भय है। क्योंकि जिस चीज को तुमने इनकार किया है, वह तुम्हारा पीछा करेगी। तुम जरा कोशिश करके देखो, किसी चीज से इनकार करके देखो, वही तुम्हारा पीछा करेगी। उपवास कर लो। उपवास का अर्थ हुआ, भोजन को नकार किया, भूख को नकार किया कि आज भोजन नहीं लेंगे। तो दिन भर तुम भोजन की ही सोचोगे। चौबीस घंटे एक ही विचार चलेगा--भोजन, भोजन, भोजन।
जिस चीज का नकार करोगे, वही-वही उठ कर चेतना में आएगी। और जब चेतना में बहुत बार उठ कर आएगी तो स्वभावतः तुमको डर पैदा होगा कि स्त्री नरक का द्वार है। स्त्री नरक का द्वार नहीं है, तुम्हारा निषेध स्त्री को बार-बार तुम्हारे चित्त में ला रहा है। चूंकि स्त्रियों ने कभी पुरुष का निषेध नहीं किया, इसलिए उनको पता ही नहीं चला कि पुरुष नरक का द्वार है। जब स्त्री भी पुरुष का निषेध करेगी, उसको भी पता चलेगा नरक का द्वार है। लेकिन स्त्री में निषेध की वृत्ति नहीं है, स्वीकार का भाव है, अंगीकार का भाव है। स्त्री के पास पुरुष से ज्यादा बड़ा हृदय है, ज्यादा उदार हृदय है। प्रीति स्वभावतः तर्क से ज्यादा उदार होती है। और समर्पण संकल्प से ज्यादा उदार होता है। लेकिन समझ लेना--
"प्रकृति से अलग रह कर चित्त-सत्ता की स्वतंत्र अधिकारिता सिद्ध हो सकती है।"
इसलिए निषेध के मार्ग पैदा होते हैं।
"उनकी स्थिति घर के भीतर की पीढ़ी की भांति है।"
तत प्रतिष्ठा गृहपीठवत्।
ऐसे जो निषेध के मार्ग हैं, वे यह कहते हैं कि प्रकृति से कुछ लेना- देना नहीं है। स्थिति ऐसी है जैसे कोई आदमी अपने घर में कुर्सी पर बैठा हो। जब कुर्सी पर बैठा है आदमी तो इसका यह मतलब नहीं है कि उसको सदा कुर्सी पर ही बैठा रहना पड़ेगा, कि वह कुर्सी नहीं छोड़ सकता, या कि कुर्सी उससे जुड़ी है, कि जहां जाएगा वहां कुर्सी भी जाएगी। वह अभी उठ खड़ा हो तो कुर्सी छूट जाएगी। कुर्सी छूट सकती है। प्रकृति और पुरुष का संबंध ऐसा है कि पुरुष चाहे तो प्रकृति को छोड़ सकता है। जैसे नदी-नाव संयोग है। नाव नदी से अलग की जा सकती है। नदी नाव से अलग की जा सकती है।
ये जो निषेध के मार्ग हैं, वे कहते हैं, पुरुष और प्रकृति का संबंध ऐसा
है जैसे--तत प्रतिष्ठा गृहपीठवत्। जैसे कोई आदमी अपने घर में पीढ़ी पर बैठा हुआ है। जब तक बैठा है, ठीक है; जब छोड़ना चाहे तब छोड़ सकता है। पीढ़ी उसके पीछे भागेगी नहीं।
काश इतनी आसान बात होती! काश नकार को सिद्ध करने वाले लोगों की बात इतनी सरल होती! तुम जब स्त्री को छोड़ कर जाओगे तो तुम पीढ़ी को छोड़ कर जा रहे हो, इस भ्रांति में मत पड़ना। पीढ़ी तो बाहर है, स्त्री तुम्हारे भीतर है।
तुम जहां जाओगे वहां साथ चली जाएगी। प्रकृति पुरुष के साथ संयुक्त है।
यद्यपि पुरुष चाहे तो इस तरह के एहसास कर सकता है कि मैं अलग हूं। उन्हीं एहसास के कारण नकारवादी मार्गों को दुनिया में जन्म मिला।

शांडिल्य कहते हैंः मिथ उपेक्षणात उभयम्।
"दोनों ही इसके कारण रूप हैं।"
शांडिल्य कहते हैंः एक का ही कारण नहीं है। इस संसार का कारण सिर्फ प्रकृति ही नहीं है। इस संसार का कारण प्रकृति और पुरुष दोनों हैं। इसलिए एक को छोड़ने से नहीं बनेगा। दोनों के ऊपर उठने से बनेगा।
इस बात को समझना। जब तुम भाग जाते जंगल अपनी पत्नी को छोड़ कर, तब तुम
यह कोशिश कर रहे हो कि मैं सिर्फ पुरुष हूं और पुरुष ही रहूंगा और स्त्री से संबंध तोड़ता हूं। स्त्री की गुलामी बहुत हो चुकी, अब नहीं करूंगा; परतंत्रता बहुत झेल ली, अब नहीं झेलूंगा; अब मैं अपने पुरुष होने की घोषणा करता हूं। लेकिन तुम पुरुष की भांति स्त्री से कभी मुक्त न हो सकोगे। स्त्री के पास रहो, स्त्री से दूर रहो। पुरुष की भांति तुम स्त्री से मुक्त न हो सकोगे, क्योंकि पुरुष की परिभाषा ही स्त्री से बनती है। पुरुष की परिभाषा प्रकृति से बनती है।
लेकिन एक उपाय है कि तुम दोनों के पार हो जाओ। शांडिल्य का सूत्र अदभुत है। शांडिल्य यह कह रहे हैं कि ऐसा एक उपाय है--न तुम स्त्री रह जाओ, न पुरुष; न पुरुष, न प्रकृति; न चैतन्य, न पदार्थ। दोनों के पार होने का उपाय है, वही भक्ति है।
ज्ञान एक से छूटना चाहता है और एक को पकड़ना चाहता है--ज्ञान में चुनाव है। भक्ति में कोई चुनाव नहीं। भक्ति दोनों से मुक्त हो जाना चाहती है। दोनों के पार देखती है। भगवत्ता का अर्थ हैः जहां पुरुष ने अपनी पुरुषता खो दी और स्त्री ने अपनी स्त्रैणता खो दी। जहां स्त्री और पुरुष दोनों अलग-अलग नहीं रहे--अर्द्धनारीश्वर। जहां स्त्री-पुरुष दोनों संयुक्त हो गए।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि संभोग के किन्हीं-किन्हीं क्षणों में तुम्हें परमात्मा का अनुभव होता है। जब स्त्री और पुरुष एक ऐसी मिलन की घड़ी में होते हैं जब न तो पुरुष को याद होती है कि मैं पुरुष हूं और न स्त्री को याद रह जाती है कि मैं स्त्री हूं, जहां दोनों के बीच एकात्म सध जाता है, जहां दोनों के बीच सेतु बन जाता है, जहां दोनों संयुक्त हो जाते हैं--क्षण भर को घटती है यह घटना; प्रेमियों में कभी-कभी क्षण भर को यह घटना घटती है, जब द्वंद्व मिट जाता है, द्वैत खो जाता है और एक, एक क्षण को उमगता है, फिर खो जाता है। इसीलिए तो आदमी कामवासना के लिए इतना दीवाना है। वह जो एक का अनुभव होता है, वह इतना प्यारा है। संभोग का रस वस्तुतः संभोग का रस नहीं है, समाधि का रस है। और जिस दिन तुम यह पहचान लोगे, उस दिन से तुम संभोग के ऊपर जाने लगोगे। तब तुम असली समाधि खोजने लगोगे। ऐसी समाधि जहां पुरुष और प्रकृति सदा को एक हो जाते हैं।
"दोनों ही इसके कारण रूप हैं।"
मिथ उपेक्षणात उभयम्।
इसलिए एक को जिम्मेवार मत ठहराना। एक को जिम्मेवार ठहराना अत्यंत नासमझी की बात है। पुरुष यह कहे कि स्त्री नरक का द्वार है, यह बात ऐसी ही मूढ़ता की है जैसे कोई स्त्री कहे, पुरुष नरक का द्वार है। कोई नरक का द्वार नहीं है। तुमने एक-दूसरे को भिन्न-भिन्न माना है, उसी में नरक का द्वार है। जिस दिन तुम दोनों को एक मानोगे, उसी एकता में स्वर्ग का द्वार है।
और यह सिर्फ स्त्री-पुरुष के ही एक होने की बात नहीं है, जीवन के सारे द्वंद्वों को एक करने की बात है। नकार और विधेय एक हो जाने चाहिए, दृश्य और अदृश्य एक हो जाने चाहिए, रात और दिन एक हो जाने चाहिए, जीवन और मरण एक हो जाने चाहिए, सुख और दुख एक हो जाने चाहिए, स्वर्ग और नरक एक हो जाने चाहिए, जहां-जहां द्वंद्व है वहीं-वहीं निर्द्वंद्व दशा हो जानी चाहिए। जब कोई द्वंद्व न बचे, निर्द्वंद्व अद्वैत का साम्राज्य हो, वहीं मोक्ष है, वहीं भगवत्ता है।
चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।
"प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं।"
यह उदघोषणा सुनोः चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।

प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं। दोनों एक हैं। तुमने भिन्न माना है, वहीं अड़चन है। संसार और निर्वाण एक हैं। जैसा झेन फकीर कहते हैं। झेन फकीरों ने तो बहुत बाद में कहा, शांडिल्य की उदघोषणा बड़ी पुरानी है।
चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।
प्रकृति और ब्रह्म में जरा भी भेद नहीं; अभिन्न हैं। परमात्मा और उसकी सृष्टि दो नहीं हैं। स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं। सृष्टि स्रष्टा का नृत्य है। सृष्टि के प्रत्येक पहलू पर उसकी छाप है। हर कण पर उसका हस्ताक्षर है। सारे रंग उसके हैं, सारा इंद्रधनुष उसका है। कीचड़ से लेकर कमल तक सब नीचाइयां, सब ऊंचाइयां उसकी हैं। कीचड़ भी उसकी, कमल भी उसका। कीचड़ की निंदा मत करना, कमल की प्रशंसा मत करना। कीचड़ की निंदा करोगे तो ही कमल की प्रशंसा कर सकोगे। कमल की प्रशंसा करोगे तो कीचड़ की निंदा करनी ही पड़ेगी। सब उसका है। यहां कैसी निंदा? कैसी प्रशंसा? कीचड़ भी उसकी है--और कीचड़ में कमल छिपा है! और कमल भी उसका है--कमल फिर गिरेगा और कीचड़ हो जाएगा। जिस व्यक्ति को कमल और कीचड़ में एक ही दिखाई पड़ने लगे, उसने जाना, उसने पहचाना, वह आत्मविद हुआ, सर्वविद भी हुआ। और निश्चित ही ऐसे व्यक्ति का सारा ऐश्वर्य, तामैश्वर्यपदां, सब कुछ उसका है। कीचड़ से लेकर कमल तक सब उसका है। क्षुद्र से लेकर विराट तक सब उसका है। अणु से लेकर परमात्मा तक सब उसका है। इस जानने में वह विस्फोट घटित होता है, जहां तुम्हारी सब दीनता और हीनता मिट जाती है--सब दीनता और हीनता मान्यता की है--जहां सारा डर मिट जाता, सारा भय मिट जाता।
अब अगर तुम्हारा संन्यासी और तुम्हारा मुनि और त्यागी भी भयभीत हो... संसारी भयभीत है, समझ में आता है; संसारी भयभीत है कि कोई उसका धन न चुरा ले, संसारी भयभीत है कि कहीं बाजार में घाटा न लग जाए, संसारी भयभीत है कि कहीं कोई चोरी न कर ले जाए, संसारी भयभीत है कि पत्नी छोड़ कर न चली जाए, संसारी के हजार भय हैं। तुमने देखे, तुम्हारे संन्यासी के कितने भय हैं? वह तथाकथित साधु और मुनि के कितने भय हैं?
वह भी मरा जा रहा है, परेशान है कि कहीं पुण्य न खो जाए, कहीं कुछ पाप न
हो जाए; व्रत किया है, टूट न जाए; नियम बांधा है, खंडित न हो जाए; उपवास किया है, ये भोजन के ख्याल सता रहे हैं; स्त्री को छोड़ आया है, वासना मन में पकड़ती है; ये सारी बातें उसे भी भयभीत किए हैं। सच तो यह है कि तुमसे भी ज्यादा डरा हुआ तुम्हारा मुनि है। कंप रहा है। चौबीस घंटे भयभीत है। न दिन में ठीक से रह पाता, न रात ठीक से सो पाता है। रात और डरता है कि कहीं कोई सपना न आ जाए, सपने में कोई सुंदर स्त्री न दिख जाए, सपने में कहीं धन की आकांक्षा न आ जाए। और जिन-जिन से भागा है, वे सब सपने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे कहते हैं--जरा तुम आंख बंद करो, जरा विश्राम करो, तो हम आएं। जिन-जिन को छोड़ आया है, वे सब द्वार पर ही खड़े हैं। जरा सा मौका मिलेगा, भीतर आ जाएंगे।
यह तो अजीब बात हुई, संसारी भी भयभीत है और त्यागी भी भयभीत है! तो फिर अभय को कौन उपलब्ध होगा?
अभय को वही उपलब्ध हो सकता है जिसने जाना कि संसार और परमात्मा दो नहीं हैं, फिर कोई भय नहीं है। जिसने जाना कि जीवन भी उसका, मरण भी उसका, फिर कोई भय नहीं है। जिसने प्रकृति और पुरुष का एकात्म जाना, फिर कोई भय नहीं है।
चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।
शांडिल्य के इस सूत्र को जितना हृदय में ले जा सको उतना उपयोगी होगा। कठिन है इसे समझना। क्योंकि हमें सदियों-सदियों तक गलत बातें सिखाई गई हैं। हमें सदियों-सदियों तक निंदा का जहर पिलाया गया है। हम जहर से भर गए हैं। हमारी रगों में अब खून नहीं बहता, जहर बहता है। पंडित-पुरोहितों ने इतना जहर भर दिया है कि जब कभी कोई सत्य का पदार्पण होता है तो हमारी आंखें झप जाती हैं। हम सुन भी लेते हैं तो समझ नहीं पाते। समझ भी लेते हैं तो पकड़ नहीं पाते। पकड़ भी लेते हैं तो कभी जीवन में नहीं उतार पाते। और जब तक ये

सत्य जीवन में उतर न जाएं, तब तक भरोसा मत करना कि समझ लिए। बौद्धिक समझ समझ नहीं है।
जब ये सत्य तुम्हारे जीवन के अनुभव हो जाते हैं, जब तुम ऐसा अनुभव करोगे, शांडिल्य ने जैसा अनुभव किया, जब तुम्हारे भीतर भी यह उदघोष उठेगा कि नहीं, सब एक है! पदार्थ और प्रकृति, परमेश्वर और पुरुष नाम हैं; पुरुष है भीतर का नाम, प्रकृति है बाहर का नाम; पुरुष है अंतर्यात्रा, प्रकृति है बहिर्यात्रा; पुरुष है साक्षीभाव, स्त्री है विस्मय-विमुग्धता, लवलीनता; पुरुष है ध्यान, स्त्री है प्रीति, और धन्यभागी है वह जिसके ध्यान में प्रीति की गंध होती है और जिसकी प्रीति में ध्यान का प्रकाश होता है। जिस दिन तुम इस भांति ध्यान कर सकोगे कि ध्यान तुम्हारा प्रीति के विपरीत न पड़े, और जिस दिन तुम इस भांति प्रीति कर सकोगे कि प्रीति तुम्हारे ध्यान का खंडन न हो, उस दिन तुम आए मंदिर के द्वार पर, उस दिन तुम ठीक जगह आए, उस दिन तुम्हें तुम्हारा तीर्थ मिला, उस दिन तुम्हें तुम्हारा तीर्थंकर मिला।
और यही मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा ध्यान संयुक्त हो जाए। ध्यान करो तो ध्यान में प्रीति का राग और रंग हो, प्रीति का अनुराग हो। ध्यान रूखा-सूखा न हो। ध्यान मरुस्थल जैसा न हो। ध्यान में प्रीति के फूल खिलें, प्रेम के झरने बहें। ध्यान मस्ती से भरा हुआ हो। ध्यान की अपनी मधुशाला हो, नाच हो, गान हो। ध्यान जीवन-विपरीत, जीवन-निषेधक न हो, आह्लाद हो, आनंद हो। और अगर तुम प्रीति करो, अगर तुम भक्ति में उतरो, तो तुम्हारी भक्ति मूढ़ता न हो, अंधविश्वास न हो, उसमें ध्यान का दीया जलता हो, उसमें ध्यान का प्रकाश हो, उसमें साक्षीभाव रहे।
यह परम समन्वय है। इसके पार और कोई समन्वय नहीं है, क्योंकि यहां प्रकृति और पुरुष मिल जाते हैं, यहां ध्यान और प्रेम मिल जाते हैं। जहां ध्यान और प्रेम मिलते हैं, वहां दृश्य और अदृश्य एक हो जाते हैं, वहां समय और शाश्वत एक हो जाते हैं, वहां लहर और सागर का द्वंद्व समाप्त हो जाता है। तब तुम जानते हो कि लहर सागर है और सागर लहर है। फिर तुम चुनाव नहीं करते, फिर तुम निर्विकल्प हो जाते हो। चुनाव करने को ही नहीं बचता, विकल्प ही नहीं बचते, वहां निर्विकल्प समाधि लग जाती है; वहां सब समाधान हो गया। अब कीचड़ हो, तो तुम्हें कमल दिखाई पड़ता है। अब कमल हो, तो तुम जानते हो कीचड़ है। अब न कहीं राग लगता, न कहीं विराग। अब हर हालत में तुम जैसा है, उसे जानते हो--यथावत, यथाभूतं। जैसा है, तुम वैसा ही जानते हो। तुम्हें सब दिखाई पड़ता है। उस सब दिखाई पड़ने में, उस दर्शन में मुक्ति है। फिर तुम पर कोई बंधन नहीं रह जाते।
चैत्याः अचितोः न त्रितीयम्।
प्रकृति और ब्रह्म में कोई भी विभिन्नता नहीं है। स्त्री-पुरुष में कोई विभिन्नता नहीं है। प्रेम और ध्यान में कोई विभिन्नता नहीं है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1 सोलहवां प्रवचन

धर्म आमूल बगावत है

पहला प्रश्नः शांडिल्य-सूत्र पर हुए पिछले तीन प्रवचनों में भक्ति- गंगा ज्ञान-गंगा बन कर बहती नजर आई। क्या भक्ति और ज्ञान का भेद सतही है? क्या गहरे में दोनों एक ही हैं?

भेद मात्र सतही होता है। भेद मात्र ऊपर-ऊपर है। भीतर अभेद है। भीतर अर्थात अभेद। बाहर अर्थात भेद। जितने केंद्र की तरफ जाएंगे, उतनी ही दूरियां कम होती चली जाती हैं। केंद्र पर सारी दूरियां समाप्त हो जाती हैं।
यात्रा के प्रस्थान के क्षण में बड़े भेद हैं। भक्त एक ढंग से जाता है, ज्ञानी दूसरे ढंग से जाता है। प्रस्थान के क्षण में दोनों विपरीत भी मालूम होंगे--भेद ही नहीं, विरोधी भी--एक-दूसरे की तरफ पीठ करके जाते हुए, एक-दूसरे का निषेध करते हुए। लेकिन जैसे-जैसे सत्य के करीब पहुंचेंगे, भक्त जैसे-जैसे भक्ति में लीन होगा, और ज्ञानी जैसे-जैसे ज्ञान में लीन होगा, जैसे-जैसे लीनता बढ़ेगी, वैसे-वैसे यह भी दिखाई पड़ना शुरू होगा कि हमारी दिशाएं अलग थीं, हमारे मार्ग भिन्न थे, हमारे मार्ग अलग-अलग स्थानों से गुजरते थे, लेकिन हम जिस शिखर की तरफ पहुंच रहे हैं, वह एक है। शिखर पर पहुंच कर सारी दिशाएं एक हो जाती हैं और सब आयाम एक हो जाते हैं।
तो जैसे-जैसे शांडिल्य गहरे उतर रहे हैं, वैसे-वैसे भक्ति ज्ञान बनती मालूम पड़ेगी। ऐसा होना ही चाहिए, यही लक्षण है गहराई का। और जब तुम भेद ही न कर पाओ, जब भक्त की भाषा और ज्ञानी की भाषा में ही भेद रह जाए, इंगित एक की ही तरफ होने लगे, प्रेम और ज्ञान जब एक ही तरफ इशारा करें, तभी जानना कि घर आया, कि मंजिल पर पहुंचे। जब तक जरा सा भी भेद रहे, जरा सा भी मन में दुराव रहे, दुई रहे, तब तक समझना अभी मंजिल आई नहीं; अभी और चलना है, अभी और यात्रा करनी है; रुक मत जाना। जब तक ज्ञान में, भक्ति में, कर्म में जरा सा भी इंच भर का भी भेद रहे, तब तक रुक मत जाना। यही कसौटी है। शिखर पर पहुंचना है। और शिखर का लक्षण क्या होगा? कैसे जानोगे कि शिखर पर पहुंच गए? पहले
तो कभी गए नहीं हो शिखर पर, पहुंचोगे तो पहली बार पहुंचोगे, पहचान क्या होगी?
पहचान यही होगी कि वहां सारे शास्त्र गले मिलते मालूम होंगे। पहचान यही होगी कि वहां महावीर और मीरा में जरा भेद न रह जाएगा। पहचान यही होगी कि वहां ज्ञान, भक्ति और कर्म एक ही सत्य के तीन चेहरे होंगे--त्रिमूर्ति का वहां दर्शन होगा, लेकिन तीनों के पीछे एक ही प्राण, एक ही अनुभूति।

दूसरा प्रश्नः क्या धर्म विद्रोह है?

धर्म विद्रोह है, संप्रदाय विद्रोह नहीं। संप्रदाय स्थिति-स्थापकता है। संप्रदाय का अर्थ हैः मर गया धर्म। विद्रोह मर गया, व्यवस्था बन गई। क्रांति की सांसें टूट गईं, लाश पड़ी रह गई।
महावीर के पैरों में जो चला, वह धर्म; जैनियों के सिर पर जो लदा है, वह संप्रदाय। बुद्ध ने जो कहा, वह धर्म; बौद्ध जिसे ढो रहे हैं, वह संप्रदाय। कृष्ण ने जो गाया, वह धर्म; हिंदू जिसके संबंध में विवाद कर रहे हैं, वह संप्रदाय।
हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ये धर्म की लाशें हैं। इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है वैसे ही जैसे लाश का जीवित व्यक्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। कितना तुमने चाहा था अपनी पत्नी को, अपने बेटे को! सब निछावर करने को राजी थे! और आज बेटे की सांस उड़ गई, पंछी उड़ गया, चले तुम लेकर उसे मरघट, चले तुम जलाने उसे! जिसके पैर में कांटा गड़ जाता तो तुम रात भर न सो पाते, जिसे जरा सी तकलीफ होती तो

तुम सब कुछ दांव पर लगा देते, आज उसे लेकर चले तुम मरघट! तुम्हीं लेकर चले मरघट, जमीन में गड़ाने, कि आग पर सुलाने! थोड़ा सोचो तो, क्या हो गया?
जीवित जो था, वह और था। अब तो मिट्टी पड़ी रह गई। मिट्टी को जो चिन्मय करता था, मृण्मय में जो चिन्मय था, वह तो जा चुका। तुमने जिसे चाहा था, वह अब नहीं है।
कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है--अक्सर ऐसा हो जाता है कि कोई बंदरिया, उसका बेटा मर जाता है, फिर भी उसको छाती से लगाए घूमती रहती है, इसी आशा में कि शायद फिर श्वास लौट आएगी। ऐसी ही संप्रदाय की दशा है।
यह सच है कि जब कोई जाग्रत व्यक्ति जीता है परमात्मा को, तो परम का अवतरण होता है। उसकी छाया में प्रभु की आभा होती है, उसके शब्दों में शून्य का संगीत होता है, उसकी आंखों में उसके हृदय की तरंगें होती हैं, उसके स्पर्श में, जो नहीं दिखाई पड़ता और जिसे नहीं छुआ जाता, वह दिखाई पड़ता है और वह छुआ जाता है। तुम आनंदमग्न हो जाते हो। तुम उसके साथ किसी भी बगावत में जाने को राजी हो जाते हो। तुम उसके साथ किसी भी क्रांति-पथ पर जाने को राजी हो जाते हो। तुम उसके साथ नरक में रहना पसंद करोगे बजाय अकेले स्वर्ग में रहने के। बुद्ध के साथ नरक मिले तो भी सौभाग्य होगा। उसके प्रभाव में, उसकी प्रभा में तुम सब दांव पर लगा देते हो, तुम जुआरी हो जाते हो, तुम हिसाब-किताब नहीं करते। उसका संस्पर्श ऐसा होता है कि तुम्हारे दर्पण की सारी धूल झड़ जाती है। और तुम्हारे दर्पण में वही दिखाई पड़ने लगता है, जो है। तब तुम संस्कार तोड़ देते हो, समाज तोड़ देते हो, संस्कृति तोड़ देते हो, सभ्यता तोड़ देते हो।
सोचो थोड़ा, महावीर के साथ जो नग्न होकर खड़े हो गए थे, उन्होंने क्या नहीं दांव पर लगा दिया होगा? क्या बचाया था? परिवार दांव पर लगा दिया, सभ्यता दांव पर लगा दी, संस्कृति दांव पर लगा दी, सब दांव पर लगा दिया। जो बुद्ध के साथ जाने को राजी हुए थे, उन्होंने वेद दांव पर लगा दिए, उपनिषद दांव पर लगा दिए, गीता दांव पर लगा दी, सब दांव पर लगा दिया। जब गीता जिसने कही थी वह खुद मौजूद हो, तो फिर गीता की कौन फिकर करता है? जिन ओंठों से वेद जन्मे थे, वे ओंठ फिर जीवित हों, तुमसे बोलते हों, फिर वेद को तुम हटा न दोगे तो और क्या करोगे?
लेकिन बुद्ध के जाने के बाद, उस पक्षी के उड़ जाने के बाद तुम्हारे हाथ में शब्द मात्र की संपदा रह जाती है। फिर तुम उन्हीं शब्दों में वेद खोजते हो, उपनिषद खोजते हो; फिर वेद निर्मित होता है, फिर उपनिषद निर्मित होता है। विद्रोह समाप्त हो गया। अब तुम कुछ दांव पर नहीं लगाते, अब तुम सिर्फ पूजा करते हो। अब धर्म औपचारिकता होता है। अब तुम मंदिर चले जाते हो, सिर झुका आते हो पत्थर की मूर्ति को। तुम नहीं झुकते, सिर्फ सिर झुकता है-- कोरा, खाली--तुम्हारा हृदय नहीं झुकता, तुम सिर्फ औपचारिक सम्मान... । एक गूंज है जो अतीत से सुनाई पड़ती है। उस गूंज के कारण तुम अब भी सम्मान देते जाते हो। मगर तुम्हारे सम्मान में तुम नहीं होते। आज तुम कुछ भी दांव पर नहीं लगाते। उलटा आज तुम बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट के साथ खड़े होकर कुछ कमाने की सोचते हो; प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है।
मंदिर जाने वाले को प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है; लोग सोचते हैं धार्मिक है। और जिसे भी लोग सोचते हैं धार्मिक है, वह आदमी ज्यादा कुशलता से बेईमानी कर सकता है। उसकी धार्मिकता की आड़ में बेईमानी छिप जाती है। इसलिए सभी बेईमान अपने को धार्मिक सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। यज्ञ कराएंगे, हवन कराएंगे, पाठ करवाएंगे, सत्यनारायण की कथा कहलवाएंगे। ये विज्ञापन हैं। ये खबरें हैं कि लोगों को पता हो जाए कि मैं धार्मिक हूं; तुम्हें मुझसे कोई भय नहीं है। और अगर मैं तुम्हारी जेब में हाथ डालूं तो तुम्हारे ही हित के लिए डाल रहा हूं; तुम्हारे ही लाभ के लिए, अगर तुम्हारी गर्दन काटूं; अगर तुम्हारा शोषण भी हो तो ना-नुच मत करना, मैं धार्मिक आदमी हूं। लोग मंदिर बनवाते हैं, धर्मशाला खड़ी करवाते हैं। यह प्रचार है। यह विज्ञापन की कला का हिस्सा है। एक बार लोग मान लें कि तुम धार्मिक हो, तो तुम्हारे शोषण की क्षमता हजार गुनी हो जाती है। अब विद्रोह नहीं, अब तो विद्रोह से उलटी बात हो गई, व्यवसाय हो गया।

लेकिन धर्म अपने मूल स्वर में विद्रोही है। और विद्रोह और क्रांति का
भी भेद समझ लेना। धर्म क्रांति नहीं, विद्रोह है। विद्रोह क्रांति से भी ऊंची और गहरी दशा है। क्रांति सामूहिक होती है, विद्रोह वैयक्तिक होता है। और जब भी तुम समूह में क्रांति करोगे तो जिस समूह में क्रांति करोगे, उस समूह के साथ समझौता करना होगा। उतना ही विद्रोह कम हो जाएगा, उतनी ही आग कम हो जाएगी, उतनी ही राख जम जाएगी।
समझो। एक कम्युनिस्ट है, कम्युनिस्ट क्रांतिकारी है। लेकिन क्रांतिकारी कम्युनिस्ट को भी क्रांति के लिए कम्युनिस्ट पार्टी निर्मित करनी होती है। फिर जो लोग उस पार्टी में सम्मिलित होते हैं, स्वभावतः उनको अपनी व्यक्तिगत चिंतना खोनी पड़ती है, उन्हें अपना व्यक्तित्व खोना पड़ता है। नहीं तो पार्टी कैसे बने? दल कैसे बने? व्यक्तित्व खोकर दल बन जाता है। फिर जो पार्टी कहे, वही उन्हें कहना होता है। फिर वे जरा इंच भर यहां- वहां नहीं जा सकते। यह बहुत विद्रोह न हुआ। यह तो शुरू से ही विद्रोह के प्राण संकट में पड़ गए।
विद्रोही वैयक्तिक होता है। महावीर ने कोई दल खड़ा नहीं कर लिया, विद्रोह किया--निजता ही विद्रोह थी। फिर जो लोग उनके पीछे चले, वे भी कोई दल नहीं खड़ा कर लिए। इस बात को भी ख्याल में रखना। बहुत लोग उनके पीछे चले, लेकिन जो भी उनके पीछे चला वह व्यक्तिगत रूप से विद्रोह करके पीछे चला। महावीर से उनके शिष्यों का संबंध निजी है, प्रत्येक शिष्य का निजी है। वही मैं तुमसे भी कहता हूंः प्रत्येक संन्यासी से मेरा संबंध निजी है। निजी इस अर्थ में कि तुमने संन्यास मुझसे लिया है, तुम मेरे द्वारा दीक्षित हुए हो, तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, मेरे-तुम्हारे बीच कोई और नहीं है। किसी और ने भी मेरा हाथ पकड़ा है। स्वभावतः जिन दो व्यक्तियों ने मेरे हाथ पकड़े हैं, उनके आपस में कुछ तालमेल होंगे, एक सा सुर होगा। लेकिन एक सा सुर होना चाहिए, इसकी कोई चेष्टा नहीं है। दोनों ने चूंकि मुझसे संबंध जोड़ा है, इसलिए दोनों में कुछ बातें तो मेल खाएंगी। लेकिन मेल खाना ही चाहिए, इसका कोई आग्रह नहीं है। अगर इसका आग्रह हो, तो विद्रोह मरना शुरू हो गया। प्रत्येक संन्यासी की निजता की सुरक्षा की जानी चाहिए। उसे किसी कीमत पर भी अपने अंतर्विद्रोह की ज्वाला को क्षीण नहीं करना है।
क्रांति सामूहिक होती है, विद्रोह वैयक्तिक होता है। क्रांति भविष्य-उन्मुख होती है, विद्रोह वर्तमान में होता है। क्रांति कहती हैः कल जब हम संगठित होंगे, और जब हम बदल देंगे समाज को, तब स्वर्णयुग आएगा, तब हम बसाएंगे एक नई दुनिया। क्रांति कल की तरफ देखती है। ख्याल रखना, समाज बीते कल की तरफ देखता है, क्रांतिकारी आने वाले कल की तरफ देखता है। विद्रोही आज में जीता है--न पीछे जो कल गया उसकी चिंता है, न आने वाले कल की कोई चिंता है। आने वाला कल अपने आप आ जाएगा। आज मैं जी लूं और मेरा विद्रोह प्रखर हो, मेरे विद्रोह में कोई समझौता न हो, मैं किसी कीमत पर अपने को बेचूं नहीं; मैं जैसा हूं, जैसा चाहता हूं, वैसा ही आज जी लूं; मेरे आज से ही कल भी निकलेगा, वह अपने आप आ जाएगा। उसकी कोई चिंतना लेने की जरूरत नहीं। कल के आधार पर मैं आज को निर्मित न करूं, बल्कि आज से कल को निकलने दूं तो विद्रोह है। कल के आधार पर आज को निर्मित करूं तो क्रांति।
फिर कल के आधार पर जब तुम आज को निर्मित करोगे, स्वभावतः तुम्हारे ऊपर जाल फैलना शुरू हो गया। तुमने ही फैलाना शुरू कर दिया, तुमने जंजीरें डाल लीं, तुम्हारे स्वातंष्य में समझौता हो गया, तुम्हारी स्वतंत्रता पूरी न रही।
ठीक वर्तमान में जीना धर्म है। और धर्म बड़ी से बड़ी क्रांति है।
क्योंकि धर्म के मूल-सूत्र क्या हैं? जागो। यहां सोए हुए लोगों की दुनिया है। सोए हुए लोगों ने, उनकी नींद सुव्यवस्था से चले, ऐसे नियम बना रखे हैं।
जो आदमी भी जागेगा, सोए हुए लोग उससे नाराज होंगे। वे उसे सूली देंगे।
क्योंकि जागा आदमी उनकी नींद में खलल डालने लगेगा।
तुमने देखा नहीं, तुम अगर रोज सुबह आठ बजे तक सोते हो और तुम्हारे घर में कोई व्यक्ति तीन बजे से उठ आता हो, तो उसकी मौजूदगी से खलल पड़ने लगता है। अगर वह प्रार्थना करे, पूजा करे, व्यायाम करे, आसन करे, योग करे, उसकी

मौजूदगी से, उसके जागने से--एक दीया जलाए, स्नान करे--बाकी लोगों की नींद में बाधा पड़ने लगी; बाकी लोगों को कठिनाई होने लगी। यह छोटी सी जीवन की दुनिया में।
लेकिन विराट में जब कोई जागता है, तो उसकी मौजूदगी दूर-दूर तक खलल पहुंचा देती है। न मालूम कितने लोगों की नींद टूटने लगती है, न मालूम कितने लोगों के सपने थर्राने लगते हैं। नहीं तो तुम जीसस को सूली क्यों देते? सुकरात को जहर क्यों पिलाते? तुम्हें पिलाना पड़ा। तुम्हें अपनी नींद की रक्षा करनी थी। ये लोग इतने जोर से चिल्लाने लगे, ये इतना शोरगुल मचाने लगे, ये तुम्हें आकर हिलाने लगे, ये तुम्हें उखाड़ने लगे तुम्हारी नींद से, ये चिल्लाने लगे कि तुम जो देख रहे हो वह सपना है, जागो! आंख खोलो! और तुम मधुर सपने देख रहे थे, सोने के महल बना रहे थे, तुम बड़ी कामनाओं में लिप्त थे, तुम बड़े मीठे सपनों में जा रहे थे--और कोई आकर चिल्लाने लगा, और कोई आकर जगाने लगा। यह घड़ी न थी कि तुम उसकी बात सुनते। तुम नाराज हुए, तुमने बदला लिया।
पहली बात, धर्म कहता है--जागो। जागरण धर्म का मूल सूत्र है। सोए हुए लोगों की भीड़ और जागा हुआ आदमी, दोनों के बीच सब तालमेल टूट जाते हैं। सोया हुआ आदमी एक तरह से सोचता है, उसके मूल्य अलग, उसकी तर्क-व्यवस्था अलग, उसकी विचार-सरणी अलग, उसके लक्ष्य अलग, उसका सारा जीवन-ढांचा अलग, उसकी शैली अलग। और यह जागा हुआ आदमी किसी और ही दुनिया की खबर लाता है। उस दुनिया में धन का मूल्य नहीं है। सोए हुए आदमी की दुनिया में धन का ही मूल्य है। जागा हुआ आदमी कुछ ऐसी खबर लाता है जहां काम का कोई मूल्य नहीं है। सोए हुए आदमी की दुनिया में कामवासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह जागा हुआ आदमी एक ऐसी खबर लाता है जहां अहंकार होता ही नहीं। और सोए हुए आदमी की दुनिया में अहंकार ही केंद्र है, जिस पर उसका चाक चलता है। इन दोनों में मुठभेड़ हो जाती है।
धर्म बगावत है। धर्म बड़ी से बड़ी बगावत है। आमूल बगावत है।

मैं कोई मुल्क नहीं हूं कि जला दोगे मुझे
कोई दीवार नहीं हूं कि गिरा दोगे मुझे
कोई सरहद भी नहीं हूं कि मिटा दोगे मुझे
यह जो दुनिया का पुराना नक्शा
मेज पर तुमने बिछा रक्खा है
इसमें कावाक लकीरों के सिवा कुछ भी नहीं तुम मुझे इसमें कहां ढूंढ़ते हो
मैं इक अरमान हूं दीवानों का
सख्त-जां ख्वाब हूं कुचले हुए इंसानों का लूट जब हद से सिवा होती है
जुल्म जब हद से गुजर जाता है
मैं अचानक किसी कोने में नजर आता हूं
किसी सीने से उभर आता हूं
आज से पहले भी तुमने मुझे देखा होगा
कभी मशरिक में, कभी मगरिब में
कभी शहरों में, कभी गांवों में
कभी बस्ती में, कभी जंगल में
मेरी तारीख ही तारीख है, जुगराफिया कोई भी नहीं और तारीख भी ऐसी जो पढ़ाई तो जा नहीं सकती
लोग छुप-छुप के पढ़ा करते हैं
कि मैं गालिब कभी मगलूब हुआ
कातिलों को कभी सूली पे चढ़ाया मैंने
और कभी आप ही मसलूब हुआ
फर्क इतना है कि कातिल मेरे मर जाते हैं मैं न मरता हूं न मर सकता हूं

धर्म ऐसा शाश्वत विद्रोह है, जो न मरता है, न मर सकता है। लौट-लौट आता है। तुम तो जल्दी ही--एक बुद्ध विदा होता है कि तुम जल्दी ही फिर अपनी नींद में खोने लगते हो। तुम जल्दी से अपनी चादर ओढ़ लेते हो, अपने तकिए सम्हाल लेते हो, तुम फिर निश्चिंत होकर सपना देखने लगते हो। लेकिन किसी न किसी कोने से बगावत फिर उभर आती है। किसी न किसी कोने से परमात्मा फिर आवाज देता है। परमात्मा तुमसे हारता नहीं। और परमात्मा तुमसे ऊबता भी नहीं। और परमात्मा तुम्हारे प्रति उपेक्षा से भी नहीं भरता। तुम लाख भटको, तुम्हारी हर भटकन उसके लिए एक चुनौती है। वह फिर लौट आता है।
कृष्ण ने कहा न गीता मेंः मैं फिर-फिर आऊंगा--संभवामि युगे-युगे। जब-
जब अंधेरा होगा, और जब-जब लोगों का मन धर्म के प्रति ग्लानि से भर जाएगा, और जब-जब शुभ पर अशुभ की प्रतिष्ठा होगी, और जब-जब सज्जन को असज्जन सताएगा, मैं आऊंगा।
यह कृष्ण का ही वचन नहीं है, कृष्ण धर्म की तरफ से बोल रहे हैं। कोई कृष्ण आ जाएंगे, ऐसा नहीं है। लेकिन किसी कोने से धर्म उभर आएगा, बगावत उठेगी, कोई न कोई सोयों में से जाग जाएगा, कहीं से किरण फूटेगी।
धर्म न तो मरता है, न मारा जा सकता है।
लेकिन जिन्हें भी धर्म को पाना हो, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि धर्म जब भी आता है तो विद्रोह की तरह आता है। विद्रोह के ही रूप में आता है। वही उसकी देह है। और अगर तुम विद्रोह को न पहचान सको तो तुम धर्म से चूकते चले जाओगे। तुम गीताओं में सिर मारो और कुरानों की पूजा करो और बाइबिलों में आंखें गड़ाए-गड़ाए अंधे हो जाओ, धर्म तुम्हें नहीं मिलेगा। धर्म जब आता है तब बगावत की तरह आता है। गीता, कुरान और बाइबिल कभी बगावत थे, मगर वह बात गई। अब तुम लाश ढोते हो। अब तुम्हें फिर कहीं खोजना होगा कोई जो जागा हुआ हो। तुम्हें फिर किसी क्राइस्ट का हाथ पकड़ना होगा।
और कठिनाई यही है कि बाइबिल प्यारी लगती है और क्राइस्ट बहुत कष्टकर मालूम होते हैं। बाइबिल प्यारी लगती है, क्योंकि बाइबिल तुम्हें बदल ही नहीं सकती। तुम बाइबिल का तकिया बना लेते हो और मजे से सो जाते हो। सर्दी ज्यादा हो तो बाइबिल का कंबल बना लेते हो और ओढ़ लेते हो, मजे से सो जाते हो। क्राइस्ट का न तो तुम तकिया बना सकोगे और न कंबल बना सकोगे। अगर नींद न आती हो तो तुम बाइबिल की गोलियां बना लेते हो, शामक-दवाएं, ट्रैंक्वेलाइजर्स, और उनको पीकर सो जाते हो, और गहरी नींद में खो जाते हो। तुम जीसस का ट्रैंक्वेलाइजर न बना सकोगे। तुम जीसस से नींद का कोई उपाय न खोज सकोगे। इसलिए लोग जीवित सदगुरु से भागते हैं। और जब सदगुरु मर जाता है तब उसकी पूजा करते हैं। अजीब रिवाज है! अजीब रिवाज है तुम्हारा! अजीब ढंग है! अजीब ढर्रा है तुम्हारा! क्राइस्ट मौजूद हों तो सूली लगाओ, और जब मर जाएं तो सारी दुनिया ईसाई हो जाती है। मोहम्मद जब हों तो तुम उन्हें एक गांव में शांति से नहीं बैठने देते। मोहम्मद की जिंदगी भर एक गांव से दूसरे गांव में भागने में बीती। और जब मोहम्मद मर जाते हैं, तो तुम लाखों मस्जिदें बनाते हो। करोड़ों लोग मोहम्मद के चरणों में सर झुकाते हैं। करोड़ों लोगों के लिए मोहम्मद हृदय की गहरी से गहरी धुन हो जाते हैं। मगर यह बड़ा मजा है। इस मजे को देखो, पहचानो। और यह मत सोचना कि यह किसी और ने किया है, यह तुमने किया है। और यह तुम अभी भी कर रहे हो। और जब तक तुम यह करते रहोगे, तब तक तुम धर्म से अपरिचित रहोगे। जिसको तुम धर्म समझते हो, वह धर्म नहीं है। वह तो धर्म के ऊपर जम गई राख है। अंगारा तो दब गया बहुत। राख सुविधापूर्ण है, तुम्हें जलाती नहीं; छुओगे तो फफोले भी नहीं उठते। ऐसा ही थोड़े ही है कि तुम राख को विभूति मानने लगे हो, राख ही तुम्हारी विभूति हो गई है, राख के ही तुम टीके लगा रहे हो, राख ही तुम्हारी आत्मा पर भी पड़ गई है। राख से बचो, अंगारा तलाशो। विभूति अगर कहीं है, तो अंगारे में होगी। राख में क्या होगी?
यह सांयोगिक नहीं हो सकता है कि तथाकथित धार्मिक आदमी राख को विभूति कहता है। यह बड़ा प्रतीकात्मक है। वह यह कहता है--राख पर मैं अपनी मुट्ठी बांध लेता हूं, राख को मैं अपने ताबीज में बंद कर लेता हूं; राख मेरी है, जो चाहूं, जैसा चाहूं, वैसा इसके साथ व्यवहार करता हूं।

अंगारे के साथ तुम जो चाहो, जैसा चाहो, वैसा व्यवहार न कर सकोगे। और अंगारे को अपने भीतर लेना अपने जीवन में ज्वाला जगाने की चेष्टा है। जो जलना चाहते हैं, जो मिटना चाहते हैं, धर्म उनके लिए है। धर्म बड़ी बगावत है। और बड़े कष्ट हैं।
इस जगत में कोई भी सुख बिना मूल्य चुकाए नहीं मिलता। और तुम परमात्मा
को बिना मूल्य चुकाए पाना चाहते हो। तुम चाहते हो ऐसे ही मिल जाए, औपचारिकताओं से मिल जाए--कि कभी मंदिर हो आएंगे, कि कभी माला फेर लेंगे, कि कभी गीता पढ़ लेंगे, ऐसे ही जिंदगी के काम-धाम में कहीं थोड़ा-बहुत समय निकाल लेंगे, राम-राम जप लेंगे, जपने का मौका नहीं होगा तो राम-राम छपी चदरिया ओढ़ लेंगे, खुद को सुविधा नहीं होगी तो एक नौकर रख लेंगे। उसी को तुम पंडित-पुजारी कहते हो। उससे कहेंगे, तू हमारे नाम से प्रार्थना कर दिया कर। हमें तो फुर्सत नहीं है, तो एक मध्यस्थ चुन लोगे। वह तुम्हारे लिए यज्ञ कर देगा, हवन कर देगा, रोज आकर मंदिर में घंटी बजा जाएगा। तुम्हारे घर के मंदिर में भी तुम्हें जाने की फुर्सत नहीं है। लेकिन तुम सम्हाल रहे हो दोनों दुनिया। तुम कहते होः एक नौकर तो रख दिया है, वह सम्हाल लेता है; वह पूजा कर देता है, प्रार्थना कर देता है।
इतने सस्ते से तुम अगर धार्मिक होना चाहो तो नहीं हो पाओगे। कुछ दांव
पर भी लगाओ। और सबसे बड़ी बात क्या है जो दांव पर लगानी पड़ती है? सबसे बड़ी बात यही है--अहंकार दांव पर लगाना होता है। इस सबसे तो तुम्हारे अहंकार को सजावट मिलती है।
लेकिन जब तुम किसी सदगुरु के पास जाओगे तो तुम्हारे अहंकार को सजावट मिलनी बंद हो जाएगी। लोग तुम्हें पागल कहेंगे। लोग तुम्हें दीवाना कहेंगे। उन्होंने सदा कहा है। जो राख के पूजने वाले हैं, वह अंगारा जब तुम लेकर चलोगे, तुम्हें पागल न कहेंगे तो क्या कहेंगे? वे कहेंगेः होश-हवास सम्हालो! बहुत जल चुके हैं इसमें पहले, अब तुम मत जलो। हमसे कुछ सीखो। हम भी धार्मिक हैं, लेकिन हम मंदिर जाते हैं और एक मरी हुई प्रतिमा की प्रतिष्ठा रखते हैं, पूजा करते हैं।
यह दुस्साहस है कि तुम वस्तुतः धार्मिक होना चाहो। और जब तुम वस्तुतः धार्मिक होना चाहोगे तो अड़चनें आनी शुरू होंगी, क्योंकि तुम्हारा तालमेल टूटने लगेगा। सोए हुए आदमियों और तुम्हारे बीच फासला बढ़ने लगेगा। वे कुछ कहेंगे, तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ेगा। फिर तुम अपने भीतर से जीना शुरू करोगे। और जब भी तुम भीतर से जीओगे, तभी तुम पाओगे तुमसे कोई भी राजी नहीं है। क्योंकि यहां सभी चाहते हैं कि तुम उनके हिसाब से जीओ। तुम्हें स्वतंत्रता देने को यहां कोई भी उत्सुक नहीं है--न तुम्हारे पिता, न तुम्हारी मां, न तुम्हारे गुरु, न तुम्हारा पुरोहित, न तुम्हारे बेटे, न तुम्हारी बेटियां, न तुम्हारी पत्नी, न तुम्हारे पति--यहां तुम्हें कोई भी स्वतंत्रता देने को राजी नहीं है, यहां सब चाहते हैं कि तुम उनकी मान कर चलो। उनकी मान कर चलो तो सब ठीक, उनकी मान कर न चलो तो तुम गलत। और जिस दिन तुम भीतर की आवाज सुनने लगोगे उस दिन तुम किसी की भी न मान सकोगे, उस दिन परमात्मा की माननी पड़ेगी। इसलिए वे कहते हैंः ध्यान इत्यादि में मत पड़ना, भक्ति इत्यादि में मत उलझना, क्योंकि जो पहले उलझे हैं, जैसे मीरा उलझी, तो फिर देखा क्या हुआ? लोकलाज खोई! वैसे ही लोकलाज तुम भी खो दोगे।
किसी महिला ने पूछा है कि आपकी बातें सुनती हूं तो नाचने का मन होता है। लेकिन फिर डर लगता है कि लोग क्या कहेंगे?
यह तो प्रत्येक के सामने सवाल उठेगा--लोग क्या कहेंगे? मीरा के सामने
भी उठा था, तुम्हारे सामने भी उठा है। मीरा ने वही सुना जो भीतर हुआ; छोड़ दी लोकलाज। अब यह तुम पर निर्भर है। अगर तुमने यह सुना कि लोग क्या कहेंगे और उनके अनुसार चले, तो तुम सांप्रदायिक रहोगे--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, मगर धार्मिक कभी न हो पाओगे। और मीरा ने जो जाना, उससे तुम वंचित रह जाओगे। और वही जानने योग्य है। वही पाने योग्य है।
अंधों की मानोगे तो अंधे रह जाओगे। अगर मानना हो तो किसी आंख वाले की मानना। और आंख वाले को किताब में मत खोजना, क्योंकि किताब के पास कहां आंख है? आंख वाले को ही खोजना। और ऐसा कभी नहीं होता कि इस दुनिया में आंख वाले

न होते हों। परमात्मा इस दुनिया को कभी भी खाली नहीं करता। किसी न किसी कोने में खड़ा ही रहता है। जो खोजते हैं, उन्हें मिल जाता है। मगर वे ही पा सकते हैं, जो विद्रोह करने की क्षमता रखते हैं।

तीसरा प्रश्नः क्या संन्यास भक्ति की शुरुआत है? कृपा करके कहिए।

संन्यास सिर्फ शुरुआत है। न भक्ति की, न ज्ञान की, न कर्म की। संन्यास सिर्फ शुरुआत है। फिर तीन मार्ग हो जाते हैं। कोई ज्ञान पर जाएगा, कोई भक्ति पर, कोई कर्म पर। संन्यास तो सिर्फ जाने की तैयारी है। संन्यास तो इस बात की घोषणा है कि मैं जाने को तैयार हूं। इसके बाद मार्ग अलग हो जाएंगे।
यहां मेरे पास संन्यासी हैं, हजारों संन्यासी हैं। उनमें भी तीन तरह
के लोग हैं। कुछ हैं जो कर्म से ही जा सकेंगे, कर्मोन्मुख हैं। उन्हें मैं कर्म में लगाता हूं। उनके लिए कहता हूं कि कर्म ही प्रार्थना है, कर्म ही पूजा है; उन्हें कहता हूं कि कृत्य में डूब जाओ। इस कृत्य को परमात्मा का कृत्य मान लो, और इसमें डूब जाओ। और तब छोटा सा कृत्य भी पूजा हो जाता है। जैसे किसी को मैंने कहा उदाहरण के लिए कि आश्रम में सफाई करो। अब तुम यह चकित होओगे कि सफाई किसी के लिए ध्यान बन जाती है।
आश्रम में एक सफाई करने वाले संन्यासी हैं, पीएचड़ी. हैं, यूनिवर्सिटी
के प्रोफेसर थे, अब वे मुझसे आकर कहते हैं--इतना आनंद मुझे कभी हुआ ही नहीं। यह क्या कर दिया!
अब इस पर भरोसा न आएगा किसी को भी कि क्या कर दिया। कुछ भी नहीं किया है। आश्रम में बुहारी लगा रहे हैं और उनके जीवन में क्रांति घटित हो गई। बुहारी लगाने से कहीं क्रांति घटित होती है! तब तो कितने बुहारी लगाने वाले लोग हैं दुनिया में, ये सब सिद्ध हो जाते। नहीं, जब तुम किसी कृत्य को अपना समर्पण बना लेते हो, तब क्रांति घट जाती है--कृत्य कोई भी हो, बुहारी लगाना ही क्यों न हो।
कुछ लोग हैं जो कृत्य के माध्यम से परमात्मा तक पहुंचेंगे। उनके पास बड़ी ऊर्जा है। उनसे तुम कहो कि आंख बंद करके बैठ जाओ और ध्यान करो, तो उन्हें बड़ी अड़चन हो जाएगी। छोटे बच्चे को कहो कि आंख बंद करके ध्यान करो! वह बैठ भी जाएगा आंख बंद करके तो हिलेगा, डुलेगा, हाथ-पैर चलाएगा, करवटें बदलेगा, इधर खुजाएगा, उधर खुजाएगा, बीच-बीच में आंख खोल कर देखेगा। छोटे- छोटे संन्यासी मेरे पास जब संन्यास लेने आते हैं--छोटे बच्चे--उनसे मैं कहता हूं, आंख बंद करो, तो वे इतने भींच कर आंख बंद करते हैं। उनके भींचने का कारण यह है कि अगर भींच कर न करें तो खुल जाएगी। सारी ताकत लगा देते हैं, फिर भी खुल-खुल जाती है। फिर भी बीच में जरा देख लेते हैं कि फोटो उनकी निकाली जा रही है कि नहीं, कि चारों तरफ लोग कैसा अनुभव कर रहे हैं, कोई हंस तो नहीं रहा है। छोटे बच्चे के पास इतनी ऊर्जा है, अभी ऊर्जा का प्रवाह शुरू हुआ है, अभी सब ताजा-ताजा है, अभी गंगा को बहुत बहना है, अभी विराट ऊर्जा लेकर आया है परमात्मा के घर से, अभी उसे बुद्ध की तरह आंख बंद करके बिठाया नहीं जा सकता।
कुछ लोग हैं जिनके पास सामान्य से ज्यादा ऊर्जा है, उनके लिए कृत्य ही मार्ग बनेगा। फर्क इतना ही हो जाएगा कि अब कृत्य उनका नहीं होगा, परमात्मा का होगा, वे उपकरण होंगे। यही भेद होगा संन्यासी और संसारी में। काम तो दोनों करेंगे, संन्यासी भी करेगा, संसारी भी करेगा। संसारी करता है इस भाव से कि मैं कर्ता; और संन्यासी करता है इस भाव से कि प्रभु कर्ता है, मैं सिर्फ उपकरण, उसके हाथ का हथियार। बस उसी समर्पण-भाव में क्रांति घटती है। फिर किसी को मैं भक्ति में लगाऊंगा। जैसे स्त्रियां हैं, या बहुत से भावुक पुरुष हैं, जिनकी सारी ऊर्जा हृदय के पास संगृहीत है, जिनके हृदय के पास सारी धड़कन है। न तो देह की शक्ति में उनका प्रवाह है और न मस्तिष्क के विचारों में उनका प्रवाह है, उनका सारा जीवन केंद्रित है भाव के पास, प्रीति उनका द्वार है। उनको मैं कहूंगाः नाचो, प्रभु के गीत गाओ, स्तुति

करो, प्रार्थना करो, आह्लादित होओ। उनको संगीत में डुबाऊंगा, उन्हें नृत्य में लगाऊंगा, उन्हें प्रार्थना-पूजा की विधियों में ले जाऊंगा। फिर कोई है जिसकी सारी ऊर्जा मस्तिष्क में इकट्ठी है। ये तीन जगह हैं जहां ऊर्जा इकट्ठी होती है--शरीर, हृदय और मन। शरीर अर्थात कर्म, हृदय अर्थात भक्ति, मन अर्थात ज्ञान। जिनकी ऊर्जा वहां संगृहीत है, उन्हें ध्यान की कुछ विधि दूंगा; उन्हें चिंतन-मनन-निदिध्यासन की कोई विधि दूंगा।
संन्यास सिर्फ शुरुआत है--भक्ति की नहीं--संन्यास शुरुआत है परमात्मा
की तरफ जाने की। तुमने संकल्प किया कि अब जाता हूं, यात्रा पर निकलूंगा, तुमने पाथेय तैयार कर लिया, तुमने अपना बोरिया-बिस्तर बांध लिया, तुम आकर गांव के द्वार पर खड़े हो गए। संन्यास महाप्रस्थान है। अब तीन रास्ते निकलेंगे। जिस दिन तुमने तय कर लिया कि जाना है उस यात्रा पर, प्रभु को खोजना है, फिर तीन रास्ते निकलेंगे। फिर संन्यासी तीन हिस्सों में विभाजित हो जाएंगे। इन तीनों का मिलन होगा अंतिम दिन फिर, लेकिन बीच में कहीं मिलन न होगा। इनके रास्ते बीच में कभी नहीं कटेंगे।
जो भक्ति के मार्ग से गया है, उसे पता ही नहीं चलेगा कि ज्ञानी का रास्ता कहां है और ज्ञानी कहां खो गया है। जो कर्म के मार्ग से गया है, उसे भक्ति की भाषा समझ में नहीं आएगी। जो ज्ञान के मार्ग से गया है, उसे भी कर्म और भक्ति दुरूह मालूम पड़ेंगे, असंभव मालूम पड़ेंगे। भीतर उसके यही ख्याल होगा कि ये लोग भटक गए, मैं पहुंच रहा हूं। तीनों जानेंगे कि मैं पहुंच रहा हूं, बाकी दो भटक गए। क्योंकि बाकी दो दिखते ही नहीं रास्ते पर कहीं। लेकिन अंतिम घड़ी में फिर मिलन है। प्रस्थान के पूर्व तीनों एक जगह खड़े होते हैं और जब यात्रा पूरी हो गई तब तीनों फिर एक शिखर पर पहुंच जाते हैं।
संन्यास सिर्फ शुद्ध प्रारंभ है।

चौथा प्रश्नः मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं, और आप कहते हैं--प्रेम का ही ऊर्ध्वगमन भक्ति है। प्रभु, अब उस कीचड़ में नहीं पड़ना चाहता हूं।

उस कीचड़ में कमल भी है। तुमने कीचड़ ही देखी तो तुमने पूरा नहीं देखा।
तुमने अधूरा देखा। तुम प्रेम को सीढ़ी न बना पाए, प्रेम तुम्हारे मार्ग में पत्थर बन गया। तुम उस पत्थर पर चढ़ न पाए, नहीं तो तुम्हें और ऊंचाई मिलती।
इसमें प्रेम का कसूर नहीं है, तुम्हारा ही कसूर है।
तुम कहते होः "मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं!"
प्रेम ने कभी किसी को पीड़ित नहीं किया। हां, प्रेम के कारण बहुत लोग पीड़ित मालूम पड़ते हैं, लेकिन कारण कुछ और ही होता है। समझो।
कुछ लोग प्रेम के कारण पीड़ित होते हैं, क्योंकि वे चाहते हैं कि फलां व्यक्ति मुझे प्रेम करे। अब यह फलां व्यक्ति की स्वतंत्रता है कि तुम्हें प्रेम करे या न करे। यह तुम्हारा आग्रह नहीं हो सकता। तुमने किसी के सामने जाकर और किसी के घर के सामने जाकर और बोरिया-बिस्तर लगा दिया और कहा कि हम अनशन करेंगे, हमसे प्रेम करो! हम सत्याग्रह करते हैं। नहीं तो हम मर जाएंगे!
ऐसा हुआ एक गांव में। एक आदमी ने ऐसा लगा दिया एक सुंदर युवती के द्वार पर। उसका बाप तो बहुत घबड़ाया। सत्याग्रहियों से कौन नहीं घबड़ाता! और उसके दो-चार साथी-संगी भी थे, उन्होंने बाजार में जाकर खूब शोरगुल मचा दिया कि सत्याग्रह हो गया है। गांव भर उत्सुक हो गया, लोगों की भीड़ आने लगी, लोग उससे पूछने लगे कि क्या मामला है? वह बाप तो बहुत घबड़ाया। उसने कहा, अब करना क्या है! शाम तक तो बहुत गांव में शोरगुल मच गया और सारा गांव उसके पक्ष में, क्योंकि उसने सत्याग्रह किया--गांधीवादी। यह कोई पूछे ही नहीं कि सत्याग्रह किया किसलिए।
अब मोरारजी ने अनशन किया था, किसी ने पूछा किसलिए किया था? वह गांधीवादी! कोई सत्ता पाने के लिए अनशन कर रहा है, यह तो बेचारा भला ही

आदमी है, प्रेम पाने के लिए अनशन कर रहा है, कोई बुरा काम तो कर नहीं रहा है! लेकिन किसी ने यह सोचा ही नहीं कि वह युवती भी इसे प्रेम करती है या नहीं? अन्यथा यह जबर्दस्ती हो गई। सब तरह के सत्याग्रह जबर्दस्तियां हैं। उनके भीतर हिंसा है। ऊपर से अहिंसा का ढोंग है।
सांझ तक तो उसका बाप बहुत घबड़ा गया, उसने कहा, ऐसा अगर चला तो... सारे गांव का दबाव पड़ने लगा, लोग फोन करने लगे, चिट्ठियां आने लगीं, अखबार में खबरें छप गईं, पोस्टर लग गए कि बहुत अन्याय हो रहा है, सत्याग्रही के साथ बहुत अन्याय हो रहा है, आमरण अनशन है, वह मर जाएगा। प्रेम के लिए ऐसा दीवाना कब देखा गया? मजनू ने भी ऐसा नहीं किया था। और बेचारा बिल्कुल अहिंसक है! वहां बैठा है अपना खादी के कपड़े पहने हुए, कुछ बोलता नहीं, कुछ चालता नहीं, चुप बैठा है। किसी ने उस लड़की के बाप को सलाह दी कि अगर इससे निपटना हो तो एक ही रास्ता है, उससे ही निपट सकते हो। क्या रास्ता है? उसने कहा, मैं हल कर देता हूं। वह भागा गया और एक बूढ़ी वेश्या को लिवा लाया। एक बिल्कुल मरी-मराई वेश्या। एक तो वेश्या और मरी-मराई, उसको देख कर ही किसी का जी मिचला जाए, भयंकर बदबू उससे आ रही, उसको ले आया। उस युवक ने जब देखा, वह जो सत्याग्रह कर रहा था, उसने पूछा, तू यहां किसलिए आई? उसने कहा, मुझे तुमसे प्रेम है। मैं भी यहीं सत्याग्रह करती हूं जब तक तुम मुझसे विवाह न करोगे, मर जाऊं भला! बस फिर घड़ी, आधा घड़ी में युवक ने अपना बिस्तर समेटा और भागा। फिर सत्याग्रह समाप्त हो गया।
तो प्रेम तुम्हें कष्ट दे सकता है, अगर तुम जबर्दस्ती किसी पर थोपना चाहो। लेकिन यह प्रेम है? यह प्रेम ने कष्ट दिया? यह अहंकार ही है। यह हिंसा ने कष्ट दिया। तुम्हें हक नहीं है किसी पर अपना प्रेम थोपने का, न हक है किसी से जबर्दस्ती प्रेम मांगने का। प्रेम में जबर्दस्ती तो हो ही नहीं सकती। तो कष्ट पाओगे। या जिसे तुमने चाहा वह तुम्हें मिल गया। लेकिन मिलने के बाद तुमने उस पर बहुत अपने को आरोपित किया, तुमने उसे अपनी संपत्ति बनाना चाहा, तुमने उसके सब तरफ पहरे बिठा दिए। तुमने कहा, बस मुझसे प्रेम, और किसी से भी नहीं। मेरे साथ हंसना और किसी और के साथ नहीं। और तुम बड़े भयभीत हो गए, और तुम सुरक्षा करने लगे, और तुम सदा चिंता करने लगे, और तुम जासूसी करने लगे--और अगर तुमने अपनी पत्नी को या अपने पति को किसी के साथ हंसते और मुस्कुराते देख लिया तो तुम्हारे भीतर आग लग गई; इससे तुमने कष्ट पाया, इससे तुम पीड़ित हुए। लेकिन यह पीड़ित होने का कारण प्रेम नहीं है। दूसरे को संपत्ति मानने में ही पीड़ा है।
कोई इस जगत में किसी की संपत्ति नहीं है, न कोई इस जगत में किसी की संपत्ति होने को पैदा हुआ है, न किसी को होना चाहिए, यह अपमान है। कोई किसी का गुलाम नहीं। प्रेम दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच का बहाव है। जब भी उनमें से कोई गुलाम हो जाएगा, एक या दोनों गुलाम हो जाएंगे, तभी बहाव रुक जाता है। और जब बहाव रुक जाता है तब बड़ी पीड़ा है, तब बड़े कांटे चुभ जाते हैं, तब जीवन में घाव हो जाते हैं। प्रेम से लोग दुख पा रहे हैं, वह प्रेम के कारण नहीं, प्रेम के नाम पर कुछ और चल रहा है, अहंकार चल रहा है। यह अहंकार ही है।
तुम चकित होओगे यह जान कर कि व्यक्तियों के साथ तो ईर्ष्या होती ही होती है, ऐसी स्थितियों में भी ईर्ष्या हो जाती है जहां कि ईर्ष्या का कोई कारण नहीं। पति घर आया है, पत्नी दिन भर राह देखती रही है और पति आकर अखबार पढ़ने बैठ गया। पत्नी अखबार छीन ले सकती है, फाड़ कर फेंक दे सकती है--अखबार से ईर्ष्या हो जा सकती है कि मेरे और तुम्हारे बीच आने वाला अखबार कौन होता है?
यह आकस्मिक नहीं है कि दुनिया के बहुत सृजनशील व्यक्तियों को अविवाहित रहना पड़ा। उसके पीछे कुल कारण इतना था कि अगर तुम्हें संगीत से प्रेम है, तो बस इतना ही काफी है, अब स्त्री को तुम प्रेम-व्रेम मत करो। स्त्री के प्रेम में पड़े तो संगीत और स्त्री में संघर्ष हो जाएगा। सुकरात की स्त्री सुकरात को पीट देती थी। एक बार उसने चाय की पूरी केतली सुकरात के ऊपर उड़ेल दी, उसका आधा चेहरा सदा के लिए जल गया और काला हो गया। क्या अड़चन थी? अड़चन यही थी कि सुकरात सदा दर्शन में लीन था। उसके शिष्य आते, वह

दर्शन की बातों में ऐसा तल्लीन हो जाता कि बस पत्नी को पीड़ा होने लगती। उसे पीड़ा यह थी कि यह दर्शनशास्त्र को मुझसे ज्यादा चाहता है। अब यह किसी व्यक्ति के साथ भी ईर्ष्या का कारण नहीं, लेकिन दर्शनशास्त्र को मुझसे ज्यादा चाहता है। यह बात स्त्री बर्दाश्त नहीं कर सकती। तुम्हारी पत्नी को अगर नृत्य से प्रेम हो या संगीत से, तो तुम्हें लगेगा तुम्हारी अवहेलना हो रही है।
दुनिया में बड़े चित्रकारों को, बड़े संगीतज्ञों को, बड़े कवियों को, बड़े दार्शनिकों को अविवाहित रहने को मजबूर होना पड़ा। विवाह महंगा सौदा मालूम हुआ। जब किसी ने प्रसिद्ध डेनिस विचारक सोरेन कीर्कगार्ड को पूछा कि आप अविवाहित क्यों रहे? तो उसने कहा कि मैं दो पत्नियों के बीच झंझट में नहीं पड़ना चाहता था। दो पत्नियों के बीच? पूछने वाले ने पूछा, हमें तो पता है आपकी एक भी पत्नी नहीं। सोरेन कीर्कगार्ड ने कहा, यह जो फिलासफी है, यह जो दर्शन है, इससे मेरा लगाव है।
सोरेन कीर्कगार्ड एक बार प्रेम में पड़ा था किसी स्त्री के और बिल्कुल विवाह के करीब पहुंच गई थी बात, और फिर हट गया। क्योंकि जैसे-जैसे स्त्री से निकटता बढ़ी, वैसे-वैसे स्त्री ने बाधा डालनी शुरू कर दी। अभी विवाह भी नहीं हुआ था, और बाधा आनी शुरू हो गई। तो सोरेन कीर्कगार्ड ने तय कर लिया कि यह बेहतर है, मैं दो में से एक ही चुन लूं। या तो मुझे गैर-दार्शनिक हो जाना पड़ेगा--जो कि महंगा सौदा है, जो कि मेरे प्राणों का प्राण है, जो कि मेरे सारे व्यक्तित्व को धूल से भर देगा, जो कि मेरी आत्मा की तलाश की हत्या हो जाएगी, जो कि बीज में ही मरना हो जाएगा, वृक्ष मैं हो ही न पाऊंगा, फूल तक पहुंच न पाऊंगा।
तुम ध्यान रखना, कहते होः "मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं!"
तो जरा तलाश करना। प्रेम के कारण? प्रेम के कारण कोई कभी पीड़ित नहीं होता। प्रेम के साथ कुछ और जुड़ा होगा, कुछ और लगा होगा; प्रेम का नाम होगा, भीतर कुछ और होगा--अहंकार होगा, ईर्ष्या होगी, परिग्रह का भाव होगा, मालकियत होगी। तो फिर तुम कष्ट पाओगे। और उस कष्ट के पाने के कारण तुम प्रेम से घबड़ा जाओगे और तुम कहने लगोगे--प्रेम गलत है। तब तुमने दूसरी भूल की। क्योंकि प्रेम ही प्रीति बनता और प्रीति ही भक्ति बनती, अब तुम उससे भी वंचित हुए। तुम प्रेम से भी गए और परमात्मा से भी गए।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं--ठीक से विश्लेषण करो, ठीक से निदान करो, और प्रेम के मार्ग पर जो-जो अड़चनें दूसरी हों उन्हें हटा दो। प्रेम इतना बहुमूल्य है कि उसके लिए सब कुछ कुर्बान किया जा सकता है--अहंकार, मालकियत, सब कुर्बान किया जा सकता है।
मगर दुनिया में अजीब लोग हैं। बातें प्रेम की करते हैं, और जब भी कुर्बानी का सवाल आता है तो प्रेम की कुर्बानी देते हैं। अगर अहंकार और प्रेम के बीच चुनना है तो तुम अहंकार चुनते हो, प्रेम नहीं चुनते। और फिर दोष भी प्रेम को देते हो!
मेरे पास रोज लोग आते हैं, कोई छोटी सी बात पति-पत्नी में हो गई और उनमें झगड़ा खड़ा हो गया। इतनी छोटी बात कि जब वे मुझे बताने आते हैं तो संकोच करते हैं। पत्नी पति से कहती है, आप ही कह दें! पति कहता है, नहीं, तुम ही कह दो। मैं पूछता हूंः बात क्या है, कहते क्यों नहीं? वे कहते हैं, बात इतनी छोटी है कि यहां इतने लोगों के सामने कहने में संकोच होता है। जब बात इतनी छोटी है, और तलाक तक नौबत आ पहुंची है, तो मामला क्या है? तुमने प्रेम किया ही नहीं। या किया भी तो बड़ा विषाक्त किया। और आज एक छोटी सी बात पर... मैंने सुना है कि हालीवुड में एक विवाह हुआ। और जब उस अभिनेत्री ने अपने पति के साथ रजिस्ट्रार के दफ्तर में दस्तखत किए, दस्तखत के करते ही उसने कहा कि नहीं, रजिस्ट्रार से कहा कि रद्द करिए, मुझे यह विवाह नहीं करना।
रजिस्ट्रार भी चौंका, उसका पति तो बहुत चौंका--होने वाला पति, जो कि हो
ही चुका था पति, दस्तखत हो चुके थे स्टाम्प पर। रजिस्ट्रार ने कहा, लेकिन अभी तो कोई बात ही नहीं हुई, झगड़ा शुरू ही नहीं हुआ। मुझे पता है कि साल, छह महीने में झगड़ा शुरू होगा, मगर अभी तो कोई बात भी नहीं उठी।

उस अभिनेत्री ने कहा, झगड़ा हो गया। क्योंकि मैंने छोटे दस्तखत किए, और इसने इतने बड़े दस्तखत किए मेरे सामने! इससे मतलब साफ है, यह झंझट में मुझे पड़ना नहीं है, यह अभी से दिखाने लगा है अपनी अकड़! मैंने छोटे-छोटे अक्षर बनाए और इसने बड़े-बड़े अक्षरों में दस्तखत कर दिए! यह बात साफ हो गई, इसमें आगे जाने की जरूरत नहीं है।
ऐसी छोटी-छोटी बातें प्रेम के मार्ग पर अवरोध हैं। फिर तुम उनसे पीड़ा पाओगे। मगर उस पीड़ा को तुम प्रेम के कंधे पर मत थोपना। प्रेम ने कभी पीड़ा नहीं दी। प्रेम ने सदा सुख दिया है। प्रेम ने सदा शांति दी है। प्रेम ही तो एकमात्र वस्तु है इस जगत में जिसमें परमात्मा की थोड़ी झलक है। प्रेम ही तो एकमात्र ऊर्जा है यहां जो आदमी की बनाई हुई नहीं है। जो अकृत्रिम है, स्वाभाविक है। जो तुम्हारे प्राणों के प्राण में बसी है, जो तुम्हारी आत्मा का भोजन है। जैसे शरीर बिना भोजन के न जी सकेगा, वैसे ही तुम्हारी आत्मा भी बिना प्रेम के नहीं जी सकती। इसीलिए तो प्रेम की इतनी तलाश है। और जिसको प्रेम मिल जाता है, उसे सब मिल जाता है। फिर इसी प्रेम के और आगे सोपान हैं--प्रेम तो सीढ़ी का नाम है--फिर इसके आगे और सीढ़ियां हैं। मगर वे सब प्रेम से ही उत्पन्न होती हैं।
तुमसे मैंने कहा कि प्रेम के ये चार रूप हैंः स्नेह; अपने से छोटे के प्रति हो, बच्चे के प्रति। प्रेम; अपने से समान के प्रति हो, मित्र के प्रति; पति, पत्नी के प्रति। श्रद्धा; अपने से बड़े के प्रति हो, मां के प्रति, पिता के प्रति, गुरु के प्रति। और भक्ति; परमात्मा के प्रति, समग्र के प्रति।
ये सब प्रेम की ही धारणाएं हैं। ये प्रेम के ही अलग-अलग ढंग हैं। यह प्रेम का ही पूरा नृत्य है। ये प्रेम की ही भाव-भंगिमाएं हैं। मगर प्रेम को शुद्ध करते चलो तो पीड़ा नहीं मिलेगी, परम आनंद मिलेगा। और इतने जल्दी थक मत जाओ, इतने जल्दी हार मत जाओ, इतने जल्दी बूढ़े मत हो जाओ। इतने जल्दी हताश मत हो जाओ।
कैफी आजमी की ये कुछ पंक्तियां हैं।
बुढ़ापा कहता है--
यह आंधी, यह तूफान, ये तेज धारे
फड़कते तमाशे, गरजते नजारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
न हमराह मिशअल, न गदू पे तारे मुसाफिर, खड़ा रह अभी जी को मारे जवानी कहती है--
उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंस कर जो दो हाथ मारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
यों ही सर पटकते रहेंगे ये धारे
कहां तक चलेगा किनारे-किनारे

जिस दिन तुम हारे, उस दिन बूढ़े हुए। जिस दिन तुमने कहा कि तूफान बड़ा है, अभी रुक जाओ, तुम सदा के लिए रुक गए। तूफान तो सदा है। तूफान तो इस जगत के होने का ढंग है। तूफान तो संसार है। अगर तुमने कहा--
यह आंधी, यह तूफान, ये तेज धारे
फड़कते तमाशे, गरजते नजारे
अंधेरी फजा...
यह अंधेरी रात!
... सांस लेता समंदर
ये उठती हुई गहरी सांसें समंदर की! न हमराह मिशअल...
हाथ में एक मशाल भी नहीं!
... न गदू पे तारे
और आकाश में एक तारा भी नहीं!

मुसाफिर, खड़ा रह अभी जी को मारे
तो तुम सदा खड़े रह जाओगे। क्योंकि यह तूफान ऐसा ही चलता रहेगा। यह शाश्वत है। ये तारे कभी उगेंगे नहीं। तारे उनको मिलते हैं जो तारों को उघाड़ते हैं। तारे उनको मिलते हैं जो तारों को पैदा करते हैं। और मशाल कहां से आएगी? जो अपने हृदय की मशाल बनाते हैं, उन्हीं के हाथ में मशाल होती है। मशाल कहां से आएगी? जो अपने को जलाते हैं, उन्हीं के पथ पर रोशनी होती है। और तो कोई रोशनी का उपाय नहीं है। जो अपने प्रेम को प्रज्वलित करते हैं, उन्हीं का मार्ग रोशन हो जाता है।
न हमराह मिशअल, न गदू पे तारे
मुसाफिर, खड़ा रह अभी जी को मारे
अभी जी को मार कर खड़े हो गए तो सदा के लिए खड़े हो जाओगे। ऐसे ही तो बहुत लोग खड़े हो गए हैं। सदियों-सदियों से खड़े हैं। न मालूम कितने जन्मों से खड़े हैं। उतरते ही नहीं हैं तूफान में। और जितनी देर खड़े रहोगे, उतना ही भय पुराना होता जाता है, उतनी ही भय की जड़ें फैलती चली जाती हैं।
नहीं, इसको चुनौती समझो। प्रेम चुनौती है। प्रेम के संघर्ष में जाना
ही होगा।
उसी का है साहिल, उसी के कगारे
जो चुनौती स्वीकार करता है।
उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंस कर जो दो हाथ मारे
तूफान में उतर कर जो दो हाथ मारता है, फिर तूफान सहयोगी हो जाता है। तूफान सदा ही दुश्मन नहीं है। तूफान दुश्मन उनका है जो किनारे पर खड़े हैं। तूफान उनका संगी और साथी है, जो उसमें दो हाथ मार कर आगे बढ़ते हैं। तूफान उन्हें उठा लेता है, तूफान उन्हें दूसरे किनारे तक पहुंचा देता है, तूफान उनके लिए नाव बन जाता है।
उसी का है साहिल, उसी के कगारे
तलातुम में फंस कर जो दो हाथ मारे
अंधेरी फजा, सांस लेता समंदर
यों ही सर पटकते रहेंगे ये धारे
कहां तक चलेगा किनारे-किनारे
प्रेम में अड़चनें हैं। प्रेम में कठिनाइयां हैं। प्रेम का फूल बहुत
से कांटों के बीच खिलता है, सच, इसे मैं स्वीकार करता हूं, लेकिन प्रेम कांटा नहीं है। प्रेम की झाड़ी में बहुत कांटे हैं, प्रेम तो उस झाड़ी का फूल है। इस डर से कि कहीं कोई कांटा हाथ में न चुभ जाए--और निश्चित कांटा हाथ में चुभ सकता है, कांटे वहां हैं; जो फूल को तोड़ने जाएगा, उसकी अंगुलियों में कभी खून आ सकता है--लेकिन वह खून दांव पर लगाने जैसा है। फूल की तलाश में अगर थोड़ा खून गिरे, तो बुरा कुछ भी नहीं। खून का करोगे भी क्या और? आज नहीं कल गिर ही जाएगा, आज नहीं कल मिट्टी में सब मिल ही जाएगा। इसके पहले कि मिट्टी तुम्हें अपने में लीन कर ले, तूफान में दो हाथ मार लो। इसके पहले कि कब्र में समा जाओ, जिंदगी, जवानी, जोश, इसका थोड़ा उपयोग करो, थोड़े पंख फैला लो! और कांटे हैं जरूर। यही तो मजा है गुलाब के फूल को पाने का। कांटे न होते तो पाने में कुछ अर्थ भी न होता। किनारा है दूर और तूफान है बड़ा, यही तो चुनौती है।
और मैं उसी को बूढ़ा कहता हूं जो जीवन की चुनौतियां छोड़ देता है। वही जवान है जो जीवन की सारी चुनौतियों को स्वीकार करता है। चुनौती के स्वीकार की मात्रा ही जवानी की मात्रा है। तब कोई आदमी मरते दम तक जवान रह सकता है। और कोई आदमी पहले से ही ब.ूढा हो सकता है।
यह देश बुरी तरह बूढ़ा हो गया है। इस देश की फजा ब.ूढी हो गई है। इस देश
की हवा बूढ़ी हो गई है। इस देश में बच्चे बूढ़े ही पैदा होते हैं। पैदा होते से ही उनके जीवन में, क्या-क्या गलत है, क्या-क्या बुरा है, क्या-क्या कठिन है, उसका ही सारा शिक्षण चलता है। उन्हें जीवन को स्वयं देखने का मौका ही नहीं मिलता। वे अपनी परख पैदा नहीं कर पाते, अपना अनुभव नहीं ले पाते। वे किनारे पर ही अटक जाते हैं। वे कभी जवान नहीं हो पाते।

मैं तुमसे चाहता हूं कि तुम उतरो तूफान में। तूफान से तैरे तो ही दूसरा किनारा पा सकोगे। इस पार संसार है, उस पार परमात्मा है--और प्रेम का तूफान है दोनों के बीच में। लेकिन प्रेम को शुद्ध करते चलना है, रोज-रोज शुद्ध करते चलना है। प्रेम से गंदगी हटाते चलना है। प्रेम से कीचड़ छांटते चलना है और प्रेम के कमल को सम्हालते चलना है। एक दिन जब प्रेम परिपूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है, जब अपने पूरे निखार को उपलब्ध होता है, तो वही भक्ति है।

तू खुर्शीद है, बादलों में न छुप
तू महताब है, जगमगाना न छोड़

तू शोखी है, शोखी रियायत न कर
तू बिजली है, बिजली जलाना न छोड़

अभी इश्क ने हार मानी नहीं
अभी इश्क को आजमाना न छोड़

प्रेम हारता ही नहीं। जब तक परमात्मा न मिल जाए, प्रेम हार ही नहीं सकता। प्रेम बीज है परमात्मा का।
अभी इश्क ने हार मानी नहीं
अभी इश्क को आजमाना न छोड़
तुम हार मान लिए हो, यह तुम्हारे अहंकार की हार है, यह प्रेम की हार नहीं है। इसे तुम प्रेम की हार मत समझ लेना। प्रेम हारता ही नहीं। प्रेम हार जानता ही नहीं। प्रेम तो जीत ही जानता है। और जीतते-जीतते उसी दिन पूर्णता को उपलब्ध होता है जिस दिन परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। तभी प्रेम विश्राम में जाता है। उसके पहले तक प्रेम विश्राम नहीं करता। लेकिन अहंकार की हार को अक्सर हम प्रेम की हार मान लेते हैं। तुम्हारा अहंकार जरूर कष्ट में पड़ गया होगा। तुमने कुछ गलत दिशाओं से प्रेम तलाशा होगा। तुमने गलत हाथों से प्रेम पकड़ना चाहा होगा। तुमने प्रेम को पिंजड़े में बंद करना चाहा होगा। तुमने प्रेम के साथ कुछ दुर्व्यवहार किया होगा। इसलिए तुम प्रेम को पाने में असमर्थ हुए हो। अपना दुर्व्यवहार छोड़ो, अपनी गलतियां स्वीकारो, अपनी गलतियां पहचानो, अपनी गलतियां देखो। और तब तुम चकित होओगे--प्रेम अभी कहां हारा! सच तो यह है, तुम्हारा प्रश्न ही यह कह रहा है कि प्रेम अभी जिंदा है।
तुम कहते होः "मैं तो प्रेम से बहुत पीड़ित हो चुका हूं, और आप कहते हैं
कि प्रेम का ही ऊर्ध्वगमन भक्ति है। प्रभु, अब उस कीचड़ में नहीं पड़ना चाहता हूं।"
यह तुम्हारा अहंकार बोल रहा है, प्रेम को कीचड़ कह रहा है। लेकिन तुम्हारे भीतर यह प्रश्न उठा, यह इस बात का सबूत है कि अभी भी प्रेम में प्राण है, और अभी भी प्रेम में अंकुर है, और अभी भी प्रेम फिर से वृक्ष बन सकता है। किसने तुमसे कहा कि प्रेम कीचड़ है? कीचड़ भी है और कमल भी। अगर तुमने कीचड़ ही जाना तो तुमने पूरा प्रेम नहीं जाना। इसलिए तो कमल को पंकज कहते हैं। पंक यानी कीचड़; कीचड़ से जो जन्मता है उसका नाम पंकज। कितना अदभुत रूपांतरण होता है! कहां कीचड़, गंदी कीचड़, एक तलैया-तालाब की, और कहां फिर यह प्यारा कमल!
इस देश ने तो कमल के ऊपर किसी फूल को नहीं रखा। इसलिए विष्णु की नाभि में कमल को उगाया है। इसलिए बुद्ध को कमल पर बिठाया है। कमल इस देश के प्राणों में बसा है। कमल की कुछ खूबी है, कमल में कुछ जादू है, जो किसी फूल में नहीं है। वह जादू क्या है? वह जादू यह है कि कमल बड़ी अशुद्ध कीचड़ से उठता है, और इतना शुद्ध, इतना निर्विकार! चमत्कार है कमल! कमल रहस्यपूर्ण है। कमल इस जगत में रूपांतरण का प्रतीक है। अदभुत रूपांतरण का। सारा रसायन बदल गया। कहां कीचड़ थी गंदगी से भरी, बदबू से भरी, सोच भी न सकते थे कि इसमें कमल पैदा हो सकता है। जिसने जाना नहीं है कि कमल कीचड़ में पैदा

होता है, वह कमल को देख कर कभी कल्पना भी नहीं कर सकता है कि कीचड़ से इसका कोई संबंध हो सकता है। एक दाग भी तो नहीं होता है कमल पर कीचड़ का। और सुरभि, और रंग अनूठा, और खिलावट! इस पृथ्वी पर कमल से कोमल और क्या है?
तुमने प्रेम का आधा ही हिस्सा देखा। जिसने प्रेम में सिर्फ कामवासना देखी, उसने कीचड़ देखी। जिसने प्रेम में सिर्फ संभोग देखा, उसने कीचड़ देखी। और जिसने प्रेम में समाधि देखी, उसने कमल देखा। जिसने प्रेम में भक्ति देखी, उसने कमल देखा। उठो, कीचड़ से कमल की यात्रा करो!

पांचवां प्रश्नः भक्त, भक्ति और भगवान, इन तीनों शब्दों को समझाने की कृपा करें।

वैज्ञानिक कहते हैं, प्रत्येक वस्तु के तीन रूप होते हैं। जैसे जल को उदाहरण के लिए लें, तो बर्फ एक रूप--जमा हुआ, सख्त, कठोर। फिर जल दूसरा रूप-- बहता हुआ, प्रवाहमान, तरल। फिर भाप तीसरा रूप--अदृश्य, ऊर्ध्वगामी। तीनों में बड़ा फर्क है।
बर्फ कठोर है, जल जरा भी कठोर नहीं। बर्फ थिर है, एक जगह अटका है, बर्फ में कोई गति नहीं है; जल में गति है, प्रवाह है, जल यात्रा है। बर्फ पत्थर की तरह पड़ा है। इसीलिए तो बर्फ को पत्थर का बर्फ कहते हैं। उसमें कोई यात्रा नहीं है, बंद, कहीं जाता नहीं, उसमें कुछ होता नहीं, जैसा का तैसा है; मुर्दा है, जड़ है। जल में जीवन है। गति जीवन का आधार है।
फिर जल में और भाप में भी बड़े फर्क हैं। जल सदा नीचे की तरफ जाता है, भाप सदा ऊपर की तरफ जाती है। जल अधोगामी है, भाप ऊर्ध्वगामी है। जल दिखाई पड़ता है, भाप दिखाई भी नहीं पड़ती। और भी क्रांति घट गई। भाप अदृश्य के साथ एक हो गई।
ऐसे ही ये तीन शब्द हैं--भक्त, भक्ति और भगवान।
भक्त है बर्फ की तरह। बड़ी अस्मिता है अभी, मैं-भाव है अभी। भक्ति है तरलता, नृत्य, गति, यात्रा। भक्त चल पड़ा, भक्त अब पड़ा नहीं है, उठ खड़ा हुआ; भक्त अब रुका नहीं है, उसने पहला कदम तो उठा लिया। और जिसने पहला कदम उठा लिया, उसने आधी यात्रा पूरी कर ली। क्योंकि एक-एक कदम से ही तो हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। पहला कदम ही कठिन है, फिर तो सब सरल हो जाता है। क्योंकि सब कदम एक जैसे हैं। पहला उठ गया तो दूसरे में क्या फर्क है? दूसरा भी पहले जैसा है और तीसरा भी पहले जैसा है। फिर तो उन्हीं कदमों की पुनरुक्ति है। कदम तो एक ही है। फिर कदम के ऊपर कदम रखते जाना है, सीढ़ी के ऊपर सीढ़ी चढ़ते जाना है। मगर जिसे पहला कदम उठाना आ गया, उसे सब कदम उठाने आ गए, क्योंकि कदमों-कदमों में कोई भेद नहीं है।
भक्ति तरलता है, बहाव शुरू हुआ, यात्रा शुरू हुई। और भगवान वाष्प की दशा है, अदृश्य होने की दशा है। भक्त कठोर होता है, भक्ति में तरलता होती है, जब भक्त भगवान तक पहुंचता है तो अदृश्य हो जाता है। ये चैतन्य की ही तीन दशाएं हैं। भक्त से शुरू करना है, भगवान पर पूर्णाहुति होनी है। भक्त कभी भगवान को मिलता है, ऐसा मत सोच लेना। भक्त भगवान हो जाता है। मिलना कहां है? मिलने में तो दूजापन रहता है, दुई रहती है, भेद रहता है। भक्त भगवान से मिलता नहीं, भक्त भगवान हो जाता है। जैसे भाप आकाश के साथ एक हो जाती है।
ये भगवत्ता की तीन दशाएं हैं। भक्त कठोर दशा है, अभी मैं का भाव मौजूद है। भक्ति में मैं टूटा, तरलता आई; मध्य की दशा है। और भगवान में ऊर्ध्वगमन हुआ; जो दृश्य था, अदृश्य हुआ; जो स्थूल था, सूक्ष्म हुआ; जो ज्ञात था, अज्ञात हुआ।

छठवां प्रश्नः आपके पास आना और बैठना अच्छा लगता है। लेकिन प्रवचन सुनने के बाद कुछ और ही लगने लगा है। लगता है कि कोई गहरा नशा किया हो; ध्यान वगैरह करने की भी इच्छा नहीं होती। पर संन्यास लेने की इच्छा होने लगी है। क्या इस योग्य हूं?

यह मधुशाला है। यहां नशा न आए तो तुम बेकार ही आए और बेकार ही गए। यहां पहुंचते वही हैं जो डगमगा जाते हैं। यहां आए, इसका सबूत ही यह है कि लौटते समय आंखों में खुमार हो, कि मन में एक मस्ती हो, कि एक नशा छाया हो, कि दूर की पुकार सुनी गई, कि दूर के तारों ने तुम्हें निमंत्रण दिया, कि अभीप्सा जगी; कि तुम्हारे भीतर कोई सोया था स्वर, वह पहली दफा छेड़ा गया; तुम्हारे भीतर कोई बीज दबा पड़ा था, वह टूटा और अंकुरित हुआ; तुम्हारे भीतर कोई अनजानी प्यास तड़पी; तुम्हारे भीतर कोई अस्पष्ट गीत गुनगुनाया गया। यही होना चाहिए।
अगर मुझे सुन कर तुम्हारे भीतर मस्ती न आए, तो तुमने सिर्फ मेरे शब्द सुने, मुझे नहीं सुना। अगर तुम्हारे भीतर मस्ती आ जाए, तुम यहां से चलते वक्त डगमगाते लौटो, थोड़ी बेखुदी आ जाए, बेखुद होकर लौटो--मस्ती यानी अहंकार थोड़ा क्षीण हो; मस्ती यानी थोड़ी तरलता आए, बर्फ थोड़ी पिघले, बहाव आए; मस्ती यानी जीवन में और भी अर्थ हो सकते हैं जो तुमने नहीं खोजे, इनकी थोड़ी खबर आए, कि जिंदगी जीने का कोई और ढंग भी हो सकता है, कि दुकान और बाजार पर जिंदगी समाप्त नहीं है, कि धन और पद पर जीवन की इति नहीं है, कि यहां और भी आकाश हैं उड़ने को, कि और भी मुकाम हैं पहुंचने को, ऐसी जब तुम्हारे भीतर थिरक आएगी तो नशा मालूम होगा। शुभ हो रहा है। इसी नशे के पैदा हो जाने को मैं मानता हूं कि आदमी संन्यास के लिए पात्र हुआ। इन्हीं नशेलचियों के लिए संन्यास है। ठीक तुम्हारे लिए। और यहां कोई कसौटी नहीं है। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि संन्यासी के लिए पहले तुम्हें उपवास करना पड़े, तप करना पड़े, जप करना पड़े। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि संन्यासी के लिए तुम्हें इस-इस तरह का आचरण करना पड़े, इस-इस तरह का चरित्र होना चाहिए। मैं इन क्षुद्र बातों में जरा भी नहीं उलझा हूं। मगर एक बात तो चाहिए ही, परमात्मा को पाने का नशा तो चाहिए ही। उसे नहीं छोड़ा जा सकता। उसके पीछे सब चला आएगा। जिसके भीतर परमात्मा को पाने की आकांक्षा जग गई, उसके भीतर से क्षुद्र बातें अपने आप गिर जाएंगी। क्योंकि जब कोई हीरे लेने चलता है तो पत्थरों को नहीं सम्हालता, छोड़ देता है। और जब किसी के घर में कोई बड़ा मेहमान आने को होता है तो वह घर की तैयारी करता है, स्वच्छता करता है, घर को पवित्र करता है। यह सब स्वाभाविक है। इसकी मैं चिंता ही नहीं लेता। मैं तो कहता हूं, पहले उस बड़े मेहमान को बुलाओ।
तुमसे दूसरे लोग कहते रहे हैं कि घर शुद्ध करो। मैं कहता हूं, पहले मेहमान को निमंत्रित करो। घर की शुद्धि तो बड़ी गौण बात है। वह तुम कर ही लोगे, उसकी चिंता मुझे लेने की जरूरत नहीं। जब तुम देखोगे कि परमात्मा करीब आने लगा, तुम अचानक पाओगे तुम्हारे चरित्र में रूपांतरण शुरू हो गया। अब तुम बहुत सी बातें नहीं करते हो, जो करते थे कल तक। और तुमने उन्हें रोका भी नहीं है, मगर करना बंद हो गया है। क्योंकि अब प्रभु करीब आ रहा है, उसके योग्य बनना है, रोज-रोज उसके योग्य बनना है, सिंहासन बनना है उसका; तो अब क्षुद्र बातें नहीं की जा सकतीं। यह बोध से ही रूपांतरण हो जाता है। इसके लिए कोई चेष्टा, अनुशासन, जबर्दस्ती, आग्रहपूर्वक व्रत-नियम इत्यादि नहीं लेने होते।
व्रत-नियम तो वही लेता है जिसे उस मालिक की कोई खबर नहीं है। उस मालिक
की जिसे खबर आई, जिसे उस मालिक का दर्शन होने लगा, उसकी पगचाप सुनाई पड़ी कि वह आने लगा करीब, कि तुम भागे, कि तुम सब साफ कर डालोगे, तुम कूड़ा-कर्कट फेंक दोगे घर से, तुम सजा लोगे, तुम धूप-दीप जला लोगे, तुम फूल ले आओगे, तुम बंदनवार बना लोगे। यह सब अपने से हो जाएगा; मेहमान तो आए! तुम मेजबान बन जाओगे।
लेकिन एक शर्त मैं भी नहीं छोड़ सकता हूं, वह है मादकता की शर्त। उसके बिना तो मेहमान ही नहीं आएगा। मदभरे होकर पत्र लिखोगे तो ही उस तक पहुंचेगा। तुम्हारी पाती में तुम्हारा नशा होगा तो ही पाती उस तक पहुंचेगी, नहीं तो नहीं पहुंचेगी। मस्त होकर जब तुम पुकारोगे, तभी तुम्हारी प्रार्थना उस तक पहुंचेगी। होशियारी में की गई प्रार्थनाएं बेकार चली जाती हैं। समझदारी में की गई प्रार्थनाएं उस तक नहीं पहुंचतीं।

उनमें गणित होता है, प्रेम नहीं होता। नशे में! तो ही प्रार्थना उस तक पहुंचती है।
तुम पूछते होः "क्या मैं संन्यास के योग्य हूं?"
बस, जिसके भीतर भी मादकता उतर रही है, वही योग्य है। पियक्कड़ों के लिए संन्यास है।

लाई फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में
आज फिर टूटेंगी तेरे घर की नाजुक खिड़कियां
आज फिर देखा गया दीवाना तेरे शहर में
जुर्म है तेरी गली से सर झुका कर लौटना
कुफ्र है पथराव से घबड़ाना तेरे शहर में
शाहनामे लिखे हैं खंडरात की हर ईंट पर
हर जगह है दफ्न इक अफसाना तेरे शहर में
कुछ कनीजें जो हरीमे-नाज में हैं बारयाब
मांगती हैं जानो-दिल नजराना तेरे शहर में
जान और दिल से कम नजराना वहां नहीं चलेगा। मस्त ही कोई हो, पागल ही कोई हो, तो ही जान और दिल का नजराना दे।
लाई फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
एक मादक लड़खड़ाहट, एक मदभरी चाल फिर तेरे शहर में ले आई है।
लाई फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
उसके शहर में लोग लड़खड़ाते हुए पहुंचते हैं। जो सम्हल कर चलते हैं वे
तो वहां पहुंचते नहीं। सम्हलने वाले के लिए संसार है। सम्हले हुए के लिए संसार है। लड़खड़ाने की कला आनी चाहिए। लड़खड़ा कर ही कोई उसके मंदिर तक पहुंचता है।
लाई फिर इक लग्जिशे-मस्ताना तेरे शहर में
फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में
और जब भी कोई एकाध ऐसा मस्ताना पैदा होता है, तो मस्जिदें मयखाना बन जाती हैं। और जब मस्जिदें मयखाना होती हैं, तब जिंदा होती हैं। तब वहां विद्रोह होता है, तब वहां जीवन होता है, तब वहां परमात्मा की शराब ढाली जाती है, पी जाती है, पिलाई जाती है। और जब मस्जिदें मयखाना नहीं होतीं, तब मुर्दा होती हैं, तब कब्रिस्तान होते हैं वहां, तब अतीत की याददाश्तें होती हैं वहां, पुरानी सुंदर कहानियां होती हैं वहां, पुराण की कथाएं होती हैं वहां। लेकिन वहां बुद्ध नहीं होते, मोहम्मद नहीं होते, कृष्ण नहीं होते, क्राइस्ट नहीं होते।

फिर बनेंगी मस्जिदें मयखाना तेरे शहर में
आज फिर टूटेंगी तेरे घर की नाजुक खिड़कियां
आज फिर देखा गया दीवाना तेरे शहर में
जुर्म है तेरी गली से सर झुका कर लौटना
कुफ्र है पथराव से घबड़ाना तेरे शहर में
शाहनामे लिखे हैं खंडरात की हर ईंट पर
हर जगह है दफ्न इक अफसाना तेरे शहर में
कुछ कनीजें जो हरीमे-नाज में हैं बारयाब
मांगती हैं जानो-दिल नजराना तेरे शहर में
संन्यास का यही अर्थ है कि तुम अपने को समर्पित करने को तैयार हो। अब कोई पागल ही समर्पित कर सकता है! होशियार तो सोचेगा, लाख बार सोचेगा, होशियार तो हिसाब लगाएगा, लाभ-हानि का विचार करेगा। संन्यास होशियारों के लिए नहीं है। संन्यास उनके लिए है जो मस्ताने हैं। जुआरियों के लिए है, व्यवसायियों के लिए नहीं है। तुम तैयार हो। तुम पात्र हो।
और तुम कहते हो कि ध्यान इत्यादि में भी मन नहीं लगता।
तुम्हारा नहीं लगेगा। तुम्हारे लिए मार्ग भक्ति होगी। तुम्हारे लिए ध्यान मार्ग नहीं होगा। तुम नाचो, गाओ, तुम उत्सव मनाओ। तुम धन्यभागी हो,

क्योंकि तुम्हारे मार्ग पर उत्सव ही उत्सव होगा। ध्यानी के मार्ग पर सन्नाटा होता है, भक्त के मार्ग पर नृत्य होता है, गीत होते, गान होते।
ध्यानी के मार्ग मरुस्थल जैसे हैं--सन्नाटा, गहन सन्नाटा। भक्त के मार्ग वनों-उपवनों से गुजरते हैं, झरनों के पास से गुजरते हैं, जहां पक्षी गीत गाते हैं और हंस पंख फैलाते हैं।
तुम धन्यभागी हो! तुम ध्यान की चिंता न करो, तुम प्रेम की चिंता करो। प्रीति तुम्हारा मार्ग है। तुम्हारे लिए जीवन को एक महोत्सव बनाना होगा।

प्यार का जश्न नई तरह मनाना होगा
गम किसी दिल में सही गम को मिटाना होगा

कांपते ओंठों पे पैमाने-वफा, क्या कहना
तुझको लाई है कहां लग्जिशे-पा, क्या कहना
मेरे घर में तेरे मुखड़े की जिया, क्या कहना
आज हर घर का दीया मुझको जलाना होगा

रूह चेहरों पे धुआं देख के शर्माती है झेंपी-झेंपी सी मेरे लब पे हंसी आती है तेरे मिलने की खुशी दर्द बनी जाती है हमको हंसना है तो औरों को हंसाना होगा

सोई-सोई हुई आंखों में छलकते हुए जाम खोई-खोई हुई नजरों में मोहब्बत का पयाम लबे-शीरीं पे मेरी तिश्नालबी का ईनाम
जाने ईनाम मिलेगा कि चुराना होगा

मेरी गर्दन पे तेरी संदली बांहों का ये हार
अभी आंसू थे इन आंखों में अभी इतना खुमार
मैं न कहता था मेरे घर में भी आएगी बहार
शर्त इतनी थी कि पहले तुझे आना होगा

परमात्मा के आने के पीछे-पीछे ही बहार आती है। उसके पहले कोई बहार नहीं है। उसके पहले सब पतझार है। उसके पहले तुम जीए कहां? उसके पहले तुम जागे कहां? उसके पहले तो सब राख ही राख है।
मैं न कहता था मेरे घर में भी आएगी बहार
शर्त इतनी थी कि पहले तुझे आना होगा
भक्त का मार्ग है कि वह प्रभु को पुकारे, सब दांव लगा दे एक बात पर कि प्रभु मिले तो सब मिला और प्रभु न मिला तो कुछ भी न मिला। सब तरफ से अपनी आकांक्षाओं को बटोर ले, इकट्ठा कर ले, सारी आकांक्षाओं को एक प्रभु में डुबो दे। जब सारी आकांक्षाएं एक आकांक्षा बन जाती हैं, उसका नाम अभीप्सा। संसारी आदमी की बहुत आकांक्षाएं होती हैं--धन भी पाना, पद भी पाना, प्रतिष्ठा भी पानी, प्रेम भी पाना, सम्मान भी पाना, इस संसार को भी सम्हालना है और अगर कोई दूसरा संसार हो तो थोड़ा दान इत्यादि करके उसको भी सम्हालना है--उसके पास पच्चीस वासनाएं होती हैं। सभी को सम्हालने में सभी खो जाता है। एक को सम्हालने में सब सम्हल जाता है, सबको सम्हालने में एक भी खो जाता है।
भक्त की एक ही आकांक्षा होती है। वह सारी आकांक्षाओं को एक ही आकांक्षा में डुबा देता है, वह सारे तीरों को एक ही निशाने पर लगा देता है, वह सारी किरणों को इकट्ठा कर लेता है और एक ही दांव लगा देता है, भभक कर उठती है फिर आग। जैसे छोटे-छोटे झरने खो जाएं हो सकता है मरुस्थल में, लेकिन जब सारे छोटे-छोटे झरने मिल कर गंगा बन जाते हैं तो फिर सागर तक पहुंचना सुनिश्चित है। छोटी-छोटी आकांक्षाओं में बंटा हुआ आदमी खो जाता

है, खंडित हो जाता है। भक्ति का अर्थ हैः सारी आकांक्षाएं एक में लग गईं, एक परमात्मा को पाना ही लक्ष्य रहा।
तुम्हारे लिए यही मार्ग होगा। तुम्हारी मस्ती इसकी खबर देती है। तुम्हारा खुमार इसकी खबर देता है। भक्ति और भजन, गीत और गायन, वादन और नर्तन तुम्हारा मार्ग होगा।
प्यार का जश्न नई तरह मनाना होगा
गम किसी दिल में सही गम को मिटाना होगा
तुम गाओ भी और जहां कोई रोता हो, उसको भी गाने में लगाओ। तुम हंसो और जहां कोई रोता हो, उसको भी हंसाओ। तुम अगर रोओ भी तो तुम्हारे आंसू हंसने चाहिए। तुम अगर रोओ भी तो तुम्हारे रोने में गीत और प्रार्थना होनी चाहिए। तुम अपने सारे जीवन को एक उत्सव के रंग में रंग लो। तुम्हारे भीतर संन्यास घटित ही हो रहा है, सिर्फ उसकी बाह्य घोषणा करने की जरूरत है। उसकी भी हिम्मत जुटाओ।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
सत्रहवां प्रवचन

भक्ति अति स्वाभाविक है

सूत्र

युक्तौ च सम्परायात्।। 41।।
शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।। 42।।
तत्परिशुद्धिश्च गम्यालोकवल्लिंगेभ्यः।। 43।।
सम्मान बहुमान प्रीति विरहेतर विचिकित्सा
महिमख्याति तदर्थ प्राण स्थान तदीयता सर्व तद्भावा
प्रातिकूल्यादीनिच स्मरणेभ्यो बाहुल्यात्।। 44।।
द्वेषादयस्तु नैवम्।। 45।।
पूर्व सूत्र--

चैत्याचितोर्नत्रितीयम्।
"चैत्य और चित्त, ज्ञेय और ज्ञान, दृश्य और द्रष्टा से भिन्न कोई तीसरा पदार्थ जगत में नहीं है।"
जगत को दो में बांटा जा सकता है--जानने वाले में और जो जाना जाता है; मैं और तू में। यह अंतिम विभाजन है। इसके भी भीतर गए तो विभाजन समाप्त हो जाते हैं, भेद गिर जाते हैं। यहां तक भेद की सीमा है, यहां तक भेद का लोक है। फिर द्रष्टा में और गहरे गए, या दृश्य में गहरे गए तो दोनों के भीतर एक का ही आविर्भाव होता है।
ज्ञान यहीं तक जाता है, भक्ति इससे आगे जाती है। ज्ञान यहां रुक जाता है--ज्ञाता और ज्ञेय के भेद पर। इसलिए ज्ञान वस्तुतः अद्वैतवादी नहीं होता। हो नहीं सकता। ज्ञान तो द्वैतवादी होगा ही। अनिवार्यतः होगा। उसमें अंतर्निहित अनिवार्यता है द्वैत की।
इसलिए बड़े से बड़े ज्ञानी भी, चाहे लाख कहें कि संसार मिथ्या है, माया है, पर संसार को मानते हैं। संसार को बिना माने नहीं चलता। ज्ञान की घटना ही नहीं घटती अगर ज्ञाता और ज्ञेय का भेद न हो। ईश्वर को जानोगे कैसे, अगर जानने वाला ईश्वर से भिन्न न हो? अभिन्न हो तो जानना समाप्त हो गया। तुम वृक्ष को जानते हो, क्योंकि वृक्ष से भिन्न हो। अगर तुम वृक्ष हो गए, तो फिर वृक्ष को कैसे जानोगे? फिर जानने वाला नहीं बचा।
ज्ञानी अनंत-अनंत भेदों से उठते-उठते उस दशा में आ जाता है जहां दो बचते हैं। दो के पार ज्ञान की यात्रा नहीं है। वहां ज्ञान थक जाता है। फिर अगर ज्ञानी कहे भी कि एक है, तो वह एक उसके द्वैत पर ही आधारित होता है। फिर वह ब्रह्म और माया कहेगा द्वैत को, कोई नाम देगा, पुरुष और प्रकृति कहेगा, इससे भेद नहीं पड़ता, दो तो कायम रहते हैं।
भक्ति इससे आगे छलांग लेती है, आगे उड़ान लेती है, जहां दो वस्तुतः समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि भक्ति का आग्रह जानने में नहीं है, होने में है। भक्ति के आग्रह को ठीक से समझ लो।
भक्ति की बुनियादी धारणा है कि बिना एक हुए कोई उपाय जानने का भी नहीं है। ज्ञान की धारणा है--दो हों तो ही जाना जा सकता है। भक्ति की धारणा है-- एक सधे तो ही ज्ञान है। उसे भक्ति ज्ञान भी नहीं कहती इसीलिए, क्योंकि ज्ञान में दो की भाषा आ जाती है; उसे प्रेम कहती है।
एक जानना है बाहर-बाहर से और एक जानना है भीतर से। प्रेमी भी एक-दूसरे
को जानते हैं, लेकिन वह जानना वैज्ञानिक के जानने से भिन्न है। तुम एक डाक्टर के पास गए, तुम्हारे सिर में दर्द है, तुमने अपने सिरदर्द की कहानी कही। डाक्टर जानता है सिरदर्द को, सिरदर्द के संबंध में पढ़ा है, लिखा है, खुद भी कभी अनुभव किया है, दवा भी जानता है, तुम्हें सिरदर्द से छुटकारा दिलाने का उपाय भी करेगा। लेकिन उसका जानना बाहर से है। तुम्हारी प्रेयसी, या तुम्हारी मां, या तुम्हारा पति, या तुम्हारा मित्र, जब तुम उससे कहोगे कि सिरदर्द है, वह भी जानता है, यद्यपि उसने शास्त्र नहीं पढ़े

हैं और सिरदर्द क्या है इसका विश्लेषण न कर सकेगा। लेकिन उसका जानना एक और आयाम का जानना है--सहानुभूति का, समानुभूति का। जब तुम्हारे प्रिय के सिर में दर्द होता है, तो तुम्हारे सिर में भी दर्द हो जाता है। जब बेटा परेशान होता है, तो मां परेशान हो जाती है। यह परेशानी बाहर-बाहर नहीं रहती, यह भीतर छू जाती है। प्रेमी एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड हो गए होते हैं।
इसलिए जब कोई प्रियपात्र मरता है तो प्रियपात्र ही नहीं मरता, तुम्हारा एक बड़ा हिस्सा मर जाता है। तुमने जिससे प्रेम किया था, वह मर गया। उस दिन तुम जानोगे कि तुम्हारा एक बड़ा हिस्सा मर गया, तुम्हारी आत्मा का एक खंड समाप्त हो गया। तुम अब उतने ही नहीं हो जितने तब थे जब तुम्हारा प्रेमी जिंदा था। अब तुम खाली-खाली हो, अधूरे-अधूरे हो। तुम्हारे भवन का एक खंड गिर गया, अब तुम खंडहर हो। जब प्रियपात्र के मर जाने पर कोई रोता है, चीखता-चिल्लाता है, तो वह सिर्फ इसलिए नहीं रो रहा है, चिल्ला रहा है कि प्रियपात्र मर गया। उसकी मृत्यु में उसकी भी मृत्यु घट गई है, वह भी अब आधा है, अपंग है, उसके भी पैर टूट गए हैं। अब वह कभी पूरा न हो सकेगा। अब यह खालीपन रहेगा और अखरेगा। जितना बड़ा प्रेम होगा, जितना गहन प्रेम होगा, उतनी ही बड़ी मृत्यु घटित होगी। और अगर प्रेम परिपूर्ण हो तो प्रियपात्र के मरते ही तुम भी मर जाओगे। एक श्वास ज्यादा न ले सकोगे।
सती की प्रथा ऐसे ही शुरू हुई थी। फिर पीछे विकृत हुई--सभी चीजें विकृत हो जाती हैं--लेकिन ऐसे ही शुरू हुई थी। कभी कोई प्रेमी मरा था और उसकी प्रेयसी फिर सांस न ले सकी थी। फिर सांस लेने में कोई अर्थ ही न रह गया था। चिता पर चढ़ने भी जाना नहीं पड़ा था--चिता पर चढ़ने लायक था ही कौन अब? प्रिय की मृत्यु में ही स्वयं की भी मृत्यु हो गई थी।
इतना तादात्म्य हो तो एक तरह का ज्ञान होगा। उसे ज्ञान कहना ठीक नहीं, क्योंकि ज्ञान से हम समझते हैं भेद, दूरी, फासला। वह ज्ञान अनूठे ढंग का ज्ञान होगा, वहां फासला न होगा, दुई न होगी, द्वैत न होगा। उसी को शांडिल्य प्रीति कहते हैं।
एक ऐसे जानने का ढंग भी है जो हार्दिक है। एक जानने का ढंग है जो बौद्धिक है। बौद्धिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का फर्क होता है, चैत्य और चित्त का फर्क होता है, दृश्य और द्रष्टा का फर्क होता है। हार्दिक ज्ञान में, भाविक ज्ञान में सब भेद समाप्त हो जाते हैं। शांडिल्य कहते हैंः तभी असली ज्ञान है। क्योंकि जब तक दूरी है, तब तक कैसा ज्ञान!
रामकृष्ण के जीवन में एक उल्लेख है। ऐसे बहुत संतों के जीवन में उल्लेख हैं। पर रामकृष्ण का उल्लेख ताजा है। वे गंगा पार कर रहे थे दक्षिणेश्वर में, नाव में बैठे, उनके भक्त भजन गा रहे हैं। अचानक बीच भजन में वे चिल्लाए--मुझे मारते क्यों हो? मुझे मारते क्यों हो? जो भजन गा रहे थे वे तो एकदम ठिठक कर रह गए, कौन रामकृष्ण को मार रहा है? कौन मारेगा? किसलिए? उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं, परमहंसदेव? कोई आपको मार नहीं रहा, आपको हुआ क्या है? और उन्होंने अपनी चादर उघाड़ी और अपनी पीठ दिखाई--और पीठ पर कोड़ों के निशान हैं और खून बह रहा है! भक्त तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्होंने कहा, यह हमारी समझ के बाहर है, यह हुआ कैसे? रामकृष्ण ने कहा, उस तरफ देखो! बीच गंगा में नाव है, उस किनारे पर कुछ लोग मिल कर एक मल्लाह को पीट रहे हैं।
जब नाव किनारे जाकर लगी, भक्तों ने उस आदमी को जाकर देखा जिसको पीटा गया था, उसकी कमीज उघाड़ी, उसकी पीठ पर ठीक वैसे ही कोड़े के चिह्न थे जैसे रामकृष्ण के--ठीक वैसे ही। अब बात और अबूझ हो गई। उन्होंने रामकृष्ण को पूछा, यह हुआ कैसे? उन्होंने कहा, उस क्षण में तादात्म्य हो गया। उसे लोग मार रहे थे, तुम तो भजन में लीन थे, मेरी आंखें उस तरफ लगी थीं। जब वे उसे मार रहे थे तब एक क्षण को मैं उसके साथ एक हो गया।
इस स्थिति का नाम है समानुभूति। यह सहानुभूति से आगे का कदम है। लोगों में तो सहानुभूति ही नहीं है, तो समानुभूति तो कहां से होगी! सहानुभूति का अर्थ हैः दया। तुम्हें पीड़ा हो रही है, मुझे दया आती है।
समानुभूति का अर्थ हैः तुम्हारी पीड़ा मेरी पीड़ा हो गई। उधर तुम रोते हो, इधर मैं रोता हूं।

वैज्ञानिक बहुत से प्रयोग कर रहे हैं इस संबंध में और समानुभूति पर बड़ी खोज पिछले बीस वर्षों में हुई है--विशेषकर रूस में बड़ी खोज हुई है। खास करके मां और उसके बच्चों के बीच। अभी परीक्षण पशुओं में चल रहा है। एक खरगोश को दूर पानी में ले जाकर, मील भर गहरे पानी में ले जाकर मारा गया। और उसकी मां ऊपर घाट पर खेल रही है। जब उसे मारा गया, तब खरगोश की मां को जैसे बिजली के धक्के लगे--यंत्र लगाए गए थे जो परीक्षण कर रहे थे, धक्के लगे। जैसे भीतर कोई गहरी चोट लगी। फिर इस प्रयोग को बहुत तरह से दोहराया गया। जब भी बच्चे को मारा गया, तभी मां को चोट पहुंची। हजार मील की दूरी पर भी चोट पहुंची। क्योंकि मां और बेटे का संबंध बड़ा गहरा है। बेटा मां के पेट में नौ महीने रहा है। बेटा मां के पेट में नौ महीने इस तरह रहा है कि मां होकर रहा है। इस तरह का गहरा संबंध फिर किसी का कभी नहीं होगा, क्योंकि कौन किसके पेट में नौ महीने रहेगा? तो मां और बेटे के हृदय के तार गहराई में जुड़े हैं, प्राण संयुक्त हैं।
ठीक ऐसी घटना जुड़वां बच्चों में भी घटती है। एक जुड़वां बच्चा बीमार
हो भारत में और उसका भाई चीन में बीमार हो जाएगा। समानुभूति! एक ही अंडे में दोनों बड़े हुए थे, एक ही साथ धड़के थे, उनके हृदय की धड़कन एक ही लय जानती है। जो बीमारी एक को पकड़ेगी वह दूसरे को पकड़ जाएगी, हजारों मील का फासला हो तो भी पकड़ जाएगी। ये समानुभूति के लक्षण हैं, यह एक अनूठे ढंग का जानना है, जहां हृदय जुड़े होते हैं।
इस जोड़ का नाम भक्ति है। जिस दिन तुम्हारा हृदय विराट से ज.ुड जाता है, जिस दिन तुम्हारा प्रेमी और कोई नहीं, स्वयं परमात्मा होता है, जिस दिन सारे अस्तित्व के साथ तुम एकता में लयबद्ध हो जाते हो, तुम्हारी भिन्न तान नहीं रहती, तुम एकतान हो जाते हो, तुम इस विराट संगीत में एक स्वर हो जाते हो, तुम इस विराट संगीत के विपरीत नहीं बहते, तुम इस धारा के साथ एक हो जाते हो, यह धारा जहां जाती है वहीं जाते हो, तुम्हारे भीतर विपरीतता समाप्त हो जाती है, भक्ति का जन्म होता है।
आज के सूत्र की शुरुआत है--
युक्तौ च सम्परायात्।
"वियोग के पूर्व में दोनों एक ही हैं।"
जैसे जन्म के पहले मां और बच्चा एक हैं। भेद बाद में आता है। इसलिए भेद गौण है। भेद ऊपर-ऊपर है। ऐसे ही हम इस अस्तित्व से एक हैं। जब तुम पैदा नहीं हुए थे तब तुम कहां थे? मां के गर्भ में भी नहीं आए थे, तब तुम किस गर्भ में थे? तब तुम इस विराट के गर्भ में थे। इस विराट से तुम अलग हुए, ऐसी बस मान्यता है तुम्हारी। इस विराट से अलग हो कैसे सकोगे? इस विराट के बिना जी कैसे सकोगे? इस विराट से टूट कर श्वास भी नहीं चलेगी। यह विराट ही हममें जीता है। हम अभी भी गर्भ में हैं। हमें सिर्फ भ्रांति हो गई है। मछली अभी भी सागर में है, मगर सागर को भूल गई है। ऐसे ही हम भी भूल गए हैं। नहीं तो परमात्मा ने तुम्हें सब तरफ से घेरा है। तुम्हारे खून में वही बहता है और तुम्हारे हड्डी-मांस-मज्जा में वही बैठा है; तुम्हारी श्वास में वही चलता, तुम्हारे हृदय में वही धड़कता। तुम वही हो। उसी के पुंजीभूत रूप। उसका ही एक आकार। उसकी ही एक लहर। उसकी ही एक तरंग हो तुम। उससे रंचमात्र भिन्न नहीं।
शांडिल्य का सूत्र बड़ा प्यारा हैः युक्तौ च सम्परायात्।
सोचो तो जरा, जब तुम नहीं थे तब तुम कहां थे? और जब तुम फिर नहीं हो जाओगे तब तुम कहां होओगे? ऐसा समझो, सागर शांत है, हवाएं नहीं बहतीं, कोई लहर नहीं उठती। फिर आई हवा की एक लहर, आया बड़ा एक झोंका, उठी एक बड़ी लहर सागर में। सागर में लहर जब नहीं उठी थी तब कहां थी? सागर ही थी तब, अब उठी। फिर थोड़ी देर में सागर में गिर जाएगी, तब कहां होगी? सागर में ही होगी तब। ऐसा सोचो, जब नहीं उठी थी लहर तब सागर में थी। जब उठी तब भी सागर में ही है, सिर्फ एक नया रंग, एक नया रूप, एक नया आकार उठा--नाम-रूप। यह संसार बस नाम-रूप है। फिर जल्दी ही नाम-रूप गिर जाएगा, फिर लहर सागर की सागर में हो जाएगी। ऐसे उठेगी कई बार, गिरेगी कई बार। ऐसे तुम कई बार जन्मे और कई बार मरे। अभी फिर जन्मे हो, अभी फिर मरोगे। जो व्यक्ति यह पहचान ले कि जन्म के

पहले भी मैं उसी में था, मृत्यु के बाद भी उसी में होऊंगा, और निश्चित ही जब आगे भी उसी में था, पीछे भी उसी में होऊंगा, तो बीच में भी उसी में ही हो सकता हूं--और कहां होऊंगा? अगर मेरा अतीत भी उसमें, मेरा भविष्य भी उसमें, तो मेरा वर्तमान भी उसमें ही होगा। जो जाग जाता है इस भाव में कि मैं परमात्मा में हूं और हम क्षण भर को भिन्न नहीं हुए, वही भक्त।
युक्तौ च सम्परायात्।
"वियोग के पूर्व दोनों एक ही हैं।"
और ऐसी ही दशा परम विश्लेषण की है। वह जो द्रष्टा और दृश्य का भेद है,
वह भी एक लहर मात्र है। नहीं तो देखने वाला और देखा जाने वाला एक ही है। वही देखता है, वही देखा जाता है। ऐसा समझो न, रात तुम सपना देखते हो, तब देखने वाला और जो दिखाई पड़ता है, उसमें कुछ भेद होता है? सपने में तुम्हीं सब होते हो। वह जो सपने की कहानी चलती है, वह जो सपने की फिल्म दोहरती है, उसमें सभी तुम होते हो--निर्देशक भी तुम, कथा-लेखक भी तुम, गायक भी तुम, नायक भी तुम, पर्दा भी तुम और दर्शक भी तुम। तुम्हीं सब होते हो। इसी गहन अनुभव के कारण, संसार को स्वप्न कहा है जानने वालों ने। स्वप्न का अर्थ यह होता हैः सब एक है और फिर भी भेद मालूम पड़ता है। सुबह जागोगे जब तुम, तब कहां है सपना तुम्हारा? तब तुम्हीं में लीन हो गया। लहर उठी थी, तुम्हीं में वापस खो गई। दृश्य द्रष्टा से ही उठता है और द्रष्टा में ही लीन हो जाता है।
दोनों वियोग के पूर्व एक हैं। और संयोग के बाद फिर एक हैं। बीच में क्या भिन्न हैं? बस बीच में भिन्न भासते हैं, आभास होता है। उस आभास का नाम माया है। वे अनादि काल से दोनों एक हैं। एक ही है जो दोनों में प्रकट हो रहा है। एक ने ही अपने को विभाजित कर लिया है--खेल के लिए, लीला के लिए। शास्त्र कहते हैंः वह अकेला था। ऊब गया अकेले-अकेले। उसने अपने को विभाजित किया। फिर अपने से ही छिया-छी, फिर अपने से ही खेल शुरू किया। यही तो तुम रोज सपने में करते हो। जो तुम सपने में करते हो, वही विराट अर्थ में सारे जगत में हो रहा है। इस जगत को परमात्मा का सपना समझो। इस जगत को परमात्मा का सपना समझा, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी। फिर तुम क्षण भर को भी अपने को भिन्न नहीं मान पाओगे। और जब कोई अपने को भिन्न नहीं मानता, तो अहंकार गया, संघर्ष गया, संकल्प गया, जद्दोजहद गई; तब विश्राम है।
उस विश्राम को शांडिल्य कहते हैं भक्ति। उसी विश्राम को मैं संन्यास कहता हूं। सब तरफ से जिसने अपने को छोड़ दिया धारा के साथ। शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।
"शक्ति ही की क्रिया है, इस कारण यह जगत मिथ्या नहीं।"
और एक बहुत अदभुत वचन। तुम रोज सुनते हो तुम्हारे तथाकथित ज्ञानियों
को यह कहते हुए कि जगत मिथ्या है, झूठा है। शांडिल्य बड़ा बहुमूल्य भेद करते हैं। वे कहते हैं, जगत माया तो है, लेकिन मिथ्या नहीं। मिथ्या और माया शब्दों को समझ लेना चाहिए।
मिथ्या का अर्थ होता हैः जो है ही नहीं। माया का अर्थ होता हैः जो है
तो नहीं, लेकिन है जैसा भासता है। इन दोनों में फर्क है। ये पर्यायवाची नहीं हैं। मिथ्या का अर्थ होता हैः अनृत, असत्य। जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। माया का अर्थ होता हैः अस्तित्व है तो नहीं, लेकिन प्रतीत होता है। जैसे, सपना। सपने को क्या कहोगे, माया कहोगे या मिथ्या कहोगे? अगर मिथ्या कहो तो सपना है ही नहीं। लेकिन यह तो तुम नहीं कह सकते कि सपना था ही नहीं। तुम्हें पूरी तरह याद है, सुबह भी याद है कि सपना था। तुमने देखा है, अपनी ही आंखों से देखा है। नहीं होता तो दिखाई कैसे पड़ता? एक बात। नहीं होता तो दिखाई नहीं पड़ता।
कई रातें ऐसी होती हैं जब सपना नहीं होता, तब तो तुम सुबह नहीं कहते कि सपना देखा, हालांकि दिखाई नहीं पड़ा, हालांकि था नहीं, मगर देखा। जब सपना नहीं होता तब रात खाली होती है। तो स्वप्नशून्य निद्रा में और स्वप्नसहित निद्रा में कुछ भेद तो है। स्वप्नशून्य निद्रा में कोई तरंग नहीं होती, स्वप्न से भरी निद्रा में तरंगें होती हैं। सुबह जाग कर पता चलता है कि वे

तरंगें सत्य नहीं थीं। मगर क्या उनको बिल्कुल एकांतिक रूप में असत्य कह सकोगे? सत्य तो नहीं थीं, क्योंकि सुबह हाथ में कुछ लगता नहीं--हाथ खाली के खाली। रात सोने के महल थे, बड़ा साम्राज्य था, और सुबह हाथ खाली हैं, कुछ भी हाथ में नहीं है। सच तो नहीं था सपना, लेकिन क्या तुम इतने ही जोर से कह सकोगे कि झूठ था? झूठ भी नहीं कह सकोगे। क्योंकि झूठ होता तो देखा कैसे? तो कुछ ऐसा था कि सच और झूठ के बीच में था।
ये तीन शब्द समझ लो--सत्य, जो है और सदा रहेगा। झूठ, जो नहीं है और कभी नहीं हो सकेगा। और मिथ्या, जो दोनों के मध्य में है; थोड़ा है, थोड़ा नहीं है; कभी है, कभी नहीं है; आज है, कल नहीं होगा; कल था, आज नहीं है; क्षण भर को होता है, फिर विलीन हो जाता है; तरंग है, लहर है। मिथ्या नहीं कह सकोगे इसे, इसे माया कहेंगे। जैसे जादूगर खेल दिखाता, वह माया है। है तो नहीं सच में, मगर बिल्कुल झूठ भी नहीं है। अंग्रेजी का शब्द मैजिक संस्कृत के माया शब्द से ही बना है।
शांडिल्य कहते हैंः यह जगत माया है, सच, लेकिन मिथ्या नहीं है। मिथ्या क्यों नहीं है? नहीं हो सकता। क्योंकि सच्चे सागर में अगर लहर उठी है, तो लहर की भांति भला झूठ हो, लेकिन है तो सच्चे सागर का ही अंग। सत्य के सागर में झूठी लहर कैसे उठ सकती है? और अगर सत्य के सागर में झूठी लहर उठ सकती है तो सागर ही झूठ हो गया। सत्य में झूठ कैसे उठ सकता है? एक बहुत बहुमूल्य प्रश्न उन्होंने उठाया है।
शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।
यह जगत उसकी ही शक्ति है। तो झूठ तो नहीं हो सकता। यह खेल उसका है--खेल सही--लेकिन झूठ नहीं है। सत्य भी नहीं है, क्योंकि क्षणभंगुर है। सत्य के साथ अर्थ होता है जो शाश्वत है और झूठ के साथ अर्थ होता है जो कभी नहीं है, और सत्य जो सदा है। मगर यह कुछ बीच की दशा है--अभी लगता है, है; अभी नहीं हो जाता है।
जवान थे और जवानी के सपने देखे थे। फिर बूढ़े हो गए, वे सपने सब फिजूल
हो गए, तब हंसता है आदमी, बूढ़ा होकर हंसता है, उसे भरोसा नहीं आता कि मैं ऐसी नासमझियां कर सका। मैं ऐसी मूढ़ताएं कर सका। मैं सौंदर्य के पीछे ऐसा दीवाना होकर भाग सका। मैं स्त्री-पुरुषों में इतना तल्लीन हो सका। भरोसा नहीं आता कि यह कैसे हुआ! लेकिन कभी हुआ था। आज स्वप्न भंग हो गया है, लेकिन जब स्वप्न था तो बड़ा बलशाली था। जब स्वप्न था तो उसने खूब नचाया था। जब स्वप्न था तो बड़े झंझावात आए थे, उसने खूब दौड़ाया था, जी-जान की बाजी लगवा दी थी। तब वही सूझता था। तब लगता था--सब खो जाए मगर यह सपना पूरा हो।
जो आदमी धन के पीछे ही दौड़ता रहा, दौड़ता रहा, और एक दिन जाग कर पाता है
कि सब धन पानी का बबूला है, रोता नहीं होगा? भीतर मन में पश्चात्ताप नहीं होता होगा कि मैं इतना मूढ़ था! तुम्हें नहीं हुआ है? किसी न किसी जगह तुम्हें भी हुआ होगा। किसी ने कुछ कह दिया था, दो कड़वे शब्द कह दिए थे और तुम आगबबूला हो गए थे, मरने-मारने को तैयार हो गए थे। फिर पीछे पछताए हो और सोचा कि यह भी क्या हुआ? ऐसी तो कुछ खास बात न थी! इतना क्रुद्ध हो जाने का तो कोई कारण न था! अकारण मैं विक्षिप्त हुआ। अकारण मैंने संघर्ष सिर लिया। अकारण मैंने चोट पहुंचाई। अब तुम.जार-.जार रोते हो और तुम सोचते होः यह हुआ कैसे? मेरे बावजूद हो गया? मैं तो चाहता भी नहीं था कि यह हो। मगर जब इस तूफान ने तुम्हें पकड़ा था तब तुम्हें जरा भी होश नहीं था। काश तुम्हें उसी समय होश आ जाता, तो यह उसी वक्त झूठ हो जाता। होश पीछे आया। अगर रात सपने में तुम जाग जाओ तो उसी वक्त सपना समाप्त हो जाएगा। भरी जवानी में भी सपने टूट गए हैं। आखिर बुद्ध का टूटा, आखिर महावीर का टूटा। राजमहलों में सपने टूट गए हैं। भर्तृहरि का टूटा, सब कुछ था और अचानक सपना टूट गया है। जब कि सपना बड़ी गर्मी में था, जब कि सपना बड़ा जवानी में था, जब कि सपना पूरा होने के करीब लग रहा था, तब सपने टूट गए हैं। और टूटते ही सब व्यर्थ हो गया। बुद्ध ने जब घर छोड़ा और जब वे अपने रथ से गांव के दूर जंगल में निकल गए
और जब उन्होंने सारथी को वापस भेजा, तो सारथी ने कहा, आप यह कर क्या रहे हैं? आप जा कहां रहे हैं? इस राजमहल को छोड़ कर जाते हैं! इस सोने जैसे महल को छोड़ कर जाते हैं! दुनिया इसी के लिए तड़फती है। और अपनी उस प्यारी पत्नी

की तो याद करो! और अपने नये पैदा हुए बच्चे की तो याद करो! अभी-अभी पैदा हुआ है। उसे छोड़ कर कहां जाते हो?
वह बूढ़ा सारथी बुद्ध को याद दिला रहा है कि तुम जो छोड़ कर जा रहे हो वह बड़ा प्यारा है, बड़ा बहुमूल्य है। बुद्ध हंसने लगे, उन्होंने कहा, मैं पीछे लौट कर देखता हूं, न तो मुझे कोई राजमहल दिखाई पड़ता है, न कोई पत्नी दिखाई पड़ती है, न कोई बेटा दिखाई पड़ता है; मुझे सिर्फ दिखाई पड़ती हैं लपटें और लपटें, वहां सब जल रहा है, इसलिए मैं भाग रहा हूं।
सारथी को समझ में नहीं आता, वह कहता है, कहां की लपटें? किन लपटों की बातें कर रहे हैं आप? किस सपने की बात कर रहे हैं? जागो! कहां की लपटें? सुंदर महल है, पत्नी है, पिता है, राज्य है; सब सुविधा है, जाते कहां हो? मुझे तो कोई लपटें नहीं दिखाई पड़तीं।
वह भी ठीक कह रहा है। हालांकि बूढ़ा हो गया है, लेकिन अभी उसका सपना नहीं टूटा है। बुद्ध भी ठीक कह रहे हैं। यद्यपि अभी जवान हैं, अभी सपने देखने के दिन थे, मगर सपना टूट गया है। जितनी मेधा होती है, उतनी जल्दी सपना टूट जाता है। जितनी प्रतिभा होती है, उतनी जल्दी सपना टूट जाता है। प्रतिभा की कसौटी क्या है?
पश्चिम में प्रतिभा की जो कसौटी है, वह पूरब में नहीं है। पूरब की अपनी कसौटी है। और पूरब की कसौटी बड़ी बहुमूल्य है।
पश्चिम में प्रतिभा की कसौटी है--तुम्हारा आई क्यू कितना? इंटेलिजेंस कोसिएंट कितना? परीक्षा में तुम कितने अंक पाते हो? अगर सौ के इस तरफ है तो साधारण, अगर सौ के उस तरफ है तो विशेष, अगर डेढ़ सौ के आगे गया तो बहुत विशेष, अगर दो सौ के करीब पहुंच गया तो तुम महाप्रतिभावान; और इधर पचास के नीचे गिर गया तो बुद्धू, और तीस के नीचे गिर गया तो बिल्कुल जड़। बुद्धि मापी जाती है आंकड़ों में। कितने प्रश्न हल कर सकते हो?
पूरब की परीक्षा कुछ और है। पूरब कहता हैः कितने जागे हो? कितने प्रश्न हल कर सकते हो, यह सवाल नहीं है। कितना जागरण? जागरण की मात्रा कितनी है? अवेयरनेस कोसिएंट, ए क्यू, कितना होश है? चीजें जैसी हैं उनको वैसा ही देख पाते हो कि अभी भी सपने का प्रक्षेपण चलता है?
बुद्ध को हम प्रतिभाशाली कहते हैं। आइंस्टीन को हम प्रतिभाशाली न कह सकेंगे। यद्यपि मरने के कुछ दिन पहले उसे थोड़ा-थोड़ा जागरण आना शुरू हुआ था, थोड़ी करवटें उसने बदलनी शुरू की थीं। आइंस्टीन बुद्धिमान तो था, मेधावी नहीं था। मेधा तो वही, जो जगत के सारे सपनों को उखाड़ दे और जगत के सत्य को दिखला दे। लहरें विदा हो जाएं और सागर दिखाई पड़ जाए। नाम-रूप खो जाए और यथार्थ दिखाई पड़ जाए। यथाभूतम्। वह जो सब भूतों का अंतर्तम है, वह जो सब अस्तित्व के भीतर छिपा हुआ महा अस्तित्व है, वह दिखाई पड़ जाए; परमात्मा अनुभव में आ जाए तो हम कहते हैं--प्रतिभा, मेधा; तो हम कहते हैं-- प्रज्ञा, बुद्धत्व।
शक्तित्वान्नानृतं वेद्यम्।
यह जो सब तरफ फैला हुआ दिखाई पड़ रहा है जगत, यह उसी की ऊर्जा की तरंग है। इसलिए मिथ्या तो नहीं है; माया जरूर है। मिथ्या कहो तो इसे छोड़ कर भागना पड़ेगा। माया कहो तो जाग कर जी लो, बस काफी है। इसलिए भक्त छोड़ कर नहीं भागता। ज्ञानी भगा.ेडा हो जाता है। ज्ञानी डरता है।
अब यह बड़े मजे की बात है! ज्ञानी कहता है मिथ्या और फिर डरता है। जब है
ही नहीं तो डरना क्या? होना तो यह चाहिए कि ज्ञानी डरे ही नहीं, ज्ञानी तो बाजार में रहे, घर-गृहस्थी में रहे। भागना कहां है? जब है ही नहीं--कहता तो है मिथ्या--मगर वह मिथ्या भी शायद अपने को समझाने के लिए कहता है। वह मिथ्या कहना भी संसार से लड़ने की ही उसकी एक तर्ज है, संसार से लड़ने की ही एक विधि है। मिथ्या कह कर अपने को समझाता है कि मिथ्या है, झूठ है, इसमें रखा क्या है?
एक जैन मुनि से मेरा मिलना हुआ, उन्होंने अपनी एक कविता सुनाई। कविता थी, कविता की दृष्टि से बड़ी अच्छी थी, मगर मुनि के मुंह से ठीक नहीं थी। हालांकि उनके भक्तों ने बड़े सिर हिलाए। क्योंकि साधारणतः कोई भी कहता कि बात बिल्कुल गजब की है, ठीक है, यही तो कहा जाता रहा है सदियों से।

मुनि ने अपनी कविता में कहा था कि तुम रहो अपने राजमहलों में, मेरे लिए तो तुम्हारे राजमहल मिथ्या हैं। तुम मजा कर लो संसार में, मेरे लिए संसार तो मिथ्या है। तुम बैठो सिंहासनों पर अपने, मैं तो अपनी धूल में ही मस्त हूं।
बिल्कुल ठीक। साधारणतः यही कहा जाता है, सारे महात्मा यही कहते हैं, इसमें कुछ नया भी नहीं था। भक्तों ने सिर हिलाया।
मैंने उनसे कहा, अगर यह बात सच ही है कि राजसिंहासन मिथ्या हैं, तो उनका उल्लेख क्यों? उनकी चर्चा क्यों? अगर राजमहल हैं ही नहीं, तो किसकी बातें कर रहे हो? कौन राजमहल में रहता है फिर? और मजा यह है कि राजाओं ने कभी नहीं लिखीं ये कविताएं। उन्होंने कभी नहीं कहा कि तुम मजा करो अपनी धूल में, हम तो अपने राजमहल में ही ठीक! तुम कर लो मजा, धूल में रखा क्या है, सब मिथ्या है, हम तो अपने राजमहल में ही ठीक! तुम कर लो मजा अपनी फकीरी में, सब मिथ्या है, हम तो अपने सिंहासन पर ही ठीक! ऐसा किसी राजा ने कभी नहीं कहा। लेकिन मुनि सदा से कहते रहे हैं। लगता है मुनि के मन में कहीं छिपी ईर्ष्या है। मुनि के मन में कहीं छिपी लिप्सा है, वासना है। दिखता तो उसे भी है कि सोने का महल रहने योग्य है, मजा तो वहां है, लेकिन अब अपने को झुठला रहा है, अपने को समझा रहा है, लीपा-पोती कर रहा है, कह रहा है कि क्या रखा है वहां। यह कविता किसी और को समझाने के लिए नहीं है, यह कविता अपने को ही समझाने के लिए है कि वहां कुछ नहीं है, सब मिट्टी है, सब पानी के बबूले हैं। अगर पानी के ही बबूले हैं तो इतना भी श्रम क्या करते हो? यह कविता भी किसलिए लिखी? पानी के बबूलों के निवेदन में यह कविता लिखी जाती है? जरूरत क्या है? बात खतम हो गई।
कहते हैं संसार माया है। और अगर संसार को माया, मिथ्या कहने वाले व्यक्ति को अगर कोई स्त्री छू ले, तो वह एकदम घबड़ा जाता है! यह घबड़ाहट क्या? जो है ही नहीं, उसके छूने से इतने क्या घबड़ा गए? इतनी क्या परेशानी हो गई?
मैं एक सभा में निमंत्रित था, वहां एक जैन मुनि भी निमंत्रित थे। वे आकर द्वार पर ठिठक कर खड़े हो गए। बिछी हुई दरी हटानी पड़ी। मैंने पूछा, मामला क्या है?
उन्होंने कहा कि वे दरी पर नहीं चल सकते, क्योंकि दरी पर स्त्रियां बैठी हुई हैं।
दरी पर स्त्रियां बैठी हुई हैं, दरी तक स्त्री हो गई! अब वे दरी पर कैसे चलें? दरी में तक खतरा है। और मैं जानता हूं कि खतरा हो सकता है। दबाया होगा स्त्री के प्रति मन को बहुत, तो अब वह दरी से भी रस ले सकता है। तुम्हारे दमन से भरे अनेक शास्त्र कहते हैं--जिस जगह स्त्री बैठी हो, कितनी देर तक उस जगह फिर मुनि को नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि काफी देर तक स्त्री की तरंगें उस जगह को घेरे रहती हैं। स्त्री झूठ है, झूठ जा चुका, झूठ की तरंगें अभी बैठी हैं! उस जगह पर बैठना मत। ये कौन लोग हैं? ये रुग्ण-चित्त की दशाएं मालूम होती हैं, इन्हें चिकित्सा की आवश्यकता है। ये विक्षिप्त लोग मालूम होते हैं।
भक्ति ज्यादा स्वस्थ है।
शांडिल्य कहते हैंः मिथ्या मत कहो, क्योंकि है तो। लेकिन माया कहा जा सकता है। माया का अर्थ कि जब तक तुम नशे में हो तब तक मालूम होता है सच, जब तुम्हारा नशा टूटता है तब मालूम होता है झूठ। असली सवाल नशा तोड़ने का है। एक झूठ से दूसरे झूठ को तोड़ने से क्या होगा?
मैंने सुना है, एक आदमी सिर पर एक टोकरी लिए चला आता था। उस टोकरी में छेद थे कई। साथ चलते हुए एक राहगीर को जिज्ञासा उठी, उसने कहा, इस टोकरी में आप क्या लिए हैं? इसमें बड़े छेद हैं! उसने कहा, इसमें मैं नेवला ला रहा हूं। नेवला! छेद किसलिए किए हैं? तो उसने कहा, छेद इसलिए किए हैं कि वह श्वास ले सके। नेवला किसलिए ला रहे हो? उस आदमी ने पूछा, नेवले की क्या जरूरत? नेवले का क्या उपयोग? उसने कहा, बात यह है कि मुझे जरा शराब पीने की आदत है। और जब मैं ज्यादा पी लेता हूं तो मुझे सांप दिखाई पड़ते हैं। उन सांपों के लिए नेवला ला रहा हूं, क्योंकि कहते हैं नेवला सांपों को खा

जाता है या टुकड़े-टुकड़े कर देता है। उस आदमी ने कहा, मेरे भाई, लेकिन अभी तो तुम होश में हो। वे जो सांप तुम्हें जब तुम शराब पीते हो दिखाई पड़ते हैं, सच्चे नहीं होते। तो उसने कहा, यह नेवला ही कौन सच्चा है? खाली डिब्बा है! मगर अपने को भरमाने के लिए। इसको रखेंगे पास, जब नकली सांप हमला करेंगे, नकली नेवला छोड़ देंगे।
संसार मिथ्या है। फिर ये योग, जप-तप, ये सब झूठे नेवले हैं। अगर संसार
है ही नहीं, तो ये विधि-विधान संसार से छूटने के, इनका क्या अर्थ है? बीमारी ही नहीं है, तो यह औषधि किसलिए ढो रहे हो? मगर बीमारी झूठ है, और तुम जानते हो औषधि भी झूठ है।
शांडिल्य ज्यादा ठीक बात कहते हैं। वे कहते हैं, बीमारी झूठ है, ऐसा
मत कहो; बीमारी है तो। मिथ्या है। जब तक चढ़ी है सिर पर, तब तक है। जब तक होश नहीं है, तब तक है। जब तक ध्यान नहीं है, तब तक है। जब तक जागरण नहीं घटा है, तब तक है। और जब जागरण घटेगा, तब तुम पाओगे कि लहर असत्य नहीं थी। लहर को ही देखा था, इसलिए भूल हो गई थी। लहर के पीछे छिपा सागर है। नाम के पीछे छिपा अनाम है। रूप के पीछे छिपा अरूप है। दृश्य के पीछे छिपा अदृश्य है। भूल हमारी थी कि हम ऊपर ही ऊपर रुक गए, सतह पर रुक गए और गहरे में न गए।
यह जो भी दिखाई पड़ता है, उसी परमात्मा की ऊर्जा है; इसलिए मिथ्या नहीं
हो सकता। इस जगत में मिथ्या कुछ भी नहीं है। माया है। माया का अर्थ झूठ नहीं होता, माया का अर्थ होता है--सपना। जब तक नींद है, तब तक सच है। इस दृष्टि से देखने पर संसार से भागने की कोई जरूरत नहीं रह जाती; जागने की जरूरत रह जाती है, भागने की जरूरत नहीं रह जाती। भगोड़े मत बनना। जगोड़े बनो। जागो।
तत्परिशुद्धिश्च गम्यालोकवल्लिंगेभ्यः।
"उसकी भक्ति की शुद्धता मनुष्यों के चिह्न से अनुभव होगी।"
और कैसे जानोगे कि कोई जाग गया? कैसे पहचानोगे कि किसी में भक्ति का उदय हुआ? कैसे जानोगे कि किसी की चेतना शुद्ध हुई? कैसे जानोगे कि कोई प्रभु से जुड़ा? तो तुम्हारे लिए कुछ लक्षण देते हैं--भक्त को कैसे पहचानोगे? और तुम्हारे भीतर भक्ति उमग रही है, इसको कैसे पहचानोगे? तुम्हारे भीतर वस्तुतः यात्रा शुरू हो गई परमात्मा की तरफ, इसकी पहचान क्या होगी? कसौटी क्या होगी?
भक्ति की परिशुद्धि का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति ही होता है। प्रीति तो प्रीति है, लौकिक हो कि अलौकिक हो, उसके लक्षण तो एक जैसे हैं। गहराई बढ़ जाती है। कोई अपनी पत्नी के लिए रो रहा है। निश्चित ही रोना है, मगर आंसू बहुत गहरे नहीं हो सकते। आंसुओं में पैसिफिक सागर की गहराई नहीं हो सकती। आंसू ऐसे ही होंगे जैसे वर्षा में डबरे बन जाते हैं सड़क के किनारे। कोई परमात्मा के लिए रो रहा है। उसके आंसुओं में पैसिफिक सागर की गहराई होगी, अनंत गहराई होगी। आंसुओं में उतनी ही गहराई होती है, जितनी प्रीति की गहराई होती है। प्रीति की गहराई साधारण लोगों में तुम कितनी कर सकते हो? साधारण लोगों में ही गहराई नहीं है। अब तुम एक बहुत बड़ा जहाज ले आओ और वर्षा में बन गए डबरे में चलाओ, तो चले कहां? जहाज के लिए सागर चाहिए। जितना बड़ा सागर हो उतना बड़ा जहाज चल सकता है। डबरे में तो कागज की नाव ही चल सकती है। डबरे में असली नाव नहीं चल सकती; खिलौनों की नाव, प्लास्टिक की नाव चल सकती है। नाव नाममात्र को होगी, उसमें तुम बैठ नहीं सकते।
साधारण जीवन में जो प्रीति देखी जाती है, वह डबरों की प्रीति है। मगर लक्षण तो वही हैं। डबरे में भी पानी तो वही है जो सागर में है। और डबरे के पानी का भी विश्लेषण करो तो एक बूंद के विश्लेषण में भी वही एच टू ओ, वही उदजन और आक्सीजन मिल जाएगी जो सारे सागरों में भरी पड़ी है। उस अर्थ में भेद नहीं है। और इसीलिए भक्ति में एक अपूर्व विज्ञान है कि वह लोक को अलोक से जोड़ती है। ज्ञान लोक को अलोक से तोड़ता है, वह दुश्मनी पैदा करवाता है। वह कहता है, यह संसार परमात्मा के विपरीत है। भक्ति कहती है, यह संसार परमात्मा का है, विपरीत कैसे हो सकता है? उथला है जरूर, मगर इस उथले में

तैरना सीख लो ताकि गहरे में जा सको। गहरे में कोई सीधा नहीं जा सकता, उथले में तैरना सीखना होता है। यह संसार उथला परमात्मा है, इसमें तैरना सीख लो। कभी तैरना सीखने गए हो? तो जब तैरना सिखाने कोई बैठता है तुम्हें, तो पहले उथले में सिखाएगा, नदी के किनारे-किनारे, गले-गले तक ले जाएगा। एक बार तैरना सीख लिया तो फिर तुम कितनी ही गहराइयों में जाओ, फिर कोई भेद नहीं पड़ता, फिर कुछ अंतर नहीं पड़ता, उथला पानी हो कि गहरा, सब बराबर है, तैरने वाले को सब बराबर है। लेकिन गैर-तैरने वाले को सब बराबर नहीं है, गहरे में जान संकट में आ जाएगी। उथले में तुम अपने को सम्हाल रख सकते हो।
संसार उथला परमात्मा है। छोटे-छोटे डबरों में भरा परमात्मा है। छोटी- छोटी देहों में भरा परमात्मा है। यहां तैरना सीख लो। यहां प्रेम करना सीख लो। यहां प्रेम की कला से अभिज्ञ हो जाओ। फिर दूर तक यात्रा हो सकती है। फिर तुम डुबकी मार सकते हो। लक्षण वही हैं।
शांडिल्य कहते हैंः भक्ति की परिशुद्धि का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति बाह्य चिह्नों से ही होता है। जैसे लोक में प्रीतम की चर्चा से प्रिया के पुलक अश्रुपात होते हैं, या गदगद भाव पैदा होता है, या चेहरे पर एक आभा छा जाती है।
तुमने देखा, किसी से उसके प्रेमी की बात करो, उसकी आंखों में रौनक आ जाती है। जो आंखें अभी-अभी मंदिम-मंदिम मालूम होती थीं, फीकी-फीकी मालूम पड़ती थीं, जिन पर धूल जमी थी, अचानक आंखों में एक तेज आ जाता है। किसी से किसी के प्रेमी की बात करो, उसका चेहरा जो फीका-फीका, बुझा-बुझा था, उस पर कोई ज्योति जल उठती है। उसका जीवन जो उदास-उदास और हारा-हारा था, जरा उससे प्रेमी की बात करो, स्फूर्ति का जन्म हो जाता है। जैसे किसी ने प्राणदायक औषधि दे दी। सिर्फ स्मरण पर्याप्त होता है। अभी जो घसिट-घसिट कर चल रहा था, वह नाचने को तत्पर हो जाता है। किसी से किसी के प्रेमी की बात करो, उसकी आंखों से आंसुओं की धार लग जाती है। आंसू गीत हैं, आंसू संगीत हैं; आंसू हृदय का भाव हैं।
शांडिल्य कहते हैंः जैसे लोक में प्रीति के लक्षण होते हैं, ऐसे ही लक्षण भक्ति के भी होते हैं। भगवत-कथा सुन कर, कि श्रवण सुन कर, कि नाम संकीर्तन सुन कर, कि कहीं चार भक्त बैठे हों मस्ती में प्रभु की महिमा का बखान करते हों, गदगद भाव का जन्म होता है, आंख से आंसू बहने लगते हैं। रोमांच हो आता है। व्यक्ति इस जगत का हिस्सा नहीं रह जाता, किसी और लोक में प्रवेश कर जाता है। इस अपूर्व अवसर का नाम सत्संग है। जहां बैठ कर तुम गदगद हो जाओ, जहां बैठ कर तुम्हारी आंखें आंसुओं से भर जाएं, जहां बैठ कर तुम्हारे हृदय में नई पुलक, नई उमंग उठे, जहां बैठ कर तुम्हें प्रभु का स्मरण आने लगे, जहां बैठ कर तुम्हें याद आए कि अरे, मैं अपने जीवन के साथ क्या करता रहा हूं? कूड़ा-कर्कट ही बीनने में बिता दूंगा सब? और हीरे- जवाहरातों की खदान पास ही है। और मैं डबरों में ही तैरता रहूंगा? और सागर इतने निकट है। विराट इतने पास है।

उफक के दरीचों से किरणों ने झांका
फजा तन गई, रास्ते मुस्कुराए
सिमटने लगी नर्म कुहरे की चादर
जवां शाखसारों ने घूंघट उठाए
परिंदों की आवाज से खेत चौंके
पुर-असरार लय में रहट गुनगुनाए
हसीं शबनम-आलूद पगडंडियों से
लिपटने लगे सब्ज पेड़ों के साए
वो दूर एक टीले पे आंचल सा झलका
तसव्वुर में लाखों दीये झिलमिलाए

तुम अगर अपने प्रेमी की राह देख रहे हो, तुम अगर अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहे हो, जरा दूर एक आंचल सा झिलमिला जाए, लाख दीये जल जाते हैं हृदय में। जरा किसी की पगध्वनि सुनाई पड़ जाए, सरगम छिड़ जाता है हृदय

में। जरा कोई हवा का धक्का ही सही द्वार पर चोट कर जाए, तुम भागे, शायद जिसकी प्रतीक्षा थी वह आ गया। देखते हो उस क्षण तुम्हारे भीतर क्या घटता है? उसको ही अनंतगुना कर लो, तो तुम्हें भक्त के लक्षण का पता चलेगा। उसकी भक्ति की शुद्धता मनुष्यों के चिह्न से अनुभव होगी।
और ये चिह्न, ख्याल रखना, दूसरों की कसौटी और परीक्षा के लिए नहीं शांडिल्य ने दिए हैं। शांडिल्य पर बहुत सी टीकाएं लिखी गई हैं और बहुत से अनुवाद किए गए हैं, लेकिन सभी टीकाओं में और सभी अनुवादों में एक बात मुझे दिखाई पड़ी कि उन सबने यह मान लिया है कि शांडिल्य ये लक्षण दूसरों की पहचान के लिए दे रहे हैं--कि कैसे भक्तों को पहचानोगे?
शांडिल्य ये लक्षण दूसरों की पहचान के लिए नहीं दे रहे हैं। दूसरों
से क्या लेन-देन है? ये तुम्हारे भीतर पहचानने के लिए लक्षण हैं। ये तुम्हारी अंतर्यात्रा के लिए सुगम उपाय हैं।
और फिर दूसरा तो धोखा भी दे सकता है। आखिर फिल्म-अभिनेता को तुम देखते
ही हो न, उसे कोई प्रेम नहीं है और प्रेम प्रकट कर रहा है। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि प्रेमी भी उतना प्रेम प्रकट नहीं कर सकते जैसा अभिनेता करता है। और अभिनेता जानते हैं कि जब आंसू नहीं भी आ रहे हैं तब भी कैसे बुला लिए जाएं--और आंसू टपकने लगते हैं, बड़ी-बड़ी बूंदें प्रकट होती हैं। जब नहीं हंसना है तब अभिनेता हंसता है, जब नहीं रोना है तब रोता है। जहां प्रेम नहीं है वहां प्रेम प्रकट करता है। जहां क्रोध नहीं है वहां क्रोध की लपट आती है। अभिनय का अर्थ ही यही है कि जो वस्तुतः नहीं हो रहा है वह ऐसा मालूम पड़े कि वस्तुतः हो रहा है।
तो तुम ख्याल रखना, ये लक्षण दूसरों के लिए नहीं हैं। दूसरे तो हो सकता है अभिनेता हों। और ऐसा अक्सर है। तुम लोगों को बैठे देखोगे रामकथा सुनते और डोलते, उनमें से सौ में निन्यानबे अभिनेता हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि डोलना चाहिए, इसलिए डोल रहे हैं। क्योंकि डोलने से दूसरे समझेंगे कि वे धार्मिक हैं। रोना चाहिए, इसलिए रो रहे हैं। चाहिए के कारण। घटना घट नहीं रही है, वस्तुतः नहीं घट रही है। सब ऊपर-ऊपर हो रहा है। सब औपचारिक है। तुम भी तो मुस्कुराते हो जब नहीं मुस्कुराना। तुम भी तो हंसते हो जब हंसी नहीं आती। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और।
नहीं, तुम्हें दूसरे की पहचान के लिए सूत्र नहीं देंगे शांडिल्य। असल में धार्मिक व्यक्ति दूसरे की पहचान करने की झंझट में पड़ता ही नहीं। जरूरत क्या है? लेना-देना क्या है? कौन भक्त है, कौन नहीं है, इसकी तुम्हें क्या चिंता है? तुम्हें एक ही चिंता होनी चाहिए कि मेरे जीवन में अभी वह परम घटना शुरू हुई या नहीं? मेरे भीतर भक्ति का आविर्भाव हुआ या नहीं? तुम्हारे भीतर हृदय गदगद होता है या नहीं? तुम्हारे भीतर हृदय में एक सरसरी दौड़ जाती है या नहीं? तुम्हारे भीतर धड़कनें कुछ तेज हो जाती हैं या नहीं? तुम्हारे शरीर में रोमांच होता है या नहीं? उस पर ध्यान रखना।
वे लक्षण होंगे कि प्रीति की पहली-पहल घटना घटनी शुरू हुई, अंकुरण हुआ प्रीति का। आषाढ़ के पहले मेघ घिरे। जल्दी ही खूब बरसा होगी। और जब प्रीति के लक्षण तुम्हें पकड़ में आ जाएं अपने भीतर तो डरना मत। क्योंकि वे प्रीति के लक्षण दूसरों को तो समझ में आएंगे कि तुम शायद पागल हो गए हो। यह भी क्या बात हुई!
रामकृष्ण के साथ ऐसा रोज हो जाता था। उनको कहीं ले जाना मुश्किल होता था। क्योंकि किसी ने रास्ते में जयरामजी कर ली, वे वहीं भाव-विह्वल हो जाते। जिसने की थी उसने तो सिर्फ औपचारिक जयरामजी की थी, नमस्कार की बात थी, उसमें रामजी से तो कुछ लेना भी नहीं था उसे। लेकिन रामकृष्ण को तो राम का नाम ही सुना कि बेखुदी आ जाती, मस्ती आ जाती। राम का नाम क्या था शराब था! वे वहीं खड़े हो जाते चौरस्ते पर, आंखें आकाश की तरफ उठ जातीं, शरीर जड़ हो जाता, या गिर जाते रास्ते पर, आंख से आंसू बहने लगते, शरीर में रोमांच हो जाता, भीड़ इकट्ठी हो जाती। उन्हें कहीं ले जाना मुश्किल था! निश्चित ही लोग पागल समझते थे। निश्चित ही चिकित्सक मानते थे कि यह कुछ हिस्टीरिया जैसी चीज है, कुछ मिरगी जैसी बीमारी है।

मगर मैं तुमसे कहता हूंः चाहे चिकित्सक सही ही क्यों न हों, रामकृष्ण पागल ही रहे हों और उन्हें मिरगी की बीमारी के दौरे ही पड़ते रहे हों, तो भी मैं तुमसे कहूंगा, चिकित्सकों से और उनके स्वास्थ्य से रामकृष्ण का पागलपन बेहतर है। क्योंकि रामकृष्ण परम आनंद में जीए।
तुम जब अपने भीतर भक्ति के इन लक्षणों को देखोगे तो रोकना मत। तुम्हारा मन यही कहेगाः रोक लो! लोग क्या कहेंगे, लोग क्या समझेंगे! लोग पागल मानेंगे, सम्हाल लो अपने को! ये लक्षण शांडिल्य इसीलिए गिना रहे हैं ताकि जब ये घटें तो तुम सम्हालना मत, होने देना, प्रकट होने देना। इनमें दूर जाना है, इनमें डूब जाना है। इन्हीं के सहारे यात्रा होनी है। यही वाहन है।
और जहां बन सके, जितना बन सके, जिस प्रकार से बन सके, उतना समय भगवत-कथा में लगाना। जहां चर्चा होती हो भगवान की, वहां बैठ जाना, लाख काम छोड़ कर बैठ जाना। जहां कोई राम-भजन होता हो, जहां संकीर्तन होता हो, जहां कोई मस्ती में नाचता हो, हजार काम छोड़ देना, नाच लेना उसके साथ। न नाच सको तो कम से कम उसके पास बैठ लेना, कम से कम उसकी नाचती हुई ऊर्जा की थोड़ी वर्षा तुम पर हो जाए, थोड़े छींटे तुम पर पड़ जाएं, थोड़ी संभावना तुम्हारे भीतर भी प्रकट होने लगे, एकाध बीज शायद तुम्हारे हृदय में चला जाए; कौन जाने कब, किस शुभ क्षण में, किस मुहूर्त में, तुम्हारा भाव-द्वार खुला हो और प्रभु- स्मरण पकड़ जाए! पकड़ जाए तो यात्रा शुरू हो जाए। जब तुम्हारे हृदय में एकाध बीज पड़ जाता है, फिर तुम्हारे बस के बाहर हो जाएगी बात। फिर तुम्हें खोज करनी ही होगी, फिर तुम्हें तलाश पर जाना ही होगा।
ये बाह्य लक्षण हैं, आंतरिक लक्षण भी पैदा होंगे।
सम्मान बहुमान प्रीति विरहेतर विचिकित्सा
महिमख्याति तदर्थ प्राण स्थान
तदीयता सर्व तद्भावा
प्रातिकूल्यादीनिच स्मरणेभ्यो बाहुल्यात्।
"सम्मान, बहुमान, प्रीति, विरह, इतर विचिकित्सा, महिमा कीर्तन, प्रीतम
के अर्थ जीना, तदीयता, तद्भाव, अप्रातिकूल्य इत्यादि प्रेम के आंतरिक लक्षण प्रकट होंगे।"
"सम्मान।"
जो व्यक्ति जरा सी भी प्रभु की खोज से भर जाएगा, इस जगत के प्रति, इस अस्तित्व के प्रति उसमें महा सम्मान पैदा होगा। छोटी-छोटी बातों के प्रति सम्मान पैदा होगा--फूलों के प्रति, चांद-तारों के प्रति, सूरज के प्रति, नदी-पहाड़ों के प्रति। क्योंकि यह सब उसी विराट की लीला है। इन सबमें वही अनेक-अनेक रूपों में आया है। तब तुम वृक्ष को ऐसा नहीं देखोगे कि सिर्फ वृक्ष, तब वृक्ष में तुम उसी की महिमा देखोगे--वही हरा होकर प्रकट हुआ, वही लाल होकर फूल बना है। तब तारों में तुम इतना ही नहीं देखोगे कि सिर्फ तारे हैं--जैसा वैज्ञानिक देखता है--तब तुम्हें तारों में उसी की रोशनी, उसी का रूप, उसी का सौंदर्य झलकता हुआ दिखाई पड़ेगा। सम्मान पैदा होगा। रेवरेंस। पश्चिम के बड़े विचारक श्वीत्जर ने रेवरेंस फॉर लाइफ, जीवन के प्रति सम्मान को धार्मिक व्यक्ति का आधारभूत गुण माना है। शांडिल्य उसी की चर्चा कर रहे हैं। ऐसा व्यक्ति किसी भी चीज को ता.ेड नहीं सकता। जोड़ सके तो जोड़ेगा, तोड़ नहीं सकेगा। एक पत्ते को भी नहीं तोड़ सकेगा वृक्ष से; एक फूल को नहीं तोड़ सकेगा। इतना सम्मान होगा उसके भीतर। क्योंकि कुछ भी तोड़ो, परमात्मा ही तोड़ा जाता है। कुछ भी मिटाओ, परमात्मा ही मिटता है। विध्वंस उसके जीवन से समाप्त हो जाएगा। उसके जीवन में सृजनात्मकता होगी। उसके जीवन में सृष्टि के प्रति सम्मान के साथ ही साथ सृजन का आविर्भाव होगा। दूसराः "बहुमान।"
शांडिल्य तृप्त नहीं हुए सिर्फ सम्मान से। सम्मान साधारण है। बहुमान
भी पैदा होगा। जितना करेगा उतना ही थोड़ा लगेगा। सब उड़ेल देगा, फिर भी लगेगा कि पूरा धन्यवाद नहीं कर पाया। इतना दिया है परमात्मा ने, इतना दिए जाता है। कैसे उऋण हो सकता हूं? बहुमान पैदा होगा। अपार कृतज्ञता का भाव पैदा होगा।

भक्त सब जगह झुका होगा। देखा न, जैसे वृक्ष जब फलों से लद जाते हैं तो झुक जाते हैं। भक्त फलवान हो गया। झुक जाएगा। सब तरफ झुका होगा। वृक्षों के चरण छू लेगा। नदियों की पूजा कर लेगा। पर्वतों की श्रद्धा करेगा। सूरज को नमस्कार करेगा। सारा जगत देवी-देवताओं में परिवर्तित हो जाएगा। यही हुआ था। जो लोग इस सत्य को नहीं जानते हैं, नहीं पहचानते हैं, उन्हें बहुत हैरानी होती है कि क्यूं इस देश में लोग सूरज को पूजते हैं? सूरज भी कोई पूजने की बात है! सूरज कोई देवता है! चांद को पूजते हैं! चांद में क्या रखा है? अब तो आदमी भी उस पर चल लिया!
उन्हें पता नहीं है कि भक्त सब तरफ भगवान को देखता है। प्रत्येक चीज दिव्य हो जाती है, देवता हो जाती है, क्योंकि प्रत्येक चीज में परमात्मा का प्रतिफलन होने लगता है। प्रत्येक चीज दर्पण हो जाती है, उसी का रूप झलकता है।
"प्रीति।"
गहन प्रीति पैदा होगी। उस व्यक्ति के जीवन में प्रीति ही प्रीति की तरंगें होंगी। उठेगा, बैठेगा, चलेगा, सोएगा, और तुम पाओगे उसके चारों तरफ प्रीति का एक सागर लहराता। तुम उसके पास भी आ जाओगे तो उसकी प्रीति से भर जाओगे। तुम उसके पास आ जाओगे, तुम्हारी हृदय-वीणा झंकार करने लगेगी।
"इतर विचिकित्सा।"
परमात्मा के अतिरिक्त उसे और सब चीजों में अरुचि हो जाएगी--स्वाभाविक अरुचि। विराग नहीं, अरुचि। चेष्टा नहीं होगी उसकी, लेकिन उसे और किसी चीज में रुचि नहीं रह जाएगी। कहीं लोग बैठ कर धन की बात करते हैं, तो वह बैठा रहे वहां, लेकिन उसे रुचि नहीं होगी। कहीं कोई किसी की बात करते हैं कि हत्या हो गई, वह बैठा भी रहे वहां तो उसे रुचि नहीं होगी। हां, कहीं कोई प्रभु का गुणगान करता हो तो वह एकदम सजग हो जाएगा, एकदम लपट आ जाएगी उसके जीवन में।
विरह पैदा होगा। और जितना-जितना भगवान की पहचान होगी, उतने ही विरह की भाव-दशा बनेगी। जितनी पहचान होगी, उतनी ही पाने की आकांक्षा जगेगी। जितने करीब आएगा, उतनी ही दूरी मालूम होगी। विरह का मतलब होता हैः जितने करीब आएगा, उतनी ही दूरी मालूम होगी। जब पता ही नहीं था तब तो दूरी भी नहीं थी। तब तो खोजते ही नहीं थे तो दूरी कैसे होती? अब जैसे-जैसे करीब आएगा, जैसे- जैसे झलक मिलेगी, वैसे-वैसे लगेगा--कितनी दूरी है! जैसे साधारण प्रेमी में विरह होता है, वही विरह विराट होकर भक्त में प्रकट होगा।
चांद मद्धम है, आस्मां चुप है
नींद की गोद में जहां चुप है

दूर वादी में दूधिया बादल
झुक के पर्वत को प्यार करते हैं
दिल में नाकाम हसरतें लेकर
हम तेरा इंतजार करते हैं

इन बहारों के साए में आ जा
फिर मोहब्बत जवां रहे न रहे जिंदगी तेरे नामुरादों पर
कल तक मेहरबां रहे न रहे

रोज की तरह आज भी तारे
सुबह की गर्द में न खो जाएं आ तेरे गम में जागती आंखें कम से कम एक रात सो जाएं

चांद मद्धम है, आस्मां चुप है नींद की गोद में जहां चुप है

जैसे प्रेमी चौबीस घंटे हर चीज से अपनी प्रेयसी की ही स्मृति से भर जाता है--आकाश में चांद है तो उसे प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता है; बगिया में गुलाब खिला तो उसे प्रेयसी की याद आती है; कोयल ने कुहू-कुहू की कि उसकी प्रेयसी ने ही जैसे उसे पुकारा--हर चीज निमित्त बन जाती है, बहाना बन जाती है। यह तो साधारण डबरों का प्रेम। लेकिन जब तुम विराट सागर के प्रेम में पड़ोगे तब तो निश्चित ही हर चीज, निश्चित ही हर चीज विरह को जगाएगी। हर चीज उसी की याद लेकर आएगी। तीर पर तीर तुम्हारे हृदय में चुभे जाएंगे।

आज फिर चांद की पेशानी से उठता है धुआं
आज फिर महकी हुई रात में जलना होगा
आज फिर सीने में उलझी हुई वजनी सांसें
फट के बस टूट ही जाएंगी, बिखर जाएंगी
आज फिर जागते गुजरेगी तेरे ख्वाब में रात
आज फिर चांद की पेशानी से उठता है धुआं

प्रतिपल भक्त एक धधकता हुआ अंगारा हो जाता है। प्रतिपल भक्त के भीतर
बस एक ही अभीप्सा है, एक ही आकांक्षा, एक ही प्यास, एक ही भूख होती है--कैसे प्रभु से मिलन हो जाए? जितनी यह भूख बढ़ती, उतना ही परमात्मा करीब आता। जिस दिन प्यास पूर्ण हो जाती, उसी दिन प्रार्थना भी पूर्ण हो जाती। प्यास ही प्रार्थना है। और प्यास की परिपूर्णता ही परमात्मा का मिलन बन जाती है। कुछ और नहीं चाहिए, कोई और विधि-विधान काम का नहीं है। तुम्हारा रोआं-रोआं उसे पुकार सके, तुम्हारा कण-कण उसकी प्यास से भर सके, एक ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम्हारे भीतर उसकी प्यास के अतिरिक्त कुछ भी न बचे, ऐसी त्वरा हो, ऐसी तीव्रता हो, बस उसी तीव्रता में, उसी त्वरा में घटना घट जाती है। कुछ टूट जाता है। कुछ यानी तुम्हारा अहंकार। और जहां तुम्हारा अहंकार टूटा कि तुम चकित होकर पाते हो--परमात्मा सदा से मौजूद था, तुम्हारी आंखों पर अहंकार का धुंध था, वह टूट गया है। परमात्मा कभी खोया नहीं था--मिला भी नहीं है, सिर्फ बीच में तुम सो गए थे, अहंकार की नींद में खो गए थे, नींद टूट गई है, संसार का सपना विदा हो गया है। तब भी यही वृक्ष होंगे, तब भी यही लोग होंगे, सब ऐसा ही होगा, और फिर भी सब नया हो जाएगा, क्योंकि तुम नये हो गए। फिर पत्थर में वही सोया मालूम होगा। फिर तुम्हारी पत्नी में भी वही है और पति में भी वही है; और बेटे में भी वही है और पिता में भी वही है। भक्त के लिए सारा अस्तित्व मंदिर हो जाता है।
"महिमा कीर्तन।"
भक्त को बड़ा आनंद आता है प्रभु की महिमा गाने में। क्योंकि जब भी वह उसकी महिमा का गुणगान करता है तभी अपने को भूल जाता है। उसकी महिमा का गुणगान अपने अहंकार से मुक्त होने का उपाय है।
तुमने देखा, लोग अपनी ही महिमा का गुणगान करते हैं। लोगों की बातें सुनो। जरा गौर करो, उनकी सारी बातों का निचोड़ क्या है? वे यही कह रहे हैं कि मेरे जैसा आदमी दुनिया में कोई दूसरा नहीं; सारी बातों का निचोड़ यही है। कोई कह रहा है, मैं जंगल शिकार करने गया, ऐसा शेर मारा कि किसी ने क्या मारा होगा! कोई मछली पकड़ लाया है तो उसका वजन बढ़ा-चढ़ा कर बता रहा है कि उसका वजन इतना है। कोई चुनाव जीत लिया है, कोई ताश के पत्तों में जीत लिया है। लोग सारे खेल कर रहे हैं, बात सिर्फ एक है कि मेरे जैसा कोई भी नहीं। मैं विशिष्ट हूं, मैं असाधारण हूं। सब दूसरों को छोटा करने में लगे हैं, अपने को बड़ा करने में लगे हैं। आदमी की सामान्य स्थिति क्या है? वह आत्म-स्तुति में लगा है।
भक्त भगवान की स्तुति में लगता है। उस स्तुति में ही लगते-लगते भगवान
हो जाता है। अपनी स्तुति में जो लगेगा, वह भगवान से छिटकता जाएगा; और जो भगवान की स्तुति में लग जाएगा, एक दिन भगवान हो जाएगा। वह जो विशिष्ट होने की आकांक्षा थी, उसी दिन पूरी होती है जब कोई बिल्कुल सामान्य हो जाता है। "महिमा कीर्तन, प्रीतम के अर्थ जीना।"

भक्त फिर अपने लिए नहीं जीता। इसलिए जीता है कि थोड़ी देर और परमात्मा
का गुणगान कर ले, थोड़ी देर और गीत गा ले, थोड़ी देर और प्रार्थना कर ले। उसके जीवन का एक ही लक्ष्य रह जाता है।

यही तोहफा है, यही नजराना
मैं जो आवारा-नजर लाया हूं
रंग में तेरे मिलाने के लिए
कतरा-ए-खूने-जिगर लाया हूं

पहले कब आया हूं कुछ याद नहीं लेकिन आया था कसम खाता हूं फूल तो फूल हैं, कांटों पे तेरे अपने ओंठों के निशां पाता हूं

फूल के बाद नये फूल खिलें
कभी खाली न हो दामन तेरा
रोशनी-रोशनी तेरी राहें
चांदनी-चांदनी आंगन तेरा

यही तोहफा है, यही नजराना
मैं जो आवारा-नजर लाया हूं

भक्त कहता हैः मेरे पास और क्या है, एक भटकती हुई आंख है--आवारा-नजर।
यही तोहफा है, यही नजराना
मैं जो आवारा-नजर लाया हूं
रंग में तेरे मिलाने के लिए
कतरा-ए-खूने-जिगर लाया हूं
जिगर के खून की एक बूंद, हृदय को चढ़ाने को लाया हूं, जीवन को चढ़ाने को लाया हूं।
आदमी ने बड़ी धोखे की ईजादें कर ली हैं। तुम जाते हो, फूल तोड़ कर मंदिर में भगवान पर चढ़ा आते हो। तुम समझते हो तुमने कुछ चढ़ाया। जब तक जिगर की बूंद न चढ़ाओगे तब तक कुछ नहीं चढ़ाया। अपना फूल चढ़ाओ। तुम गए और नारियल तोड़ आते हो! यह खोपड़ी जब तक न टूटे।
लोगों ने तरकीबें खोज ली हैं--नारियल जरा खोपड़ी जैसा मालूम पड़ता है। उसमें दो आंखें भी होती हैं, दाढ़ी-मूंछ भी होती है, और उसके भीतर जो है उसको हम खोपड़ा भी कहते हैं। लोगों ने सिर चढ़ाने की जगह नारियल चढ़ाना शुरू कर दिया! लोगों ने अपने जिगर का कतरा चढ़ाने की जगह सिंदूर चढ़ाना शुरू कर दिया! वह खून का प्रतीक है सिर्फ। लोगों ने अपने जीवन का फूल चढ़ाने की जगह वृक्षों के फूल चढ़ाने शुरू कर दिए। वे तो चढ़े ही हुए हैं! वे तो वृक्षों पर ही चढ़े ही थे! उन्हें तोड़ कर तुमने कुछ बढ़ोतरी नहीं की, कुछ घटाया ही। आदमी अपने को चढ़ाए। प्रीतम के अर्थ जीए, प्रीतम के अर्थ मरे।
"तदीयता।"
वह ही है, मैं नहीं हूं, ऐसी भक्त की भाव-दशा होती है।
"तद्भाव।"
वही सबमें है, सबमें वही है, ऐसी उसकी प्रतीति होती है। इन्हीं तरंगों में वह रंगता जाता अपने को, इन्हीं भावों से भरता जाता अपने को। "अप्रातिकूल्य।"
और भगवान के प्रतिकूल आचरण का उसमें अभाव होता है। वह कुछ भी नहीं कर सकता जो भगवान के प्रतिकूल हो, विपरीत हो। ऐसी कोई बात उससे नहीं हो सकती जो इस विराट अस्तित्व के विपरीत जाती हो। होगी भी कैसे? तदीयता पैदा हो गई--तू ही है, मैं नहीं हूं। तद्भाव पैदा हो गया--सबमें तू ही है।

कांटे का रंग

और कांटे की ताजगी
पांव से निकले हुए
खून में है

भीतर की बेचैनी और खुशी
आंख से टपकी
बूंद में है

मगर
न इसे कोई देखता है
न उसे कोई समझता है!

भक्त के पास सिर्फ भाव है चढ़ाने को। तदीयता का भाव। तद्भाव। भक्त अपने को मिटाता है और भगवान को आमंत्रित करता है। रो-रो कर भक्त अपने अहंकार को गलाता है, अपने को विदा देता है। जिस दिन अपने से खाली हो जाता है, उसी दिन से परमात्मा से भरने की संभावना शुरू हो जाती है। तुम मिटो तो परमात्मा हो। जब तक तुम हो, तब तक परमात्मा नहीं हो सकता है। ये उसके अंतर-लक्षण हैं।
द्वेषादयस्तु नैवम्।
"द्वेष बुद्धि आदि से ऐसा नहीं होता।"
भक्त संसार के प्रति कोई द्वेष बुद्धि से नहीं जीता। जैसा तथाकथित तपस्वी जीता है। तपस्वी के मन में संसार के प्रति बड़ा द्वेष है। तपस्वी सिर के बल खड़ा हो गया संसारी है। तुम्हारे भोगी में और तुम्हारे योगी में बहुत फर्क नहीं होता। तुम्हारे योगी और भोगी की भाषा एक ही होती है। भोगी धन पकड़ता है, त्यागी धन से भागता है--मगर दोनों ही धन से आलिप्त होते हैं। भोगी कहता हैः और धन हो जाए। त्यागी कहता हैः मैं धन से डरता हूं, धन छूटे। मगर दोनों धन से आतंकित हैं। एक मोह से भरा है, एक भय से; मगर आतंक दोनों में है। भोगी कहता हैः सुंदर स्त्री, और सुंदर स्त्री। और योगी डरा हुआ है। सुंदर क्या असुंदर स्त्री से भी डरा हुआ है। स्त्री से कहीं मिलना न हो जाए, वह भाग रहा है जंगलों की तरफ कि दूर स्त्री से निकल जाए। भोगी तलाश करता जाता है कि चलो पेरिस चलें। योगी भागता है हिमालय की गुफाओं में। मगर दोनों स्त्री से आतंकित हैं। दोनों में कुछ भेद नहीं है, भाषा एक ही है। एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं, लेकिन भाषा में कुछ भेद नहीं है। दोनों का तर्क एक है।
भक्त का तर्क भिन्न है। भक्त कहता हैः संसार से द्वेष करके तुम परमात्मा से प्रेम न कर सकोगे। प्रेमी द्वेष करना जानता ही नहीं। संसार से भी प्रेम करता है--इतना प्रेम करता है, इतना गहरा प्रेम करता है कि संसार के घूंघट उठ जाते हैं उस प्रेम में और संसार में ही छिपे हुए परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।
द्वेषादयस्तु नैवम्।
"द्वेष बुद्धि आदि से ऐसा नहीं हो सकता।"
यह जो भक्त की परम दशा है, यह प्रीति से ही हो सकती है, निरंतर प्रीति से, गहरी होती प्रीति से हो सकती है। इसे द्वेष से लाने का उपाय बुनियादी रूप से गलत है। संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है, तुम्हारे महात्माओं ने तुमसे कुछ भी कहा हो! तुम्हारे महात्मा गलत होंगे। संसार और परमात्मा में विरोध नहीं है। संसार परमात्मा का है, विरोध हो नहीं सकता। यहां हर चीज पर उसी का हस्ताक्षर है, उसी का चिह्न है, विरोध हो नहीं सकता। अगर तुम्हें विरोध दिखता है, तो तुम्हारी कहीं भ्रांति है। तुमने विरोध खड़ा कर लिया है। खोजो, टटोलो, और तुम उसे यहीं पाओगे छिपा हुआ। हर पत्थर को तोड़ो और तुम उसी को छिपा पाओगे धड़कते। हर पत्ते में तुम उसे हरा पाओगे। हर झरने में तुम उसे कलकल करता हुआ पाओगे। हर दीये में वही रोशन है और हर दिल में वही धड़कन है और हर श्वास में वही श्वास है।

द्वेष से नहीं, प्रेम से भरो। और यही भक्ति की निर्मलता है; और भक्ति
की सरलता, सहजता, स्वाभाविकता है। भक्ति तुम्हें अस्वाभाविक होने को नहीं कहती। भक्ति कहती हैः तुम्हें प्रेम तो मिला ही है, जन्म से ही लेकर आए हो, इसी प्रेम की सीढ़ी बना लो।
त्यागी उलटे कामों में लग जाता है, जो उसे जन्म से नहीं मिला है। कोई बच्चा जन्म से त्याग लेकर नहीं आता। त्याग सीखी भाषा है। लेकिन हर बच्चा प्रेम लेकर आता है। प्रेम सीखी भाषा नहीं है, निसर्ग की भाषा है। त्याग आदमी की ईजाद है, प्रेम परमात्मा का निर्माण है। परमात्मा पर भरोसा करो। तुमने देखा, छोटा बच्चा पैदा हुआ और प्रेम से गदगद रहता है। अभी सीखने
का तो मौका ही नहीं मिला। छोटे बच्चे की आंखों में झांका? कैसी सरल प्रीति! अभी किसी ने कुछ सिखाया भी नहीं। सच तो यह है, जैसे ही लोग सिखाएंगे वैसे ही प्रीति कम होती चली जाएगी। वैसे ही चालबाजियां बढ़ेंगी, द्वेष बढ़ेगा, बेईमानियां बढ़ेंगी; वैसे ही बच्चा राजनीति सीखेगा, कूटनीति सीखेगा, धोखाधड़ी सीखेगा; ढोंग सीखेगा, पाखंड सीखेगा; जवान होते-होते प्रीति के तो प्राण निकल जाएंगे, गर्दन घुट जाएगी; बूढ़ा होते-होते तो सब रेगिस्तान हो जाएगा, प्रीति का झरना खोजे से न मिलेगा कहां खो गया। लेकिन हर बच्चा प्रेम की बड़ी शुद्ध क्षमता लेकर आता है।
भक्ति कहती हैः इसी शुद्ध क्षमता को निखारो, परिशुद्ध करो, फैलाओ, बड़ा करो। इसी के सहारे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे। परमात्मा ने तुम्हें इस जगत में भेजा तो जरूर तुम्हारे भीतर कुछ रख दिया है पाथेय, कलेवा, जिससे रास्ता कट जाएगा। और कोई दीया तुम्हारे भीतर रख दिया है कि जब तुम्हें जरूरत होगी तो तुम जला लोगे और वापस घर लौट आओगे। कोई नक्शा तुम्हारे भीतर छोड़ दिया है कि कहीं तुम भटक ही न जाओ। कुछ सूत्र तुम्हारे भीतर रखा है कि जिस दिन भी तुम होश से अपने को समझोगे, तुम्हें धागा मिल जाएगा। उस धागे को पकड़ कर तुम यात्रा कर लोगे।
प्रेम तुम्हारे भीतर सूत्र है। प्रेम सूत्रों का सूत्र है। प्रेम स्वर्ण-सूत्र है। भक्त उसी पर भरोसा करता है, उसी को निखारता है--स्नेह से प्रीति बनाता है, प्रीति से श्रद्धा बनाता है, श्रद्धा को भक्ति में रूपांतरित करता है। एक-एक सोपान चढ़ते-चढ़ते एक दिन तुम पाते हो कि तुम्हारा प्रेम अपने पूरे आकाश को पा लिया, पूरा खिल गया।
इस प्रेम की पूरी खिलावट में, इस प्रेम के पूरे कमल के खिल जाने में उपलब्धि है--उसकी जिसे वस्तुतः कभी खोया नहीं, लेकिन हम किसी सपने में खो गए हैं, और जो है वह दिखाई नहीं पड़ रहा है, और जो नहीं है वह दिखाई पड़ने लगा है।
संसार माया है, उस परमात्मा की ही लीला, उसकी ही ऊर्जा। और संसार तुम्हारे लिए एक शिक्षण का अवसर है। सीखो। संसार प्रेम को निखारने की प्रक्रिया है। इसलिए तुम्हें प्रेम इतने जोर से पकड़ता है। प्रेम से बड़ी कोई शक्ति है इस जगत में? आदमी प्रेम के लिए जीवन भी दे देता है। कभी-कभी झूठे और सिखाए प्रेम के लिए भी जीवन दे देता है। जैसे मातृभूमि के प्रेम में कोई मर जाता है। वह सिखाया हुआ है और झूठा है। वह राजनैतिक चालबाजी है। नहीं तो कौन सा देश किसका है? सारी पृथ्वी सबकी है। लेकिन उसमें भी आदमी मर जाता है। कभी कुल के प्रेम में, परिवार के प्रेम में जान दे देता है। वह बड़ा क्षुद्र है, दो कौड़ी का है, लेकिन प्रेम ही इतना बहुमूल्य है कि कृत्रिम प्रेम भी कभी-कभी जीवन देने योग्य मालूम पड़ता है। तो असली प्रेम की तो बात ही हम क्या कहें! जिस दिन असली प्रेम पैदा होगा, उस दिन तुम चुपचाप अपनी जीवन-ऊर्जा को परमात्मा के चरणों में रख दोगे, तुम कहोगे--सब समर्पित है। उस समर्पण में ही क्रांति घट जाती है।
शांडिल्य को खूब हृदयपूर्वक समझना। शांडिल्य बड़ा स्वाभाविक सहज-योग प्रस्तावित कर रहे हैं। जो सहज है, वही सत्य है। जो असहज हो, उससे सावधान रहना। असहज में उलझे, तो जटिलताएं पैदा कर लोगे। सहज से चले, तो बिना अड़चन के पहुंच जाओगे।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
अठारहवां प्रवचन

विरह की परिपूर्णता ही परमात्मा से मिलन

पहला प्रश्नः कल आपने कहा कि जो सहज है वही भक्त है, वही भक्ति है। पर हमारे जीवन में तो सोना-खाना, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मनोरंजन आदि ही सहज हैं। कृपा करके कहिए कि ये सब किस भांति भक्ति कहे जा सकते हैं?

बीज भी सहज है, फूल भी सहज है। बीज की यात्रा फूल तक, वह भी सहज है। लेकिन बीज अगर बीज होने पर ही रुक जाए, तो वह रुक जाना सहज नहीं है। जहां अवरोध है, जहां रुकावट है, जहां यात्रा टूट गई, जहां मार्ग मंजिल से नहीं जुड़ता, वहीं असहज हो गया कुछ। बीज बढ़ता रहे। बीज में कुछ बुराई नहीं है। बीज में ही छिपा है फूल। बीज में ही छुपी है सुगंध। बीज में ही छुपा है सौंदर्य। लेकिन छुपा ही न रह जाए, प्रकट हो, अभिव्यक्त हो, नाचे।
मनुष्य जिन चीजों को साधारणतः जीता है, वे सब सहज हैं--खाना-पीना, काम-क्रोध, लोभ-मोह--मगर बीज की भांति। वहीं रुक गए तो अड़चन हो जाएगी। वहीं रुक गए तो भक्ति खो गई। भक्ति है भगवान तक यात्रा। वहां से चले; उसे पड़ाव समझो, मंजिल मत बनाओ। थोड़ी देर रुकना भी पड़े तो रुक जाओ, मगर सदा के लिए न रुक जाओ। बढ़ते रहो, आगे बढ़ते रहो।
और तुम चकित होओगे जान कर कि अगर रुक गए, तो आदमी जीने लगता है खाने- पीने के लिए। और अगर बढ़ते रहे, तो आदमी खाता-पीता है जीने के लिए। और दोनों में जमीन-आसमान का फर्क हो गया। अगर रुक गए तो काम काम ही रह जाता है। अगर बढ़ते रहे तो काम से ही राम का जन्म होता है। काम बीज है राम का। अगर रुक गए तो क्रोध क्रोध रह गया, और तुम्हें सड़ा डालेगा। बीज रुकेगा तो सड़ेगा। बीज रुकेगा तो बीज भी नहीं रह सकेगा। आज नहीं कल राख रह जाएगी। बीज बढ़े तो ही बच सकता है। बीज बड़ा हो, फैले, विराट बने; फूल आएं, फल आएं, एक बीज में हजार बीज आएं, तो बीज बचेगा।
क्रोध बीज है। अगर रुक जाए, तो सड़ जाओगे, नरक बन जाएगा। अगर आगे बढ़ जाए,
तो क्रोध से ही करुणा का जन्म है। क्रोध तुम्हारी ऊर्जा है। राह नहीं पाती तो भटक जाती है। तुम्हारे भीतर ही भीतर घूमती है। द्वार नहीं पाती तो तुम्हें तोड़ डालती है। द्वार मिल जाए, सम्यक मार्ग मिल जाए, तो क्रोध ही करुणा बन जाएगी।
जीवन जहां है अभी, निश्चित ही सहज है। मैं तुमसे यह अधिकारपूर्वक कहना चाहता हूं कि खाना-पीना सहज है, सोना-उठना-बैठना सहज है, काम-क्रोध सहज है, मनोरंजन सहज है, बस यहां रुक मत जाना। मनोरंजन पर रुक गए तो खिलौनों से ही खेलते रहे, असली बात शुरू ही न हुई।
मनोरंजन में क्या रस है? यही न कि थोड़ी देर को मन भूल जाता है। किस बात
को मनोरंजन कहते हो? फिल्म देखी, कि नाच देखा, कि गीत सुना, कि थोड़ी देर को उलझ गए, तल्लीन हो गए, थोड़ी देर को मन विस्मृत हो गया, इसी को मनोरंजन कहते हो। यही आगे बढ़े तो एक दिन तुम ऐसी जगह पहुंच जाओगे जहां मन सदा के लिए विस्मृत हो जाता है। मनोभंजन हो जाता है। उस दिन परम आनंद है। उसी मनातीत अवस्था का नाम भक्ति है; या ध्यान है; या समाधि है।
मनोरंजन पर रुकना मत। मनोरंजन को समझो, पहचानो, सार-सूत्र गहो। उसमें
से निचोड़ लो कि बात क्या है? मनोरंजन में मैं क्यूं इतना डूब जाता हूं? किसलिए यह आकांक्षा? किसलिए बार-बार चाहता हूं कुछ हो जिसमें तल्लीन हो जाऊं? अपने से ऊब गए हो, इसलिए कहीं डूबना चाहते हो। मगर जहां डूबते हो, चुल्लू भर पानी में, वहां डूब पाओगे? फिल्म कितनी देर डुबाएगी? और नाच कितनी देर भुलाएगा? और शराब कितनी देर मस्ती रखेगी? जल्दी ही मस्ती टूट जाएगी। जल्दी ही सिनेमागृह के बाहर निकल आओगे। ज्यादा देर संगीत भरमाएगा नहीं। फिर अपनी जगह वापस, पहले से भी बदतर हालत में। क्योंकि यह थोड़ी देर को जो मन भूल गया था, इसने सुख की एक झलक भी दे दी, अब दुख और बड़ा होकर दिखेगा, तुलना में और कठिन होकर दिखेगा।

देखा नहीं, कभी राह से गुजरते हो रात, अंधेरी रात, और एक तेज कार पास से गुजर जाती है पूरे प्रकाश को आंखों में डालते हुए, फिर उसके बाद रास्ता और अंधेरा हो जाता है। पहले कुछ सूझता भी था, अब कुछ भी नहीं सूझता। थोड़ी देर को तो तुम बिल्कुल अंधे हो जाते हो।
जीवन में दुख है, शराब पी ली, थोड़ी देर के लिए दुख विस्मृत हुआ। लेकिन
कब तक डूबोगे? थोड़ी देर बाद वापस लौटना ही होगा। शराब शाश्वत हो जाए तो परमात्मा मिल गया। शाश्वत शराब का नाम ही परमात्मा है, कि जिसमें डूबे तो डूबे, फिर लौटे नहीं। चुल्लू भर पानी में न डूब सकोगे। कुल्हड़ों में नहीं डूब सकोगे, सागर चाहिए।
समझदार व्यक्ति अपने जीवन की सामान्यता में से खोज करता है, जांच करता है, परख करता है, सूत्र पकड़ता है--कि मनोरंजन में राज क्या है? फिर मनोरंजन का राज समझ में आ गया तो वह सोचता है कि अब मैं कैसे उस दशा को खोजूं जहां मन सदा के लिए खो जाए। एकबारगी छुटकारा हो इससे, फिर लौट कर मिलन न हो।
लेकिन अभी तुम जैसे जीते हो वह एक अंधी आदत है। उसमें होश नहीं है, उसमें विचार नहीं है, उसमें विवेक नहीं है, उसमें बोध नहीं है।
सांस लेना भी कैसी आदत है
जीए जाना भी क्या रवायत है
कोई आहट नहीं बदन में कहीं
कोई साया नहीं है आंखों में
पांव बेहिस हैं, चलते जाते हैं
इक सफर है जो बहता रहता है
कितने वर्षों से कितनी सदियों से
जीए जाते हैं, जीए जाते हैं
आदतें भी अजीब होती हैं

आदत से ऊपर उठना धर्म है। यांत्रिकता से ऊपर उठना विकास है। खाओ-पीओ जरूर, बस खाने-पीने में समाप्त मत हो जाना। नाचो और गाओ भी जरूर, मगर उस परम नृत्य को मत भूल जाना। उसे याद रखना। और यह हर नाच उसी परम नृत्य की याद दिलाता रहे, तो फिर कोई अड़चन नहीं है।
संगीत सुनो, संगीत से मेरा विरोध नहीं है, लेकिन यह तुम्हारे भीतर तीर
बन कर बैठ जाए और परम संगीत की खोज शुरू हो। प्रेम करो, जरूर करो; रूप से, रंग से लगाव बनाओ; लेकिन यह लगाव तुम्हें अरूप की याद दिलाए, यह लगाव क्षुद्र पर समाप्त न हो, यह तुम्हें अंकुश बन जाए, यह तुम्हें परमात्मा की तरफ ले चलने लगे।
जब एक स्त्री में इतना सौंदर्य हो सकता है, एक पुरुष में इतना सौंदर्य
हो सकता है, जब एक फूल में इतना सौंदर्य हो सकता है और आकाश में भटकते एक बादल में इतना सौंदर्य हो सकता है, तो उस परम में, जो सबके भीतर छिपा है, जो राजों का राज है, उसमें कितना सौंदर्य न होगा! जब उसकी ये छोटी-छोटी भाव-भंगिमाएं इतना मन को आंदोलित कर जाती हैं, तो जब उससे ही मिलन हो जाएगा... नौकर-चाकरों से मिलते रहे हो; जब नौकर-चाकरों से मिल कर ऐसा सुख मिल रहा है, तो मालिक से मिल कर क्या न होगा!
सूफी फकीर चिल्लाते हैं--याऽऽमालिक! उनका मंत्र है--याऽऽमालिक!! खोज
एक है--मालिक कैसे मिल जाए? द्वारपालों की वेशभूषा में मत उलझ जाओ। द्वारपाल भी बड़ी वेशभूषा वाले होते हैं। रंगीन वस्त्र होते उनके, सोने की बटनें होतीं उनकी, उन्हीं में मत उलझ जाना, मालिक की तलाश करनी है। मालिक कहीं महल के भीतर है। तुम महल के बाहर ही मत सोच लेना कि महल आ गया। बस इतनी याद रहे, तो सब सहज है; खाना-पीना, काम-क्रोध, मोह-लोभ, सब सहज है। पर आगे बढ़ते रहो। यात्रा जारी रहे। धीरे-धीरे जैसे-जैसे आगे बढ़ोगे, जरा क्रोध से आगे बढ़ोगे, करुणा की झलक मिलेगी; जरा रूप के आगे जाओगे, अरूप की तरंग आ जाएगी; जरा संगीत में गहरे उतरोगे, तो नाद सुनाई पड़ेगा, ओंकार सुनाई पड़ेगा।

तुमको देखा
अलस्सुबह
गीली मिट्टी से अंकुर फूटे सहज-सहज
हिलती फसल
बालियां
नजियायीं भारी--
पके आम चुए बागों में
लूटे

उड़ कर गई
जहां से
वह नन्हीं सी
नीली चिड़िया
हरी हो गई डाली
फुनगी
अंग कसे बंधन
टूटे

दिखा गांव चौमास, भुरारा रितु का चढ़ा हुआ रंग
पेड़ों पर
परस तुम्हारा

हवा कंपाती
जल-तल
कौरे, नाचे, भीत भितौने
टूटे-फूटे

तुमको देखा
एक सांझ
सूर्य अस्त था
पेड़ों में बिंध कर
लाली फैली
दूर-दूर तक
फूले कांसों पर

सजल आंख से
अंजन छूटे

तुमको देखा
अलस्सुबह
गीली मिट्टी से अंकुर फूटे

दिखा गांव चौमास, भुरारा
रितु का चढ़ा हुआ रंग
पेड़ों पर
परस तुम्हारा

मैं प्रेम-विरोधी नहीं हूं। यही मेरी देशना है। यही मेरा मौलिक संदेश है। मैं संसार-विरोधी नहीं हूं। मैं संसार के अति प्रेम में हूं। मैं तुम्हें वैराग्य नहीं सिखाता, मैं तुम्हें राग को गहरा करने की कला सिखाता हूं। मैं तुम्हें निषेध नहीं सिखाता कि तुम भागो और छोड़ो और

जंगलों में चले जाओ। मैं तो उस भगोड़ेपन को मूढ़ता कहता हूं। मैं तो कहता हूं, इस संसार में थोड़े गहरे उतरो, ऊपर-ऊपर नहीं--याऽऽमालिक! इस संसार में संसार का मालिक भी छिपा है, तुम जरा खोदो। तुम महल में प्रवेश ही नहीं करते। तुम महल की चारदीवारी के चारों तरफ चक्कर काटते रहे जन्मों-जन्मों से। महल तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, मालिक तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। सब सहज है।
असहज कब घटता है? जब कोई चीज रुक जाती है। बच्चा जवान हो, सहज है।
बच्चा बच्चा ही रह जाए, तो असहज है। बूढ़ा बूढ़ा ही रह जाए, मरे न, तो असहज है।
मृत्यु सहज है। जवान ब.ूढा हो, यह सहज है। चीजें बहें, धारा चलती रहे, डबरा न बन जाए। जहां गत्यावरोध होता है, जहां धारा डबरा बन जाती है, वहीं कुछ असहज हो जाता है। बस इतनी याद रहे। संन्यास यानी प्रवाह। अनंत प्रवाह। जहां हो, वहीं से आगे जाना है। आगे जाते ही रहना है; जब तक कि अंतिम न मिल जाए।
और अंतिम का क्या अर्थ होता है?
अंतिम का अर्थ होता हैः जहां नदी सागर में खो जाती है। फिर और यात्रा-
पथ नहीं रह जाता। नदी बचती ही नहीं। यात्री ही खो जाए, तभी समझना कि यात्रा का अंत आ गया है।

दूसरा प्रश्नः लोग आंख बंद करके प्रवचन सुनते हैं। और मैं डरती हूं
कि कहीं एक पल के लिए भी आंख न बंद हो। मैं चाहती हूं कि आपको देखती रहूं, देखती ही रहूं। आपकी आंखों की रोशनी जब मेरी आंखों में आती है तो जो दिव्य अनुभव होता है, उसका वर्णन नहीं कर सकती। इस अनुभव में मैं आधा प्रवचन ही सुन पाती हूं। यह कैसी प्यास है? क्या यह पूरी हो सकती है?

पूछा है शांता ने। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जो कान से जीते हैं; और एक, जो आंख से जीते हैं। दुनिया में हर चीज दो में बंटी है। एक ही दो में बंटा है, मगर दो में बंटे बिना दुनिया नहीं बनती। कुछ लोग आंख से जीते हैं। कुछ लोग कान से जीते हैं। जो कान से जीते हैं, वे मुझे आंख बंद करके सुनना पसंद करेंगे। उनका रस, उनका मुझसे संबंध कान से जुड़ेगा। जो आंख से जीते हैं, वे आंख बंद न कर पाएंगे। आंख बंद करेंगे तो उन्हें लगेगा कुछ खोया। कान उनके लिए पर्याप्त नहीं होगा। वे आंख से ही पीएंगे, वे आंख से ही सुनेंगे; आंख ही उनका द्वार है।
जो तुम्हें सहज हो, वैसा ही करना। अगर आंख खोले रखने में ही रस आता हो,
तो फिकर छोड़ो प्रवचन की। आधा सुना, कि नहीं सुना, चिंता न करो। आधे से ज्यादा, जो चूक गया है, उससे ज्यादा तुम्हें आंख से मिलेगा। अपनी प्रकृति को समझो। दूसरे आंख बंद करके सुन रहे हैं, इसकी नकल में मत पड़ना। नकल अक्सर भ्रांति में डाल देती है, हानि में पहुंचा देती है। कभी किसी की भूल कर नकल मत करना। जो आंख बंद करके सुन रहा है, उसे उसी में रस होगा। उससे मेरा संबंध ध्वनि का है। उसके हृदय का द्वार उसके कान से जुड़ा है। तुम्हारे हृदय का द्वार तुम्हारी आंख से जुड़ा है।
कान निष्क्रिय तत्व है, आंख सक्रिय तत्व है। जो व्यक्ति बहुत सक्रिय होते हैं, उनकी आंख केंद्र होती है जीवन की। सक्रिय व्यक्ति आंख से जुड़ेगा। फर्क समझ रहे हो? जब तुम कान से सुनते हो तो कान कुछ भी नहीं करता। मैं बोलूंगा तो तुम्हारे कान तक पहुंचेगा, कान ग्राहक होगा। कान सुनने मेरे ओंठों तक नहीं आ सकता। कान प्रतीक्षा करेगा अपनी जगह। कान कोई यात्रा नहीं कर सकता। कान सिर्फ ग्राहक यंत्र है। आंख यात्रा करती है। जब तुम मुझे देख रहे हो तो तुम्हारी आंख वहीं नहीं बैठी है, प्रतीक्षा नहीं कर रही है मेरे आने की। तुम्हारी आंख मेरे पास आ गई है, तुम्हारी आंख ने मुझे छू लिया है। आंख सक्रिय तत्व है। जो भी व्यक्ति सक्रिय है, वह आंख से बहेगा।
सदा अपने स्वभाव को सुनो, अपने स्वभाव की सुनो और उसके अनुसार चलो।
शांता का जीवन आंख में होगा। तुमने देखा, अंधे आदमी संगीत में बड़े कुशल हो जाते हैं। क्यों? उनकी आंख से बहती सारी ऊर्जा आंख से तो बह नहीं

सकती, इसलिए कान में ही समाविष्ट हो जाती है। उनकी आंख और कान संयुक्त हो जाते हैं कान में। इसलिए ध्वनि का उनका अनुभव गहरा हो जाता है। अंधा आदमी जिस प्रगाढ़ता से सुनता है, आंख वाला कभी सुनता ही नहीं, सुन ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी ऊर्जा कुछ तो बंटी ही रहती है--कुछ आंख में, कुछ कान में। शांता की भी वही गति होगी, इसलिए आधा प्रवचन चूक जाता है--आधी आंख, आधा कान। कान जिसका प्रगाढ़ होता है, वह संगीत में लीन हो पाता है। आंख जिसकी प्रगाढ़ होती है, वह चित्रकला या मूर्तिकला जैसी बातों में प्रवीण हो पाता है। दोनों में फर्क होता है। एक चित्रकार आंख से जीता है, एक संगीतज्ञ कान से जीता है।
आंख से ही मुझे आने दो। जहां से भी द्वार संभव हो सके वहां से मुझे आने दो। और तुम इसकी फिकर मत करो कि दूसरे आंख बंद करके सुन रहे हैं, तो ज्यादा पा रहे होंगे। वे कान से पा रहे हैं, तुम आंख से पाओगी।
अपने ही अनुसार जीओ। सदा अपने अनुसार जीओ और कभी हानि नहीं होगी। भूल
कर भी अनुकरण मत करना। अनुकरण गड्ढे में ले जाएगा।
पूछा हैः "लोग आंख बंद करके प्रवचन सुनते हैं। और मैं डरती हूं कि कहीं एक पल के लिए भी आंख बंद न हो जाए। मैं चाहती हूं कि आपको देखती रहूं, देखती ही रहूं। आपकी आंखों की रोशनी जब मेरी आंखों में आती है तो जो दिव्य अनुभव होता है, उसका वर्णन नहीं कर सकती।"
हर बात के लिए कुछ कीमत तो चुकानी पड़ती है। अगर आंख से तुम्हें कुछ अनुभव हो रहा है, तो फिर कान का अनुभव तुम्हें खोना पड़ेगा। दोनों हाथ लड्डू संभव नहीं हैं। मगर वह कीमत चुकाने जैसी है। शब्द कुछ छूट जाएंगे स्वभावतः, जब आंख गहराई में उतरेगी तो शब्द कुछ डगमगा जाएंगे--कान सुनेगा भी और नहीं भी सुनेगा, सुनेगा भी और पकड़ नहीं पाएगा, पकड़ भी लेगा तो हृदय तक नहीं पहुंचा पाएगा, क्योंकि हृदय उस समय आंख से जुड़ा होगा।
यह तुमने देखा? तुम रास्ते पर हो, किसी ने कह दिया कि तुम्हारे घर में
आग लगी है, फिर तुम भागे। फिर रास्ते पर कोई मिलता है, नमस्कार करता है, मगर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। कहीं रेडियो लगा है, कोई सुंदर गीत चल रहा है, मगर तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता। नहीं कि सुनाई नहीं पड़ता--कान हैं तो सुनाई तो पड़ेगा ही; और राह पर कोई नमस्कार करेगा तो आंख है तो दिखाई तो पड़ेगा ही-- लेकिन नहीं, अब तुम्हारा हृदय यहां नहीं है। तुम्हारा हृदय तो घर में आग लगी है, वहां चला गया। तुम्हारी इंद्रियों से तुम्हारे हृदय का संबंध टूट गया।
यही फर्क है सुनने और सुनने में। सुनते सभी हैं; लेकिन वे ही लोग सुन पाते हैं जिनका हृदय कान से जुड़ा हो, जिनका हृदय कान के पीछे खड़ा हो। देखते सभी हैं, लेकिन देखने-देखने में फर्क है। वही देख पाते हैं, जिनकी आंख के पीछे हृदय खड़ा हो। छूते सभी हैं, छूने-छूने में फर्क है। वही छू पाते हैं, जिनके छूने में हृदय पीछे खड़ा हो। जिस इंद्रिय से हृदय जुड़ जाता है, वही इंद्रिय अनुभव लाती है।
तो जो सहज हो रहा है, होने दो। आंख से ही चलो।
"इस अनुभव में मैं आधा ही प्रवचन सुन पाती हूं।"
पूरा भी जाए तो जाने दो। शब्द से तुम्हारी संपदा नहीं बढ़ेगी।
तुम्हारी संपदा आंख के अनुभव से बढ़ेगी। तुम्हारी संपदा दर्शन से बढ़ेगी।
"यह कैसी प्यास है? क्या यह पूरी हो सकती है?"
प्यास होती ही इसलिए है कि पूरी हो। प्यास के पहले प्यास की पूर्ति का साधन है।
देखते नहीं, मां के पेट में बच्चा आता है, बच्चा पैदा हुआ कि मां की छाती दूध से भर जाती है। अभी बच्चा पैदा ही हुआ है, अभी बच्चे ने मांग भी नहीं की है कि मुझे भूख लगी है। बच्चे के आगमन के पहले दूध आ गया है। चिड़ियां, देखते हो, घोंसला बनाती हैं। अभी अंडे रखे नहीं हैं, अभी अंडे आने वाले हैं। चिड़ियों को कुछ पता भी नहीं हो सकता, चिड़ियां कुछ बहुत सोच-विचार नहीं करतीं। और वैज्ञानिक बहुत चकित हुए हैं यह जान कर, देख कर, निरीक्षण करके कि बहुत से ऐसे पक्षी हैं जिनको जन्म के बाद मां-बाप का साथ ही नहीं मिलता, तो शिक्षण तो हो ही नहीं सकता। किसी ने उनको बताया नहीं है

कि जब अंडे तुम्हारे भीतर पकने लगें तो कैसे घोंसला बनाना; कोई बताने वाला नहीं, कोई विद्यालय नहीं, कोई उनके पास सर्टिफिकेट नहीं। लेकिन जब मादा अनुभव करती है कि गर्भवती है, जल्दी से घोंसला बनाने लगती है। बच्चों के लिए इंतजाम करना होगा। कुछ विचार से नहीं हो रहा है यह, स्वभावतः हो रहा है। यह पक्षी नहीं कर रहा है, परमात्मा कर रहा है।
इस तत्व को समझ लेने का नाम आस्था है। इस तत्व में निमज्जित हो जाने
का नाम आस्था है कि जब प्यास है, तो जलस्रोत कहीं मौजूद होगा, तभी प्यास है; प्यास सबूत है इस बात का कि जलस्रोत होगा। नहीं तो प्यास होती ही नहीं। इस जगत में कोई भी बात असंगत नहीं है। यहां एक बड़ी गहरी संगति है। तुम्हें दिखे, न दिखे; तुम समझ पाओ, न समझ पाओ; यह दूसरी बात। लेकिन इस जगत में एक बड़ी गहरी संगति है। सब जुड़ा है।
यह प्यास है तो जरूर पूरी होगी। जलस्रोत की दिशा में चलो। सच तो यह है
कि प्यास परिपूर्ण हो जाए तो उसकी परिपूर्णता में ही तृप्ति हो जाती है। प्यास का पूर्ण हो जाना ही जलस्रोत का आगमन है।

आग में जल, पर धुआं बन कर न लौ पर छा
प्यार है ज्वाला--इसे जी से लगाए जा
बेकली को कल समझ, अभिशाप को वरदान
है यही उत्सर्ग-व्याकुल प्राण की पहचान
जग समझ पाया न हंसमुख पत्थरों का मोल
किंतु फिर भी तू न अंतस की मिटन को खोल
दाह वह कैसा न जो परितृप्त कर दे प्राण
वह तृषा कैसी न जिसमें सूख जाएं गान
प्यार कर लेकिन प्रणय की रागिनी मत गा
आग में जल, पर धुआं बन कर न लौ पर छा

प्यास पूर्ण हो जाए तो वही परितोष है, वही परितृप्ति है।
दाह वह कैसा न जो परितृप्त कर दे प्राण
इस प्यास में और आहुति डालो। इस प्यास में प्राणों को और समर्पित करो। यह प्यास तुम्हारे रोएं-रोएं को पकड़ ले। जिस दिन यह प्यास रोएं-रोएं को पकड़ लेगी और कण-कण में व्याप्त हो जाएगी, जिस दिन तुम प्यास की एक लपट हो जाओगे, उसी क्षण तृप्ति हो जाएगी। प्यास है तो तृप्ति निश्चित है।

तीसरा प्रश्नः यह मन-पंछी बहुत ऊंची उड़ानें भरता है, लेकिन पहुंचता कहीं नहीं है। मैं अपने को वहीं पाता हूं जहां हूं। प्रभु, इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

मन यानी कल्पना। मन का सत्य से कभी कोई संबंध नहीं होता। इसलिए मन उड़े कितना ही, पहुंचेगा कहीं नहीं। तुम आंख बंद करके उड़ान भरो, कलकत्ता पहुंचो, कि वाशिंगटन, कि मास्को, कि पेकिंग, मगर रहोगे तुम पूना में। जब भी आंख खोलोगे, पाओगे पूना में। तब चौंकना मत कि मैंने कितने मन से उड़ान भरी कि कलकत्ते पहुंच जाऊं, और पहुंच भी गया था, और कलकत्ते के रास्तों पर भी चलता था, और कलकत्ते के लोग चारों तरफ थे, और कलकत्ते की बास थी, और यह हुआ क्या? इधर आंख खोलता हूं तो पाता हूं जहां का तहां हूं!
रात तुम सपने देखते हो, कहां-कहां नहीं पहुंच जाते हो! मन पंछी कितनी उड़ान नहीं भरता! पाताल से लेकर स्वर्ग तक की यात्राएं करते हो! लेकिन सुबह अपनी खाट पर। मन की उड़ानें कहीं ले जा नहीं सकतीं। मन पर भरोसा छोड़ो। मन के भरोसे ने ही भटकाया है। और मजा यह है कि अगर मन की उड़ानें छूट जाएं, अगर मन बिल्कुल छूट जाए, मन से श्रद्धा टूट जाए--कि यह कहीं ले जाता नहीं, यह सिर्फ आश्वासन देता है, लेकिन कोई आश्वासन कभी पूरे नहीं करता--कौन से आश्वासन मन ने पूरे किए हैं? हर बार धोखा दिया है। लेकिन अजीब है तुम्हारा भरोसा इस मन में, धोखे पर धोखे दिए जाता है, फिर भी तुम भरोसा किए चले जाते हो! मन बड़ा कुशल है तुम्हें राजी कर लेने में। मन कहता है, कल नहीं हो पाया, लेकिन

आने वाले कल होगा। आज तक नहीं कर पाया, कोई बात नहीं, एक मौका और। और तुम आशा से भरे एक मौका और देते हो। ऐसे ही तुम मौके दिए चले जाते हो। और मन-पंछी काफी उड़ानें भरता है। और इन्हीं उड़ानों में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ जा रही है।
ध्यान रखना, जब तुम स्वप्न देखते हो तब भी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ जा रही है। स्वप्न में भी जीवन-ऊर्जा नष्ट होती है। विचारों की तरंगों में भी जीवन-ऊर्जा नष्ट होती है। यही जीवन-ऊर्जा अगर कहीं न जाए, मन और विचार के छिद्रों से बाहर न जाए, तुम इस ऊर्जा को अपने भीतर ही सम्हाल लो--उस सम्हालने का नाम संयम है। जैसे कोई मटकी छेद वाली हो और पानी बाहर बहता रहे, रिसता रहे और खाली हो जाए, ऐसी तुम्हारी दशा है। यह मन छेद और छेद, सारे छेदों का नाम है। तुम्हारा भीतर का तत्व इससे रिसता रहता है, तुम खाली के खाली रह जाते हो।
ये मन के छिद्रों को बंद कर दो, अछिद्र हो जाओ, और तब तुम पाओगे, जिसे तुम पाने चले थे वह तुम्हारे भीतर है। खोओ भर मत परमात्मा को--परमात्मा को पाना नहीं है, खोओ भर मत, परमात्मा मिला हुआ है। और तब तुम चकित होओगे कि जहां मैं हूं, वहीं होना है; कहीं और जाना ही नहीं है। जिस आकाश को तुम खोजते थे, वहीं तुम हो। मन ने तुम्हें भरमाया और भटकाया। मन तुम्हें अपने से दूर ले गया। मन तुम्हें स्वयं की सत्ता से तोड़ता रहा।
मन का मतलब ही यह होता है--जहां तुम हो, वहां नहीं होने देता। समझो तुम यहां बैठे मुझे सुन रहे हो, लेकिन मन हो सकता है बाजार में पहुंच गया हो, दुकान पर बैठ गया हो, काम-धंधा शुरू कर दिया हो। तुम यहां बैठे हो और मन यहां नहीं है। तुम जहां होते हो मन वहां से भाग जाता है। यही मन की जो सतत भ्रमणा है, यही भ्रमणा छूट जाए, तुम जहां हो वहीं पूरे के पूरे हो जाओ समग्रता में, तो क्या पाने को है? तुम परमात्मा में विराजमान हो। तुम कभी वहां से क्षण भर को भी हटे नहीं हो। इंच भर को भी तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच कभी फासला नहीं हुआ, सिर्फ मन तुम्हें दूर-दूर भटकाया है, दूर-दूर दौड़ाया है। और मजा यह है कि दौड़ाता है, पहुंचाता कहीं भी नहीं।
तुम कहते होः "यह मन-पंछी बहुत ऊंची उड़ानें भरता है।"
ऊंची भरे कि नीची, इसकी उड़ान में कुछ भी सार नहीं है, सब कल्पना-जाल है।
"लेकिन पहुंचता कहीं नहीं है।"
ठीक समझ में आई बात तुम्हें। तो अब इस मन-पंछी को और ज्यादा सहायता मत दो, अब और न उड़ाओ ये पतंगें, ये कागज की नावें और न चलाओ, ये झूठे दीये और न जलाओ, ये ताश के घर और न बनाओ। अब मन को विदा दे दो, अलविदा दे दो, हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लो, आखिरी जयरामजी कर लो, और जैसे हो वैसे ही रह जाओ। अन्यथा होने की कोई जरूरत भी नहीं है; जो हो, वही ठीक है; जहां हो, वहीं ठीक हो। जैसे ही तुम राजी हो जाओगे, जो हो, उससे; जैसे हो, उससे; जहां हो, उससे; तुम्हारे जीवन में संतोष की वर्षा हो जाएगी। मेघ बरस जाएंगे आनंद के!

चौथा प्रश्नः मैं समाधि चाहता हूं, और शीघ्र। यह शीघ्रता भयंकर तनाव बनी जा रही है। मैं क्या करूं?

एक तो समाधि या संबोधि चाही नहीं जा सकती। जो चाहा जा सकता है, वह संसार है। जो नहीं चाहा जा सकता, वही परमात्मा है, वही समाधि है। चाह और समाधि का कोई संबंध कभी नहीं होता, उनका मिलन कभी नहीं होता। चाह का मतलब ही है कि तुम जो नहीं हो, वह। और समाधि का अर्थ है, तुम जो हो, वह।
जो हो, उसको क्या चाहोगे? कैसे चाहोगे? कोई स्त्री पुरुष होना चाह सकती है, लेकिन कोई स्त्री स्त्री कैसे होना चाहेगी? है ही। तुम जो हो, उसे कैसे चाहोगे? चाहने का प्रयोजन क्या है? चाहना सदा उसका होता है जो तुम नहीं हो। और जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी नहीं हो सकते।
इसलिए चाहना दुख में ले जाता है, असफलता में ले जाता है, विषाद में ले जाता है। हर चाह टूटती है, खंडित होती है। हर चाह के बाद तुम मुंह के बल जमीन पर गिरते हो, धूल भरी रह जाती है तुम्हारे मुंह में। हर चाह विफलता

लाती है; हर चाह हताशा लाती है। चाह से कभी कोई उपलब्धि नहीं होती। हो नहीं सकती। क्योंकि चाह का मौलिक अर्थ हैः वही होने की कोशिश जो तुम नहीं हो। वह तुम हो नहीं सकते। आम आम होगा, नीम नीम होगी।
अब चाह का अर्थ होता है, नीम आम होना चाहे। नीम इस तरह की भूल करती नहीं, इसलिए नीम परेशान नहीं है। नहीं तो नीम की भी नींद खो जाए, और नीम भी विक्षिप्त हो और पागलखाने में पड़ी हो, और घबड़ाहट में जहर पी ले, आत्मघात कर ले। लेकिन कोई नीम इस चिंता में ही नहीं है। नीम पूरे मजे में है। अपनी निबौरियों के साथ पूरी राजी है। न आम को फिक्र है कुछ और होने की। न गुलाब कमल होना चाहता है, न कमल गुलाब होना चाहता है। घास का फूल भी फिक्र नहीं करता, दो कौड़ी फिक्र नहीं करता गुलाब होने की। घास का फूल सिर्फ घास होना चाहता है। आदमी को छोड़ कर इस सारी प्रकृति में किसी को कुछ और होने की चिंता नहीं है। इसलिए प्रकृति में ऐसी शांति है। ऐसा अपूर्व सुख छाया है। हिमालय पर जाते हो, तुम्हें जो शांति दिखाई पड़ती है, वह किस बात की शांति है? वह इसी बात की शांति है कि वहां कोई चाह नहीं। पहाड़ पहाड़ हैं, वृक्ष वृक्ष हैं, झरने झरने हैं, नदियां नदियां हैं, वहां कोई चाह नहीं, अचाह व्याप्त है। उसी अचाह के कारण तुम भी थोड़ी देर के लिए बड़े सन्नाटे में भर जाते हो। बंबई जाते हो, चारों तरफ शोरगुल है चाह का, तन जाते हो, खिंच जाते हो, परेशान हो जाते हो; दिन भर के बाद बंबई से घर लौटते हो, राहत मिलती है। चाह का बाजार है।
जहां-जहां आदमी की दुनिया है, वहां-वहां चाह का शोरगुल है। जहां-जहां परमात्मा की दुनिया है, वहां-वहां अचाह का संगीत है। वृक्षों के पास बैठो, वृक्षों से कुछ सीखो। एक ही बात समझ में आएगी वृक्षों के पास कि हर वृक्ष जैसा है वैसा होने से राजी है। उसमें कभी भी प्रतिस्पर्धा नहीं है। यही सूत्र है।
समाधि तो फल सकती है, अभी, इसी क्षण, मगर तुम्हीं बाधा हो।
तुम कह रहे होः मैं संबोधि, समाधि चाहता हूं, और शीघ्र।
एक तो चाह में ही भूल हो गई, चाह में ही जहर घोल दिया तुमने अपने प्राणों में; और फिर दूसरा जहर और ला रहे हो--शीघ्र। धीरज भी नहीं है, धैर्य भी नहीं है। यह करेला हुआ नीम चढ़ा। ऐसे ही कड़वा था और नीम पर चढ़ा दिया। यह दोहरी बात हो गई। यह बीमारी व्यर्थ तुमने बढ़ा ली। शीघ्रता से कभी कोई संबोधि को या समाधि को उपलब्ध हुआ है? वहां तो वे ही पहुंचते हैं जो अनंत प्रतीक्षा करने को राजी हैं। जो कहते हैं, आज तो आज, कल तो कल, परसों तो परसों, इस जन्म में तो इस जन्म में, अगले जन्म में तो अगले जन्म में--और अगर कभी नहीं तो कभी नहीं। जो इतनी हिम्मत रखते हैं कि कभी नहीं तो कभी नहीं। ऐसी जिनकी विश्रांति है, ऐसे जो तनावरहित हैं, ऐसा जहां धैर्य का झरना बह रहा है, वहां समाधि अभी है और यहीं, इसी वक्त घट जाएगी। तुम्हें मेरी बात समझ में न आती हो तो करके देख लो। मगर ख्याल रखना, भूल में मत पड़ना, यह मत सोचना कि चलो, अगर तेजी से इस ढंग से घटती है, अगर यह ढंग है तेजी से घटाने का, तो यही कर लेंगे। तो चूक जाओगे; क्योंकि यह ढंग नहीं है। यह तेजी से घटाने का ढंग नहीं है। तेजी से तो घटाने की बात ही बाधा है।
तो एक तो चाह और शीघ्र, स्वभावतः शीघ्रता तनाव बनी जा रही है। बन ही जाएगी, पागल कर देगी तुम्हें। अगर यही पागलपन चाहिए तो धन के पीछे दौड़ो, ध्यान के पीछे नहीं। क्योंकि धन और पागलपन का थोड़ा संबंध है। पागलपन से दौड़ोगे तो मिल जाएगा। अगर बिल्कुल सिर देकर पड़ ही गए पीछे, तो मिल जाएगा। दूसरे पागल भी लगे हैं, अगर तुम्हारा पागलपन उनसे ज्यादा हुआ, तो मिल ही जाएगा। दूसरे भी दौड़ रहे हैं, लेकिन अगर तुम धुआंधार पीछे पड़ गए, तो धन मिल जाएगा। हालांकि धन से कुछ मिलता नहीं, लेकिन इतनी तो राहत होगी कि जिसको चाहा था उसको पा लिया।

सिकंदर जरूर बड़ा पागल रहा होगा, नहीं तो दुनिया जीतना मुश्किल मामला है! तुम्हारी राजधानियों में पागलों का जमाव है। जो पागल हैं, वे सब वहां पहुंच जाते हैं। मेरा वश चले तो सब राजधानियों पर बड़ी दीवाल उठवा कर, जो उनके भीतर हैं उनको बाहर निकलने का मौका न दूं, उनको भीतर ही रखूं--दुनिया

में शांति हो जाए। एक बार जो एम.पी. हो जाए, एक बार जो मिनिस्टर हो जाए, उसे फिर राजधानी से बाहर न निकलने दूं। फिर चाहे वह भूतपूर्व हो, या कुछ भी हो, राजधानी से बाहर न निकलने दूं। उस पर रुकावट डाल दूं। ये जहर लेकर फिर सारे देश में घूमते हैं, सारी दुनिया में घूमते हैं, ये दूसरों में भी जहर पैदा करवाते हैं। ये पागल लोग हैं, यह पागलों की जमात है।
मगर अगर तुम्हें शीघ्रता चाहिए और चाह का रस है, तो धन और पद के पीछे दौड़ो; क्योंकि उनसे चाह का तर्क तालमेल खाता है। तुम ध्यान के पीछे दौड़ रहे हो! ध्यान तो उनको मिलता है जो बैठ जाते हैं, दौड़ते नहीं। ध्यान कोई दिल्ली थोड़े ही है, दिल्ली चलो! ध्यान के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है, यहीं आंख बंद करो, यहीं हलके-फुलके होकर बैठ जाओ, यहीं राजी हो जाओ अपने से, यहीं स्वीकार कर लो जैसा है, जो है, इंच भर भी विरोध न रखो, सहज भाव से जीने लगो, अपने आप घट जाएगी समाधि। तुम्हें उसका हिसाब रखने की भी जरूरत नहीं है। अपने आप दिन निकल आएगा; अपने आप रात कट जाएगी।
फिर तुम करोगे भी क्या? जब सूरज निकलेगा तभी निकलेगा न! तुम्हारे शोरगुल मचाने से, दंड-बैठक लगाने से, प्राणायाम साधने से सूरज निकलने वाला नहीं है। सूरज जब निकलेगा तब निकलेगा। तुम मजे से सो रहो, जितनी देर नहीं निकला है इतनी देर विश्राम कर लो, जब निकलेगा तो फिर काम-धाम के दिन आएंगे। तुम कहते होः समाधि चाहिए।
जिनको समाधि मिल गई उनसे तो पूछो! जब समाधि मिल जाती है तो फिर बांटो उसे! जाग गए, अब जगाओ औरों को! हजार झंझटें आती हैं। मेरी मानो! जब तक नहीं मिली तब तक शांति से विश्राम कर लो थोड़ी देर और, भगवान को धन्यवाद दो।
दिन निकलने दे
जरा सा दिन निकलने दे!

रास्ते आधे-अधूरे से
दिख रहे जो तानपूरे से
तार में सरगम सम्हलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

राग जब आकार पाएगा
स्याह घेरा टूट जाएगा
खून, स्याही में उबलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

अंगुलियां खुद तार को छूकर
व्योम को ले आएंगी भू पर
घाटियों को आंख मलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!

जल्दी न करो, दिन अपने से करीब आ रहा है। सुबह अपने से होती है। आदमी
के किए कुछ भी नहीं होता। करने वाला कर रहा है। जब रात हो तो सो रहो, और जब दिन हो तो काम में लग जाओ। जब समाधि मिलेगी, तो बांटना पड़ेगा--बड़ा काम आ जाएगा सिर पर! जब तक समाधि नहीं मिली, तब तक भगवान को धन्यवाद दो, चादर ओढ़ कर सो रहो; विश्राम कर लो, समाधि के लिए तैयार कर लो अपने को, समाधि के लिए शक्ति जुटा लो कि जब मिले समाधि, तो तुम बांट सको।
अब यह मजा है। जिनको समाधि नहीं मिली, वे भी दौड़ते हैं--वे दौड़ते हैं पाने के लिए। और जिनको समाधि मिली, वे भी दौड़ते हैं--वे दौड़ते हैं बांटने के लिए। महावीर को समाधि मिली, फिर बयालीस साल तक दौड़ते रहे एक गांव से दूसरे गांव। बुद्ध को समाधि मिली, फिर चालीस साल तक सुबह से सांझ तक समझाते रहे लोगों को। जगत का क्रिया-कलाप चलता ही रहता है। अज्ञानी भी क्रिया में होता है, ज्ञानी भी क्रिया में होता है। फर्क इतना ही होता हैः अज्ञानी पाने की क्रिया में होता है, ज्ञानी देने की क्रिया में होता है। फर्क बड़ा है।

लेकिन ज्ञान की घटना तभी घटती है जब तुम उसकी अपेक्षा भी नहीं कर रहे थे। जब तुम सोच भी नहीं रहे थे कि अब घटेगी। आकस्मिक घटती है। अनायास घटती है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि तुम्हें किसी ताजी हवा ने घेर लिया, कोई सूरज उगा, कोई किरण उतरी, कोई गीत बजने लगा, कोई तार छिड़ गया।
अंगुलियां खुद तार को छूकर
व्योम को ले आएंगी भू पर
घाटियों को आंख मलने दे
थम, जरा सा दिन निकलने दे!
संबोधि को चाहो मत, समाधि को चाहो मत। चाह बाधा है। फिर शीघ्रता तो भूल कर मत करना। समाधि कोई मौसमी फूल का पौधा नहीं है कि अभी बोया और दो- चार-आठ दिन में अंकुर निकल आए और दो-तीन सप्ताह में फूल आ गए--मगर पांच-छह सप्ताह में गए भी! आए भी और गए भी; पीछे कुछ न बचा। समाधि तो विराट वृक्ष है। समय लेगा, धीरज मांगेगा, प्रतीक्षा चाहेगा, धीरे-धीरे बढ़ेगा; तभी तो चांद-तारों से बात हो सकेगी, तभी तो हवाओं से मुलाकात हो सकेगी, तभी तो आकाश में फैल कर खड़ा हो सकेगा। समाधि है पृथ्वी का आकाश से मिलन। यह बड़ी घटना है। इससे बड़ी और कोई घटना नहीं है। यह घटना इतनी बड़ी है कि तुम्हारी छोटी सी चाह में नहीं समा सकती। चाह तो चम्मच जैसी है और यह घटना सागर जैसी है।
मैंने सुना है, अरस्तू एक दिन सागर के किनारे टहलने गया और उसने देखा
कि एक पागल आदमी--पागल ही होगा, अन्यथा ऐसा काम क्यों करता--एक गड्ढा खोद लिया है रेत में और एक चम्मच लिए हुए है; दौड़ कर जाता है, सागर से चम्मच भरता है, आकर गड्ढे में डालता है, फिर भागता है, फिर चम्मच भरता है, फिर गड्ढे में डालता है। अरस्तू घूमता रहा, घूमता रहा, फिर उसकी जिज्ञासा बढ़ी, फिर उसे अपने को रोकना संभव नहीं हुआ। सज्जन आदमी था, एकदम से किसी के काम में बाधा नहीं डालना चाहता था, किसी से पूछना भी तो ठीक नहीं, अपरिचित आदमी से, यह भी तो एक तरह का दूसरे की सीमा का अतिक्रमण है। मगर फिर बात बहुत बढ़ गई, उसकी भागदौड़, इतनी जिज्ञासा भर गई कि यह मामला क्या है? यह कर क्या रहा है? पूछा कि मेरे भाई, करते क्या हो? उसने कहा, क्या करता हूं, सागर को उलीच कर रहूंगा! इस गड्ढे में न भर दिया तो मेरा नाम नहीं! अरस्तू ने कहा कि मैं तो कोई बीच में आने वाला नहीं हूं, मैं कौन हूं जो बीच में कुछ कहूं, लेकिन यह बात बड़े पागलपन की है, यह चम्मच से तू इतना बड़ा विराट सागर खाली कर लेगा! जन्म-जन्म लग जाएंगे, फिर भी न होगा। सदियां बीत जाएंगी, फिर भी न होगा! और इस छोटे से गड्ढे में भर लेगा? और वह आदमी खिलखिला कर हंसने लगा, और उसने कहा कि तुम क्या सोचते हो, तुम कुछ अन्य कर रहे हो? तुम कुछ भिन्न कर रहे हो? तुम इस छोटी सी खोपड़ी में परमात्मा को समाना चाहते हो? अरस्तू बड़ा विचारक था। तुम इस छोटी सी खोपड़ी में अगर परमात्मा को समा लोगे, तो मेरा यह गड्ढा तुम्हारी खोपड़ी से बड़ा है और सागर परमात्मा से छोटा है; पागल कौन है?
अरस्तू ने इस घटना का उल्लेख किया है और उसने लिखा है कि उस दिन मुझे पता चला कि पागल मैं ही हूं। उस पागल ने मुझ पर बड़ी कृपा की।
वह कौन आदमी रहा होगा? वह आदमी जरूर एक पहुंचा हुआ फकीर रहा होगा, समाधिस्थ रहा होगा। वह सिर्फ अरस्तू को जगाने के लिए, अरस्तू को चेताने के लिए उस उपक्रम को किया था।
नहीं, तुम्हारी चाह तो छोटी है--चाय की चम्मच--इस चाह से तुम समाधि को नहीं पा सकोगे। चाह को जाने दो। और फिर जल्दबाजी मचा रहे हो! जल्दबाजी में तो चम्मच में थोड़ा-बहुत पानी आया, वह भी गिर जाएगा--अगर ज्यादा भागदौड़ की तो, और ज्यादा जल्दबाजी की। तुमने देखा न, कभी-कभी जल्दबाजी में यह हो जाता है, ऊपर की बटन नीचे लग जाती है, नीचे की बटन ऊपर लग जाती है; सूटकेस में सामान रखना था, वह बाहर ही रह जाता है, सूटकेस बंद कर दिया। फिर उसको खोला तो चाबी नहीं चलती, कि चाबी अटक जाती है। तुमने जल्दबाजी में देखा, स्टेशन पहुंच गए और टिकट घर ही रह गई। और बड़ी जल्दी की!
जितनी जल्दबाजी करते हो, उतने ही अशांत हो जाते हो। जितने अशांत हो जाते हो, उतनी संभावना कम है समाधि की। शांत हो रहो। और शांत होने की कला

है अचाह से भर जाना। चाहो ही मत, मांगो ही मत; कहो कि जो जब होना है, होगा, हम प्रतीक्षा करेंगे। जल्दी भी क्या है? समय अनंत है।

पांचवां प्रश्नः आप कहते हैं कि दो ही मार्ग हैं--भक्ति और ज्ञान। लेकिन आप न तो भक्ति सिखाते हैं और न ज्ञान, आप तो ध्यान सिखाते हैं। तो क्या ध्यान भक्ति और ज्ञान से भी परे है?

ध्यान ज्ञान और भक्ति का सार है। ध्यान निचोड़ है दोनों का। जिसको भक्त प्रीति कहता है, जिसको ज्ञानी बोध कहता है, ध्यान बोध और प्रीति का निचोड़ है। ऐसा समझो कि कुछ फूल भक्ति के और कुछ फूल ज्ञान के और दोनों को निचोड़ कर तुमने एक इत्र बनाया, वही है ध्यान। ध्यान भक्त की भक्ति है, ज्ञानी का बोध है। ध्यान का एक पंख भक्ति है और एक पंख ज्ञान है।
ध्यान सार है। भक्ति से पाओ तो भी ध्यान मिलेगा और ज्ञान से पाओ तो भी ध्यान मिलेगा। अंतिम अर्थों में जो संपदा तुम्हारे हाथ में लगेगी, उसका नाम ध्यान है।
समझो।
भक्ति का अर्थ होता हैः भक्त खो जाता है, भगवान बचता है। ज्ञान का अर्थ होता हैः भगवान खो जाता है, ज्ञानी बचता है, आत्मा बचती है। इसलिए महावीर और बुद्ध, जो ज्ञान के परम शिखर हैं, उन्होंने परमात्मा को स्वीकार नहीं किया। कह दिया कि परमात्मा नहीं है। यह ज्ञान की उदघोषणा है। दूसरा नहीं बचता, एक आत्मभाव बचता है, आत्मा बचती है। शांडिल्य और नारद दूसरी ही घोषणा करते हैं, वे कहते हैं, भगवान बचता है, भक्त नहीं बचता; भक्त तो भगवान में लीन हो जाता है। यह भक्त के कहने का ढंग है। भक्त अपने को समाप्त कर देता है। लेकिन अगर दोनों पर गौर करो तो दोनों की सार बात एक है कि दो नहीं बचते, एक बचता है--वही ध्यान है। फिर जो एक बचता है, उसको भगवान कहो, कि आत्मा कहो, कि निर्वाण कहो, क्या फर्क पड़ता है? ये सब कामचलाऊ नाम हैं। तुम्हारी जो मर्जी, तुम्हारा जो लगाव, जैसी तुम्हारी रुचि, वही कहो।
भक्त की रुचि है कि वह कहता है--भगवान बचता है; अब मैं कहां, तू ही है।
और ज्ञानी की रुचि है कि अब तू कहां, मैं ही हूं--अहं ब्रह्मास्मि, अनलहक।
ये कहने के ढंग हैं। दोनों एक ही बात कह रहे हैं कि दो नहीं रहे अब, एक बचा है। अब एक को कैसे कहें? हमारी भाषा में हर चीज दो है, तो दो में से कोई एक चुनना पड़ेगा। कहने के लिए एक शब्द का उपयोग करना पड़ेगा, एक शब्द छोड़ना पड़ेगा। अपनी-अपनी मौज। कोई मैं को छोड़ देता है, कोई तू को छोड़ देता है। इसलिए मैं ध्यान सिखाता हूं। ध्यान का अर्थ हैः मैं तुम्हें सार सिखाता हूं। सारे धर्मों का सार ध्यान है। सारे धर्म ध्यान को कहने के अलग-अलग ढंग हैं। सारे धर्म ध्यान को पाने के अलग-अलग मार्ग हैं। भक्ति की यात्रा अलग है और ज्ञानी की यात्रा अलग है, लेकिन मंजिल एक है, वही मंजिल ध्यान है।
ध्यान का क्या अर्थ हुआ?
ध्यान का अर्थ हुआः न तो भक्त बचा, न भगवान; न मैं, न तू; सिर्फ बोध बचा, सिर्फ प्रीति बची, गुण बचा, भगवत्ता बची--न भगवान, न भक्त। इसलिए मैं ध्यान सिखाता हूं। फिर जो ध्यान सीधा नहीं सीख पाते, उनको या तो मैं भक्ति सिखाता हूं, या ज्ञान सिखाता हूं। मेरे मंदिर में सारे धर्मों के द्वार हैं। यह मंदिर किसी एक धर्म का मंदिर नहीं है। यह धर्म का मंदिर है, किसी धर्म का नहीं। इसमें तुम जिस हैसियत से आना चाहो, स्वीकार हो। तुम जिस मार्ग से इसे पाना चाहो, स्वीकार हो। तुम जिस भाषा का उपयोग करना चाहो, स्वीकार हो। और अगर तुम्हारे पास इतनी प्रतिभा है कि तुम सारे मार्गों का निचोड़ इत्र पकड़ सकते हो सीधा-सीधा, तो ध्यान पकड़ लो। अगर ध्यान दूर की बात मालूम पड़े, तुम्हारी पकड़ में न आती हो, तो फिर भक्ति या ज्ञान।

छठवां प्रश्नः मैं संन्यास लेना चाहता हूं। क्या मैं पात्र हूं और क्या वह शुभ मुहूर्त आ गया है?

संन्यास लेना मत चाहो। तुम्हारा लिया संन्यास बहुत दूर तक नहीं जाएगा। संन्यास को घटने दो, घटाओ मत। अगर संन्यास के भाव ने तुम्हें पकड़ लिया है, तो चल पड़ो, अब सोचो मत। सोच कर निर्णय मत लो संन्यास का। सोच-विचार कर तुम संन्यास लोगे, वह तुम्हारी बुद्धि की निष्पत्ति होगी। और फिर तुम्हारी बुद्धि के पार न ले जाएगी, और पार ही जाना है। पागल की तरह चल पड़ो, प्रेमी की तरह चल पड़ो। हिसाब-किताब न बिठाओ। अब क्या तुम भी पूछते हो! क्या शुभ मुहूर्त आ गया है? क्या किसी ज्योतिषी से पूछोगे जाकर? किसी हस्तरेखाविद को हाथ दिखाओगे?
ऐसा हो जाता है। एक दफा माउंट आबू में एक सज्जन मेरे पास आए, हाथ मेरे आगे कर दिया और कहा, आप देख कर तो बताइए कि संन्यास है भी मेरे हाथ में कि नहीं? हो तो मैं ले लूं।
हाथ पर तुम्हें भरोसा है, हृदय की फिकर नहीं है! हाथ की लकीरों में क्या रखा है? युद्ध के मैदान पर हजारों लोग एक दिन में मर जाते हैं, क्या तुम सोचते हो सबकी लकीरें उसी दिन मृत्यु की सूचना देती थीं? हवाई जहाज गिरता है और डेढ़ सौ आदमी एक साथ मर जाते हैं, उनके हाथ तो देखो! सबके अलग-अलग।
हाथ की रेखाएं! तुम होश में हो? लेकिन आदमी इसी तरह के जाल में पड़ा रहा है। प्रेम की न सुनेगा, ज्योतिषी से पूछेगा कि इस स्त्री से विवाह करूं कि नहीं। यह ज्योतिषी कौन है? और ज्योतिष के आधार पर कहीं प्रेम घटा है? यह तो बड़ी अजीब बात हुई! लेकिन हम इसी तरह जीवन जी रहे हैं। हम अंतर की आवाज नहीं सुनते। हम बाहर से प्रमाण चाहते हैं।
तुम पूछते होः "मैं संन्यास लेना चाहता हूं।"
फिर रुको क्यों? फिर कौन रोक रहा है? फिर कौन तुम्हें पकड़ कर पीछे खींच रहा है? तुम्हारी बुद्धि कह रही हैः पहले सोच-विचार तो कर लो; अभी शुभ मुहूर्त आ गया? पीछे झंझट में तो न पड़ोगे? पात्र भी हो कि नहीं? पहले सुपात्र तो हो जाओ।
बुद्धि बड़ी चालबाज है। बुद्धि ऐसे-ऐसे तर्क देती है कि जो बिल्कुल ठीक मालूम पड़ते हैं। अब यह तर्क, बुद्धि कहेगी--पहले सुपात्र तो हो जाओ। अब बड़ी मुसीबत हो गई। सुपात्र का मतलब क्या होगा? सुपात्र का मतलब, पहले बुद्ध हो जाओ, महावीर हो जाओ। फिर संन्यास लोगे? फिर संन्यास किसलिए लोगे? और जब तक बुद्ध नहीं हुए, तब तक सुपात्र कहां?
यह तो ऐसा ही हुआ कि किसी चिकित्सक के पास गए और उसने कहा कि हट, भाग यहां से! पहले बीमारी तो ठीक करके आ! फिर हम औषधि देंगे। ऐसे हम कुपात्र में औषधि नहीं डालते; न मालूम कितनी बीमारियां लिए चला आ रहा है! रक्त-चाप बढ़ा हुआ है, हृदय की चाल गड़बड़ है, नब्ज ठिकाने नहीं है, पेट खराब है, खून विषाक्त है, ऐसे आदमी में हम अपनी शुद्ध दवा नहीं डालते। तू पहले यह सब ठीक करके आ। लेकिन फिर तुम आओगे किसलिए?
संन्यास औषधि है। संन्यास चिकित्सा है। मैं वैद्य हूं। तुम स्वस्थ हो जाओगे तो फिर तो दवा की कोई जरूरत न रहेगी। तुम अपात्र हो, इसीलिए तो जरूरत है। अब बुद्धि बड़े हिसाब की बातें करती है और ऐसी बातें करती है जो कि जंचती भी हैं। बुद्धि कहती है--पहले पात्र तो हो जाओ! अब यह मामला इतना बड़ा है कि पात्र होने में अगर लगे, तो जन्म-जन्म बीत जाएंगे और तुम पात्र न हो पाओगे। कुछ न कुछ कमी रह जाएगी। आदमी की सीमाएं हैं।
किसी मित्र को दो दिन पहले ध्यान करते समय अपूर्व अनुभव हुआ, आनंदमग्न हो गए। मगर फिर घबड़ा गए। फिर मुझे पत्र लिखा। और पत्र में लिखा कि पहले यह तो बताइए कि मुझ अपात्र को इतना बड़ा अनुभव हो ही कैसे सकता है? सिगरेट मैं पीता, पान मैं खाता, सिनेमा मैं जाता, कामिनी-कांचन में मेरा लगाव है, मुझ अपात्र को यह हो ही कैसे सकता है?
अब हो गया तो भी मानते नहीं हैं। अब बुद्धि यह तर्क निकाल रही है कि अपात्र को हो ही कैसे सकता है? जैसे कि परमात्मा तुम्हारी सिगरेट से डरेगा, कि यह आदमी सिगरेट पीता है, इसके पास नहीं आना है। तुम परमात्मा को डराने चले हो छोटी-मोटी बातों से? कि तुम सिनेमा जाते हो।

परमात्मा कब आ जाता है अकारण, कब तुम्हें भर देता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसीलिए शांडिल्य कहते हैंः प्रसाद! अपात्र से अपात्र में उतर आता है। बस एक ही बात चाहिए कि अपात्र स्वीकार करने को राजी हो, बस उतनी बात चाहिए। द्वार-दरवाजे बंद मत कर लेना! जब सूरज की किरण सुबह आती है और तुम्हारे दरवाजे से प्रवेश करती है, तो वह यह नहीं कहती--पहले घर साफ बुहारो, शुद्ध करो, पानी छिड़को। इस धूल भरे घर में मैं नहीं आऊंगा; कपड़े- लत्ते धोओ, स्नान करो, फिर मैं निकलूंगा तुम्हारे लिए; अभी मैं उनके लिए निकला हूं जो स्नान कर चुके हैं; ब्रह्ममुहूर्त में उठे थे; तुम अपात्र अभी बिस्तर में पड़े हो। लेकिन तुम कभी बिस्तर में भी पड़े होते हो कंबल ओढ़े और सूरज की किरण आकर तुम्हें जगाने लगती है तुम्हारे कमरे में; ऐसा ही परमात्मा आता है।
तुम्हारी अपात्रता और तुम्हारी पात्रता, सब दो कौड़ी की हैं। तुम्हारी अपात्रता भी दो कौड़ी की है, तुम्हारी पात्रता भी दो कौड़ी की है। पात्रता में भी क्या करोगे? कोई आदमी धन के पीछे दीवाना है तो कहता है--मैं अपात्र। और वह धन छोड़ कर चला जाएगा जंगल में तो सोचेगा--पात्र। और धन में था ही क्या? तुम सोचते हो परमात्मा तुम्हारे सरकारी नोटों में भरोसा करता है? तुम भी नहीं करते, परमात्मा क्या खाक करेगा? तुम्हारे सरकारी नोटों का भरोसा क्या है? कब कैंसिल हो जाएं! कब कागज के टुकड़े हो जाएं! तुम सोचते हो तुम्हारे रिजर्व बैंक के गवर्नर के द्वारा जो प्रॉमिसरी नोट दिए जाते हैं, वह परमात्मा उनमें भरोसा करता है? कि तुम्हारे पास दस लाख रुपये थे, तो तुम अपात्र; अब तुमने दस लाख के नोट छोड़ दिए, जंगल में जाकर बैठ गए, तो तुम पात्र! तुमने छोड़ा क्या? पकड़ा क्या? कागज के नोट थे। कागज के नोटों से न तो कोई अपात्र होता है, न कोई पात्र होता है।
फिर आदमी की पात्रता मेरी दृष्टि में क्या है? एक ही कि आदमी अपना द्वार खोलने को राजी हो। आदमी विनम्र हो। और ध्यान रखना, इसे मैं दोहरा कर तुमसे कहना चाहता हूं कि जिनको तुम पात्र कहते हो, वे विनम्र नहीं होते, और वही उनकी गहरी से गहरी अपात्रता है। किसी ने उपवास कर लिया, वह पात्र हो जाता है। वह अकड़ कर बैठ जाता है। किसी ने गरीब पत्नी को छोड़ दिया। अब पत्नी भूखों मरती है, परेशान होती है। कोई अपने बच्चों को छोड़ कर चला गया। अब बच्चे अनाथ हो गए और भीख मांगने लगे। मगर यह अकड़ कर बैठा है मंदिर में कि मैं मुनि हो गया! कि मैं त्यागी हूं! कि मैं व्रती हूं! कि देखो मैंने कितनी पात्रता अर्जित की है!
यह अपराधी है, पात्र इत्यादि कुछ भी नहीं। इसने बच्चों को अनाथ कर दिया, इसने पत्नी को बाजार में खड़ा कर दिया, यह अपने छोटे-मोटे कर्तव्य भी नहीं निभा सका, इसको तुम पात्र कह रहे हो? यह सिर इत्यादि घुटा कर यहां बैठ गया है, इससे तुम सोचते हो कि परमात्मा इससे बड़े प्रसन्न हैं। कोई सिर घुटा लेने से परमात्मा का खास लगाव तुममें हो जाएगा?
यह क्या पात्रता है! लेकिन यह पात्रता का भाव पैदा हो गया, तो अहंकार मजबूत हो गया--यह और अपात्र हो गया। इससे तो तभी बेहतर था जब यह कहता था कि मैं अपात्र हूं, कभी-कभी शराब भी पी लेता हूं, और कभी-कभी किसी स्त्री के मोह में भी पड़ जाता हूं, और कभी-कभी मन में क्रोध भी आ जाता है, मैं अपात्र हूं; मुझे कैसे परमात्मा मिलेगा, मैं अपात्र हूं। जिस दिन इसका ऐसा भाव था, मेरी दृष्टि में उस दिन यह ज्यादा पात्र था, कम से कम निर-अहंकारिता थी; दंभ नहीं था, अकड़ नहीं थी, यह झुक सकता था।
एक ही पात्रता है मेरी दृष्टि में--झुकने की क्षमता, ग्रहण करने की क्षमता, द्वार खोलने के लिए राजीपन। तुम अगर द्वार खोलने को तैयार हो हृदय के, तो आ गया मुहूर्त, आ गया शुभ दिन। अब सोचते मत रहो। अब पूछना किससे है? जिस बुद्धि से तुम पूछ रहे हो, वह बुद्धि तो बाधाएं खड़ी करेगी। बुद्धि तो कहेगीः कहां की झंझट में पड़ते हो! संन्यास ले लोगे, मुसीबतें आएंगी; दफ्तर में लोग हंसेंगे, गांव के लोग पागल समझेंगे।
एक जैन महिला ने मुझे आकर कहा कि मेरे पति आपका संन्यास ले लिए हैं। अगर उनको संन्यासी ही होना है, तो वे असली संन्यासी हो जाएं।
असली! मैंने कहा, तेरा मतलब?

उसने कहा, तो जैन मुनि हो जाएं। हम भूखे मर लेंगे, मगर कम से कम कोई उनको पागल तो न समझेगा। अभी तो लोग उन्हें पागल समझने लगे हैं। हमारे बच्चे स्कूल जाते हैं तो लोग कहते हैं--तुम्हारे पिताजी को क्या हो गया? मैं स्त्रियों से मिलने में डरने लगी हूं, उनकी पत्नी ने कहा, क्योंकि जो मुझे देखते हैं, वे कहते हैं--तुम्हारे पति को क्या हो गया? ये गैरिक वस्त्र क्यों पहन लिए हैं? यह माला क्यों लटका ली है? यह कैसा संन्यास? पत्नी मुझसे कह रही थी कि अगर वे जैन मुनि हो जाएं--हमें मुसीबतें होंगी, बहुत क्योंकि वे छोड़ कर चले जाएंगे--लेकिन हम सम्हाल लेंगे, मैं बच्चों की देखभाल कर लूंगी, मगर वे कम से कम ऐसा संन्यास तो लें कि कोई हंसे न, कोई पागल न समझे।
और जिस संन्यास में लोग हंसेंगे नहीं, पागल नहीं समझेंगे, समझ लेना वह तुम्हारी समाज-व्यवस्था का अंग है, इसलिए लोग नहीं हंसते। महावीर पर लोग हंसे थे, जैन मुनि पर नहीं हंसते। महावीर संन्यासी थे और जैन मुनि संन्यासी नहीं है। बुद्ध पर लोग हंसे थे, जिस गांव में जाते थे उसी गांव में कोई आकर समझाता था कि आप भी यह क्या किए? इतनी धन-दौलत, घर, आपका दिमाग खराब हो गया? अपना राज्य छोड़ कर भाग गए, इस डर से कि इस राज्य के भीतर कहीं रुकूंगा तो पिता के आदमी आकर परेशान करेंगे, पड़ोस के राज्य में चले गए। पड़ोस के राजा को पता चला तो वह उनकी गुफा में दर्शन करने आया। उसने कहा कि तुम फिकर मत करो, अगर तुम्हारी पिता से नहीं बनती, या कोई झंझट हो गई है, तो मुझे तुम अपना पिता समझो। तुम्हारे पिता मेरे बचपन के मित्र हैं, हम साथ-साथ पढ़े और बड़े हुए। तुम मेरे घर आ जाओ, मेरी बेटी से मैं तुम्हारा विवाह कर देता हूं, मेरी एक ही बेटी है, यह राज्य तुम्हारा। मगर यह क्या ढोंग रचा हुआ है?
बुद्ध को भी लोग यही कहने गए थे--यह क्या ढोंग रचा हुआ है? दिमाग तुम्हारा ठीक है? चलो बाप से नहीं बनती, हो सकता है, मेरे घर आ जाओ; यह राज्य भी तुम्हारा ही है, यह तुम्हारे राज्य से छोटा भी नहीं है, बड़ा है। तुम इसको सम्हाल लो, कोई चिंता न करो, मैं तुम्हारे पिता को सम्हाल लूंगा। जब बुद्ध बुद्ध हो गए, ज्ञान को उपलब्ध हो गए और घर वापस आए, तो भी बाप
ने यही कहा कि तूने मुझे धोखा दिया! तू मेरे बुढ़ापे का एकमात्र बेटा, इकलौता बेटा, तू ही मेरे हाथ की लकड़ी, ये सब मैंने जिंदगी भर तेरे लिए किया, और तू छोड़ कर भाग गया! बाप की आंखों में क्रोध की चिनगारी थी। बूढ़े बाप में बड़ा क्रोध था। और उन्होंने कहा कि मैं तुझे अभी भी माफ कर दूंगा, यह बाप का हृदय है। तूने ठीक नहीं किया, बहुत घाव पहुंचाया, बारह वर्ष तेरी प्रतीक्षा की है। चल तू लौट आया, कोई बात नहीं, भूल जाऊंगा बारह वर्ष तूने जो मेरे साथ किया और जो दुख दिए। मगर लौट आ, घर के भीतर चल, यह भिक्षा का पात्र फेंक। हमारे कुल में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ। तू सम्राट का बेटा है! यह क्या तू हमारी मजाक उड़वा रहा है? लोग आते हैं और लोग कहते हैं-- तुम्हारा बेटा भीख मांगता है। तू सोचता है मुझ पर क्या बीतती है? बारह साल से मैं सोया नहीं हूं। तूने मेरी उम्र कम कर दी है, मैं समय के पहले जीर्ण-जर्जर हो गया हूं।
बुद्ध सामने खड़े हैं और बाप यह कह रहे हैं! लेकिन अब बौद्ध भिक्षु को कोई यह नहीं कहता। अब बौद्ध भिक्षु परंपरा का हिस्सा हो गया है।
तुमसे मैं कहता हूंः यह जो संन्यास का द्वार मैंने खोला है, जब तक लोग इसे पागलपन समझेंगे तभी तक यह सार्थक है। जल्दी ही यह भी स्वीकृत हो जाएगा। जब यह स्वीकृत हो जाएगा, तब यह व्यर्थ हो जाएगा। तब तुम संन्यास मत लेना, तब कोई फायदा नहीं होगा। तब तुम फिर किसी जीवित पागल को खोजना, जो तुम्हें फिर पागलपन में डाल दे। अभी मौका है। अभी लोग हंसेंगे, अभी लोग पागल समझेंगे, यही तो कसौटी है।
और फिर चूंकि मैं तुमसे घर छोड़ने को नहीं कहता, इसलिए मुसीबत और है। महावीर ने इतनी मुसीबत नहीं दी थी अपने लोगों को, जितनी मैं तुम्हें दे रहा हूं। बुद्ध ने इतनी मुसीबत नहीं दी थी। मैं तुम्हें एक बहुत ही बिगूचन की व्यवस्था में डाल रहा हूं। संन्यासी बना रहा हूं और घर से अलग नहीं कर रहा हूं। दुकान पर बैठोगे, गैरिक वस्त्रों में, बड़ी अड़चन होगी। गैरिक

वस्त्रों में जंगल में बैठा जाता है, तब कोई अड़चन नहीं होती। और दुकान पर बैठना हो तो गैरिक वस्त्रों में नहीं बैठा जाता है, तब कोई अड़चन नहीं होती। मैं तुम्हारे जीवन में एक विरोधाभास पैदा कर रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूंः जल में रहना और कमल की तरह रहना। गुलाब को इतनी अड़चन नहीं होती, वह जल में नहीं रहता। कमल को अड़चन होती है--पानी में और पानी न छुए। बाजार में रहना और बाजार न छुए। घर में रहना और घर न छुए। जमीन पर चलना और जमीन पर पैर न पड़ें। ऐसी कठिन कठिनाई तुम्हारे सामने खड़ी कर रहा हूं। लेकिन जितनी बड़ी चुनौती होती है, उतना ही बड़ा फल होता है।
तुम कहतेः "मैं संन्यास लेना चाहता हूं।"
फिर सोचो मत, फिर विचारो मत; कौन जाने हिम्मत का यह क्षण जो आज तुम्हारे द्वार आ गया है, कल रहे, न रहे; कल तुम कमजोर हो जाओ, कल आते-आते कायर हो जाओ; कल की कौन जानता है? और मुहूर्त ज्योतिषियों से नहीं पूछे जाते। मुहूर्त हृदय से पूछे जाते हैं।

पत्थर शब्दों में गढ़ मूरत
जिसमें दीखे जग की सूरत

सूरत जो तनाव वाली हो
चेतन हो, अलाव वाली हो
शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत

तम से लड़ता हुआ सवेरा
"मैं" का खंडहर "हम" का घेरा
तहखानों के राज खोलती
शैली जिसकी आज जरूरत

पत्थर शब्दों में गढ़ मूरत
कागज में मत देख महूरत

कागजी मुहूर्त काम न आएंगे। ज्योतिषियों से पूछी गई बातें काम न आएंगी। तुम्हारा ज्योतिषी तुम्हारे भीतर, अंतसचेतन से पूछो, वहीं से जहां से यह लहर आई तुम्हारी भीतर कि अब संन्यास लूं। अथातो भक्ति जिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करूं, अब खोजूं भगवान को। संसार बहुत खोजा, अब उसके लिए भी टटोलूं, तलाशूं, मौत करीब आती है, इसके पहले कुछ तो संपदा पास हो।
शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत
और जब भी शुभ भाव उठे, तो देर मत करना। मुहूर्त देखने में भी देर हो जाएगी। तब तक हो सकता है शुभ की घड़ी आई और गई। जब अशुभ भाव आए, तो जितनी देर बन सके उतनी देर टालना। इसको तुम जीवन का सूत्र समझो। क्रोध उठे, तो कहना-- कल करेंगे, चौबीस घंटा सोचेंगे। जल्दी क्या है? क्रोध ही है, ऐसी कोई बड़ी बहुमूल्य चीज चूक नहीं जाएगी, चौबीस घंटे सोच कर करेंगे। और जब प्रेम आए तो अभी कर लेना, कल पर मत छोड़ना। दान देना हो तो अभी दे देना, चोरी करनी हो तो चौबीस घंटे सोच लेना। और तुम चकित होओगे, जिस चीज को सोचोगे चौबीस घंटे, वही नहीं होगी, और जिसको अभी कर लोगे, वही होगी। क्रोध लोग अभी कर रहे हैं, इसलिए क्रोध तो दुनिया में चलता है; और प्रेम कल पर टालते हैं, इसलिए प्रेम नहीं चलता। चोरी अभी करते हैं, दान कल पर छोड़ते हैं, इसलिए चोरी दुनिया में है और दान दुनिया में नहीं है। जो तुम अभी करते हो, वही होता है। जो तुम कहते हो कभी करेंगे, वह कभी नहीं होता। या तो अभी, या कभी नहीं।
शुभ के लिए सजग है तो फिर
कागज में मत देख महूरत
और जिंदगी ऐसे ही बही जाती है, संन्यास ही जिंदगी में रंग लाता है। जिंदगी ऐसे ही बही जाती है, संन्यास ही जीवन में अर्थ लाता है। जिंदगी ऐसी

वीणा है जिसको तुमने छेड़ा नहीं। संन्यास वीणा को छेड़ता है, संगीत को जन्माता है। जीवन ऐसा अनगढ़ पत्थर है जिस पर तुमने छेनी नहीं उठाई, मूर्ति प्रकटे तो कैसे प्रकटे? संन्यास इस पत्थर के साथ संघर्ष है। इस पत्थर में जो-जो व्यर्थ है वह छांट कर अलग कर देना है, और जो-जो सार्थक है उसे प्रकट होने देना है। पत्थर ही तो मूर्ति बन जाता है, अनगढ़ पत्थर मूर्ति बन जाता है।
माइकलएंजलो एक पत्थर वाले की दुकान के पास से गुजरता था। उसने दुकान
के बाहर दूसरी तरफ, राह के दूसरी तरफ एक बड़ी संगमरमर की अनगढ़ चट्टान पड़ी देखी। वह अंदर गया और दुकान के मालिक से उसने कहा कि वह चट्टान मैं खरीद लेना चाहता हूं। मालिक ने कहा, वह चट्टान बेचने का सवाल ही नहीं है, तुम ऐसे ही ले जाओ। क्योंकि वर्षों हो गए, वह बिकती नहीं है। हमने उसे इसीलिए सड़क के उस तरफ डाल दिया है कि जिसकी मर्जी हो, ले जाए। दुकान में जगह भी नहीं है। वह चट्टान बड़ी अनगढ़ है, उसका तुम करोगे क्या? माइकलएंजलो ने कहा, वह मैं फिर समझ लूंगा, हम ले जाते हैं। दुकानदार ने कहा, धन्यवाद तुम्हारा, क्योंकि वह चट्टान नाहक जगह घेरे है, उसकी जगह हम कुछ और सामान रख सकेंगे। वर्षों बाद माइकलएंजलो ने उस दुकानदार को अपने घर निमंत्रण दिया, भोजन पर बुलाया और कहा कि एक मूर्ति मेरी बन कर तैयार हुई है, देख लो। वह उस मूर्ति को देखने गया। ऐसी मूर्ति उसने देखी नहीं थी। ऐसी मूर्ति पृथ्वी पर दूसरी है भी नहीं। मरियम की गोद में सूली से उतारे गए जीसस की मूर्ति है। अभी-अभी सूली से उतरे हैं, अभी-अभी खून टपकता है, अभी खून गर्म है, जीसस की लाश उनकी मां मरियम के हाथों में है। इस मूर्ति को उसने खोदा है।
अवाक खड़ा रह गया दुकानदार। उसने बहुत मूर्तियां देखी थीं बनते, जीवन
भर संगमरमर का ही काम किया था, ऐसी मूर्ति नहीं देखी थी! उसने कहा, यह पत्थर तुमने कहां से पाया? यह पत्थर बहुमूल्य है। ऐसा पत्थर मैंने नहीं देखा। माइकलएंजलो हंसा, उसने कहा, यह वही पत्थर है जो तुमने सड़क के दूसरी तरफ फेंक दिया था और जिसे मैं मुफ्त उठा लाया था।
दुकानदार तो मान ही न सका कि यह वही पत्थर है! इससे ऐसी मूर्ति प्रकटी! तुम कैसे कल्पना कर सके उस अनगढ़ बेहूदे पत्थर को देख कर कि यह मूर्ति इसमें से निकल सकेगी? माइकलएंजलो ने कहा, मैंने नहीं देखा, मैं तो रास्ते से गुजरता था, क्राइस्ट ने इस पत्थर के भीतर से मुझे आवाज दी कि भई सुन, मुझे इससे मुक्त कर, मुझे इस पत्थर में से निकाल, इसमें रहे मुझे बहुत दिन हो गए। वही पुकार सुन कर मैं यह पत्थर ले आया था। इसमें जो-जो व्यर्थ था वह अलग कर दिया है, जो-जो सार्थक है वह प्रकट हो गया। मैंने मूर्ति बनाई नहीं, सिर्फ व्यर्थ को छांट कर अलग किया है।
जीवन भी ऐसा ही है। मूर्ति तो तुम्हारे भीतर परमात्मा की है ही, पुकार
ही रही है, वही मूर्ति पुकारी है कि अब संन्यास ले लो। लेकिन कुछ अनगढ़ पत्थर में कुछ कोने हैं, व्यर्थ का कचरा-कूड़ा है, वह सब छांटना है। पात्र होने की प्रतीक्षा मत करो। संन्यास तुम्हें पात्र बनाएगा, संन्यास तुम में पात्रता की पहले से अपेक्षा नहीं करता है।

बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार...
चिनगारी उठेगी

एक चिनगी
एक क्षण को, प्रण बनाएगी
नींद में डूबी हुई
बस्ती जगाएगी

जागरणः खिड़की, झरोखा, द्वार... बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार चिनगारी उठेगी

द्वार जिनके बंद हैं
जिंदे नहीं हैं वे
हाय, बंदों के लिए
बंदे नहीं हैं वे

मांगती है आदमीयत धार...
बैठ मत बेकार
पत्थरों पर पत्थरों को मार
चिनगारी उठेगी

संन्यास उसी का निमंत्रण है।
पत्थरों पर पत्थरों को मार...
चिनगारी उठेगी
संन्यास एक संघर्ष है। एक संकल्प भी और एक समर्पण भी। संकल्प कि अब तक मैं जैसा था उससे अन्यथा होने का क्षण आ गया, और समर्पण कि अब मैं परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ता हूं। अब वह जो चाहे हो जाए; और जो चाहे न हो, वह न हो; अब उसकी मर्जी मेरी मर्जी होगी। तो संन्यास एक संकल्प है और फिर एक समर्पण भी। संन्यास बड़ा विरोधाभासी है। उसके विरोधाभास में ही उसका सत्य है, उसके विरोधाभास में ही उसकी क्रांतिपूर्ण प्रक्रिया है। वह तुम्हें मारेगा भी और तुम्हें जिलाएगा भी। वह तुम्हें सूली भी देगा और सिंहासन भी।
जब हृदय कहे, तभी मुहूर्त आ गया है। अब कागजों में मुहूर्त देखने की जरूरत नहीं है। और ज्यादा प्रतीक्षा मत करना, अन्यथा मुहूर्त निकल भी जा सकता है।

आखिरी प्रश्नः विरह क्या है?

भक्ति के मार्ग पर विरह आधी यात्रा है, और मिलन शेष आधी। दो ही कदम हैं भक्ति के--विरह और मिलन। पहले विरह, फिर मिलन। जो विरही है, वही मिलेगा। विरह का अर्थ है कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। विरह का अर्थ है कि मुझे पता नहीं परमात्मा कहां है, कहां छिपा है। विरह का अर्थ है कि मुझे मेरे जीवन का अर्थ नहीं मिलता। विरह का अर्थ है, आंसू और आंसू मेरी आत्मा पर फैले हैं, मैं रो रहा हूं, मैं पुकार रहा हूं; राह नहीं सूझती, अंधेरा है, मैं टटोल रहा हूं, मैं भटक रहा हूं, मैं गिर रहा हूं, मैं उठ रहा हूं। विरह प्यास है। विरह अभीप्सा है। कुछ है जो प्रकट नहीं हो रहा है, और जो प्रकट हो जाए तो जीवन का अर्थ मिल जाए, जीवन में संगति आ जाए, संगीत आ जाए। कुछ है जो अनुभव में आता है भीतर कि पास ही है, फिर भी चूक-चूक जाता है। कुछ है जिसकी अचेतन में ध्वनि सुनाई पड़ती है, लेकिन चेतन तक नहीं आ पाती।
विरह का अर्थ हैः परमात्मा है और मुझे नहीं मिल पा रहा है। तो मैं रोऊं, तो मैं पुकारूं, तो मैं गिरूं उसके अज्ञात चरणों में, तो मैं उस अज्ञात के लिए दीये जलाऊं, आरती सजाऊं, फूलमालाएं गूंथूं। मैं खाली हूं और मेहमान आ नहीं रहा है। मेहमान है निश्चित, इसकी प्रतीति होनी शुरू होती है भक्त को कि परमात्मा है निश्चित, हर तरफ उसकी छाया सरकती मालूम पड़ती है, फूलों में उसका रूप दिखाई पड़ता है, पक्षियों में उसकी उड़ान मालूम होती है, झरनों में उसका कलकल नाद मालूम होता है, अस्पष्ट सी अनुभूति होती है, पगध्वनि सुनाई पड़ती है कभी-कभी किन्हीं क्षणों में और किसी-किसी झरोखे से वह झांक जाता है, किसी सपने में उसकी छाया पड़ती है, प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है दूर की, एहसास होने लगता है कि है तो जरूर, लेकिन कब छाती से छाती मिले, कब आलिंगन हो!
विरह का अर्थ हैः ऐसी चित्त की दशा जिसे एहसास तो होना शुरू हुआ, लेकिन एहसास अभी अनुभूति नहीं बना है। जिसे परमात्मा की प्रतीति अनुभव में तो आने लगी, लेकिन आमना-सामना नहीं हुआ, दरस-परस नहीं हुआ है। ध्वनि

सुनी है कहीं से, लेकिन कहां से आती है, स्रोत नहीं मिल रहा है। ध्वनि सुन कर ही भक्त मस्त हो गया है। जैसे मदारी ने अपनी तुरही बजाई हो और सांप अपनी पोल में छिपा हुआ तड़फने लगे, ऐसा विरह है। सरकने लगे ध्वनि के स्रोत की तरफ, मस्त होने लगे, मदमस्त होने लगे।
इस विरह को शांडिल्य ने कहा--बड़ा उपयोगी है। जब दो विरही मिल जाते हैं, रोते हैं और एक-दूसरे को रुलाते हैं और प्रभु की महिमा का बखान करते हैं, प्रभु की उपस्थिति की चर्चा करते हैं, प्रभु की झलकें एक-दूसरे से आदान-प्रदान करते हैं, तब सत्संग होता है। उसी सत्संग में धीरे-धीरे अनुभव निखरते हैं, साफ होते हैं। सोना विरह की अग्नि से गुजर-गुजर कर खालिस कुंदन बनता है। और एक दफा मजा आने लगता है आंसुओं का--क्योंकि ये आंसू परमात्मा के लिए हैं, ये दुख के आंसू नहीं हैं, ये बड़े अहोभाव के आंसू हैं। इतना भी क्या कम है कि हमें उसका एहसास होने लगा! हम धन्यभागी हैं कि हमें उसका एहसास होने लगा। अभागे हैं बहुत जिन्हें यह पता ही नहीं है कि परमात्मा जैसी कोई बात होती है, जिन्होंने कभी इस शब्द पर दो क्षण विचार नहीं किया है, जिन्हें प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं मालूम।

आओ फिर नज्म कहें
फिर किसी दर्द को सहला के सुजा लें आंखें
फिर किसी दुखती हुई रग से छुआ दें नश्तर
या किसी भूली हुई राह पे मुड़ कर इक बार
नाम लेकर किसी हमनाम को आवाज ही दे लें
फिर कोई नज्म कहें
आओ फिर कोई नज्म कहें

जब दो विरही मिलते हैं--और विरहियों का मिलन सत्संग है। जब दो प्रेमी मिल जाते हैं, या चार प्रेमी मिल बैठते हैं, तो करते क्या हैं? रोते हैं और रुलाते हैं। रोमांचित होते हैं, एक-दूसरे की भाव-दशा को पीते हैं, एक-दूसरे की भाव-दशा से आंदोलित होते हैं, एक-दूसरे से संक्रामित होते हैं।
आओ फिर नज्म कहें
फिर किसी दर्द को सहला के सुजा ले आंखें
फिर किसी दुखती हुई रग से छुआ दें नश्तर
या किसी भूली हुई राह पे मुड़ कर इक बार
नाम लेकर किसी हमनाम को आवाज ही दे लें
फिर कोई नज्म कहें
इन घड़ियों में परमात्मा और थोड़े करीब आ जाता है। जितने तुम्हारे आंसू गहन होते हैं, उतना परमात्मा करीब आ जाता है। आंसू भरी आंखें ही उसे देखने में समर्थ हो पाती हैं। आंसू से भरी आंखें पात्र हो जाती हैं। लबालब। आंसू से भरी आंखें तुम्हारी प्रार्थना से भरी आंखें हैं, झलक उसकी गहराने लगती है। जितनी झलक गहराती है, उतनी तड़प भी गहराने लगती है।

मगर निठुर न तुम रुके, मगर निठुर न तुम रुके!

पुकारता रहा हृदय, पुकारते रहे नयन
पुकारती रही सुहाग-दीप की किरन-किरन
निशा-दिशा, मिलन-विरह विदग्ध टेरते रहे
कराहती रही सलज्ज सेज की शिकन-शिकन
असंख्य श्वास बन समीर पथ बुहारते रहे
मगर निठुर न तुम रुके, मगर निठुर न तुम रुके!

आता परमात्मा बहुत बार और चला जाता। आता हवा के झोंके से--यह आया और यह गया! और पीछे बड़ा विदग्ध भाव छोड़ जाता। विरह घना होने लगता है। विरह एक ऐसी घड़ी में आ जाता है, जब विरह भक्त की मृत्यु बन जाता है, जब भक्त अपने को बिल्कुल ही गंवा देता है, जब विरही और विरह दो नहीं रह जाते, जब विरही और

विरह एक ही हो जाते हैं, जब भक्त का रोआं-रोआं रोता है, श्वास-श्वास रोती है, धड़कन-धड़कन रोती है, उसी घड़ी क्रांति घटती है, उसी घड़ी विरह की रात्रि पूरी हुई, मिलन की सुबह आई।
विरह को सौभाग्य समझना। विरह द्वार पर दस्तक दे, टालना मत। विरह पुकारे, उसके पीछे जाना। विरह बहुत सताएगा, क्योंकि सताए बिना निखार नहीं है। विरह बहुत जलाएगा, क्योंकि बिना जलाए कोई परिशुद्धि नहीं है। विरह को मित्र मानना, तो एक दिन विरह तुम्हें इस योग्य बना देगा कि मिलन घट सके। विरह तुम्हारे हाथ में है, मिलन तुम्हारे हाथ में नहीं। इसलिए विरह
को जितना प्रगाढ़ कर सको उतना प्रगाढ़ करो। रोओ, रोमांचित होओ, नाचो, पुकारो। यही पुकार, यही रुदन, यही नृत्य, यही तुम्हारे हृदय से उठती हुई कराह तुम्हें धीरे-धीरे परमात्मा की तरफ खींचती ले जाएगी। यही तुम्हें ठीक दिशा देगी, और इसी दिशा से एक दिन परमात्मा चला आता है। जिस दिन तुम्हारा विरह सचमुच परिपूर्ण हो जाता है, उस दिन तुम परमात्मा को पाने के हकदार हो गए, उस दिन तुम पात्र बने।
संन्यास के लिए पात्रता की जरूरत नहीं है, परमात्मा के लिए पात्रता
की जरूरत आएगी। लेकिन वह पात्रता भी ध्यान रखना, तुम्हारे उपवास की पात्रता नहीं है, और न तुम्हारे त्याग की पात्रता है, क्योंकि उससे तो अहंकार भरता है। वह पात्रता तुम्हारे आंसुओं की पात्रता है, क्योंकि आंसुओं से ही तुम गलते हो, पिघलते हो; आंसुओं में ही एक दिन धीरे-धीरे गल-गल कर अहंकार समाप्त हो जाता है।
जहां अहंकार की समाप्ति है, वहीं परमात्मा से मिलन है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
उन्नीसवां प्रवचन

सब हो रहा है

सूत्र

तद्वाक्यशेषात प्रादुर्भावेष्वपि सा।। 46।।
जन्मकर्म्मविदश्चाजन्मशब्दात्।। 47।।
तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्रोद्भवात्।। 48।।
मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।। 49।।
प्राणित्वान्न विभूतिषु।। 50।।

युक्तौ च सम्परायात्।

प्रकृति और पुरुष दो नहीं हैं। आत्मा और परमात्मा दो नहीं हैं। दृश्य
और द्रष्टा दो नहीं हैं। भक्ति की यह आधारशिला है कि एक होने का उपाय है।
एक होने का उपाय तभी हो सकता है, जब वस्तुतः हम एक हों ही। यथार्थ से अन्यथा नहीं हो सकता। भक्त भगवान से मिल सकता है तभी, जब मिला ही हुआ हो।
जब पूर्व से ही मिला हो, जब प्रथम से ही विरह न हुआ हो, बिछुड़न न हुई हो।
यह थोड़ी जटिल बात है, इसे ख्याल में लेना।
आम का बीज बोते हैं, आम पैदा होता है। आम इसलिए पैदा होता है कि आम छिपा था, आम था ही। नहीं तो कंकड़ बोते तो आम पैदा हो जाता। जो छिपा है, वह प्रकट होता है। इस जगत में वही मिलता है जो मिला ही हुआ है। भेद इतना ही पड़ता है कि छिपा था, अब प्रकट हुआ। तुम भगवान हो, लेकिन अभी बीज की नाईं; जब वृक्ष की नाईं होओगे, तब जानोगे, तब पहचानोगे।
शांडिल्य कहते हैंः दोनों प्रथम से ही एक हैं।
युक्तौ च सम्परायात्।
कभी अलग हुए नहीं। अलग होना भ्रांति है। अलग होना हमारे मन का भ्रम है। और यह भ्रम हमने इसलिए पैदा किया है कि इसी अलग होने के भ्रम के आधार पर अहंकार पाला-पोसा जा सकता है। यदि तुम परमात्मा हो तो तुम रहे ही नहीं, परमात्मा रहा। बूंद डरती है सागर होने से। बूंद सागर हो जाएगी तो बूंद नहीं रह जाएगी, सागर ही रहेगा। विराट के साथ मिलने में भय लगता है। आकाश के साथ जुड़ना दुस्साहस की बात है।
इसलिए भक्त को दुस्साहसी होना ही होगा। बूंद अपने को खोने चली है। छोटी सी बूंद इतने विराट सागर में! फिर न पता लगेगा, न ओर-छोर मिलेगा; फिर अपने से शायद कभी मिलना भी न हो। इतनी खोने की जिसकी हिम्मत है, वही भक्त हो सकता है। और जो भक्त हो सकता है, वही भगवान हो सकता है। भक्त होने का अर्थ हैः बीज ने अपने को तोड़ने का निर्णय लिया। तुम जमीन में बीज को बोते हो; जब तक बीज टूटे नहीं, वृक्ष नहीं होता; जब तक बीज मिटे नहीं, तब तक अंकुरण नहीं होता; बीज की मृत्यु ही वृक्ष का जन्म है। तुम्हारी मृत्यु ही भगवान का आविर्भाव है। भक्त जहां मरता है, वहीं भगवत्ता उपलब्ध होती है। इसीलिए तो लोगों ने झूठी भक्ति की व्यवस्थाएं खोज रखी हैं, ताकि अपने को मिटने से बचा सकें। मंदिर जाते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं, यज्ञ-हवन करते हैं, अपने को बचाए रखते हैं। आग में घी डालते हैं, अपने को नहीं डालते। आग में गेहूं डालते हैं, अपने को नहीं डालते। वृक्षों से तोड़ कर फूल परमात्मा के चरणों में चढ़ा आते हैं, अपने को नहीं चढ़ाते। और जिसने अपने को नहीं चढ़ाया, उसने पूजा जानी ही नहीं; वह बीज टूटा ही नहीं, अंकुरण से उसकी कोई मुलाकात ही न हुई।
बिना मिटे इस जगत में होने का कोई उपाय नहीं। छोटे तल पर मिटो तो बड़े
तल पर प्रकट होते हो। जितने ज्यादा मिटो, उतने प्रकट होते हो। जब परिपूर्ण रूप से मिटते हो, तब भगवत्ता उपलब्ध होती है, क्योंकि भगवत्ता पूर्णता है, उसके पार फिर कुछ और नहीं।

लेकिन यह हो सकता है इसीलिए, क्योंकि यह हुआ ही हुआ है। इस उदघोषणा को जगह दो अपने हृदय में। तुम भगवान हो सकते हो, क्योंकि तुम भगवान हो। भगवान ने तुम्हें एक क्षण को नहीं छोड़ा है, तुम भला पीठ करके खड़े हो गए हो। तुमने भला आंखें बंद कर ली हैं। सूरज निकला है और चारों तरफ जगत रोशन है। तुम अंधेरे में खड़े हो, यह तुम्हारा निर्णय है। अंधेरा है नहीं, अंधेरा बनाया हुआ है, कृत्रिम है। इस कृत्रिम बनाए हुए अंधेरे का नाम माया है, जो आदमी खुद बना लेता है।
तुमने एक आश्चर्य से भरने वाली बात देखी कि लोग दुख को बड़ी मुश्किल से छोड़ते हैं! बात एकदम से कहो तो बेबूझ लगती है। मनस्विदों से पूछो। सिग्मंड फ्रायड से पूछो। सिग्मंड फ्रायड खुद भी तीस वर्षों तक इस पहेली से परेशान रहा। सैकड़ों लोगों का मनोविश्लेषण करने के बाद एक बात बार-बार उभर कर सामने आई कि लोग दुख को छोड़ने को राजी नहीं हैं। कहते हैं, मानते भी हैं शायद कि हम दुख छोड़ना चाहते हैं, लेकिन छोड़ने को राजी नहीं हैं। फ्रायड बड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ था। क्योंकि हम तो सदा से यही सुनते रहे हैं कि आदमी सुख चाहता है। यह बात तो इतनी प्रचारित की गई है कि हमने मान लिया है कि आदमी सुखवादी है, सभी सुख चाहते हैं। लेकिन जरा आदमी को गौर से देखो। आदमी दुख को पकड़ता है, दुख को छोड़ता नहीं। आदमी दुखवादी है।
तीस साल के मनोविश्लेषण का परिणाम था कि फ्रायड ने एक नये सत्य का आविर्भाव किया, जो कि फ्रायड के पहले किसी दूसरे मनुष्य ने इस तरह से स्पष्ट रूप से घोषित नहीं किया था। उसने स्वदुखवाद की धारणा को पकड़ा-- मैसोचिज्म। आदमी अपने को सताता है। जिसको तुम तपश्चर्या कहते हो, वह अक्सर मैसोचिज्म होता है। गर्मी है, धूप पड़ रही है आग जैसी, और कोई धूनी रमाए बैठा है। तुम कहते हो--महात्यागी। जो जानते हैं, उनसे पूछो। यह महात्यागी नहीं है। यह महादुखवादी है। सर्दी पड़ रही है, पानी जम कर बर्फ हुआ जा रहा है, और कोई नग्न खड़ा है आकाश के नीचे। तुम कहते हो तपस्वी। यह तपस्वी नहीं है, यह रुग्णचित्त है। यह दुख को पकड़ रहा है। यह अपनी छाती में घाव कर रहा है। यह सुख से नहीं जीना चाहता। इसने दुख के उपाय कर रखे हैं। तुम अपने ही भीतर देखोगे तो तुम हैरान होओगे, तुम जानते हो भलीभांति
कि दुख के उपाय हैं। जैसे क्रोध सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता, लेकिन तुम छोड़ते क्यों नहीं? अहंकार सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता, फिर तुम छोड़ते क्यों नहीं? तो तुम्हारी जो सदियों से दोहराई गई बकवास है कि आदमी सुखवादी है, उस पर शक पैदा होता है। तुम जानते हो कि इस जगत में जो जितनी वासना से चलता है, उतने ही विषाद से भरता है। तुम भी वासना के रास्ते पर चले हो और कांटों के सिवाय कभी कुछ मिला नहीं। फूल खिले कब? हर बार हारे हो। जीत की आकांक्षा ने बहुत बुरी तरह हराया है। लेकिन जीत की आकांक्षा नहीं छोड़ते। उसे जोर से पकड़े हुए हो। जरूर उसमें कुछ न्यस्त स्वार्थ है। क्या न्यस्त स्वार्थ है?
एक ही न्यस्त स्वार्थ दिखाई पड़ता है कि जब तुम दुख में होते हो, तब तुम होते हो। और जब तुम सुख में होते हो, तब तुम नहीं होते। और यही भय है। सुख से लोग भयाक्रांत हैं। कोई सुखी नहीं होना चाहता। क्योंकि सुख के लिए एक कीमत चुकानी पड़ती है, वह है मैं का टूट जाना। दुख में मैं साबित रहता है। साबित ही नहीं रहता, बड़ा बलिष्ठ और स्वस्थ रहता है। दुख पोषण है मैं के लिए, अहंकार के लिए, अस्मिता के लिए। इसीलिए तो तुम अपने दुख को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हो। जांचना अपने को ही। जब तुम अपने दुख की बात करते हो, तो तुम कितना बढ़ा-चढ़ा कर कह रहे हो।
इधर मैं देखता हूं रोज, ऐसा आदमी कभी मुझे दिखाई नहीं पड़ता जो अपने दुख पर शक करता हो, जो कभी मुझसे आकर कहे कि मैं बहुत दुखी हूं, मैं बहुत परेशान हूं, कहीं यह दुख मेरे मन की कल्पना ही तो नहीं है? नहीं, एक आदमी नहीं कहता। लेकिन जब यहां लोग ध्यान में धीरे-धीरे उतरना शुरू करते हैं और सुख की थोड़ी झलकें आती हैं, सुख के थोड़े झोंके आते हैं, कुछ भीतर की कारा टूटती है, कुछ झरोखे खुलते हैं, थोड़ी रोशनी भीतर पड़ती है, कहीं-कहीं कोने में कोई फूल खिलता है और सुगंध से प्राण व्याप्त होते हैं, भागे मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि बड़ा सुख हो रहा है, यह कहीं मन की कल्पना तो नहीं

है? यह वही आदमी, जो जन्मों से दुखी था, कभी शक न उठाया दुख पर, सुख पर शक उठाता है।
अगर तुम दुखी हो तो कोई तुमसे नहीं कहेगा कि कुछ गड़बड़ है। अगर तुम सुखी हो, लोग कहेंगे कि तुम आत्म-सम्मोहित हो गए, आटो-हिप्नोटाइज्ड हो गए। अगर तुम हंसो, नाचो सड़क पर, तो लोग कहेंगे--पागल हो गए हो। अगर तुम मुर्दे की तरह चलो, लाश की तरह अपने को ढोओ, लोग कहेंगे--बिल्कुल स्वस्थ-सामान्य आदमी है।
मुस्कुराहट स्वीकार नहीं है। इसीलिए तो लोग इतने उदास दिखाई पड़ते हैं, इतने थके-हारे दिखाई पड़ते हैं, इतना बोझढोते दिखाई पड़ते हैं। पहाड़ उनकी छाती पर रखे हैं, उनके सिर पर इतना सदियों का बोझ है कि चल भी नहीं सकते, लेकिन घसिट रहे हैं। बोझ को उतार कर भी नहीं रखते, क्योंकि बोझ को उतार कर रखो तो तुम्हें खुद भी शक होता है कि मैं बचा? क्योंकि तुम्हारा बोझ ही तुम हो। और तुम बोझ को उतारो तो दूसरों को शक पैदा होता है, दूसरे कहते हैं--क्या हुआ है तुम्हें? आज बड़े हंस रहे हो, कुछ भांग-गांजा तो नहीं पीने लगे? आज बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हो, किसी धोखे में तो नहीं आ गए? और यही नहीं कि दूसरों को शक होता है, तुम्हें भी भीतर शक होता है कि यह आज मेरे भीतर ताजगी-ताजगी, बात क्या है? कुछ गड़बड़ हुई जाती है, जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हो रहा है। एक दिन सुबह उठ कर अगर तुम अचानक अपने को समाधिस्थ पाओ, विश्वास करोगे?
यहां कभी-कभी ऐसा हो जाता है। कभी-कभी आकस्मिक, समाधि की एक बाढ़ आ जाती
है किसी को। रोआं-रोआं कंप जाता है भय से, क्योंकि उस समाधि की बाढ़ में अगर कोई चीज बह जाती है तो वह तुम हो। तुम खड़े नहीं रह सकते उस सुख के अंधड़ में। उस आंधी में तुम नहीं बचोगे। जड़-मूल उखाड़ कर ले जाएगी। इसलिए आदमी ने निर्णय कर लिया है कि दुख में रहूंगा, लेकिन कम से कम रहूंगा; मैं मिटना नहीं चाहता; अगर दुख की कीमत पर ही बच सकता हूं तो इसी कीमत पर सही, लेकिन मैं मिटना नहीं चाहता। और इसलिए तुम उन्हीं बातों को रोज-रोज करते हो जिनसे दुख पैदा होता है। यह बात तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो शायद क्रांति घटे। सुख पर भरोसा करो, दुख पर संदेह करो। यह कैसी बुद्धिमत्ता है कि तुम सुख पर संदेह करते हो और दुख पर भरोसा करते हो?
अब यह बड़े मजे की बात है। तुम महात्माओं के पास जाओ। तुम्हारे महात्मा तुमसे बहुत ज्यादा भिन्न नहीं हैं। तुम्हारी ही आकांक्षाओं, तुम्हारी ही मूढ़ताओं, तुम्हारी ही धारणाओं के प्रतिफलन हैं। तुम अपने महात्मा के पास जाओ, वे तुमसे कहेंगे, संसार में दुख ही दुख है। अगर तुम उनसे कहो संसार में सुख है, वे कहते हैं--सुख सब भ्रम है। और दुख? दुख बिल्कुल सच।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महात्मा कहे चले जाते हैं कि संसार में सुख तो सब धोखा है, दुख बिल्कुल सच्चा है! दुख को इशारा कर-कर के बताते हैं--यहां दुख, यहां दुख, यहां दुख। तुम अपने शास्त्र पढ़ो! वे शास्त्र कहते हैं कि स्त्री में है क्या? कौन सा सुख? कौन सा सौंदर्य?
अब जरा उनका तर्क समझना।
स्त्री में कोई सौंदर्य नहीं है, ऐसा वे कहते हैं; क्योंकि उसको उघाड़
कर देखो, उसको भीतर देखो, मलमूत्र भरा हुआ है। मलमूत्र सत्य है, सौंदर्य असत्य है!
अगर सौंदर्य असत्य है, तो उसी के साथ कुरूपता भी असत्य हो गई, क्योंकि कुरूपता फिर सत्य नहीं हो सकती। जब सौंदर्य ही नहीं है जगत में, तो कुरूपता कैसे हो सकती है? लेकिन कुरूपता तो बिल्कुल सच है, उसे तो खोद-खोद कर जाहिर करने में रस लेते हैं, इस तरह के वर्णन करते हैं कि तुम्हें मतली आने लगे। मतली सच है, वह जो कै उठने लगे तुम्हारे भीतर, वह सच है; लेकिन वह जो किन्हीं आंखों में तुम्हें सौंदर्य की झलक मिली, वह झूठ है। जगत में मृत्यु सत्य है, जीवन झूठ है। स्वास्थ्य झूठ है, बीमारी सच है। तुम्हारा महात्मा रस लेता है दुखों की फेहरिस्त बनाने में। बड़ा कुशल है। जैसे तुम सुबह लांड्री की लिस्ट बनाते हो, वह रोज सुबह उठ कर दुखों की लिस्ट बनाता

है। वह फेहरिस्त को बड़ी करता चला जाता है। मामला क्या है? क्यों दुख में इतनी उत्सुकता है?
तुम्हारा महात्मा भी दुख पर जीता है, तुम भी दुख पर जीते हो। तुम्हारा महात्मा तुमसे थोड़ा आगे चला गया है, इसलिए तुम उसे महात्मा कहते हो। वह तुमसे ज्यादा दुखवादी है, तुमसे ज्यादा मैसोचिस्ट है। फ्रायड को कोई महात्मा अध्ययन करने को नहीं मिला, मुझे महात्मा अध्ययन करने को मिले। फ्रायड ने तो केवल साधारण आदमियों के अध्ययन पर यह कहा कि आदमी दुखवादी है, मैं सैकड़ों महात्माओं को देख कर तुमसे यह कहता हूं कि आदमी तो कुछ भी नहीं है, अगर असली दुखवादी देखना है तो महात्मा! तुम उनकी पूजा भी इसलिए करते हो, क्योंकि तुम्हारा तर्क और उनका तर्क मेल खाता है, तुम्हारे गणित समान हैं। तुम जरा छोटा-मोटा धंधा कर रहे हो, वे बड़े व्यापारी हैं। तुम फुटकर काम करते हो, वे थोक करते हैं। तुम्हारी छोटी परचून की दुकान है, उनका बड़ा विस्तार है, बड़ी फैक्टरी है। तुम छोटे दुख पैदा करते हो, वे बड़े दुख पैदा करते हैं। मात्रा का भेद है, गुण का भेद नहीं है।
इस जगत में अगर तुम दुख ही तलाश करने निकलोगे, तो निश्चित दुख पाओगे।
जो आदमी कांटे ही खोजने निकला है, वह कांटे ही खोज लेगा। जगत में कांटे नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं कह रहा; कांटे हैं। मगर फूल भी हैं। तुम पर चुनाव है। जो कांटे ही कांटे चुनेगा, धीरे-धीरे उसे फूल दिखाई पड़ने बंद हो जाते हैं। हो ही जाएंगे। उसकी आंखें कांटों के साथ संगति बिठा लेती हैं। तुम जो देखते हो, देखते हो, देखते रहते हो, फिर धीरे-धीरे वही देख पाते हो। जो फूलों से संबंध बनाता है, फूलों से मैत्री बनाता है, उसे धीरे-धीरे कांटों में भी फूल दिखाई पड़ने लगते हैं।
भक्ति दुखवाद नहीं है। भक्ति महासुखवाद है। इसलिए भक्त में और तुम्हारे त्यागी में फर्क को ख्याल रखना। भक्त जीवन में रस लेता है, भक्त जीवन में मग्न है। हालांकि खाने-पीने के रस पर ही नहीं रुक जाता, क्योंकि जीवन में और बड़े रस हैं। मगर जिसने खाने-पीने का रस भी न लिया, वह और बड़े रस कैसे लेगा? भक्त आगे बढ़ता है। धीरे-धीरे संसार को पीते, संसार को अनुभव करते, उसे परमात्मा का स्वाद भी आने लगता है।
इसलिए शांडिल्य कहते हैंः युक्तौ च सम्परायात्।
यह संसार परमात्मा से पृथक नहीं है, युक्त है, एक है, दोनों जुड़े हैं, मिलन कभी टूटा नहीं है, आलिंगन कभी टूटा नहीं है, आलिंगन में खड़े हैं। जैसे दो प्रेमी आलिंगन में खड़े हों, ऐसे ये प्रकृति और पुरुष आलिंगन में हैं। तुम सुख को खोजोगे तो सुख के परमस्रोत परमात्मा को खोज लोगे। सुख को खोजोगे तो स्वर्ग खोज लोगे।
मगर मजा है कि तुम सुख के नाम पर भी दुख खोजते हो, कहते हो कि सुख खोज रहे हैं। एक आदमी कहता है--मैं सुख ही तो खोज रहा हूं, इसीलिए तो धन इकट्ठा कर रहा हूं। धन इकट्ठा करने से क्या सुख का संबंध हो सकता है? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धनी आदमी को अनिवार्य रूप से दुखी होना चाहिए। हालांकि धनी आदमी अनिवार्य रूप से दुखी होता है। तुम जितना दुखी धनी को पाओगे, उतना गरीब को नहीं पाओगे। आज अमरीका की मुसीबत क्या है? यही कि धन है। तुम जो खोज रहे हो, वह अमरीका ने पा लिया, और सब तरफ दुख व्याप्त हो गया है। अमरीका नरक बन गया है। अब कुछ समझ में नहीं आता--अब क्या करें?
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जो लोग धन खोज रहे थे अमरीका में, सुख खोज रहे थे, सोचते थे, लेकिन मिला तो दुख। तुमने सोचा था कि आम बो रहे हो, बो दी थी नीम। फल सिद्ध करेगा कि क्या बोया था। तुम जरा अमीर आदमियों को देखो, तुम उनकी आंखों में जीवन का आह्लाद पाते हो? और उनके हृदय में प्रेम का गीत उठता है? और उनके पैरों में कोई नृत्य है? अनुग्रह है? परमात्मा के प्रति कोई धन्यवाद है?
नहीं, विषाद है, शिकायत है। बिल्कुल हारे-थके खड़े हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि अब क्या करें? अब तक सोचते थे--धन मिलने से सुख मिलेगा। धन मिल गया और सुख का तो कुछ पता नहीं है, और जीवन हाथ से गया। अब धन का ढेर लगा है और जीवन हाथ से खो गया है--वह जीवन जो दुबारा वापस नहीं मिल सकता, वह समय जिसे लौटाने का कोई उपाय नहीं। यह ठीकरे का ढेर लग गया है। किस कीमत पर?

सिकंदर एक फकीर से मिला और उसने फकीर से पूछा कि मैं संसार को जीतने निकला हूं, मुझे आशीर्वाद दो।
उस फकीर ने कहा, आशीर्वाद दूंगा, उसके पहले एक प्रश्न है! तुम संसार को जीत लिए, मानो; मान लो कि संसार जीत लिए। और एक महा रेगिस्तान में अकेले पड़ गए हो, प्यास लगी है भयंकर, और एक गिलास पानी मिल जाए, इसके लिए तड़प रहे हो; मर जाओगे। और मैं एक गिलास पानी लेकर वहां मौजूद होता हूं। लेकिन ऐसे ही मुफ्त नहीं दे दूंगा एक गिलास पानी। तुम कितना मूल्य चुकाने को राजी होओगे?
सिकंदर ने कहा, जो मांगोगे।
फकीर ने कहा, आधा राज्य।
सिकंदर थोड़ा झिझका--हालांकि अभी देने-लेने की कोई बात नहीं थी, यह केवल कल्पना का सवाल था, लेकिन फिर भी झिझका--आधा राज्य! एक गिलास पानी के लिए! लेकिन फिर पूरी परिस्थिति सोची। भयंकर रेगिस्तान, भरी दोपहरी आग बरसती, कहीं कोई रास्ते का पता नहीं, दूर-दूर तक गांव की कोई खबर नहीं; कब पहुंच पाऊंगा इस रेगिस्तान के बाहर, कोई संभावना नहीं; प्यास से मरा जा रहा है। तो अब आधा राज्य भी अगर देना पड़े एक गिलास पानी के लिए, सिकंदर ने थोड़े संकोच से कहा कि ठीक, अगर ऐसी परिस्थिति होगी और मृत्यु सामने खड़ी होगी, तो फिर आधा राज्य भी दूंगा।
फकीर ने कहा, मैं भी कुछ इतनी जल्दी पानी बेच नहीं दूंगा, पूरा राज्य चाहिए।
सिकंदर ने कहा, बात क्या करते हो? कुछ सीमा होती है किसी बात के मूल्य की! एक गिलास पानी!
पर फकीर ने कहा, परिस्थिति सोच लो, वही एक गिलास पानी तुम्हारा जीवन है, पूरा राज्य दोगे तो ही दे सकूंगा।
सिकंदर ने थोड़ा सोचा और कहा, अच्छा, अगर ऐसी स्थिति होगी तो पूरा राज्य भी दूंगा, क्योंकि जीवन बड़ी चीज है।
फकीर हंसने लगा। उसने कहा, बस, इसको तुम याद रखना, आशीर्वाद क्या मांगते हो! जीवन बड़ी चीज है। तुम जीवन को गंवा दोगे, राज्य पा लोगे--और राज्य की इतनी कीमत है कि जरूरत पड़ जाए तो एक गिलास पानी में बिक जाए। इसका मूल्य कितना है?
तुम धनी आदमी से जरा गौर से पूछो, जांचो। जो पद पर पहुंच गए हैं, उनको जरा परखो, पहचानो। वे सभी यह सोचते थे कि सुख की तलाश में चले हैं; नरक में पहुंच गए हैं। मानने से थोड़े ही कोई स्वर्ग पहुंचता है। तुम्हारी दिशा कहां है? तो दुनिया में जिनको तुम संसारी कहते हो, वे भी दुख ही खोज रहे हैं। सिर्फ अपने को भरमाने के लिए उन्होंने दुख के डिब्बों पर सुख के लेबल लगा रखे हैं। और जिसको तुम धार्मिक कहते हो, वह भी दुख खोज रहा है। उसने अपने दुख के डिब्बों पर पुण्य के लेबल लगा रखे हैं। इतना ही भेद है। लेबल का भेद है। दोनों दुख खोज रहे हैं। इस जगत में अगर कोई आदमी सुख खोजता मिल जाए, तो वही भक्त है।
फिर सुख का क्या मतलब होगा? फिर सुख का एक ही मतलब हो सकता है कि दुख मेरे मैं को पुष्ट करता है; सुख की खोज का एक ही अर्थ हो सकता है कि मैं इस मैं को छोड़ दूं जो दुख पर जीता है, जिसके लिए दुख अनिवार्य है, मैं इस दुख को छोड़ दूं। दुख का त्याग इस जगत में सबसे बड़ा त्याग है।
मैं अपने संन्यासी से वही कहता हूं--दुख का त्याग। तुम्हारे त्यागी कहते हैं--त्याग के नाम पर दुख का वरण। मैं तुमसे कहता हूं--त्याग एक ही है, दुख का त्याग। तुम्हें थोड़ी यह बात अजीब लगेगी, स्वभावतः, क्योंकि दुख तो तुम कहते हो सभी छोड़ना चाहते हैं। मैं तुमसे फिर दोहराता हूं कि कोई नहीं छोड़ना चाहता। दुख को लोग पकड़ते हैं। जहां से दुख आता है, उसी दिशा में दौड़ने लगते हैं।
तुमने कभी देखा, कोई पक्षी कमरे में आ जाता है और फिर बंद खिड़की के कांच से सिर टकराने लगता है। तुम्हें भी कभी लगा होगा कि पक्षी भी कैसे मूढ़ होते हैं! जिस दरवाजे से आया है वह अब भी खुला है, इस बंद खिड़की के कांच से सिर टकराने की जरूरत क्या है? इस पक्षी को इतना होश नहीं है कि जहां से

आया हूं वहीं से वापस चला जाऊं? लेकिन पक्षी सिर टकराता है। कभी तो लहूलुहान कर लेता है अपने को, पंख टूट जाते हैं। लेकिन जो खुला दरवाजा है, उस तरफ नहीं जाता, बंद दरवाजे की तरफ दौड़ता है।
सुख का दरवाजा खुला दरवाजा है। परमात्मा ने दरवाजा बंद नहीं किया, उसका मंदिर का दरवाजा खुला है। शायद इसीलिए तुम उस तरफ नहीं जाते। खुले दरवाजे में क्या रस? आदमी बंद दरवाजों में उत्सुक होता है। आदमी के इस मनोविज्ञान को समझना।
अगर किसी चीज को आकर्षक बनाना हो, उसे छिपाओ। इसलिए एक बुर्के में जाती मुसलमान औरत जितनी खूबसूरत होती है, उतनी खूबसूरत दूसरी औरत नहीं होती। बुर्का! राह चलता हर आदमी रुक कर देखना चाहता है कि बुर्के में क्या है?
बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि जब वह बच्चा था--विक्टोरिया का जमाना था--तब स्त्री के पैर का अंगूठा भी दिख जाता था तो लोग कामोत्तेजित हो जाते थे। घाघरे पहने जाते थे जो कि जमीन को छुएं, जिससे पैर भी स्त्री का, अंगूठा भी दिखाई न पड़े। सौ साल में दुनिया बदल गई है, पश्चिम में तो निश्चित बदल गई है, स्त्रियां नग्न समुद्रतटों पर लेटी हैं, कोई कामोत्तेजित नहीं हो रहा है।
छिपाओ, आकर्षण पैदा होता है। निषेध करो, निमंत्रण मिलता है लोगों को। किसी दरवाजे पर तख्ती टांग दो कि यहां झांकना मना है। बस, फिर वहां से बिना झांके कोई निकल ही न सकेगा। मेरे गांव में एक वकील हैं, उन्होंने अपनी दीवाल पर लिख छोड़ा है कि यहां पेशाब करना मना है! सारा गांव वहां पेशाब करता है। वे मुझसे बोले कि बात क्या है? मैंने कहा, तुम दीवाल से ये अक्षर हटा दो। इनको पढ़ कर, जिसको नहीं पेशाब लगी है उसको भी लग आती है। जो आदमी अपने काम से चला जा रहा था, जिसे अभी ख्याल भी नहीं था, जब वह एकदम से देखता है बड़े-बड़े अक्षर--यहां पेशाब करना मना है! उसे तत्क्षण ख्याल आता है, कि अरे चलो! और उसे यह भी ख्याल आता है कि यह दीवाल योग्य होगी, तभी तो लिखा गया है! नहीं तो कोई हर कहीं थोड़े ही लिखता है।
जैसे ही तुम निषेध करते हो, वैसे ही कुछ आकर्षण पैदा होता है। फिर तुम बात को समझना। जहां निषेध है, वहां अहंकार को रस होता है, क्योंकि अहंकार को चुनौती मिलती है। अहंकार बड़े काम करना चाहता है। जो काम सरल है, अहंकार करना ही नहीं चाहता। अहंकार कठिन काम करना चाहता है। क्योंकि कठिन से ही सिद्ध होगा कि मैं कुछ हूं। सरल से कैसे सिद्ध होगा? जैसे तुम कहो कि मैं सांस लेता हूं। इससे क्या फायदा? लोग कहेंगे--सांस तो सभी लेते हैं। पशु- पक्षी भी लेते हैं, जानवर भी लेते हैं, वृक्ष भी लेते हैं। तुम सांस लेते हो इसमें कौन सी खूबी है? इसमें क्यों अकड़े जा रहे हो? राष्ट्रपति होकर दिखाओ! तुम कहते हो--रात में सो जाते हैं। लोग कहेंगे--तुम भी खूब हो, इसमें खूबी की बात क्या है? सो गए तो ठीक है, सभी सो जाते हैं, कुत्ते-बिल्ली भी सो जाते हैं। धनपति होकर दिखाओ! जो कठिन हो वह करके दिखाओ, सरल से क्या लेना-देना है?
तुमने सुना न, झेन फकीर रिंझाई का वचन। किसी ने पूछा कि तुम करते क्या हो? तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा, जब भूख लगती है तब खाना, जब नींद आए तब सो जाना। पर उस आदमी ने कहा, इसमें खूबी की बात क्या है? रिंझाई ने कहा, यही तो खूबी की बात है कि हम सरल से जीते हैं।
दरवाजा खुला है, लेकिन पक्षी भी दरवाजे से नहीं जाता, बंद खिड़की पर सिर मारता है। बंद खिड़की को तोड़ने में चुनौती है, एक मजा है, सिद्ध करने का एक मौका है कि मैं कुछ हूं। जहां-जहां कठिनाई है, वहां-वहां तुम्हें रस है। लेकिन जहां-जहां कठिनाई है, वहीं-वहीं दुख है। पंख टूट जाएंगे, पक्षी लहूलुहान हो जाएगा। और अगर किसी तरह कांच को तोड़ने में भी सफल हो जाए तो और भी महंगा पड़ जाएगा सौदा। तब कांच भी छिद जाएगा।
दरवाजा प्रतिपल खुला है। दरवाजा खुला ही था। नहीं तो पक्षी भीतर ही कैसे आता? तुम इस संसार में जिस दरवाजे से आए हो, वह दरवाजा अभी भी खुला है, उसी दरवाजे से बाहर हुआ जा सकता है। लेकिन तुम उससे बाहर नहीं होना चाहते।

तुम कुछ सिद्ध करके जाना चाहते हो। तुम नाम छोड़ जाना चाहते हो। तुम यश, प्रतिष्ठा, अस्मिता के लिए दीवाने हो रहे हो। और इन सबसे दुख आता है। परमात्मा सरलतम है, इसीलिए लोग चूकते हैं। मैं दोहराऊं, क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें चारों तरफ से घेरा हुआ है और परमात्मा इतना मुफ्त मिला हुआ है, इसीलिए कोई उसमें उत्सुक नहीं है।
मुझसे कभी-कभी कोई आकर पूछता है कि परमात्मा मिलता क्यों नहीं? मैं उसको कहता हूंः क्योंकि वह मिला हुआ है, इसलिए तुम खोजते नहीं।
तुम अपने जीवन को परखोगे तो यह बात समझ में आ जाएगी। जो चीज मिल जाती है, उसी में रस खो जाता है। पति को पत्नी में रस नहीं रह जाता, पत्नी को पति में रस नहीं रह जाता। दूसरे की पत्नी में, दूसरे के पति में रस होता है। तुम्हें अपनी कार में रस नहीं होता, पड़ोसी की कार में रस होता है। तुम्हें अपने मकान में रस नहीं होता, पड़ोसी के मकान में रस होता है। कहते हैं न कि पड़ोसी का लॉन ज्यादा हरा मालूम होता है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। क्यों तुम्हें अपने में रस नहीं है? क्योंकि जो अपना ही है, वह तो है ही, अब अहंकार को सिद्ध करने का वहां कोई उपाय नहीं है। बात खतम हो गई। सुंदरतम स्त्री भी साधारण हो जाती है मिलते ही। और कुरूप स्त्री भी असाधारण होती है, अगर न मिले। जितनी कीमत तुम्हें चुकानी पड़े उसे पाने को, उतनी ही असाधारण मालूम होती है। जितना मुश्किल हो पाना, जितना एवरेस्ट की चढ़ाई करनी पड़े, उतने ही तुम उद्विग्न हो जाते हो, उतने ही ज्वरग्रस्त हो जाते हो, उतनी ही वासना प्रबल वेग की तरह उठती है।
जो सुगम है, सरल है, उसमें रस नहीं। और परमात्मा सुगमतम है।
युक्तौ च सम्परायात्।
तुम कभी उससे अलग नहीं हुए हो। प्रकृति और पुरुष एक। द्वैत भ्रांति है। द्वैत मन के कारण है, अहंकार के कारण है। अद्वैत सत्य है। और मन के हटते ही अद्वैत साफ हो जाता है। मन यानी अस्मिता, अहंकार, मैं का भाव। यह अद्वैत-अनुभव भक्ति है; न भक्त बचता वहां, न भगवान बचता वहां, बचती है भगवत्ता, बचती है एक ऊर्जा जिसका नाम भक्ति, बचती है एक सुवास जिसका नाम प्रीति। और इसकी प्रतीति भक्त में अनेक ढंगों से होती है। उन अनेक लक्षणों की बात पिछले सूत्रों में शांडिल्य ने कही। उसके आगे के ही अब सूत्र हैं।
तत वाक्य शेषात प्रादुर्भावेषु अपि सा।
शांडिल्य कहते हैंः "जो मैंने कहा, यही बात और जानने वालों ने, और जीने वालों ने भी कही है।"
तत वाक्य शेषात प्रादुर्भावेषु अपि सा।
"यह वाक्य, यह वचन, यह सूत्र अनंत काल से लेकर अवतार आदियों ने भी बार-बार कहा है।"
समझना। भक्त के अंतर में क्या हुआ, यह तो भक्त ही जानता है, वह तो ऐसी अनुभूति है कि बाहर से कोई न जान सकेगा। लेकिन फिर भी बाहर कुछ किरणें तो पड़ेंगी। जब घर में दीया जलेगा, तो राह चलते लोगों को भी घर की खिड़की से रोशनी दिखाई पड़ेगी, रंध्रों से रोशनी दिखाई पड़ेगी, खपड़े के छेदों से रोशनी दिखाई पड़ेगी। जब किसी के घर में धूप जलेगी, तो पड़ोसियों के नासापुटों तक भी गंध की कुछ खबरें हवा उड़ा कर ले जाएगी। जब किसी के जीवन में भगवत्ता का अवतरण होता है, तो उसके आस-पास भी गंध उड़ती है, रोशनी फैलती है; उसके आस-पास की हवा में एक शीतलता, उसके आस-पास सुख की भनक, उसके पास एक शांति का वातावरण। उसी वातावरण को पीने तो सत्संग के लिए लोग जाते हैं। उसी हवा को अपनी छाती में भर लेने के लिए सत्संग के लिए लोग जाते हैं।
पश्चिम में सत्संग को प्रकट करने वाला कोई शब्द नहीं है पश्चिम की भाषाओं में, क्योंकि सत्संग की कला ही विकसित नहीं हुई। पूरब ने कुछ अनूठी बातें दुनिया को दी हैं, उनमें एक सत्संग भी है। सत्संग बड़ी अनूठी प्रक्रिया है। यह इस बात की प्रक्रिया है कि जिसको मिला है, उसके पास बैठेंगे। कुछ कहेगा तो सुन लेंगे, नहीं कहेगा तो भी गुनेंगे, उसके पास बैठेंगे, उसकी हवा में सांस लेंगे, कुछ न होगा उसका चरण ही छू लेंगे, उसके सामने सिर झुकाएंगे, झोली फैलाएंगे, उससे आशीष मांगेंगे, चुप सन्नाटे में

उसके पास बैठेंगे। उसके भीतर कोई झरना बह रहा है, शायद कुछ बूंदें हमें भी उपलब्ध हो जाएं; उसके भीतर परमात्मा का फूल खिला है, शायद हमारे कानों में भी, बहरे कानों में थोड़ी भनक पड़ जाए; हमारी अंधी आंखों में शायद एकाध किरण प्रवेश कर जाए। और एक किरण काफी है, फिर सूरज की खोज शुरू हो जाती है। शायद उसके पास बैठे-बैठे परमात्मा की प्राप्ति तो न हो, लेकिन परमात्मा की प्यास जग जाए, वह भी क्या कम है!
तो जिन्होंने जाना है, जिन्होंने जीया है, उन्होंने कुछ लक्षण कहे हैं जो भक्त में प्रकट होंगे। महाभारत में कहा है--
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो न शुभा मतिः,
भवन्ति कृतपुण्यानाम भक्तानाम पुरुषोत्तमे।
वहां क्रोध नहीं होगा; वहां क्रोध की जगह करुणा होगी। वहां लोभ नहीं होगा, वहां लोभ की जगह दान होगा।
भेद समझना। जिसको परमात्मा मिला है, उसे अब तुम कुछ दे भी तो नहीं सकते। अब उसके पास लेने का कोई स्थान भी नहीं बचा है, सारी जगह परमात्मा घेर लेता है। अब तो तुम उससे कुछ ले सकते हो, उसे दे नहीं सकते। उसके सामने झोली फैला सकते हो।
एक धनपति ने एक झेन फकीर के पास जाकर हजार स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई थैली जोर से पटकी। जोर से पटकी ताकि बैठे हुए सत्संगी भी आवाज सुन लें-- सोने की आवाज! कौन नहीं पहचानता? जिनके पास नहीं है वे भी पहचानते हैं। चौंक गए सारे लोग। जो सो गए थे और झपकी खा रहे थे--अक्सर लोग धर्मसभाओं में वही करते हैं--उन्होंने भी आंखें खोल दीं; सोने की आवाज! लेकिन फकीर ने झोली को बगल में सरका दिया और कहा, कुछ कहना तो नहीं है?
वह आदमी तो जैसे सात आसमानों से गिर गया। वह आया है हजार स्वर्णमुद्राएं--पुराने जमाने की कहानी है, जब बड़ा मूल्य था स्वर्णमुद्राओं का--जिंदगी भर की कमाई, और यह आदमी ऐसे सरका दिया, और पूछता हैः कुछ कहना तो नहीं है? इसने धन्यवाद भी नहीं दिया। इसके चेहरे पर कोई भाव भी नहीं आया। उस धनपति ने कहा, हजार स्वर्णमुद्राएं कम नहीं होतीं, जीवन भर की कमाई है!
फकीर ने कहा, तो क्या तुम चाहते हो मैं धन्यवाद दूं?
सकुचाया होगा वह धनपति। उसने कहा कि नहीं, धन्यवाद चाहे न भी दें, मगर इतनी उपेक्षा भी न दिखाएं।
उस फकीर ने कहा, तुम जो देने आए हो, देने के भाव में ही भ्रांति हो गई है। मुझे मिल गया परमधन। अब उसके आगे और कोई धन नहीं है। इसलिए जो यहां देने आता है, वह गलत दृष्टि से आया। यहां आओ तो लेने आओ। यहां आओ तो झोली फैला कर आओ। धन्यवाद तुम मुझे दो कि मैंने तुम्हारा यह कचरा बगल में सरका कर रख दिया कि ठीक है, चलो ले आए, कोई बात नहीं--क्षमा करता हूं। धन्यवाद तुम मुझे दो! मैं तुम्हें धन्यवाद दूं?
भक्त के जीवन में, महाभारत कहती हैः क्रोध की जगह करुणा, लोभ की जगह दान... उसके पुण्य के फल पकेंगे, उसके पुण्य की बास फैलेगी, उसके कुछ स्थूल लक्षण पकड़े जा सकते हैं। कृष्ण ने पूरी सूची दी है लक्षणों की--
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिर्पैशुनम्
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्नीरचापलम्
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत
"हे भारत!"--अर्जुन को कृष्ण ने कहा है--"हे भारत, अभय, चित्तशुद्धि, योगानुराग, दान, संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, अलोभ, अहंकार-शून्यता, ह्नी अर्थात असत कार्यों में सहज संकोच, अचंचलता, तेज, क्षमा, धृति अर्थात सुख-दुख में अविचल-भाव, अद्रोह, ये सब दिव्यपुरुष के लक्षण हैं।" ये उस भक्त में प्रकट होते हैं।
शांडिल्य कहते हैंः भीतर की जो घटना है, वह तो भक्त जानेगा; लेकिन जो भीतर है, वह भी बाहर से तो जुड़ा ही है। यहां कोई भी चीज असंयुक्त नहीं है।

तुमने श्वास ली, भीतर गई, फिर वही श्वास बाहर गई--बाहर और भीतर प्रतिक्षण लेन-देन चल रहा है। बाहर और भीतर अलग-थलग नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए घटना तो भीतर घटेगी, लेकिन घटना की ध्वनियां बाहर भी सुनाई पड़ेंगी। कुछ बातें सहजता से प्रकट होंगी।
फर्क ख्याल में लेना! यही तत्व, जिसको तुम महात्मा कहते हो, त्यागी कहते हो, वह भी इन्हीं तत्वों की प्रशंसा करता है। जैसे अहिंसा, दया, त्याग, निर-अहंकारिता--उदाहरण के लिए चार ले लें। महात्मा, त्यागी, विरागी भी इनकी महत्ता बताता है, लेकिन भक्त और उसकी महत्ता बताने में क्या भेद है? बड़ा भेद है। शांडिल्य कहते हैंः भगवान के मिलने से ये गुण अपने आप प्रकट होते हैं। तुम्हारा तथाकथित तपस्वी कहता हैः ये गुण प्रकट हों तो भगवान मिलता है।
इस भेद को ख्याल में ले लेना। शांडिल्य कहते हैंः ये लक्षण हैं भक्त के, साधना नहीं। ये तो जो भक्त भगवान में लीन होने लगा, उसमें सहज उठी हुई तरंगें हैं। इनके कारण भगवान नहीं मिलता, भगवान के कारण ये तत्व घटित होते हैं। यह बड़ा क्रांतिकारी भेद है।
इसको ऐसा समझें। तुम्हारे घर में अंधेरा है और मैं तुमसे कहूं कि दीया जलाओ, दीये के जलते ही अंधेरा चला जाता है। तुम तार्किक आदमी हो, तुम सोच-विचार वाले आदमी हो, दार्शनिक हो, तुम इसका गणित बिठाओ--तुम कहो कि ठीक है, कहा गया कि जब प्रकाश होता है तो अंधेरा नहीं होता; अर्थात जब अंधेरा नहीं होता तब प्रकाश होता है। तर्क में तो यह बात ठीक है। अगर तुम इसको जीवन-व्यवहार में लाने की कोशिश करोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। तार्किक रूप से यह बात सच है कि जहां अंधेरा है, वहां प्रकाश नहीं है। जहां अंधेरा नहीं है, वहां प्रकाश। अगर तुम अंधेरे को हटाने में लग जाओ, पोटलियां बांध कर अंधेरे को फेंकने जाओ गड्ढों में, या धक्के देकर अंधेरे को निकालना चाहो, या तलवारें ले आओ और अंधेरे को काट-पीट करके घर से बाहर कर देना चाहो, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। अंधेरा ऐसे नहीं निकलता। प्रकाश आ जाए तो निकलता है। अंधेरा निकाल कर प्रकाश नहीं आता, प्रकाश के आने से अंधेरा निकलता है।
यही भक्त की उदघोषणा है। भक्त कहता हैः जीवन में बहुत सी बुराइयां हैं; लेकिन परमात्मा के आ जाने पर ही निकलती हैं। तुम चाहते हो कि बुराइयां पहले निकाल दें, फिर परमात्मा आए; तो तुम अंधेरा निकालने में लगे हो। परमात्मा है रोशनी। भक्त कहता हैः मैं जैसा बुरा-भला हूं, रो तो सकता हूं उसके लिए, पुकार तो सकता हूं उसके लिए। अपात्र हूं, यह मुझे पता है। लेकिन उसके बिना आए पात्र होऊंगा भी कैसे? उसका ही संस्पर्श मिलेगा तो यह लोहा सोना बनेगा। वही पारस आएगा और छुएगा तो यह अंधकार रोशनी में बदलेगा। इसलिए भक्त कहता हैः भगवान को मैं पुकारूंगा; अपनी अपात्रता, अपनी दीनता को समझूंगा और भगवान को पुकारूंगा। मेरी अपात्रता मेरी प्रार्थना में बाधा नहीं बनेगी। अपात्र हूं इसीलिए तो प्रार्थना कर रहा हूं।
इसलिए देखते हो, जो पात्र हो जाता है वह प्रार्थना क्यों करेगा? वह दावेदार होता है, प्रार्थना क्यों? वह कहता हैः इतने उपवास किए, इतने तप किए, घर-द्वार छोड़ा, धन छोड़ा, पद छोड़ा, पहाड़ पर बैठा रहा इतने वर्षों तक, अब प्रार्थना क्या? अब मिलना चाहिए! अब यह मेरा हक है, यह मेरा अधिकार है! अगर कहीं कोई अदालत हो तो वह परमात्मा पर मुकदमा चलाने के लिए आतुर है। वह कहता हैः अभी तक मिले क्यों नहीं? प्रार्थना का सवाल ही क्या है? प्रार्थना तो भक्त करता है। भक्त कहता हैः मेरी योग्यता तो कुछ भी नहीं। तुम मिलो, ऐसा दावा तो मेरा कुछ भी नहीं। तुम न मिलो, यह बिल्कुल समझ में आता है, मैं इस योग्य ही नहीं हूं कि तुम मुझे मिलो। इसलिए इसमें शिकायत जरा भी नहीं है, शिकवा जरा भी नहीं है। तुम नहीं मिल रहे हो, यह बिल्कुल तर्कसंगत है, क्योंकि मैं पात्र ही नहीं हूं। तुम मिलोगे, वही विस्मय-विमुग्ध करेगा मुझे, उस पर ही भरोसा करना मुश्किल हो जाएगा कि मुझ अपात्र को मिले!

जब भी परमात्मा किसी के जीवन में उतरा है, तब उसने ऐसा ही अनुभव किया है--मुझ अपात्र को मिले! किस करुणावश? प्रसाद रूप। प्रयास के फल की तरह नहीं। परमात्मा एक भेंट की तरह मिलता है। जब तुम किसी को भेंट देते हो तो पात्रता थोड़े ही सोचते हो। भेंट में पात्रता नहीं सोची जाती। भेंट तो प्रेम है।
यही गुण तथाकथित त्यागी ने भी पकड़ रखे हैं, मगर उसकी पकड़ उलटी है। वह सोचता हैः अहिंसा पहले; सरलता पहले; अलोभ पहले; अभय पहले। भक्त पूरी प्रक्रिया को उलटा देता है। शांडिल्य कहते हैंः ये पहले नहीं, ये लक्षण हैं। जब आ जाएगा प्रभु तुम्हारे भीतर, जब तुम्हारे भीतर का दीया जलाएगा, तब दूसरों को अनेक लक्षण दिखाई पड़ने शुरू होंगे। उनको इस तरह बांटा जा सकता है। जिसके भीतर परमात्मा बैठा है, उसे पाने को कुछ नहीं रहा, इसलिए अलोभ। उसके पास देने को इतना है कि जितना दे दे और चुकेगा नहीं, इसलिए दान। परमात्मा बिना प्रयास के मिला है, इसलिए सरलता। परमात्मा बाढ़ की तरह आया है और सब बहा कर ले गया, सब कूड़ा-कर्कट गया, इसलिए शांति। ये सब स्वाभाविक परिणतियां हैं। भक्ति का मार्ग सहज मार्ग है। और इसी अर्थ में वैज्ञानिक भी है।
तत वाक्य शेषात प्रादुर्भावेषु अपि सा।
जन्म कर्म विदः च अजन्म शब्दात्।
"भगवान के जन्म-कर्म का रहस्य जानने वाले पुरुष का भी फिर जन्म नहीं होता।"
यह भक्त की परम गति, कि जिसने जान लिया, परमात्मा को पहचान लिया, छिपा जिसके सामने प्रकट हो गया, रहस्य ने जिसके सामने घूंघट उठा दिए, फिर उसका दुबारा जन्म नहीं होता। जन्म का कोई कारण नहीं रह जाता, क्योंकि खोजने को ही कुछ नहीं बचता। अंतिम घड़ी आ गई।
संसार विद्यापीठ है। जिसने परमात्मा को पा लिया, वह उत्तीर्ण हो गया। जिसने परमात्मा को न पाया, उसे बार-बार आना पड़ेगा। उसे आते ही जाना पड़ेगा।
जब तक तुम उत्तीर्ण न हो जाओ, वापस हर वर्ष लौट आना पड़ेगा विश्वविद्यालय में। कोई बिना उत्तीर्ण हुए जगत से पार नहीं जा सकता।
उत्तीर्ण होने का क्या लक्षण होगा?
जिसने भगवान के जन्म-कर्म का रहस्य जान लिया।
क्या रहस्य है भगवान के जन्म और कर्म का?
दो रहस्य। एक, कि भगवान अजन्मा है। और तुम भी अजन्मा हो। भगवान अज है
और तुम भी अज हो। प्रारंभ कभी हुआ ही नहीं। प्रारंभ में कोई प्रारंभ था ही नहीं। न कोई अंत है। अस्तित्व अनादि और अनंत है। सब सदा से है, और सब सदा रहेगा। रूप बदलते हैं, आकृतियां बदलती हैं, मगर ऊर्जा वही है। तुम न मालूम कितनी देहों में पहले आए और न मालूम कितनी देहों में और आओगे। लेकिन जो आता रहा, जाता रहा, वह एक ही है। तुम्हारा पक्षी न मालूम कितने-कितने पिंजड़ों में बंद हुआ, और न मालूम कितने आकाशों में उड़ा, और न मालूम कितने रूप धरे, लेकिन जो अंतर्तम था, वह वही है। इस जगत में जो भेद हैं, वे केवल नाम और रूप के भेद हैं।
परमात्मा के जन्म का जो रहस्य समझ लेगा, उसका अर्थ हुआ, उसने समग्र के जन्म का रहस्य समझ लिया। इस समग्र का कभी कोई जन्म नहीं हुआ है। तुम इस समग्र के हिस्से हो, तुम्हारा भी कोई जन्म नहीं हुआ है। और तभी तुम्हें एक बात ख्याल में आ जाएगीः जब जन्म नहीं हुआ तो मृत्यु भी नहीं हो सकती। बुद्ध मर रहे थे, आखिरी घड़ी आ गई थी, शिष्य रो रहे थे, उन्होंने आंख खोली और आनंद से कहा कि तू रोता क्यों है?
आनंद ने कहा, इसलिए रोता हूं कि आप जा रहे हैं।
बुद्ध ने कहा, मैंने जीवन भर एक ही बात समझाई कि न मैं कभी आया और न कभी जाता हूं; न मेरा कोई जन्म है, न मेरी कोई मृत्यु है; और जिसका जन्म है और जिसकी मृत्यु है, वह मैं नहीं हूं, वह केवल रूप मात्र है, स्वप्न मात्र। स्वप्न ही बनते और बिखरते हैं, सत्य वैसा का वैसा, जस का तस, ज्यों का त्यों।
कृष्ण का वचन है--

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन
"हे अर्जुन, मैं सत, चित, आनंद रूप हूं, मैं अज और नित्य होने पर भी लोक उपकारार्थ देह धारण करता हूं।"
परमात्मा अज है, अजन्मा है और अमृत है। अज ही अमृत हो सकता है। जो जन्मा है, वह तो मरेगा। जो नहीं जन्मा है, वही नहीं मरेगा। परमात्मा से अर्थ समझ लेना, समग्र का नाम है परमात्मा, कोई व्यक्ति का नाम नहीं है। सारे जोड़ का नाम परमात्मा है--वृक्ष और पहाड़, और स्त्रियां और पुरुष, और नदियां, और चांद-तारे, सबका जोड़। उस जोड़ का कोई जन्म नहीं है। उस जोड़ में मैं भी हूं, तुम भी हो। हमारा भी कोई जन्म नहीं। इसलिए भक्त मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। जन्म ही नहीं तो मृत्यु कैसे होगी? तुमने मान लिया है कि तुम्हारा जन्म है, इसीलिए तुम मृत्यु से परेशान हो। तुमने एक घड़ी दिन तय कर रखा है कि उस दिन मैं जन्मा था, तो फिर पक्का हो गया कि एक घड़ी दिन तुम्हें मरना होगा। फिर चिंता है। फिर तुम कंपे जा रहे हो, फिर तुम भयभीत हो। उसी भय के कारण धन इकट्ठा करते हो, मकान बनाते हो, पत्नी, बच्चे--किसी तरह से अपने को बचा लें! मिट न जाऊं! जहां से जरा सा मिटने का डर आता है, वहीं सुरक्षा का इंतजाम करते हो।
लेकिन तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है। तुम सदा से हो, तुम सदा रहोगे।
भगवान के जन्म का रहस्य जान कर ही व्यक्ति अपने भी जन्म और जीवन का रहस्य जान लेता है। वही मुक्ति है। फिर लौटना नहीं होगा। और भगवान के कर्म का रहस्य। वहां कोई कर्ता नहीं है; फिर भी सब हो रहा है। भगवान बैठ कर यहां एक-एक चीज का हिसाब नहीं कर रहा है कि अब इस झाड़ को पानी चाहिए, और अब इस आदमी को रोटी चाहिए, और अब यह पत्ता पीला पड़ गया है, इसको गिराना चाहिए, और अब वसंत आया जा रहा है तो बीज डालने चाहिए, और यह चांद कहीं तिरछा न चला जाए, कहीं रास्ते से न चूक जाए, तो सब बैलगाड़ी को ठीक-ठीक हांकते रहना चाहिए, ऐसा कोई भगवान नहीं है जो व्यवस्था कर रहा है। यह व्यवस्था बड़ी स्वाभाविक है, कोई करने वाला नहीं है। यहां कोई बैठा हुआ बीच में इस सारे आयोजन को सम्हाल नहीं रहा है।
लोगों की भगवान के प्रति धारणाएं इसी तरह की हैं, वे यही सोच रहे हैं
कि कोई सत्ताधारी आज्ञा दे रहा है, जगह-जगह फरमान निकाल रहा होगा कि अब ऐसा होने दो! अब ऐसा होने दो! अब रात हो जाने दो, अब दिन हो जाने दो! अब देर हुई जा रही है, अब जल्दी से सुबह करो, सूरज को निकालो।
कोई कहीं कर्ता नहीं है, सब हो रहा है। वैसी ही दशा तुम्हारी भी है, तुम्हारे भीतर भी सब हो रहा है, कर्ता कोई भी नहीं है। छोटे पैमाने पर तुम इस बड़े विराट का छोटा सा लक्षण हो। तुम अपने भीतर ही खोज कर देखो! भूख लगती है तब कोई भूख लगाता है? जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो कोई श्वास भीतर लेता है? जब नींद आती है तो कोई नींद लगाता है? कब तुम बच्चे से जवान हो गए और कब जवान से बूढ़े हो गए, कोई कर रहा है? सब हो रहा है।
इस सूत्र को हृदय में सम्हाल कर रखना--सब हो रहा है। जैसे ही तुम्हें
यह बात समझ में आ जाए कि सब हो रहा है, सारी चिंताएं समाप्त हो जाती हैं। चिंता यही है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं कुछ चूक जाऊं, कुछ कर न पाऊं, कहीं वैसा न हो जाए! चिंता कर्ता की छाया है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम चिंता से कैसे मुक्त हों?
मैं उनसे कहता हूंः तुम प्रश्न ही गलत पूछते हो। पूछो, कर्ता से कैसे मुक्त हों? कर्ता रहेगा तो चिंता रहेगी। और अब तुम एक नई चिंता ले रहे हो सिर पर मोल कि चिंता से कैसे मुक्त हों? अब यह भी तुम्हें करके दिखाना है। अब यह और एक नया कर्ता पैदा होगा कि चिंता से मुक्त होना है।
समझो! कर्ता कोई भी नहीं है। यह सारा का सारा जो हो रहा है, स्वाभाविक है, सहज है, अपने से है, स्वयंभू है। जैसे ही यह बात समझ में आती है, एक विश्राम आ जाता है। फिर कोई चिंता नहीं; फिर जो होता है, ठीक ही होता है; जो होगा, ठीक ही होगा; जो हुआ, ठीक ही हुआ। इसलिए भक्त कोई पश्चात्ताप नहीं करता और न भविष्य की चिंता करता है, न योजना बनाता है। और भक्त के मन में कभी यह द्वंद्व नहीं उठता कि ऐसा कर लेते तो अच्छा होता। वैसा क्यों कह

दिया? वैसा क्यों कर लिया? न, भक्त ने तो छोड़ दिया है अपने को विराट के साथ, अब जहां ले जाओ, जो करवाओ--जैसी उसकी मर्जी।
और ध्यान रखना, यह सब भाषा की बात है, जब मैं कहता हूं जैसी उसकी मर्जी। वहां कोई है नहीं जिसकी मर्जी है। मर्जी हो तो वह चिंता से मर जाए। कब का भगवान मर गया होता! जरा सोचो, तुम एक छोटा सा घर सम्हालते हो, मरे जा रहे हो, आत्महत्या का विचार कई दफे उठने लगता है। घर तुम्हारा बड़ा छोटा सा है, कुछ खास सम्हालना भी नहीं है; एक पत्नी है, दो बच्चे हैं, इन्हीं को सम्हालना है, ये ही तुम्हें काफी सताए डाल रहे हैं! आदमी साठ-पैंसठ के पार होते-होते सोचने लगता है--हे प्रभु, अब उठा लो, अब बहुत हो गया, अब नहीं सहा जाता।
यूरोप और अमरीका में, जहां उम्र लंबी हो रही है, क्योंकि चिकित्सकों
ने नई-नई औषधियां उपलब्ध कर दीं, लोग अस्सी-नब्बे और सौ तक सहज जी रहे हैं, सौ के पार भी जा रहे हैं, वहां एक नया आंदोलन चल रहा है। वह आंदोलन है-- आत्महत्या का अधिकार। तुमने सुना कभी--आत्महत्या का अधिकार! खैर, इस देश में तो नहीं चल सकता, यहां तो अभी जीवन का ही अधिकार नहीं, आत्महत्या के अधिकार का तो सवाल ही दूसरा है! यहां किसी तरह जीवन तो जुट जाए! लेकिन अमरीका में आत्महत्या के अधिकार पर बड़ा विचार चलता है। और दस-पंद्रह साल के भीतर अमरीका के विधान में आत्महत्या का मूलभूत अधिकार जुड़ कर रहेगा। जोड़ना ही पड़ेगा। क्योंकि जो आदमी एक सौ बीस साल का हो गया और मरना चाहता है--क्या करे? नहीं जीना चाहता अब! बहुत हो गया! हर चीज की सीमा होती है। किसी भी चीज को सीमा के आगे खींच दो, अड़चन शुरू हो जाती है। अब न उसे रस है, जीवन के सब सपने देख लिए, सब व्यर्थ हो गए; जीवन के सब खेल खेल लिए और कुछ पाया नहीं; अब खाट पर पड़े-पड़े सड़ने का क्या प्रयोजन है? और चिकित्सक उसे लटकाए रख सकते हैं। आक्सीजन का सिलिंडर लगाया हुआ है, टांग बांधी हुई है, हाथ अटकाया हुआ है, ग्लूकोज लटकाया हुआ है, वह पड़ा है, वे उसको रख सकते हैं इसी हालत में। यह कोई जिंदगी है? वह पूछता है कि इसको जिंदगी कहने का क्या अर्थ है? मैं विदा होना चाहता हूं। लेकिन चिकित्सक को अधिकार नहीं है कि वह आक्सीजन बंद कर दे। क्योंकि चिकित्सक का जो नियम है वह पुरानी दुनिया से बना है, जब जीना ही मुश्किल था। नियम तब बना था। और अब जीने से ज्यादा जीना संभव हो गया है; तो नियम बदल देने होंगे।
हर आदमी एक सीमा पर अनुभव करने लगता है--मर ही जाऊं! तुम जरा परमात्मा
की तो सोचो! कभी का या तो पागल हो गया होगा, या कभी की आत्महत्या कर ली होगी, या भाग गया होगा, संन्यासी हो गया होगा, दूर निकल गया होगा संसार से कि अब नहीं लौटना है कभी, सब त्याग करके चला गया होगा।
नहीं, वहां कोई भी नहीं है। वहां सन्नाटा है। और जिस दिन तुम इस सत्य
को समझ लेते हो कि इतना विराट जगत बिना कर्ता के चल रहा है, उस दिन अपनी इस छोटी सी जिंदगी में क्यों यह कर्ता को बनाना, यह भी चलने दो, यह भी होने दो! इन दो बातों को समझ कर--कि इस संसार का न कोई प्रारंभ है, न अंत; और इस संसार को न कोई चलाने वाला है, न कोई नियोजन करने वाला है; यह विराट अपनी ही ऊर्जा से बहा जाता है, यह स्वयंभू है--भक्त भी मुक्त हो जाता है।
जन्म कर्म विदः च अजन्म शब्दात्।
इन दो शब्दों का अर्थ समझ में आ जाए, जन्म और कर्म, कि सब समझ में आ गया।
तत च दिव्यं स्व शक्ति मात्र उद्भवात्।
"उनका जन्म-कर्म आदि सभी दिव्य और असाधारण है; उनकी ही शक्ति से वे नाना रूप दिखाई पड़ते हैं।"
लेकिन हमें उस परमात्मा का तो कुछ पता नहीं है, वह परमात्मा तो बहुत दूर है, शायद हमारे पास उसे पकड़ने की आंख भी नहीं है, हाथ भी नहीं है, समझने की बुद्धि और प्रतिभा भी नहीं है। इसलिए शांडिल्य कहते हैंः भगवान के अवतारों को समझने की कोशिश करो। भगवान तो पकड़ में नहीं आता, लेकिन राम पकड़ में आ जाते हैं, कृष्ण पकड़ में आ जाते हैं, बुद्ध पकड़ में आ जाते हैं, मोहम्मद पकड़ में आ जाते हैं, इनको पकड़ो, इनको समझो। बुद्ध के होने का क्या प्रयोजन है? बुद्ध को कौन चला रहा है? बुद्ध के भीतर ऐसा कोई भाव उठता है

कि मैं अब ऐसा करूं, या जो होता है, होता है? इसमें बीच-बीच में बुद्ध कुछ बाधा डालते हैं, या निर्बाध इस जीवन की धारा को बहने देते हैं?
परमात्मा दूर है, उसका अवतार निकट है। जिन्होंने परमात्मा को जान लिया है, उनका जीवन समझो। तो वहां भी तुम यही पाओगे कि समर्पण है, परम समर्पण है। जैसे वृक्ष में पत्ते लगते हैं और वृक्ष में फूल आते हैं, ऐसा कवि गीत को गाता है, बस ऐसे ही; ऐसे ही कृष्ण चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं; ऐसे ही बुद्ध बोलते हैं, समझाते हैं; ऐसे ही बुद्ध जीते हैं और विदा हो जाते हैं; इसमें कहीं भी कोई अहंकार बैठ कर आयोजन-नियोजन नहीं कर रहा है। "उनका जन्म-कर्म आदि सभी दिव्य और असाधारण है।"
अवतारों को देखो तो बड़ी असाधारणता पाओगे। क्या असाधारणता है? क्या दिव्यता है? करने वाला कोई नहीं और विराट घटता है। करने वाला कोई भी नहीं। वही तो कृष्ण अर्जुन को बार-बार गीता में समझा रहे हैं कि तू करने वाला मत बन, तू होने दे; जो हो रहा है, होने दे; तू उपकरण रह, निमित्त मात्र। तेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है, तू अपने को बीच में मत ला, तू शुभ-अशुभ का निर्णय मत कर। तू कौन? तू अपने को विदा कर दे और फिर जो हो, जो परिस्थिति करवाए, कर, वही शुभ है। फल की भी आकांक्षा मत कर। क्योंकि फल की आकांक्षा में कर्ता आ जाता है। कर्ता जीता ही फल की आकांक्षा से है। मैं ऐसा करूं तो ऐसा होगा, मैं ऐसा करूं तो ऐसा मुझे मिलेगा, ऐसा करूं तो यह फल हाथ में आएगा। फल की आकांक्षा छोड़ दे। फल की आकांक्षा छोड़ते ही कर्ता का भाव चला जाता है। फिर प्रयोजन क्या है? जब फल की ही कोई आकांक्षा नहीं है तो जो भी होगा ठीक ही है। होगा तो ठीक है, नहीं होगा तो ठीक है।
इधर मैं तुम्हें रोज समझाता हूं। तुम समझे तो ठीक है, तुम नहीं समझे
तो ठीक है। तुम सोचते हो मैं इसका हिसाब रखता हूं कि तुमने समझा कि नहीं समझा? इससे कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे वृक्ष में फूल लग जाते हैं, ऐसे ये शब्द मुझमें लग जाते हैं। अगर तुम भी इस तरह जीओ तो तुम्हारे जीवन में असाधारण दिव्यता आ जाए। थोड़ा इस तत्व का रस लेना शुरू करो। उठो, बैठो, मगर न कोई उठने वाला हो, न कोई बैठने वाला हो। काम भी करो, दुकान पर भी जाओ, बाजार में भी, दफ्तर में भी, मगर न कोई करने वाला हो, न कोई जाने वाला हो। घर की देख-रेख भी करो; जो भी दायित्व है सिर पर, पूरा भी करो; लेकिन कोई करने वाला न हो।
दुनिया में दो उपाय हैं बोझ से मुक्त होने के। एक तो यह है कि दायित्व छोड़ दो। भगोड़ा संन्यासी वही करता है। वह दायित्व ही छोड़ देता है; वह कहता है कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी; बात खतम; पत्नी-बच्चों को छोड़ कर भाग गए जंगल! वह दायित्व छोड़ देता है। यह कोई असली संन्यास न हुआ। असली संन्यास हैः दायित्व तो होने दो, कर्ता छोड़ दो। तो भी बोझ चला जाता है। वही असली क्रांति है। यह कोई असली क्रांति न हुई, तुम अगर घर-बच्चे छोड़ कर भाग गए, ज्यादा देर न लगेगी, पहाड़ की गुफा में भी बच्चे और पत्नी आ जाएंगे। किसी पहाड़ी स्त्री से लगाव बन जाएगा। तुम अपने से कहां जाओगे? शिष्य इकट्ठे हो जाएंगे, उन्हीं से तुम्हारा भाव हो जाएगा, वही जो तुम्हारा अपने बच्चों से था। उन्हीं से मोह लग जाएगा। कल तुम्हारा शिष्य मर जाएगा तो तुम उसी तरह रोओगे जिस तरह तुम्हारे बेटे के मरने से रोते। तो फर्क क्या हुआ? मकान छोड़ कर चले गए, गुफा में बैठ गए, कल भूकंप आ जाए और गुफा टूट जाए, तो तुम उसी तरह दुखी होओगे जैसे मकान के आग लग जाने से हो जाते। भेद क्या पड़ा? तुमने स्थिति बदल ली, मनःस्थिति तो वही की वही है। सब छोड़ कर चले गए, एक भिक्षापात्र ले गए, और रात किसी ने गुफा से चुरा लिया, तो तुम्हारे सुबह मन में वही होगा, वही भाव उठेंगे, जो किसी ने तुम्हारी तिजोड़ी खोल कर सारा धन निकाल लिया होता तब उठते। कुछ भेद नहीं पड़ेगा।
असली संन्यास कर्ता का त्याग है, दायित्व का नहीं। वही गीता का अपूर्व संदेश है। गीता ने जगत को ठीक संन्यास की पहली परिभाषा दी। गलत संन्यास बहुत पुराना था, गीता ने एक अनूठे संन्यास की परिभाषा दी। गीता ने कहा--रहो यहीं, जीओ यहीं, और फिर भी भीतर से सब शून्य हो जाए। अर्जुन से वे कह रहे हैं--तू लड़ और भीतर से शून्य भाव से लड़। तू परमात्मा के हाथ में अपने को सौंप दे--परमात्मा यानी समग्र के हाथ में अपने को सौंप दे, फिर उसे जो

करवाना हो, करवा ले। जीत होगी कि हार, यह भी विचारणीय नहीं है। तू है ही नहीं करने वाला, तो फिर फल विचारणीय नहीं हो सकता।
अगर परमात्मा का जन्म और कर्म बहुत दूर की बात मालूम पड़े, बहुत एब्सट्रैक्ट, हवाई बात मालूम पड़े, तो इस पृथ्वी पर जो कभी-कभी परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिलती है, उनमें पहचानने की कोशिश करना। उनमें भी तुम वही पाओगे। वही शून्य-भाव। भीतर कोई भी नहीं। कर्म का विराट जाल और कर्ता का अभाव।
मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।
"उनकी करुणा ही उनके जन्म आदि का प्रधान कारण है।"
बुद्ध क्यों बोले? इसलिए नहीं कि बोलने से प्रसिद्ध होना है, इसलिए नहीं कि बोलने से शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करनी है, इसलिए नहीं कि बोलने से कुछ लाभ है, इसलिए बोले कि बोलने से किसी को शायद लाभ हो जाए। इसलिए बोले कि जो मुझे मिल गया है, वह बंटे, शायद किसी के भीतर पड़ा हुआ बीज मेरे शब्दों की चोट से उमग आए, शायद किसी के भीतर पड़ा हुआ तार, जिसे कभी छेड़ा नहीं गया, जग जाए--करुणा!
जीवन के दो सूत्र हैंः एक वासना और एक करुणा। अज्ञानी वासना से जीता है, ज्ञानी करुणा से। और पृथ्वी और आसमान का फर्क हो जाता है दोनों में। वासना का अर्थ होता हैः मैं यह कर रहा हूं ताकि मुझे वह मिले। करुणा का अर्थ होता हैः यह मैं कर रहा हूं ताकि यह मैं दे सकूं। करुणा यानी दान।
वासना भिखारी बनाती है, करुणा सम्राट।
मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।
उनकी करुणा ही उनकी जीवन-क्रिया-कलाप का आधार है।
प्राणित्वात न विभूतिषु।
"विभूतियों के प्रति की हुई भक्ति पराभक्ति नहीं है, क्योंकि वे प्राणधारी जीव हैं।"
शांडिल्य कहते हैंः लेकिन एक बात ख्याल रखना, किसी भी विभूति-संपन्न व्यक्ति को तुम कितना ही आदर दो, भक्ति दो, वह श्रद्धा तक जाएगी, पराभक्ति नहीं हो पाएगी।
मैंने तुम्हें शुरुआत में कहा, प्रीति-तत्व के चार रूप हैं। स्नेह; अपने से छोटे के प्रति, बच्चे के प्रति, शिष्य के प्रति। प्रेम; अपने से समान के प्रति, पति के प्रति, पत्नी के प्रति, मित्र के प्रति, भाई-बंधु के प्रति, पड़ोसी के प्रति। श्रद्धा; अपने से श्रेष्ठ के प्रति, मां के प्रति, पिता के प्रति, गुरु के प्रति। और भक्ति; परमात्मा के प्रति, समग्र के प्रति।
विभूतियों के प्रति तुम्हारा जो भाव है, वह श्रद्धा है। शांडिल्य इस बात को इसलिए कह देना चाहते हैं कि अक्सर यह हो जाता है कि अवतारों से तुम इतने अभिभूत हो जाते हो कि तुम भूल ही जाते हो कि अभी एक कदम और लेना है। गुरु से तुम इतने आक्रांत हो जाते हो कि तुम भूल ही जाते हो कि अभी एक कदम और लेना है। गुरु पर रुकना नहीं है, गुरु पर शुरुआत है। गुरु संसार और परमात्मा के बीच की कड़ी है। गुरु सेतु है। मगर सेतु पर घर नहीं बनाना होता, सेतु से आगे जाना है। सेतु का यही प्रयोजन है। इसलिए सदगुरु तुम्हें रुकने भी नहीं देगा। सदगुरु तुम्हें धक्के देगा। बुद्ध ने कहा हैः अगर मैं रास्ते में मिल जाऊं, तो तलवार उठा कर मेरे दो टुकड़े कर देना। अगर मैं भी बाधा आऊं परमात्मा और तुम्हारे मिलने में, बीच में खड़ा हो जाऊं, तो मुझे हटा देना।
रामकृष्ण के गुरु तोतापुरी ने रामकृष्ण से कहा कि एक ही चीज बाधा बन रही है तेरे अनुभव में, तेरी काली। रामकृष्ण तो बहुत रोने लगे, .जार-.जार होकर रोने लगे, काली को छोड़ने की तो बात ही समझ में नहीं आती, काली यानी परमात्मा! लेकिन तोतापुरी कहता है कि काली ठीक है सेतु की तरह; लेकिन अभी एक कदम और लेना है। और रामकृष्ण के मन में तो काली के प्रति ऐसा प्रेम था कि मजनू का लैला के प्रति नहीं रहा होगा, कि शीरी का फरिहाद के प्रति नहीं रहा होगा, अपूर्व प्रेम था। शायद किसी बेटे ने कभी किसी मां को इतना नहीं चाहा होगा, जैसा रामकृष्ण ने काली को चाहा था। सारी श्रद्धा समर्पित कर दी

थी। और उसी को भक्ति मान लिया था। यह इसी बात को शांडिल्य समझाने के लिए, सचेत करने के लिए ये सूत्र दे रहे हैं।
तोतापुरी ने कहा, तुझे यह तो छोड़ना ही पड़ेगा, तू आंख बंद कर... वह जो बुद्ध ने कहा कि मैं राह में मिल जाऊं तो तलवार उठा कर दो टुकड़े कर देना... तोतापुरी ने कहा कि तू आंख बंद कर और उठा कर तलवार काली के दो टुकड़े कर। रामकृष्ण कहने लगे, तलवार वहां कहां से लाऊं?
तोतापुरी हंसे और उन्होंने कहा, तू काली को कहां से लाया?
मैंने सुना है, एक आदमी नाविक होना चाहता था, नौसेना में भर्ती होना चाहता था। उसका परीक्षण चल रहा था। सेनापति ने उससे पूछा कि तुम जहाज पर हो और मान लो तूफान आ जाए, तो क्या करोगे? तो उसने कहा, एक लंगर लटकाऊंगा। सेनापति ने कहा, अगर दूसरा तूफान आ जाए? तो उसने कहा, और एक लंगर लटकाऊंगा। और तीसरा तूफान आ जाए, और चौथा आ जाए, और पांचवां, और छठवां, और सातवां... । और वह आदमी कहता गया, एक लंगर और लटकाऊंगा। उसके सेनापति ने कहा, इतने लंगर लाएगा कहां से? तो उसने कहा, और ये तूफान कहां से लाए जा रहे हैं? जहां से तूफान लाए जा रहे हैं, वहीं से लंगर भी ले आऊंगा। ये तूफान चले आ रहे हैं इतने बड़े-बड़े!
रामकृष्ण ने कहा कि तलवार कहां से लाऊं?
तोतापुरी ने कहा कि काली को कहां से लाया? जिस कल्पना से काली को आरोपित किया है भीतर, जिस भावना से काली को आरोपित किया है भीतर... रामकृष्ण तो आंख बंद करते कि सामने काली खड़ी हो जाती! वह मधुर रूप, वह लावण्य, वह ऊर्जा, वह ज्योति, वे तो अभिभूत हो जाते, आंसुओं की धार बहने लगती। बहुत दिन तोतापुरी ने बिठाया, लेकिन रामकृष्ण भीतर जाते, भूल ही जाते; घंटा, आधा घंटे बाद जब लौटते तो तोतापुरी कहता, किया? वे कहते, मैं तो भूल ही गया। इतनी सुंदर है मां कि कैसे काटूं? आप बात क्या करते हैं! आपकी बात मान भी लेता हूं तो भी मेरा मन तो राजी नहीं होता।
तोतापुरी ने कहा, तो फिर मैं जाता हूं--तोतापुरी आदमी अदभुत था, पहुंचे हुए परमहंसों में एक था--फिर मैं जाता हूं, फिर तू अटका रह। रामकृष्ण समझते तो थे यह बात, यह बात कहीं समझ में भी आती थी कि यह कल्पना तो मेरी ही है। अभी मैंने उसे नहीं जाना है जो है, अभी तो मैंने उसे जाना है जिसे माना है। अभी परमात्मा का रूप मेरे सामने प्रकट नहीं हुआ, अभी तो आकृति है यह, अभी अरूप और निराकार का अनुभव नहीं हुआ है। तोतापुरी चला गया तो यह आखिरी संभावना गई। तो रामकृष्ण ने पैर पकड़ लिए कि नहीं, जाएं न, आखिरी मौका दें!
तोतापुरी ने कहा, बस यह आखिरी है और मैं भी आखिरी उपाय करता हूं। वह बाहर गया और बोतल का एक टूटा हुआ टुकड़ा ले आया और उसने कहा कि जब तुम आंख बंद करोगे और जब मैं देखूंगा कि आंसू बहने लगे और काली आ गई, तो मैं तुम्हारे माथे पर जहां तीसरा नेत्र होता है वहां इस कांच के टुकड़े से काटूंगा, लहू की धार बह जाएगी बाहर, तुम्हें भीतर पीड़ा होगी। जैसे ही तुम्हें पीड़ा अनुभव हो, तो याद रखना कि यह आखिरी उपाय है, फिर मैं चला जाऊंगा, जैसे ही भीतर तुम्हें अनुभव में हो कि तोतापुरी मेरा माथा काट रहा है, तब चूकना मत, उठा कर तलवार और दो टुकड़े कर देना; जैसे मैं तुम्हारा माथा काटूं, ऐसे ही तुम काली को भी काट देना।
काली की प्रतिमा खड़ी भी वहीं तीसरे नेत्र में होती है। तुम जो भी कल्पना करते हो, वह तीसरे नेत्र में ही होती है। तीसरे नेत्र को योग ने आज्ञाचक्र कहा है। वहां तुम जो आज्ञा करोगे, वही हो जाएगा। वहां कल्पनाएं साकार हो जाती हैं। वहां हर कल्पना साकार हो जाती है। वहीं तुम रात सपना देखते हो, तीसरे नेत्र में। ये दो नेत्र तो बंद होते हैं, सपना तीसरे नेत्र में देखा जाता है; और इसीलिए चूंकि आज्ञाचक्र में सपना देखा जाता है, सपने पर तुम्हें भरोसा आ जाता है। रात सपने को देखते हो तब तुम मानते हो कि सपना सच है। सपने में याद ही नहीं पड़ता कि सपना झूठ है। आज्ञाचक्र इसीलिए उस चक्र को कहा है कि वहां तुमने जो देखा वही सत्य हो जाता है, वहां तुम्हारी आज्ञा काम करती है। कल्पनाजीवी लोग वहीं कल्पना के रूप-प्रतिबिंब देखते हैं। वहीं चित्रकार अपने चित्र देखता है, कवि अपनी कविताएं देखता है, वहीं

संगीतज्ञ संगीत के नये भाव, अर्थ, भंगिमाएं देखता है, वहीं वैज्ञानिक अपने आविष्कार करता है। वहीं रामकृष्ण अपने प्रतिमा को खड़ा करते थे। तोतापुरी ने ठीक जगह चुनी। तीसरे नेत्र को काटा। उस पीड़ा में रामकृष्ण ने भी हिम्मत की और तलवार उठा कर काली के दो टुकड़े कर दिए। काली के दो टुकड़े होकर गिरना कि विराट खुल गया। आज्ञाचक्र से छलांग लग गई। आज्ञाचक्र कट गया। काली नहीं कटी, आज्ञाचक्र दो टुकड़ों में कट गया, आज्ञाचक्र से ऊपर छलांग लग गई, सातवें चक्र में छलांग लग गई--सहस्रार में। वहां खिल गया कमल सहस्रदल। छह दिन तक रामकृष्ण बेहोश रहे। सहस्रार से उतारना मुश्किल हुआ। अनुभव इतना आनंद का है कि कौन उतरना चाहे! फिर लौटना कौन चाहे! जब लौटे तो जो पहला शब्द उनके मुंह से निकला वह धन्यवाद का था तोतापुरी के लिए। चरणों में गिर पड़े और कहा, मेरी आखिरी बाधा तुमने छीन ली। आखिरी बाधा!
गुरु आखिरी बाधा है, अगर रुको तो; नहीं तो आखिरी साधन है, बढ़ो तो। तुम
पर निर्भर है। अगर बढ़ो, तो गुरु आखिरी साधन है, आखिरी सीढ़ी, आखिरी सोपान, उसके बाद परमात्मा है। इसलिए तो गुरु को ब्रह्मा कहा है--गुरुर्ब्रह्मा, बिल्कुल आखिरी है, बस उसके बाद एक कदम और कि परमात्मा है; गुरु और ब्रह्मा, बस पास-पास खड़े हैं, पड़ोसी हैं। लेकिन गुरु पर मत रुक जाना, नहीं तो ऐसा न हो जाए कि गुरु ब्रह्म को आड़ में दे दे, आड़ में कर दे।
असदगुरु वही है जो तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच में खड़ा हो जाए और रुकावट डालने लगे। सदगुरु वही है जो ले जाए आज्ञाचक्र तक और फिर हट जाए। काली तो स्वयं नहीं हट सकती थी, क्योंकि काली तो सिर्फ रामकृष्ण की कल्पना थी। लेकिन सदगुरु स्वयं हट सकता है। फिर भी सदगुरु अपने आप नहीं हट सकता है, जब तक शिष्य साथ न दे। अगर शिष्य जिद करे कि मैं पकड़े ही रहूंगा, तो सदगुरु के भी बाहर है बात। इसलिए सदगुरु प्रारंभ से ही शिष्य को इस भांति तैयार करता है--एक तरफ लगाव भी लगाता है, एक तरफ प्रेम भी करता है, एक तरफ पास भी बुलाता है, दूसरे हाथ से हटाता भी है। दोनों तरह से तैयार रखता है कि जब आखिरी घड़ी आए तो ऐसा न हो कि एकदम हटाने में कठिनाई हो जाए, तुम हटने को राजी न होओ; तुम कहो--अब तक इतने प्रेम से बुलाया है, इतने प्रेम से सम्हाला, आज अचानक इनकार करने लगे। वह भाषा ही समझ में न आए!
इसलिए सदगुरु एक हाथ से निमंत्रण देता है, एक हाथ से चोट करता है। कबीर ने कहा हैः जैसे कि कुम्हार घड़े को बनाता है, भीतर से सम्हालता है, बाहर से थपकी मारता है; एक तरफ से सम्हालता है कि भाग न जाओ, दूसरी तरफ से चोट भी करता है। और जैसे-जैसे तुम करीब आने लगते हो, वैसे-वैसे गहरी चोटें करता है, क्योंकि आखिरी चोट का दिन भी करीब आएगा जल्दी ही, जब उसे बिल्कुल हट जाना होगा। उसके हटने में ही द्वार खुलेगा। इसलिए--
प्राणित्वात न विभूतिषु।
विभूतियों से, उस परमात्मा की विभूतियों से इतने मत जुड़ जाना, ऐसा मत समझ लेना कि यही पराभक्ति है। श्रद्धा है। लेकिन अभी एक कदम और उठाना है, श्रद्धा के भी पार जाना है। और तुम पार जा सकते हो, क्योंकि तुम पार हो। सिर्फ याद, सिर्फ स्मृति दिलानी है तुम्हें।

मैं शोला था--मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला
कि इक सीले-से पेचो-खम में ढल जाना पड़ा मुझको
मैं बिजली था--मगर वह बर्फ-आगीं बदलियां छाईं
कि दब कर उन चट्टानों में पिघल जाना पड़ा मुझको

मैं तूफां था--मगर क्या कहिए उस तिश्ना समंदर को
कि सर टकरा के साहिल ही से रुक जाना पड़ा मुझको मैं आंधी था--मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पाई
कि खुद अपनी ही ठोकर खाकर झुक जाना पड़ा मुझको

मगर अब इसका रोना क्या है, क्या था देखिए क्या हूं मैं इक ठहरा हुआ शोला हूं, इक सिकुड़ी हुई बिजली

असर नश्वो-नुमा पर डाल ही देता है गहवारा मैं एक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी

मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है मेरी जानिब से इतमीनान रख, आतिशनवा रहबर
जरा बादल तो टकराएं, कड़कना अब भी आता है

थपेड़े, हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
बहा दूंगा मताए-किश्ते-महकूमी, बहा दूंगा
झकोले, हां, यही बरहम झकोले, सरसरे-हस्ती
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा

मैं शोला था--मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला
मैं तो एक अंगारा था, लेकिन राख का ढेर इस तरह मेरे ऊपर सवार हो गया कि मैं भूल ही गया कि मैं कौन हूं। ऐसी तुम्हारी दशा है।
मैं शोला था--मगर यों राख के तूदे ने सर कुचला
कि इक सीले-से पेचो-खम में ढल जाना पड़ा मुझको
मैं बिजली था--मगर वह बर्फ-आगीं बदलियां छाईं
ये बर्फीली बदलियां आ गईं, मैं तो बिजली था।
... मगर वह बर्फ-आगीं बदलियां छाईं
कि दब कर उन चट्टानों में पिघल जाना पड़ा मुझको
मैं तूफां था--मगर क्या कहिए उस तिश्ना समंदर को प्यासे समंदर को क्या कहें!
मैं तूफां था--मगर क्या कहिए उस तिश्ना समंदर को
कि सर टकरा के साहिल ही से रुक जाना पड़ा मुझको
मैं आंधी था--मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पाई
ऐसी गहरी नींद आ गई, ऐसी गहरी नींद की संभावना पाई थी। मैं आंधी था--मगर वह ख्वाब-आलूदा फजा पाई
कि खुद अपनी ही ठोकर खाकर झुक जाना पड़ा मुझको
मगर अब इसका रोना क्या है, क्या था देखिए क्या हूं मैं इक ठहरा हुआ शोला हूं, इक सिकुड़ी हुई बिजली
असर नश्वो-नुमा पर डाल ही देता है गहवारा
मैं इक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी यही तुम हो, यही सब हैं।
मैं इक सिमटा हुआ तूफां हूं, इक सहमी हुई आंधी
मगर माबूदे-बेदारी! ...
मगर हे परमात्मा!
... कहीं फितरत बदलती है
कहीं स्वभाव बदलता है!
मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
तूफान तूफान रहता है, कितना ही सिकुड़ जाए। और अंगारा अंगारा रहता है, कितना ही राख में दब जाए। और आंधी आंधी रहती है, कितनी ही नींद में खो जाए। मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है
मेरी जानिब से इतमीनान रख, आतिशनवा रहबर
जरा बादल तो टकराएं, कड़कना अब भी आता है
जरा मौके की तलाश है, ठीक समय, ठीक अवसर, ठीक भूमि मिल जाए, ठीक सत्संग मिल जाए, तो अभी राख गिर जाए और अंगारा फिर प्रकट हो जाए। ठीक साथ मिल जाए, ठीक हाथ मिल जाए, तो जो बिल्कुल भूल गया है, जो बिल्कुल विस्मृत हो गया है, वह पुनः याद आ जाए; फिर दीया जल जाए।
मेरी जानिब से इतमीनान रख, आतिशनवा रहबर
जरा बादल तो टकराएं, कड़कना अब भी आता है

मगर माबूदे-बेदारी! कहीं फितरत बदलती है
धुएं को गर्म होने दे, भड़कना अब भी आता है
थपेड़े, हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
थपेड़े आते रहें, आने दे; स्वतंत्रता की लहरें आती रहें, आने दे!
थपेड़े, हां, यूं ही पैहम थपेड़े, मौजे-आजादी
बहा दूंगा मताए-किश्ते-महकूमी, बहा दूंगा
आने दे स्वतंत्रता की लहरों को, इन थपेड़ों को आते रहने दे लगातार, तो
यह जो दासता की संपदा है, यह जो कूड़ा-कर्कट गुलामी का इकट्ठा हो गया है-- बहा दूंगा मताए-किश्ते-महकूमी, बहा दूंगा
झकोले, हां, यही बरहम झकोले, सरसरे-हस्ती
जीवन की यह गर्म हवा आने दे।
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा
जीवन की असंगतियों की जो बुनियाद है, उसे हिला दूंगा।
हिला दूंगा तजाहे-जीस्त की चूलें, हिला दूंगा
कुछ बदला नहीं है; एक सपने में भला खो गए हो, लेकिन सत्य से वंचित नहीं
हो गए हो। नींद भला आ गई है, आंख खुल सकती है। नशा भला छा गया है, नशा टूट सकता है। राख घिर गई है, राख उड़ सकती है। सत्संग चाहिए; किसी अंगारे का साथ चाहिए जिसकी राख उड़ गई हो।
इसलिए शांडिल्य ने सत्संग की बड़ी महिमा गाई है। जहां चार प्रेमी इकट्ठे होते हों और परमात्मा की बात करते हों, सब छोड़ कर वहां बैठ जाना। जहां चार आदमी परमात्मा की प्रशंसा के गीत गाते हों, अपने अनुभव की बात करते हों, रोते हों, रोमांचित होते हों, वहां दूर-दूर खड़े मत रह जाना, वहां दर्शक बन कर मत बैठे रह जाना, वहां डुबकी लगा लेना, वहां उनके साथ जुड़ जाना, नाचना, गाना, रोमांचित होना। तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह भी प्रकट हो सकता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 1
बीसवां प्रवचन

अद्वैत प्रीति की परमदशा है

पहला प्रश्नः कल आपने कहा--भक्ति सहज है, इसलिए वैज्ञानिक है। सहज को वैज्ञानिक कहने का आपका आशय क्या है? कृपा करके कहिए।

विज्ञान के बहुत अर्थ हैं। जो सर्वाधिक आधारभूत अर्थ है, वह है स्वभाव की खोज; सहज की खोज। जीवन के भीतर जो छिपा हुआ ऋत, ताओ, महानियम है, उसकी खोज। अंततः पदार्थ में ही जो छिपा है, उसकी खोज नहीं; अंततः उसकी भी खोज जो चेतना में छिपा है। पदार्थ पर विज्ञान का प्रारंभ है, अंत नहीं। और जिस विज्ञान का अंत पदार्थ पर हो जाए, वह अधूरा विज्ञान। और अधूरे सत्य असत्यों से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं। क्योंकि वे सत्य जैसे प्रतीत होते हैं और सत्य नहीं होते।
असत्य को तो पहचाना जा सकता है, आज नहीं कल समझ में आ जाएगा असत्य है,
और समझ में आते ही छुटकारा हो जाएगा। आधा सत्य बड़ा खतरनाक होता है। उसमें सत्य की भ्रांति बनी ही रहती है, बनी ही रहती है। और आधा सत्य सत्य होता नहीं, क्योंकि सत्य को खंडों में नहीं बांटा जा सकता। सत्य अविभाज्य है, अखंड है। होगा तो पूरा होगा, नहीं होगा तो बिल्कुल नहीं होगा।
विज्ञान पदार्थ से शुरू होता है, लेकिन पदार्थ पर समाप्त नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए। जब पदार्थ के आधारभूत नियम जान लिए जाएंगे, तो उसी जानने से चेतना की तरफ यात्रा अपने आप होती है। इसलिए विज्ञान का जो सर्वाधिक नया कदम है, वह मनोविज्ञान है। सबसे पुराना कदम है भौतिकशास्त्र, सबसे नया कदम है मनोविज्ञान।
इसका अर्थ समझो। शुरू हुआ भूत से, पदार्थ से, अब यात्रा मन की हो गई शुरू। मन मध्य है, अंत नहीं। जिस दिन विज्ञान आत्मा की भी खोज में तल्लीन हो जाएगा, उस दिन विज्ञान ने अपना शिखर छुआ, अपनी मंजिल पाई। अंततः पृथ्वी पर धर्म और विज्ञान जैसी दो चीजें नहीं रहेंगी, नहीं रहनी चाहिए। धर्म भी अधूरा है। धर्म की देह नहीं है। धर्म प्रेत है, आत्मा-आत्मा। आत्मा कहीं देखी है? आत्मा कहीं अलग होती है? और कहीं आत्मा अलग मिल जाए तो प्राण कंप जाएंगे, भूत का अनुभव होगा, प्रेत का अनुभव होगा। धर्म चूंकि आधा है, इसलिए प्रेत जैसा है। रक्त-मांस-मज्जा की देह नहीं है। और विज्ञान भी आधा है, वह मरी हुई लाश जैसा है, उसमें आत्मा नहीं है। एक तरफ मरी हुई लाश है, एक तरफ प्रेतात्मा है। इन दोनों का जिस दिन मिलन होगा, उस दिन जीवन फलेगा।
अंतिम रूप से दुनिया में विज्ञान ही होगा, या उसे धर्म कहो, फिर तो नाम
का ही भेद रह जाता है। विज्ञान शब्द भी बुरा नहीं है। ज्ञान से ही बनता है। विशेष ज्ञान अर्थात विज्ञान। जब ज्ञान गहराई ले लेता है तो विज्ञान हो जाता है। जब ज्ञान असली गहराई लेगा तो आत्मा और पदार्थ, प्रकृति और पुरुष, देह और आत्मा, दोनों का संस्पर्श होगा। इसलिए मैं विज्ञान की परिभाषा करता हूं--स्वभाव की खोज, सहज की खोज, आधारभूत ऋत, नियम की खोज।
इसी अर्थ में मैंने कहाः भक्ति सहज है, इसलिए वैज्ञानिक है।
जिसको तुम वैराग्य कहते हो, इतना सहज नहीं है। क्योंकि वैराग्य में संसार का विरोध है। भक्ति में अविरोध है। जहां विरोध है, वहां जटिलता होगी। जहां विरोध है, वहां द्वेष होगा। जहां द्वेष है, वहां अड़चन है, वहां संघर्ष है, वहां सरलता नहीं हो सकती; वहां सतत भीतर युद्ध छिड़ा रहेगा, वहां शांति नहीं हो सकती। विरागी, त्यागी शांत होने की चेष्टा करता है, हो नहीं पाएगा। क्योंकि जिनसे वह लड़ रहा है, जिन तत्वों को समाहित नहीं कर रहा है, वे तत्व उससे बदला लेंगे। वे तत्व उसे ऐसे ही छोड़ नहीं देंगे, वे उसका पीछा करेंगे। भागो गुफाओं में--जिनसे तुम भागे हो, उन्हें तुम गुफाओं में मौजूद पाओगे। जिससे भागोगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा। जिससे बचोगे, बार-बार सामने आ जाएगा।
क्रोध से भागो, और तुम्हारी पूरी जीवन-ऊर्जा क्रोध से विकृत हो जाएगी। काम से भागो, और तुम काम ही काम से भर जाओगे। तुम्हारा चित्त काम की

ही मवाद से भर जाएगा। भागो मत, जागो। भागो मत, जीओ। संसार को उसकी समग्रता में जीओ।
भक्ति भगोड़ापन नहीं सिखाती। भक्ति कहती हैः यह परमात्मा का संसार है, भागना क्यों? इसी में कहीं छिपा होगा, छिया-छी खेल रहा है; जरा पर्दे उठाओ, यहीं कहीं उसे छिपा पाओगे। छिपा है वृक्षों में, पहाड़ों में, पर्वतों में, लोगों में--हर पर्दे के पीछे वही है। पर्दा उठाना आना चाहिए। प्रेम पर्दे को उठाने की कला है। जबर्दस्ती की जरूरत नहीं है। तुम्हारा किसी से प्रेम होता है, उसका घूंघट तुम उठा सकते हो--जबर्दस्ती की जरूरत नहीं है। प्रेम न हो तो घूंघट उठाना हिंसा होगी। प्रेम हो तो सम्मान होगा।
जो लोग अस्तित्व को बिना प्रेम किए इसका घूंघट उठाना चाहते हैं, वे बलात्कार करना चाहते हैं। इसलिए मैंने बहुत बार कहा है कि तुम्हारा तथाकथित वैज्ञानिक अधूरा है और बलात्कारी है। वह प्रकृति को जबर्दस्ती जानना चाहता है। वह प्रकृति के रहस्यों को संगीन की धार पर खोल लेना चाहता है।
भक्त भी खोलता है रहस्यों को, तलवार लेकर नहीं हाथ में, वीणा लेकर। भक्त के लिए भी प्रकृति अपना पर्दा उठाती है, लेकिन उसके नृत्य के कारण, उसके गीत के कारण, उसकी प्रीति के कारण।
विज्ञान अधूरा रहेगा, अगर तर्क ही उसका एकमात्र शास्त्र होगा। जिस दिन प्रीति भी उसके शास्त्र का अंग होगी, उसी दिन विज्ञान पूर्ण होगा। उस दिन दुनिया के जीवन में बड़ा सूर्योदय होगा। उस दिन पूरब-पश्चिम मिलेंगे। अभी नहीं मिल सकते। अभी पूरब आधे सत्य को पकड़े बैठा है--धर्म; पश्चिम आधे सत्य को पकड़े बैठा है--विज्ञान। अभी पूरब और पश्चिम का मिलन नहीं हो सकता। पूरब और पश्चिम उसी दिन मिलेंगे, जिस दिन ये आधे सत्य हाथ से हट जाएंगे और पूरे सत्य को अंगीकार करने की क्षमता हममें होगी।
पूरे सत्य को अंगीकार करने के लिए बड़ा दुस्साहस चाहिए। क्यों? आधा सत्य ज्यादा साहस नहीं मांगता। क्यों? क्योंकि पूरा सत्य विरोधाभासी होता है। वहीं अड़चन है। परमात्मा दिन भी है और रात भी, बस यहीं अड़चन है। और परमात्मा संसार भी है और निर्वाण भी, यहीं अड़चन है।
जो कायर हैं, उनमें से कुछ कहते हैं--परमात्मा संसार ही है, और कोई परमात्मा नहीं। यही तो नास्तिक कहता है, कम्युनिस्ट कहता है। उसका कहना क्या है? वह कहता है, बस यही जीवन सब कुछ है, और कोई जीवन नहीं। तुम्हारा तथाकथित विरागी और ज्ञानी क्या कहता है? वह कहता है, यह संसार माया है, झूठा है, परमात्मा सच है। नास्तिक कहता है, परमात्मा झूठा है, संसार सच है। आस्तिक कहता है, संसार झूठा है, परमात्मा सच है। दोनों की छाती बड़ी नहीं है। यह कहने की दोनों हिम्मत नहीं जुटा पाते कि दोनों सच हैं। सच तो यह है कि दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं।
इसके लिए विशाल हृदय चाहिए, जो विरोधाभास को समा ले। छोटी-छोटी बुद्धियां इसे नहीं समा सकतीं। छोटी बुद्धि कह सकती है--संभोग सच है, कि समाधि सच है। विराट हृदय ही कह सकता है--संभोग, समाधि, दोनों सच हैं। वासना, करुणा, दोनों सच हैं। काम और राम, दोनों सच हैं। एक ही सीढ़ी के पहलू हैं। काम की ही यात्रा राम तक होती है। पदार्थ ही शुद्ध होते-होते, होते-होते परमात्मा हो जाता है। परमात्मा ही अशुद्ध होते-होते, होते-होते पदार्थ हो जाता है। संसार परमात्मा का अशुद्ध रूप है, बस। परमात्मा संसार का शुद्ध रूप है, बस।
लेकिन परमात्मा जीवन है, यह स्वीकार करना आसान मालूम पड़ता है। जब तुम कहते हो, परमात्मा जीवन और मृत्यु दोनों है, तो बड़ी अड़चन होती है। तर्क कहता हैः जीवन और मृत्यु, दोनों? दोनों कैसे होगा? दोनों नहीं हो सकता। तर्क की भाषा है--यह या वह। तर्क हमेशा बांटता है। तर्क कहता हैः परमात्मा या तो पुरुष होगा, या स्त्री होगा। जो परमात्मा को पुरुष मानते हैं, वे उसको स्त्री नहीं मान सकते। जो उसको स्त्री मानते हैं, वे पुरुष नहीं मान सकते। क्योंकि तर्क कहता हैः दोनों कैसे होगा?
तुमने अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा देखी? वह भक्तों ने खोजी। वह प्रेमियों ने खोजी। जिन्होंने कहा परमात्मा दोनों है--आधा स्त्री, आधा

पुरुष। तुमने प्रतिमा देखी भी हो तो भी तुमने अंगीकार नहीं की है। भीतर से तो होता ही रहता है--यह कैसे होगा? आधा पुरुष, आधा स्त्री! एक अंग स्त्री का, एक अंग पुरुष का! यह कैसे होगा? यह तो बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती है बात, यह तो पहेली हो गई। या तो पुरुष, या तो स्त्री। ईदर-ऑर तर्क की भाषा है। यह या वह। चुन लो। चुनाव तर्क की भाषा है।
प्रीति की भाषा अचुनाव है। उस अचुनाव को ही मैं परम विज्ञान कहता हूं।

दूसरा प्रश्नः शांडिल्य कहते हैं--प्रीति, भक्ति अद्वैत है। तो अद्वैत के नाम पर जो कहा जाता रहा है, वह क्या है?

अधिकतर शब्द ही हैं वे। क्योंकि जिसने प्रीति नहीं जानी, वह अद्वैत नहीं जानेगा। अद्वैत प्रीति की परम दशा है। जिसने प्रीति नहीं जानी, उसका अद्वैत तार्किक निष्पत्ति है। गणित उसने हल किया है! उसके अद्वैत में प्राण नहीं हैं। उसका अद्वैत रूखा-सूखा, निष्प्राण है। उसके अद्वैत में फूल नहीं लगेंगे। और उसके अद्वैत में कोई स्वर पैदा नहीं होगा। उसका अद्वैत मरघट का अद्वैत है। जिसने प्रीति जानी, उसने ही असली अद्वैत जाना। असली अद्वैत का क्या अर्थ?
असली अद्वैत का अर्थ होता हैः दो में से एक को छोड़ नहीं देना है, फिर
तो अद्वैत हुआ ही नहीं। तुम्हारा अद्वैतवादी कहता हैः संसार माया है, झूठ है, है ही नहीं। यह क्या अद्वैत हुआ? एक को काट दिया। फिर तो मार्क्सवादी भी अद्वैतवादी है। वह कहता हैः कोई परमात्मा नहीं, कोई आत्मा नहीं, बस जड़ है, पदार्थ है, कोई चेतना नहीं। यह भी अद्वैत है। आस्तिक, नास्तिक दोनों अद्वैतवादी हैं। और मैं मानता हूं कि दोनों केवल तर्क से चल रहे हैं, अनुभव नहीं है। भक्त को अनुभव है। भक्त कहता हैः अद्वैत है, और ऐसा अद्वैत है कि दोनों उसमें समाए हैं, और दोनों उसमें जी सकते हैं।
यह अनुभूति प्रेम में ही होती है। प्रेम बड़ी विचित्र अनुभूति है। प्रेमी और प्रेमिका दो होते हैं और फिर भी अनुभव करते हैं कि एक हैं। उनका अनुभव बड़ा समृद्ध अनुभव है। अगर प्रेमी अपनी हत्या कर ले और कहे कि बस प्रेयसी है, मैं नहीं हूं, तो प्रेम समाप्त हो जाएगा। या प्रेयसी की हत्या कर दे और कहे कि मैं ही हूं, प्रेयसी कहां है, तो भी प्रेम समाप्त हो जाएगा। दो के बीच एक जीए, तो ही श्वास लेता है, नहीं तो श्वास नहीं ले सकेगा।
और यही प्रेमी करते हैं जीवन भर। तुम्हारे तथाकथित प्रेमी इसी कोशिश में लगे रहते हैं। पति कोशिश में रहता है कि पत्नी मिट जाए; पत्नी की कोई आवाज न हो, उसका कोई स्वर न हो, वह मेरी अनुगामिनी हो, मेरी छाया हो, मैं जहां जाऊं वहां छाया की तरह मेरे पीछे जाए। पति चाहता है कि पत्नी की कोई स्वतंत्रता न हो, पत्नी दासी हो; मैं स्वामी, पत्नी दासी। यह प्रेम की हत्या शुरू हो गई। प्रेम तो दोनों के जीते-जी ही हो सकता है--दोनों परिपूर्ण स्वतंत्रता में हों और फिर भी दोनों के हृदय अनुभव करते हों कि हम एक हैं। एकता अनुभव हो।
पत्नी भी यही कोशिश करती है कि पति को मिटा डाले। दोनों की कोशिश अलग-अलग ढंग की होती हैं, क्योंकि दोनों के मनोविज्ञान अलग होते हैं। पति के ढंग जरा स्थूल होते हैं, मार-पीट कर देगा। पत्नी के ढंग जरा सूक्ष्म होते हैं, जरूरत पड़ेगी तो अपने को ही मार-पीट लेगी। मगर चेष्टा दोनों की एक ही है। पत्नी जरा परोक्ष ढंग से पति को अपने कब्जे में लेना चाहती है। अक्सर यह होता है कि तुमने विवाह किया कि पत्नी तो नहीं मिलती, एक गुरु मिल गया, जो तुम्हें सुधारने में लग जाता है कि अब सिगरेट न पीओ, अब पान न खाओ, अब दस बजे के बाद जगो मत, अब ब्रह्ममुहूर्त में उठो, और अब ऐसा करो और अब वैसा करो। पत्नियां अक्सर अपना जीवन इसी में नष्ट करती हैं कि पति को कैसे सुधार लें। लेकिन सुधारने के पीछे जो आकांक्षा है, वह मालकियत की है। सुधारना तो बहाना है। सुधारने का तो केवल मतलब इतना है कि शुभ के मार्ग से मैं मालकियत सिद्ध करती हूं।

और मजा यह है कि न पति सुधरता, न पत्नी सुधार पाती। क्योंकि पत्नी जब सुधारने की कोशिश करती है--और यह उसका ढंग होता है मालकियत का--तो पति भी पूरी चेष्टा करता है अपनी स्वतंत्रता बचाने की, चाहे गलत ढंग से ही सही। अब सिगरेट पीना कोई बड़ी स्वतंत्रता नहीं है, मूढ़तापूर्ण है बात, मगर अगर पत्नी पीछे पड़ी है कि सिगरेट मत पीओ, तो पति फिर सिगरेट नहीं छोड़ सकेगा। उसे पीना ही पड़ेगा। पीते ही रहना पड़ेगा। क्यों? क्योंकि अब यही उसका एकमात्र मार्ग है घोषणा करने का कि मेरी भी आत्मा है, मैं स्वतंत्र हूं, मैं गुलाम नहीं हूं।
पति-पत्नी एक-दूसरे को मिटाने में लग जाते हैं। इसलिए पति-पत्नी का जीवन एक दुखद जीवन हो गया है। दोनों अद्वैतवादी हैं। दोनों की चेष्टा यह है--एक बचे। दूसरे को नकार कर दो; छाया कर दो, माया कर दो। दूसरे का होना न-होने के बराबर कर दो। दूसरे का मूल्य शून्य कर दो।
यही ज्ञानी कर रहा है, वह कहता हैः ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या। यही तुम्हारा अनीश्वरवादी कर रहा है, वह कहता हैः जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या। एक को बचाएंगे, दूसरे को नष्ट कर देंगे।
भक्त की कीमिया बड़ी अदभुत है। भक्त यह कहता हैः दोनों को मिटाने की जरूरत ही नहीं है। दोनों जुड़ जाएं, आलिंगन में बंध जाएं, दोनों के हृदय एक साथ धड़क सकते हैं, मालकियत का सवाल क्या है? दोनों की धड़कन इतनी एक साथ हो सकती है कि एक का अनुभव होने लगे, दो के बीच में एक का अनुभव होने लगे। दोनों की स्वतंत्रता अछूती रहे और फिर भी दोनों एक में जुड़ जाएं, एक सेतु से जुड़ जाएं। नदी के दो किनारे एक सेतु से जैसे जुड़ जाते हैं, ऐसे ही असली प्रेमी दो रहते हैं, फिर भी जुड़ जाते हैं; अलग-अलग रहते हैं, और फिर भी एक हो जाते हैं।
इसलिए भक्ति में वैविध्य है और भक्ति में समृद्धि है। एक को मार कर जो एकता बचती है, वह एकता कुछ बड़ी एकता नहीं, क्योंकि वह दूसरे से डरी हुई एकता है। दूसरे की मौजूदगी में नहीं हो सकती थी। भक्त कहता हैः संसार भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है; स्रष्टा भी सत्य, उसकी सृष्टि भी सत्य, दोनों सत्य हैं। यही शांडिल्य ने कहाः मिथ्या मत कहो संसार को। उस परम सत्य से मिथ्या का आविर्भाव कैसे होगा? उस सत्य से जो जन्मा है, वह भी सत्य ही होगा। सागर से जो लहर जन्मती है, वह उतनी ही सत्य है जितना सागर। सागर की ही लहर है, असत्य कैसे होगी?
भक्त की छाती बड़ी है। भक्त कहता हैः दोनों को सम्हालेंगे; दोनों में
से किसी को मिटाने की जरूरत नहीं। मिटाते ही जीवन एकरस हो जाएगा।
इसलिए तुम तथाकथित अद्वैतवादी और ज्ञानी के चेहरे पर आनंद का भाव नहीं देखोगे। भक्त के चेहरे पर एक कोमल्य, एक प्रसाद, एक आनंद, एक अनुग्रह का भाव मिलेगा। भक्त नाचता मिलेगा। ज्ञानी सिकुड़ा हुआ, भक्त फैला हुआ मिलेगा। भक्त को कोई अड़चन ही नहीं है। भक्त को सर्व स्वीकार है। भक्त ज्ञान की बातचीत में नहीं पड़ता, अनुभव में उतरता है।
इस भेद को ठीक से समझ लेना।
तुम बैठ कर विचार करो, तर्क करो, कुछ निष्पत्तियां ले लो, दर्शनशास्त्र निर्मित कर लो, यह एक बात। और तुम जीवन में उतरो, छलांग लगाओ, डुबकी मारो और वहां जानो। कबीर ने कहा हैः ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय। यह अलग ही पाठशाला है। यह जीवन की, अस्तित्व की असली पाठशाला है। डूबा हुआ हूं सर से कदम तक बहार में
न छेड़ उनके तसव्वुर में ऐ बहार मुझे
कि बू-ए-गुल भी इस वक्त नागवार मुझे
जो डूब जाता है उसके आनंद में उसके चारों तरफ बहार ही बहार हो जाती है, वसंत ही वसंत हो जाता है, पतझड़ में भी उसे वसंत दिखाई पड़ता है।
डूबा हुआ हूं सर से कदम तक बहार में
न छेड़ उनके तसव्वुर में ऐ बहार मुझे
बहार की भी चिंता नहीं है अब। बहार आए कि न आए, बहार बाहर न भी आए तो चलेगा, बहार भीतर आ गई है, अब तो भक्त जहां रहता है वहां बहार है। तुमने सुना होगा कि भक्त स्वर्ग जाता है। गलत सुना। भक्त जहां जाता है वहां

स्वर्ग होता है। नरक में फेंक दो भक्त को, तुम उसे नरक नहीं पहुंचा पाओगे।
तुम भेजोगे नरक, वह पहुंच जाएगा स्वर्ग। नरक में भी स्वर्ग बसा लेगा।
ज्ञानी को तुम स्वर्ग भी भेज दो तो शायद ही स्वर्ग पहुंचे। सुना नहीं कभी कि कोई पंडित, कोई ज्ञानी स्वर्ग पहुंचा हो! वह जहां जाएगा, वहीं अपना तर्कजाल ले जाएगा। वह जहां जाएगा, वहीं अपने शब्दों से दबा हुआ पहुंचेगा। वह जहां जाएगा, अपनी पोथियां ले जाएगा। उसके पास वही शब्दों की मुर्दा दुनिया बसी रहेगी। पापी भी पहुंच जाते हैं, पंडित नहीं पहुंचते। पापी विनम्र होते हैं, पंडित अहंकारी होते हैं। अगर पंडित और पापी में चुनना हो, तो पापी हो जाना बेहतर है; पंडित तो भूल कर मत होना। क्योंकि पंडित का मतलब है, जिसने नहीं जाना और जो सोचता है--मैंने जान लिया। जानता तो प्रेमी है; पंडित कैसे जानेगा?
प्रेमी होना; तो ही अनुभव करोगेः अद्वैत क्या है। धन्य हो जाओगे-- अनुभव से। विचार से कोई धन्य नहीं होता। तुम जानते हो जीवन के सामान्य क्रम में, कितना ही सोचोः मिष्ठान्न, सुस्वादु भोजन, उससे पेट नहीं भरता। प्यास लगी हो और तुम्हें जल का पूरा शास्त्र आता हो, तुम्हें जल का पूरा विज्ञान आता हो, तुम्हें मालूम हो कि जल यानी एच टू ओ, कि आक्सीजन और उदजन से मिल कर बनता है, कि उदजन के दो हिस्से और आक्सीजन का एक हिस्सा और जल बनता है, लिखते रहो किताबों पर...
मैं एक घर में मेहमान था। पूरा घर पोथियों से भरा था। मैंने पूछा, बड़ी लाइब्रेरी है, क्या-क्या इस लाइब्रेरी में है? घर के मालिक ने कहा, यह लाइब्रेरी नहीं है, इसमें कापियों पर राम-राम, राम-राम लिखता हूं। जिंदगी भर हो गई लिखते, मेरे पिता भी यही करते थे, बड़े धार्मिक पुरुष थे, तो घर में सारी किताबें इकट्ठी हो गई हैं, बस काम ही यही है, राम-राम लिखते रहते। मैंने कहा, यह ऐसे ही फिजूल है जैसे किसी को प्यास लगी हो और वह किताब पर लिखे--एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ, जल का सूत्र लिखता रहे, लिखता रहे, लिखता रहे, इससे प्यास नहीं बुझेगी। न तुम्हारे पिता धार्मिक थे, न तुम धार्मिक हो। धर्म का किताब में राम-राम लिखने से क्या संबंध होगा? हृदय में अनुगूंज होनी चाहिए। प्राणों के प्राण में उसकी आभा प्रकट होनी चाहिए। मैंने उनसे पूछा, तुम्हें राम का अनुभव हुआ? उन्होंने कहा, अनुभव ही हो जाता तो मैं ये पोथियां क्यों लिखता? अनुभव करने के लिए लिख रहा हूं। मैंने कहा, इसके लिखने से कैसे अनुभव होगा? इतना समय गंवाया, अब और न गंवाओ, इन पोथियों को आग लगाओ। इतना लिख चुके, इससे नहीं हुआ, इतना ही और लिख डालोगे तब भी नहीं होगा। लिखने से क्या संबंध हो सकता है? जीवन में अनुभव होते हैं अनुभव से।
भक्त धन्य हो जाता है। वह घड़ी जल्दी आ जाती है भक्त के जीवन में जब वह कहता है, गुंजार करता है--धन्योऽहं! मैं धन्य हूं! बहार ही बहार उसे घेर लेती है।
परसों राधा मुझे मिलने आई। उससे मैंने पूछा, कैसी है राधा? वह कहती है, बहार ही बहार है! अच्छा लगा मुझे उसका वचन। प्रेम जगे तो बहार ही बहार है।

तीसरा प्रश्नः आपने भक्ति-साधना के प्रसंग में अवतारी पुरुषों की चर्चा की। उस प्रसंग में आपने भगवान बुद्ध का वचन उद्धृत किया कि मुझे भी राह से हटा कर आगे जाना। लेकिन शायद इसी प्रसंग में कहा गया भगवान कृष्ण का प्रसिद्ध वचन है--सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब धर्म इत्यादि छोड़ कर मेरी शरण आ। क्या इन परस्पर विरोधी वचनों पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

जरा भी विरोध नहीं है। कृष्ण जो कह रहे हैं, वह यात्रा की शुरुआत है। बुद्ध जो कह रहे हैं, वह यात्रा का अंत है। कृष्ण जो कह रहे हैं, वह अर्जुन से कह रहे हैं जो नाव पर बैठा नहीं, जो झिझक रहा है नाव पर बैठने में। कृष्ण कहते हैंः तू फिकर छोड़, यह नाव तेरे पास आकर लगी; सर्वधर्मान परित्यज्य, छोड़-छाड़ सब बातचीत, सब बकवास, आ बैठ, मेरी शरण आ; मैं तेरा मांझी, मैं तेरा

सारथी, मैं तुझे उस पार ले चलूं, यह नाव तुझे ले जाएगी। सब छोड़ कर निर्भय होकर इस नाव में बैठ।
जब बुद्ध ने कहा है कि अगर मैं भी तुम्हारी राह में आ जाऊं, तो मेरी गर्दन काट देना, यह उस किनारे की बात है जब नाव दूसरी तरफ लग गई। और अर्जुन कहने लगा कि अब मैं उतरूंगा नहीं नाव से! इस नाव ने कितनी कृपा की है, मुझे संसार के सागर से ले आई परमात्मा के किनारे तक! नहीं, इसे अब मैं छोडूंगा नहीं। और कृष्ण के पैर पकड़ ले और कहे कि तुमने ही तो कहा था--मामेकं शरणं व्रज। अब कहां जाते हैं? अब नहीं छोडूंगा, अब चाहे प्राण रहें कि जाएं, तुम्हारे चरण पकड़े ही रहूंगा। तब उस दूसरी घड़ी में कृष्ण को भी कहना पड़ेगा, जो बुद्ध ने कहा, कि पागल, अब नदी से उतर आया, अब नाव छोड़। अब मुझे भी छोड़। अब तो दूसरा किनारा आ गया, अब तो परमात्मा आ गया! नाव का उपयोग था-- संसार से परमात्मा तक, शरीर से आत्मा तक, अंधकार से प्रकाश तक, मृत्यु से जीवन तक। लेकिन अब तो परमात्मा के द्वार पर आकर खड़ा हो गया है, अब इसे भी छोड़। अब इस नाव को थोड़े ही ढोएगा!
बुद्ध बार-बार कहते थे कि जब उतर जाओ दूसरे किनारे, तो नाव को सिर पर
मत रख लेना। वह मूढ़ता होगी, अनुग्रह और कृतज्ञता नहीं। नाव को धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना।
कृष्ण का वचन पाठशाला में भर्ती होने के दिन विद्यार्थी को दिया गया सूत्र है। बुद्ध का वचन, दीक्षांत समारोह समाप्त हो गया, विश्वविद्यालय से लौटते हुए विद्यार्थी को दिया गया अंतिम संबोधन है। विरोध जरा भी नहीं है। चूंकि दोनों अलग-अलग समय में दिए गए और अलग-अलग लोगों को दिए गए, इसलिए तुम्हें चिंता हो सकती है। कृष्ण ने कहा था अर्जुन से, जो एक सामान्य व्यक्ति है। बुद्ध ने कहा था बोधिसत्वों से, जो आखिरी घड़ी में पहुंच गए हैं।
बुद्ध मर रहे हैं, आखिरी घड़ी आ गई। उनके बोधिसत्व उन्हीं घेरे हुए हैं, उनके परम शिष्य उन्हें घेरे हुए हैं। आनंद रोने लगता है। बुद्ध आंख खोलते हैं, पूछते हैं, क्यों रोता है? तो आनंद कहता है, आप चले, अब हमारा क्या होगा? तब बुद्ध ने कहा हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये बनो! मेरे साथ जहां तक आ सकते थे, आ गए।
बुद्ध का वचन और कृष्ण का वचन एक ही यात्रा के दो छोर हैं। विरोध जरा
भी नहीं। जैसे तुम सीढ़ी चढ़ते हो और मैं तुमसे कहूं--बिना सीढ़ी पर चढ़े तुम छत तक न पहुंचोगे। और फिर तुम सीढ़ी के अंतिम सोपान पर जाकर अटक जाओ और तुम कहो--अब मैं सीढ़ी नहीं छोडूंगा, क्योंकि इसी सीढ़ी ने मुझे इस ऊंचाई तक लाया। तो मैं तुमसे कहूंगा कि अब सीढ़ी छोड़ो, नहीं तो छत पर न पहुंच सकोगे। क्या मेरी बातों में विरोध होगा? दोनों में कुछ विरोधाभास है? सीढ़ी चढ़ाने के लिए कहा था--चढ़ो, छत पर नहीं पहुंचोगे; अब कहता हूं--सीढ़ी छोड़ो, नहीं तो छत पर नहीं पहुंचोगे।
विधियां पकड़नी होती हैं, एक दिन छोड़ देनी होती हैं। रास्तों पर चलना होता है, एक दिन रास्तों को नमस्कार कर लेनी होती है। परमात्मा में प्रवेश के पहले तुमने जो भी किया था, जो भी सोचा था, जो भी साधन, विधि-विधान, अनुशासन अपने जीवन में आरोपित किए थे, सबको तिलांजलि दे देनी होती है। परमात्मा में प्रवेश के क्षण में न तो कोई विधि पास होनी चाहिए, न कोई मंत्र, न कोई तंत्र, परमात्मा में प्रवेश के समय सारी सीढ़ियां समाप्त हो जानी चाहिए। सारी नाव विदा हो जानी चाहिए। तो ही तुम प्रवेश कर सकोगे। वचनों में भेद है, क्योंकि अर्जुन और आनंद में भेद है। अर्जुन अभी चलने को ही तैयार नहीं है, अभी वह ठिठक ही रहा है। आनंद चल चुका है अंत तक, आखिरी घड़ी आ गई... और तुम्हें पता है, बुद्ध के मरने के चौबीस घंटे के भीतर आनंद परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया था। तो आखिरी घड़ी में था, बिल्कुल आखिरी घड़ी में था, उतनी सी बाधा बची थी, बस थोड़ी सी बाधा बची थी, कि बुद्ध से जो लगाव था, जो आसक्ति थी, वही अटका रही थी। सब आसक्तियां टूट गई थीं--न धन से कुछ रस था, न पद से कुछ रस था, न मित्रों में कोई रस था, सारे रस जा चुके थे, सारे रसों में एक ही रस व्याप्त हो गया था, यह सदगुरु का रस, यह सदगुरु के चरणों को पकड़ लेने की आसक्ति गहन हो गई थी। यह मोह प्रबल हो गया था। बुद्ध

ने आनंद को कहा हैः तू मुझे भी छोड़, तू अपना दीपक अब खुद बन। अब तू इस योग्य है, अपने पैर पर खड़ा हो सकेगा। मेरे कंधे पर कब तक बैठ कर चलेगा? अब जरूरत भी नहीं है।
मां चलाती है बच्चे को हाथ पकड़ कर, एक दिन हाथ पकड़ कर चलाना होता है। फिर अगर बच्चा सदा के लिए यह हाथ पकड़ ले तो मां हाथ छुड़ाएगी, एक दिन हाथ छुड़ाना भी होता है। नहीं तो बच्चा जवान कब होगा? प्रौढ़ कब होगा? अगर मां अपने बीस साल के जवान लड़के को भी हाथ पकड़ कर चलाए, तो तुम भी कहोगे कि मां भी पागल है और यह लड़का भी पागल है। और अगर मां पहले से ही अपने आठ महीने के बच्चे को भी हाथ का सहारा न दे, तो भी तुम पागल कहोगे। विरोधाभास कहां है? अर्जुन छोटा सा बच्चा है, दुधमुंहा। आनंद युवा हो गया है, लेकिन अब भी मां का आंचल छोड़ना नहीं चाहता। अभी भी चाहता है मां को पकड़े रखे। ये दोनों वचन सत्य हैं, और दोनों वचन तुम्हारे लिए भी सत्य हैं--पहले दिन कृष्ण का वचन, अंतिम दिन बुद्ध का वचन। इसमें विरोधाभास मत देखना।
अक्सर धार्मिक महावचन विरोधाभासी दिखाई पड़ सकते हैं; क्योंकि धर्म एक बड़ा रहस्यपूर्ण जगत है--तर्कातीत।
उलटी ही चाल चलते हैं दीवानगाने-इश्क
करते हैं बंद आंखों को दीदार के लिए
जब देखना हो परमात्मा को तो आंख बंद करनी होती है। तुम कहोगे, यह क्या उलटी बात? आदमी आंख खोल कर देखता है। आंख बंद करके देखने का क्या मतलब? मगर यही है हाल। असली को देखना हो तो आंख बंद करनी पड़ती है। क्षुद्र को ही देखते रहना हो तो आंख खुले भी चल जाता है। आंख खोल कर भी देखा जाता है और आंख बंद करके भी देखा जाता है। जो खुली आंख से दिखता है, वह सपना है; और जो बंद आंख से दिखता है, वही सत्य है।
कबीर का प्रसिद्ध वचन हैः
भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय।
जैसे थे वैसे भए, अब कछु कहा न जाय।।
बड़ा अदभुत वचन है। ठीक बुद्ध का वचन है।
भला हुआ हरि बिसरियो...
झंझट मिटी, यह हरि भी मिटे और भूले, यह झंझट भी मिटी।
भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय।
तुम चौंकोगे थोड़ा कि हरि और सर की बलाय! शांडिल्य तो कह रहे हैं कि भजो, हरिनाम संकीर्तन, डूबो; और कबीर का दिमाग खराब हुआ है कि कहते हैं--भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय। बलाय! हरि का नाम! यही तो, हरि का नाम ही तो साधन है; इसको बला कहते हो!
एक दिन बला हो जाती है। जो विधि एक दिन सहयोगी होती है, वही विधि एक दिन बाधक हो जाती है। तुम बीमार हो, तुम्हें औषधि देते हैं। फिर बीमारी चली गई, फिर औषधि लेते रहोगे तो बलाय हो जाएगी। जिस दिन बीमारी गई, उसी दिन बोतल फेंक देना, और नहीं तो लायंस क्लब में जाकर भेंट कर आना, मगर छुटकारा पा लेना उससे। फिर बोतल को लिए मत घूमना। और यह मत कहना कि इससे इतना लाभ हुआ, अब कैसे छोडूं? ऐसा कृतघ्न कैसे हो जाऊं? इसी बोतल ने तो सब दिया, स्वास्थ्य दिया, बीमारी गई, अब तो पीता ही रहूंगा, अब छोड़ने वाला नहीं हूं। अब तो इस पर मेरी श्रद्धा बड़ी सघन हो गई।
शांडिल्य कह रहे हैंः डूबो हरि भक्ति में; यह कृष्ण की शुरुआत। और कबीर बुद्ध के तल से कह रहे हैंः
भला हुआ हरि बिसरियो, सर से टली बलाय।
जैसे थे वैसे भए, अब कछु कहा न जाए।।
अब क्या कहना है? कैसा राम-भजन? किसका भजन कौन करे? किसलिए करे? अब
शब्द का कोई संबंध न रहा। अब तो मौन है, सन्नाटा है।
हद टप्पै सो औलिया, बेहद टप्पै सो पीर।
हद बेहद दोनों टप्पै, ताका नाम फकीर।।
हद टप्पै सो औलिया...
जो हद के बाहर चला जाए उसको कहते हैं--औलिया।
... बेहद टप्पै सो पीर।

जो बेहद के भी आगे चला जाए--सीमा के पार जाए, औलिया; असीम के भी पार चला जाए, उसका नाम पीर।
हद बेहद दोनों टप्पै, ताका नाम फकीर।।
और जो सीमा, असीमा दोनों को छोड़ दे, द्वंद्व को छोड़ दे, सबके पार चला जाए, वही फकीर है। उसे ही मैं संन्यासी कहता हूं।
पकड़ना, छोड़ने के लिए। विधियों का उपयोग कर लेना, ले लेना जितना रस उनमें हो, फिर जब रस उनका पी चुके तो उस थोथी विधि को ढोते मत रहना, फिर वह बला हो जाएगी।
गुरु के सहारे दूसरे किनारे तक पहुंच जाओगे, फिर गुरु को भी विदा दे देनी होगी। संसार से गुरु छुड़ा लेता, फिर गुरु अपने से छुड़ाता है, तभी परमात्मा का मिलन है।

चौथा प्रश्नः पिछले कुछ दिनों से रोज प्रवचन के बाद जब आपको जाते हुए देखती हूं तो भीतर से एक निःश्वास निकल जाता है और लगता है कि एक दिन और व्यर्थ गया। और फिर एक गहरा भाव रह जाता है कि एक दिन यह दिव्यपुरुष ऐसे ही आंखों से ओझल हो जाएगा और मैं खड़ी-खड़ी ऐसे ही देखती रह जाऊंगी।

पूछा है मुक्ति ने।
दृष्टि की बात है। मुक्ति के मन में कहीं भारी लोभ होगा। उस लोभ से ही सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। आध्यात्मिक लोभ को हम साधारणतः लोभ नहीं कहते, है तो वह लोभ ही।
तुम मुझे सुनते हो, दो ढंग से सुन सकते हो। एक तो सुनने का मजा सुनने में। जैसे कोई संगीत को सुनता है। कोई संगीत को सुनने से धन की वर्षा नहीं हो जाएगी। संगीत को सुन कर घर जाकर अचानक तुम धनी नहीं हो जाओगे। संगीत को सुनने में ही संगीत का धन है। संगीत के सुनने में ही छिपा हुआ आनंद है। लेकिन अगर कोई संगीत सुनने गया इस हिसाब से कि इससे कुछ लाभ होगा, तो बेचैनी होगी। जब संगीत बंद होगा और आखिरी ध्वनि प्रध्वनित होकर विदा हो जाएगी, तब तुम्हें लगेगा कि आज का दिन और व्यर्थ गया; आज भी नहीं हुआ; आज भी जो धन मिलना था, नहीं मिला। लेकिन जो संगीत के ही आनंद के लिए संगीत को सुन रहा है, उसे मिल गया। उसके पार पाने को कुछ था भी नहीं।
यहां मुझे सुनने वाले भी दो तरह के लोग हैं। एक, जिन्हें यहां होने में रस है। जो मेरे पास बैठे, यह थोड़ी गुफ्तगू चली जिनसे, थोड़ी बातचीत हुई, थोड़ा लेन-देन हुआ, थोड़ा आदान-प्रदान हुआ। यह सत्संग रहा, यह संगीत जमा, मेरे-उनके बीच ऊर्जा नाची, मेरे-उनके बीच तरंगें बहीं, मेरे-उनके हृदय थोड़ी देर के लिए साथ-साथ धड़के, मेरी श्वास उनकी श्वास से मिली, उनकी श्वास मेरी श्वास से मिली। उन्होंने थोड़ी देर मुझे पीया, मेरा रस पीया। उन्होंने थोड़ी देर मुझे अपने हृदय में जगह दी, अपनी आत्मा में समाया। बस यह उनका आनंद है। उनके मन में यह भाव होगा--तो आज फिर घटा। वे धन्यभाव से भर कर जाएंगे।
दूसरा व्यक्ति है जो यहां बैठा है, सोच रहा है कि कब समाधि लग जाए, कब परमात्मा मिल जाए, कब मोक्ष मिल जाए। वह सुन नहीं रहा है, उसकी नजर मोक्ष पर अटकी है। वह सोच रहा हैः समाधि आती है कि नहीं। इधर-उधर देख रहा है कि अभी तक आई नहीं, मेरी समाधि नहीं आई; ये दूसरे आदमी की आंख से आंसू बह रहे हैं, शायद इसकी आ गई, मेरी अभी नहीं आई। वह बार-बार टटोल रहा है कि कब आती, कब आती, कहीं कोई पगध्वनि नहीं सुनाई पड़ती! और इस समाधि की चिंता में वह मुझे चूका जा रहा है। इस लोभ में, वह ध्यानस्थ हो सकता था मेरे साथ, वह अवसर चूका जा रहा है। तो जब मैं उठूंगा और चला जाऊंगा, तो स्वभावतः लगेगा कि आज का दिन और बेकार गया।
तुम पर निर्भर है, मुझ पर निर्भर नहीं है। चाहो तो आज के दिन को सार्थक जाने दो, चाहो तो व्यर्थ।
लोभ छोड़ो। लोभ की दृष्टि सदा उपद्रव ले आती है। लोभ के कारण तुम्हारी
जो व्याख्या होती है, वह व्याख्या दुख से भर जाती है। और हमारी व्याख्याएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

एक कम्युनिस्ट कवि का मैं गीत पढ़ रहा था कल। उसका मित्र उसे ताजमहल देखने ले गया है। पूर्णिमा की, शरद पूर्णिमा की रात होगी। लेकिन ताजमहल देख कर कम्युनिस्ट कवि को जो विचार उठे, वे सुनने जैसे हैं--

दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल, वापस चल!

मरमरीं-मरमरीं फूलों से उबरता हीरा
चांद की आंच में दहके हुए सीमीं मीनार
जेहने शायर से यह करता हुआ चश्मक पैहम
एक मलिका का जियापोशो-फजाताब मजार
खुद-बखुद फिर गए नजरों में ब-अंदाजे-सवाल वो जो रस्तों पे पड़े रहते हैं लाशों की तरह खुश्क होकर जो सिमट जाते हैं बे-रस आसाब धूप में खोपड़ियां बजती हैं ताशों की तरह दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल, वापस चल!

यह धड़कता हुआ गुंबद में दिले-शाहजहां
यह दरो-बाम पे हंसता हुआ मलिका का शबाब जगमगाता है हर इक तह से मजाके-तफरीक
और तारीख उढ़ाती है मोहब्बत की नकाब चांदनी और यह महल आलमे-हैरत की कसम
दूध की नहर में जैसे उबाल आ जाए
ऐसे सैयाह की नजरों में छुपे क्या यह समां जिसको फरहाद की किस्मत का ख्याल आ जाए दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल, वापस चल!

यह दमकती हुई चौखट यह तिलापोश कलस
इन्हीं जल्वों ने दिया कब्र-परस्ती को रिवाज माहो-अंजुम भी हुए जाते हैं मजबूरे-सजूद वाह आरामगहे-मालिकए-माबूद मिजाज
दीदनी कस्त नहीं, दीदनी तक्सीन है यह
रूए-हस्ती पे धुआं, कब्र पे रक्से-अनवार
फैल जाए इसी रौजे का जो सिमटा दामन
कितने जानदार जनाजों को भी मिल जाए मजार
दोस्त, मैं देख चुका ताजमहल, वापस चल!

ताजमहल भी देखोगे तो उतना ही देख पाओगे जितनी तुम्हारी व्याख्या होगी।
गुरजिएफ का शिष्य ऑस्पेंस्की ताजमहल देखने आया और उसने जो वचन लिखे
उस रात अपनी डायरी में, वे अदभुत हैं। उसने लिखा कि ताजमहल ऐसे है जैसे पत्थर में उपनिषद। ऐसा सौंदर्य इसके पहले न उतारा गया था कभी और न फिर उतारा जा सका। और कभी उतारा जा सकेगा, इसमें भी संदेह है। ताजमहल में उसे उपनिषद के सूत्रों का सौंदर्य दिखाई पड़ा। जैसे ताजमहल कुछ है जो आकाश से उतारी गई घटना है इस पृथ्वी पर। कुछ है जो अरूप की तरफ इशारा करती है। ताजमहल बनाया सूफियों ने। बनवाया शाहजहां ने, बनाया सूफियों ने। ताजमहल सूफी कृति है। जैसे अजंता-एलोरा बौद्ध भिक्षुओं की कृतियां हैं, और जैसे खजुराहो और कोणार्क तांत्रिकों की कृतियां हैं, वैसे ताजमहल सूफियों की कृति है। लेकिन गुरजिएफ का शिष्य था ऑस्पेंस्की, इसलिए देख सका सूफियों का यह कृत्य। गुरजिएफ खुद सूफी था, सूफी संतों से ही उसने सब सीखा था। इसलिए ऑस्पेंस्की को दिखाई पड़ सका कि ताजमहल में क्या खोदा गया है। ताजमहल तुम्हें याद दिलाता है तुम्हारे परम सौंदर्य की--देह में ही समाप्त मत हो जाना, पत्थर में भी इतना सौंदर्य छिपा है तो तुममें तो कितना छिपा होगा! उघाड़ने की बात है। नक्काशी की बात है। प्रकट करने की बात है।

ऑस्पेंस्की को सूफी मत की सारी सार-अभिव्यक्ति ताजमहल में मिली। एक कम्युनिस्ट कवि को दिखाई पड़ता है कि ताजमहल ठीक, मगर रास्तों पर लोग पड़े हैं भूखे, उनका क्या? यह ताजमहल उनका मजाक है। लोगों को भोजन नहीं है और यहां एक मरी-मराई मलिका के लिए इतना धन खर्च किया गया है। लोगों को दवा नहीं है, उनके बच्चों को दूध नहीं है, रहने के लिए छप्पर नहीं है--जिंदों को छप्पर नहीं है और मुर्दों के लिए इतनी सुंदर कब्र! यह अति अन्याय है। यह कम्युनिस्ट की परिभाषा है।
सब तुम पर निर्भर है। अगर तुम मौज में हो, तो ताजमहल में तुम्हें बड़ा आनंद दिखाई पड़ेगा, नाच होता हुआ दिखाई पड़ेगा, ताजमहल रक्स में मिलेगा। अगर तुम उदास गए हो, तुम्हारी प्रेयसी खो गई है, कि तुम्हारी मां मर गई है, कि तुम्हारा मित्र चल बसा है, और तुम ताजमहल देखोगे तो ताजमहल बड़ा उदास मालूम होगा। तुम्हारी आंखें जो लेकर जाती हैं, वही देख लेंगी।
तुम यहां सुनते किस तरह से हो मुझे, इस पर निर्भर है बहुत कुछ। कोई यहां हिंदू की तरह सुनने आता है, कोई यहां मुसलमान की तरह सुनते आता है, कोई ईसाई की तरह, वह मुझसे वंचित रह जाएगा। जो यहां न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, जो सिर्फ मनुष्य की तरह सुनने आता है, वही मुझसे संबंध जोड़ पाएगा। कोई यहां बड़े लोभ से भर कर आता है--पारलौकिक लोभ, मगर लोभ लोभ है, कहीं पारलौकिक कोई लोभ होता है, लोभ ही तो संसार है!
अब यह मुक्ति के मन में बड़ा लोभ है। यह चाहती है जल्दी से निर्वाण उपलब्ध हो, समाधि उपलब्ध हो, आज का दिन और बेकार गया। जैसे कि मुझे सुन कर तुम्हें समाधि उपलब्ध हो सकती है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुनते- सुनते नहीं उपलब्ध हो सकती। मगर सुन कर उपलब्ध नहीं हो सकती। सुनते-सुनते उपलब्ध हो सकती है। उपलब्ध करने की आकांक्षा हो तो नहीं उपलब्ध होगी। क्योंकि तब तुम सुन ही न पाओगे।
उपलब्धि इत्यादि की व्यर्थ बातें छोड़ो। जितनी देर मेरे साथ हो, मेरे साथ हो लो--तल्लीनता से, परिपूर्णता से। इस थोड़ी देर के लिए तो लोभ इत्यादि को फेंक दो। लोभ के कारण संबंध नहीं जुड़ पाते। लोभ बीच में बाधा बन जाता है। लोभ और प्रेम विपरीत चीजें हैं। जहां प्रेम है, वहां लोभ नहीं; और जहां लोभ है, वहां प्रेम नहीं। और यह सत्संग तो उनके लिए है जिनके हृदय में प्रेम है।
तो संबंध नहीं जुड़ पाता। मुक्ति बैठी-बैठी सोचती रहती होगी कि आधा घंटा गया, घंटा गया, ये नब्बे मिनट पूरे हो गए, आज भी नहीं हुआ, एक दिन और गया। ऐसे रोज-रोज दिन जाते हैं, फिर धीरे-धीरे हताशा गहन हो जाएगी कि ऐसे तो कितने दिन चले गए, ऐसे ही और दिन भी जाएंगे। और यहां रोज संभावना थी। यहां प्रतिपल संभावना थी। मैं यदि समाधि हूं, तो मुझे सुनते, मुझे देखते, मेरे पास बैठते समाधि फलित हो सकती है। समाधि का मतलब क्या होता है? समाधान। समाधि का मतलब क्या होता है? कुछ आकाश से कुछ उतरेगा तुम्हारे भीतर? नहीं, जब तुम्हारी जीवन-चेतना संगीतपूर्ण हो जाती है, तभी समाधि। जहां तुम तल्लीन हो गए, वहीं समाधि। लेकिन लोभ तल्लीन न होने देगा। लोभ भविष्य में भटकाए रखता है। लोभ कहता है, होने वाला है, होने वाला है। जब कि यहां हो रहा है। तुम्हारा मन वर्तमान में नहीं रहता, तो चूक होगी। तुम्हारा मन भविष्य में भटकेगा--तो मुक्ति ठीक ही कहती है--ऐसा रोज ही रोज होता रहेगा। यह तुम पर निर्भर है।
इस प्रश्न को गौर से समझना, क्योंकि यह मुक्ति का ही नहीं, औरों का भी होगा। मुक्ति को मैंने नाम ही मुक्ति इसीलिए दिया है कि उसके भीतर मोक्ष की बड़ी भयंकर अभीप्सा है। और वही अभीप्सा बाधा बन रही है।
"पिछले कुछ दिनों से रोज प्रवचन के बाद जब आपको जाते हुए देखती हूं तो भीतर से एक निःश्वास निकल जाता है।"
यह निःश्वास आनंद का भी हो सकता है कि एक दिन और साथ रहने मिला, कि एक दिन और साथ जुड़ा, कि एक दिन और आनंद बरसा, कि एक दिन और शांति घनी हुई, यह निःश्वास आनंद का भी हो सकता है--धन्योऽहं! यह निःश्वास विषाद का भी हो सकता है कि अरे, आज फिर नहीं हुआ!
ऐसा समझो कि कोई तुमसे कहता है कि मैं नदी पर तैरने जाता हूं...

मुझे तैरने का शौक था। दो-चार घंटे अगर रोज मैं नदी में न जाऊं तो मुझे चैन नहीं पड़ती थी। मुझे नदी ने इतना आनंद दिया कि जो मुझे मिल जाता, उसी को मैं कहता कि आओ! लोग मुझे इतने प्रफुल्लित, इतने आनंदित देखते तो वे भी लोभ में चले जाते कि शायद कुछ न कुछ होता होगा! मेरी बातों में आकर चार बजे सुबह उठ आते, कि चलो देखें, एक दफा तो देखें! लेकिन वहां उन्हें कुछ भी न मिलता। और नींद हराम हुई सो अलग। सुबह मजे से सोते, वह भी गया, और तैरने में क्या रखा है! और ठंडी सुबह और नदी का ठंडा जल, और वे ठिठुरते, और वे कहते कि आनंद तो कुछ मालूम नहीं पड़ रहा है, और आप कहते थे कि बड़ा आनंद मिलता है! तब धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि भूल कहां हो रही है। मुझे आनंद मिलता है, क्योंकि मैं आनंद की तलाश नहीं कर रहा हूं। वे आ गए हैं सिर्फ इसी आशा में कि आनंद मिलेगा। अब ठंडे पानी में उतर रहे हैं, दिखाई तो यह पड़ रहा है कि ठंड लग रही है और सोच वे यह रहे हैं कि अभी तक आनंद नहीं मिला! उदास हुए जा रहे हैं कि अब तक नहीं आया! कब आएगा? कहां से आएगा? दो-चार दिन मेरे साथ जाते, फिर वे कहते कि भई, हमें नहीं आना है! दिन भर नींद आती है, और आनंद मिलता नहीं। मैं बहुत हैरान होता था कि तैरने जैसी घटना और इन्हें आनंद नहीं मिलता!
जल के साथ घड़ी, दो घड़ी रह लेना परम जीवनदायी है, क्योंकि अस्सी प्रतिशत तुम्हारे भीतर जल है। और जैसे तुम्हारे भीतर अस्सी प्रतिशत जल है, जब जल के साथ तुम्हारे भीतर का जल मिलता है तो बड़ी तरंगें उठती हैं। मगर मिलना चाहिए, मिलन होना चाहिए। तो तैरना ध्यान बन सकता है, अगर तुम परिपूर्ण डूब गए तैरने में। अगर कोई धूप में लेट गया है जाकर सागर के तट पर और धूप की वर्षा में डूब सकता है, तो वहां ध्यान। कोई नाचने में डूब सकता है, वहां ध्यान। तुम जिसमें डूब जाओ, वहां ध्यान। यहां मैं जो तुमसे बोल रहा हूं रोज-रोज, वह किन्हीं सिद्धांतों को समझाने के लिए नहीं। सिद्धांतों में रखा क्या है! दो कौड़ी के हैं। सिद्धांत तो बहाने हैं, प्रयोजन कुछ और है। प्रयोजन यह है कि तुम मेरे साथ थोड़ी देर को डूब जाओ। मगर अगर भीतर तुम्हारे यह आकांक्षा बैठी है कि कुछ मिलना चाहिए, तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

शायद तुमने सुना हो, यूक्लिड बहुत बड़ा गणितज्ञ हुआ, ज्यामिति का आविष्कारक। उसके पास एक धनपति ने अपने बेटे को ज्यामिति सीखने भेजा। धनपति का बेटा था, धन उसकी एकमात्र भाषा थी। यूक्लिड ने उसे समझाना शुरू किया कि रेखा क्या है, बिंदु क्या है, त्रिकोण क्या है। उसने थोड़ी देर सुना और उसने कहा, इससे मिलेगा क्या? इससे फायदा क्या? बिंदु क्या है, रेखा क्या है, इससे फायदा क्या? इससे लाभ क्या होगा? धनपति का बेटा था! यूक्लिड ने उसकी तरफ देखा और अपनी पत्नी को कहा कि ऐसा कर, रोज ज्यामिति पढ़ने के बाद जब यह युवक जाने लगे तो इसे पांच सिक्के दे दिया कर। युवक बड़ा खुश हुआ कि यह तो बड़ा मजा है! बिंदु क्या, रेखा क्या, इसको पढ़ने-सीखने में पांच सिक्के भी मिलते हैं। लेकिन उसने इस बात को न देखा कि भयंकर मजाक किया है यूक्लिड ने। जब उसके बाप को, धनपति को पता चला तो उसने सिर ठोंक लिया। उसने अपने बेटे को कहा, नासमझ, यूक्लिड जैसा गणितज्ञ समझाने को मिला हो और तू उससे गणित तो नहीं समझ रहा है और उलटे पांच रुपये उससे लेकर घर आ जाता है! तू मूढ़ है।
लाभ की भाषा मूढ़ता की भाषा है। लेकिन तुम्हारा कसूर नहीं है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा, पंडित, पुजारी यही तुम्हें समझा रहे हैं कि संसार में भी लाभ होता है, यह भी लाभ है, और परमात्मा में भी लाभ होता है-- ध्यान-लाभ करो, पुण्य-लाभ करो, मोक्ष-लाभ करो। मगर लाभ की भाषा नहीं छूटती। मैं तुमसे कह दूं इस बात को फिर से कि जब तक लाभ की भाषा है, तब तक समाधि अनुभव नहीं होगी। लाभ ही तनाव है। जहां लाभ गया, लोभ गया, उसी चित्त-दशा का नाम समाधि है। जब लाभ-लोभ उड़ गए और तुम्हारे भीतर कोई लाभ-लोभ की भाषा न रह गई, तुम इसी क्षण में परम तल्लीन हो गए, वही समाधि है। समाधि यानी तल्लीनता। समाधि यानी तन्मयता।

तो मुक्ति कहती हैः "... निःश्वास निकल जाता है और लगता है कि एक दिन और व्यर्थ गया। और फिर एक गहरा भाव रह जाता है कि एक दिन यह दिव्यपुरुष ऐसे ही आंखों से ओझल हो जाएगा और मैं खड़ी-खड़ी ऐसे ही देखती रह जाऊंगी।"
अगर लाभ रहा, लोभ रहा, तो यह होने वाला है! आज नहीं कल, मुझे विदा लेनी
ही होगी। और तब तुम सोचोगे कि जिंदगी व्यर्थ गई। पूरा जीवन व्यर्थ गया। जब कि हर पल समाधि घट सकती थी। और शायद तुम्हारा लोभ से भरा हुआ मन मुझ पर नाराजगी जाहिर भी करेगा कि शायद मैंने ही तुम्हें समाधि नहीं दी। क्योंकि तुम इस आशा में बैठे हो कि मैं तुम्हें समाधि दूंगा।
समाधि ली जाती है, दी नहीं जाती। मैं देना भी चाहूं तो नहीं दे सकता। हां, तुम लेना चाहो तो ले सकते हो। और तुम लेना चाहो तो मुझसे ही नहीं, वृक्षों से भी ले सकते हो, पहाड़ों से भी ले सकते हो, चांद-तारों से भी ले सकते हो। समाधि का अर्थ यही होता है कि हम किसी क्षण में परिपूर्ण रूप से डूब जाएं। न कोई भविष्य रहे, न कोई अतीत, यही क्षण सब तरफ से घेर ले, यही क्षण सारा समय बन जाए, यही क्षण अनंत हो जाए।
तो यहां मैं देखता हूं। पश्चिम से जो लोग आते हैं, उन्हें ध्यान ज्यादा सरलता से घटता है। पूर्वीय को ज्यादा मुश्किल से घटता है। होना चाहिए उलटा--पूर्वीय व्यक्ति को, कम से कम भारतीयों को ध्यान जल्दी घटना चाहिए, हजारों साल से ध्यान की चर्चा यहां चलती रही है। लेकिन उसी से अड़चन हो रही है। पश्चिम से जो आदमी आता है, उसे ध्यान के संबंध में कुछ हिसाब-किताब नहीं है; उसे पता ही नहीं है कि ध्यान क्या है। इसलिए लोभ भी नहीं है, पाने की कोई प्रबल आकांक्षा भी नहीं है। अगर मैं उससे नाचने को कहता हूं तो वह नाचने में डूब जाता है, क्योंकि आंख के किनारे से देखता नहीं रहता कि अभी ध्यान घटा कि नहीं घटा। भारतीय आता है, वह कहता है--दो दिन हो गए नाचते, अभी तक ध्यान नहीं घटा। तीन दिन हो गए ध्यान करते, अभी तक ध्यान नहीं घटा। पश्चिम से आया व्यक्ति नाचने में रस लेने लगता है, वह मुझसे आकर कहने लगता है, नाचने में बड़ा मजा आ रहा है--ध्यान इत्यादि का उसे पता भी नहीं है कि घटना है कि नहीं घटना है--नाचने में बड़ा मजा आ रहा है! एक दिन अचानक ध्यान घट जाता है। ध्यान अनायास घटता है।
भारत का मन बहुत लोभग्रस्त हो गया है। तुमने बुद्धों से बस इतना ही लाभ लिया। तुमने बुद्धों से बस यह लोभ सीखा। तुम सरल नहीं रह गए चित्त में, तुम जटिल हो गए। धर्म तुम्हारे लिए एक तरह का हिसाब-किताब हो गया--इतना पुण्य करेंगे तो इतना लाभ मिलेगा। यहां इतना देंगे तो वहां उतना मिलेगा। तुमने हर चीज में गणित फैला दिया। तुम भाव की दशाओं से वंचित होने शुरू हो गए। इसलिए बड़ी आश्चर्य की बात है, मगर यह हो रहा है। नहीं होना चाहिए, मगर हो रहा है। तुम सजग होओ तो शायद होना बंद हो जाए।
पहले तो भारतीय ध्यान में उतरना नहीं चाहता, क्योंकि उसे यह ख्याल है
कि वह जानता ही है ध्यान क्या है। दूसरा अगर उतरने को भी राजी होता है, तो दिन, दो दिन में ही आकर खड़ा हो जाता है कि अभी तक नहीं हुआ। और उसे बेचैनी होती है कि पश्चिम से आए लोगों को हो रहा है मालूम होता है, क्योंकि वे इतने प्रसन्न और इतने आनंदित! उनके प्रसन्न और आनंदित होने का कारण है कि उनके मन में लोभ नहीं है ध्यान का। धन का लोभ था, धन पा लिया पश्चिम ने, और वह लोभ टूट गया और देख लिया कि उस लोभ में कोई सार नहीं था। अभी ध्यान का लोभ पैदा नहीं हुआ है। जल्दी पैदा हो जाएगा, भारतीय साधु-संत सारे अमरीका और पश्चिम में तैर रहे हैं, यहां से लेकर वहां तक; वे जल्दी ही लोभ पैदा करवा देंगे। क्योंकि उनकी भाषा लोभ की है। महर्षि महेश योगी लोगों से कहते हैंः ध्यान करने से पारलौकिक लाभ तो होता ही है, सांसारिक लाभ भी होता है। धन भी बढ़ेगा, पद भी बढ़ेगा, परमात्मा भी मिलेगा।
एक बहुत आश्चर्यजनक घटना है। विवेकानंद ने भारतीय साधु-संतों के लिए अमरीका का दरवाजा खोला। विवेकानंद से लेकर अब तक, सिर्फ कृष्णमूर्ति को छोड़ कर, जितने लोग भारत से अमरीका गए हैं, उन्होंने अमरीका को नहीं बदला, अमरीका ने उन्हें बदल दिया। वे अमरीका की ही भाषा बोलने लगते हैं। क्योंकि उन्हें दिखाई पड़ता है कि अगर अमरीकन लोगों को प्रभावित करना है, तो वही भाषा बोलो जो वे समझते हैं। अमरीका धन की भाषा समझता है। अमरीका

पूछता हैः धन इससे कैसे मिलेगा? तो भारतीय तुम्हारा महात्मा भी धन की भाषा बोलने लगता है। वह कहता हैः ध्यान करने से मन की शक्ति बढ़ेगी, सिद्धि मिलेगी। ध्यान करने से क्या नहीं हो सकता! फिर तुम जो चाहोगे वही पा सकोगे, तुम्हारे विचार इतने शक्तिशाली हो जाएंगे।
मैंने ऐसी किताबें देखी हैं जो कहती हैं कि अगर तुमने ठीक से ध्यान किया और कहा कि केडिलक कार मिलनी चाहिए, तो मिलेगी। ध्यान की किताबें! केडिलक कार मिलनी चाहिए, इसको अगर ध्यानपूर्वक सोचा, तो जरूर मिलेगी! और तुमने कहा कि यह जो स्त्री जा रही है, यह मुझे मिलनी चाहिए, अगर तुमने पूरे संकल्प से, पूरी एकाग्रता से विचार किया, तो यह घटना घट कर रहेगी। क्योंकि विचार में शक्ति है। और एकाग्र विचार में बड़ी शक्ति है।
अगर तुम्हारे ऋषि-मुनि कब्रों से निकल आएं, तो सिर ठोंक लें, कि ये हमारे महात्मा अमरीका में जाकर क्या समझा रहे हैं! मगर अमरीका को समझाना हो तो अमरीका की भाषा बोलनी पड़ती है। उसी भाषा के बोलने में सब व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मैंने तय किया कि मैं पश्चिम नहीं जाऊंगा; जिसको आना है, यहां आए। मैं अपनी भाषा बोलूंगा, जिसको समझ पड़नी हो, समझ सकता हो, वह मेरी भाषा समझे और यहां आए, मुझे कहीं जाना नहीं है। मैं कोई समझौते के लिए राजी नहीं हूं।
भारतीय मन सदियों से सुनते-सुनते ध्यान की बात, लोभी हो गया है। धन का
जो लोभ है, उसी लोभ को भारतीय मन ने आत्मा के लोभ पर निरूपित कर दिया, आरोपित कर दिया। पद का जो लोभ है, वही उसने धार्मिक दिशा में संक्रमित कर दिया है, भेद नहीं है। कोई यहां पद पाना चाहता है, वह वहां पद पाना चाहता है। फिर अड़चन होगी। फिर तुम मुझे न समझ पाओगे। और फिर, मुक्ति, खड़ी ही खड़ी रह जाओगी। यह तुम्हारे हाथ में है। यह समय चूक भी सकती हो। चूकने का मतलब सिर्फ इतना ही कि इस समय में डूबो नहीं तो चूक जाओगी। मैं रोज यहां मौजूद हूं, मेरे द्वार खुले हैं, तुम डुबकी लो; तो मेरे जाने के पहले घटना घट जाएगी। आज घट सकती है, कल का भी कोई सवाल नहीं है, कभी भी घट सकती है, क्योंकि परमात्मा सदा मौजूद है। जिस क्षण तुम्हारा लोभ-लाभ गया, उसी क्षण मिलन हो जाता है।
किसे यह होश सुराही कहां है जाम कहां
निगाहे-पीरे-मुगां से बरस रही है शराब
जब चारों तरफ से शराब बरस रही हो, तो तुम सुराही खोज रही हो! जाम खोज रही हो! नहाओ इसमें! सुराही में भर कर क्या करना है? पी लो इसे! शराब में डूब कर शराब हो जाओ।
किसे यह होश सुराही कहां है जाम कहां
निगाहे-पीरे-मुगां से बरस रही है शराब
तुम डूबो। मीरा ने कहा हैः मीरा पी गई बिन तौले। मीरा मगन भई अब क्या बोले? बिना तौले पी जाओ, लाभ-लोभ छोड़ो। वह लाभ-लोभ सब तौलना है। तराजू लिए बैठी है मुक्ति, वह अपना तौल रही है--कितना मिला, कितना नहीं मिला। इसलिए उदास है। दुर्भाग्य की बात है, लेकिन इस आश्रम में जितने भारतीय हैं, अधिकतम उदास हैं। जो गैर-भारतीय हैं, वे प्रसन्न हैं, आनंदित हैं।
तेरा मैखार तेरी मस्त निगाहों की कसम
साकिए बिन पिए मसरूर हुआ जाता है
यह ऐसी शराब है कि बिना पीए नशा चढ़ सकता है। सिर्फ द्वार तुम्हारा खुला हो। खिड़की-दरवाजे खोलो!
शकील दूरिए-मंजिल से नाउम्मीद न हो
अब आई जाती है मंजिल अब आई जाती है
उदास होने की कोई भी जरूरत नहीं है। न निराश होने की कोई जरूरत है। मैं तुमसे यह कह ही नहीं रहा हूं कि मंजिल असंभव है, या बहुत दुर्गम है। मंजिल बहुत सुगम है और सरल है और सहज है। यही तो भक्ति का सारा सार-निचोड़ है। प्रेम भर चाहिए। लोभ के कारण प्रेम नहीं हो पाता और मंजिल दूर से दूर हो जाती है।
लोभ को जाने दो। लोभ की जगह प्रेम का आह्लाद-भाव। फिर हुआ ही है। फिर
हो ही गया। फिर क्षण भर की देर नहीं है।

पांचवां प्रश्नः मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया। साधारण लौकिक प्रेम ही नहीं, आपके प्रति भी जो प्रेम है वह भी छिपाए बैठा हूं। न मालूम कौन सा भय है जिसने मुझे पंगु बना रखा है! यह अविकसित प्रेम कैसे भक्ति बनेगा?

मनुष्य का दुर्भाग्य है कि अब तक जो संस्कृति और जो सभ्यता पनपी है पृथ्वी पर वह प्रेम-विरोधी है। वह युद्ध की पक्षपाती है और प्रेम की विरोधी है। यह सभ्यता बहुत सभ्यता नहीं है, बहुत आदिम है। यह युद्ध पर जीती है, प्रेम पर नहीं जीती। यह प्रेम की दुश्मन है। यह प्रेम से बहुत भयभीत है।
तुम देखते हो, प्रेम को प्रकट करने में हजार तरह की बाधाएं खड़ी की जाती हैं। प्रेम हो न जाए, इसके बीच हजार तरह की दीवालें खड़ी की जाती हैं। प्रेम न घटे, इसलिए सदियों तक बाल-विवाह चलता रहा। वह सिर्फ प्रेम से बचने का उपाय था। इसके पहले कि प्रेम की तरंग उठे, विवाह कर दो। न उठेगी प्रेम की तरंग, न होगी कोई झंझट।
स्त्री-पुरुषों को दूर रखा जाता है, उनके बीच में बड़े फासले खड़े किए जाते हैं। लड़कियों और लड़कों को एक साथ कालेज या स्कूल में पढ़ने नहीं दिया जाता। अगर पढ़ने भी दिया जाता है तो उनके बैठने के स्थान अलग-अलग होते हैं। सब तरह से बाधाएं खड़ी की जाती हैं। और सब तरह से डराया जाता है कि प्रेम में कुछ खतरा है, प्रेम पाप है। यह बात इतनी गहरी बैठ जाती है प्राणों में कि प्रेम पाप है, कि जब कभी तुम्हारे जीवन में प्रेम का उदय भी होता है, तो भी साहस पैदा नहीं होता। तुम अपने को खींच-खींच लेते हो। तुम रुक-रुक जाते हो। यह सभ्यता संगीनों की सभ्यता है, प्रेम की नहीं। इसका पूरा आयोजन यही है कि कैसे हम मरें और मारें। यह सभ्यता सैनिक बनाती है, प्रेमी नहीं बनाती।
इसलिए तुम चमत्कार की बात देखोगे, अगर फिल्म में कोई किसी की छाती में छुरा भोंक दे, तो इस पर सरकार कोई रोक नहीं लगाती। लेकिन चुंबन पर रोक है। यह बड़े मजे की बात है। कल मैं पढ़ रहा था, मद्रास में तो मुख्यमंत्री फिल्म अभिनेता है, लेकिन फिल्म अभिनेता मुख्यमंत्री भी वक्तव्य देता है कि फिल्मों में चुंबन नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे भारतीय संस्कृति का बड़ा ह्नास हो जाएगा।
चुंबन से भारतीय संस्कृति का ह्नास हो जाएगा! खजुराहो की मूर्तियां किसने बनाई थीं? कोई पश्चिम से लोग आए थे बनाने? पश्चिम में एक भी मंदिर नहीं है खजुराहो के मुकाबले। चुंबन से ह्नास हो जाएगा भारतीय संस्कृति का! हां, छाती में छुरे भोंको, जेबें काटो, हत्याएं करो फिल्म में, चोरियां करो, जलाओ लोगों को, मारो, सब चलेगा, इससे संस्कृति का ह्नास नहीं होता! इससे संस्कृति बढ़ती है, इससे विकसित होती है। एक चुंबन बड़ा खतरनाक है! चुंबन जैसी कोमल चीज मार डालेगी इनकी संस्कृति को!
प्रेम से दुश्मनी है। अगर दो व्यक्ति प्रेम में आलिंगन कर लें तो अश्लील है, और एक-दूसरे की छाती में छुरा भोंक दें तो अश्लील नहीं है। अश्लील शब्द का हिंसा से संबंध ही नहीं जोड़ते लोग। अश्लील शब्द का सिर्फ हिंसा से ही संबंध होना चाहिए। प्रेम से क्या संबंध होगा अश्लील का?
तो तुम्हारा प्रश्न तुम्हारा ही प्रश्न नहीं है, सारी मनुष्य-जाति का प्रश्न है। प्रेम के प्रति तुम्हें अपराध-भाव से भर दिया गया है। और जब तक प्रेम विकसित न हो, तब तक भक्ति का जन्म नहीं हो सकता। जिसने लौकिक प्रेम नहीं किया, वह अलौकिक प्रेम तो कैसे करेगा? क्योंकि लौकिक प्रेम की ही हिम्मत जिसमें नहीं थी, उसमें अलौकिक प्रेम की हिम्मत तो पैदा ही नहीं हो सकती। अलौकिक प्रेम तो दुस्साहस है। कल मैं एक गीत पढ़ रहा था--

तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

हाय! यह हीर की सूरत जीना

मुंह बिगाड़े हुए अमृत पीना कांपती रूह, धड़कता सीना
जुर्म फितरत को बताती क्यों हो? तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

हां, वो हंसते हैं जो इंसान नहीं जिनको कुछ इश्क का इरफान नहीं संगजदों जरा जान नहीं
आंख ऐसों की बचाती क्यों हो? तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

जुर्म तुमने कोई ढाया तो नहीं इब्ने-आदम को सताया तो नहीं
खूं गरीबों का बहाया तो नहीं यों पसीने में नहाती क्यों हो? तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

झेंपते तो नहीं मंदिर के मकीं झेंपते तो नहीं मेहराबनशीं मक्र पर उनकी चमकती है जबीं सिद्क पर सर को झुकाती क्यों हो? तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

पर्दा है दाग छुपाने के लिए
शर्म है किज्ब पे छाने के लिए
इश्क इक गीत है गाने के लिए
इसको ओंठों में दबाती क्यों हो?
तुम मोहब्बत को छिपाती क्यों हो?

लेकिन सभी मोहब्बत को छिपा रहे हैं--पुरुष और स्त्रियां, प्रेमी और प्रेमिकाएं, पति और पत्नियां, भाई और बहन, बाप और बेटे, मां और बेटियां--सब मोहब्बत को छिपा रहे हैं, सब प्रेम को छिपा रहे हैं। तुम्हें याद है, तुम कब से अपने बाप की छाती नहीं लगे? कब से? या शायद कभी नहीं। तुम्हें याद है, कब से तुम्हारी मां ने तुम्हें अपनी गोद में नहीं लिया? भूल ही गई है बात! दो मित्र भी तो हाथ में हाथ डाल कर नहीं चलते, कि कहीं कोई कुछ गलत न समझ ले।
प्रेम के संबंध में इतना छिपाव, इतना दुराव! क्यों? क्योंकि प्रेम में कुछ बगावत है, विद्रोह है। अगर लोगों को प्रेम की पूरी छूट दी जाए, तो दुनिया दूसरे ढंग की होगी। उस दुनिया में राजनीति नहीं होगी, युद्ध नहीं होंगे। अगर प्रेम की पूरी छूट हो तो कौन युद्ध के स्थल पर मरने जाना चाहेगा? कौन? कौन मां अपने बेटे को भेजेगी युद्ध पर? कौन पत्नी अपने पति को भेजेगी? कौन बहन अपने भाई को भेजेगी युद्ध पर? अगर दुनिया में प्रेम हो तो लड़ने की इतनी आतुरता ही नहीं होगी। लोग कहेंगे--क्या फिजूल की बात है! लड़ना किसलिए? यह जमीन सबकी है, हम सब भोगें, हम सब आनंद से रहें, लड़ने का क्या सवाल?
लेकिन मामला कुछ और है। मामला ऐसा है कि तुम्हें प्रेम का मौका नहीं मिला, तो तुम्हारी जो प्रेम की ऊर्जा है वह सघन हो गई है भीतर और घृणा बन गई है। प्रेम सड़ गया है तुम्हारा। वह इस दुनिया से बदला लेना चाहता है। वह किसी की छाती में छुरा भोंक देना चाहता है। तुम्हारा प्रेम सड़ गया है, घाव बन गया है, नासूर हो गया है, कैंसर हो गया है। इसलिए हर दस साल में एक महायुद्ध चाहिए। तब कहीं थोड़ी छाती हलकी होती है, थोड़ी मवाद बह जाती है। और छोटी-मोटी लड़ाई तो चलती ही रहनी चाहिए, कभी वियतनाम में, कभी इजरायल

में, कभी कहीं--कश्मीर में, कभी बंगलादेश में, छोटी-मोटी लड़ाई तो चलती ही रहनी चाहिए।
तुमने एक मजे की बात देखी, कि जब भी लड़ाई चलती है, लोगों के चेहरों पर रौनक आ जाती है, धूल झड़ जाती है। लोग बड़े ताजे मालूम होने लगते हैं, जैसे कुछ हो रहा है! जिंदगी में कुछ और तो होता ही नहीं, जिंदगी में और तो कुछ है ही नहीं, खाली-खाली है; जब जिंदगी में कुछ होता लगता है, माने युद्ध--समाचार का मतलब यह होता है कि कोई खराब समाचार; कि है भाई आज कुछ समाचार? सुबह ही से उठ कर लोग पूछते हैं। उनका मतलब है--हुई कुछ गड़बड़? कुछ उपद्रव हुआ? लोग कहते हैं, आज तो कुछ नहीं, वही का वही अखबार में सब पुराना ही है। फिर धूल जम गई। फिर वह शांत हो गए कि चलो ठीक है, कुछ नहीं हुआ आज, तो आज का दिन फिर बेकार गया।
युद्ध हो जाए, लोग कटने-मरने लगें, तो तुमने एक और मजे की बात देखी है, लोग छोटे-छोटे झगड़े भूल जाते हैं जब बड़ा युद्ध होता है। जैसे हिंदुस्तान-पाकिस्तान लड़े, तो फिर गुजराती-मराठी नहीं लड़ते। फिर क्या मतलब? फायदा क्या? अब जब बड़ी लड़ाई चल रही है, तो छोटी की कौन झंझट करे! फिर हिंदी और गैर-हिंदी नहीं लड़ते। मजा ही आ रहा है, अब करने की क्या जरूरत? छोटे-छोटे दंगल गांव-गांव में क्या करना, बड़ा दंगल हो रहा है। राजधानी-दंगल हो रहा है, तो बस अब उसका ही मजा लेंगे। जब राजधानी का दंगल बंद हो जाता है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान नहीं लड़ते, तो चैन नहीं पड़ती। तो फिर गुजराती और मराठी लड़ते हैं। फिर हिंदू और मुसलमान लड़ते हैं। फिर कोई न कोई रास्ता खोजते हैं लोग। शिया-सुन्नी लड़ते हैं। ब्राह्मण-हरिजन लड़ते हैं।
लोग सोचते थे कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंट जाएंगे तो फिर यहां कोई झगड़ा नहीं होगा। झगड़े बढ़ गए! कम नहीं हुए। क्योंकि तब हिंदू-मुसलमान लड़ लेते थे, अब हिंदू-मुसलमान लड़ने का ज्यादा उपाय नहीं रहा--मुसलमान उधर हो गए, हिंदू इधर हो गए--तो हिंदू आपस में लड़ते हैं। उधर मुसलमान लड़ रहे हैं। यह मत सोचना कि वे नहीं लड़ रहे हैं। वहां भी वही है!
तुमने देखा, तुम्हारे परिवार में और पड़ोसी के परिवार में झगड़ा हो जाए
तो तुम्हारे घर के आपसी झगड़े समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि अब बड़ा झगड़ा सामने आ गया, अब ये छोटे-मोटे झगड़े भूलने पड़ते हैं। जब पड़ोसी से झगड़ा समाप्त हो गया--बाप बेटे से लड़ रहा है, पत्नी पति से लड़ रही है, भाई भाई से लड़ रहा है--छोटे-छोटे झगड़े शुरू हुए।
बिना झगड़े के आदमी रह नहीं सकता क्या? क्या झगड़ा अनिवार्य है? यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए, बार-बार पूछा जाना चाहिए।
झगड़ा कतई अनिवार्य नहीं है। लेकिन प्रेम को मौका नहीं दिया गया। प्रेम की जो अनंत ऊर्जा है, उस ऊर्जा को जब तक मौका न मिले, वही ऊर्जा विध्वंस बन जाती है। या तो सृजन, या विध्वंस। ठीक मार्ग मिले तो सृजनात्मक हो जाती है। तब गीत पैदा होते हैं, तब नृत्य जगता है, तब संगीत पैदा होता है। जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो तुम्हारे हाथ वीणा को छूना चाहते हैं। या नहीं? जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो तुम अपनी बगिया में गुलाब उगाना चाहते हो। या नहीं? जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो गीतों में तुम्हें रस आता, नृत्य में तुम्हें अर्थ मालूम होता है।
जब तुम प्रेम से बिल्कुल खाली हो जाते हो, मौका ही नहीं प्रेम का, घृणा
ही घृणा हो जाती है, तब तुम तलवारों पर धार धरने लगते हो, तब तुम बंदूकें साफ करने लगते हो, तब तुम प्रतीक्षा करने लगते हो कि कहीं कुछ मौका मिल जाए तो कूद पडूं और जूझ जाऊं; मर लूं या मार लूं। जिंदगी इतनी व्यर्थ मालूम हो रही है कि मौत ही सार्थक मालूम होती है।
तो यह प्रश्न तुम्हारा ही नहीं है, यह प्रश्न सभी का है। ऐसी दशा है।
इस दशा से बाहर आने के लिए तुम्हें चेष्टा करनी होगी। और समाज तुम्हें साथ नहीं देगा। तुम्हें अपने ही बल से धीरे-धीरे बाहर आना होगा। तुम अपने जीवन को प्रेमपूर्ण बनाओ। तुमसे जितना प्रेम बन सके, दो। और जितना प्रेम ले सको, लो। सब दिशाओं से प्रेमपूर्ण बनाओ--भाई को प्रेम करो, बहन को करो, पत्नी को करो, मां को करो, पड़ोसियों को करो, मित्रों को करो, प्रेम की एक बाढ़ बन जाओ। छोटी सी जिंदगी है, इस छोटी सी जिंदगी में प्रेम का दीया जलाओ।

और तुम अपूर्व आनंद अनुभव करोगे। और तुम पाओगे कि वही लपट जो यहां प्रेम कहलाती है, जब और जरा ऊपर उठती है, देहों के पार जाती है, पदार्थ के ऊपर उठती है, तो भक्ति बन जाती है। भक्ति प्रीति की ही अंतिम छलांग है। लेकिन प्रीति ही सिकुड़ी-सिकुड़ी पड़ी है, तो भक्ति कैसे होगी? भक्ति तो प्रेम की ही अंतिम उड़ान है। और पक्षी घोंसला ही नहीं छोड़ रहा है, अंतिम उड़ान क्या खाक भरेगा!
शांडिल्य के सूत्र इसीलिए महत्वपूर्ण हैं। शांडिल्य कहते हैंः प्रीति जीवन का असली तत्व है। जिससे अस्तित्व बना है, वह तत्व है प्रीति।
उस प्रीति के चार रूप हैं।
अपने से छोटों के प्रति हो तो स्नेह।
अपने समान के प्रति हो तो प्रेम।
अपने से बड़ों के प्रति हो तो श्रद्धा।
और समस्त के प्रति हो, सर्वात्मा के प्रति हो तो भक्ति।
एक ही प्रीति के ये चार अलग-अलग रूप हैं। कहो चार सीढ़ियां हैं। लेकिन तीन सीढ़ियां पार करनी होंगी तभी तुम चौथी में उठ सकोगे।
"मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया।"
जाने दो जो नहीं हुआ कल, आज तो करो। अब कल के लिए बैठे-बैठे क्या रोना!
कल तो गया, अब दुबारा लौटेगा भी नहीं, अब कल के लिए बैठे-बैठे क्या समय खराब करना! आज तो हाथ में है न, आज कुछ करो। आज नाचो, आज गाओ। आज हृदय से मिलो। कहते हैंः "मैं अपना प्रेम कभी प्रकट नहीं कर पाया। साधारण लौकिक प्रेम ही नहीं, आपके प्रति भी जो प्रेम है वह भी छिपाए बैठा हूं।"
उसे तो छिपाने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि यहां तो मैं एक ही बात सिखा रहा हूं, अगर कुछ सिखा रहा हूं तो--प्रेम को अभिव्यक्ति दो।
क्योंकि प्रेम की अभिव्यक्ति में ही तुम्हारी आत्मा का विकास है। निःसंकोच अपने प्रेम को प्रकट होने दो। तुम्हारे प्रेम की अभिव्यक्ति में ही तुम पाओगे कि तुम्हारा असली जीवन शुरू हुआ। जागरण उसी से आता है। नहीं तो तुम सोए-सोए जी रहे हो।
"न मालूम कौन सा भय है मुझे, जिसने मुझे पंगु बना रखा है।"
संस्कार का भय है। सदा सिखाया गया है प्रेम के संबंध में, सावधान! प्रेम खतरनाक है! प्रेम में जाना ही मत! प्रेम पागलपन है! यह सिखाया गया है, इसलिए तुम रुके हुए हो।
मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम पागलपन सही तो पागलपन सही, लेकिन प्रेमरहित होकर बुद्धिमान होने से प्रेमपूर्ण होकर बुद्धिहीन होना बेहतर है। क्योंकि जो प्रेम में पड़ता है वह कभी न कभी परमात्मा तक पहुंच ही जाता है। प्रेम यानी नाव को छोड़ दिया, पाल खोल दिए।
ठीक ही कहते हैं लोग, कहते हैं कि प्रेम पागलपन है। है ही पागलपन। क्योंकि तर्क उसका साथ नहीं देता। गणित में आता नहीं, हिसाब-किताब में बैठता नहीं, फायदा क्या है? गणित पूछता हैः फायदा क्या है? क्या मिलेगा प्रेम करने से? और झंझट ही होगी, काम में बाधा पड़ेगी। अभी तो चुनाव आ रहा है, चुनाव लड़ो, प्रेम में कहां पड़ते हो? अब जिसको चुनाव लड़ना है, वह प्रेम कर भी नहीं सकता। जो प्रेम करेगा, वह चुनाव में लड़ने की ऊर्जा नहीं पाएगा। चुनाव में लड़ने के लिए वही युद्ध की दशा चाहिए। अभी तो धन कमाना है, अभी प्रेम में मत पड़ो। अगर प्रेम में पड़ गए, तो धन न कमा पाओगे।
तुमने देखा, प्रेमी अक्सर धनी नहीं हो पाते। हो ही नहीं सकते। क्योंकि धन इकट्ठा करने के लिए बड़े अप्रेम की क्षमता चाहिए। धन इकट्ठा ही अप्रेमी करते हैं। अगर पद पर पहुंचना हो, प्रधानमंत्री बनना हो या राष्ट्रपति बनना हो, तो प्रेम मत करना। क्योंकि प्रेम किया तो कौन फिकर करता है प्रधानमंत्री बनने की? किसलिए? प्रेम करते ही तुम बादशाह हो गए। तुम्हारी छोटी सी जिंदगी में सुवास आ गई। अब कौन फिकर करता है दिल्ली जाने की? प्रेम न हो जीवन में तो आदमी दिल्ली जाने की कोशिश करता है। प्रेम न हो तो आदमी इस कोशिश में रहता है कि लोगों का ध्यान तो मेरी तरफ आकर्षित हो। प्रेम की कमी ध्यान से पूरी करवा लेना चाहता है--दूसरों का ध्यान आकर्षित हो जाए।

जब कोई तुम्हें प्रेम से भर कर देखता है--एक व्यक्ति भी अगर तुम्हें प्रेम से भर कर देख लेता है, प्राण तृप्त हो जाते हैं। जब यह तृप्ति नहीं होती, तब तुम चाहते हो कि मंच पर खड़ा हो जाऊं, हजारों लोगों की भीड़, लोग ताली बजाएं, फूलमालाएं फेंकें। ये उसी प्रेम की जो दो आंख तुम्हें नहीं मिल पाईं, उसी की पूर्ति तुम कर रहे हो। और करोड़ लोग भी तुम्हारे ऊपर फूल फेंकें तो भी पूर्ति नहीं होती। क्योंकि वे फूल फेंकने वाले प्रेम के कारण फूल नहीं फेंक रहे हैं, वे तुम पर फूल फेंक ही नहीं रहे हैं, वे सिर्फ तुम्हारे पद और प्रतिष्ठा के लिए फूल फेंक रहे हैं, वे भय के कारण फूल फेंक रहे हैं। यही लोग कल तुम पर जूते फेंकेंगे, जरा पद से नीचे उतरो।
एक महिला के संबंध में मुझे पता है, इंदिरा पर किताब लिख रही थी, उनकी प्रशंसा में किताब लिख रही थी। फिर सब पासा पलट गया। तो अब उसने किताब भी बदल दी। अब उसने किताब लिखी है इंदिरा के खिलाफ। शुरू की थी पक्ष में, किताब करीब-करीब पूरी होने को आ गई थी, बस आखिरी हिस्सा पूरा करना था, लेकिन तभी तक मामला बदल गया। किताब का नाम है--टू फेसेज ऑफ इंदिरा गांधी। तब मैं बड़ा हैरान हुआ। ये दो चेहरे इंदिरा गांधी के, कि दो चेहरे लेखिका के? ये दो चेहरे लेखिका के हैं। जो फूलमालाएं पहना रहे थे, वे ही गालियां दे रहे हैं। बदला ले रहे हैं अब।
ख्याल रखना, अगर राजनीति में जाना हो तो प्रेम में पड़ना मत। अगर धन कमाना हो तो प्रेम में पड़ना मत। अगर इतिहास में नाम छोड़ना हो तो प्रेम करना मत। क्योंकि प्रेम करने वालों को जरा भी फिक्र नहीं होती कि इतिहास में नाम हो कि न हो। और जरा भी फिक्र नहीं होती कि पद मिले या न मिले, धन कमाया जाए या न कमाया जाए। प्रेम इतनी परितृप्ति देता है कि सब मिल गया--पद भी, धन भी, यश भी। प्रेम चूक जाए तो ये सब चीजों की दौड़ पैदा होती है। इसलिए समाज चाहता है कि तुम्हारा प्रेम चूक जाए। तुम प्रेम में पड़े
तो सब गड़बड़ हो जाती है। तुम्हारे पिता चाहते हैं कि धन कमाओ, और तुम पड़ गए प्रेम में; गए काम से! पिता सिर ठोंक लेते हैं कि बस खराब हो गई बात। अब क्या कमाएगा यह! पिता चाहते हैं कि बेटा प्रधानमंत्री हो जाए, तुम प्रेम में पड़ गए। पिता निराश हो जाते हैं कि अब यह क्या प्रधानमंत्री होगा! प्रधानमंत्री होना हो तो ब्रह्मचर्य की कसम ले लो। मोरारजी भाई से पूछो! तब तुम्हारी सारी ऊर्जा कुंठित होती है भीतर, लड़ने-झगड़ने की वृत्ति पैदा होती है। कहीं भी जूझ जाओ, किसी से भी भिड़ जाओ, वही भाव रहता है। फिर तुम जिस दिशा में भी सिर डाल दोगे, उसी दिशा में पहुंच जाओगे; धक्के-मुक्के करते, किसी न किसी दिन, जो तुम्हारी मंशा है, पूरी हो सकती है। महत्वाकांक्षा सिखाता है समाज, और महत्वाकांक्षा अप्रेमी हृदय में ही हो सकती है।
इस कारण तुम्हारे मन में एक तरह की पंगुता है। समझो और उस पंगुता को तोड़ दो। उस पंगुता को तोड़ना कठिन नहीं है, समझने भर की जरूरत है। समझ आते ही तोड़ी जा सकती है। और अगर तुम इस जगत के लोगों को प्रेम कर सको, तो वही प्रेम का आनंद तुम्हें प्रार्थना सिखाएगा। उसी प्रेम के आनंद से तुम एक दिन परमात्मा की तलाश में निकलोगे। तुम सोचोगे कि जब साधारण लोगों को प्रेम करने से इतना आनंद मिला, तो उस परम प्यारे की खोज से कितना आनंद न मिलेगा!

आखिरी प्रश्नः अब हम करें क्या?

अथातो भक्ति जिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करो! अब प्रेम की खोज करो! अब अपने झूठे चेहरों को हटाओ, मुखौटे तोड़ो! अब अपने असली प्राण की ज्योति को प्रज्वलित होने दो।

ऊपर से छूने पर तो मखमल हैं चेहरे,
अंदर से कुंठाओं के मरुथल हैं चेहरे,
दर्पण में खुद को पहचान नहीं पाते हैं,
आत्म-अपरिचय के ऐसे जंगल हैं चेहरे,

सदा झनकते रहे दूसरों के पांवों में,
औरों के पग बंधी हुई पायल हैं चेहरे,
पांव रखो तो धंसते हुए चले जाते हैं,
रिश्तों की मीलों लंबी दलदल हैं चेहरे
भटक रहे हैं सपनों के रेगिस्तानों में,
बेचारे, प्यासे मृग से पागल हैं चेहरे

अब चेहरे छोड़ो, मुखौटे छोड़ो। अब ढोंग मिटाओ, अब पाखंड गिराओ, अब आवरणों से मुक्त हो जाओ! अब उसकी तलाश करो जो तुम हो, वस्तुतः तुम हो। जो जन्म के पहले तुम थे और जो मृत्यु के बाद तुम फिर हो जाओगे। अहंकार छोड़ो, तभी भक्ति की जिज्ञासा हो सकेगी। क्योंकि जो स्वयं को खोता है, वही परमात्मा को पाता है।

ख्याल, सांस, नजर, सोच, खोल कर दे दो
लबों से बोल उतारो, जुबां से आवाजें
हथेलियों से लकीरें उतार कर दे दो
हां दे दो अपनी खुशी भी कि खुद नहीं हो तुम
उतारो रूह से यह जिस्म का हसीं गहना
उठो दुआ से तो आमीन कहके रूह भी दे दो

तुम पूछते होः "अब हम क्या करें?"
अब अपने को दो। अब तक अपने को बचाया। यही तो प्रेम का राज है--देना। अब
तक बचाया। बचाया कि सड़ गए, दो कि खिल जाओगे।
जीसस ने कहा हैः जो देगा, वह पाएगा; और जो बचाएगा, वह नष्ट हो जाएगा।
प्रेम की कीमिया यही है। अब अपने को समर्पित करो। उतारो ये ढोंग जो तुमने ओढ़ रखे हैं--हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का; आस्तिक का, नास्तिक का; सिद्धांतों का, शास्त्रों का; उतारो ये सब चेहरे। ये सब खोलें अलग करो। अब अपने नग्न अस्तित्व को पहचानो कि मैं कौन हूं।
और तुम चकित होओगे, जैसे-जैसे भीतर जाओगे, तुम एक ही आवाज पाओगे कि मैं प्रेम हूं। इसीलिए तो प्रेम की इतनी प्रबल आकांक्षा है, इतनी अभीप्सा है। प्रेम ही तुम्हारा अस्तित्व का मूल स्वर है। तुम प्रेम से ही बने हो, तुम प्रेम के ही संघट हो।

नई-नई किरन
नई धरा, नया गगन
केंचुली उतारो रे! केंचुली उतारो!

पोखर की माटी से सिंहासन
जब तक बन जाए नहीं, हीरामन!
जोर से पुकारो रे! केंचुली उतारो!

रेखाएं खींच मत इकाई की
सुबह-शाम पाट उमर खाई की
कालिमा बुहारो रे! केंचुली उतारो!

धरती का गीत है पसीने में
मुट्ठी भर धूल है नगीने में
भूमि के सितारो रे! केंचुली उतारो!

सब केंचुलियां उतार दो। जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ कर निकल जाता है, ऐसे तुम अपने तथाकथित व्यक्तित्व को छोड़ कर निकल जाओ।
तुम पूछते होः "अब हम क्या करें?"
अथातो भक्ति जिज्ञासा!